इकाई 1 पूर्वी एशियाई क्षेत्र की प्रस्तावना

संरचना

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 प्राकृतिक पर्यावरण
1.3 जनता
1.4 भाषाएं
1.5 सामाजिक-सांस्कृति लक्षण
1.5.1 परिवार प्रणाली
1.5.2 कन्फूशियसवाद
1.6 पूर्वी एशिया में राजनैतिक परंपरा
1.6.1 कोरिया
1.6.2 जापान
1.7 पश्चिम की प्रतिक्रिया
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

यह इकाई पूर्वी एशियाई क्षेत्र की एक सामान्य ऐतिहासिक प्रस्तावना है। इसका उद्देश्य आधुनिक पूर्वी एशिया की राजनीति को समझने में आपको एक पृष्ठभूमि उपलब्ध कराना है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आपको :

- पूर्वी एशियाई क्षेत्र के आरंभिक सभ्यता संबन्धी लक्षणों को पहचानने;
- इसके सामाजिक-सांस्कृतिक लक्षणों पर चर्चा करने;
- राजनैतिक परंपराओं का वर्णन करने तथा
- चीन, जापान तथा कोरिया द्वारा पश्चिम के प्रति अलग-अलग प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करने में, सक्षम होना चाहिऐ।

1.1 प्रस्तावना

वह क्षेत्र जिसे अब हम पूर्वी एशिया कहते हैं, लम्बे समय से, "सुदूर पूर्व" के नाम से जाना जाता था। यूरोपीय यात्रियों ने, जिन्हें कैथी, जापान तथा इंडीज पहुंचने के लिये लम्बी व कठिन यात्रा करनी पड़ती थी, इन सुदूर क्षेत्रों को यह सामान्य नाम दिया था। "पूर्वी एशिया" अब अधिक स्वीकार्य शब्द है, यह भौगोलिक रूप से भी सही है तथा इसमें वह पुराना भ्रम भी निहित नहीं है कि यूरोप विश्व के केन्द्र में स्थित है। जिस समय "सुदूर पूर्व" शब्द प्रचलन में आया था, तब इसका मतलब उन सभी देशों से था जो कि भारत के पूरब स्थित थे। इसके अंतर्गत वे सभी क्षेत्र पड़ते थे, जिन्होंने कुछ हद तक चीनी सभ्यता के प्रभावों को महसूस किया था, हालांकि उनमें से कुछ ऐसे भी थे जो भारतीय सभ्यता से अधिक प्रभावित थे। हालांकि, जब हम "पूर्वी एशिया" शब्द का उल्लेख करते हैं तो खासतौर से इसे चीन, जापान तथा कोरिया के क्षेत्रों तक सीमित रखते है।

प्राचीन मिस्र, यूनान, रोम एवं भारत की भांति, पूर्वी एशियाई क्षेत्र भी सांस्कृतिक विकास का एक प्रमुख क्षेत्र रहा है। यहां विचारों एवं संस्थाओं का एक स्वतंत्र स्त्रोत रहा है। पूर्वी एशियाई जगत का केन्द्र

चीन था, जिसका सांस्कृतिक प्रभाव समूचे क्षेत्र में फैला था। आधुनिक युग तक, पूर्वी एशियाई क्षेत्र अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखा। लेकिन वह अलग-थलग रहकर विकसित नहीं हुआ था। अन्य सभ्यताओं के साथ भी इसके संपर्क थे। इन क्षेत्रों तथा आसपास के क्षेत्रों में भी बौद्ध-धर्म का व्यापक प्रभाव था। जहां इस्लाम की एक धारा भारत से होकर मलाया एवं इंडोनेशिया तक फैल गई, वहीं दूसरी धारा भीतरी एशिया से होकर स्वयं चीन के भीतर तक जा पहुंची। आरंभिक ईसाई धर्म तथा यहूदी धर्म सहित, अन्य धर्मों ने भी चीन में प्रवेश किया। अतीत में, पूर्वी एशिया तथा अन्य एशियाई एवं योरोपीय लोगों के बीच व्यापार के रिश्ते लगातार बने रहे थे। मध्य एशिया के माध्यम से थल मार्ग तथा मध्य पूर्व के समुद्री मार्ग ने इस क्षेत्र को उस समय शेष ज्ञात विश्व के साथ जोड़ा। चीन में रोमन सिक्के पाये गये हैं और में यह पाया गया है कि रोम की महिलाऐं चीनी रेशम पहनती थीं। मध्यकाल के दौरान विभिन्न समयों पर इसी रास्ते से व्यापार होता रहा। 13वीं शताब्दी में, एक इटलीवासी सौदागर, मार्को पोलो ने अनेकों वर्षों तक चीन में युआन (मंगोल) वंश की सेवा की थी। यूरोप तथा पूर्वी एशियाई क्षेत्र के बीच और भी अधिक प्रत्यक्ष संपर्क सोलहवीं शताब्दी में स्थापित हुआ, जब पुर्तगालियों ने श्रेष्ठ आशाओं के प्रदेश (केप ऑफ गुड होप) को घेर लिया तथा अमेरिका से स्पेनवासियों ने प्रशांत को पार किया। समुद्री मार्ग से पूर्वी एशिया के सभी हिस्सों में सैनिक धर्मोपदेशक तथा सौदागर आये। इसी समय स्पेनी तथा डच लोगों ने फिलीपीन्स तथा ईस्ट इंडीज में अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किये। यद्यपि दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ दुर्बल व छोटे देश योरोपीय ताकतों के प्रत्यक्ष उपनिवेश बन गये, किन्तु चीन ने, जो कि पूर्वी एशियाई जगत का केन्द्र था, अपनी राजनैतिक प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष किया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक, चीन अपनी आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित होना शुरू हो गया। इस पर हम इस इकाई में आगे विस्तार से चर्चा करेंगे।

1.2 प्राकृतिक पर्यावरण

पूर्वी एशिया की सभ्यता का एक उल्लेखनीय पहलू अन्य महान सभ्यताओं से अपेक्षाकृत अलग-थलग रहना रहा है। तथाकथित पूरानी दुनियां के अति पूर्व से विकसित होते हुए तथा अत्यधिक दूरी तथा विशाल पर्वत श्रृंखलाओं व रेगिस्तानों के चलते आरंभिक सभ्यता के प्रमुख केन्द्रों से अलग रहते हुए इसने पृथक सांस्कृतिक प्रवृत्तियां विकसित किया जो आज भी काफी हद तक कायम हैं। उदाहरण के लिये शेष दुनियां में लिखने की प्रणाली "अल्फाबेटिक" है जबकि पूर्वी एशिया में लिखने की प्रणाली चीनी-चित्रकारी वाली है।

मैसोपोटोमियन, यूनानी तथा मिस्त्र की सभ्यताएं भूमध्य सागर के आसपांस विकसित हुई थीं और घनिष्ट रूप से परस्पर-संबद्ध थीं। सिंधु घाटी की सभ्यता जो कि, आरंभिक सभ्यता का एक अन्य महान केन्द्र थी, उसकी भूमि अपेक्षाकृत सुगम थी तथा पश्चिमी सभ्यताओं के समूचे क्षेत्र के साथ उसका तटीय संचार स्थापित था। 327 ई.पू. में सिकंदर द्वारा भारत पर आक्रमण इसका एक प्रमाण है। उत्तरी चीन में आरंभिक पूर्व एशियाई सभ्यता प्रायः अलग थलग ही रही। उसमें एक तरफ अनन्त प्रतीत होने वाला प्रशान्त और दूसरी तरफ, विशाल हिमालय तथा तिब्बती पठार हैं जोकि आज तक अभेद्य रुकावट बने हुए हैं। उत्तर में मध्य एशिया के व्यापक रेगिस्तान तथा सोपान हैं—सर्द एवं कष्टप्रद। दक्षिण में दक्षिण पश्चिम चीन तथा दक्षिण पूर्व एशिया के उबड़ खाबड़ पहाड़ तथा जंगल हैं। साइबेरिया से मलाया तक फैले भूभाग तथा जलवायु के ये जबर्दस्त अवरोध लोगों के मुक्त आवागमन में सबसे बड़ी बाधा रहे हैं।

पूर्वी एशिया तथा व्यवस्थित जीवन के अन्य आरंभिक केन्द्रों के बीच जलवायु की भिन्नताओं ने भी इसकी सांस्कृतिक विशिष्टता में योगदान किया है। पूर्वी एशिया के प्रमुख हिस्सों में ठंडी सर्दियों तथा गर्म ग्रीष्म के साथ शीतोष्ण क्षेत्र की अनुप्राणित करने वाली जलवायु है। भारत की ही तरह, पूर्व एशिया की जलवायु का निर्धारण अधिकतर एशिया के व्यापक स्थल द्वारा होता है। उत्तरी क्षेत्र सर्दियों में अत्यधिक ठंडे तथा गर्मियों में अत्यधिक गर्म रहते हैं। पूर्वी एशिया के अधिकाशं भाग में मानसूनी हवाओं की वजह से, फसलों के लिये अनुकूल समय पर, काफी अच्छी वर्षा होती है। प्रचुर जल आपूर्ति तथा गर्म सूरज की लाली के चलते भूमि पर सघन खेती होना संभव है और अनेक इलाकों में साल में दो फसलें होती हैं। चावल, जोकि पानी से लबालब भरे खेतों में पैदा होता है, इस क्षेत्र

की गर्म तथा गीली गर्मियों में बहुत अच्छी फसल देता है। गेहूँ की तुलना में प्रति हैक्टेयर कहीं अधिक उत्पादन देते हुए, चावल मध्य एशिया तथा यूरोप से कहीं बड़ी आबादी का पोषण करता है। किन्तु, हमें यह ध्यान रखना होगा कि पूर्वी एशिया जैसे विशाल क्षेत्र में एक जैसी जलवायु नहीं हो सकती। यहाँ तक कि चीन में भी ठंडे, बंजर उत्तर-पश्चिम तथा नम, उष्णकटिबंधीय दक्षिणी तट के बीच भारी अंतर है। जापान, कोरिया तथा चीन के अधिकांश हिस्सों में पानी की अच्छी उपलब्धता वाले शीतोष्ण क्षेत्र मौजूद हैं।

1.3 जनता

महान एशिया अवरोध में पूरब की ओर का इलाका अधिकतर मंगोल लोगों का गढ़ है, जबकि पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों में कॉकेशियन तथा नीग्री लोग शामिल हैं। ये तीन प्रमुख जातीय किस्में है, जोकि पृथ्वी के अधिकांश हिस्से में बसती हैं। पूर्वी एशिया में मानव के पूर्वजों में सबसे अधिक दिलचस्प को सिनानथोपस पीकिनोन्सिस अथवा पीकिंग मैन कहा जाता है, जिसकी खोज 1927 में चीन के राजधानी पीकिंग से दक्षिण पश्चिम में लगभग 50 कि.मी. दूर एक गुफा में की गई थी। यह पीकिंग मैन करीब 400 000 ई.पू. में शायद रहा होगा और अग्नि पर इसका नियंत्रण था। उसके कुछ लक्षण थे, भाले के आसार के पैने दाँत जो कि अन्य प्रजातियों की तुलना में मंगोलों की खास विशेषता हैं। इसके आधार पर यह माना जाता है कि मंगोल प्रजाति उत्तरी चीन के इसी आदि मानव से उपजी है। छोटी भुजाएं, मसाल, पतली पलकें, खड़े रुखे काले बाल, अपेक्षाकृत सपाट चेहरे, मंगोली आदमी की इनकी चारित्रिक विशेषताएं हैं। उनकी त्वचा का रंग बहुत हल्के से गहरे भूरे रंगों की शृंखलाओं में बिखरा हुआ है। पूर्वी एशियाई क्षेत्र में, सबसे अधिक दिलचस्प प्रजातीय वंशज अइनू हैं, जोकि वर्तमान में जापान के उत्तरी छोर तक सीमित हैं। कुछ ऑस्ट्रेलियाई, रबोरिजिनों की भाँति ही आइनू में कॉकेशियन आदमी की कुछ विशेषताएं दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिये, उनके चेहरे व शरीर पर काफी बाल होते है अधिकांश पूर्वी एशियाई लोगों में नहीं होते। अइनू तथा ऑस्टेलियाई एबोरिजिन्स, मानव की आदिकालीन, गैरवर्गीकृत किस्मों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो कि उस समय से पहले उभर कर सामने आई थी जबकि आधुनिक प्रजातियों की पूरी तरह से उत्पत्ति हुई।

1.4 भाषाएं

पूर्व एशिया के भीतर, प्रमुख मानवीय विभाजन, मूलतः भाषायी आधार पर है। दूसरे शब्दों में, अन्य कारकों की तुलना में भाषा प्रायःसांस्कृतिक एवं राजनैतिक रूप से महत्वपूर्ण उप इकाइयों को रेखांकित करती है। पूर्वी एशिया में सबसे बड़ा भाषायी विभाजन भाषाओं के सिनिटिक (अथवा चीनी-तिब्बती) परिवार से संबंधित है। भाषाओं का यह परिवार पूर्वी एशिया के मध्य में एक मजबूत खण्ड पर काबिज है, जिसके अंतर्गत समूचा चीन, तिब्बत, वियतनाम, सियाग, लाओस, तथा वर्मा का अधिकांश हिस्सा आता है। तिब्बतियों को छोड़कर इस भाषाई समूह के सभी सदस्य निपोलिथिक काल से ही किसान· रहते आये हैं। इस बात के काफी प्रमाण मौजूद हैं कि बहुत लम्बे समय से वे विश्व के इस हिस्से में स्थाई रूप से रहते आये हैं। ये उन आरंभिक भारतीय-योरोपीयिनों से भिन्न रहे हैं जो अक्सर खानाबदोश चरवाहे लोग थे और इसलिये मैदानों से दूर घुमक्कड़ी करते रहते थे।

सिनिटिक समूह में, चीनी आमतौर पर सबसे बड़ा तथा ऐतिहासिक रूप से सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण भाषाई उप समूह है। अनादिकाल से, चीनी भाषा बोलने वाले लोग उत्तरी चीन पर काबिज रहे हैं, जोकि पूर्वी एशियाई सभ्यता की मूल भूमि है। कालक्रम में उत्प्रवास तथा सांस्कृतिक एवं भाषाई तौर पर समानता रखने वाले समूहों को अपने में मिलाकर उन्होंने विस्तार किया। धीरे-धीरे वे समूचे चीन, तथा हाल ही में मंचूरिया, मंगोलिया के अधिकांश भीतरी भाग, ताईवान के अधिकांश क्षेत्र, सिनकियांग के कुछ हिस्से तथा शहरी दक्षिणपूर्व एशिया के चीनी क्षेत्रों पर भी काबिज हो गये।

विस्तार के इस दौर में चीनी भाषा अनेक परस्पर अस्पष्ट भाषाओं में विभाजित हो गई । मेन्डारिन चीनी अथवा कुओ-यू (राष्ट्रभाषा) को मातृभाषा के रूप में दुनिया की किसी भी अन्य भाषा की तुलना में

अधिक लोग बोलते हैं। इसकी अनेक बोलियाँ समूचे उत्तरी चीन में बोली जाती हैं। दक्षिण मध्य प्रांत में बोलियों को हासियांग तथा कान कहा जाता है। शंघाई से लेकर वियतनाम की सीमा तक तटवर्ती क्षेत्रों में, बोली जाने वाली बोलियां हैं: वू, मिन, हक्कर, तथा कन्टोनीज। इनमें से कुछ बोलियां ताइवान के कुछ हिस्से तथा चीन से बाहर रह रहे चीनी समुदाय की भाषाएं हैं।

चीनी भाषा के अतिरिक्त, क्षेत्र में बसे लोगों द्वारा बोले जाने वाली सिनिटिक भाषा के अन्य अनेक समूह मौजूद हैं। उनके अंतर्गत मियाओ-याओ समूह तथा तिब्बती-बर्मी समूह आते हैं।

सिनिटिक खण्ड के उत्तर में मंगोल लोगों का एक बड़ा समूह रहता है जो कि एक ऐसे परिवार की भाषाऐं बोलता है जोकि सिनिटिक जुबानों से काफी भिन्न है। एल्टाइक भाषा समूह कहलाने वाली इन भाषाओं के तहत तुर्की, मंगोली तथा तुंगूसिक आदि आती हैं। कोरियाई एवं जापानी, अल्टाइक भाषाओं से संरचनागत नजदीकी एकरूपता प्रदर्शित करती है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।
ii) अपने उत्तरों की जाँच इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) हमें यह कैसे मालुम हुआ कि मंगोलियाई प्रजाति उत्तरी चीन से उपजी थी?

.....

.....

.....

.....

.....

2) किस भाषा को विश्व की सबसे अधिक जनसंख्या द्वारा बोला जाता है?

.....

1.5 सामाजिक सांस्कृतिक लक्षण

पूर्वी एशियाई सभ्यता का जन्म तथा इसके अधिकांश लक्षणों का विकास चीन में हुआ। इसलिये उस समाज की कुछ मौलिक विशेषताओं की परीक्षा करना जरूरी है। चीन की एक उल्लेखनीय विशेषता भूमि पर तथा कसी हुई सीमाओं वाले गांवों में लोगों की भीड़-भाड़ है तथा चीन के इतिहास में यह नई बात नहीं है। रोम साम्राज्य के समकालीन हेन साम्राज्य, की आबादी छः करोड़ थी, जो अधिकांशतः उत्तरी चीन में केन्द्रित थी। अपने इतिहास में शुरू से अंत तक चीनी लोग अपने सामाजिक एवं पारिवारिक रिश्तों में घनिष्टता से बंधे रहे हैं।

1.5.1 परिवार-प्रणाली

प्राचीन काल से ही व्यक्ति, राज्य, समुदाय अथवा धार्मिक संगठन की बजाय परिवार ही खासतौर पर चीनी समाज तथा सामान्य तौर पर पूर्वी एशियाई समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई रहा है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये, परिवार ही आर्थिक जीवन यापन, सुरक्षा, शिक्षा, सामाजिक संपर्क तथा मनोरंजन का प्रमुख स्रोत रहा है। यह लक्षण उल्लेखनीय ढंग से भारतीयों के साथ एकरूपता तथा पश्चिमी देशों के लोंगो के साथ भिन्नता को दर्शाता है। चीन में, राजनैतिक संगठन के लिये भी परिवार ही आधारशिला का काम करता रहा है। परस्पर जिम्मेदारी की प्रणाली (जिसे पाओ चिया प्रणाली कहा जाता था) के जरिये प्रत्येक घर में व्यक्ति एक दूसरे के कार्यों के प्रति जवाबदेह थे तथा किसी समुदाय के भीतर परिवार एक दूसरे के प्रति जवाबदेह थे।

1.5.2 कन्फूशियसवाद

पूर्वी एशिया में प्रचलित विचारधारा थी, कन्फूशियसवाद। अन्य विचारधाराओं का भी उदय हुआ तथा वे विकसित भी हुईं किन्तु जब भी सामाजिक आचारों का सवाल आया, तो कन्फूशियस की शिक्षाओं

का ही सबसे अधिक गहरा असर दिखाई पड़ा। ज्ञानी दार्शनिक कन्फूशियस छठवीं शताब्दी ई.पू. में था। उसे पूर्वी एशिया में सभी शिक्षकों व दार्शनिकों में सबसे महान माना जाता है। उसके विचार, जिन्हें उसके अनुयायियों ने लम्बे समय में और अधिक समृद्ध किया, राजनैतिक भी थे तथा उन्होंने व्यक्तियों को एक प्रकार की नैतिकता की शिक्षाएं दीं।

कन्फूशियस के दर्शन के अनुसार सामाजिक सद्भाव समाज में पांच प्रकार के बुनियादी रिश्तों द्वारा कायम रखा जा सकता है। वे रिश्ते थेः शासक एवं शासित के बीच, पिता एवं पुत्र के बीच, बड़े भाई व छोटे भाई के बीच, पति एवं पत्नी के बीच, तथा दोस्तों के बीच। इनमें से पहले चार रिश्ते आवश्यक तौर पर वरिष्ठ कनिष्ठ के बीच के रिश्ते थे तथा इस बात पर बल देते थे कि इसी तरह समाज में सद्भाव एवं स्थायित्व की गारंटी की जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति की हैसियत परिवार के साथ-साथ समाज में भी पूर्व निर्धारित थी। अपनी प्रकृति से ही परिवार प्रणाली श्रेणीबद्धता वाली एवं अधिनायकवादी था। उम्र को स्वयं में ही एक सम्मान की चीज तथा बुद्धिमानी का स्रोत माना जाता था।

कन्फूशियस की विचारधारा पुरुष के समक्ष नारी की आधीनता की पक्षधर थी। महिलाओं को अपने जीवन के तीन चरणों में अपने पिता, पति तथा पुत्रों की आज्ञा का पालन करना होता था। उन्हें संपत्ति का कोई अधिकार नहीं प्राप्त था। लड़कियों की शादी प्रायः उनके बचपन में ही कर दी जाती थी तथा उन्हें अपने पति के परिवार के साथ एक अधीनस्थ एवं तुच्छ हैसियत से रहना पड़ता था। केवल वृद्ध हो जाने तथा सास का दर्जा प्राप्त कर लेने के बाद ही कोई औरत प्रभुत्वशाली अवस्था को प्राप्त कर सकती थी और इस अवस्था में अक्सर वह तानाशाह की तरह व्यवहार करती थी।

चीनी जीवन में, परिवार प्रणाली द्वारा सच्चाई और निष्ठा, ईमानदारी व परोपकार जैसे व्यक्तिगत सदाचारों को शामिल करके सामाजिक आधार के नियमों का प्रावधान किया गया जोकि अधिकांश पूर्वी एशियाई क्षेत्र के लिये भी उतने ही प्रासंगिक थे। कानून, प्रशासन का सुविधाजनक औजार था, किन्तु व्यक्तिगत नैतिकता समाज की बुनियाद थी। पूर्वी एशियाई समाज को कन्फूशियसवाद ने दृढ़ता के साथ बांध रखा था। यह एक विचारधारा थी जोकि जनता के लिये कानून व धर्म दोनों थी। इसने शक्तिशाली सामाजिक गठन तथा विशेष संतुलन पैदा किया।

राजनैतिक क्षेत्र में, कन्फ्यूशियसवाद की एक उल्लेखनीय विशेषता, किसी बुरे शासन के खिलाफ शासितों द्वारा विद्रोह का अधिकार था। एक शासक को गुणवान व्यक्ति होना चाहिये और समाज के आचारों एवं नियमों का कड़ाई से पालन करना चाहिए। शासक की नैतिकता ही उसकी सत्ता का स्रोत था। वह अपनी प्रजा पर ईश्वर के आदेश से शासन करता था। यदि किसी भी समय, शासक ऊँची नैतिकता के रास्ते से भटकता है, तो वह "ईश्वर के आदेश" से वंचित हो जाता है। उस परिस्थिति में विद्रोह न सिर्फ आवश्यक है बल्कि एक नैतिक कार्य भी है। चीन में, जब भी शासक वंशों का पतन हुआ अथवा किसी अन्य वंश द्वारा उसे पराजित किया गया, तो दावा किया गया कि ईश्वर ने अपना आदेश वापस ले लिया है। कन्फूशियसवाद द्वारा स्वीकृत, विद्रोह किये जाने की चीन में आदिकाल से ही परंपरा रही है।

1.6 पूर्वी एशिया में राजनैतिक परंपरा

यदि हम साधारण तरीके से ही पूर्वी एशिया की राजनैतिक संस्थाओं का अध्ययन करें, तो पूर्वी एशिया को पूरी तरह समझ पाना संभव नहीं है। यहां हमें देखना होगा कि चीन, जापान तथा कोरिया के बीच समानताएं तथा भिन्नताएं क्या हैं। पूर्वी एशिया के अध्ययन में एक कठिनाई तो चीन की बोधगम्य व्यापकता और उसके फलस्वरूप पूर्वी एशियाई सभ्यता के भीतर चीनी पैटर्न के महत्वपूर्ण रूपान्तरों का अभाव है। पूर्व की तरफ से चीनी सभ्यता को न तो जलवायु संबन्धी रुकावटों का सामना करना पड़ा और न ही सांस्कृतिक रुकावटों का। कोरिया व जापान कृषिप्रधान सभ्यता के लिये उपयुक्त थे, और खासतौर पर चावल की सघन खेती के लिये। इन क्षेत्रों के प्राचीन बाशिन्दे भाषाई एवं सांस्कृतिक रूप से आरंभिक चीनीयों से काफी भिन्नता रखते थे, किन्तु वे किसी अन्य उच्चतर सभ्यता से अछूते ही बने रहे। भारत से बौद्धधर्म को छोड़कर दक्षिण एवं पश्चिम एशिया के अन्य तत्व चीन के माध्यम से ही प्रसारित होते रहे। इसके परिणामस्वरूप वे पूरी तरह से पूर्वी एशियाई सभ्यता में घुलमिल गये और

तक कोरिया की उच्चतर संस्कृतियां चीन की संस्कृति से इतनी अधिक मिलती जुलती बनी रही कि अनेक मामलों में वे करीब-करीब उसके समान ही प्रतीत होती थीं।

जापान पर चीन का भारी सांस्कृतिक कर्ज तथा अपने महान पड़ोसी के साथ कोरिया की और अधिक एकरूपता पर शायद ही जरूरत से ज्यादा जोर दिया गया हो। किन्तु इस बात का कभी कोई गंभीर खतरा नहीं रहा है कि कोरिया अथवा जापान को चीनी राजनैतिक इकाई में पूरी तरह से विलुप्त कर लिया जायेगा, जैसाकि यांगजी घाटी तथा दक्षिण चीन के मामले में हुआ था। अनेक कारणों से, वे हमेशा स्पष्टतः अलग बने रहे।

अन्य सभ्यताओं के लोगों की तुलना में, चीनी, जापानी तथा कोरियाई लोग स्वभाव से निश्चित तौर पर पूर्व एशियाई हैं। फिर भी उन्होंने परस्पर भिन्नताओं वाले राष्ट्रीय व्यक्तित्व विकसित कर लिये हैं, जिससे शायद उनकी राजनैतिक संस्कृतियों के रूपान्तर की व्याख्या होती है। सहज किन्तु जिद्दी चीनियों तथा अधिक तनावपूर्ण ढंग से नियंत्रित जापानियों की तुलना में कोरियाई लोग कुछ हद तक चंचल प्रतीत होते हैं।

आरंभिक कोरियाई कबीलों के सामाजिक एवं राजनैतिक गठन के बारे में अधिक कुछ पता नहीं चल पाया है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश उत्तरी एशियाई लोगों की भाँति, उन पर भी ठाठ बाठ वाले वंशानुगत नेताओं ने शासन किया होगा तथा जापानी लोग आरंभ में मातृसत्तात्मक रहे होंगे।

1.6.1 कोरिया

चौथी शताब्दी ई.पू. के लगभग कोरिया की पूर्व कृषिकीय, कबीलाई संस्कृति चीन के प्रभावों की नई तरंगों से डाँवाडोल हो गई। तीसरी शताब्दी तक पहुंचते-पहुंचते उत्तर पूर्वी चीन के येन प्रान्त ने उत्तर पश्चिम कोरिया पर अपना प्रत्यक्ष राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव डालना शुरू कर दिया। यहीं पर तीसरी शताब्दी ई.पू. में प्रथम वास्तविक राज्य ने आकार ग्रहण किया था। इसे चोसन कहा जाता था। आगे चलकर चीनी प्रभाव और अधिक गहरा हो गया। कोरिया में अेनक चीनी उपनिवेशों का गठन किया गया और चीन के भीतर शासक वंश में अनेक बदलावों के बावजूद वे चार शताब्दियों से भी अधिक समय तक बरकरार रहे। यद्यपि बाद की कोरियाई बादशाहतें इन विदेशी उपनिवेशों की प्रत्यक्ष राजनैतिक वारिस नहीं थीं, किंतु उनकी संस्कृति अधिकतर चीनी सभ्यता के निर्गम संपर्क द्वारा ही प्राप्त की गई थी। यही इस बात की प्रमुख वजह हो सकती है कि कोरियाई लोग चीनी राज्य व्यवस्था से मिलते जुलते एक सुगठित एवं एकीकृत राष्ट्रीय राज्य का निर्माण करने में सफल हो सकते थे।

आरंभिक जापान के साथ कोरिया के निकट सांस्कृतिक संपर्कों के काफी प्रमाण मिले है किन्तु कई शताब्दियों तक जारी रहने वाली चीनी संस्कृति तथा विचारों ने धीरे- धीरे कोरिया के भीतरी क्षेत्रों तक अपनी पैठ कायम कर ली। शायद चीनी प्रभाव के चलते ही, पांचवी शताब्दी ई. में नेतृत्व वंशानुगत हो गया तथा आरंभिक छठी ईसवी में चीन द्वारा स्पष्टतः प्रेरित अनेक सुधार हुए। चीनी नमूने की कानूनी संहिताएं तथा चीनी कलैण्डर प्रणाली भी अपनाई गई। जैसा कि सर्वविदित है, कोरिया में बौद्धधर्म ने भी चीन के रास्ते प्रवेश किया था। 7वीं ईसवी में, चीन के तेंगे सम्राटों ने कोरिया को अपना उपनिवेश बनाने का प्रयास किया किन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। चीनियों द्वारा इसे स्वायत हैसियत वाले करदाता के रूप में स्वीकार करना पड़ा। चीनी राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं से उधार लेने की प्रवृत्ति काफी लम्बे समय तक जारी रही।

1.6.2 जापान

पूर्व आधुनिक जापान काफी लम्बे समय तक एक सामंती राज्य था। जिसकी प्रमुख विशेषताएं वर्ग तथा वंशानुगत क्रम पर बल देती थीं तथा वह प्रान्तों में (शहरों के विपरीत) निजी कृषि संपदाओं अथवा जागीरों के गिर्द केन्द्रित था। प्रत्येक संपदा से जुड़े लोग प्रायः तीन अथवा चार विशिष्ट सामाजिक स्तरों के तहत आते थे जिनका निर्धारण संपदा के साथ उनके कार्यमूलक संबंधों से होता था। सबसे नीचे स्तर पर किसान आते थे जोकि स्वयं भी किराये पर मातहत रखे गये लोगों की विभिन्न उप श्रेणियों में बँटे रहते थे। किसानों के ऊपर संपदाओं के प्रबन्धक थे। प्रबन्धकों के ऊपर भूस्वामी, शक्तिशाली स्थानीय परिवार, दरबार के कुलीन तथा प्रभावशाली धार्मिक संस्थाएं होती थीं। यदि भूस्वामी स्वयं इतना शक्तिशाली नहीं होता था कि वह कर वसूली अधिकारी से अपनी संपदा की रक्षा कर सके, तो उसके ऊपर एक अन्य श्रेणी भी होती थी, और वह थी कानूनी संरक्षकों की।

पारंपरिक जापान की एक उल्लेखनीय विशेषता वहां एक ग्रामीण सैन्य कुलीनतंत्र की उत्पत्ति रही है। जब भी केन्द्रीय सरकार की सत्ता में गिरावट आई स्थानीय नेताओं ने सम्राट परिवार तथा दरबारी कुलीनों के साथ-साथ कुलीनतंत्र के आदेशों की अवहेलना की, और अपने संबद्ध क्षेत्रों पर वास्तविक नियंत्रण कायम कर लिया। ग्यारहवीं शताब्दी के सुदूर अतीत तक में ग्रामीण जापान के नेता स्पष्टतः एक सेनानी कुलीनतंत्र में बदल चुके थे। सेनानी गुटों ने उसके बाद समूचे जापान में उभरना शुरू कर दिया। ज्यों ही एक गुट शक्तिशाली होकर उभरता वह युद्ध के जरिये अन्य गुट के क्षेत्र पर कब्जा करने की कोशिश करने लगता, इस तरह के युद्धों के जरिये सफल योद्धाओं के समूहों ने समूचे देश में सम्मान अर्जित कर लिया तथा अपने समर्थकों को काफी बढ़ा लिया।

एक कबीलाई भावना तथा जबर्दस्त सैन्य परंपरा जापान की राजनैतिक परंपरा रही है।

तेरहवीं शताब्दी में जापान मंगोल आक्रमण से त्रस्त रहा। मंगोल विजेता, कुबलई खान ने मांग की कि जापानियों को उसके साथ एक गौण राज्य के संबंध स्थापित करने चाहिये। हालांकि वे आतंकित थे किन्तु उन्होंने मंगोलों के सामने घुटने टेकने से इन्कार कर दिया। मंगोलों ने दो बार जापान पर कब्जा करने के लिये जल सेना के धावे बोले किन्तु दोनों बार उन्होंने जापानियों को अपनी सुरक्षा करने में सक्षम पाया। आगे चलकर इतिहास में भी, हम जापान को अन्य शक्तियों के हमले का सामना करने में अत्यंत सक्षम देखते हैं। दुर्भाग्य से, उन्नीसवी शताब्दी की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति ने जापान को उपनिवेश कायम करने वाला देश बनने पर विवश कर दिया, जबकि इसने स्वयं एक उपनिवेश बन जाने से सफलतापूर्वक अपना बचाव कर लिया था।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक, जापानी सामंतवाद ने बिखराव के संकेत दर्शाने शुरू कर दिये थे। घरेलू एवं विदेश व्यापार में विस्तार हुआ था, वाणिज्यिक शहरों का उदय हुआ था, पुरानी वर्गीय संरचना का पतन हो गया था क्योंकि सेनानी कुलीनों तथा आम लोगों के बीच भेद धुंधला गया था, और आम लोगों के धार्मिक एवं वाणिज्यिक समूह उभर आये थे। जोकि सामंती स्वामियों की सैन्य शक्ति तथा राजनैतिक सत्ता को चुनौती दे सकते थे। यूरोप के विपरीत जापान में जब सामंतवाद को खतरा पैदा हुआ तो वहां राजनैतिक एवं सामाजिक संस्थाओं को नया स्वरूप प्रदान करने के उग्र प्रयास नहीं हुए। विदेश से आये उत्प्रेरक द्वारा पेश की गई समस्याओं तथा सामंती समाजों में प्रभावी एकता की जरूरत को हल करने के लिए उन्हें आसान समाधान मिल गया। पुरानी सामंती व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के बजाय, उन्होंने उसका नव-निर्माण किया तथा अपने विदेशी वाणिज्यिक विस्तार को जारी रखने की बजाय उन्होंने अधिकांश विदेशी उत्प्रेरकों का सफाया कर दिया। इस तरह, जापान विश्व के अन्य देशों के साथ वाणिज्यिक एवं सैन्य प्रतिस्पर्धा में रत एक आधुनिक राष्ट्रीय राज्य के रूप में विकसित होने के बजाय अपने सामंती विकास के अंतिम चरण में दाखिल हो गया। एक ऐसा चरण जोकि राजनैतिक एकता तथा राष्ट्रीय अलगाव के लक्षणों से संपन्न था। आगामी दो शताब्दियों तक, तथाकथित टोकूगावा काल में जापानी स्थिरता देखी गई किन्तु इसने आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक संस्थाओं के भावी विकास को पूरी तरह अवरुद्ध कर दिया। विदेशियों के भय ने जापान को अलग थलग तथा संगठित कर दिया। उत्तरवर्ती काल में शायद इसी एकता ने उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी ताकतों का उपनिवेश बन जाने से जापान की सुरक्षा की। योरोपीय शक्तियों के सैन्य एवं नौसैनिक कौशल तथा योरोपीय पादरियों की शिक्षाएं निश्चिम रूप से जापान के सामने ऐसा खतरा पेश कर रही थीं जिसका एकजुट होकर मबुकाला करने की आवश्यकता थी। पुर्तगाल के साथ व्यापार तथा उनके द्वारा शुरू किये गये तकनीकी प्रगति के उपायों का शायद जापानी समाज एवं सरकार पर ईसाई धर्म की तुलना में अधिक तात्कालिक प्रभाव पड़ा। व्यापार ने आम आर्थिक प्रगति को उत्प्रेरित किया और, इस तरह से उन आस्थाओं को सघन बनाने में मदद की जोकि पुरानी सामंती व्यवस्था के पतन का रास्ता तैयार कर रही थीं। जापानी लोग योरोपियनों के मशीनी उपकरणों में काफी रुचि रखते थे और स्वयं पुर्तगालियों को उन्होंने दिलचस्प पाया। अपनी तीव्र सैन्य चिन्ताओं के चलते, जापानी लोग उन आग्नेय अस्त्रों तथा युद्ध की तकनीकों में खासतौर पर रुचि रखते थे जिन्हें पुर्तगाली योरोप से अपने साथ लाये थे। दो दशकों के भीतर ही, बन्दूकें जापानी युद्ध का प्रमुख शस्त्र बन गईं। इसका तात्कालिक सैन्य प्रभाव पड़ना लाजमी था। अमीर स्थानीय भूस्वामी (डियाम्यो), जोकि नये हथियार हासिल करने में सक्षम था, अपने गरीब प्रतियोगियों पर और अधिक हावी हो गया। इस तरह से योरोपीय नवीनताओं ने सैन्य तथा राजनैतिक सत्ता के केन्द्रीकरण को तेज करने में सहायता की, जोकि योरोपियनों के आगमन से पैदा खतरे की वजह से पहले ही शुरू हो गया था।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।
ii) अपने उत्तरों का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों के साथ कीजिये।

1) पारंपरिक पूर्वी एशिया में परिवार किसी भी व्यक्ति के समूचे जीवन काल के दौरान महत्वपूर्ण बना रहता था। ऐसा क्यों?

.....

.....

2) कन्फूशियस की प्रणाली के कम से कम दो प्रमुख राजनैतिक लक्षणों का उल्लेख कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 पश्चिम की प्रतिक्रिया

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही कुछ डच तथा स्पेनी औपनिवेशिक ताकतों ने पूर्वी एशिया में भी घुसपैठ कर ली थी, किन्तु अभी भी एक ऐसी स्वतंत्र पूर्व एशियाई सभ्यता मौजूद थी जिसे पश्चिम द्वारा स्वीकार किया जाता था व उसका सम्मान किया जाता था। निश्चित रूप से चीन व जापान इतने शक्तिशाली थे कि वे अपनी शर्तों पर अन्य देशों का सामना कर सकें तथा साथ ही स्वयं अपने विश्व दृष्टिकोण पर कायम रह सकें। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम की औद्योगिक क्रांति ने पश्चिम तथा पूर्वी एशिया के बीच के रिश्तों को रूपान्तरित कर दिया। अपने निजी वाणिज्यिक हितों के लिये, पश्चिमीं शक्तियों ने पूर्वी एशिया की सभ्यता को स्वयं अपनी विश्व व्यावस्था के तहत आने पर मजबूर कर दिया और स्वतंत्र विकास तथा परंपरा के उनके लम्बे काल को समाप्त कर दिया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, पश्चिमी शक्तियों ने समूचे पूर्वी एशियाई क्षेत्र पर अपने प्रभाव का विस्तार कर लिया। कुछ देश सीधे उपनिवेश बन गये जबकि अन्य देशों ने पश्चिमी नमूने के गठन को अपना लिया तथा अपनी स्वतंत्रता को बरकरार रखा। चीन ने, जोकि कन्फूशियन जगत का हृदय स्थल है, सबसे लम्बे समय तक प्रतिरोध किया और सबसे अधिक नुकसान उठाया। पश्चिमी दबाव उस समय पड़ा जबकि अंदरूनी तौर पर गहरा सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संकट उत्पन्न हो गया था। पश्चिमी तार्किकता तथा व्यवहारिकता ने आदिकालीन नैतिक एवं राजनैतिक कन्फूशियस प्रणाली को कमजोर कर दिया किन्तु यह कोई समुचित विकल्प प्रदान कर पाने में विफल रही। एक समय पर प्रभुत्वशाली रहा चीन का साम्राज्य राजनैतिक एवं विचारधारात्मक संघर्ष का युद्ध स्थल बन गया। और फिर चीनी प्रभुता अन्ततः समाप्त हो गई। 1911 में चीनी राजनैतिक सिद्धान्त के प्रभाव ने इसे रेखांकित किया। चीन, कोरिया, इत्यादि में कन्फूशियसवाद का पतन आसपास के क्षेत्र में बौद्धधर्म, इस्लाम, यहूदी धर्म, तथा ईसाई धर्म जैसे संगत धार्मिक विश्वासों के चिरस्थाई बने रहते ही हुआ। पूर्व एशियाई समाजों का अंतर्राष्ट्रीय तथा आर्थिक संबन्धों का उस विश्व प्रणाली में समायोजन, जिसे पश्चिम ने थोप दिया था, साम्राज्यवादी ताकतों के बीच छिड़े संघर्ष के चलते जटिल बन गया, जिसमें इन देशों ने भी भाग लिया। खासतौर पर, जापान ने एक स्वतंत्र भूमिका निभाई और स्वयं एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरा। समूचे पूर्वी एशिया को प्रथम विश्व युद्ध के योरोपीय संघर्ष में घसीट लिया गया।

पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों के बीच गति तथा पश्चिम को दी गई उनकी प्रतिक्रिया की प्रकृति की भारी भिन्नताओं के देखकर अचरज होता है, खासतौर से पिछली शताब्दी के दौरान। बहुस्तरीय बदलावों ने इन सभी देशों में काफी हद तक आधुनिकीकरण किया किन्तु निर्णायक रूप से भिन्न दरों पर तथा गैरतलब भिन्न तरीकों द्वारा। प्रतिक्रिया में ये भिन्नताऐं मुख्यतः पूर्वी एशिया के देशों के परंपरागत समाजों के बीच के अंतरों की वजह से होनी चाहिये थी। जान के फेयरबैक, जोकि एक चीन विद्या विशेषज्ञ

है, ने चीन व जापान को पश्चिम के प्रति प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में उनकी तुलना की है। उसका सार नीचे दिया जा रहा है।

पिछली शताब्दी के दौरान, राजवंशीय पराभव तथा पश्चिमी साम्राज्यवाद दोनों ही ने चीन के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, किन्तु चीन की तुलना जापान से करने पर हम देखते हैं कि ये मुद्दे गौण रहे हैं। जापान ने जोकि इसी काल में समान रूप से राजवंशीय पराभव के दौर से गुजर रहा था, और एकसमान साम्राज्य वाले दबाबों का सामना कर रहा था, बिल्कुल भिन्न तरीके तथा जबर्दस्त साम्राज्य वाले दबावों का सामना कर रहा था, बिल्कुल भिन्न तरीके तथा जबर्दस्त सफलता के साथ प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। चीन तथा जापान की प्रतिक्रियाओं का यह अंतर वंशानुकाल क्रम अथवा विदेशी उत्प्रेरक पर आधारित नहीं है बल्कि बुनियादी संस्थागत एवं सांस्कृतिक भिन्नताओं पर आधारित है।

शायद उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ के समय चीन व जापान के बीच सबसे बड़ा अंतर आन्तरिक उत्पत्तिमूलक बदलाव की दर पर आधारित है। शायद चीन में और भी अनेक परिवर्तन आ रहे थे, जिनकी पहचान संभवतः नहीं हो सकी। फिर भी आन्तरिक बदलाव की दर जापान में कहीं अधिक ऊंची प्रतीत होती है। टोकूगावा तथा रूढ़िवादी बुद्धिजीवियों के तमाम प्रयासों के बावजूद औपचारिक सरकारी ढांचे व सरकारी विचारधारा को छोड़कर लगभग सभी क्षेत्री में तेज बदलाव हो रहे थे। जापान, जोकि पहले ही एक गतिशील समाज था बाहरी प्रभाव के जरिये आसानी से गति की दिशा में जोड़ा जा सकता था, जबकि चीन की विशेषता थी जड़ता, जिस पर पहले काबू पाया जाना था। दूसरे शब्दों में जापान में सरकार तथा समाज का ढाँचा पहले ही गंभीर रूप से कमजोर हो चुका था और इसीलिए ये विदेशी दवाब के सामने प्रायः एक नई इमारत के लिए रास्ता तैयार करते हुए यह तेजी से ढह गया। किन्तु चीन में सामाजिक एवं राजनैतिक ढांचा इतना मजबूती से टिका हुआ था कि उल्लेखनीय संरचनागत संशोधनों के लिये पुराने ढांचे को पर्याप्त रूप से गिराए जाने से पूर्व कई दशकों तक भारी विदेशी प्रहार जारी रखने पड़े। विडंबना यह है कि अंतिम चिंग वंश आधीन चीनी प्रणाली की कमजोरी की बजाय उसकी बुनियादी मजबूती ने ही इसे पश्चिमी चुनौती के सामने बेबस कर दिया।

चीनियों व जापानियों के बीच एक और बड़ा अन्तर उनके परस्पर विरोधी विश्व-दृष्टिकोण रहे हैं। चीनियों की नजर में, चीन एक केन्द्रीय राज्य था (चीनी शब्द चुंग-कुओ का शाब्दिक अर्थ भी यही है) और अन्य राष्ट्र अथवा लोग असभ्य और चीनी साम्राज्य तथा सम्राट के अधीनस्थ थे। विश्व के बारे में चीन के इस दृष्टिकोण ने चीनियों के लिये उस बहु राज्यीय अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को स्वीकार करना कठिन बना दिया जोकि योरोप में उभरी थी। उनके लिये इस बात को स्वीकार करना और भी अधिक कठिन था कि कुछ ऐसी चीजें भी हैं जिन्हें वे योरोप से सीख सकते हैं तथा अपनी स्थितियों के अनुरूप उन्हें रूपान्तरित कर सकते हैं। दूसरी तरफ, जापानियों ने इस जागरूकता के बावजूद कि उनकी उच्च संस्कृति का अधिकांश चीन से लिया गया है, चीन से एक सशक्त राष्ट्रीय विशिष्टता का अनुभव किया। इसीलिये समाज एवं स्वतंत्र राजनैतिक इकाइयों की योरोपीय अवधारणा को वे कहीं अधिक तेजी से आत्मसात कर सके तथा कहीं अधिक स्पष्टता के साथ यह देख सके कि पश्चिम से काफी सीखा जा सकता है।

एक और अंतर आकार तथा केंद्रीयकरण से संबंधित था। विशाल देश, चीन राजनैतिक रूप से इतना अधिक केंद्रीकृत था कि राजधानी में सत्ताधारी लोगों के अलावा कोई भी नवीनता के सार्थक प्रयोग कर ही नहीं सकता था। ये अधिकारी विशाल सरकारी तंत्र को चलाने में इतने अधिक व्यस्त थे और जटिल प्रशासनिक प्रणाली की लाल-फीताशाही के चलते बाहर की दुनिया की हकीकतों से इतने कटे हुए थे कि वे किसी बुनियादी परिवर्तन की बात सोच ही नहीं सकते थे। इसके अलावा चीनी राज्य की विशालता ने विदेशी उत्प्रेरक को शहरों, तटों अथवा अंतर्देशीय जलमार्गों तक सीमित रखा।

हालांकि, जापान भौगोलिक रूप से चीन से काफी छोटा था, किंतु सामंती राजनैतिक संस्थाओं की वजह से उसका सक्षम नेतृत्व, न सिर्फ स्वायत्त इलाकों में व्यापक रूप से फैला हुआ था बल्कि समाज में भिन्नता वाले कार्यों सहित विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच भी कायम था। यदि कोई एक भौगोलिक क्षेत्र अथवा समाज, पश्चिमी दबावों द्वारा पैदा किए गए संकट के विरुद्ध पर्याप्त तौर पर प्रतिक्रिया देने में विफल रहता तो कोई दूसरा इसमें सफल हो जाता। दरअसल, ठीक ऐसा ही हुआ था।

विदेशी दवाब का सफलता के साथ मुकाबला करने में इसकी असफलता के मामले में कोरिया, उन्नीसवीं शताब्दी में, जापान की तुलना में चीन से अधिक मिलता जुलता था। अन्य महत्वपूर्ण कारक कोरिया

की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक अवस्थाओं में देखे जा सकते हैं, जोकि कुछ मिलाकर चीन की अवस्थाओं के समान थी। चीन के विश्व-दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेने के कारण कोरियाई लोगों के लिये पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को समझ पाना अथवा पश्चिम से सीखने की संभावनाओं को स्वीकार कर पाना कठिन हो गया। बहरहाल पश्चिमी चुनौती के विरुद्ध कोरिया की आरंभिक प्रतिक्रियाएं आमतौर पर निष्प्रभावी ही रहीं। उस वृहद आकार के अभाव के चलते, जोकि चीन के पास था, कोरिया को जापानी साम्राज्य द्वारा पूरे तौर पर निगल लिया गया।

फिर भी एक और पहलू से, जापान को चीन व कोरिया की तुलना में एक अन्य महत्वपूर्ण फायदा मिला। जापानी समाज न केवल पहले ही गतिशील था, यह उसी सामान्य दिशा में अग्रसर होता प्रतीत होता था जिसमें पश्चिमी दवाब उसे ढकेल रहा था। संभवतः, चूंकि जापान का सामंती अनुभव योरोप से मिलता-जुलता था, अतः वह पहले से ही उस लम्बे रास्ते का विकास कर रहा था, जोकि योरोप द्वारा अपनाए गए उस रास्ते से अधिक भिन्न नहीं था, जिसे उसने सामंतवाद से उस समाज की दिशा में अग्रसर होते हुए अपनाया था, जिसे आज हम "आधुनिक समाज" कहते हैं। योरोप की तरह, वर्ग-संरचना विघटित हो रही थी, सामंती अर्थ-व्यवस्था भी ठप्प हो रही थी और वह पूंजीवादी व्यवस्था की प्रारंभिक अवस्थाओं के लिये रास्ता तैयार कर रही थी। चीनियों तथा कोरियाई लोगों की तुलना में जापानियों ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के एक प्रमुख लक्षण के रूप में व्यापार की तरफ काफी रुचि दिखाई। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने एक सशक्त राष्ट्रीय चेतना का विकास कर लिया और जब विदेशी चुनौती उपस्थित हुई तो उन्होंने एक इकाई की तरह उसका मुकाबला किया, और राष्ट्रीय संगठन, जोकि योरोप में पहले ही विकसित हो चुक था, की विशेषताओं को आसानी से अपना लिया। जापानी समाज के भीतर की गति निश्चित रूप से उसके उत्तरवर्ती आधुनिकीकरण में सहायक सिद्ध हुई, न कि वह उसमें रोड़ा बनी। इसके विपरीत, चीनी एवं कोरियाई लोग, अपेक्षाकृत पंगुता का शिकार ही बने रहे। निश्चय ही वे उस दिशा से एकदम भिन्न दिशा में अग्रसर हो रहे थे जिसमें पश्चिमी प्रभाव उन्हें ढकेल रहा था।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी: i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये स्थान का प्रयोग कीजिये
ii) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तर के साथ कीजिये।

1) फेयरबैंक के अनुसार, पश्चिम के प्रहार के प्रति चीन व जापान की प्रतिक्रियाएं भिन्न रही, क्यों?

.....

.....

.....

.....

1.8 सारांश

चीन, जापान तथा कोरिया से मिलकर बना क्षेत्र, जोकि पूर्वी एशिया कहलाता है, चीन के आधिपत्य वाली एक पृथक सभ्यता संबंधी हस्ती है। इस क्षेत्र के लोग मंगोलियन प्रजाति के हैं और वे या तो कोई सिनिटिक भाषा बोलते हैं या फिर कोई एल्टाइक भाषा। इन देशों में, व्यक्ति अथवा समुदाय की बजाय परिवार ही प्रमुख सामाजिक इकाई है। ज्ञानी-दार्शनिक कन्फूशियस की विचारधारा पूर्वी एशियाई क्षेत्र में दो हजार वर्षों से भी अधिक समय तक प्रभुत्वशाली विचारधारा रही है। कन्फूशियस के अनुसार सामाजिक सद्भाव केवल एक श्रेणीबद्ध समाज में ही हासिल किया जा सकता है। उसने यह भी कहा कि राजा ईश्वर के आदेश से शासन करता है और जब भी कभी उसका शासन पतनशील हो जाता है, ईश्वर अपना आदेश वापस ले लेता है, ऐसी स्थिति में विद्रोह किया जाना पूर्णतः न्यायसंगत है। उल्लेखनीय समानताओं के बावजूद चीन, जापान तथा कोरिया के राजनैतिक इतिहास काफी भिन्नतापूर्ण रहे हैं। जहां चीन में 1911 तक राजा प्रणाली तथा वंशानुगत शासन जारी रहा, पूर्व आधुनिक जापान को एक सामंती राज्य कहा जा सकता है तथा कोरिया एक कबीलाई संस्कृति से चीन द्वारा प्रभावित तथा कई बार एक उपनिवेश रूपी राज्य के रूप में विकसित हुआ। आधुनिक युग में, पूर्वी एशिया में

पश्चिम के आगमन के साथ ही, तीनों राष्ट्रों ने तीन भिन्न तरीकों से प्रतिक्रिया व्यक्त की। जबकि चीन एक अर्ध-उपनिवेश की हैसियत तक सिकुड़ गया, जापान ने शीघ्र ही खतरे को पहचान लिया और अंदरूनी तौर पर स्वयं को बदलते हुए एक उपनिवेशवादी देश बन गया तथा कोरिया जापानी साम्राज्य में विलीन हो गया। चीन की हठधर्मी तथा स्थायित्व, जापान का लचीलापन तथा अस्थिरता तथा कोरिया की दुर्बलता के चलते ही भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त हुए।

1.9 शब्दावली

मूलवासी पितृसतात्मकः मौलिक वाशिन्दे

पितृसतात्मकः पिता/पुरुष प्रधान समाज अच्छाई एवं ईमानदारी

चीन विद्या विशेषज्ञः चीनी मामलों का विशेषज्ञ

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1) एडविन ओ रीश्चानर एवं जीन के. फेयरबैंक, 1960 *पूर्वी एशियाः महान परंपरा* (बोस्टनः हंगटन मिफलिन)

2) जॉन के फेयरबैंक, एडविन ओर रीश्चानर तथा अलबर्ट एच. ग्रेग ईस्ट एशिया द मॉडर्न टॉंसफारमेशन *(बोस्टनः हंगटन मिफलिन, 1965)*

1.11 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सबसे पुराने मानव, पीकिंग मानव के अवशेष, जोकि उत्तरी चीन के इलाके में (बीजिग के पास) लगभग 400,000 ई.पू. निवास करता था, 1927 में खोजे गए। चूंकि पीकिंग मानव के अनेक लक्षण मंगोलियन मांनव के है, मंगोलियन प्रजाति की उत्पत्ति की खोज उत्तरी चीन के उस क्षेत्र में कर ली गई जहां पीकिंग मानव पाया गया था।

2) मंडारिन चीनी भाषा

बोध प्रश्न 2

1) प्रत्येक व्यक्ति के लिये परिवार गुजर बसर, सुरक्षा, शिक्षा एवं मनोरंजन का मुख्य स्रोत था। यह राजनैतिक संगठन का आधार भी था।

2) नैतिकता समाज की आधारशिला थी। किसी शासक से एक गुणवान व्यक्ति होने की आशा की जाती थी क्योंकि उसकी नैतिकता ही प्राधिकार का स्रोत थी। विद्रोह करने का अधिकार एक अन्य राजनैतिक विशेषता थी। प्रजा को उस शासक के लिखाफ विद्रोह करने का अधिकार हासिल था जोकि नैतिकता को बुलन्द रखने के रास्ते से भटक जाय।

बोध प्रश्न 3

1) जापानी समान उसी समान्य दिशा की ओर अग्रसर हुआ जिसमें पश्चिमी दबाव उसे ढकेल रहा था, इसके विपरीत चीन, अपनी हठधर्मी तथा शक्ति की वजह से विपरीत दिशा का सामना कर रहा था।

इकाई 2 दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र की प्रस्तावना

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 दक्षिण-पूर्व एशिया के देश

- 2.2.1 म्यांमार
- 2.2.2 थाईलैंड
- 2.2.3 मलेशिया
- 2.2.4 सिंगापुर
- 2.2.5 इंडोनेशिया
- 2.2.6 ब्रूनी
- 2.2.7 फिलीपीन्स
- 2.2.8 वियतनाम
- 2.2.9 लाओस
- 2.2.10 कंबोडिया

2.3 सारांश

2.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

यह इकाई दक्षिण पूर्वी एशियाई क्षेत्र की सामान्य जानकारी देने के उद्देश्य से तैयार की गई है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- दक्षिण पूर्वी एशिया के मुख्य भूमि एवं टापू राज्यों को पहचानने में;
- दक्षिण पूर्वी एशिया के राज्यों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करने में; में सक्षम हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

दक्षिण पूर्वी एशियाई क्षेत्र में मुख्य भूमि एवं टापू दोनों प्रकार के देश हैं—म्यांमार, थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, इन्डोनेशिया, ब्रूनी, फिलीपीन्स, वियतनाम, लाओस एवं कंबोडिया। ये भारतीय एवं चीनी संस्कृति और सभ्यता से विभिन्न प्रकार से प्रभावित हैं। हालांकि वियतनाम के क्षेत्र चीनी संस्कृति एवं सभ्यता से प्रमुख रूप से प्रभावित है परंतु भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का भी प्रभाव चीन के बराबर है। फिर भी, अठारवीं सदी से पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों ने चीन एवं भारत दोनों को उखाड़ फेंका और सारे क्षेत्र को अपने नियंत्रण में लिया। दूसरे महायुद्ध के काल में यह क्षेत्र जापानियों के सैनिक शासन के आधीन आ गया और इस क्षेत्र में राष्ट्रीयता की पद्धति को बल मिला। युद्ध काल के बाद यह क्षेत्र अमेरिका एवं सोवियत संघ के बीच प्रतिद्वंद्विता के शीत युद्ध का प्रमुख स्थल बन गया। इससे क्षेत्र की शांति एवं स्थिरता भंग हो गई। आठवें दशक के अंत में शीत युद्ध के समापन से राजनीतिक पर्यावरण में नरमी आ गई है और ऐसे हालात बन गये हैं जिनमें दक्षिण पूर्व एशिया के व्यक्तियों का आगे विकास संभव हो सके। दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र के राज्यों की व्यवस्थाओं एवं पद्धतियों का अध्ययन करने के पूर्व हम इस क्षेत्र के देशों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लें।

2.2 दक्षिण पूर्व एशिया के देश

"दक्षिण पूर्व एशिया" शब्द का सबसे पहले उपयोग दूसरे महायुद्ध के काल में किया गया था जब एशिया के दक्षिण पूर्वी भाग को जापान के नियंत्रण से छुटकारा दिलवाने हेतु मित्र राष्ट्रों ने "दक्षिण

पूर्व एशिया कमान" का गठन किया था। उस समय से चीन के दक्षिण एवं भारत के पूर्व में पड़ने वाले सभी राज्यों को दक्षिण पूर्वी एशियाई राज्यों के नाम से जाना जाता है।

यदि हम एशिया के नक्शे को गौर से देखे तो पायेंगे कि इस बड़े महाद्वीप के दक्षिण पूर्व में हिन्द महासागर से प्रशांत महासागर तक एक बहुत बड़ा क्षेत्र फैला हुआ है। यह सारा क्षेत्र दक्षिण पूर्व एशिया के नाम से जाना जाता है। इसमें दस देश हैं—म्यानमार (बर्मा), थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, ब्रूनी, फिलीपीन्स, वियतनाम, लाओस एवं कंबोडिया।

भौगोलिक रूप से इन राज्यों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— मुख्य भूमि के राज्य एवं टापू अथवा द्वीप राज्य। जो राज्य एशिया की मुख्य भूमि के भाग है उनको मुख्य भूमि के राज्य कहा जा सकता है, जैसे म्यानमार, थाईलैंड, वियतनाम, लाओस, कंबोडिया एवं मलेशिया। और जो राज्य हिन्द महासागर एवं प्रशांत महासागर में फैले हुए हैं उन्हें टापू देश कहते हैं। ये हैं—सिंगापुर, इंडोनेशिया, ब्रूनी एवं फिलीपीन्स। दक्षिण पूर्वी एशियाई क्षेत्र का स्पष्ट विवरण प्राप्त करने हेतु हमें इन राज्यों का एक एक करके अध्ययन करना चाहिए।

2.2.1 म्यानमार

म्यानमार (पहले बर्मा के नाम से विख्यात) उत्तर में भारत एवं चीन से पश्चिम में बंगलादेश एवं पूर्व में थाईलैंड से घिरा हुआ है। इसका क्षेत्रफल 671000 वर्ग मील है। म्यानमार की जनसंख्या करीब चार करोड़ है। इनमें से 68 प्रतिशत बर्मी एवं भारतीय हैं। 85 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति बौद्ध मत के मानने वाले हैं। कहा जाता है कि म्यानमार मंदिरों एवं स्तूपों की भूमि है।

म्यानमार में बौद्ध मत की लहरें भारत से आईं और इसने वहां की पूर्व वैष्णवी एवं शैव संस्कृतियों का स्थान ग्रहण कर लिया। संवत 1044 तक का राजा अनुरूद्ध क काल देश के इतिहास में सुनहरे युग के रूप में जाना जाता है। उन्नीसवीं सदी में तीन लगातार हमलों के पश्चात ब्रिटेन मे बर्मा पर कब्जा कर लिया। ब्रिटिशों ने बेरहमी से देश का शोषण किया। दूसरे महायुद्ध के काल में यह देश जापान के कब्जे में आ गया। आंग सेन के नेतृत्व में चलाया गया राष्ट्रीय आंदोलन सफल हुआ और अंत में बर्मा को सन् 1948 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

म्यानमार की राजधानी रंगून है। मान्डले यहां का दूसरा महत्वपूर्ण शहर है। यह वह शहर था जहां लोकमान्य तिलक और सुभाष चन्द्र बोस को ब्रिटिशों द्वारा बंदी बनाकर रखा गया था।

स्वतंत्रता के पश्चात म्यानमार ने उनू के नेतृत्व में समाजवाद एवं गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाया। उस सरकार का सन 1962 में तख्ता पलट गया। तब से यह देश सैनिक शासन के नियंत्रण में है।

म्यांमार की अर्थव्यवस्था चावल एवं टीक की लकड़ी के निर्यात पर आधारित है। यहां पर तेल, गन्ना, कच्ची धातु एवं कीमती पत्थरों का भी उत्पादन होता है।

म्यानमार आज कल राजनैतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक खुशहाली के लिए कड़ा संघर्ष कर रहा है।

2.2.2 थाईलैंड

दक्षिण पूर्व एशिया में थाईलैंड अकेला देश है जो पश्चिमी साम्राज्यवादी बंधन में नहीं आया। जब एशिया के सारे अन्य देश किसी न किसी यूरोपीय सत्ता द्वारा रौंदे जा रहे थे तब इसने सफलतापूर्वक अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखा।

थाईलैंड म्यानमार एवं लाओस के दक्षिण में स्थित है। इसकी पूर्वी सीमाएं कंबोडिया की सीमाओं से मिलती हैं। इसके दक्षिण में मलेशिया स्थित है। थाईलैंड का क्षेत्रफल 17000 वर्ग कि.मी. है। इसकी जनसंख्या पचास लाख से अधिक है। जातीयता के हिसाब से करीब 75 फीसदी जनसंख्या थाई व 14 फीसदी चीनी है। इसके अलावा उत्तर में एवं दक्षिण में माले में स्थानीय आदिवासी रहते हैं। उसके अलावा काफी संख्या में लाओस एवं कंबोडिया से आए हुए शरणार्थी हैं।

थाईलैंड बौद्ध मत मानने वालों का देश है। कुछ थोड़े से अल्पसंख्यकों में मुसलमान एवं ईसाई हैं।

थाईलैंड पर अनेक देशों व संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा है परंतु भारत का प्रभाव बहुत गहरा है। शुरू में हिंदु विचारधारा एवं रहन-सहन के तरीके ने एवं बाद में बौद्ध धर्म एवं उसके आदर्शों ने थाई संस्कृति एवं लोकाचारों की रचना की। फिर भी थाईलैंड जाने पर भगवा चोंगे एवं बुद्ध की मूर्तियां आम तौर से देखने को मिलती हैं। थाईलैंड का पहले का नाम सिआम था। इसकी राजधानी अयुथाया थी, जिसका नाम रामायण से लिया गया था। चक्री राजवंश में इसके सब राजाओं के नाम राम हुआ करते थे। उन्नीसवीं सदी में राजा मोंगकुट को राम-4 के नाम से जाना जाता था एवं चुला लोंग कोम को राम-5 के नाम से जाना जाता था। इस राम राजवंश ने चतुराई से एक यूरोपीय सत्ता को दूसरे से भिड़ाकर अपनी स्वतंत्रा को बनाये रखा जबकि दक्षिण पूर्व एशिया का शेष भाग फ्रांसीसियों, डचों एवं ब्रिटिशों के नियंत्रण में था।

सन् 1932 में हुए राजनैतिक सत्ता परिवर्त ने राजतांत्रिक पद्धति को बदल कर संवैधानिक राजतंत्र स्थापित कर दिया और सिआम का नाम परिवर्तित करके थाईलैंड रख दिया गया। तब से थाईलैंड में सीमित राजतंत्र के साथ एक लोकतंत्रीय सरकार चली आ रही है। फिर भी राजनीतिक प्रणाली में सेना की प्रमुख भूमिका रहती है। थाई की राजनैतिक पद्धति में दूसरी प्रमुख भूमिका बौद्ध मठों की है।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात थाईलैंड केवल नाम के लिए गुटनिरपेक्ष बना रहा जबकि प्रत्यक्ष रूप में इसका झुकाव अमरीका के प्रति हो गया। यह आसियान गुट का सक्रिय सदस्य था।

अन्य दक्षिण पूर्वी एशियायी राज्यों की भांति थाईलैंड भी एक खेतिहर देश है। चावल, मक्का एवं गन्ना यहां की प्रमुख फसलें हैं। इसके अलावा टीन, रबर, प्राकृतिक गैस एवं मछलियां यहां से निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं हैं। थाईलैंड को नया औद्योगिक देश (एन आई सी) भी माना जाता है। बुने हुए वस्त्रों, विशेष रूप से तैयार किये गये खाद्यान्नों एवं लकड़ी के उद्योगों की जड़ें यहां मजबूती से जम चुकी हैं।

थाईलैंड की राजधानी बैंकाक, दक्षिण पूर्वी एशिया का सबसे बड़ा आकर्षक पर्यटक स्थल है।

2.2.3 मलेशिया

थाईलैंड के दक्षिणी किनारे पर मलेशिया स्थित है। यह उत्तरी बोर्नियों के सखाक एवं सबाह तक भी फैला हुआ है। दरअल सन 1963 में मलाया, सखाक, साबाह एवं सिंगापुर ने मिलकर एक राज्य संघ—मलेशिया की स्थापना की। दो वर्ष पश्चात सिंगापुर इससे अलग हो गया। इस समय मलेशिया तेरह राज्यों का राज्य संघ है। इसका क्षेत्रफल करीब 330000 वर्ग कि.मी. है।

मलेशिया की जनसंख्या एक करोड़ साठ लाख से अधिक है। जनसंख्या का साठ फीसदी भाग माले एवं कुछ अन्य स्वदेशी जातीय वर्गों का है और बत्तीस फीसदी चीनी है। भारतीय कुल जनसंख्या के नौ फीसदी हैं। मलेशिया में मुसलमान बहुसंख्यक है इसलिए यह एक मुसलिम राज्य है। हालांकि यह एक उदारवादी राज्य है परंतु यहां प्रतिदिन कट्टरपंथियों का जोर बढ़ता जा रहा है। मुसलमानों एवं हिंदुओं के अलावा यहां ईसाइयों, बौद्धों, चीनी दार्शनिकों एवं ताओवादियो के भी धर्म प्रचलित हैं।

मलेशिया का प्राचीन इतिहास भारतीय धर्मों एवं सांस्कृतिक प्रभावों का इतिहास है। भारतीय एवं थाईलैंड से हिंदू एवं बौद्ध धर्म की राजनैतिक एवं धार्मिक लहरें आईं और माले महाद्वीप पर छा गईं। उसके बाद इस्लाम आया। पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में वहां इस्लामी राज्य की स्थापना हुई।

सन 1522 में पुर्तगाल ने मलाया पर कब्जा कर लिया परंतु वे ज्यादा देर नहीं ठहर सके। सन् 1541 में उन्हें डचों ने परास्त कर दिया। अंततः सन 1785 में यह ब्रिटेन के नियंत्रण में आ गया। डेढ़ सदी से भी अधिक समय तक मलाया एक ब्रिटिश उपनिवेश बना रहा। सन 1957 में इसे स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

मलेशिया दक्षिण पूर्व एशिया के उन थोड़े से राज्यों में से एक है जहां लोकतांत्रिक स्वरूप की सरकार है। मलेशिया ने गुटनिरपेक्षता की नीति का अनुसरण किया है।

मलेशिया की अर्थव्यवस्था खेती एवं जंगलों पर आधारित है। चावल, नारियल एवं काली के उत्पादन के अलावा मलेशिया में रबर, लकड़ी एवं नारियल के तेल का उत्पादन भी बहुतायत से होता है। धीरे-धीरे यह औद्योगीकरण के क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है। बुनाई के कपड़ों के उद्योग, बिजली के सामानों

का उत्पादन, रबर का उत्पादन, मोटर गाड़ियों के पुर्जों के कारखाने इत्यादि प्रौद्योगिक क्षेत्रों में विषेश महत्व रखते हैं। पेट्रोल एवं प्राकृतिक गैस के निर्यात ने मलेशिया की अर्थव्यवस्था को काफी मजबूती प्रदान की है।

मलेशिया की राजधानी क्वालालम्पुर, दक्षिण पूर्व एशिया की सबसे अधिक आधुनिकीकृत राजधानियों में से एक है।

2.2.4 सिंगापुर

पहले के समय में सिंगापुर का नाम सिंह पुर था, एक शेरों का शहर। यह एक छोटा सा टापू है। यह एक द्वीप शहर है जिसका क्षेत्रफल करीब 616 वर्ग कि.मी. है। मलेशियन प्रायद्वीप के कोने में स्थिति सिंगापुर दक्षिण पूर्व एशिया का सबसे बड़ा व्यापारिक एवं पर्यटक केन्द्र है।

सिंगापुर की जनसंख्या करीब तीस लाख है जिसमें चीनी, माले एवं भारतीय प्रमुख रूप से हैं। वैसे विश्व के सभी भागों के व्यक्ति यहां देखे जा सकते हैं।

बौद्ध, मुसलमान, इसाई—सब धर्मों को मानने वाले व्यक्ति सिंगापुर में एक दूसरे से मिलते हैं। इस शहर में विविधता में एकता का सबसे बड़ा दृष्टांत देखने को मिलता है।

सिंगापुर एक ब्रिटिश उपनिवेश था। दूसरे महायुद्ध के दौरान यह जापानियों के कब्जे में आ गया। सन 1965 में इसे स्वतंत्रता प्राप्त हुई। उस समय से सिंगापुर एक लोकतांत्रिक प्रणाली की सरकार द्वारा शासित है।

व्यापार एवं पर्यटन में समृद्ध होने के अलावा सिंगापुर विश्व के सबसे साफ शहरों में से एक है और हल्के उद्योगों में काफी मजबूत है। कहा जाता है कि सिंगापुर एशिया के चार तेजी से उभरते हुए चीतों में से एक है, अन्य तीन है हांग कांग, एवं दक्षिणी कोरिया।

2.2.5 इन्डोनेशिया

इंडोनेशिया एक द्वीप समूह है। यह करीब 13700 द्वीपों का संगठन है जो करीब 1475000 वर्ग कि.मी. में फैले हुए हैं। इन द्वीपों में से छः बड़े एवं प्रमुख हैं—जावा, सुमात्रा, बोर्नीओ, बाली, काली मन्टन एवं पश्चिमी इरियान। जनसंख्या का आधे से अधिक भाग अकेले जावा में रहता है।

इंडोनेशिया विश्व का सबसे बड़ा मुस्लिम देश है। यहां की जनसंख्या सत्रह करोड़ से ऊपर है। जनसंख्या के 90 फीसदी से अधिक मुसलमान हैं। बाली हिन्दुओं का द्वीप है। तिमोर एवं फ्लोरेंस में ईसाई बसे हैं। जातीयता के आधार पर इंडोनेशिया के लोग विभिन्न वर्गों से संबद्ध हैं। वे जावानी, सुमात्रा वाले, सूजनी, सटक, बाली निवासी, चीनी एवं भारतीय हैं।

इंडोनेशिया में धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों की अनेक लहरे आईं। सबसे पहले भारत से हिन्दुत्व आया। हिन्दू देवी देवताओं के मंदिरों का निर्माण किया गया। इंडोनेशिया के लोक गीतों एवं नृत्यों और यहां तक कि नित्य प्रति के धार्मिक कृत्यों में रामायण एवं महाभारत का अनुकरण किया जाने लगा था।

बाली में इन सब को अब भी देखा जा सकता है। इसके बाद बौद्ध धर्म आया। बड़े बड़े बौद्ध मंदिरों का निर्माण किया गया और बौद्ध मठों की स्थापना की गई। बोरोबुदुर का मंदिर, एलोरा की याद दिलाता है, जहां बुद्ध एवं अन्य हिन्दु देवताओं की विशालकाय प्रतिमाएं आज भी इंडोनेशिया की सांस्कृतिक विरासत की अमर यादगार के रूप में खड़ी हैं। चौथी सदी का श्री विजय साम्राज्य एवं नवीं सदी का शैलेन्द्र साम्राज्य इन्डोनेशिया के इतिहास में सुनहरे अध्यायों के रूप में लिखे गये हैं। उसके बाद इस्लाम आया। पश्चिमी एशिया के व्यापारी इसे एक नये रहस्यवाद के रूप में लाये। यहां के व्यक्तियों ने इसे अपनाना शुरू कर दिया। पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक इंडोनेशिया मुस्लिम देश बन गया परंतु बाली हिन्दू बना रहा। चौदहवीं सदी से सोलहवीं सदी तक मुस्लिम धर्म एवं हिंदू संस्कृति पर आधारित माजापाहित साम्राज्य ने इंडोनेशिया के इतिहास के दूसरे सुनहरे अध्याय का रूप लिया। सन 1511 में पुर्तगाल का नाविक कैप्टेन अलफान्सा डी अल्बू कर्क इन्डोनेशिया पहुंचा। इंडोनेशियनों के साथ गहरे संघर्ष के पश्चात उसने मलाया पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार इंडोनेशिया में साम्राज्यवाद की शुरुआत

की शुरुआत हुई। इसके पूर्व कि पुर्तगाल सारे द्वीप समूहों पर कब्जा कर पाता योरोप में पुर्तगाल एवं हौलेन्ड के बीच युद्ध शुरू हो गया। सन 1602 में हौलेंड ने पुर्तगालियों को परास्त कर दिया और इंडोनेशिया के सारे द्वीप समूहों पर कब्जा कर लिया।

बीसवीं सदी में एशिया में राष्ट्रीयता का अरुणोदय हुआ। इंडोनेशिया में सुकार्ते एवं हट्टा ने राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किया। दूसरे महायुद्ध के काल में डच परास्त हो गये थे और जापान ने सारे इंडोनेशिया पर कब्जा कर लिया था। फिर भी युद्ध ने जापान के घुटने तोड़ दिये और डचों ने अपने खोये हुए साम्राज्य को फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इंडोनेशिया ने इसका कड़ा प्रतिरोध किया और सन् 1946 में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। और तब इंडोनेशिया एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न स्वतंत्र राज्य बन गया।

स्वतंत्रता के पश्चात इंडोनेशिया ने लोकतंत्र स्थापित किया जिसका तख्ता पलट दिया गया। सन 1965 से इंडोनेशिया में लोकतंत्र के मार्ग दर्शन के दिखावे में सैनिक सत्ता शासन कर रही है। इसका नेता जनरल सुहार्तो है।

अर्थव्यवस्था के मामले में इंडोनेशिया चावल, रबर, कॉफी, नारियल का तेल, गन्ना इत्यादि में संपन्न है। सीमेंट, बुनाई के कपड़े, उर्वरक, हल्के कल पुर्जों एवं खाद्यानों के संसाधनों के संसाधन इत्यादि के क्षेत्रों में अनेक उद्योग स्थापित हुए हैं। तेल प्राकृतिक गैस, सेव, चाय, कॉफी एवं लकड़ी के निर्यात से अर्थव्यवस्था मजबूत हुई है।

इंडोनेशिया की राजधानी जाकर्ता में बहुत चौड़ी सड़कें है, विशाल भवन हैं और इसके साथ ही गंदी बस्तियाँ हैं। धन वैभव एवं गरीबी साथ-साथ देखे जा सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) नीचे दी हुई जगह में अपने उत्तर दीजिए।
ii) इस इकाई के अंत में दिए हुए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) दक्षिण पूर्व एशिया के आगे दिए हुए राज्यों में से एक मुख्य भूमि का राज्य नहीं है।
(अ) म्यानमार (ब) थाईलैंड
(स) वियतनाम (द) इंडोनेशिया

.....

2) ..... दक्षिण पूर्व एशिया का अकेला ऐसा देश है जो पश्चिमी साम्राज्यवादी बंधन में नहीं आया।

3) निम्नलिखित राज्यों में बौद्ध धर्म प्रधान धर्म है।
(अ) थाईलैंड (ब) इंडोनेशिया (स) बर्मा (द) फिलीपीन्स (य) वियतनाम

.....

2.2.6 ब्रूनी

ब्रूनी, बड़े बोरनीओ द्वीप का एक छोटा सा भाग है। यह एक छोटा सा देश है जिसकी जनसंख्या केवल बाईस लाख है। परन्तु यह सारे क्षेत्र का सबसे अधिक सम्पन्न देश है।

ब्रुनी सुनिर्धारित रूप से एक इस्लामी देश है। हालांकि यहां ईसाई एवं भारतीय भी हैं परन्तु जातीयता के हिसाब से प्रमुख जनसंख्या माले लोगों की है। दो शताब्दियों तक ब्रूनी एक ब्रिटिश उपनिवेश बना रहा। सन 1984 में ब्रूनी को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

ब्रूनी एक राजतंत्र/रियासत है। यहां का सुल्तान विश्व का सबसे अधिक सम्पन्न व्यक्ति है। राजस्व का सबसे बड़ा साधन तेल का निर्यात है। यहां किसी प्रकार का आयकर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को निवृत्ति वेतन प्राप्त होता है। विशाल भवनों, चौड़ी सड़कों एवं चकाचौंध करने वाली रोशनी वाला ब्रूनी दक्षिण पूर्व एशिया का प्रति व्यक्ति के हिसाब से सबसे अधिक आय वाला देश है।

2.2.7 फिलीपाइन्स

इन्डोनेशिया की भाँति फिलीपाइन्स भी एक द्वीप समूह है जिसमें सात हजार से भी अधिक द्वीप सम्मिलित हैं। एक द्वीपों का वर्ग इन्डोनेशिया के उत्तरी भाग में दक्षिणी प्रशान्त महासागर में स्थित है। इसका क्षेत्रफल करीब 299000 वर्ग कि.मी. है।

फिलीपीन्स की जनसंख्या छः करोड़ से अधिक है। जातीयता के अनुसार अधिकांश व्यक्ति माले हैं, परन्तु वे ईसाई धर्म को मानने वाले हैं। यहां चीनी वंश परंपरा के व्यक्ति भी हैं। सुलावेसी के दक्षिणी द्वीप में, अधिकांश मुसलमान हैं। और कभी कभी वे अलगाव एवं स्वतंत्रता का आह्वान करते रहते है।

सन 1529 में स्पेन के नाविक केप्टेन फरनोन्डो मनानेल ने फिलीपीन्स की 'खोज' की और उस पर कब्जा कर लिया। उस समय से तीन सदियों से भी अधिक काल तक फिलीपीन्स स्पेन के अमानुषिक नियंत्रण में बना रहा। स्पेनियों ने बेरहमी से प्रत्येक मूर्तिपूजक प्रथा का उन्मूलन करके सब व्यक्तियों को ईसाई बना दिया। स्पेन के राजा फिलिप-द्वितीय के नाम पर रक्खा गया फिलीपीन्स बीसवीं सदी की शुरुआत में अमरीका के नियंत्रण में आ गया। स्पेन ने उपनिवेश को पहले से ही ईसाई धर्म में परिवर्तित कर दिया था। जो कुछ रह गया था उसकी पूर्ति अमरीकनों ने कर दी। मनीला पर कब्जा करने के पश्चात अमरीका के नाविक एडमिरल दवे ने राष्ट्रपति को सूचना भेजी "फिलीपीन्स पर कब्जा कर लिया है, यहां के व्यक्तियों के साथ क्या व्यवहार किया जाय?" राष्ट्रपति मैकिनले ने उत्तर दिया "उनको ईसाई बना दो"

अमरीकी उपनिवेश के काल का समापन द्वितीय महायुद्ध के पश्चात हुआ। सन 1946 में फिलीपाइन्स को स्वतंत्रता प्रदान की गई। स्वतंत्रता के पश्चात फिलीपान्स ने राष्ट्रपति प्रणाली के लोकतंत्र को अपनाया।

फिलीपीन्स गन्ना, चावल, नारियल, मक्का, अनन्नास एवं केला में काफी संपन्न है। यहां लकड़ी, तांबा, निकिल, लोहा, कोबाल्ट, चांदी, सोना, एवं पेट्रोल जैसे प्राकृतिक साधनों के अपार भंडार हैं। इसने बुनाई के कपड़े, दवाओं के उद्योगों, रसायनों, लकड़ी के उत्पादन, खाद्यान्नों के संसाधन एवं बिजली के सामान बनाने इत्यादि क्षेत्रों में काफी उन्नति की है।

यहां की राजधानी मनीला शहर में अनेक आधुनिक रूप के जलपान गृह, लोक संगीत के क्लब एवं मदिरालय हैं।

2.2.8 वियतनाम

तीन देश मिलकर पहले इन्डोचीन कहलाते थे। ये हैं—वियतनाम, लाओस एवं कम्बोडिया। इनमें से वियतनाम का आधुनिक इतिहास में एक विशेष स्थान है क्योंकि इसने अमरीकी उपनिवेशवाद से वीरोचित मुकाबिला किया था।

चीन की दक्षिणी सीमा रेखा के ठीक सामने स्थित वियतनाम का क्षेत्रफल 328566 वर्ग कि.मी. है। इसकी जनसंख्या छः करोड़, अस्सी लाख से भी अधिक है। जनसंख्या के 85 प्रतिशत व्यक्ति वियतनामी है। चीनी, गुओंग, थाई, मियो, कुमेर, माऊ एवं आम, अल्प संख्यकों के जातीय वर्गों में आते है। हालांकि वियतनाम में ईसाई एवं मुसलमान भी हैं परन्तु अधिकांश व्यक्ति बौद्ध धर्म को मानते हैं।

वियतनाम का इतिहास दूसरी सहस्राब्दि ई.पू. से शुरू होता है जब आज के हनोई के नजदीक रैडरिवर क्षेत्र में सभ्यता का विकास हुआ। समय-समय पर चीनियों द्वारा हमले एवं कब्जा होते रहे। वियतनाम के व्यक्तियों ने इन हमलों का मुकाबिला किया, फिर भी वियतनाम एक हजार वर्ष से भी अधिक समय तक चीनियों के प्रभावपूर्ण नियंत्रण में रहा। वियतनाम पर चीनी संस्कृति का काफी हद तक प्रभाव पड़ा परन्तु वियतनामी लोग अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता एवं सांस्कृतिक पहचान बनाये रखना चाहते थे। उन्नीसवीं सदी में यहाँ फ्रांसीसी व्यापारी एवं धर्म प्रचारक आये। और उन्नीसवीं सदी के बाद के भाग में सारा वियतनाम एक फ्रान्सीसी उपनिवेश बन गया। बीसवीं सदी में हो ची मिन के प्रेरणात्मक नेतृत्व में एक राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू हुआ। दूसरे महायुद्ध के काल में फ्रान्सीसी परास्त हो गये और वियतनाम पर जापान का कब्जा हो गया। जापान के परास्त हो जाने के पश्चात फ्रान्स ने वियतनाम पर पुनः कब्जा करने का प्रयत्न किया। हो चीमिन एवं चू तेह के नेतृत्व में वियतनाम के लोगों ने फ्रान्स के विरूद्ध एक निर्णायात्मक छापा मार युद्ध किया। सन 1954 मे जेनेवा समझौते के आधार पर झगड़ा समाप्त

हुआ और वियतनाम को दो प्रदेशों में विभाजित कर दिया गया—उत्तरी एवं दक्षिणी। उत्तरी वियतनाम स्वतंत्र हो गया व कम्यूनिस्ट बन गया और दक्षिणी वियतनाम अमरीका का मित्र बन गया। दक्षिण में भी वियतनामी व्यक्तियों ने हार नहीं मानी और अमरीका के विरूद्ध घमासान लड़ाई चलती रही। अन्त में अमरीका ने स्वयं को वहां से हटाने का निश्चय किया और वियतनाम फिर से मिल कर एक हो गया। वियतनाम पचास वर्ष से भी अधिक समय तक फ्रांस, जापान एवं अमरीका के विरुद्ध युद्ध करता रहा था। युद्धों ने इसकी अर्थव्यवस्था को तहस नहस कर दिया था। सन 1973 के पश्चात वियतनाम में फिर से क्षतिपूर्ति एवं पुनः निर्माण के कार्यों का प्रारंम्भ हुआ। एक विराट प्रकार्य अभी भी करने को पड़ा है। दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों के समान वियतनाम भी मूलरूप से खेतिहर देश है जिसकी प्रमुख फसलें चावल मक्का, गन्ना, एवं कॉफी हैं। बुनाई के कपड़े, बिजली के सामान, सीमेंट, खाद्यान के संसाधन इत्यादि के नये उद्योग उभर कर आ रहे हैं।

हनोई संपन्न शहर नहीं है परन्तु यह महान वियतनाम राष्ट्र की आलीशान राजधानी है।

2.2.9 लाओस

लाओस चारों तरफ से चीन, वियतनाम, थाईलैन्ड एवं म्यानमार से घिरा हुआ है। इसके पास समुद्र तक जाने का कोई सीधा रास्ता नहीं है। इस देश का क्षेत्रफल करीब 236,000 वर्ग कि.मी. है और जनसंख्या करीब पचास लाख है। यहां के अधिकांश व्यक्ति लाओ एवं आदिवासी हैं। यहां चीनी एवं वियतनामी भी रहते हैं। लाओस मूल रूप से बौद्ध धर्म को मानने वाला देश है।

चूंकि लाओस चारों तरफ से अधिक शक्तिशाली देशों से घिरा हुआ है। इसलिये इस पर उनके द्वारा बार-बार हमले करके कब्जा किया जाता रहा है। चीन वियतनाम एवं थाईलैन्ड सब के सब किसी न किसी समय पर लाओस के मालिक बने रहे हैं। चौदहवी शताब्दी में फानगूम ने वहां एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की और लाओस ने उन्नति की। उन्नीसवी सदी के शुरू में लाओस पर थाईलेन्ड ने अधिकार कर लिया और सन 1893 में यह फान्सीसियों के शासन में आ गया। दूसरे महायुद्ध के काल में लाओस पर जापान का भी कब्जा था, परन्तु युद्ध के पश्चात फ्रान्सीसियों ने इस पर पुनः कब्जा करने का प्रयत्न किया। सन 1954 के जेनेवा समझौते के पश्चात लाओस को स्वतंत्रता प्रदान की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी उन्नति का मार्ग सुगम नहीं था। कम्युनिस्ट एवं गैर-कम्युनिस्ट ताकतों में काफी लम्बे समय तक झगड़ा होता रहा। वियतनाम में कम्यूनिज्म द्वारा निर्णायक रूप से विजय प्राप्त करने के साथ ही लाओस पर भी कम्यूनिस्ट ताकतों की विजय हुई। दिसम्बर,सन 1975 में लाओस की जनता में जनवादी गणतंत्र की घोषणा की गई।

आर्थिक रूप से लाओस सब से कम विकसित देश है। यहां चावल, तम्बाकू, रूई इत्यादि का उत्पादन होता है। यह टीन, सीसा, जस्ते में काफी सम्पन्न है। परन्तु लाओस में अभी औद्योगीकरण बहुत कम हुआ है। इसलिये विशेष रूप से दूरवर्ती क्षेत्रों में काफी गरीबी फैली हुई है।

दक्षिण पूर्व एशिया की अन्य राजधानियों की अपेक्षा यहां की राजधानी वियेन्तइन कम मोहक है।

2.2.10 कम्बोडिया

कम्बोडिया का प्राचीन भारतीय नाम कम्बोज था। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भी जब इस क्षेत्र पर फ्रांन्सीसियों ने कब्जा किया तो वे भी इसे कंम्बोज कहते थे। अंग्रेजी में इसका नाम परिवर्तित होकर कम्बोडिया हो गया। कम्बोडिया एक छोटा देश है और थाईलेन्ड, लाओस एवं वियतनाम से घिरा हुआ है। इसका क्षेत्रफल करीब 189035 वर्ग कि.मी. है। यहाँ की जनसंख्या करीब अस्सी लाख है। यहाँ के अधिकांश व्यक्ति खमेर हैं। यहाँ चीनी एवं थाई भी रहते है। अधिकांश व्यक्ति बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। आज भी कम्बोडिया में भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक रीति रिवाजों का प्रभाव देखा जा सकता है। अंगकोर वाट के विशाल स्मारक प्राचीन काल के भारतीय एवं कम्बोडिया के गौरव की सबसे बड़ी बोलती हुई निशानी है।

खमेर साम्राज्य कम्बोडिया के इतिहास का सुनहरा युग है। बारहवीं एवं तेरहवीं सदियों में यह इन्डोचीन क्षेत्र का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य था। कम्बोडियन साम्राटों को भारतीय विचारधारा एवं संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त हुई और वे भगवान रूप राजाओं की तरह प्रतिष्ठित किये गये। फिर भी यह सुनहरा युग

ज्यादा दिन तक नहीं चल सका । सन 1432 में थाईलैन्ड ने एवं बाद में वियतनाम ने कम्बोडियों को तहस नहस कर दिया था। उन्नीसवीं सदी में फ्रान्सीसी सैनिकों ने कम्बोडिया पर कब्जा कर लिया और राज्य पर शासन करते रहे। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में एक शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलन उभरा परन्तु इसके पूर्व कि यह साम्राज्यवाद का तख्तापलट पाते, दूसरा विश्व युद्ध छिड़ गया और कम्बोडिया पर जापानी सैनिकों ने कब्जा कर लिया। युद्ध के पश्चात फ्रान्सीसियों ने कम्बोडिया पर पुनः कब्जा करने का प्रयत्न किया परन्तु युवराज सिहानुक ने कम्बोडिया की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। बाद में सन 1954 में जेनेवा समझौते द्वारा इस घोषणा की पुष्टि कर दी गई। स्वतंत्रता के पश्चात कम्बोडिया शीत युद्ध एवं गुटबन्दी की राजनीति का शिकार हो गया। जिसके फलस्वरूप काफी दिनों तक गृह युद्ध चलता रहा। जिसमें लाखों व्यक्ति मारे गये और सारी अर्थव्यवस्था तहस नहस हो गई। इसलिए आर्थिक रूप से कम्बोडिया की हालत बहुत खस्ता है। यहां की प्रमुख फसल चावल है। यहां पशुपालन एवं मछली पकड़ने का कार्य भी किया जाता है। यहां लोहा, पीतल, मेग्नीज एवं सोना भी पाया जाता है। यहां के जंगल अभी भी लकड़ी से सम्पन्न हैं। परन्तु राजनैतिक अस्थिरता के कारण औद्योगीकरण के विकास में बाधा पड़ी है।

यहां की राजधानी फनॉम पेन्ह में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं दिखता।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) नीचे दिये हुए स्थान में अपने उत्तर दीजिये।
ii) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1) नीचे दी गई दो स्तंभों में मिलान कीजिये

1) वियतनाम	अ) ब्रिटेन
2) इन्डोनेशिया	ब) स्पेन
3) फिलीप्रीन्स	स) हॉलेन्ड
4) मलेशिया	द) फ्रान्स

2) निम्नलिखित में इस्लाम प्रमुख धर्म है।
अ) इन्डोनेशिया ब) ब्रूनी स) मलेशिया द) थाईलैन्ड

.....

2.3 सारांश

दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र के देशों के ऊपर दिये गये विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सारे क्षेत्र में अनेक प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक समस्यायें एवं राजनैतिक अवरोध हैं। सिंगापुर एवं ब्रूनी को छोड़कर सारे क्षेत्र को आर्थिक रूप में अभी आगे बढ़ना है। मलेशिया थाईलैंड, इन्डोनेशिया एवं फिलीपीन्स सही दिशा में अग्रसर हैं। वियतनाम, लाओस एवं कम्बोडिया को कड़ी मेहनत एवं प्रयास करने की आवश्यकता है।

सारे क्षेत्र में विशाल अंतःशक्तियां हैं। एक संकल्पी नेतृत्व एवं समर्पित जनता द्वारा किसी भी प्रकार का आश्चर्य जनक कार्य सम्भव है।

2.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मन्जूर आलम एस एवं जी.राम रैड्डी (ऐड) (1978), *दक्षिण एवं पूर्व एशिया में सामाजिक विकास,* नई दिल्ली।

बटवैल रिचार्ड (1975) *दक्षिण पूर्व एशिया-एक राजनीतियक प्रस्तुतीकरण,* प्रेगर न्यू योर्क।

सिंह.एल.पी (1978, *सत्ता की राजनीति एवं दक्षिण पूर्व एशिया,* रेडियेन्ड नई दिल्ली।

2.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (द)
2) थाईलैन्ड
3) अ, ब, एवं स

बोध प्रश्न 2

1) 1) (च) 2) (स) , 3) (ब) 4) (अ)
2) अ, ब, एवं स

इकाई 3 दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 उत्प्रवासन के मूल स्थान और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
3.2.1 शुरू के उत्प्रवासन के कारण एवं परिस्थितियां
3.2.2 उत्प्रवासन के सांस्कृतिक आधार
3.3 आधुनिक काल में भारतीयों का उत्प्रवासन
3.3.1 भारतीय जनसंख्या का संगठन एवं व्यावसायिक स्वरूप
3.4 दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय : वर्तमान स्थिति
3.4.1 बर्मा
3.4.2 मलेशिया
3.4.3 सिंगापुर
3.4.4 फिलीपीन्स
3.4.5 इन्डोनेशिया
3.4.6 थाईलैण्ड
3.4.7 इन्डो-चीन के राज्य
3.5 सारांश
3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत कराना है, जिसके तहत भारतीय मूल के लोगों ने दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र में उत्प्रवासन किया। भारतीय व्यावसायिक संगठनों एवं भारतीय अप्रवासियों के भौगोलिक विस्तार और उनकी समस्यायों की भी चर्चा इसमें की गई है।

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आपः

- उन तत्वों का स्पष्टीकरण करने में, जो एशियाई इतिहास के औपनिवेशिक एवं पूर्व औपनिवेशिक चरणों में भारतीयों के दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में उत्प्रवासन के लिए उत्तरदायी थे;
- दक्षिण पूर्व एशिया में बसे भारतीयों के व्यावसायिक स्वरूपों एवं संगठनों का स्पष्टीकरण करने में, एवं
- समकालीन दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय उत्प्रवासियों के सामने आई समस्याओं एवं चुनौतियों को पहचानने में;

समक्ष होंगे।

3.1 प्रस्तावना

इस क्षेत्र के प्रत्येक देश में भारतीय अल्प संख्यकों की उपस्थिति, समकालीन दक्षिण पूर्व एशिया की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यहां भारतीय मूल के व्यक्तियों की कुल जनसंख्या का अनुमान करीब बीस लाख के आसपास लगाया जाता है। भारत एवं दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के मध्य पहले के व्यापारिक एवं आर्थिक गठबन्धनों के कारण भारतीयों के इस क्षेत्र में बसने की शुरुआत हुई। भौगोलिक निकटता, व्यापारिक दृष्टि से इस क्षेत्र की अनुकूल स्थिति एवं गर्म मसालों जैसी वस्तुओं की उपलब्धता कुछ ऐसे कारण थे जिन्होंने भारतीय व्यापारियों एवं सौदागरों को इस क्षेत्र में आकर्षित किया। व्यापार के साथ ही भारतीय संस्कृति एवं बौद्ध धर्म इस क्षेत्र में पहुंचा। भारतीय संस्कृति ने वहां की स्वदेशी सांस्कृतिक

मान्यताओं को उखाड़े बिना वहां के व्यक्तियों, कला, साहित्य एवं वास्तुकला पर गहरा प्रभाव डाला, सिवाय वियतनाम के जहां चीनी संस्कृति का अधिक गहरा प्रभाव था।

उन्नीसवीं सदी में इस क्षेत्र में भारतीयों का उत्प्रवासन काफी बड़े पैमाने पर हुआ जब अंग्रेज, (जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप के साथ-साथ बर्मा एवं माले प्रायद्वीप को भी उपनिवेश बना लिया था) भारतीयों को इस क्षेत्र में काफी बड़ी संख्या में ले गये। भारतीयों के रूप में उनको उस क्षेत्र के साधनों के शोषण हेतु कड़ी मेहनत करने वाले सस्ते मजदूर प्राप्त हुए और उन्होंने उनके सैनिक प्रशासन में निचले स्तरों पर काम करके उनकी सेना को भी काफी सहारा प्रदान किया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद के काल में औपनिवेशिक प्रणाली का समापन हुआ और क्षेत्र में स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। इससे भारतीय प्रवासियों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा और उन्हें अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक भूमिकाओं और स्थितियों की सीमाओं को पुनः निर्धारित करना पड़ा। विशेषतौर से बर्मा एवं मलेशिया में समाज के बहुलवादी चरित्र ने भारतीय मूल के निवासियों के सामने विकट चुनौतियां पेश कर दी थी।

3.2 उत्प्रवासन के मूल स्थान और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीयों के दक्षिण पूर्व एशिया में आरंभिक आवासों का उल्लेख छठीं सदी ई.पू. के भारतीय साहित्य में देखने को मिलता है। भारत के महान ग्रन्थ रामायण में स्वर्ण द्वीप एवं यावा द्वीप का उल्लेख है। द्वीप, संस्कृत में "दोनों तरफ पानी के बीच की भूमि" को कहते हैं अर्थात् प्रायद्वीप या टापू, जबकि स्वर्ण का मतलब सोना एवं यावा का मतलब जौ होता है। पुराणों में मलाया का उल्लेख द्वीप एवं यावा द्वीप के रूप में किया गया है। हालांकि इन नामों के स्थानों की सही स्थिति के बारे में जानना कठिन है परन्तु हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि ये दक्षिण पूर्व एशिया में हैं जहां के प्रायद्वीप की मुख्य भूमि एवं टापुओं ने भारतीय व्यापारियों को सोने की तलाश में, यहां आने के लिए आकर्षित किया।

भारत के पूर्वी तट के समुद्र में यात्रा करने वाले व्यक्तियों के बीच में बर्मा देश का नीचे का भाग एवं माले प्रायद्वीप सोने की भूमि के रूप में जाने जाते थे और यह निश्चित प्रतीत होता है कि कम से कम छठवीं सदी ई.पू. के बाद से सोने एवं टीन की खोज में भारतीय व्यापारी इन भूमियों एवं प्रायद्वीपों की समुद्र से यात्रा करते रहे थे। तीसरी सदी ई.पू. में सम्राट अशोक ने स्वर्णभूमि शायद आधुनिक बर्मा का निचला भाग—पर बौद्ध मत के प्रचारक भेजे। जातकों यानि बुद्ध के जन्म की कहानियों में, जो प्राचीन भारत की लोक कथाओं में प्रतिष्ठित है, प्रायः स्वर्णभूमि की यात्रा के बारे में बताया गया है।

इसके अलावा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दिये गये एक विवरण द्वारा राजा को किसी दूसरे के क्षेत्र पर कब्जा करने या अपनी अधिशेष जनसंख्या को वहां भेजकर नया देश बनाने की सलाह यह जाहिर करती है कि ईसाई संवत के पूर्व दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय प्रवासियों की एक लहर उठी थी।

उन्नीसवीं सदी के आखिरी चरण में दक्षिण पूर्व एशिया की सभ्यतागत प्राचीनताओं का अध्ययन कर रहे यूरोपीय विद्वानों ने जब वहां के धर्म, कला एवं वास्तुकला पर संस्कृत के प्रभाव की महत्ता को पहचाना तो उन्होंने यह माना कि ये सब पूर्व की तरफ भारतीय विस्तारीकरण के अभियानों के फलस्वरूप हुआ है।

3.2.1 शुरू के उत्प्रवासन के कारण एवं परिस्थितियां

जब हम दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीयों के उत्प्रवासन की शुरू की लहर के स्पष्टीकरण हेतु भारतीय इतिहास की खोज करते हैं तो निम्न कारण सामने आते हैं।

सबसे पहले यह समस्या, भारत की उस समय की अस्त व्यस्त परिस्थितियों की वजह से पैदा हुई जिसके कारण काफी संख्या में शरणार्थियों ने समुद्र के पार नये घर बसाने का प्रयत्न किया। कुछ विद्वानों का मत है कि तीसरी सदी ई.पू. में मौर्य सम्राट अशोक ने खून की नदी बहाकर कलिन्ग पर जो विजय प्राप्त की थी, वह भी इस बहिर्गमन का कारण हो सकती है। दूसरा मत है कि पहली सदी ई. में

उत्प्रवासन एवं बहिर्गमन समुद्रगुप्त के अभियानों के फलस्वरूप हुआ जो उसी काल में हुए थे जब दक्षिण पूर्व एशिया परं भारतीय प्रभाव पड़ना शुरू हुआ था।

3.2.2 उत्प्रवासन के सांस्कृतिक आधार

इतिहासकार, कोयडेज का मत है कि ईसाई युग के शुरू में दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भारतीय व्यापार के अभियान में तेजी आने से प्राचीन काल में दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीयों का उत्प्रवासन शुरू हुआ और वहां के निवासियों पर भारतीय प्रभाव छा गया। फिर भी, वह बहुत बड़ी संख्या में भारतीय शरणार्थियों एवं अल्पजीवियों के पलायन के सिद्धांत को मान्यता प्रदान नहीं करता और उसका मत है कि दक्षिण पूर्व एशिया के बन्दरगाहों पर भारतीय व्यापारिक आवासों के कारण सुसंस्कृत व्यक्तियों, धर्म प्रचारकों एवं साहित्यकारों को वहां पहुंचने की सुविधा प्राप्त हुई और उन्होंने वहां पर भारतीय संस्कृति का वहां प्रचार किया।

दूसरे इतिहासकार बिर्यान हेरीसन ने अपनी सुविख्यात पुस्तक "दक्षिण पूर्व एशियाः एक लघु इतिहास" में यह मत प्रकट किया है कि दक्षिण पूर्व एशिया पर भारतीय प्रभाव मूल रूप से व्यापारिक प्रभाव था — भारतीय व्यापारियों की तुलनात्मक प्रतिष्ठा एवं संपन्नता के फलस्वरूप इस क्षेत्र के अनेक भागों में भारतीय संस्कृत ने अपनी जड़ें जमाईं।

शुरू की चार सदियों के दौरान भारतीय प्रभाव एवं बौद्ध धर्म प्रचारकों के आगमन का और अधिक प्रामाणिक प्रमाण दूसरी एवं तीसरी सदी की बुद्ध की प्रतिमाओं से प्राप्त होता है, जिन्हें सिआम (थाईलैण्ड), चम्पा (कम्बोडिया), सुमात्रा, जावा एवं सेलीबेस (इन्डोनेशिया) में पाया गया है। इस प्रकार के प्रमाणों से सारे दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति के फैलाव का एवं अनेक अलग क्षेत्रों में भारतीय आवासों एवं उनके शासन का आभास होता है।

हालांकि बान लेयर ने इस बात से अपनी असहमति प्रगट की है कि व्यापारी भारतीय संस्कृति के प्रचारक थे। चूंकि अधिकांश व्यापारी समाज के निचले वर्ग से सम्बन्धित थे इसलिए वे धर्मग्रंथों, पवित्रीकरण एवं तर्कसंगत और अधिकृत रूप से लिखे गए शास्त्रों एवं विद्वता के प्रचार के व्यवस्थापक नहीं हो सकते थे। यह कार्य ब्राह्मणों का था। फिर भी यह केवल व्यापार द्वारा ही संभव हो सका था किं राजमहल स्तर के महत्वपूर्ण सम्पर्क स्थापित किए जा सके।

दक्षिण पूर्व एशिया के व्यक्तियों के लिए, विशेषतौर से शासकों के लिए भारतीय प्रभाव का मतलब संस्कृत भाषा, साहित्य एवं लिखने की कला पर आधारित एक विकसित संस्कृति, ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म, हिन्दू पौराणिक कथाओं, विशेष कलात्मक पद्धतियों एवं तकनीकों , राजतंत्र के बारे में हिन्दू विचारधारा, नियम संहिता एवं प्रशासंन के तरीकों का प्रभाव था।

फिर भी इस संस्कृति का प्रस्तुतीकरण एवं प्रचार धीमी गति से, धीरे-धीरे हुआ था। काफी लम्बे समय तक शाही राजमहलों एवं कुछ अल्पसंख्यक भारतीय कर्मचारियों के अलावा, दक्षिण पूर्व एशिया के लोग नई विदेशी संस्कृति के प्रभाव से मुक्त रहे होंगे और जीववाद, पूर्वजों की पूजा और अपने ग्रामीण धर्मकृत्यों जैसे प्राचीन रिवाजों को मानते रहे होंगे। धार्मिक रूप से राजा को देवता स्वरूप मानने को लेकर ब्राह्मणवाद को विशेषरूप से एक कुलीन-वर्ग का धर्म माना जाता था।

इस प्रकार व्यवसाय एवं व्यापार ऐसे दो प्रमुख कारण थे जिनकी वजह से भारतीयों का दक्षिण पूर्व एशिया के लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ और भारतीयों का दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र में उत्प्रवासन भी शुरू हुआ।

2) क्या आपके विचार से इस क्षेत्र में हिन्दुवाद का प्रचार व्यापार एवं व्यवसाय ने किया था। यदि हां, तो क्यों?

.....

.....

.....

3.3 आधुनिक काल में भारतीयों का उत्प्रवासन

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीयों के दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में बड़ी संख्या में उत्प्रवासन की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। (क) मलेशिया, बर्मा इत्यादि दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में बहुसंख्या में पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करने हेतु एवं (ख) रबर, चाय, काफी, नारियल, गन्ना एवं गर्म मसालों जैसी फसलों की खेती एवं उत्पादन का कार्य करनें हेतु औपनिवेशिक सत्ता को मजदूरों की आवश्यकता थी। चूंकि दक्षिण पूर्व एशिया के मूल निवासी अपने परंपरागत खेती के कार्य में पहले से ही संलग्न थे और बागानों में रोपाई का कार्य करने से विमुख थे इसलिए औपनिवेशिक शासकों का ध्यान भारत की तरफ गया जहां सस्ते मजदूर उपलब्ध थे।

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों की औपनिवेशिक आर्थिक नीति ने पहले से ही भारतीयों के समुद्र पार बहिर्गमन की परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थी। शोषण की औपनिवेशिक नीति ने स्थानीय मूल की आर्थिक व्यवस्था को दो चरणों में तहस नहस कर दिया। पहले "धन का शोषण हुआ" जिसके फलस्वरूप व्यापार एवं उद्योग अव्यवस्थित हो गए और खेती के कार्य में काफी गिरावट आई। दूसरे चरण में, भारतीय हथकरघों के उद्योग, (जो भारत के लोगों, विशेषतौर से कारीगरों, बुनकरों एवं शिल्पकारों की जीविका का मुख्य साधन थे), में पश्चिम से बड़ी मात्रा में आये मशीन से बने वस्त्रों के कारण गिरावट आई।

इन कारकों के फलस्वरूप भारतीय जनसंख्या का एक बहुत बड़ा हिस्सा बेरोज़गार हो गया। अपने देश में भुखमरी एवं अकाल का सामना करने के बजाय अनेकों ने विदेश जाना ज्यादा उचित समझा।

3.3.1 भारतीय जनसंख्या का संगठन एवं व्यावसायिक स्वरूप

दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीयों के उत्प्रवासन के कुछ भी कारण रहे हों परन्तु इसमें शक नहीं कि वहां जो गये वे बहुत गरीब और भूमिहीन थे। भारतीय प्रवासियों को पूर्णरूप से आर्थिक दृष्टिकोण से, यानि अंग्रेजी व्यवसायिक हितों की उन्नति के औजार के रूप में देखा जाता था।

मलेशिया में भारतीय

मलेशिया आने वाले अधिकांश भारतीय मजदूर, मद्रास के तमिल थे। अंग्रेज उनको भारत से ठेके पर लाये थे। ये लोग गुलामों की तरह बगीचों में चाय, कॉफी, रबर, गन्ना एवं गर्म मसालों की रोपाई का कार्य करते थे, जो अंग्रेजी औपनिवेशिक सत्ता के लिए राजस्व का बहुत बड़ा साधन था। इनके अलावा अनेक अन्य लोग रेलवे एवं सार्वजनिक निर्माण विभाग में कार्यरत थे। बाद में लिपिक, व्यवसायी, डाक्टर, शिक्षक, वकील एवं अन्य व्यवसायिक रोजगार एवं ऊंचे वेतन की तलाश में माले प्रायद्वीप पर आये।

भारतीयों के उत्प्रवासन के फलस्वरूप, मलेशिया, जहां उन्नीसवीं सदी के शुरू में केवल माले लोगों का जन समुदाय था, वहां स्वतंत्रता के समय जातीय रूप में एक मिश्रित समाज बन गया।

इससे माले प्रायद्वीप के राष्ट्रीय, जातीय एवं सांस्कृतिक चरित्र में पूर्ण रूप से परिवर्तन हो गया और यह दक्षिण पूर्व एशिया का सबसे अधिक विविध एवं बहुवादी समाज बन गया। आज मलेशिया में तीन विशेष जातीय वर्ग हैं — माले, चीनी एवं भारतीय।

बर्मा में भारतीय

अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन काल में भारतीय बहुत बड़ी संख्या में बर्मा गए। सन् 1852 में अंग्रेजों द्वारा बर्मा के निचले भाग को मिला लेने से बर्मा के इस त्रिभुजाकारी क्षेत्र में भारतीयों का समागम

परिस्थितिगत बन गया। एक बड़ी संख्या में, भारतीयों की आवश्यकता न केवल प्रशासन एवं फौज में कार्य करने हेतु थी बल्कि खेती एवं उभरते हुए उद्योगों में मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिए भी थी। सन् 1886 में सम्पूर्ण बर्मा में, औपनिवेशिक शासन स्थापित हो गया जिससे अंग्रेजों के प्रशासन क्षेत्र का विस्तार हुआ। भारतीय मजदूरों की आवश्यकता काफी अधिक बढ़ गई क्योंकि ये सस्ते थे और दफ्तरों में लिपिकों एवं चपरासियों के रूप में कार्य करने हेतु आसानी से उपलब्ध थे।

इस प्रकार बर्मा में भारतीय प्रवासियों का संगठन खेतिहर एवं गैर खेतिहर, दोनों प्रकार का था। इनमें से अधिकतर खेतिहर मजदूर थे। इनमें तमिलनाडु आंध्रप्रदेश, बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश के छोटी जाति के मजदूर काफी बड़ी संख्या में शामिल थे। गैर खेतिहर वर्ग में औद्योगिक मजदूर एवं शिक्षकों, वकीलों, डाक्टरों एवं साहूकारों जैसे व्यवसायिक लोग शामिल थे। सेना एवं पुलिस के रंगरूट भी काफी बड़ी संख्या में थे। प्रान्तीय सरकार में ब्राह्मणों एवं कायस्थों की अधिक संख्या थी। अंग्रेजी फौज़ एवं पुलिस दल में राजपूतों एवं सिखों की प्रमुखता थी। तमिल के इटटियार साहूकार थे जो काफी ऊंची दर के ब्याज पर पैसा उधार देते थे। व्यवसायिक स्थानों पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व था और धोबी एवं कहार अनेक प्रकार की घरेलू सेवायें प्रदान करते थे।

सन् 1931 के पश्चात बर्मा में भारतीयों की जनसंख्या कम होनी शुरू हो गई। इसके लिए अनेक कारण थे। सन् 1930 की आर्थिक मंदी, सन् 1937 में बर्मा का भारत से अलगाव, स्थानीय बर्मी जनसमुदाय के भारतीय प्रवासियों के प्रति बढ़ते हुए अत्याचार और सन् 1939-41 में बर्मा सरकार द्वारा बनाई गई अनेक प्रकार की उग्र राष्ट्रवादी नीतियां ने बर्मा में भारतीयों के हितों को समाप्त करने के पर्याप्त संकेत देने का काम किया। दूसरे विश्वयुद्ध एवं बर्मा पर जापानियों के कब्जे के फलस्वरूप करीब पांच लाख भारतीयों को बर्मा छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा।

इन्डो-चीन में भारतीय

माले प्रायद्वीप एवं पड़ोसी बर्मा की तरह इन्डो-चीन के राज्यों में भारतीयों का प्रवासन बड़े पैमाने पर नहीं हुआ था। भारतीय प्रवासी कुल जनसंख्या के केवल 1 फीसदी थे। व्यवसाय एवं रोजगार की तलाश में, खासतौर से भारत के उन भागों से भारतीयों ने प्रवासन किया था, जो फ्रांसीसी औपनिवेशिक नियंत्रण में थे, जैसे : पौन्डिचेरी, करेकाता, एवं माहे। फ्रांसीसी मलेशिया एवं सिंगापुर से भी भारतीयों को लाए। उनमें से अधिकांश फ्रांसीसी भाषा बोलते थे एवं मुसलमान थे। प्रवासियों में दक्षिण भारत के तमिल, गुजराती एवं सिन्धी भी थे। भारतीय, राजधानियों एवं प्रमुख शहरों में रहते थे जैसे—वियतनाम में साइगॉन एवं हनोई में, कम्बोडिया में नोम पेन्ह एवं सियामरीप में और लाओस में लुआंग प्रबंद में। उनका प्रमुख व्यवसाय बुने हुए कपड़ों का था। उनमें से कुछ साहूकारी, छोटी दुकानों, होटल एवं थियेटर का व्यवसाय भी करते थे।

फिर भी भारतीय मूल के निवासी कुछ चुने हुए व्यवसायों में संलग्न थे इसलिए व्यापार एवं व्यवसाय में उनका कोई विशेष स्थान नहीं था। इसके अलावा जबकि उनके प्रतिस्थापितों की फ्रान्सीसियों के समान प्रवासी अधिकार एवं इन्डो-चीन में यात्रा करने की सुविधायें प्राप्त थीं, भारतीयों को यह सुविधायें प्रदान नहीं की गई थी। सन् 1954 के जेनेवा समझौते के फलस्वरूप इन्डो-चीन के राज्यों से फ्रान्सीसियों के वापस हो जाने के बाद और इन्डो-चीन के पहले युद्ध के शुरू हो जाने से भारतीय प्रवासियों की स्थिति बिल्कुल अस्थिर हो गई। इन्डो-चीन में इस अनिश्चित एवं चलायमान परिस्थिति के कारण अनेक भारतीयों को अपने व्यापार एवं व्यवसाय को समेटकर इन राज्यों को छोड़ने पर विवश होना पड़ा।

सिंगापुर में भारतीय

सारे माले प्रायद्वीप एवं सिंगापुर के द्वीप पर पूर्ण रूप से औपनिवेशिक शासन स्थापित हो जाने से भारी संख्या में भारतीय अप्रवासी सिंगापुर आंए। औपनिवेशिक हितों का बढ़ाने के लिए अंग्रेज भारतीयों को वहां अनेक प्रकार के कार्यों के लिए ले गए, जैसे : सड़कों का निर्माण करना, रेलवे एवं बन्दरगाहों की सुविधा प्रदान करना इत्यादि। उन्होंने वहां विशेषतौर से रबर के बागानों में भी रोपाई का कार्य किया। भारतीय अप्रवासियों ने वहां व्यापारी वर्ग का भी संगठन किया। भारतीय व्यापारी वहां प्रमुख रूप से मजदूर वर्ग के जन समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं भारत से गर्म मसालों के आयात को सुगम एवं व्यवस्थित करने के लिए आए थे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सिंगापुर में असाधारण विकास होने के फलस्वरूप उत्तरी भारत से पारसी, सिन्धी, मारवाड़ी एवं गुजराती व्यापारी

वहां पहुंचे। वे सार्वजनिक वस्तुओं, विशेषकर बुनाई के कपड़ों के वाणिज्य, में कुशल थे। मजदूरों एवं व्यापारियों के अलावा वहां वकीलों, डाक्टरों एवं साहूकारों जैसे व्यवसायिक लोग भी पहुंच गए थे।

फिलीपीन्स में भारतीय

फिलीपीन्स में भारतीय अप्रवासियों का जो पहला जत्था पहुंचा वह अंग्रेजों के उस अभियान दल में शामिल था जिसने सन् 1762 में स्पेनियों को भगाकर मनीला पर कब्जा किया था। अभियान दल में 600 से अधिक भारतीय सिपाही एवं करीब 1400 मजदूर शामिल थे। अधिकांश मद्रास के आरकोट जिले के तमिल थे। वे कारीगरों एवं ठेके के मजदूरों के एक सम्मिश्रण के रूप में थे। सन् 1764 में जब अंग्रेज मनीला छोड़कर गये तो काफी संख्या में सिपाही एवं मजदूर भारत वापस नहीं लौटे। अंग्रेजों के सिन्ध एवं पंजाब पर कब्जा कर लेने के पश्चात फिलीपीन्स जाने वाले भारतीय अप्रवासियों की दूसरी लहर शुरू हुई। वे मुख्य रूप से व्यापारी थे जिन्होंने फिलीपीन्स, हांग-कांग और अन्य स्थानों पर खुदरा बिक्री की दुकानें खोली। अच्छे लाभदायक व्यवसाय और रोजगार के अवसरों को देखकर पंजाब के जालन्धर, फिरोजपुर एवं लुधियाना जिलों से पंजाबी यहां आए और फिलीपीन्स में बस गए।

इन्डोनेशिया में भारतीय

पूर्व औपनिवेशिक काल में भारतीय व्यापारी यूरोपीय एवं अरबों और इन्डोनेशिया द्वीप समूह के गर्म मसालों का उत्पादन करने वाले द्वीपों के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करते थे। जैसा हम पहले देख चुके हैं, इन भारतीय व्यापारियों के बाद यहां राजनीतिक दुस्साहसी एवं धर्म प्रचारक आये जिनमें ब्राह्मण, पुजारी एवं बौद्ध धर्म प्रचारक इत्यादि शामिल थे। उन्होंने इन्डोनेशियाई कला, वस्तुकला, सांस्कृतिक मान्यताओं एवं कानूनी और राजनीतिक रीति रिवाजों पर अपना गहरा प्रभाव डाला। भारतीयों के इन्डोनेशिया अप्रवासन का दूसरा दौर औपनिवेशिक काल में हुआ जब एक छोटी-सी संख्या में कुछ भारतीय व्यापारी एवं बगीचों में काम करने वाले मजदूर पिनाना होते हुए इन्डोनेशिया पहुंचे। ये भारतीय प्रमुख रूप से मजदूर दल के रूप में अंग्रेजों के पानी के जहाजों पर वहां पहुंचे थे। बाद में उन्होंने वहां व्यापार के लिए लाभदायक एक क्षेत्र की खोज की। उनमें से अधिकांश सिन्धी, पंजाबी एवं दक्षिण के निवासी थे।

इस प्रकार, दक्षिण पूर्व एशिया के मुख्य भूमि एवं प्रायद्वीपों, दोनों प्रकार के देशों में भारतीयों का उत्प्रवासन एवं वहां बसना उस क्षेत्र के लोगों के साथ सांस्कृतिक एवं व्यापारिक अन्योन्य क्रिया के फलस्वरूप हुआ। एक बड़ी संख्या में भारतीयों के इस क्षेत्र में आने के दूसरे दौर की विशेषता यह थी कि यह अठारहवीं सदी के शुरू से इस सदी के मध्य तक अंग्रेजों के निर्देश से हुआ। ये अप्रवासी अधिकतर ठेके के मजदूरों के रूप में लाये गए थे। जिन्होंने इस क्षेत्र के आर्थिक एवं व्यवसायिक शोषण में अपने औपनिवेशिक मालिकों को सहायता प्रदान की थी। जिन उपनिवेशों में वे बसे एवं जहां कार्य किया, वहां उनका आर्थिक, राजनैतिक या असैनिक प्रशासन में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था। मजदूरों के अलावा इन देशों में व्यवसायिक वर्ग के लोग भी गए जिनमें व्यापारी, व्यवसाय करने वाले, बुद्धिजीवी, डाक्टर, वकील एवं साहूकार सम्मिलित थे और औपनिवेशिक साम्राज्य द्वारा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से अपने हितों के अनुकूल बनाई हुई परिस्थितियों में रहकर काफी फले फूले। हमने यह भी देखा था दक्षिण पूर्व एशिया के माले प्रायद्वीप एवं बर्मा जो कि अंग्रेजी साम्राज्य की सबसे बहुमूल्य उपलब्धि माने जाते थे, में भी भारतीयों का उत्प्रवासन एक बड़े पैमाने पर हुआ था। जो देश अंग्रेजी औपनिवेशिक प्रणाली के अन्तर्गत नहीं थे वहां दक्षिण पूर्व एशियाई इतिहास के काल में भारतीय अप्रवासी बहुत कम संख्या में गए। इसलिए इन्डोनेशिया एवं फिलीपीन्स जो क्रमानुसार डच, स्पेनिश एवं अमरीकी उपनिवेशों के रूप में रहे, उन देशों में हमें भारतीयों का समागम अधिक संख्या में देखने को नहीं मिलता। इन्डो-चीन के राज्य, जो फ्रांसीसी उपनिवेश थे, वहां अप्रवासी, भारत के उन भागों से गये थे जो उस समय फ्रान्सीसी औपनिवेशिक नियंत्रण में थे।

इसके अलावा औपनिवेशिक काल में भारतीय अप्रवासियों को इन देशों में सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से एकीकरण का सामना नहीं करना पड़ा था। हो सकता है कि यह इस कारण हो कि अप्रवासी एवं स्थानीय जन समुदाय दोनों ही स्वतंत्र नहीं थे और दोनों को एकसमान सहायकों की स्थिति में अपने औपनिवेशिक मालिकों के मातहत कार्य करना पड़ता था। परन्तु अप्रवासियों एवं स्थानीय जन समुदाय के बीच भीतर ही भीतर असंतोष एवं मोहभंग का उबाल उठ रहा था जो

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) नीचे दिए हुए स्थान का उपयोग अपने उत्तरों हेतु कीजिए।

ii) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों के साथ अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) भारतीयों ने औपनिवेशिक काल में दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र के लिए प्रवास क्यों किया था?

.....

.....

.....

2) मलेशिया एवं बर्मा में भारतीय अप्रवासियों के जनसांख्यकीय एवं व्यवसायिक स्वरूपों का संक्षेप में विवरण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) मलेशिया, बर्मा, इन्डोनेशिया, फिलिपीन्स एवं इन्डो-चीन के राज्यों में कौन-सी यूरोपीय सत्ता ने अपने उपनिवेश स्थापित किए थे।

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय : वर्तमान स्थिति

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद औपनिवेशिक प्रणाली का समापन हुआ और दक्षिणी एवं दक्षिण पूर्व एशिया में स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ। इससे उन भारतीय अप्रवासियों को, पर्याप्त रूप से चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ा, जो औपनिवेशिक एवं उसके पूर्व के काल में उस क्षेत्र में जाकर बस गए थे। दूसरे विश्वयुद्ध से ही उस क्षेत्र में उनकी भूमिकाओं एवं परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। उस क्षेत्र के जापानी अधिग्रहण ने भारतीय अप्रवासियों के असंतोष को और बढ़ा दिया था। मसलन, इसके कारण बर्मा से भारतीयों का एक बड़ी संख्या में निष्क्रमण हुआ। इसेके अलावा भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन का उस क्षेत्र के भारतीयों पर काफी प्रभाव पड़ा क्योंकि उनमें से कुछ को पाकिस्तानी मान लिया गया था। औपनिवेशिक काल के बाद के समय में भारतीय मूल स्थान के व्यक्तियों को अपने लिए नये रूप से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक भूमिका की खोज करनी पड़ी। चूंकि उस क्षेत्र के आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक रूप से शोषण करने एवं अधिकार स्थापित करने में भारतीय अप्रवासियों को अंग्रेज साम्राज्यवादियों का एक अंग माना जाता था इससे समस्या और जटिल हो गई थी।

जिस सबसे बड़ी समस्या का उनको सामना करना पड़ा था वह उन देशों की नागरिकता के प्रश्न से सम्बन्धित थी, जहां उन्हें उनके औपनिवेशिक मालिकों द्वारा लाया गया था। विशेषरूप से बर्मा में अधिकांश भारतीयों को नई व्यवस्था में नागरिकता प्रदान करने से मना कर दिया गया था और उनको वहां से बलपूर्वक निष्काषित कर दिया गया था। नये संविधान और आर्थिक एवं राजनैतिक ढांचे के अन्तर्गत बचे हुए भारतीयों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से दूसरे दर्जे की नागरिकता की स्थिति प्रदान की गई थी। उन्होंने अपनी मातृभूमि भारत से सहायता एवं मार्ग दर्शन प्राप्त करने

का प्रयत्न किया, जो स्वयं हाल ही में एक नये राष्ट्र के रूप में उदित हुआ था और जिसे राष्ट्र संगठन के मार्ग में अनेक भयंकर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं का सामना करना था। भारतीय नेताओं ने उन्हें स्थानीय व्यक्तियों से घुल-मिलकर स्वयं अपने पुरुषार्थ से अपने भाग्य का फैसला करने की सलाह दी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र से भारत के सम्बन्धों के विकास के मामले में उस क्षेत्र के अप्रवासी भारतीयों को किसी विशेष कारक के रूप में कभी कोई मान्यता प्रदान नहीं की गई।

3.4.1 बर्मा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद में बर्मा में बसे भारतीय समुदाय को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़ा था। अप्रवासन, विदेशी व्यापारों एवं विदेशी मुद्रा के प्रेषणों पर बर्मा सरकार ने कड़ा नियंत्रण लगा दिया था। अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों को जिनमें परिवहन एवं संचार, सार्वजनिक वितरण, औद्योगिक खदानों का कार्य एवं कृषि उत्पादन सम्मिलित थे, सरकारी नियंत्रण में ले लिया गया था। सार्वजनिक सेवाओं का वर्गीकरण करने से इन सेवाओं में कार्यरत भारतीय कर्मचारियों को निकाल दिया गया। भूमि, राज्य के स्वामित्व के अन्तर्गत, कर ली गई। छेटियारों को, जो साहूकारी व्यवसाय के अग्रगामी थे, कृषि एवं अन्य कामों के लिए उधार देने के व्यवसाय से निकाल दिया गया। भारतीय दुकानों, भारतीय व्यवसायिक संस्थानों, भारतीय शिक्षकों एवं डाक्टरों को सेवाएं समाप्त करने की सूचना दे दी गई और भारतीयों को बर्मा छोड़ने के आदेश जारी कर दिये गये। इसके फलस्वरूप इस सदी के पांचवें दशक में भारतीयों का बर्मा से भारत अप्रवासन का तांता लगा रहा। आज बर्मा में करीब चार लाख भारतीय मूल के निवासी हैं। आज के बर्मा में भारतीयों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं में काफी गिरावट आई है। सन् 1948 में बर्मा की स्वतंत्रता के पश्चात् जो भारतीय वहां रुककर बस गये हैं, वे उन व्यक्तियों के वर्ग के हैं जो अब भी छोटे-मोटे व्यवसाय एवं व्यापार करके अपनी जीविका कमा लेते हैं। प्रमुख रूप से बर्मा के मुसलमान, भारतीय मूल के अराकानी, मनीपुर निवासी गुर्खा इत्यादि हैं। आज इन वर्गों के व्यक्तियों का समुदाय समृद्ध नहीं है और सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में इनकी स्थिति दूसरे दर्जे की हो गई है। ये लोग गृह युद्धों एवं साम्प्रदायिक दंगों के भी शिकार होते रहे हैं।

3.4.2 मलेशिया

मलेशिया में आज 49 फीसदी माले मूल निवासियों और समुद्र पार से आये 33 फीसदी चीनियों के बाद 11 फीसदी भारतीय अप्रवासी तीसरे सबसे बड़े जातीय वर्ग के रूप में माने जाते हैं। शेष जनसमुदाय में डयाका, कादाजान इत्यादि जैसे अन्य देसी वर्ग सम्मिलित हैं। मलेशिया के भारतीयों का कोई समरूप वर्ग नहीं है और वे जाति, भाषा, धर्म एवं मूल स्थान के आधार पर विभाजित हैं। इनमें तमिल बहुसंख्या में हैं जो कुल भारतीय अप्रवासियों के 80 फीसदी हैं। इसके बाद मलयाली 4.7 फीसदी, तेलुगु 3.4 फीसदी एवं उत्तरी भारत के लोग हैं। भारतीय अप्रवासियों में से 89.2 फीसदी हिन्दू, 8.4 फीसदी इसाई एवं 6.7 फीसदी मुसलमान हैं। इन तथ्यों से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि माले समाज यथार्थ रूप से एक बहुमुखी समाज है जिसमें अनेक प्रकार के जातीय, धार्मिक, भाषाई, एवं सांस्कृतिक वर्ग सम्मिलित हैं। मलेशियाई समाज की इस बहुजातीय विशेषता के फलस्वरूप साम्प्रदायिक तनाव होते हैं जो लगातार साम्प्रदायिक दंगों के रूप में उभरते रहते हैं।

हाल के वर्षों में मलेशियाई सरकार द्वारा विज्ञापित आंकड़ों से स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि अपने माले एवं चीनी मूल के लोगों की तुलना में आज मलेशिया में भारतीय जातीय समुदाय, आर्थिक रूप से सबसे कम लाभप्राप्त वर्ग है। इनमें से अधिकांश, करीब 47 फीसदी, कृषि कार्य में संलग्न हैं, 24.8 फीसदी सम्पूर्ण सेवाओं में कार्यरत हैं, 10.6 फीसदी व्यापार एवं व्यवसाय में लगे हैं जबकि एक बहुत बड़ी संख्या 32.2 प्रतिशत सार्वजनिक सेवाओं के क्षेत्रों में कार्यरत हैं। प्रशासनिक, व्यवसायिक एवं व्यवस्थापकों की श्रेणी में केवल 6 प्रतिशत भारतीय पाये जाते हैं। चीनी, माले एवं अन्य विदेशी वर्गों की तुलना में इनकी राष्ट्रीय आय एवं अन्य विदेशी वर्गों की तुलना में इनकी राष्ट्रीय आय एवं धन संपन्नता उपेक्षणीय है। मलेशिया की राष्ट्रीय राजनीति में भी भारतीय समुदाय की भागीदारी अपनी जनसंख्या के अनुरूप नहीं रही। भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाला सबसे बड़ा संगठन मलेशियाई भारतीय कांग्रेस है।

3.4.3 सिंगापुर

सिंगापुर भी एक बहु-जातीय समाज है जहां प्रमुख रूप से चीनी समुदाय है, उसके बाद माले एवं भारतीय हैं। सिंगापुर के भारतीयों में करीब 65 फीसदी तमिल हैं और शेष मलयाली, पंजाबी, सिख, बंगाली, गुजराती, सिन्धी, तेलुगु एवं पठान हैं। जहां तक सिंगापुर में भारतीयों के व्यवसायिक स्वरूप का सम्बन्ध है, उत्तरी भारत के अप्रवासी प्रमुख रूप से बुने हुए कपड़ों एवं गर्म मसालों के व्यवसाय में संलग्न हैं। तमिल मजदूर मूल रूप से बन्दरगाह एवं नगर पालिका की सेवाओं में कार्यरत हैं। इनमें से कुछ सरकारी दफ्तरों, छोटी दुकानों एवं व्यवसायिक संस्थानों में लिपिक भी हैं। अनेक भारतीयों ने लोक सेवाओं, मजदूर संगठनों, पत्रकारिता, कानून एवं चिकित्सा व्यवसायों में काफी ख्याति प्राप्त की है। अल्प संख्यकों के रूप में उनको अन्य जातियों जैसी सब सुविधाएं प्राप्त हैं परन्तु व्यवसाय, व्यापार एवं राजनीतिक क्षेत्रों में वे चीनी प्रतिस्थापित की तुलना में पिछड़ गये हैं।

3.4.4 फिलीपीन्स

फिलीपीन्स में आज भारतीय मूल के करीब चार हजार व्यक्ति हैं जिनमें पंजाबी एवं सिन्धी प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश भारत के मध्यवर्गीय एवं निचले वर्ग के व्यक्ति हैं। चूंकि मनीला देश की राजधानी एवं प्रमुख व्यवसायिक केन्द्र है इसलिए भारतीयों में से करीब 85 प्रतिशत व्यक्ति इस महानगरी एवं आसपास के शहरों में रहते हैं। आर्थिक रूप से भलीभांति प्रस्थापित चीनियों के विपरीत भारतीयों का एक उपातस्थ समुदाय है इसलिए देश के आर्थिक जीवन में उनकी भूमिका अपेक्षित रूप से बहुत कम है। मेवा, बुने हुए कपड़ों, सिले हुए वस्त्रों, घरेलू सामानों एवं जेवर गहनों की खुदरा बिक्री में पंजाबी विख्यात हैं। उनमें से कुछ ने साहूकारी का व्यवसाय भी शुरू कर दिया है। सिन्धी, जो पंजाबियों से संख्या में कुछ अधिक हैं व्यापार में उनसे काफी अधिक बढ़े हुए हैं।

स्थाई भारतीय अप्रवासियों के अलावा वहां कुछ गैर-अप्रवासी भारतीय भी हैं जो फिलीपीन्स में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में कार्यरत हैं जैसे ऐशियाई विकास बैंक विश्व स्वास्थ्य संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन, यूनेस्को, अन्तर्राष्ट्रीय चावल शोध संस्थान इत्यादि। देश के समायोजित औद्योगिक व्यापारिक प्रयासों में भी भारतीय व्यापारी कार्य कर रहे हैं। इस छोटे से वर्ग ने स्थानीय समुदाय के सामाजिक रूप एवं क्षेत्रीय संगठन को विविधता प्रदान की है।

3.4.5 इन्डोनेशिया

इन्डोनेशिया की चौदह करोड़ की कुल जनसंख्या में पैंतीस हजार भारतीयों का एक बहुत छोटा अल्पसंख्यक समुदाय है। भारतीय मूल के व्यक्ति अधिकतर, तमिलनाडु, मालाबार एवं दक्षिणी कन्नारा जिले कोंकण के मुसलमान हैं, बम्बई एवं गुजरात के बोहरा समुदाय के व्यक्ति हैं और हैदराबाद के अरब वंश के मुसलमान हैं। यहां गुजरात के हिन्दु एवं मुसलमान हैं और पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, ग्वालियर (म.प्र.) एवं काश्मीर के मुसलमान हैं। इनमें पंजाब के सिख एवं सिन्धी हिन्दू भी हैं जिनमें से कुछ ने पहले विश्व युद्ध के काल में एवं ज्यादातर ने सन् 1947 के भारत के विभाजन के पश्चात् इन्डोनेशिया में अप्रवास किया था। भारतीय अप्रवासियों की बहुसंख्या प्रमुख रूप से सुमात्रा एवं जकार्ता में केन्द्रित है। सुमात्रा में बसे हुए अधिकांश व्यक्ति छोटे कार्यों में संलग्न हैं एवं दैनिक वेतन पर कार्य करते हैं। जकार्ता में बसे हुए भारतीय व्यापारिक क्षेत्र एवं अन्य उन्नतशील व्यवसायों में संलग्न हैं, जैसे बुने हुए कपड़े, खेल के सामान, फिल्म वितरण, संगीत कला के वाद्य यंत्र इत्यादि। इसके अलावा कुछ भारतीयों ने प्रमुख औद्योगिक घरानों के सहयोग से वहां औसत दर्जे के औद्योगिक संस्थान स्थापित किए हैं। यूनाइटेड नेशन एवं विदेशी संगठनों में कार्यरत कुछ व्यक्ति वहां अल्पकालीन प्रवासियों के रूप में भी रहते हैं।

3.4.6 थाईलैण्ड

थाईलैण्ड में भारतीय समुदाय की संख्या का अनुमान करीब तीस हजार लगाया जाता है। परन्तु इनमें से सत्ताइस हजार वहां के स्थानीय देशवासी हैं और तीन हजार भारतवासी हैं। इनमें से अधिकांश पंजाबी एवं गुजराती हैं और कुछ उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। उनका एक भली भांति संगठित वर्ग है जो व्यवसाय, उद्योग एवं व्यापार में संलग्न है। अब नौकरी में बहुत कम भारतीय हैं। कुछ भारतीय धन सम्पन्न हैं और कुछ औद्योगिक आढ़तियों, सम्पत्ति के मालिकों एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारियों के रूप

में बहुत वैभवशाली हो गए हैं। बैंकाक के बाहर अनेक प्रादेशिक शहरों में पंजाबियों की दुकानें हैं। वे सामान्य रूप से धन सम्पन्न हैं और सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित हैं। पंजाबियों के अतिरिक्त बैंकाक में सिंधी समुदाय बहुत धन सम्पन्न है जो बुने हुए कपड़ों एवं सिलाई का कार्य करते हैं और बाद में उन्होंने कुछ औद्योगिक संस्थान स्थापित कर लिए हैं। फिर भी हाल के वर्षों में सहयोगी व्यवसायिक प्रयासों को काफी सफलता प्राप्त हुई है। सबसे अधिक शानदार सफलताएँ बिरला एवं थापर वर्ग के औद्योगिक संस्थानों को प्राप्त हुई हैं। थाईलैण्ड में भारतीयों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से एकीकरण की समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा। थाइयों ने भी सब अप्रवासियों को अपनाने हेतु काफी सद्भावपूर्ण प्रयास किये थे। इसके अलावा हजारों की संख्या में बौद्ध धर्म के प्रचारक प्रति वर्ष बिहार में बोध गया एवं भारत के अन्य बौद्ध क्षेत्रों से आते हैं। इससे थाई एवं भारतीय दोनों समुदाय के व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध और अधिक अच्छे हो गये हैं।

3.4.7 इन्डो-चीन के राज्य

इन्डो-चीन के राज्यों लाओस, कम्बोडिया एवं वियतनाम में इस समय बहुत कम भारतीय अप्रवासी हैं। वियतनाम युद्ध के शुरू हो जाने से काफी बड़ी संख्या में भारतीयों ने इन राज्यों से पलायन कर दिया था क्योंकि उन्होंने यह महसूस किया कि इन युद्ध ग्रसित देशों में उनका कोई भविष्य नहीं है और जान माल का खतरा भी है। इन्डो-चीन के समाजवादी राज्यों में भारतवासियों को अपने लिए कोई भविष्य नजर नहीं आता था। चूंकि भारतीय वहां नगण्य संख्या में थे इसलिए उन्हें वहां उस प्रकार की समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा जैसी समस्याओं का सामना भारतीय मूल के लोगों को दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों में करना पड़ा था।

समकालीन दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीयों के सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्वरूपों का अध्ययन करने से सबसे पहले यह पता लगता है कि आज क्षेत्र के अधिकांश राज्यों में भारतीयों को सामाजिक, आर्थिक, व्यवसायिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों से निर्वासित करके दूसरे दर्जे की नागरिकता प्रदान की गई है। दूसरा, जिन देशों में काफी लम्बे अरसे से भारतीय अपने खून पसीने से कड़ी मेहनत करके अपना पालन पोषण कर रहे थे वहां वे जातीय, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप के भेदभावों के भी शिकार हुए। तीसरा, अनेक बार जातीय दंगे हुए जिनमें भारतीय अप्रवासियों की जान माल का भारी नुकसान हुआ। फिर भी इस तथ्य से विमुख नहीं हुआ जा सकता कि भारतीय अप्रवासियों की उपस्थिति से इन देशों की सामाजिक, आर्थिक, जातीय, एवं सांस्कृतिक संरचनाओं पर प्रभाव पड़ा है जिसके फलस्वरूप विशेषतौर से मलेशिया में सामाजिक-सांस्कृतिक भेदभाव की स्थिति उत्पन्न हो गई है जहां इनकी संख्या कुल जनसंख्या की ग्यारह प्रतिशत है। आज इस बात की आवश्यकता है कि इस क्षेत्र में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों एवं भारत सरकार एवं प्रशासन के मध्य पारस्परिक व्यवहार को ज्यादा अच्छा बनाया जाए जिससे व्यापक रूप से बदली हुई घरेलू, क्षेत्रीय, राजनैतिक एवं आर्थिक रंगमंच में भारत के व्यवसायिक एवं आर्थिक हितों को बढ़ावा दिया जा सके।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) नीचे दिये स्थान का उपयोग अपने उत्तर हेतु कीजिए।
ii) इस इकाई के अन्त में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1) समकालीन दक्षिण-पूर्व एशिया में जातीय एवं आर्थिक रूप से भारतीयों के प्रति भेदभाव के तीन कारकों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि भारत एवं दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के बीच व्यवसायिक एवं सांस्कृतिक गठबंधन यदि पहले से नहीं तो इसाई युग से पाया जाता है। भारतीय व्यापारियों के साथ जो ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्म प्रचारक वहां गये थे उनका दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र के शासक वर्ग ने स्वागत एवं सम्मान किया था इसके फलस्वरूप इस क्षेत्र के अनेक भागों में धीरे-धीरे भारतीय सांस्कृतिक का प्रचार होने लगा था। एशिया के इतिहास के औपनिवेशिक काल में इस क्षेत्र के देशों में भारत से एक बहुत बड़े पैमाने पर उत्प्रवासन हुआ था। अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों ने भारत को फौज़ एवं प्रशासन में नीचे स्तर पर कार्य करने हेतु सस्ते मजदूरों का एवं बागानों और खेतों में कार्य करने वाले मजदूरों का एक विशाल भण्डार बना दिया था। हमने यह भी देखा कि भारत से दक्षिण-पूर्व एशिया के माले प्रायद्वीप एवं बर्मा में भी बड़े पैमाने पर उत्प्रवासन हुआ था जो अंग्रेजों के उपनिवेश थे। जो देश, अंग्रेज औपनिवेशिक प्रणाली के अन्तर्गत नहीं थे वहां भारतीय अप्रवासी बहुत कम संख्या में गये थे जैसे कि इन्डो-चीन के राज्य, जोकि फ्रान्सीसी नियंत्रण में थे। इस इकाई में हमने यह भी देखा जैसे कि दक्षिण-पूर्व एशिया में, अप्रवासियों को आत्मसातीकरण एवं एकीकरण की समस्या का बहुत अधिक सामना नहीं करना पड़ा था। इसका कारण था कि अप्रवासी एवं स्थानीय जनसमुदाय, दोनों ही उपनिवेशवाद के आधीन थे और उनको किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी। परन्तु स्वदेशी जन समुदाय में भीतर ही भीतर असंतोष बढ़ रहा था। जैसे ही उपनिवशवाद समाप्त होना शुरू हुआ, भारतीय अप्रवासियों को आपीकरण एवं एकीकरण की चुनौती का सामना विशेषतौर से उन देशों में करना पड़ा जहां उनकी संख्या सामान्य रूप से सबल थी।

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अरसारतनाम एस., 1970, *मलेशिया एवं सिंगापुर में भारतीय,* लन्दन।

चक्रवर्ती एन.आर., 1971, *बर्मा में भारतीय अल्पसंख्यक,* ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रैस, लन्दन।

होल डी.जी.ई., 1955, *दक्षिण-पूर्व एशिया का इतिहास,* मेकमिलन, लन्दन।

प्लूवियर जनवरी, 1974, *उपनिवेशवाद से स्वतंत्रता तक का दक्षिण-पूर्व एशिया,* क्वालालम्पुर।

सरदेसाई डी.आर., 1981, *दक्षिण पूर्व एशिया : भूतकाल एवं आधुनिक काल विकास,* नई दिल्ली।

सिंह, उमाशंकर, 1978, *बर्मा एवं भारत* 1948-62, जयपुर।

टिंकर, हयूम, 1977, *बट वृक्ष,* लन्दन।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) 3.2.1 उप-छन्द को देखिये।
2) 3.2.2 उप-छन्द को देखिये।

बोध प्रश्न 2

1) 3.3 छन्द को देखिये।
2) 3.3.1 एवं 3.3.2 उप-छन्द को देखिये।

बोध प्रश्न 3

1) 3.4.1 उप-छन्द को देखिये।

इकाई 4 दक्षिण-पूर्व एशिया में चीनी लोग

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 19वीं शताब्दी में चीनियों का उत्प्रवासन
4.3 राष्ट्रवाद का उदय
4.4 जापानी पराधीनता
4.5 युद्धोत्तर काल : आरंभिक चरण
4.6 जनवादी गणतंत्र तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के चीनी लोग
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

यह इकाई दक्षिण-पूर्व एशिया में चीनी उत्प्रवासियों के इतिहास के बारे में है। इसका अध्ययन करने के उपरान्त आपको :

- चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच आरंभिक संपर्क कितने व्यापक थे, इस बात की व्याख्या करने,
- 1860 के बाद चीनी उत्प्रवासियों की संख्या में तीव्र बढ़ोत्तरी क्यों हुई, इस बात का वर्णन करने,
- राष्ट्रवाद, जापानी कब्जे तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में चीनी उत्प्रवासन पर चीनी सरकार की नीतियों, के प्रभाव को दर्शाने में,

सक्षम होना चाहिए।

4.1 प्रस्तावना

अपने दक्षिण की भूमियों से चीन के सम्बन्ध प्राचीन काल में ही स्थापित हो गए थे। जब ईसा के पहले के सहस्त्र वर्षों में पीली नदी के किनारे अपने जन्म स्थान से चीनी संस्कृति का प्रचार हुआ तो इसे दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र की स्वदेशी संस्कृतियों का सामना करना पड़ा। मिसाल के तौर पर थाई, लाओ एवं वियतनामी व्यक्ति जो राजनैतिक रूप से काफी लम्बे काल तक चीन के अन्तर्गत रहे हैं, उनकी धर्म में जड़े गहरी हैं। जब चीनी बस्तियों की सीमा रेखाओं को आगे बढ़ाया गया तो अल्पसंख्यक जातीय समुदायों के परिक्षेत्रों का उल्लंघन किया गया था। दक्षिणी एवं पश्चिमी चीन के अन्य व्यक्तियों को चीनियों ने इसी प्रक्रिया द्वारा, जो शायद अब भी चल रही है, अपने में मिला लिया था।

चीनी बस्तियों की सीमा के नीचे दक्षिण-पूर्व एशियाई समाजों का विकास हुआ है। तीसरी सदी ई. पू. से चिन राजवंश द्वारा चीन के साम्राज्यवादी एकीकरण के समय से चीन एवं दक्षिण-पूर्व एशिया की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सीमा रेखायें सुस्पष्ट कर दी गई थीं।

चीनी औपनिवेशिक शासन के कारण केवल वियतनाम में चीनी प्रभाव, दस सदियों से अधिक समय तक, सर्वोच्चता प्राप्त कर सका। हालांकि वियतनामियों ने एक हजार वर्ष पूर्व चीनी राजनैतिक नियंत्रण से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी परन्तु चीनी संस्कृति की सर्वोच्चता बनी रही। ऐतिहासिक रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया का विभाजन तीन क्षेत्रों में कर दिया गया था। वियतनाम, जहां चीनी संस्कृति का प्रभुत्व था, बर्मा के दक्षिण-पूर्व से इन्डोनेशिया तक फैली हुई भूमि, जहां भारतीय संस्कृति का अधिक प्रभाव था, और आपेक्षिक रूप से दूरवर्ती फिलीपीन्स जहां भारतीयों एवं चीनीयों, दोनों के हल्के प्रभावों का

आभास किया जाता था। करीब पाँच सौ वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में इस्लाम धर्म शक्तिशाली रूप से उभरा, और मलेशिया, इन्डोनेशिया एवं दक्षिणी फिलीपीन्स की समुद्रीय भूमियों पर प्रमुख रूप से फैल गया।

पिछली बीस सदियों से अधिक का अध्ययन करने से पता चलता है कि चीन के दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ शुरू के सम्बन्ध बहुत सामान्य रूप के थे जो बाद में काफी घनिष्ठ हो गये। राजवंशी आंकड़ों से यह पता लगता है कि चीन के दीर्घकालीन साम्राज्यवादी इतिहास के शुरू होने के समय से राजनयिक एवं व्यवसायिक आदान-प्रदान होते आ रहे हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया से उपहार मंडलों के रूप में वहां के लोग चीनी सम्राट को सम्मान प्रगट करने एवं विदेशी वस्तुओं को चीन के बाजारों में बेचने के लिए अक्सर जाया करते थे। तेरहवीं सदी के अन्त में चीन के मंगोल सम्राट ने इन्डोनेशियाई द्वीप समूह पर एक सशस्त्र सैन्य जलपोत समूह रवाना किया। हालांकि आक्रमण असफल रहा था परन्तु हो सकता है कि कुछ भगोड़े एवं लड़ाकू वहां रह गये हों जो उस क्षेत्र में स्थाई रूप से बसने वाले सबसे पहले चीनियों के रूप में माने जाते हैं।

पन्द्रहवीं सदी में चीन के मिन्ग राजवंश द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया और उसके आगे तक अनेक महान नाविक अभियान किए गए। चीनी दरबार जिसे, समुद्री किनारों के राज्यों पर साम्राज्य स्थापित करने के लिए धर्मयुद्ध, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता एवं राजकीय सम्बन्धी भूख नहीं थी, उसने इन अभियानों को छोड़ दिया, परन्तु समुद्र पार के क्षेत्र में एक निजी व्यापारिक साम्राज्य पहले से ही स्थापित होता जा रहा था। जब सोलहवीं सदी के शुरू में पुर्तगाली पहली बार दक्षिण-पूर्व एशिया में आये तो उनका स्वागत करने के लिए चीनी व्यापारी वहां मौजूद थे।

सन् 1511 में मलाका पर पुर्तगाल के कब्जा कर लेने के साथ ही दक्षिण-पूर्व एशिया में पश्चिमी उपनिवेशवाद की शुरुआत हुई। तब से दक्षिण-पूर्व एशिया की बदलती परिस्थिति में चीनियों ने उस क्षेत्र में अपने आपको स्थापित करने का प्रयत्न किया। कभी स्वीकार किये जाने पर एवं कभी प्रचंड रूप से आक्रमण किये जाने पर समुद्र पार रहने वाले चीनी पश्चिमी शासन के अन्तर्गत रहना सीख गये। साढ़े तीन सदियों तक इस क्षेत्र में चीनी जन समुदाय की संख्या मामूली दर से बढ़ी और धीमी गति से विकसित होती गई।

4.2 उन्नीसवीं सदी में चीनियों का उत्प्रवासन

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल में दक्षिण-पूर्व एशिया में तेजी से परिवर्तन हुए। वाणिज्य में गिरावट आने से डच एवं अंग्रेज व्यापार मंडल के शासनों का अंत हो गया और मुक्त व्यापार हेतु अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न हो गईं। निजी पूंजी निवेशक के काफी विस्तृत सुअवसर उपलब्ध होने के साथ ही पश्चिमी औद्योगीकरण की पूर्ति हेतु दक्षिण-पूर्व एशियाई उत्पादनों की मांग में वृद्धि हुई। सन् 1869 में स्वेज नहर खुल जाने से, जो शायद दक्षिण-पूर्व एशिया के आर्थिक इतिहास में अधिक महत्वपूर्ण तारीख है, विकास की सारी प्रतिक्रिया गतिशील हो गई। टीन, तम्बाकू और बाद में रबर का उत्पादन दुगुना और चौगुना हो गया। आर्थिक विस्तारीकरण इतनी तेजी से हुआ कि दीर्घकालिक मजदूरों की कमी दिखाई देने लगी। उस क्षेत्र में रहने वाले अधिकतर काश्तकार नहीं चाहते थे कि उनके गांववासी बड़े पैमाने पर किये जाने वाले खदान के कार्यों एवं बागानों की खेती के कार्यों में अनुशासित एवं प्रायः कठोर परिस्थितियों में कार्य करें। मजदूरों की भरती क्षेत्र के बाहर से करनी पड़ी। अनेक भारत से आये परन्तु उससे भी अधिक चीन से भेजे गये।

उन्नीसवीं सदी में चीनी उत्प्रवासन की शुरू की बड़ी लहरों की कहानी रोमांचकारी है। "कुलियों के व्यापार" के नाम से विख्यात इस उत्प्रवासन का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। कभी-कभी झूठे आश्वासन देकर लोगों की स्वतंत्रता छीनी गई। अन्य कुछ व्यक्तियों ने अपना उधार चुकाने के लिए अपने आप को बेचा। भरती किए गए लोगों को बन्दरगाहों पर एकत्रित करके दास गृहों में रखा जाता था। (अफ्रीका एवं यूरोप के बीच गुलामों/दासों के व्यापार के साथ यह असाधारण रूप से समानता रखता है)। पानी के जहाजों में भरकर ये कुली नये देश की यात्रा पर भेजे जाते थे। वास्तव में अनेक की यात्रा में मृत्यु हो जाती थी। सिंगापुर इत्यादि बंदरगाहों पर पहुंचने पर इन अर्ध-दासों को सामान्य रूप से तब तक अपने जहाजों के ऊपर ही रखा जाता था जब तक कि चीनी या यूरोपीय उद्योगपतियों

के दलाल उन्हें अपने मजदूरों के रूप में ठेके पर न ले लें। इस प्रक्रिया को चीनी लोग अपनी चलती भाषा में "सुअरों की खरीद" कहते थे। स्वस्थ एवं प्रशिक्षितों की कीमत सबसे अधिक होती थी एवं रोगियों की कोई मांग नहीं होती थी। तट पर आने के बाद ये लोग वर्षों तक अपने ठेके पर कार्य करते रहते थे, और यदि वे जीवित रहकर अपना कोई घर बनाने में सक्षम हो पाते थे तो वे मुक्त रूप से बस जाते थे या घर वापस लौटने का प्रयत्न करते थे।

उन्नीसवीं सदी के बीतने के साथ-साथ चीन से होने वाली यात्राएं कुछ अधिक सुगम हो गई थीं। भोड़े जहाजों एवं कबाड़ों का स्थान भाप के जहाजों ने ले लिया था। विक्टोरिया काल के लोकोपकारवाद एवं पीकिन्ग दरबार की अपने उत्प्रवासी बेटों के प्रति बढ़ती हुई चिन्ताओं के फलस्वरूप इन कुलियों के आवागमन की प्रक्रिया का समापन हुआ। बाहर के देशों में अप्रवासन एवं बसने में अब अपमान एवं किसी प्रकार का खतरा नहीं रहा था।

सन् 1860 से 1930 के काल में अप्रवासन की बाढ़ में दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में आने वाले लाखों चीनियों में तीन विशेषतायें सार्वजनिक रूप से पाई जाती थीं। पहली, वे सब गरीब थे, और दूसरी यह कि उनमें औरतें बहुत कम थीं। ये दो विशेषताएं अन्य समुदायों के अप्रवासियों में भी सामान्य हैं। परन्तु जो विशेषता चीनी उत्प्रवासियों को अन्य उन अधिकांश लोगों से अलग करती थी जो अपने घरों को छोड़कर नये देशों में आये थे, वह उनकी अपनी मातृभूमि के लिए चिरस्थाई गृह आतुरता थी। चीन का महत्व उनके लिए अपने पुरातन देश से भी कुछ अधिक था। उनके लिए यह अकेला देश था जो समझने एवं सम्मान के योग्य था। विश्व का शेष भाग उनके लिए विदेशों से भी बदतर था। किसी मनुष्य की विदेश में सफलता का पैमाना उसकी चीन के साथ प्रतिबद्धता की सबलता से लगाया जाता था। निराश्रितों के अलावा सब लोग अपने गांवों में सम्बन्धियों को रुपया भेजने की प्रथा का अनिवार्य रूप से पालन करते थे। सम्पन्न होने पर कोई व्यक्ति चीन से अपनी बीबी को ला सकता था। जो सम्पन्न हो गए थे, वे अपने घरों को सम्पन्न मूल चीनी घरों की भांति सजाते थे। विदेश में कड़ी मेहनत एवं मितव्ययिता का फल अवकाश प्राप्त करके स्वदेश वापसी के रूप में मिलता था। ऐसे अनेक व्यक्ति थे जिन्होंने चीन से समुद्री यात्रा करते समय लौटने की आशा नहीं की थी परन्तु ऐसा कोई नहीं था जिसने खुशी से स्थाई रूप से स्वदेश वापसी की कामना न की हो। उन्मूलित चीनी निम्न वर्ग के उत्प्रवासी औपनिवेशिक नौकरशाही के छोटे तबके द्वारा नियंत्रित नहीं किये जा सकते थे। पहले औपनिवेशिक प्रशासन ने प्रायः अर्धसैनिक उपाधियां देकर, अनेक प्रकार के मुखिया नियुक्त कर चीनियों का निरीक्षण करने की योजनायें बनाई। अपने कार्यभार की प्रतिष्ठा एवं आमदनी के बदले में उन्होंने यूरोपवासियों एवं चीनियों के मध्य बिचौलियों के रूप में कार्य किया। यह प्रणाली उस समय तक कारगर रही जब तक चीनी समुदाय संख्या में स्थाई एवं व्यवहार में शान्तिप्रिय बने रहे। भारी संख्या में अप्रवासियों के आगमन के पूर्व शहरों एवं कस्बों के चीनी आबादी वाले क्षेत्र समस्याग्रस्त स्थान नहीं थे। यूरोपीय एवं चीनी सामान्य रूप से अपने आर्थिक प्रयासों में एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते थे, मुखिया की प्रणाली से दोनों वर्ग सन्तुष्ट प्रतीत होते थे।

अप्रवासियों की बाढ़ से पुरानी व्यवस्था टूट गई। व्यापारिक सम्बन्धों, रिश्तेदारियों एवं आश्रय प्रदान करके मुखियाओं द्वारा नियंत्रण पर आधारित प्रशासन का यह स्वरूप इन निराश्रित एवं विचलित समुदायों से आये व्यक्तियों के लिये उपयुक्त न रहा। विशेषतौर से साधनों एवं भू-सपंत्ति के तेजी से विकसित होते हुए क्षेत्रों में अपार रूप से छाये हुए चीनी जन समुदाय को राजनैतिक व्यवस्था इत्यादि में सुधार लाने हेतु अपनी प्रतिरक्षा करनी पड़ती थी। सीक्रेट सोसाइटी की परम्परा ने इनके लिए आवश्यक तकनीकों का आधार प्रदान किया।

चीन के इतिहास में सीक्रेट सोसाइटियों की जड़ें बहुत गहरी हैं। अनधिकृत अभिव्यक्ति के रूप में शुरू हुई इन सोसाइटियों ने राजनैतिक रूप से विध्वंसकारी रूप धारण कर लिया, क्योंकि साम्राज्यवादी चीन में चमत्कारी सम्राट को दैवीय अभिषेक प्राप्त थे, यानि उसके शासन को दैवीय मान्यता प्राप्त थी। सामंजस्य पूर्ण आदेश के किसी भी भाग को चुनौती देने का मतलब सम्पूर्ण आदेश पर आशंका करना होता था। दक्षिण-पूर्व एशिया में छिपे रूप से आयात किए गये इन भ्रांत् संघों ने अपने पूर्वजों की धार्मिक दिशा का प्रदर्शन किया और विद्रोही नारे लगाना शुरू कर दिया : "मन्चूरिया निवासियों को हटाओ, मिन्ग को पुनः स्थापित करो"।

वास्तविक रूप से, सीक्रेट सोसाइटियों का उद्देश्य अप्रवासियों को व्यवस्थित करना एवं उनकी रक्षा करना था। उनकी सदस्यता ग्रहण करने से कोई भी व्यक्ति उन भाइयों के बीच आ जाता था जो विदेश में गुजारा करने में सहायता प्रदान कर सकते थे। सहचारिता, रोज़गार, सहायता एवं प्रतिरक्षा नियमानुसार की जाती थी। इस प्रकार इन भ्रातृ संघों ने चीन में छोड़े हुए परिवारों का स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न किया। अपने अलावा किसी भी विधान को न मानने वाली सीक्रेट सोसाइटी उनका मुख्य उद्देश्य नहीं था। अपराध से अर्जित धन अप्रवासियों की गुप्त सरकारों के लिये राजस्व के रूप में हुआ करता था। उन्नीसवीं सदी में ज्यों-ज्यों अन्य रूप के संगठन सबल होते गये, सीक्रेट सोसाइटियों की मान्यता एवं प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। आज इन भ्रातृ संघों ने आतंकवादी जत्थों का रूप धारण कर लिया है, परन्तु करीब एक सदी पूर्व इन सोसाइटियों ने कुछ समय तक अप्रवासियों के पुनः स्थापना में सकारात्मक भूमिका निभाई थी।

अधिवासियों की सेवा करने हेतु खुले रूप से कार्य करने वाले अन्य प्रकार के संगठन भी थे। क्षेत्रीय कहे जाने वाले इन संगठनों में मूल स्थान या भाषा के आधार पर सदस्यों की भर्ती की जाती थी। एक ही उपनामों के आधार पर अपने आपको एक ही पूर्वजों का वंशज मानने वाले व्यक्तियों की सेवा स्वकुटुम्बी संगठन किया करते थे। भले ही खून का रिश्ता यथार्थ न होकर काल्पनिक रहा हो, परन्तु इन सदस्यों में स्वकुटुम्बी होने की भावनायें समुचित रूप से स्वाभाविक होती थीं। एक समान आजीविका अर्जन करने वाले एवं समान आर्थिक उद्देश्य वाले व्यक्ति व्यापार एवं कारीगरों के संगठनों, व्यापार मंडल एवं मजदूर संगठनों के अन्तर्गत संगठित हो गये। खुले रूप से कार्य करने वाले इन सब संगठनों को सक्रिय रूप से सहायता प्रदान की जाने लगी। दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रशासन चीनियों का निरीक्षण एवं उनसे संसर्ग करने हेतु इन संगठनों को प्रायः अर्ध सरकारी मान्यता प्रदान करने लगा। व्यापार मंडल को विशेष तौर से चीनी समुदाय की मांगे सरकार तक पहुंचाने एवं सरकार की नीतियों को चीनी समुदाय को बताने एवं समझाने वाली संस्थायें माना जाने लगा। चीन की साम्राज्यवादी एवं गणतंत्रवादी सरकारों ने भी व्यापारमंडल का उपयोग इसी रूप में किया।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में चीनी केवल संख्या में ही नहीं बढ़े बल्कि आर्थिक रूप से भी सशक्त हुए। दक्षिण-पूर्व एशिया के अधिकांश व्यापार पर सर्वोच्च रूप से चीनियों के अधिकार की प्रक्रिया शायद इतिहास की किसी ऐसी अनजानी तारीख से शुरू हुई थी जब प्रथम चीनी अप्रवासी ने वहां व्यवसाय करना शुरू किया था। इसलिए अधिक संख्या में अप्रवासन के फलस्वरूप जो विकास हुआ था वह नये प्रकार का न होकर नये स्वर का था। करीब पिछली सदी के मध्य से चीनी पहले की अपेक्षा अधिक संख्या एवं अधिक गति से आर्थिक प्रगति की दिशा में बढ़े। जब पश्चिमी पूंजी ने आयात के लिए मूल उत्पादकों का उत्पादन बढ़ाया तो बिचौलिये चीनी व्यापारी को और अधिक लाभ होने लगा। जब कुछ क्षेत्रों में अपेक्षित रूप से सम्पन्नता में बढ़ोत्तरी हुई तो चीनी खुदरा व्यापारियों के ग्राहकों की संख्या बढ़ने लगी। जब भीतरी प्रदेश में शान्ति स्थापना एवं सरल प्रशासन क्रिया में सुधार हुआ तो चीनी व्यापारियों के व्यापारिक क्षेत्र में बढ़ोत्तरी हुई। फिर भी यह जटिल प्रश्न रह जाता है कि अन्य व्यक्तियों के बजाय चीनियों ने ही क्यों इन आर्थिक अवसरों को देखा और उन पर अपना अधिकार जमाया।

सिवाय बर्मा के, जहां व्यापार के क्षेत्र में भारतीयों का प्रभुत्व था और कम्बोडिया एवं दूरवर्ती लाओस में जहां वियतनामियों को इसी प्रकार की सफलता प्राप्त थी, अन्य कहीं भी चीनियों को अपने व्यवसाय सम्बन्धी उत्थान में अधिक चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ा। उद्यम एवं मितव्ययिता चीनियों को ऐसे बहुमूल्य उपहार स्वरूप प्राप्त थे जिनका स्पष्टीकरण करना बहुत कठिन है। चीनी अधिकारियों की अपनी व्यवस्था करने सम्बन्धी क्षमता एवं संसर्ग सम्बन्धी प्रणालियों से भी काफी सहायता प्राप्त हुई। इसके अलावा यह भी सच है कि आप्रवासी सही स्थान पर सही समय पर पहुंचे।

उत्प्रवासन के कारणों का भी इसमें काफी अधिक निर्णायक भूमिका थी। पारम्परिक रूप से रोज़गार की तलाश एवं पुरातन काल से चले आ रहे दमनों से उत्पीड़ित समुद्रपार आये हुए आप्रवासी ऐसी गतिविधियां कर सकते थे जिनको करना उनके गांववासी भाइयों के लिये प्रायः दुर्लभ था। पृष्ठभूमि से किसान होते हुए भी प्रवासियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया में सामान्य रूप से खेती का कार्य करने का प्रयास नहीं [illegible] पूंजी की

कमी एवं पारिवारिक खेतों में सहायता करने हेतु बीवी एवं बच्चों की अनुपस्थिति, यह सब कारण चीनी काश्तकारों के इस क्षेत्र में स्थापित होने में अवरोधक थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि चीनियों का अप्रवासन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्तियों के प्रतिरोपण करने से भी अधिक था। यह खेतों से शहर की तरफ था जो आधुनिक आर्थिक विकास की एक विशेषता है। चीनियों ने केवल देश ही नहीं बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों को भी छोड़ दिया। अयनमंडलों में पहुंचकर कुछ समय तक सदानों एवं निजी संपत्तियों पर मजदूर के रूप में कार्य करने के पश्चात् अधिकांश समुद्र पार आये चीनी शहरी क्षेत्रों में जीविका अर्जन के लिए आकर्षित हो गये। किसान एवं कुलीन वर्गीय, दोनों सामाजिक स्तर के मूल निवासी अधिकांश समय तक अपनी परंपराओं से चिपके रहे और किसी प्रकार के आर्थिक प्रयास करने हेतु तैयार नहीं थे।

मूल निवासी किसानों को विदेशी प्रकार के लगने वाले जीविका उपार्जनों में संलग्न होकर एवं पश्चिमी और दक्षिण-पूर्व एशिया के कुलीन वर्गों के मातहत प्रकार्यों का अनुपालन करके चीनियों ने आर्थिक रूप से मध्यवर्गीय स्थान प्राप्त कर लिया। उनमें से हजारों की संख्या में हल्के औद्योगिक एवं नौकरी में कार्यरत हो गए परन्तु अधिकतर, जो ज्यादा ओजस्वी थे, व्यवसाय में लगे हुए थे। अधिकांश देशों का आन्तरिक व्यवसाय ज्यादातर चीनियों के हाथों में था। मूल उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं तक बड़े पश्चिमी व्यापारिक संस्थान चीनी बिचौलियों के बिना नहीं पहुंच सकते थे और न ही स्थानीय उत्पादन चीनियों के बिना ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जा सकता था। अप्रवासी व्यापारी के लिए किसी भी प्रकार का व्यवसायिक लेन-देन निम्न स्तर का नहीं था और कुछ समय बाद ऐसे बहुत कम उद्यम थे जिनके लिए चीनी पूंजीपति या व्यवस्थापक प्रयास नहीं कर सकते थे।

4.3 राष्ट्रवाद का उदय

उन्नीसवीं सदी के समापन के करीब समुद्र पार आये चीनियों में एक राजनैतिक जागरूकता का उदय हुआ जो अनेक दशकों के परिवर्तन के बावजूद अब तक चला आ रहा है। इस प्रक्रिया की शुरुआत को विदेशी चीनियों के बीच राष्ट्रवाद की उत्पत्ति कहा जाता है। उदासीन रूप से चीनी संस्कृति एवं भूमि के प्रति संवेदनात्मक लगाव की तुलना में कभी-कभी उग्ररूप से चीनी राष्ट्रवादिता का प्रदर्शन करने का जो व्यवहारिक परिवर्तन हुआ था उसके अनेक जटिल कारण थे। यहां केवल उन तथ्यों का जिक्र करना उपयुक्त होगा जिनके कारण विदेश में रहने वाले चीनी अपने देशवासियों की तरह पिछले सत्तर वर्ष से आज के युग तक राष्ट्रवादी पहलू से जुड़े हुए हैं। चीन को मात्र सांस्कृतिक रूप से देश की याद करने की दृष्टि से नहीं देखा गया बल्कि ऐसा विश्वास किया जाने लगा कि चीनी राष्ट्र अपने विदेशी सदस्यों सहित एक ऐसी सत्ता है जिसके माध्यम से व्यक्तिगत एवं सामूहिक आकांक्षाओं की उपलब्धि की जा सकती है।

शीघ्र ही चीन की गिनती उन राष्ट्रों में की जाने लगी जो सामूहिक रूप से विश्व के बर्बर समाज के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे थे। इस परिवर्तन के लिए सबसे पहले उन राजवंशी कर्मचारियों से प्रेरणा प्राप्त हुई जो चीन को पुनः सक्षम करना चाहते थे। सामाजिक मंडलों को विदेशों में भेजकर वहां वाणिज्य मंडल एवं दूतावासों को स्थापित करने से पीकिंग में विदेशों में बसे चीनियों की समस्याओं एवं क्षमताओं की जानकारी बढ़ी। अधिवासियों की राजस्व उत्पादन की क्षमता ने मंचू दरबार को विशेष रूप से प्रभावित किया। कुलीन दरबार के साथ-साथ रूढ़िवादी सुधारकों ने भी विदेश में बसे चीनियों को आधुनिकीकरण के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति सेना में भर्ती करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही सुन यात-सेन के नेतृत्व में क्रांतिकारी संगठन अप्रवासी चीनियों का प्रेरणा स्रोत बन गया।

विदेशों में चीनी राष्ट्रवाद चीन को उसके पिछड़ेपन से बाहर निकालने की दिशा में निर्देशित था। सुनयातसेन के सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के, अस्पष्ट रूप से चरणबद्ध, कार्यक्रम को चीनियों ने पसन्द किया। क्रान्तिकारी कोष में धन आने लगा और समूचे दक्षिण-पूर्व एशिया में क्रांतिकारी पार्टी की इकाइयां स्थापित हो गईं। यह तर्क देना गलत नहीं होगा कि विदेशों में बसे चीनियों की मदद के बिना वंशवाद का विनाश काफी देर से हुआ होता। 1911 की क्रांति, 1949 से दरअसल, विपरीत, विदेशों में रह रहे चीनियों के राष्ट्रवाद की ही अभिव्यक्ति थी। दूसरे विश्व युद्ध तक, सुनयातसेन की पार्टी, जिसे अब कुओमिंगतांग कहा जाता है, विदेशों में रह रहे चीनियों की वफादारी का केन्द्र-बिन्दु थी।

बीसवीं शताब्दी के दो घटनाक्रम, जोकि एक दूसरे के ही परिणाम थे, विदेशों में रह रहे चीनियों के बीच क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के उदय का साधन बने। आधुनिकृत स्कूल प्रणाली, जोकि इस शताब्दी की शुरुआत के साथ ही शुरू हुई थी, तथा मंडेरिन चीनी भाषा का अप्रवासी चीनियों की भाषा के रूप में बढ़ता हुआ प्रयोग, राष्ट्रवाद के वाहक रहे हैं। कक्षाओं से की जाने वाली राजनैतिक से अधिक प्रमुखता, दक्षिण-पूर्व एशियाई चीनियों की राष्ट्रवादी एकजुटता में थी। स्कूलों में बॉयकाट, प्रदर्शन, यहां तक कि हिंसा को भी संगठित किया गया। विदेशों में बसे चीनियों के राष्ट्रवाद की भाषा, इन स्कूलों में सीखी गई मैन्डेरिन थी। चीनी लोग, दक्षिण-पूर्व एशिया के, मलेशिया जैसे, उन स्थानों में राजनैतिक रूप से सबसे ज्यादा शक्तिशाली थे, जिनमें उनके स्कूल फल-फूल रहे थे।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: i) नीचे दिये गए स्थान पर अपने उत्तर दीजिए।
ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए गये उत्तर के साथ कीजिए।

1) दक्षिण-पूर्वी एशिया के किस देश में चीनी औपनिवेशिक शासन काफी लम्बे अर्से तक बना रहा।
   क) इण्डोनेशिया
   ख) थाईलैण्ड
   ग) वियतनाम
   घ) कम्बोडिया

2) उत्तर-पूर्वी एशिया में पश्चिमी उपनिवेशवाद की शुरुआत निम्नलिखित पर पुर्तगाली कब्जे के साथ हुई :
   क) सिंगापुर
   ख) मलक्का
   ग) मोरोक्को
   घ) पेनांग

3) चीनी उत्प्रवासियों पर कुली-व्यापार के प्रभाव की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 जापानी पराधीनता

चूंकि दक्षिण-पूर्व एशिया में अधिकांश चीनी लोगों का पश्चिमी औपनिवेशिक शासन के साथ सीधा तथा रोजाना का संपर्क था, अतः पूर्वजों की भूमि में अर्ध-उपनिवेशवाद खासतौर पर आक्रामक रहा। जैसे-जैसे निर्वासित लोग चीन से सम्मान एवं सुरक्षा प्राप्त करने की आशा करने लगे, विदेशी लोग खासतौर से जापानी आतंक से चौकन्ने हो गए। साम्राज्यवाद पर अंकुश लगाने तथा जापान से रक्षा करने के लिए लोग कुओमिंतांग की तरफ देखने लगे।

दक्षिण-पूर्व एशिया में कुछ चीनियों के लिये, साम्राज्यवाद के विरुद्ध तीव्र शत्रुता तथा जापानी विस्तारण के प्रति खतरे की भावना के चलते, साम्यवाद के लिए अनुकूल माहौल तैयार हुआ। विदेशों में, खासतौर से सिंगापुर तथा मलाया में रह रहे कट्टर राष्ट्रवादी चीनी युवकों के बीच से कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं को भर्ती किये जाने में तेजी आई तथा मजदूर आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति का इस्तेमाल कम्युनिस्ट आदर्शों के लिये करने के प्रयास किये गये।

दक्षिण-पूर्व एशिया पर जापान की विजय तथा उसके शासन ने चीनियों पर बर्बर प्रहार किये। औपनिवेशिक शासन, जिसके तहत, उत्प्रवासियों ने प्रगति की थी और विश्व-व्यापार, जिसके आधीन वे अंततः अपने जीवन-यापन के लिए निर्भर थे, ध्वस्त हो चुके थे। युद्ध-काल के अलगाव के चलते

क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में ठहराव आ गया था। जापानी सैन्य-प्रशासन अनुपयुक्त और सबसे खराब था, इसकी कारगुजारियों का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता था। बदनाम सरकार तथा आर्थिक गिरावट ही मात्र ऐसी विनाश लीलाएं नहीं थी जिन्होंने युद्ध के दौरान दक्षिण-पूर्व एशिया में चीनियों को प्रभावित किया। जापानियों ने चुन-चुन कर चीनी बाशिन्दों पर अकथनीय जुल्म किए। जापानियों द्वारा हजारों चीनियों का कत्लेआम किया गया। अमीर चीनियों से जबरन धन छीन लिया गया। धन को छिपाकर रखने वाले संदेहास्पद व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया, उन्हें यातनाएं दी गईं और उनकी हत्या कर दी गई। चीनी गुरिल्ला समूहों का, उनके फिलिपिनों सहयोगियों की तरह ही, पीछा किया गया और उनसे लोहा लिया गया। जापानी कब्जे के चलते सभी को दुख झेलने पड़े और अनेक लोगों की जानें गईं। जापानियों के साथ चीनियों का गठबंधन आमतौर पर दिखाई नहीं देता था क्योंकि अधिकांशतः अधिवासी लोग चीनी राष्ट्रीय मुक्ति के आदर्शों से प्रतिबद्ध थे और एक वजह यह भी थी कि जापानियों को चीनियों की जरूरत भी कम थी और वे उन पर भरोसा भी कम करते थे।

अधिवासी चीनियों के प्रति जापानियों का अविश्वास निराधार कतई नहीं था। अधिवासियों ने जापान के विरुद्ध चीनी युद्ध तिजोरी के लिए अकूत धन का योगदान किया था। राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति चीनी आबादी का कोई अन्य हिस्सा इतना अधिक समर्पित नहीं था जितना कि दक्षिण-पूर्व एशिया में रहने वाले चीनी लोग थे, युद्ध में काफी लम्बे समय तक, दक्षिण-पूर्व एशिया में चीनी तथा फिलिपीन्स के लोग ही थे जिन्होंने जापानियों का डटकर मुकाबला किया। मलाया में, जहां चीनियों का अनुपात एवं राष्ट्रवाद सबसे अधिक प्रबल थे, जापान के विरुद्ध संघर्ष तभी से शुरू हो गया था जबकि आक्रांताओं ने प्रायद्वीप में प्रवेश किया और यह संघर्ष जापानी कब्जे की समूची अवधि के दौरान जारी रहा। सबसे अधिक प्रभावी गुरिल्ले कुछ हजार लोगों के अल्पसंख्यक समूह वाली सुगठित चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के तहत संगठित थे और उसके नेतृत्व में काम कर रहे थे। उस सेना के पुराने लोग 1948 में साम्राज्यवादी शक्ति से लोहा लेने के लिए जंगलों में लौट गए तथा 1957 के बाद उन्होंने मलाया की सत्ता को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया।

मलाया में लगभग दो दशकों तक सैन्य कार्यवाही को संगठित करके जारी रखने को कम्युनिस्टों की सक्षमता उनकी संख्या के बजाय उनके साधनसंपन्न होने तथा अनुशासन की द्योतक है। शायद युद्ध पूर्व वर्षों के दौरान गुप्त कार्यवाही के चलते कम्युनिस्टों ने संचार तथा गुप्तचर तकनीकों को अर्जित कर लिया था जोकि गुरिल्ला सेना को कायम रखने के लिए आवश्यक होती है। यह माना जाता है कि आंशिक तौर पर फण्ड तथा आपूर्तियां, शहरी चीनियों पर हल्ला बोलकर हासिल की गई थीं। भोजन, स्थानीय गुप्तचर सेवा, तथा कभी जंगल के छोर पर चीनी किसानों से आवास उपलब्ध हो जाता था। जापानी कब्जे के काल में आर्थिक गिरावट ने अनेक लोगों को शहरी केन्द्रों से दूर लावारिस पड़ी भूमि पर छोटी-मोटी खेती करने के लिए बाध्य कर दिया। खेत पर अपने गैर-कानूनी कब्जे के कारण, अधिवासी कहलाने वाले वे लोग जापान के विरुद्ध युद्ध के दौरान तथा बाद में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों तथा मलाया के प्राधिकारियों के खिलाफ कम्युनिस्टों के लिए अति-मूल्यवान सिद्ध हुए। छापामारों को भोजन तथा सूचनाओं से वंचित करने के लिए अधिवासियों का पुनर्वास करके, ब्रिटिश तथा मलाया के प्राधिकारी उन्हें पराजित कर सकते थे।

4.5 युद्धोत्तर काल : आरंभिक चरण

जापान के पराजित होने पर विदेशी चीनियों के लिए नई अनिश्चितताएं पैदा हो गईं। युद्ध के द्वारा दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रवाद के क्रान्तिकारी विस्फोट ने अनेक लोगों के लिए खतरा पैदा कर दिया तथा सभी के लिए पुनः समायोजन को जरूरी बना दिया। अनेक स्वदेशी दक्षिण-पूर्व एशियाई लोगों के बीच चीनियों के प्रति घृणा लम्बे समय से सुलग रही थी। औपनिवेशिक शासन युद्ध के पहले बहुल समाजों में चीनी अधिवासियों के, स्वदेशी-संताप का प्रत्यक्ष निशाना बने रहने पर, आमतौर पर संतुष्ट एवं निश्चिन्त रहता था। जापानियों ने सजग रूप से परस्पर सांप्रदायिक कलह को बढ़ाने का काम किया। चीनियों तथा उनके पड़ोसियों के बीच दरार इतनी गहरी कभी नहीं रही थी जितनी कि जापानी-पतन तथा कानून-लागू किए जाने की पुनःस्थापना के बीच अराजकता के दौर में हो गई थी।

दक्षिण-पूर्व एशिया के राष्ट्रवादी क्रान्तिकारियों ने उपनिवेशवाद से मुक्ति तथा आर्थिक प्रगति, दोनों के लिए आह्वान किया, जबकि उन्होंने चीनियों को पश्चिमी शोषण के एजेंट तथा स्वदेशी दक्षिण-पूर्व एशियाई लोगों की भौतिक-प्रगति में बाधा माना। इंडोनेशिया में चीनियों के विरुद्ध प्रतिशोध सबसे अधिक बर्बर रहा तथा अन्य क्षेत्रों में दमन अपेक्षाकृत कम हिंसक रहा। सभी उपनिवेशों में, यह उम्मीद की गई थी कि पश्चिमी शासन के अंत से चीनियों की वाणिज्यिक पकड़ ढीली पड़ जाएगी। यह देखा गया है कि स्वदेशी तौर पर आर्थिक राष्ट्रवाद में कुछ हद तक स्वतंत्र दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी राजनैतिक कार्यक्रमों ने भूमिका निभाई है, तथा समूचे क्षेत्र में, चीनियों को, वैधानिक भेद की नीति, जोकि प्रायः पारदर्शी अयोग्यता ही होती थी, से लेकर पूर्व-अधिकृत संपत्ति जब्त कर लेने व अवसरों से वंचित रखे जाने तक, अनेक अवरोधों को झेलना पड़ा।

उत्तर-औपनिवेशिक दक्षिण-पूर्व एशिया ने चीनियों के सामने एक नई परिस्थिति पेश की जिसके तहत विपरीत स्थिति से निपटने तथा अप्रत्याशित सफलताएं हासिल करने के लिए उनके लिए दोबारा से समन्वय करना जरूरी हो गया। स्वतंत्र सरकारों ने एक स्वर से घरेलू उद्यमशीलता को बढ़ावा दिए जाने की मांग की। इससे चीनी समुदाय के अधिकांश लोगों के सम्मुख अवसरों की बजाय उलझने उपस्थित हो गईं। कुछ वर्षों तक दक्षिण-पूर्व एशिया का वाणिज्य प्रायः चीनी लोगों के हाथों में बना रहा। हालांकि, देश के बाहर के चीनी जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह ही, इसमें भी क्षेत्र के देशों के बीच भिन्नताएं रहीं।

4.6 जनवादी गणतंत्र तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के चीनी लोग

स्थापना के आरंभिक वर्षों में, कुओमिंतांग की तरह ही, चीन के जनवादी गणतंत्र की सरकार ने विदेशों में अधिवास कर रहे चीनियों से समर्थन हासिल करने का प्रयास किया। छात्रों तथा पर्यटकों से चीन जाने का अनुरोध किया गया, प्राचीन संस्कृति का आदर किया गया, विदेशी पूंजी को आकर्षित किया गया, विदेशों में रह रहे चीनियों को मेजबान सरकारों के साथ कठिनाइयों को दूर करने में दृढ़ समर्थन दिए जाने का वायदा किया गया। देश के बाहर भेजे जाने वाले कम्युनिस्ट प्रकाशनों में पीकिंग द्वारा अधिवासी चीनियों के बीच चीनी राष्ट्रवाद की अपीलों तथा चीन की बढ़ती आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति पर भी काफी बल दिया गया। यह दावा कि कम्युनिस्टों ने चीन को साम्राज्यवाद से मुक्त कराया है, इस तथ्य की तुलना में अधिक मान्यता प्राप्त कर गया, कि चीन सामंतवाद से मुक्त हुआ था। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भूस्वामीवाद दक्षिण-पूर्व एशिया में चीनियों के दुखों का स्रोत नहीं था। दरअसल निर्वासित चीनियों के लिए, अपने गांव में भूमि के स्वामित्व के जरिए, निर्मल बने एवं प्रतिष्ठा प्राप्त प्राचीन समय का सपना देखना, एक परंपरा थी। शुरू में पीकिंग सरकार इस मामले में सतर्क थी कि देश के बाहर रह रहे चीनियों की भूमि का पुनर्वितरण करके, उन्हें नाराज न किया जाए, किन्तु आगे चलकर उसे एकसमान भूमि-पुनर्वितरण नीति का अनुसरण करना पड़ा, जिससे विदेश में रह रहे चीनी अधिवासियों के आगे उसकी मंशाएं बिल्कुल स्पष्ट हो गईं।

बाद के वर्षों में, चीनी सरकार द्वारा दूसरे देशों में रह रहे चीनियों को संतुष्ट करने के अन्य कई उपाए किए गए। दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रसारित होने वाले रेडियो कार्यक्रम शुरू किए गए। समाचार, टिप्पणियां तथा संगीत प्रसारित किया गया तथा इसके अतिरिक्त रेडियो के जरिए उन लोगों के लिए मैण्डेरिन चीनी भाषा में पाठ पढ़ाए गए जिन्हें भाषा का ज्ञान नहीं था। इसी तरह, विभिन्न क्षेत्रों में चीन की उपलब्धियों, खासकर विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में, प्रमुखता के साथ प्रसारित किया गया। दूसरे शब्दों में, चीनी सरकार ने यह सुनिश्चत करने के हर संभव उपाय किए कि अप्रवासी चीनी अपनी मातृभूमि को प्यार करते रहें।

सांस्कृतिक क्रांति के दौरान, जबकि चीन अप्रत्याशित राजनैतिक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था, चीनी निजाम ने अन्य विकासशील देशों में जनान्दोलनों एवं विद्रोहों को समर्थन देना शुरू कर दिया। इनमें से प्रमुख दक्षिण-पूर्व एशिया के देश थे जिनमें विशाल चीनी आबादी की मौजूदगी ने इस काम को आसान बना दिया। पीकिंग स्थित चीनी निजाम ने न केवल माओवादी विचारधारा का प्रचार किया बल्कि उन माओवादी संगठनों के साथ पूर्ण एकजुटता व्यक्त की जो इन देशों की मौजूदा सरकारों को उखाड़ फेंकने का प्रयास कर रहे थे। इससे न सिर्फ चीन तथा इन देशों की सरकारों के बीच संबंध

तनावपूर्ण हो गए बेल्कि स्थानीय दक्षिण-पूर्व एशियाई लोगों की नजरों में निर्वासित चीनी लोग संदेहास्पद भी हो गए। उन्हें चीनी सरकार के एजेण्ट के रूप में देखा जाने लगा। इससे लम्बे समय तक जातीय तनाव भी बना रहा। कम्युनिस्ट-विचारधारा तथा चीन में कम्युनिस्ट सरकार के प्रश्न पर चीनियों के भीतर भी मत-विभाजन था।

चीन में सुधार के काल में, अर्थात 1978 से, पीकिंग सरकार ने समूचे विश्व में बिखरे चीनियों की तरफ उदार रुख अपनाना शुरू किया। दक्षिण-पूर्व एशिया में संपन्न व्यापारी समुदायों, खासतौर जातीय चीनियों से, जनवादी गणतंत्र की सरकार निवेशों, तकनीक के हस्तांतरण इत्यादि, की शक्ल में गठबंधनों की आशा रखती थी। अब, जबकि चीन अपने उद्योगों तथा प्रबन्ध प्रणाली का आधुनिकीकरण करने की जल्दी में दिखाई दे रहा है, अन्य बातों के अलावा देश से बाहर रह रहे चीनियों की मदद अत्यधिक स्वागतयोग्य है। अधिकांश दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में संपन्नता एवं जनतांत्रिक सुधारों के साथ ही, जातीय तनाव धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। इससे चीनी आबादी के लिए बेहतर प्रदर्शन कर पाना संभव हो सकेगा। अपनी आर्थिक सामर्थ्य तथा राजनैतिक सुरक्षा की भावना के साथ वे अपनी मातृभूमि के विकास में उल्लेखनीय भूमिका अदा करने की बेहतर स्थिति में होंगे।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से कीजिए।

1) किस तरह राष्ट्रवाद ने विदेशों में रह रहे चीनियों को प्रेरित किया?

.....
.....
.....
.....
.....

2) देश के बाहर रह रहे चीनियों के प्रति चीनी सरकार की नीति का मुख्य जोर किस बात पर था?

.....
.....
.....
.....
.....

4.7 सारांश

प्राचीन काल से ही चीन ने दक्षिण-पूर्वी एशिया कहेलाने वाले क्षेत्र को प्रभावित किया है। वियतनाम को छोड़कर, जिसने अनेक शताब्दियों तक चीनी शासन का अनुभव किया, क्षेत्र के सभी देशों के चीन के साथ व्यापक वाणिज्यिक संपर्क रहे हैं। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में, जब दक्षिण-पूर्व एशिया में पुर्तगालियों ने प्रवेश किया, उस समय भी वहां छोटी संख्या में, खासकर व्यापारी वर्ग के बीच, चीनी पाए जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में जब दक्षिण-पूर्व एशिया रूपान्तरण के दौर में दाखिल हुआ, तो श्रमिकों की मांग बढ़ गई। चीनियों ने बड़ी संख्या में इस क्षेत्र में आना शुरू कर दिया और 1860-1930 के वर्षों के बीच विशाल चीनी-उत्प्रवासन हुआ। उन्हें अत्यधिककठिन तथा कई बार अमानवीय स्थितियों का सामना करना पड़ा। गरीबी तथा घर में भुखमरी के खतरे के चलते चीनी किसान अन्य देशों में रोजगार करने के प्रति आकर्षित हुए। चीनी-उत्प्रवासियों के बीच एक बात आम थी, और वह थी अपनी मातृभूमि के प्रति लगाव। उन्होंने अपने संगठन बना लिए और अपने गरीब रिश्तेदारों की सहायता के लिए घर पर धन भेजने लगे। केवल कठोर परिश्रम के बल पर ही चीन की आर्थिक शक्ति में वृद्धि हुई और वे दक्षिण-पूर्व एशिया के वाणिज्य पर छा गए। चीन में राष्ट्रवाद के उदय ने

देश के बाहर रह रहे चीनियों को राजनैतिक रूप से जागृत कर दिया और वे साम्राज्यवाद-विरोधी, मंचू-विरोधी ताकतों के समर्थन का प्रमुख स्रोत बन गए, जोकि चीन के भीतर सक्रिय थीं। दोनों, कुओमिंतांग तथा कम्युनिस्टों ने उनसे सहायता प्राप्त की। जब दक्षिण-पूर्व एशिया पर जापान का कब्जा हो गया, तो चीनियों को विशेष अमानवीय व्यवहार का निशाना बनाया गया। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद दक्षिण-पूर्व एशिया में उपनिवेशवाद फीका पड़ गया और चीनियों को एक नई परिस्थिति से पुनः तालमेल करना था। इनमें से कुछ देशों में जातीय विद्वेष ने चीनियों को नुकसान पहुंचाया। चीनी-सरकार की नीतियों के कारण भी उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ा। हालांकि, धीरे-धीरे जनतांत्रीकरण तथा क्षेत्र की आर्थिक संपन्नता के साथ ही, यह लगने लगा कि चीनी लोग दक्षिण-पूर्व एशिया में सार्थक भूमिका निभाते रहेंगे।

4.8 शब्दावली

सहस्राब्दि : एक हजार वर्ष की अवधि।

द्वीप समूह : अनेक द्वीपों का समूह।

दास गृह : छोटे, अस्वास्थ्यकर निवास स्थान।

विक्टोरिन : आदर भाव दर्शाना, जैसा कि प्रचलन था।

हैरेटिकल : स्थापित दृष्टिकोण के विरुद्ध दी जाने वाली राय।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विक्टर पर्सेल, द *चाइनीज इन साउथ ईस्ट एशिया* (लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) 1965

ली.ई. विलियम्स, द *फ्यूचर ऑफ ओवरसीज चाइनीज इन साऊथ ईस्ट एशिया* (न्यूयार्क : मैकबु हिल बुक कम्पनी) 1966

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग
2) ब
3) 4.3 का दूसरा पैरा देखिये

बोध प्रश्न 2

1) 4.5 धारा का सारांश
2) 4.6 धारा देखिये

इकाई 5 चीनी क्रांति एवं विचारधारा

संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 चीनी क्रांति की पृष्ठभूमि

- 5.2.1 सुधार आन्दोलन
- 5.2.2 प्रतिक्रांतिकारी युआन शिकाई

5.3 4 मई का आन्दोलन

- 5.3.1 1917 की रूसी क्रांति का प्रभाव
- 5.3.2 चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सी.सी.पी.)

5.4 प्रथम क्रांतिकारी गृहयुद्ध : सुनयातसेन द्वारा सी.पी.सी. से सहयोग

- 5.4.1 30 मई का आन्दोलन
- 5.4.2 च्यांग काई शेक का उदय
- 5.4.3 उत्तरी अभियान
- 5.4.4 सी.पी.सी. के खिलाफ च्यांग काई शेक की कार्यवाही

5.5 दूसरा क्रांतिकारी गृहयुद्ध : कम्युनिस्ट (लाल) सेना की स्थापना

- 5.5.1 शरदकालीन फसल की कटाई के समय का विद्रोह
- 5.5.2 ग्रामीण क्रांतिकारी आधार
- 5.5.3 जापानी आक्रमण
- 5.5.4 च्यांगकाई शेक द्वारा कम्युनिस्टों पर हमला
- 5.5.5 लम्बी यात्रा अभियान
- 5.5.6 जापान विराधी संयुक्त मोर्चा
- 5.5.7 जापान के विरोधी कुओमिन्टांग मोर्चे की असफलता
- 5.5.8 सी.पी.सी. के जापान विरोधी आधार क्षेत्र
- 5.5.9 मुक्त किये गए क्षेत्रों की समस्याएँ
- 5.5.10 जापान पर विजय
- 5.5.11 सी.पी.सी. का सातवाँ सम्मेलन

5.6 तीसरा (अंतिम) क्रांतिकारी गृह-युद्ध : द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद का चीन

- 5.6.1 च्यांग काई शेक की पराजय
- 5.6.2 मुक्त किये गये क्षेत्रों में भूमि सुधार के कार्यक्रम
- 5.6.3 लोकतांत्रिक संयुक्त मोर्चे को विस्तारीकरण
- 5.6.4 मुख्य भूमि की मुक्ति
- 5.6.5 चीन में जनवादी गणतंत्र की स्थापना

5.7 चीनी दर्शन में भौतिकवादी रुझान

- 5.7.1 चीन में मार्क्सवाद की आगमन
- 5.7.2 माओ की विचारधारा की उत्पत्ति
- 5.7.3 माओ-त्से-तंग के विचार

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में उन परिस्थितियों के विषय में चर्चा की गई है, जिनके फलस्वरूप चीन में क्रांति हुई तथा उसके सैद्धान्तिक आधार का निर्माण हुआ। इस विषय की जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होनी चाहिए :

- चीन के आधुनिक इतिहास का पता लगाने में;
- यह समझने में कि साम्राज्यवादी शक्तियों ने किस प्रकार से चीन का शोषण किया;
- 19वीं सदी में चीन में किसानों द्वारा लगातार किये गये विद्रोहों पर चर्चा करने में
- चीन की जनता को जागृत करने में सुधार आन्दोलनों द्वारा किये गये योगदान का मूल्यांकन करने में;
- चीनी क्रांति में सुन-यात-सैन के योगदान का मूल्यांकन करने में;
- चीने क्रांति के कारणों का विश्लेषण करने में;
- क्रांतिकारी गृह-युद्ध से पूर्व की गई कार्यवाहियों को समझने में;
- जापान के विरूद्ध अवरोधक युद्ध में चियांग-काई-शेक की भूमिका पर टिप्पणी करने में;
- क्रांति के सैद्धान्तिक संदर्भ की जानकारी प्राप्त करने में;
- क्रांति के काल में माओ-ज़ीडांग की विचारधारा को समझने में।

5.1 प्रस्तावना

हिमालय पर्वत के उत्तर में स्थित विस्तृत क्षेत्र चीन कहलाता है। विश्व की सबसे पुरानी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले इस देश का करीब 3600 वर्षों का इतिहास संकलित है। ऐतिहासिक विकास के लम्बे काल में चीन की जनता ने एक महान संस्कृति का निर्माण किया था एवं मानव जाति के ज्ञान और संस्कृति के समस्त क्षेत्रों में बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी। इसके प्रगतिकाल में यहाँ की भूमि पर अनेकों राज्यवंशों का शासन रहा था जिनमें माँन्चू राज्यवंश अंतिम था। उन्नीसवीं सदी के मध्य काल से करीब 100 वर्षों के काल में इस देश को अनेकों विदेशी आक्रमणों, बार-बार होने वाली आन्तरिक आर्थिक समस्याओं, प्राय: होने वाले विद्रोहों, लगातार होने वाले सुधार आन्दोलनों एवं दीर्घकालिक क्रान्तिकारी गृहयुद्धों का सामना करना पड़ा था, जिसके फलस्वरूप चीन में जनवादी गणतंत्र की स्थापना हुई थी।

इस इकाई में हम सर्वप्रथम विदेशी आक्रमणों एवं इस विषय पर चर्चा करेंगे कि उन्होने चीन को किस प्रकार तबाह किया था एवं किस प्रकार वहाँ की जनता को क्रोध उन्मुक्त किया था। उसके बाद हम उन आन्दोलनों का अध्ययन करेंगे जिनके फलस्वरूप मंचू राज्यवंश का पतन हुआ था। उसके बाद हम राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक दलों की शक्ति का मूल्यांकन करेंगे। उसके बाद हम कम्युनिस्टों के उत्थान पर ध्यान केन्द्रित करके क्रांन्तिकारी गृहयुद्धों से पूर्व की गई कार्यवाहियों का पता लगायेंगे। शेष में हम उन सिद्धान्तों का विश्लेषण करेंगे जिनके कारण यहाँ की जनता को क्रांन्तिकारी गृहयुद्धों में भाग लेने हेतु प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था ।

5.2 चीनी क्रान्ति की पृष्ठभूमि

लियाओडोन्ग प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में से जूरचिड मूल के एक छोटे से राष्ट्र मंचू ने पीकिन्ग पर अपना अधिकार करके सन् 1644 में चीन के सिंहासन पर मंचू राज्यवंश की स्थापना की थी।

मंचू शासन काल करीब 268 वर्ष तक चला। इस काल में विज्ञान एवं संस्कृति के क्षेत्रों में बहुत महान उपलब्धियाँ हुई थी। मंचुओं की अधीनता में चीन में काफी लम्बे काल तक शान्ति रही एवं आर्थिक रूप में काफी सम्पन्नता प्राप्त हुई। फिर भी उन्नीसवीं सदी के आरंम्भिक काल में विदेशी शक्तियों के आगमन के बाद से समस्याएं उत्पन्न होनी शुरू हो गयी थी। बार-बार के विदेशी आक्रमणों के साथ ही कृषि सम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था में गतिहीनता आ जाने के कारण दीर्घकालीन आर्थिक रूपी समस्याएं उत्पन्न हो गई थी। क्रमानुगत रूप से अंकुश शासकों द्वारा राज्य अधिकार प्राप्त करने, राजमहलों के षड्यंत्रों, एवं सुधार आन्दोलनों के प्रति एक धनी विधवा सिक्सी के नेतृत्व में रूढ़िवादी दलों द्वारा की गई प्रतिकूल गतिविधियों के कारण परिस्थितियां और अधिक खराब हो गई थी।

सन् 1840 में हुए अफीम युद्ध से चीन में विदेशियों द्वारा अंत: प्रवेश की शुरुआत हुई थी। चीन के सीमाँन्त प्रदेशों में अंग्रेजों द्वारा अवैध रूप के अफीम के व्यापार को काफी लम्बे काल से किये जाने के मुद्दे पर चीन एवं ब्रिटेन के बीच युद्ध हुआ था। इस युद्ध में चीन की पराजय हुई थी और सन् 1841 में चीन को एक अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर कर के अपने पाँच बन्दरगाह ब्रिटेन के लिये व्यापार हेतु खोलने पड़े थे एवं होन्गकांग को अंग्रेजों के अधिकार में देने के पश्चात् एक बहुत बड़ी धनराशि हरजाने के रूप में देनी पड़ी थी। अंग्रेजों की सफलता को देखकर अन्य विदेशी ताकतों ने भी अधिकार प्राप्त करने हेतु अभियान शुरू कर दिये। सन् 1844 में यू.एस.ए. एवं फ्रांस ने चीन को इस प्रकार के लाभ देने हेतु बाध्य कर दिया, जिस प्रकार के लाभ ब्रिटेन को प्रदान किये गये थे। इसके पश्चात् चीन में अंत: प्रवेश की छीना-झपटी में रूस एवं जापान भी सम्मिलित हो गये। एक या दो असमान रूप की संधियों पर हस्ताक्षर कर देने के पश्चात् भी विदेशी ताकतों की अनुचित माँगों को समापन नहीं हुआ। चीन की धन सम्पन्नता को हड़पने हेतु उनकी छीना-झपटी का अभियान निरन्तर रूप से चलता रहा जिससे कभी-कभी चीन एवं विदेशी ताकतों (अकेले या सबको मिलाकर) के साथ युद्ध होने लगे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल में यू.एस.ए. न मुक्त व्यापार की नीति का सुझाव दिया था जिसे अन्य बड़ी ताकतों ने तुरन्त स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार खुली व्यापार नीति के संदर्भ में चीन, बड़ी ताकतों के प्रभाव में आकर विभाजित हो गया था।

ब्रिटेन एवं अन्य बड़ी ताकतों द्वारा चीन पर दबाव डालने के प्रति स्वरूप, चीन में अनेक आन्तरिक समस्याएं उत्पन्न हो गई थी। कृषि के क्षेत्र में गतिहीनता आ जाने के कारण एवं भूमि पर बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव के कारण किसानों का जीवनस्तर काफी नीचे गिर गया और उनके अन्दर दुखों के प्रति जागरुकता का और अधिक विकास हुआ। सन् 1846 से 1848 के काल में क्रमानुगत रूप में अपने वाली बाढ़ों एवं अकालों के कारण आर्थिक व्यवस्था और खराब हो गई, जिसके कारण प्राय: छितरे रूप में स्थानीय उपद्रव होने शुरू हो गये। इन उपद्रवों ने मिलकर एक बहुत बड़े रूप के राष्ट्रीय विद्रोह का रूप धारण कर लिया था। जिसको इतिहास में टाईपिन्ग (महान क्रान्ति) विद्रोह के नाम से जाना जाता है। इस विद्रोह में सैनिकों के सशक्त जत्थों को विकसित किया गया, अनेक शहरों एवं कस्बों पर कब्जा कर लिया गया, अपनी स्वयं की सरकार की स्थापना की गई एवं सन् 1851 से देश के विशाल क्षेत्रों पर अपना शासन लागू कर दिया। विद्रोही ने विदेशियों एवं आन्तरिक शोषण करने वाले दलों दोनों पर हमले करना शुरू कर दिया। उन्होने स्वतंत्र होने की माँग की एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति को आम जनता में वितरित करने का भी दावा किया।

उस समय शासन करने वाले मंचू राजा एवं विदेशी ताकतों के संयुक्त दलों ने मिलकर इस विद्रोह को कुचल दिया था। उनके नेताओं एवं समर्थकों के मध्य आन्तरिक रूप से तीव्र मतभेदों के कारण विद्रोहियों की सम्पन्नता में काफी गिरावट आ गई। फिर भी, टाईपिन्ग का आन्दोलन करीब एक दशक तक चलता रहा था और चीनी समाज में विद्रोही गतिविधियों हेतु उत्साह जागृत कर के अपनी छाप छोड़ गया था।

उन्नीसवीं सदी के आखिरी काल में चीन के अन्दर पश्चिम द्वारा हस्तक्षेप करने से देश के अनेक भागों में आधुनिक उद्योगों का विकास हुआ था। इसके फलस्वरूप एक छोटे से व्यापारी वर्ग एवं मजदूर वर्ग का उद्गमन हुआ। इस वर्ग से, उदारवादी विचारों से प्रेरित होकर, एक बहुत बड़ी संख्या में सुधारकों के दल का विकास हुआ। उन्नीसवीं सदी का प्रतिभासम्पन्न समाज इन उदारवादी लोकतांत्रिक सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ एवं पुरानी मृतप्राय: आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में सुधार किये जाने की माँग करने लगा।

5.2.1 सुधार आन्दोलन

सुधारकों ने चीन को एक प्रभावशाली आधुनिक राज्य के रूप में परिवर्तित करने की मांग की। कुछ प्रतिभासम्पन्न नेताओं के एक वर्ग के प्रभाव के अन्तर्गत यहाँ के सम्राट ने अनेक प्रकार के सुधारों को लागू करने की घोषणा की थी, जिनमें सरकारी व्यवस्था से लेकर विज्ञान के विकास इत्यादि से सम्बन्धित सभी विषय शामिल थे। सुधार आन्दोलन से रूढ़िवादी दल क्रोधित हो गये। एक धनी विधवा (डौवजर एम्प्रैस) जो इन दलों की अध्यक्ष थी, उसने इसके प्रतिकार स्वरूप सन् 1898 के

सितम्बर माह में तख्ता पलटने का षड़यंत्र कर सम्राट को बन्दी बना लिया, सुधारों सम्बन्धी राज्य आज्ञाओं को रद्द कर दिया एवं सुधारकों को कारावास में बन्द करवा दिया। चूंकि सुधारों का काल केवल सौ दिनों का था, इसलिये इतिहास में इस आन्दोलन का सौ दिनों का सुधार आन्दोलन कहा जाता है।

सन् 1897-98 के सुधार आन्दोलन की विफलता, चीन में दमन करने वाली बड़ी ताकतों की ताकत एवं ईसाई पादरियों की ग्रामीण क्षेत्रों में धर्म परिवर्तन हेतु किये जाने वाली भूमिका ने चीनी जनता को क्रोध उन्मुक्त कर दिया। इस शताब्दी के अन्तिम क्षणों में यीहैटुआन आन्दोलन या बौक्स विद्रोह के रूप में जनता का रोष भड़क उठा। कठोर दमन के बावजूद इस आन्दोलन ने शीघ्र ही राष्ट्र स्तर पर विदेशी विरोधी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। इसके प्रतिस्वरूप विदेशी ताकतों ने गठबंधन कर के मंजू सेनाओं की सहायता से बौक्सर विद्रोह को कुचल दिया।

सन् 1901 में बौक्सर प्रोटोकेल नामक अपमानजनक संधि पर चीनियों को बाध्य होना पड़ा था। इस संधि पर हस्ताक्षर कर देने से मंचू सरकार का स्तर गिर कर सामाज्यवादियों के प्रतिनिधि (दलाल) के रूप में हो गया था। साम्राज्यवादियों द्वारा निरंन्तर रूप से किये जाने वाले आक्रमणों एवं साम्राज्यवादियों से युद्ध करने हेतु मंचू राज्यवंश की उदासीनता ने मिल कर चीन में विद्रोह हेतु आदर्श परिस्थितियों का लाभ उठाया एवं विद्रोह की तैयारी करने हेतु अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। सन-यात-सैन (1866-1925) एक सिद्धान्तवादी एवं विद्रोही आन्दोलन के नेता के रूप में उभर कर आया। सन् 1894 में उस में चीनी पुनरुद्धार समाज की स्थापना की थी। उसके बाद क्रमानुगत रूप से उदारवादी लोकतांत्रिक सिद्धान्तों का प्रचार करने हेतु अनेक संगठनों का उद्गमन हुआ। इन संगठनों का मुख्य उद्देश्य मंचू राज्यवंश को उखाड़ फेंकना एवं एक लोकतांत्रीय व्यवस्था की सरकार को स्थापित करना था। सन-याल-सैन शीघ्र ही सब उदारवादियों का मिलन केन्द्र बन गया और सन् 1905 में उन सब ने मिलकर सुन-यात-सेन की अध्यक्षता में चीनी क्रान्तिकारी संघ की स्थापना की। इस संघ का उद्देश्य मंचू राज्यवंश को उखाड़ फेंकना, विदेशियों के चंगुल से चीन का पुनरुद्धार करवाना, गणतंत्र की स्थापना करना एवं भूमि पर समान स्वामित्व प्रदान करवाना था। संघ ने धीरे-धीरे अपनी संगठन सम्बन्धी गतिविधियों का विस्तार सारे चीन में कर लिया था एवं "पीपुल्स जनरल" नामक अपने एक मुखपत्र की स्थापना की थी। इस पत्र के सर्वप्रथम सम्पादन में ही सुन-यात-सेन ने अपने मशहूर "जनता की तीन सिद्धान्तों" का विकास किया था – राष्ट्रवाद का नियम, लोकतंत्रवाद का नियम एवं जीवनयापन का नियम, जिनको मिलाकर बीसवीं सदी के प्रारंम्भिक दशकों में हुए चीन के विद्रोहों को सैद्धान्तिक रूपी मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ था। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु इसने अनेक सशस्त्र अभियानों का नेतृत्व किया था। प्रारंम्भिक स्तरों पर अनेकों प्रकार की रुकावटों एवं शासन करने वाले राज्यवंश द्वारा किये गये कठोर दमन के बावजूद संघ ने सन् 1911 में अनेक लड़ाइयों में विजय प्राप्त की थी। इन विजयों द्वारा प्रोत्साहित होकर अनेक प्राँन्त मंचू राज्यवंश के अधिकार से निकल गये। सन् 1911 के क्रिसमस सप्ताह में मुक्त किये गये प्रान्तों के नेतागण नानजिंग में, एक अन्तरिम रूप की केन्द्रीय सरकार का गठन करने हेतु एकत्रित हुए। सुन-यात-सेन को नई सरकार का अध्यक्ष चुना गया था। सन् 1912 के नये वर्ष के अवसर पर शपथ ग्रहण करने के पश्चात डा. सुन-यात-सेन ने चीन के लिये एक उदारवादी लोकतांत्रिक संविधान की घोषणा की थी।

5.2.2 प्रतिक्रांतिकारी युआन शिकाई

अन्तरिम सरकार की स्थापना से गिन्ग (मंचू) साम्राज्य एवं उसके योद्धाओं के दस्तों को बहुत ज़बरदस्त झटका लगा। गिंन्ग साम्राज्य की सैना के अध्यक्ष युआन शिकाई ने सत्ता हड़पने का षड़यंत्र तैयार किया। वह अपने समर्थकों के साथ संघ में शामिल हो गया। साम्राज्यवादियों की अनुमंत्रण से उसने अन्तिम गिन्ग (मंचू) सम्राट को गद्दी छोड़ने के लिये बाध्य कर दिया। इस कार्यवाही से वह काफी लोकप्रिय हो गया एवं उत्तर क्षेत्र के युद्ध सामन्तों के समर्थन से उसने नानजिंग सरकार को स्वयं को सत्ता सौंपने हेतु विवश कर दिया। उसके बाद उसने स्वयं को केन्द्रीय सरकार के अध्यक्ष के रूप में चुने जाने का षड़यंत्र बनाया और सुन-यात-सैन को अपना त्यागपत्र देने हेतु बाध्य कर दिया। साम्राज्यवादी सत्ताओं को अतिरिक्त लाभ प्रदान करके युआन ने उनके समर्थन को खरीद लिया। शीघ्र ही युआन की लोकप्रियता समाप्त हो गई और हतोसाहित होने के कारण सन् 1916 में उसकी मृत्यु हो गई। डुआन किवी ने युआन के उत्तराधिकारी के रूप में कार्यभार ग्रहण किया।

डुआन शुरू से ही एक निरंकुश शासक बन गया। उसने संविधान एवं लोकसभा, दोनों को निलम्बित कर दिया। सुन-यात-सैन फिर भी निष्क्रिय नहीं रहा। उसने डुआन विरोधी आन्दोलन का संगठन किया परन्तु युद्ध सामन्तों एवं विदेशी ताकतों की कूट नीतियों के कारण सैन को तुरन्त सफलता प्राप्त न हो सकी।

5.3 4 मई का आन्दोलन

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) में जर्मनी की करारी पराजय हुई थी। चीन समेत समस्त विजयी राज्यों द्वारा जनवरी सन् 1919 में पैरिस में एक शान्ति सम्मेलन का आयोजन किया गया था। चीन में विदेशी ताकतों के विशेष अधिकारों को समाप्त किये जाने की चीन की माँग को सम्मेलन द्वारा ठुकरा दिया गया था एवं जर्मनी को चीन में प्राप्त विशेष अधिकारों को स्थानान्तरित करके जापान को प्रदान कर दिया था। पैरिस सम्मेलन के इस निर्णय ने चीन की समस्त जनता को क्रोध उन्मुक्त कर दिया था। 4 मई सन् 1919 को हज़ारों की संख्या में चीनी विद्यार्थी थियानमान स्क्वायर में, इस शान्ति सम्मेलन के इस अन्यायपूर्ण निर्णय का विरोध करने हेतु एकत्रित हुए। इस भीड़ ने चीन सरकार से वार्साय की संधि पर हस्ताक्षर करने को मना किया एवं उन चीनी नेताओं को उचित दण्ड प्रदान करने की माँग की, जिन्होंने जापान को समर्थन प्रदान किया था। सरकार ने दमन का सहारा लिया। अनेक विद्यार्थियों की हत्या कर दी गई एवं अनेकों को गिरफ्तार कर लिया गया। इन दमन कार्यवाहियों ने विद्यार्थी समुदाय के बाहर की जनता को क्रोधित कर दिया। इसके फलस्वरूप जो आन्दोलन मूल रूप से विद्यार्थियों का आन्दोलन था, उसने साम्राज्यवाद एवं चीनी युद्ध सामन्तों के विरुद्ध एक लोकतांत्रिक आन्दोलन को रूप ग्रहण कर लिया। इस आन्दोलन के दबाव के कारण चीनी सरकार पैरिस के शान्ति सम्मेलन से अलग हो गई एवं उसने वार्साय की संधि को सहमति प्रदान करने से इन्कार कर दिया। गिरफ्तार किये गये विद्यार्थियों को रिहा कर दिया गया। यह आन्दोलन, जो 4 मई के आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है, वह चीनी समाज एवं वहाँ की संस्कृति पर अपनी गहरी छाप छोड़ गया है।

5.3.1 सन् 1917 की क्रांति का प्रभाव

नवम्बर सन् 1917 में लेनिन के नेतृत्व में बालेशविकों ने सत्ता पर अपना अधिकार करके यथार्थ रूप में क्राँन्तिकारी समाजवादी सरकार की स्थापना की थी। नवम्बर सन् 1917 की क्राँति की सफलता से पूर्व चीनी विचारधारा एवं वहाँ की राजनीति पर मार्क्सवाद का प्रभाव प्राय: न के बराबर था। क्राँति के पश्चात् वहाँ के प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं के ऊपर मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होने लगा था। उन्होंने जनता को क्राँतिकारी सिद्धान्तों से लैस करने हेतु लेनिन के मार्क्सवाद का विस्तृत रूप से प्रचार करने का कार्यभार सम्भाला। अनेक पत्र प्रकाशित होने शुरू हो गये। उनमें से माओ ज़ीड़ांग द्वारा सम्पादित "ज़ियान्गियाँन्ग रिवियू" एवं ज़ाऊ-एन-लाई द्वारा सम्पादित "बुलेटिन ऑफ द आईएन्जिन स्टुडेन्टस फेडरेशन" महत्वपूर्ण हैं। देश के विभिन्न भागों में मार्क्सवादी विचारधारा पर अध्ययन करने वाले दल दिखाई देने लगे। पीकिन्ग में मार्क्सवादी के प्रमुख नेता के रूप में चैन डकिसन उभर कर आया। पीकिन्ग में मार्क्सवाद पर अध्ययन के एक केन्द्र की स्थापना की गई। माओ-ज़ीडोंन्ग (माओ-तसे-तुंग) एवं ज़ाऊ-एन-लाई ने ज़ान्गसाला एवं टाईएन्जिन में क्रमानुसार न्यू पीपुल स्टडी सोसाइटी एवं अवेकिनिन्ग सोसाइटी की स्थापना की। साम्यवादियों के घोषणा-पत्र एवं कार्ल मार्क्स के अनेकों अन्य कार्यों का चीनी भाषा में रूपाँन्तर किया गया। एक अन्य प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति, पियेन्ग पाई ने ग्रामीण क्षेत्रों में साम्यवाद का प्रचार करने हेतु किसानों को संगठित करने के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया।

5.3.2 चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सी.सी.पी.)

रूस में हुई क्राँन्ति एवं 4 मई के आन्दोनल की विजय और चीन में अभर कर आये मज़दूर वर्ग ने मिल कर चीन में साम्यवादी दल के विकास हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थी। सन् 1920 में अनेक दलों के प्रतिनिधि शन्घाई में एकत्र हुए थे एवं जुलाई सन् 1921 में उन्होंने साम्यवादी दल का गठन किया था। चीन के साम्यवादियों का यह प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन था। शन्घाई में तैयार किये गये, दल के प्रथम संविधान में एक चुनी गई केन्द्रीय समिति का प्रावधान था। चैन डकसिन को दल के महासचिव के रूप में चुना गया। दल का दूसरा सम्मेलन जुलाई सन् 1922 में

हुआ था जिसमें दल के कार्यक्रम को निर्धारित करके यह निर्णय लिया गया था कि दल का मुख्य प्रकार्य "नागरिकों के मतभेदों का उन्मूलन करना, युद्ध सामन्तों को उखाड़ फेंकना एवं घरेलू शान्ति की स्थापना करना है, अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद के दमनचक्र को समाप्त करके चीनी राष्ट्र को पूर्णरूप से स्वतंत्र बनाना है, एवं चीन को एक जुट बना कर सही माने में लोकतांत्रिक गणतंत्र की स्थापना करना है"। इस सम्मेलन में नेतागणों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के साम्यवाद की सदस्यता प्राप्त करने हेतु आवेदन करने के भी आदेश दिये गये थे।

स्थापना के तुरन्त बाद से ही दल ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति ट्रेड यूनियनों के संगठन हेतु लगा दी थी। मज़दूर वर्गों के आन्दोलनों का संचालन करने हेतु केन्द्र के रूप में चीनी ट्रेड यूनियन सचिवालय का गठन किया गया था। साम्यवादियों के नेतृत्व में सन् 1922 एवं 1923 के काल में मज़दूरों ने अनेक बार हड़तालें की थी। हालाँकि वहाँ की सरकार ने इसका तीव्र विरोध किया एवं आन्दोलन को कुचल दिया। इससे यह आन्दोनल कुछ समय के लिये ढीला पड़ गया था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) नीचे दिये गये स्थान को अपने उत्तर हेतु उपयोग कीजिये।

2) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर के साथ अपने उत्तर की जाँच-पड़ताल कीजिये।

1) वे क्या परिस्थितियाँ थी, जिनके कारण चीन के सम्यवादी दल का उद्‌गमन हुआ था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 प्रथम क्राँन्तिकारी गृहयुद्ध : सुन-यात-सैन द्वारा सी.पी.सी. से सहयोग

सन् 1911 की क्राँति की असफलता ने सुन-यात-सैन को, न्यासंगत कारणों से दृड़तापूर्वक लड़ने वाला व्यक्ति बना दिया था। सुन-यात-सैन, चीन एवं रूस के साम्यवादी नेतागणों का बहुत बड़ा प्रशंसक था। रूस की सलाह से उसने अपने दल का नाम बदल कर कुआमिन्टाँग रख दिया था एवं लोकतंत्रवाद और राष्ट्रवादित्ता के सिद्धान्तों से अन्तःशोषित विचारों के आधार पर एक अखंडित दल के रूप में उसका पुनर्गठन किया था। उसने साम्यवादियों के लिये अपने दल के दरवाज़े खोल दिये थे। कुओमिन्टाँग शीघ्र ही मज़दूरों, किसानों एवं अन्य प्रगतिशील और साम्राज्यवाद विरोधी चीनी जनता के वर्गों के एक लोकतांत्रिक संगठन के रूप में उभर कर आया।

जून सन् 1923 में चीन के साम्यवादी दल का तीसरा सम्मेलन हुआ था जिसमें कुआमिन्टाँग को सहयोग प्रदान करने एवं उसके साथ संगठन करने की नीति को समर्थन प्रदान किया गया था। कुआमिन्टाँग ने अपने प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन जनवरी सन् 1924 में किया था। इस सम्मेलन में साम्यवादियों को व्यक्तिगत रूप से दल के सदस्यों के रूप में सम्मिलित किये जाने को भी समर्थन प्रदान किया गया था। अब कुओमिन्टाँग की मुख्य नीतियाँ "रूस समर्थक, साम्यवादी दल समर्थन एवं किसानों ओर मज़दूरों को सहायता प्रदान करने वाली" बन गई थी। रूस एवं चीनी साम्यवादी दल की सहायता से सुन-यात-सैन ने मई सन् 1924 में कुआँगजाऊ में हुआँगपु सैनिक

अकादमी की स्थापना की। इस अकादमी के राजनीतिक विभाग के संचालक के रूप में ज़ाऊ-एन-लाई की नियुक्ति की गई और कुछ अन्य साम्यवादियों को निर्देशकों के रूप में सम्मिलित किया गया। चियांग-काई-शेक को इस अकादमी का संचालक बनाया गया। सुन-यात-सैन चीनी क्राँति का अग्रदूत बनाया गया था। रोग अवस्था में भी, उसने युद्ध सामंन्तों को उन्मूलन करने एवं विदेशी ताकतों के साथ की गई असमान संन्धियों को समाप्त करने हेतु कार्यक्रम तैयार किया था। सन् 1925 के प्रारंम्भिक काल में सुन-यात-सैन का निधन हो गया था।

अपनी वसीयत में, उसने इस बात पर ध्यान दिलाया था कि स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु एवं अन्य राष्ट्रों के साथ चीन को समानता दिलवाने हेतु "हमको अपनी जनता को पूर्ण रूप से जागृत करने की आवश्यकता है एवं विश्व के उन व्यक्तियों, के साथ एकजुट होकर इस संघर्ष में सम्मिलित होने की आवश्यकता है, जो चीन के साथ बराबरी के आधार पर व्यवहार करते हैं"।

5.4.1 30 मई का आन्दोलन

कुआमिटांग के साथ गठन के पश्चात्, ट्रेड यूनियन आन्दोलन एवं किसानों के आन्दोलन ने साम्यवादी नेतृत्व के अधीन काफी प्रगति की। सन् 1925 में विदेशियों (जापान, ब्रिटेन इत्यादि) के स्वामित्व वाले कारखानों एवं कार्यस्थलों में हड़तालें हुई थी। हड़ताली मज़दूरों को समर्थन प्रदान करने हेतु विद्यार्थीगण एवं अन्य जनता खुल कर सड़कों पर आ गये थे। व्यक्तियों को आतंकित करने के लिये ब्रिटिश पुलिस ने अनेक स्थानों पर गोली चलाई। पुलिस द्वारा गोली चलाये जाने से 30 मई को हड़तालियों में से 11 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। इसके बाद से इस दिन को "पुलिस की गोली चलाये जाने से 11 हड़तालियों की मृत्यु वाले 30 मई के रूप में मनाया जाता है। इसके बाद से इस दिवस को 30 मई के हत्याकान्ड के रूप में याद किया जाता है"। विदेशी पुलिस के हस्तक्षेप ने इस आन्दोलन को ट्रेड यूनियन के आन्दोलन की जगह साम्राज्यवाद विरोधी राजनीतिक आन्दोलन का स्वरूप प्रदान कर दिया था। इससे साम्यवादियों को विभिन्न स्थानों में अपने समर्थन के आधारों को संगठित करने में सहायता प्राप्त हुई थी। इस संगठन कार्य ने उत्तरी अभियान चालू करने की पृष्ठ-भूमि तैयार कर दी थी। इस काल में किसानों के आन्द्रोलन ने भी काफी प्रगति की थी। सी.पी.सी के नेतृत्व में चीन के अपने भागों में किसान संगठनों का निर्माण किया गया। किसान संगठनों के सदस्यों की कुल संख्या दस लाख से ऊपर पहुँच गई अकेले गुआँगडोन्ग की किसान सभा के सदस्यों की संख्या करीब 6,20,000 थी। गुआँगडोन्ग की सभा में एक आत्मरक्षक दस्ता भी था, जिसमें करीब 30,000 सैनिक थे। गुआँगडोन्ग का शीघ्र ही एक सशस्त्र साम्यवादी आधार के रूप में उदय हुआ था।

साम्यवादियों ने शीघ्र ही गुआँगडोन्ग (कैन्टन) प्राँन्त के युद्ध सामन्तों का सफाया कर दिया एवं सारे प्राँन्त का एकीकरण करके, उसे राष्ट्रीय सरकार के अधीन कर लिया, जिसकी स्थापना 1 जुलाई सन् 1925 को गुआन्गजाऊ में की जा चुकी थी। हुआँगपू सैनिक अकादमी के विद्यार्थी सैनिकों की सहायता से राष्ट्रीय सरकार के सैनिक दस्तों का विकास किया। ज़ाऊ-एन-लाई को सैना के राजनीतिक विभाग का संचालक नियुक्त किया गया। सेना की प्रत्येक इकाई में एक दल के प्रतिनिधि एवं राजनीतिक विभाग की व्यवस्था की गई। प्रत्येक सैनिक इकाई के राजनीतिक कार्य का संचालन करने हेतु दल के व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती थी।

5.4.2 चियोंन्ग काई शेक का उदय

सनु-यात-सैन की मृत्यु हो जाने के बाद से कुआमिन्टोंन्ग में अन्तर दलीय कलह होने प्रारंम्भ हो गये थे, जिसके फलस्वरूप यह दल दो विरोधी उपदलों में विभाजित हो गया जिन्हें वामपंथी एवं दक्षिणपंथी उपदलों के रूप में जाना जाने लगा। साम्यवादियों के साथ वामपंथियों ने सुन-यात-सैन के तीन सैद्धान्तिक नियमों का प्रचार करना निरंतर रूप से जारी रखा। दक्षिणपंथी, जिनको बड़े भू-स्वामियों के हितों की रक्षा करने वाले एवं अन्य दशों के साथ चीन के व्यापार के मध्यमवर्गीय बिचौलियों के प्रतिनिधि के रूप में माना जाता था, सदैव आदर्शवाद की बातें करते थे परन्तु सुन-यात-सैन के राष्ट्रवादी नियमों को कार्य रूप देने में इनकी बहुत कम रुचि दिखाई देती थी। दक्षिणपंथियों ने, फिर भी, दल के नेतृत्व पर अपना अधिकार कर लिया था। चियाँग-काई-शेक इस वर्ग का नेता था। तद्नुसार, वह राष्ट्रीय सरकार का अध्यक्ष बन गया एवं राष्ट्रीय क्राँन्तिकारी सेना का कमान्डर-इन-चीफ बन गया।

5.4.3 उत्तरी अभियान

राष्ट्रीय सरकार ने उत्तर क्षेत्र के युद्ध सामन्तों पर हमला करने की योजना बनाई हुई थी। इसलिए जुलाई, 1926 से सरकार ने उनके विरुद्ध अभियान जारी कर दिया। यथार्थ रूप में, साम्यवादियों द्वारा यह अभियान काफी पहले शुरू किया जा चुका था। उनके करीब 1,00,000 सैनिक जवान गुआँगज़ाऊ से तीन विभिन्न मार्गों से रवाना हुए एवं कुछ महीनों के अन्तराल में उन्होंने उत्तर के सबसे बड़े युद्ध सामन्तों का सफाया कर दिया और चीन के करीब आधे भाग पर अपना अधिकार कर लिया। राष्ट्रीय सरकार एवं कुआमीटाँग के मुख्यालयों को गुआँनाजाऊ से हटा कर वूहान ले जाया गया।

उत्तरी अभियान की विजय से किसान आन्दोलन और अधिक शक्तिशाली हो गया। हूनान में संघर्ष को नेतृत्व माओ-जीडांग ने किया था। अन्ततः हुनान, सारे चीन के किसान आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र बन गया। किसान आन्दोलन, शीघ्र ही, सारे चीन में फैल गया। किसान संगठनों के सदस्यों की संख्या 1 करोड़ से भी अधिक हो गई। उत्तरी अभियान की विजय के फलस्वरूप मज़दूरों के आन्दोलन का भी तेजी से विकास हुआ था।

लियू-शाप्रोर्चा के नेतृत्व में मज़दूरों ने वुहाम में अंग्रेज़ों को इस शहर में अपने विशेष अधिकारों को वापस लेने हेतु बाध्य कर दिया था। ज़ाऊ-एन-लाई के नेतृत्व के अधीन करीब 30 घन्टे के घमासान युद्ध लड़ने के पश्चात् मज़दूरों ने मार्च, 1927 में शन्घाई को स्वतंत्र करवाया था।

5.4.4 सी.पी.सी. के खिलाफ चियाँन्ग-काई-शेक की कार्यवाही

उत्तरी अभियान की विजय एवं किसानों और मज़दूरों के आन्दोलनों द्वारा की गई प्रगति से साम्राज्यवादी ताकतें आतंकित हो गई थी। फ्रांस, जापान एवं इटली ने चीन के विभिन्न बन्दरगाहों पर अपने सैनिक जहाजों को लगा दिया, गोलाबारी करके नानजिंग, शन्घाई इत्यादि मुक्त किये गये शहरों में अनेक चीनियों को मार डाला एवं घायल कर दिया। उन्होनें चियाँग-काई-शेक से भी सम्पर्क स्थापित कर लिया। शेक ने साम्राज्यवादियों के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हुए लड़ाई की भर्त्सना की एवं साम्यवादियों को इसके लिये दोषी ठहराया। शन्घाई में सी.पी.सी के नेतृत्व वाली ट्रेड यूनियनों पर चियाँग काई शेक द्वारा किये गये हमलों से उसके शासन में सी.पी.सी. की भागीदारी प्रायः समाप्त कर दी गई।

जब साम्यवादियों पर दोषारोपण करके उनका दमन किया जा रहा था, तब साम्यवादी दल के अन्दर एक विरोधाभास उत्पन्न हो गया। सी.पी.सी के नेता, चैन डुकियू (जिसको बाद में दक्षिणपंथी के रूप में बहिष्कृत कर दिया गया था) ने दल की संयुक्त मोर्चे की नीति के आधार पर वुहान के कुआमिन्टाँना की वाँन्ग जिन्गवी शाखा के साथ गठबन्धन बनाये रखा था। चैन-डुकियू की नीतियों की सी.पी.सी. के एक काफी वर्ग द्वारा आलोचना की गई थी एवं इस मुद्दे को लेकर उनमें आपसी मतभेद हो गया। सी.पी.सी की आन्तरिक समस्याओं का लाभ उठा कर बाँन्ग ने जुलाई, 1927 में बुहान में कुओमिन्टाँग के एक सम्मेलन का आयोजन किया एवं इस दल को साम्यवादियों से मुक्त कराने में सफलता प्राप्त की। अनेक साम्यवादियों एवं अन्य आदर्शवादियों पर नाना प्रकार के अत्याचार किये गये एवं कुछ की हत्या भी कर दी गई। इस सम्मेलन के पश्चात कुओमिन्टाँग के दोनों वर्गों (बाँन्ग वर्ग एवं चियाँन्ग वर्ग) में एका हो गया। उत्तरी अभियान का अन्त साम्यवादियों की करारी हार एवं चियाँन्ग काई शेक, के अधीन की गई चीन की संधि युक्त एकसूत्रता के साथ हुआ। चियाँन्ग काई शेक दृढ़तापूर्वक सत्ता पर अपना अधिकार जमा चुका था।

5.5 दूसरा क्रान्तिकारी गृह-युद्ध : साम्यवादी (लाल) सेना की स्थापना

उत्तरी अभियान, जो युद्ध सामन्तों को उखाड़ फैंकने के उद्देश्य से शुरू किया गया था, उसका अन्त चियाँन्ग-काई-शेक के शासन की स्थापना के साथ हो गया था। चियाँन्ग-काई-शेक को भू-स्वामियों एवं विदेशों के साथ चीन के व्यापार के बिचोलियों का समर्थन प्राप्त था। उसने साम्यवादियों को पराजित कर दिया था परन्तु उनका सफाया नहीं कर पाया था। साम्यवादियों ने शीघ्र ही अपने आप को एकजुट कर के अगस्त, सन् 1927 में नानचेंन्ग में एक सैनिक विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का नेतृत्व ज़ाऊ-एन-लाई जू. डे. ही लोन्ग एवं अन्य नेताओं द्वारा किया गया था। नानचेंन्ग का विद्रोह

पहला ऐसा सैनिक संघर्ष था, जिसका नेतृत्व योजना एवं संचालन साम्यवादियों द्वारा अकले किया गया था। इस विद्रोह के फलस्वरूप जू. ड़े एवं माओ-जीड़ाग के नेतृत्व में साम्यवादी (लाल) सेना का जन्म हुआ था।

5.5.1 शरदकालीन फसल की कटाई के समय का विद्रोह

चीन के साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति ने सन् 1927 में चैन डुकियू को दल के नेता पर से हटा दिया। एक नये पोलितब्यूरो का चुनाव किया गया। इस गोष्टी ने ग्रामीण क्राँन्ति एवं कुओमिन्टाँग शासन के विरुद्ध संघर्ष करने की नीति को सूत्रित किया। इसने हुनान, हुबेई, जियाँन्गसी एवं गुआँन्गडोन्ग प्रान्तों में शरदकालीन फसल की कटाई के समय एक युद्ध की योजना भी तैयार की। दल की नई केन्द्रीय समिति ने माओ-जीडांग को इस शरदकालीन फसल की कटाई के समय होने वाले युद्ध का नेतृत्व करने का अधिकार प्रदान किया। 9 सितम्बर को युद्ध शुरू हो गया। किसानों एवं मज़दूरों को मिला कर बनाई गई जनता की मुक्ति सेना को उन शहरी क्षेत्रों में, पराजय का सामना करना पडा, जहाँ कुआमिन्आँग द्वारा अधिक अच्छी किस्त के बलों को एकत्रित किया गया था। क्रमानुगत रूप की अपनी रणनीतियों में परिवर्तन करना पडा। उसने ग्रामीण क्षेत्रों की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित करना शुरू कर दिया, जहाँ पर चियाँन्ग-काई-शेक की स्थिति कमज़ोर थी।

दिसम्बर, सन् 1927 में साम्यवादियों ने गुआन्गजाऊ में एक अन्य विद्रोह का प्रदर्शन किया। शुरू में कुछ विजय प्राप्त करने के पश्चात, सरकारी दलों द्वारा इस विद्रोह को कुचल दिया गया। हालाँकि नानचेन्ग विद्रोह , शरद-कालीन कटाई के समय का युद्ध एवं गुआँन्गजु विद्रोह कुचल दिये गये थे परन्तु उनके कारण कुओमिन्टाँग के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय सरकार को एक गम्भीर झटका लगा था। इसके बाद चीन के साम्यवादी दल ने एक ऐसे नये काल में प्रवेश किया था जिस काल में लाल सेना का निर्माण किया गया था।

5.5.2 ग्रामीण क्राँन्तिकारी आधार

मज़दूरों एवं किसानों को मिलाकर बनाये गये अपने अनुयायियों सहित माओ-जीडांग, दिसम्बर सन् 1937 में जिन्गान्ग पर्वती क्षेत्र में पहुँचा जहाँ उसने मज़दूरों एवं किसानों की शासन प्रणाली की स्थापनी की, स्थानीय व्यक्तियों के सैनिक दस्तों का विकास किया, दलीय इकाइयों को संगठित किया, ग्रामीण सुधारों की योजनाओं को लागू किया एवं वहाँ के जनसमूहों को छापामार युद्ध की रणनीतियों का भी प्रशक्षिण प्रदान किया था। इस तरीके से माओ-जीडांग ने जिन्गाँन्ग पर्वती क्षेत्र में अपने प्रथम ग्रामीण आधार क्षेत्र का विकास किया था। अप्रैल सन् 1928 में नानचेन्ग एवं हुनान के विद्रोहों में भाग लेने वाले जीवित बचे समर्थकों समेत जू. डे. एवं चैन व्ही जिन्गाँन्ग पर्वती क्षेत्रों में आ पहुँचे। अब इन तीनों सशक्त दलों को मिलाकर चीनी मज़दूरों एवं किसानों की सेना को एक नई चौथी सेना के रूप में पुनर्गठित किया गया। जू. डे. इस सेना का कमांडर बनाया गया एवं माओ और चैन व्ही को क्रमश: दल अध्यक्ष एवं सेना का संचालक नियुक्त किया गया। अपने आधार क्षेत्रों की सुरक्षा करने हेतु माओ ने अपनी छापामार युद्ध की रणनीतियों में विकास किया, जिसका सारांश इस प्रकार था: "दुश्मन आगे बढ़ता है, हम पीछे हट जाते हैं : दुश्मन अपना ठिकाना बनाता है, हम उसको परेशान करते हैं : दुश्मन थक जाता है, हम आक्रमण करते हैं : दुश्मन पीछे हटता है, हम उसका पीछा करते हैं"।

माओ एवं जू. डे. के नेतृत्व में सेना ने जिन्गाँन्ग पर्वत के आधार क्षेत्र से बढ़ा कर ग्रामीण साम्यवादी आधार क्षेत्रों का विस्तार चीन के विभिन्न क्षेत्रों में कर लिया था। कुछ ही वर्षों के अन्तराल में सी. पी. सी. ने दक्षिणी जियाँन्गी, पश्चिमी फूजियान, रूईजिन एवं अन्य अनेक स्थानों के ऊपर अपना नियंत्रण स्थापति कर लिया। सेना की शक्ति सन् 1927 में केवल 10,000 से बढ़ कर सन 1930 में 60,000 हो गई थी। जहाँ कहीं भी सी.पी.सी द्वारा अपने ग्रामीण आधार क्षेत्रों की स्थापना की गई थी, वहाँ की ग्रामीण व्यवस्था की पुन: संरचना की गई थी। सदियों से चली आ रहे भू-स्वामित्व को समाप्त कर दिया गया था एवं किसानों के मध्य भूमि का वितरण कर दिया गया था। इन कार्यों द्वारा दल की प्रतिष्ठा बढ़ी थी एवं जनता में सी. पी. सी. में शामिल होने हेतु उत्साह बढ़ा था। ग्रामीण क्षेत्रों में साम्यवादियों के आधार क्षेत्रों के विस्तार से चियाँन्ग-काई-शेक आतंकित हो गया था एवं उसने विकासशील साम्यवादी आधार क्षेत्रों की घेराबन्दी करने एवं दमन करने की नीति को

अपनाया था। परन्तु सन् 1930-31 के काल में उसके द्वारा क्रमानुगत रूप सें किये गये हमले साम्यवादी सत्ता को कुचलने में असफल रहे थे। इसके विपरीत साम्यवादियों ने अपने आधार क्षेत्रों को और अधिक विस्तार किया एवं सेना ने सब स्तरों पर अपनी शक्ति में वृद्धि की थी।

सन् 1927 में सन् 1930 के काल में माओ जीडांग ने शहरों की घेराबन्दी करने की रणनीति का विकास किया था। सन् 1920 के "ऐसा क्यों है कि लाल राजनीतिक सत्ता का आस्तित्व चीन में हो सकता है" नामक एवं सन् 1930 के "एक छोटी-सी चिनगारी द्वारा एक भीषण अग्निकाँड की शुरुआत हो सकती है" नामक दो आलेखों में माओ ने अपनी घेराबन्दी करने की अभिधारणा का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया था। उसने बताया था कि चीन, जो कि एक अर्द्ध उपनिवेशिक देश है एवं अप्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवादियों के नियंत्रण में है, वहाँ के राजनीतिक एवं आर्थिक विकासों की गति बहुत ही असमान रूप की है। "एक स्थायी रूप की कृषि अर्थव्यवस्था (एक सूत्रित की गई - पूँजीपतियों की अर्थव्यवस्था नहीं) एवं विभाजन करके शोषण करने हेतु प्रभाव क्षेत्रों को अलग करने की समाज्यवादियों की नीति" के फलस्वरूप होने वाली "गौरो के साम्राज्य के अन्तर्गत बहुत दिनों से चले आ रहे अलगाववादों एवं युद्धों" ने मिलकर प्रतिक्रियावादी शासन को सुदूर के ग्रामीण क्षेत्रों में दुर्बल कर दिया है एवं "गोरी साम्राज्य" के अन्तर्गत आधार क्षेत्रों को उभर कर आने, बने रहने एवं विकसित होने हा अवसर प्रदान किया है। माओ ने यह भी बताया था कि ग्रामीण क्षेत्रों में क्राँन्तिकारी आधार क्षेत्रों एवं राजनीतिक सत्ता की स्थापना करना, ग्रामीण क्राँति को पूर्ण रूप से कार्यरूप देना एवं सैनिक संघर्ष का विकास करना — ये सब ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवेश करने वहाँ की क्राँतिकारी शक्तियों को विकसित करने एवं क्रान्तिकारी उद्देश्यों को राष्ट्रीय स्तर पर विजय दिलवाने हेतु गाँवों से शहरों की घेराबन्दी करने युद्ध रणनीति की पूर्वआपेक्षाएं होती हैं।

5.5.3 जापानी आक्रमण

सितम्बर सन् 1931 में जापान ने चीन के विरुद्ध अपने आक्रमण को प्रबल कर दिया था। जापान ने शेनयाँन्ग पर अपना अधिकार करके बाद में सन् 1932 में शँघाई पर अधिकार कर लिया था। शँघाई में स्थित चियाँन्ग काई शेक की सेना ने जापान के साथ डट कर संघर्ष किया था परन्तु कओमिन्टाँग सरकार से समुचित समर्थन न मिलने के कारण यह प्रतिरोध शीघ्र समाप्त हो गया था। इसी समय पर सी.पी.सी. के नेतृत्व में जापान विरोधी लोकताँत्रिक आन्दोलन देश के विभिन्न भागों में विस्तृत रूप से फैल गया था। कालान्तर में साम्यवादियों के नेतृत्व में एक बहुत बड़े सैनिक दल का विकास किया गया था। इस सेना का नाम, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की संगठित जापान विरोधी सेना रखा गया था। सन् 1931 में इस संगठित सेना ने उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के करीब आधे भाग पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया एवं जापानियों को मुख्य चीन पर हमला करने की अपनी योजना का त्याग करने हेतु विवश कर दिया। साम्यवादियों के नेतृत्व वाली संगठित सेना ने जापानी दलों के ऊपर लगातार अनेक भीषण प्रहार किये।

5.5.4 चियाँन्ग-काई-शेक द्वारा कम्युनिस्टों पर हमला

चियाँन्ग-काई-शेक शुरू से ही साम्यवादियों के विरुद्ध था। राष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्रों में सी.पी.सी. के जन-समर्थन आधार क्षेत्रों का सफाया करने की उसकी बहुत इच्छा थी। सन् 1930-31 के काल में उसने सी.पी.सी. के आधार क्षेत्रों के विरुद्ध तीन अभियान किये थे परन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। चीन पर जापानी आक्रमण के प्रति कोई ध्यान न देते हुए, उसने फरवरी सन् 1933 में साम्यवादियों के विरुद्ध एक बहुत विशाल सेना एकत्रित की थी। परन्तु इस बार भी उसको करारी पराजय का सामना करना पड़ा था।

5.5.5 लम्बी यात्रा अभियान

सन् 1931 में चियाँन्ग-काई-शेक की बार-बार पराजयों के फलस्वरूप सारे चीन में साम्यवादियों की सत्ता एवं उनके समर्थन आधारों में काफी वृद्धि हुई थी। 300 से अधिक काऊन्टियों में (एक काउन्टी भारत के एक जिले के बराबर होती है) सी.पी.सी. ने जनता की सरकार स्थापित कर ली थी। साम्यवादियों के मुख्यालय के रूप में रूईजिन का चयन किया गया था। फिर भी चीन का साम्यवादी दल चियाँन्ग काई-शेक द्वारा किये जाने वाले बार-बार के हमलों का सामना करने में असफल रहा था। माओ-जीडांग एवं जू. डे. द्वारा विकसित सेना के प्रमुख भागों ने अक्टूबर सन् 1934 में ग्रामीण

क्षेत्रों को छोड़ कर उत्तर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। इस यात्रा में सेना की भारी क्षति हुई थी एवं उसकी संख्या घट कर आधी रह गई थी। इस लम्बी यात्रा से साम्यवादियों की महान ख्याति प्राप्त हुई थी।

इससे पहले जनवरी सन 1931 में साम्यवादी दल के नेतृत्व में परिवर्तन हो गया था। बाँन्ग मिन्ग का उद्‌गमन नेता के रूप में हुआ था। वह माओ की रणनीति के बिल्कुल विपरीत राजनीतिक रणनीति का समर्थक था। वाँन्ग ने बड़े शहरों पर कब्जा करने एवं सैनिक दलों द्वारा सत्ता हतियाये जाने पर जोर दिया। उसने सेना, द्वारा बड़े शहरी केन्द्रों पर कब्जा करना, उसके लिये प्रथम प्रकार्य के रूप में निर्धारित किया एवं कुओमिन्टाँग के सशस्त्र क्षेत्रों में विद्यार्थियों एवं मजदूरों की, हड़तालों का आयोजन करके सरकारी व्यवस्था को ठप्प करने का आदेश दिया। इन रणनीतियों के प्रतिक्रियास्वरूप कुओमिन्टाँग क्षेत्रों की दलीय इकाइयों का सफाया कर दिया गया। बाँन्ग ने दल के उन सदस्यों को भी उत्पीड़ित किया, जिन्होंने उसकी नीतियों के विरुद्ध अपने विचार व्यक्त किये थे। माओ जीडांग को सेना के नेतृत्व पद से हटा दिया गया था। जब चियाँन्ग काई शेक की सेना के विरुद्ध साम्यवादी सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी, तो सी.पी.सी की केन्द्रीय समिति ने जनवरी सन् 1935 में अपने पौलित-ब्यूरो की एक गोष्ठी का आयोजन किया। पौलित-ब्यूरो ने वाँन्ग की नीतियों की बहुत कटु आलोचना की, माओ की "घेराबन्दी की नीति" को पुनः स्थापित किया एवं सी.पी.सी के नेतृत्व का भी पुनर्गठन किया गया। सी.पी.सी के संचालन कार्यों हेतु माओ को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया। इस निर्णय ने शायद सेना में फिर से जान डाल दी, जिसके फलस्वरूप उसने तेजी से पश्चिमी सिचुआन में प्रवेश कर लिया। माओ जीडांग ने लाल सेना को उत्तर की तरफ बढ़ने का आदेश दिया। भारी संख्या में लोगों के हताहत हो जाने एवं काफी क्षति हो जाने के पश्चात अक्टूबर सन् 1935 में लाल सेना उत्तरी शाँन्स्की पहुँची एवं वहाँ स्थित साम्यवादी सैनिकों के साथ मिल गई। इस प्रकार 12,500 कि.मी. की एक अभूतपूर्व लम्बी यात्रा अभियान का समापन हुआ। अक्टूबर सन् 1936 में ही लोंन्ग एवं रेन बिशी एवं अन्य व्यक्तियों के नेतृत्व में साम्यवादी सेना के अन्य दल भी वहाँ आ पहुँचे और मुख्य सेना में आकर मिल गये।

5.5.6 जापान विरोधी संयुक्त मोर्चा

सन् 1935 में जापान ने उत्तरी चीन एवं जापानी उपनिवेश के रूप में बदलने की नीति को सूत्रित किया था। जापान को "उत्तरी चीन को बेचे जाने की "कुआमीन्टाँन्ग की नीति के विरोध में पीकिन्ग के विद्यार्थीगण विद्रोह के लिये उठ खड़े हुए। सी.पी.सी के नेतृत्व वाले विद्यार्थियों ने अन्य माँगों के साथ-साथ साम्यवादियों के साथ तुरन्त युद्ध विराम किये जाने एवं विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध सम्पूर्ण एकता की माँग की। हजारों की संख्या में विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किये एवं अपनी मांगों के समर्थन हेतु जनमत संगठित करने के लिये कारखानों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में गये। सी.पी.सी. ने भी महसूस करके यह निष्कर्ष निकाला कि इस समय का चीनी राष्ट्र एवं जापानी साम्राज्यवाद के मध्य का विरोध भी प्रमुख विरोध था। इसलिये, इसने ऐसी सब शक्तियों के साथ एकजुट हो जाने का फैसला किया, जिनको एकजुट किया जा सकता था और जापानी आक्रमण के विरुद्ध एक राष्ट्रीय स्तर के संयुक्त मोर्चे की नीति को अपनाया।

जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध यह आन्दोलन चीन के अनेक भागों में जंगल की आग की तरह फैल गया। यहाँ तक कि कुआमिन्टाँन्ग की सेना के अन्तर्गत भी विरोधाभास होना शुरू हो गया। उत्तर-पूर्व एवं उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों में जिन सैनिक दलों को साम्यवादियों से लड़ने के लिये भेजा गया था, उन्होंने उनपर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। चियाँन्ग-काई-शेक को साम्यवादियों के विरुद्ध सेना की बागडोर सम्भालने के लिये स्वयं जियान आना पड़ा। परन्तु 12 दिसम्बर 1936 को विद्रोह कर रही सेना ने उसको गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद सेना के सेनापतियों ने सारे चीन में समाचार भेजकर गृह-युद्ध समाप्त करने एवं जापान के विरुद्ध संघर्ष करने हेतु सी.पी.सी के साथ संधि करने का निवेदन किया। इसी बीच सत्ता हथियाने की अपनी आकाँक्षा की पूर्ति करने हेतु ही यिगिन ने जापान से सहायता माँगी और सी.पी.सी. के विरुद्ध गृह-युद्ध जारी रखने का निश्चय किया। जियान के पूर्व में स्थित टोंन्गआन पर हमला करने के लिये उसने अपने दलों को भेजा। इसी समय सी.पी.सी. ने चियाँग काई शेक के पास शान्ति बनाये रखने का प्रस्ताव भेजा था।

जापान ने जुलाई सन् 1937 में लगाऊगियाओ पर आक्रमण किया था। इस हमले को पराभूत कर दिया गया था परन्तु इस आक्रमण से चीन द्वारा जापान के विरुद्ध प्रतिरोधक युद्ध कि शुरुआत हो गई थी। सी.पी.सी. ने जनता से इस प्रतिरोधक युद्ध में सम्मिलित होने हेतु आग्रह किया। दल ने जाऊ-एवं-लाई को चियाँन्ग-काई-शेक, से बात करने के लिये भी भेजा, जो अभी भी जापान के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने में हिचकिचा रहा था। जापानी दलों ने शंघाई पर हमला कर दिया एवं नानजिंग के लिये खतरा उत्पन्न कर दिया। चियाँन्ग-काई-शेक ने भी अब अस्थिरता महसूस करना शुरू कर दिया था। पश्चिमी ताकतों ने भी खतरा महसूस करना शुरू कर दिया था। चियाँन्ग-काई-शेक की कुओमिन्टाँना सरकार ने अब औपचारिक रूप से जापान के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने का निर्णय किया एवं संयुक्त रूप से प्रतिरोध करने हेतु सी.पी.सी. के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। समझौते की शर्तों के अनुसार किसान सेना का नाम बदल कर राष्ट्रीय क्राँन्तिकारी सेना की आठरवें मार्ग की सेना रखा जाना था। उसके बाद छापामार दलों का पुनर्गठन करके उसे यी टिंन्ग के सेनापतित्व के अधीन नई चौथी सेना का रूप दिया गया। कुओमिन्टाँन्ग द्वारा सी.पी.सी. को वैधानिक स्तर प्रदान किया गया एवं कुओमिन्टाँग एवं साम्यवादियों के मध्य सहयोग करने हेतु वचन-बद्धता की घोषणा की गई। इस प्रकार जापान विरोधी राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे का औपचारिक रूप से अस्तित्व हुआ एवं सी.पी. सी. को अपने कार्यक्रम चलाने हेतु वैधता प्रदान हुई।

5.5.7 जापान के विरुद्ध कुओमिन्टाँग मोर्चे की असफलता

कुओमिन्टाँग, शायद जापान का प्रतिरोध नहीं करना चाहता था। ऐसा प्रतीत होता था कि परिस्थितियों-वश उसको इस प्रतिरोध में शामिल होने के लिये बाध्य होना पड़ा था। इसके अन्दर अभी भी साम्यवादियों का भय व्याप्त था। जनता को एकत्रित करने में कुओमिन्टाँग को भय था कि कहीं साम्यवादी और अधिक लोकप्रिय न हो जाएं। जापान के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिये इसने अपनी सम्पूर्ण सैनिक शक्ति का भी गठन नहीं किया था। अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिये इसने दक्षिण पश्चिम एवं उत्तर-पश्चिम चीन में सेना की बड़ी टुकड़ियाँ भेजी थी। कुओमिन्टाँग की शायद यह इच्छा थी कि साम्यवादी संघर्ष करें एवं प्रक्रिया में उनका संहार हो जाय। परन्तु जो कुछ घटित हुआ, वह सर्वथा विपरित था। सन् 1937-38 में हुए सारे मुकाबलों में जापान द्वारा कुओमिन्टाँग के दलों को परास्त किया गया था। मार्च सन् 1938 तक जापान ने पीकिंग, टियान्जन, शंघाई, गुआँन्गजाऊ, बुहान एवं सारे उत्तरी चीन पर अपना अधिकार कर लिया था। कुओमिन्टाँग सरकार को बाध्य हो कर अपनी राजधानी का स्थानाँन्तरण सिचुआन प्राँन्त के चौन्गिग शहर में करना पड़ा था। जापानी आक्रमणकारियों द्वारा चीन की बहुत भारी क्षति हुई थी। शहरों एवं कस्बों को बर्बाद कर दिया गया था, लाखों की संख्या में व्यक्तियों की हत्या कर दी गई थी एवं मकानों और व्यापार केन्द्रों को लूट कर जला दिया गया था। एक धारणा के अनुसार अकेले नानजिंन्ग में करीब 30,000 व्यक्ति मारे गये थे और 1/3 मकानों को लूट कर जला दिया गया था।

5.5.8 सी.पी.सी. के जापान विरोधी आधार क्षेत्र

कुओमिन्टाँग की बार-बार की पराजयों से भी सी.पी.सी. द्वारा प्रतिरोधी युद्ध के लिये जनता को संगठित करने के कार्य में कमी नहीं आई थी। सी.पी.सी. के नेतृत्व में आठवें मार्ग की सेना हुआँन्गहू नदी पार कर के उत्तरी चीन के मोर्चे पर पहुँच गई। सी.पी.सी. के नेतृत्व में जापान के विरुद्ध चीनियों को पहली विजय सितम्बर सन् 1938 में प्राप्त हुई थी। इस विजय द्वारा सारे चीन में व्यक्तियों का मनोबल बढ़ गया था। इस विजय के पश्चात् छापामार युद्ध संघर्ष करने वाली आठवीं मार्ग की सेना ने उत्तरी चीन की जापान अधिकृत अनेक क्षेत्रों में जापान विरोधी आधार क्षेत्रों की स्थापना की। दक्षिण चीन में भी नई चौथी सेना द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अपने आधार क्षेत्रों को स्थापित किया गया था। सन् 1938 के अन्तिम काल में उत्तर से आठवें मार्ग की सेना एवं दक्षिण से नई चौथी सेना ने चीन में स्थित करीब आधे जापानी सैनिक दलों को अपने जाल में फँसा लिया था। इस जापान विरोधी आधार क्षेत्रों में सी.पी.सी. ने असैनिक सरकारों को स्थापित किया था, जो लोकप्रिय माँगों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करती थी एवं किराये और सूद को कम करने जैसे सुधारों को लागू करती थी। इन सुधार-कार्यों द्वारा सी.पी.सी. की लोकप्रियता बढ़ी थी एवं जनता जापान के विरुद्ध प्रतिरोधक युद्ध में शामिल होने हेतु प्रेरित हुई थी। यानान, जहाँ पर सी.पी.सी. का मुख्यालय स्थित था, सारे देश में जापान विरोधी युद्ध के तंत्रिका केन्द्र के रूप में उभर कर आया था। सीधे एवं तेजी से लड़े जाने वाले युद्ध में अपने से अधिक श्रेष्ठ जापानी सैनिक दलों को पराजित करना बहुत

कठिन था। इस तथ्य को महसूस करते हुए सी.पी.सी. ने दीर्घकालिक छापामार युद्ध की नीति को अपनाया था। मई सन् 1938 में "दीर्घ कालिक युद्ध पर" नामक पुस्तिका में माओ ने बलपूर्वक कहा था कि चीन यदि इस युद्ध को दीर्घकाल तक चला कर इसे जनता के युद्ध का स्वरूप प्रदान करने की स्थिति में होगा तो अवश्य ही इस युद्ध में विजयी होगा। उसने लिखा था कि "सेना एवं जनता विजय की पृष्ठभूमि होते हैं" और "युद्ध लड़ने हेतु सबसे अच्छे साधन जन समूहों में पाये जाते हैं"।

चीन के अन्तर्गत लाल आधार क्षेत्रों के विकास एवं दूसरे विश्व युद्ध के शुरू हो जाने से जापान ने "स्टिक एवं कैरट" की नई नीति को अपनाया। इस नीति को अपनाकर जापान ने कुओमिन्टाँग के एक गुट को अपने साथ मिला लिया, जिसने जापान के समर्थन द्वारा बाँग जिन्गवाल की अध्यक्षता में नानजिंग में अपना शासन स्थापित किया था। चियाँन्ग-काई-शेक का गुट, हालाँकि एन्गलो-अमरीकन गुट के साथ था परन्तु जापान की अपेक्षा साम्यवादियों के साथ संघर्ष को अधिक महत्व प्रदान करता था। सन् 1939 से सन् 1943 के काल में चियाँन्ग-काई-शेक ने साम्यवादियों के ऊपर तीन बार हमला किया था। सी.पी.सी. ने इन सब हमलों को विफल कर दिया था। संयुक्त मोर्चे के प्रति इसका रवैया एकता एवं संघर्ष करने का था। युद्धों को लड़ते समय इसने आत्म-रक्षा की नीति को अपनाया था : "जब तक हमारे ऊपर आक्रमण नहीं होगा तब तक हम आक्रमण नहीं करेंगे–यदि हमारे ऊपर आक्रमण किया गया तो हम निश्चित रूप से प्रति-आक्रमण करेंगे।"

5.5.9 मुक्त किये गये क्षेत्रों की समस्याएँ

सन् 1941-42 के काल में जापान ने अपने अधिकतर सैनिक दलों को चीन में केन्द्रित कर रखा था। अपनी चीनी समर्थकों के साथ मिल कर जापानी सैनिक दलों ने लाल आधार क्षेत्रों के विरुद्ध "मौपिन्ग अप आपरेशन" चलाया था। इस समय पर चियाँन्ग-काई-शेक के नेतृत्व वाले कुओमिन्टाँग सैनिक दलों ने भी साम्यवादियों के विरुद्ध अपने हमलों के अभियान को तेज़ कर दिया था। इन हमलों द्वारा उत्पन्न हुई समस्याओं में उत्तर चीन में पड़े लगातार सूखे की स्थिति से और अधिक वृद्धि हो गई थी। कठिनाइयों का सामना कर उन पर विजय प्राप्त करने के लिये नेताओं सहित समस्त दल को संगठित किया गया। उन्होंने जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु उत्पादन बढ़ाने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। असाधारण रूप से कड़ी मेहनत किये जाने के पश्चात् मूल आवश्यकताओं की समस्या करीब-करीब सुलझा ली गई थी। इसी समय किसी प्रकार की विसामान्यता के विरुद्ध दल ने अन्तर दलीय सैद्धान्तिक संघर्ष छेड़ दिया था। दल के सदस्यों को मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद का शिक्षण प्रदान करने हेतु कक्षाओं को खोला गया। दल को तीन शाखावादी संघर्ष में लगा देने से (साम्यवाद विरोधी दलों के साथ संघर्ष, सामानों को उत्पादन बढ़ाने का संघर्ष, एवं अन्तर-दलीय संघर्ष) लाल आधार क्षेत्रों की समस्याएँ सन् 1943 के प्रारंम्भ होने तक सुलझ गई थी।

5.5.10 जापान पर विजय

सन् 1944 में साम्यवादी नेतृत्व वाले मुक्त किये क्षेत्रों ने जापान के विरुद्ध जवाबी हमले करना शुरू कर दिए थे एवं काफी महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की थी। सन् 1945 के प्रारंम्भिक काल में और अधिक क्षेत्रों को मुक्त करवा लिया गया था एवं जनता के सैनिक दलों की संख्या में असाधारण रूप से वृद्धि हुई थी। एक धारणा के अनुसार, उस समय स्थायी सैनिकों की संख्या 9 लाख से भी अधिक थी एवं 20 लाख से अधिक व्यक्ति अस्थायी रूप के सैनिक थे। जापान के सैनिक दल ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़ कर भाग खड़े हुए एवं मुक्त किये गये क्षेत्रों से घिरे हुए बड़े शहरों में उन्होने पनाह ली थी। जब दूसरा विश्व युद्ध शीघ्र ही समाप्त होने का था, तो चीन के उत्तर पूर्वी प्राँन्तों में जापानी आक्रमणकारियों पर रूस ने हमला किया था जिससे जापान के ऊपर एक बड़े पैमाने पर हमला करने हेतु साम्यवादियों को और अधिक सहायता एवं प्रोत्साहन प्रदान हुआ था। इस समय तक जापान युद्ध हार चुका था और 2 सितम्बर सन् 1945 को उसने आत्म समर्पण की संन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये थे। अन्त में, करीब आठ वर्ष तक कठिन संघर्ष करने के पश्चात चीन को जापान विरोधी युद्ध में विजय प्राप्त हुई थी।

5.5.11 सी.पी.सी. का सातवाँ सम्मेलन

सी.पी.सी. के सातवें सम्मेलन का आयोजन ऐसे समय पर किया गया था जब कुछ ही दिनों में जापान

का आयोजन यानान में 23 अप्रैल से 23 जून सन् 1945 तक हुआ। सारे देश में फैले हुए दल के सदस्यों की संख्या बढ़ कर बारह लाख से भी अधिक हो गई थी। सदस्यों द्वारा नियमित रूप से चुने गये 752 प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में भाग लिया था। इस सम्मेलन में जापानी आक्रमणकारियों को पराजित करने हेतु जनता का संगठन करने एवं एक नये चीन का निर्माण करने का निर्णय लिया गया था। एक नया संविधान तैयार किया गया था और माओ जीडांग की अध्यक्षता में एक नई केन्द्रीय समिति चुनी गई थी।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये गये स्थान को उपयोग अपना उत्तर देने हेतु कीजिए।

2) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए उत्तरों से मिला लीजिए।

1) वे क्या परिस्थितियाँ थी जिनके कारण जापान विरोधी संयुक्त मोर्चे का गठन किया गया था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 तीसरा (अन्तिम) क्राँतिकारी गृहयुद्ध : द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का चीन

जापान के ऊपर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् यह आशा की जाती थी कि चीन एक स्वतंत्र, लोकातांत्रिक एवं आत्मनिर्भर देश बन जायेगा। परन्तु चीन का विकास करने हेतु किसी प्रकार के सुधार कार्यक्रमों को लागू किये बिना चियाँन्ग-काई-शेख सत्ता में बना रहना चाहता था। चीन, अभी भी एक अर्ध-सामन्ती एवं अर्ध-उपनिवेशी राज्य था। दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् यू.एस.ए. का उद्गमन एक नवीन-उपनिवेशिक सत्ता के रूप में हुआ था। यू.एस.ए. की इच्छा चीन को एक यू.एस. समर्थक राज्य बनाने की थी, एवं चियाँग-काई-शेक पहले से ही यू.एस.ए. का विश्वास प्राप्त मित्र बन चुका था। परन्तु जापानियों के साथ लड़ते समय सी.पी.सी. द्वारा अनेक विशाल क्षेत्रों को मुक्त करा लिया गया था एवं एक विशाल सेना और जन समूहों के समर्थन से इन क्षेत्रों में जनता की सरकार स्थापित कर दी गयी थी। चियाँन्ग-काई-शेक चीन का अपरिवर्तनीय नेता बना रहना चाहता था। फिर भी, चियाँन्ग-काई-शेक यह समझ गया था कि साम्यवादियों का तुरन्त खात्मा करना उसके बस में नहीं था। इसलिए उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने हेतु सी.पी.सी. के साथ स्वयं शान्ति प्रस्ताव प्रस्तुत किया। शान्ति वार्ता 28 अगस्त सन् 1945 को शुरू हुई एवं करीब डेढ़ माह तक चलती रही। "डबल टैन्थ एग्रीमेन्ट" पर हस्ताक्षर करने के साथ यह वार्ता समाप्त हुई थी, जिसमें यह घोषणा की गई थी कि "गृह युद्ध को हर हालत में बचाया जाना आवश्यक है एवं एक स्वतंत्र, मुक्त सम्पन्न एवं सक्षम रूप के नये चीन का निर्माण किया जाना चाहिये"। शन्ति वार्ता द्वारा प्रदान किये गये समय ने कुओमिन्टाँग को अपनी शक्ति जुटाने में सहायता प्रदान की। अब, चियाँन्ग-काई-शेक ने, शान्ति समझौते पर कोई अमल किये बिना एक विशाल सेना द्वारा मुक्त किये क्षेत्रों पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। सी.पी.सी को कुओमिन्टाँग पर बहुत कम विश्वास था। यह स्वयं 'को, किसी भी प्रकार की संभाव्य टना के लिये, सदैव तत्पर बनाये रखती थी। इसकी सेना ने जवाबी हमला कर के चियाँन्ग-काई-शेक की सैना को भारी क्षति पहुँचाई। दस जनवरी सन् 1946 को चियाँन्ग-काई-शेक ने सी.पी.सी. के साथ फिर से एक युद्ध विराम के समझौते पर हस्ताक्षर किये परन्तु यह समझौता, चियाँन्ग-काई-शेक की सेना को मुक्त किये क्षेत्रों पर निरन्तर रूप से आक्रमण करने से रोकने में असमर्थ रहा था। मुक्त किये गये क्षेत्रों पर समय-समय पर काफी बड़े पैमाने पर हमले होते रहे थे। इस काल में एक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना हुई थी। सी.पी.सी. एवं अन्य लोकतांत्रिक दलों के

तत्वावधान में चान्गिंग में एक राजनीतिक परामर्शात्मक सम्मेलन का आयोजन किया गया था। कुओमिन्टाँग के भेदियों ने सम्मेलन में भाग लेने आये हुए प्रतिनिधियों पर आक्रमण किया एवं कुछ लोकतांत्रिक नेताओं की हत्या भी कर दी। इन घटनाओं के बाद कुओमिन्टाँग की छटवीं केन्द्रीय संचालन समिति के दूसरे परिपूर्ण सत्र में चियाँन्ग-काई-शेक ने, राजनीतिक परामर्शात्मक सम्मेलन में लिये गये निर्णयों को मानने से इन्कार कर दिया एवं सम्मेलन में पारित किये गये प्रस्तावों को फाड़ कर टुकड़े-टुकडे कर दिया। जून सन् 1946 में चियाँन्ग-काई-शेक ने एक पक्षीय रूप से युद्ध विराम के समझौते को भंग कर दिया एवं साम्यवादियों के विरुद्ध पूर्ण युद्ध की घोषणा कर दी।

26 जून सन् 1946 को कुओमिन्टाँग के सैनिक दलों ने मुक्त किये क्षेत्रों के सब मोर्चों पर आक्रमण करने हेतु चढ़ाई कर दी और इस प्रकार सी.पी.सी. के सैनिक दलों और कुओमिन्टाँग के मध्य सम्पूर्ण स्तर का युद्ध छिड़ गया।

5.6.1 चियाँन्ग-काई-शेक की पराजय

सी.पी.सी का अपेक्षा कुओमिन्टाँग बहुत अधिक शक्तिशाली प्रतीत होता था। कुओमिन्टाँन्ग की सेना में 40 लाख से भी अधिक सैनिक थे। विशाल क्षेत्रों पर, अधिकांश बड़े शहरों पर, औद्योगिक क्षेत्रों पर, रेल मार्गों एवं संचार और यातायात सम्बन्धी अन्य साधन प्रशासनिक रूप से इसके अधिकार क्षेत्र में थे। कुओमिन्टाँग नियंत्रित क्षेत्रों में तीस करोड़ से भी अधिक व्यक्ति थे। जापान के सैनिक दलों द्वारा समर्पित किये गये हथियारों पर कुओमिन्टाँग ने अपना कब्जा कर लिया था। कुओमिन्टाँग को यू. एस. ए. द्वारा भी सैनिक एवं आर्थिक समर्थन प्राप्त था। इसके विपरित सी.पी.सी. के पास केवल दस लाख व्यक्तियों की सेना थी जिसके पास केवल "ज्वार बाजरा इत्यादि एवं राइफिले" मात्र थी। युद्ध त्रस्त पूर्व के सोवियत यूनियन से इसको केवल नाममात्र की सहायता प्राप्त थी। इसके नियंत्रण में अधिकांश रूप से वे गाँव थे जिनकी जनसंख्या चीन की कुल जनसंख्या का चौथाई भाग थी। इसलिये, तुलनात्मक रूप से सी.पी.सी. की अपेक्षा कुओमिन्टाँग बहुत अधिक श्रेष्ठ एवं शक्तिशाली था। हो सकता है कि अपनी श्रेष्ठ शक्ति के कारण ही कुओमिन्टाँग ने सी.पी.सी. नियंत्रित मुक्त किये क्षेत्रों के विरुद्ध सम्पूर्ण स्तर के युद्ध को छेड़ा था।

शहरों की घेराबन्दी करने एवं मुक्त किये गये क्षेत्रों में अपना नियंत्रण बनाये रखने के मुख्य उद्देश्य में किसी प्रकार का विघन डाले बिना उपने से श्रेष्ठ सैनिक दल का समाना करने के लिये सी.पी.सी. ने यू.एस. साम्राज्यवाद एवं चियांन्ग-काई-शेक के कुशासन के विरुद्ध जनता के संयुक्त मोर्चे गठित करने का प्रयास करने का निर्णय किया। यह योजना कारगर साबित हुई। लोकप्रियता में वृद्धि हुई। साम्यवादी सेना ने जहाँ भी प्रवेश किया वहाँ उसका स्वागत किया गया। आठवें मार्ग की सेना, नई चौथी सेना एवं सी.पी.सी. नेतृत्व वाली अन्य सैनिक इकाइयों को मिलाकर बनी इस सेना को, इसके बाद से, जनता मुक्त वाहिनी सेना (पी.एल.ए.) का नाम दे दिया गया था। सी.पी.सी. एवं कुओमिन्टाँग के मध्य युद्ध शुरू होने के कुछ ही महीनों के अन्तराल में पी.एल.ए. द्वारा शत्रु को अनेकों बार पराजित किया गया और उसकी करीब सात लाख सैनिक टुकड़ियों का सफाया हो गया। मार्च सन् 1947 में कुओमिन्टाँग ने अपने आक्रमण को शान्डोन्ग एवं उत्तरी शान्कजी के मुक्त क्षेत्रों पर केन्द्रित किया था। पी.एल.ए. ने इन आक्रमणों को पराभूत कर दिया था।

सन् 1945-47 के दौरान चीन के अनेक भागों में विरोध आंन्दोलनों का प्रायोजन किया गया था। दिसम्बर सन् 1946 में सारे देश में लाखों विद्यार्थियों ने हड़ताल की थी एवं सामान्य रूप में चीनी व्यक्तियों और विशेषरूप में चीनी महिलाओं के साथ अमरीकनों के दुराचरण के विरुद्ध प्रदर्शन किये थे। युद्ध से उत्पन्न आर्थिक रूप की कठिनाइयों के विरुद्ध साठ शहरों के विद्यार्थीगण उठ खड़े हुए। औद्योगिक शहरों के मज़दूरों ने अपनी माँगों को लेकर एवं विद्यार्थियों के आन्दोलन के समर्थन में हड़तालें की। सन् 1947 में किसान आन्दोलन अनेक नये क्षेत्रों में फैल गया। अनेक स्थानों पर कुओमिन्टाँग के विरुद्ध किसानों ने हथियार उठा लिये थे। फरवरी सन् 1947 में ताईवान में एक बहुत बड़ा सशस्त्र विद्रोह हुआ था। इस पकार कुओमिन्टाँना अधिकृत क्षेत्रों में गैर-साम्यवादी लोकताँत्रिक आन्दोलनों ने चियाँन्ग-काई-शेक के सैनिक दलों के लिये दूसरे युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी थी।

5.6.2 मुक्त किये गये क्षेत्रों में भूमि सुधार के कार्यक्रम

सी.पी.सी. के नेतृत्व वाली सरकारों ने जापान विरोधी युद्ध के काल में, मुक्त किये गये क्षेत्रों में, किराया एवं सूद कम कर दिया था। मई सन् 1946 में सी.पी.सी. ने एक बोधशील भूमि सुधार नीति को सूत्रित किया एवं यथासंम्भव शीघ्रतापूर्वक उसे लागू कर दिया। सितम्बर सन् 1947 में दल ने "चीन के ग्रामीण कानून की एक रूपरेखा" प्रकाशित की थी। इस कानून में भू-स्वामियों की भूमि को जब्त करके किसानों के मध्य वितरित करने की परिकल्पना की गई थी। इस कानून के अन्तर्गत यह निर्दिष्ट किया गया था कि भू-स्वामित्व का उन्मूलन किया जायेगा। "जमीन जोतने वाले की" के नारे को इस कानून में सम्मिलित किया गया था। भूमि के ऊपर भू-स्वामियों के सारे अधिकरों का उन्मूलन कर दिया गया था एवं सामन्ती भू-स्वामियों की भूमि को जब्त करके, उसको ग्रामीण जनसंख्या के मध्य समान रूप से वितरित कर दिया गया था। भूमि सुधारों के कार्यक्रमों द्वारा, मुक्त किये गये क्षेत्रों के करीब एक करोड़ किसानों को भूमि प्राप्त हुई थी। ये किसान, अब पी.एल.ए. के लिये भर्ती के केन्द्र बन गये थे। इस प्रकार सी.पी.सी. ने ग्रामीण क्षेत्रों में अपने समर्थन आधार को और सशक्त कर लिया था।

5.6.3 लोकतॉंत्रिक संयुक्त मोर्चे का विस्तारीकरण

अक्टूबर सन् 1947 में पी.एल.ए. के सहयोग से सी.पी.सी. ने जनता से "चियॉंग-काई-शेक की सरकार का तख्ता पलटने एवं चीन को मुक्त करवाने" का आवाह्न किया था। सी.पी.सी. ने यह नारा लगाया था कि "मज़दूरों, किसानों, सैनिकों, प्रतिभा-सम्पन्न, समस्त शेषित वर्गों, जनता के समस्त संगठनों, लोकतॉंत्रिक दलों, अल्पसंख्यक-राष्ट्रवादियों, विदेशों में रहने वाले चीनियों एवं अन्य देश-प्रेमियों को एक सूत्रित करके राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे का गठन कीजिये : निरंकुशतावादी चियॉंग-काई-शेक सरकार का तख्ता पलट दीजिये : एवं एक मिली-जुली लोकतॉंत्रिक सरकार की स्थापना कीजिये"। दिसम्बर माह में सी.पी.सी. ने अपनी आर्थिक नीति घोषित कर दी थी जिसमें तीन मुख्य बातें प्रस्तावित की गई थी।

1) समान्ती भू-स्वामियों की भूमि जब्त करना एवं किसानों के बीच उसको पुन: वितरित करना,

2) चियॉंग-काई-शेक, संग-जिवीन, कोंग-जियोंन्की एवं चेन लीफा की अध्यक्षता वाले चार परिवारों की एकाधिकारवादी पूँजी को ज़ब्त करके नये लोकतॉंत्रिक राज्य को प्रदान करना; एवं

3) राष्ट्रीय मध्यवर्गीय व्यक्तियों के उद्योगों एवं व्यापार को सुरक्षा प्रदान करना। इस नीति को, सारे देश की जनता का सामूहिक रूप से समर्थन प्राप्त करने हेतु, सूत्रित किया गया था। अधिकॉंश लोकतॉंत्रिक शक्तियों ने इस नीति से सहमति व्यक्त की एवं इन लोकतांत्रिक शक्तियों के सहयोग द्वारा सी.पी.सी. ने विस्तृत रूप के जनता के लोकतॉंत्रिक मोर्चों का गठन किया था।

5.6.3 मुख्य भूमि की मुक्ति

सन् 1947 के अन्त तक पी.एल.ए. द्वारा मुख्य संघर्ष स्थल को मुक्त किये गये क्षेत्रों से हटा कर कुआमिन्टॉंग अधिकृत क्षेत्र के मुख्य स्थल पर ले जाया गया था। इसके अनेक शहरों को अपने अधिकार में ले लिया गया एवं शत्रु की प्रभावशाली शक्ति को काफी हद तक नष्ट कर दिया गया। सन् 1948 में पी.एल.ए. द्वारा तीन अभियानों का संचालन किया गया था, जिनके परिणामस्वरूप उत्तर पूर्वी चीन, उत्तर चीन का अधिकॉंश भाग एवं पूर्वी और केन्द्रीय चीन का मुक्तिकरण हो गया था एवं चियॉंग-काई-शेक के सैनिक दलों का सफाया हो गया था।

1 जनवरी सन् 1949 को कुओमिन्टॉंग ने शान्ति के लिये फिर से चीत्कार करना शुरू कर दिया। माओ ने शान्ति स्थापित करने हेतु आठ शर्तों को प्रस्तावित किया था, जिनमें अन्य के साथ युद्ध अपराधियों को दन्ड दिये जाने की शर्त शामिल थी। चियॉंग-काई-शेक ने राष्ट्रपति पद से अवकाश ले लिया, एवं उपराष्ट्रपति, ली.जोन्गिन ने सरकार की बागडोर सम्भाल ली थी। शान्ति वार्ता 1 अप्रैल को

शुरू हुई थी एवं 15 दिनों के वार्तालाप के पश्चात् आठों शर्तों के आधार पर शान्ति समझौते पर सहमति व्यक्त की गई थी। परन्तु ली.जोन्गिन ने समझौते को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। शान्ति हेतु आखिरी प्रयास का इस प्रकार अन्त हुआ था।

इसके बाद पी.एल.ए. के दस लाख सशक्त सैनिकों ने दक्षिण की तरफ बढ़ने के लिये यॉन्गजे नदी को पार करना शुरू कर दिया था। शीघ्र ही इसने कुओमिन्टॉंग शासन के केन्द्रीय स्थल नानजिंन्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इसने कुओमिन्टॉंग के गढ़ों को एक-एक करके अपने अधिकार में ले लिया। थोड़े से काल में, तिब्बत, ताईवान एवं कुछ समुन्द्री किनारों के द्वीपों को छोड़ कर सारे चीन को मुक्त करा लिया गया था। इस प्रकार इस क्राँन्ति का समापन, साम्यवादियों की विजय द्वारा हुआ था। 7 दिसम्बर सन् 1949 को चियॉंन्ग-काई-शेक भाग कर ताईवान चला गया था।

5.6.5 चीन में जनवादी गणतंत्र की स्थापना

अन्तिम विजय के अवसर पर सी.पी.सी. द्वारा हैबई प्रान्त के एक गॉंव में मार्च सन् 1949 में सातवीं केन्द्रीय समिति के दूसरे समग्र सत्र का आयोजन किया गया था। इस गोष्ठी में अन्तिम विजय की शीघ्रतापूर्वक उपलब्धि एवं युद्ध ग्रसित चीन के पुन. निर्माण किये जाने हेतु मूल नीतियों को निर्णय लिया गया था। इस सत्र के पश्चात् सी.पी.सी. एवं पी.एल.ए. के अपने मुख्यालयों का स्थानान्तरण बीजिंग में कर लिया था। लोकताँत्रिक दल एवं उनके अधिकारीगण भी बीजिंग पहुँच गये थे।

चीन की जनता की राजनीतिक परामर्शात्मक सम्मेलन ने उपने प्रथम समय सत्र का आयोजन 22 सितम्बर सन् 1949 को बीजिंग में किया था। अनेकों कुओमिन्टॉंग विरोधी राजनीतिक शक्तियों सी.पी. सी. अल्पसंख्यक राष्ट्रिकताओं एवं विदेशों में रहने वाले चीनियों के 662 प्रतिनिधियों ने इस सत्र में भाग लिया था। इस सत्र ने चीन के सर्वोच्च राजनीतिक संस्थान, राष्ट्रीय पीपुल्स कॉंग्रेस के रूप में कार्य किया एवं प्राधिकरों का उपयोग किया। इस सम्मेलन में "चीनी जनता की राजनीतिक परामर्शात्मक सम्मेलन के सामान्य कार्यक्रम" को पारित किया गया। इस कार्यक्रम ने अंतरिम संविधान के रूप में कार्य किया। इसने मज़दूरों एवं किसानों की बीच संधि के आधार पर मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में जनता की लोकताँत्रिक तानाशाही के रूप में चीन के जनवादी गणतंत्र की स्थापना की थी। पी.आर.सी. की राजधानी के रूप में बीजिन्ग (पीकिन्ग) को चुना गया था। माओ को चुनाव द्वारा, जनता की केन्द्रीय सरकार का अध्यक्ष बनाया गया था एवं जाऊ-एन-लाई को चीन का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था।

1 अक्टूबर सन् 1949 को लाखों की संख्या में जनता उस समाराहों में भाग लेने हेतु थ्यानमान स्क्वायर बीजिंग में एकत्रित हुई थी जिसके द्वारा पी.आर.सी. की औपचारिक रूप से शुरुआत की गई थी। माओ जीडांग ने नये राज्य का उद्घाटन किया था, विश्व के एक चौथाई इन्सानों ने माओं जीडांग के साथ प्रत्युत्तर स्वरूप नारे लगाये थे एवं चीन ने एक नये युग में प्रवेश कियां था।

पी.आर.सी. की घोषणा एक ऐसी घटना थी जिसने चीन के इतिहास में एक नये अध्याय को खोल दिया था। पूर्व में जापानी सैनिकवाद की पराजय, एवं यू.एस. द्वारा समर्थन प्राप्त कुओमिन्टॉंग बलों से चीन के मुक्तीकरण के कारण चीनी क्राँन्ति की विजय और भी सुगम हो गई थी।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये गये स्थान का उपयोग अपने उत्तर हेतु कीजिए।

ii) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए उत्तरों से मिला लीजिए।

1) कुओमिन्टॉंग की पराजय के कारणों को संक्षेप में बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित का संक्षिप्त विवरण दीजिए :

1) मुक्त किये गये क्षेत्रों में भूमि सुधार।

2) लोकतांत्रिक संयुक्त मोर्चा।

3) कुओमिन्टाँग के शान्ति प्रस्ताव पर सी.पी.सी. की प्रतिक्रिया।

.....

.....

.....

.....

.....

5.7 चीनी दर्शन में भैतिकवादी रूझान

चीनी क्राँन्ति के सिद्धान्त का निष्कर्ष भौतिकवाद से हुआ था जो एक ऐसी दार्शनिक प्रवृत्ति है जो आदर्शवाद के विपरीत होती है। चीन में भौतिकवाद की उत्पत्ति, चीनी दार्शनिक प्रणाली की निर्माणात्मक स्थिति के साथ की जा सकती है। ईसा के पूर्व (बी.सी.) की पाँचवी सदी से तीसरी सदी तक प्राचीन चीनी दर्शन प्रणाली का विकास निरंन्तर रूप से होता रहा था। चीन के प्रमुख दार्शनिक मतवादों, ताओवाद, कन्फ्यूशीयस इत्यादि का उदय इसी काल में हुआ था। अनेकों प्राचीन चीनी विद्धानों ने धारणा एवं यथार्थता के बीच सम्बन्ध की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया था। मो. जी., जून जू एवं अन्य का मत था कि धारणाएं वस्तुपरक आभासों एवं वस्तुओं का प्रतिबिम्ब स्वरूप होती हैं। उसके बाद से दर्शन की भौतिकवादी प्रवृति में दर्शनशास्त्रियों की क्रमानुगत पीढ़ियाँ अभिवृद्धि करती रही थी। नवीन कन्फ्यूशीवाद के काल में दर्शनशास्त्रियों का एक ऐसा सशस्त्र वर्ग था जो भौतिकवाद के समर्थन में तर्क किया करता था। सत्रहवी एवं अठारहवीं सदियों में धारणा एवं यर्थाथता के बीच के सम्बन्ध का विवाद का और अधिक विकास हुआ था : ताई चैन ने इसका भौतिकवादी रूप से समाधान किया था। उन्नीसवीं सदी के मध्य काल में चीन में विदेशियों द्वारा बलपूर्वक प्रवेश करने पर, सामन्ती जमीदारों द्वारा शोषण किये जाने एवं विदेशियों के आक्रमणों के विरुद्ध चीनी जनता ने प्रतिक्रियास्वरूप शक्तिशाली किसान विद्रोह, एवं ताईपिन्ग आन्दोलन किये थे जिनमें समाज के सामाजिक रूप के पुन: निर्माण पर राम-राज्य के विचारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्नसवीं सदी के अन्तिम काल में पश्चिमी शिक्षण के परिणामस्वरूप उदावादी एवं समाजवादी विचारधारा का उद्गमन होना प्रारंम्भ हो गया था। चीन में सामाजिक रूप की राजनीतिक एवं दार्शनिक विचारधारा एवं मार्क्सवाद का प्रचार होना 4 मई सन् 1919 को हुए आन्दोलन द्वारा हुई जागृति के फलस्वरूप शुरू हुआ था, जिसका आयोजन सन् 1917 में हुई रूस की क्रांन्ति से प्रभावित हो कर किया गया था।

5.7.1 चीन में मार्क्सवाद का आगमन

हालाँकि प्रतिभा-सम्पन्न चीनी जन-समुदाय, सदी बदलने के समय से, मार्क्सवाद को अस्पष्ट रूप से जानते थे परन्तु उसके सैद्धान्तिक आकर्षण तक पहुँचने में असमर्थ रहे थे। चीन का प्रतिभा-सम्पन्न जन-समुदाय समाजवाद या सामाजिक क्रान्ति से, रूस में हुई क्रान्ति से बीस वर्ष पूर्व, परिचित थे। "सामाजिक नीति", समाज एवं अराजकतावाद की जुड़वाँ प्रवृतियों द्वारा विचारशीलता को और अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी। पहले का ग्रहण सुन-यात-सेन के कुओमिन्टाँग (गुआमिन्टाँना द्वारा एवं सन् 1911 में चीन की समाजवादी दल के संस्थापक जियाँन्गकाँघू द्वारा किया गया था। उनके समाजवाद में "सरकारी निरीक्षण में शान्तिपूर्ण एवं समानतावादी सामाजिक विकास की उपलब्धि हेतु पूँजीवाद को नियंत्रित करने का प्रयास किया गया था। रूस में सन् 1917 में हुई क्रांन्ति के अवसर पर समानतावाद, चीन में समाजवाद के सबसे अधिक लोकप्रिय स्वरूप में, उभर कर भी आया था। फिर भी स्वतंत्र रूप से अलग से किये सांस्कृतिक एवं प्रचार सम्बन्धी कार्यों के अलावा समानतावादियों ने किसी प्रकार की कोई संगठित गतिविधि नहीं की थी। सन् 1919 के चार मई के आन्दोलन के तुरन्त बाद, अनेकों सुधारवादी विद्यार्थी संगठनों की गतिविधियों एवं कार्यवाही करने हेतु किसी ठोस कार्यक्रम की कमी होने के कारण भी सुधारवादी प्रतिभासम्पन्न जनसमुदाय काफी निराश हो गया था।

विशेषतौर से पहले विश्व युद्ध के काल में एवं उसके बाद हुए औद्योगीकरण के विस्तारीकरण के संदर्भ में जिसके परिणामस्वरूप चीन के विभिन्न शहरों में पूँजी एवं मजदूरों का उद्गमन हुआ था, रूस की क्राँन्ति ने, उनको सामाजिक क्रांतिकारी बदलाव लाने हेतु एक उदाहरण प्रस्तुत किया था। लेनिन द्वारा चलाई गई रूस की क्राँन्ति ने, चीनी बुद्धिजीवियों को मार्क्सवाद की क्राँन्तिकारी शक्ति के प्रति संवेदनशील कर दिया था एवं उन्हें मार्क्सवाद का अध्ययन करने हेतु प्रेरणा प्रदान की थी। समानतावाद एवं मार्क्सवाद रहित समाजवाद की धीरे-धीरे अवनति होनी शुरू हो गई। सन् 1922 तक चीन में साम्यवादी होने का मतलब मार्क्सवाद एवं मार्क्सवादी दल के राजनीतिक घोषणा-पत्र को स्वीकार करना माना जाने लगा था। चीन के सुधारवादियों में सैद्धान्तिक रूप के बदलाव आने के फलस्वरूप चीन के साम्यवादी दल के झंडे के अधीन हुए साम्यवादी आन्दोलन की नींव पड़ी थी।

5.7.2 माओ की विचारधारा की उत्पत्ति

कार्ल मार्क्स 1818-1883 एवं फ्रेड्रिक एन्जिल्स 1820-1895 द्वारा रचित मार्क्सवाद एक, दार्शनिक, आर्थिक एवं समाजवादी राजनीतिक विचारों की प्रणाली है। वी.आई. लेनिन 1870-1924 ने नई परिस्थितियों में इसका रचनात्मक रूप से विकास किया था। माओ जीडांग के नेतृत्व में चीन के साम्यवादी दल ने भी इसमें, चीनी परिस्थितियों के संदर्भ में अभिवृद्धि की थी एवं इसका नाम मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवादी विचारधारा रख दिया था। मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद द्वारा चीनी क्राँन्ति को, सैद्धान्तिक रूप का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ था।

क्राँन्ति के काल में सी.पी.सी. के सैद्धान्तिक आधारों, नियमों एवं गतिविधियों का रूप रेखाँकन एवं निर्देशन विशेषरूप से अर्जित किये गये अनुभवों द्वारा, एवं क्राँन्तिकारी संघर्षों की शृंखला के दौरान विकसित किये गये सामरिक महत्व के विचारों और यथार्थता एवं कार्यवाहक नियमों के प्रति नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की विस्तृत रूप से मान्य धारणाओं द्वारा किया जाता था। सन् 1945 में यूनान में हुए सी.पी.सी. के सातवें सम्मेलन के काल में अपनाये गये दल के संविधान में माओ के विचारों की परिभाषा "समस्त कार्यों हेतु निदेशनात्मक नियमों" के रूप में की गई थी। सम्मेलन में बोलते समय लियू-शाओगी ने माओ की विचारधारा की व्याख्या एक ऐसे सिद्धान्त के रूप में की थी, जिसने मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त एवं चीनी क्राँन्ति के आचरण का एकीकरण कर दिया था। माओ की विचारधारा को उसकी व्यक्तिगत प्रतिभा सम्बन्धी संम्पदा नहीं माना जाना चाहिये। विस्तृत रूप से यह उस काल के, समस्त मार्क्सवादी प्रतिभासंम्पन्न जन-समुदाय द्वारा किये गये अनुभवों एवं सामूहिक रूप की मानसिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। दीर्घकालिक संघर्षों को लड़ते समय सी.पी.सी. द्वारा अर्जित किये गये समस्त अनुभवों एवं विचारों को संकलित करके, सारांश के रूप में, उनको माओ की विचारधारा का स्वरूप प्रदान कर दिया गया था।

5.7.3 माआत्से-तुंग के विचार

माओ की विचारधारा का विकास माओ और उसके अन्य साथियों द्वारा दीर्घकालिक एवं बार-बार होने वाले संघर्षों में प्राप्त अनुभवों की सहायता से अनेक वर्षों में हुआ था। सन् 1925 में माओ को किसानों का संगठित करने हेतु हुनान भेजा गया था। उनके साथ कार्य करते समय उसकी उनके प्रति जानकारी का विकास हुआ था। उसकी हुनान की धारणाओं ने उसे किसान वर्ग के प्रति अपनी अभिधारणा सूत्रित करने हेतु प्रेरित किया था। सन् 1927 में उसने अपनी "हुनान के किसान आन्दोलन किये गये अनुसंधान की रिपोर्ट" को प्रकाशित किया था। क्राँन्ति में किसानों के महत्व का उल्लेख करते हुए उसने लिखा था : कुछ ही समय में चीन के केन्द्रीय, दक्षिणी एवं उत्तरी प्रान्तों में करोड़ों की संख्या में किसान वर्ग एक बवंडर या झंझावत की भाँति विद्रोह स्वरूप उठ खड़ा होगा, एवं यह एक ऐसा बल होगा जो अभूतपूर्व रूप से इतना उद्यत एवं हिंसक होगा कि कोई भी सत्ता, चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, इसका दमन करने में असमर्थ होगी। जिन बंधनों से वे इस समय जकड़े हुए हैं, उन सब को वे तोड़ देंगे और मुक्ति के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ेंगे। सभी साम्राज्यवादियों, युद्ध सामन्तों, बेईमान कर्मचारियों, स्थानीय गुन्डों एवं असामाजिक तत्वों को वे उनकी कब्र में भेज देंगे। उनके निर्णय के अनुसार स्वीकार किये जाने या अस्वीकार किये जाने की परख के लिये समस्त क्राँन्तिकारी दल एवं समस्त क्राँन्तिकारी साथी उनके सामने खड़े होंगे"। लोकतांत्रिक क्राँन्ति की उपलब्धियों हेतु माओ ने किसानों को इसमें से सात मुद्दे निश्चित किये थे। उसने अपनी अभिधारणा का विकास उस समय के चीन के संदर्भ में किया था। यह देश मूलरूप से कृषि प्रधान था। जनता के

जीवन-यापन का मुख्य साधन भूमि थी और बीसवीं सदी के तीसरे एवं चौथे दशकों तक यह सुधारवादी परिवर्तनों को लागू किये बिना उनको जीवित रखने में असमर्थ थी। इस सच्चाई का आभास केवल माओ-जी-डोंन्ग एवं उसके साथियों ने किया था। विदेशी आक्रमणकारियों एवं स्वदेश के आन्तरिक प्रतिक्रियावादी वर्ग दोनों के विरुद्ध उसने मुख्य रूप से किसान वर्ग के बीच से एक जनता की सेना का विकास किया था और एक अनुशासन-बद्ध दल संगठन के रूप में उनका निर्माण किया था।

सन् 1930 के काल में हुए संघर्षों ने माओ को संयुक्त मार्चे की राजनीति की प्रभावोत्पादकता का कायल कर दिया था। सन् 1940 में प्रकाशित "नये लोकतंत्र पर '' नामक पुस्तिका में उसने अपनी अभिधारणा का विस्तृत रूप से वर्णन किया था। उसने ऐसे सब व्यक्तियों के बीच संधि स्थापित किये जाने का समर्थन किया था जो जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के इच्छुक थे एवं चीन में एक नये लोकतॉंत्रिक राज्य का विकास करने हेतु समर्पित होना चाहते थे। मार्क्सवादी-लेनिनवादी नियमों का पालन करते हुए उसने लोकतॉंत्रिक केन्द्रीयता की धारणा का भी विकास किया था। उसने प्रदर्शित किया था कि मुक्तरूप से की जाने वाली परिचर्चाओं एवं मुक्त रूप से मताधिकारों का उपयोग करने के माध्यम से जनता किस प्रकार नीति निर्धारण करने की पद्धति में प्रभावशाली ढंग से भाग ले सकती है। नये लोकतंत्र की आर्थिक नीति की चर्चा करते हुए उसने कहा था कि निजी एवं सार्वजनिक संस्थानों का आस्तित्व साथ-साथ बनाये रखा जा सकता है। "समस्त बैंक, बड़े उद्योग एवं बड़े व्यापारिक संस्थान राज्य की सम्पत्ति होंगे–राज्य उस समय तक, निजी सम्पत्ति के अन्य स्वरूपों को जब्त नहीं करेगा या पूँजीपतियों के उत्पादन के विकास पर रोक नहीं लगायेगा, जब तक कि यह सुनिश्चित रूप से माना जायगा कि यह जनता की आजीविका को नियंत्रित नहीं करता है''।

"विरोधात्मकता पर'' नामक आलेख में माओ के दार्शनिक विचारों की रूप रेखा प्रस्तुत की गई थी। तर्कशास्त्र की मार्क्सवादी अभिधारणा का पालन करते हुए वह लिखता है कि संघर्ष करना मानव जाति के आपसी सम्बन्धों में जन्मजात रूप से विद्यमान होता है और यह राजनीति को भी अपने अनुशासन में रखता है।

वह बताता है कि प्रतिवाद दो प्रकार के होते हैं–विरोधात्मक एवं गैर-विरोधात्मक–विरोधी वर्गों एवं विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच होने वाले प्रतिवादी, जैसे भू-स्वामियों एवं किरायेदारों के बीच होने वाले एवं पूँजीवादी एवं समाजवादी के बीच होने वाले विरोधात्मक स्वरूप के होते हैं। गैर-विरोधात्मक प्रतिवाद उन प्रतिवादों को कहते हैं, जो सारे राष्ट्र के हितों एवं व्यक्तिगत रूप के हितों के बीच होते हैं, जो प्रतिवादी लोकतंत्रता एवं केन्द्रीयता की बीच होते हैं, जो प्रतिवादी नेताओं एवं नेतृत्व की जाने वाली जनता के बीच होते हैं एवं जो प्रतिवाद सरकार एवं जनता के बीच होते हैं''। माओ जी डोन्ग ने लिखा था कि "वस्तुओं में प्रतिवादों के नियम को निश्चित रूप से समझना हमारे लिये सर्वोच्च रूप से महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इस प्रकार के विश्लेषणों के आधार पर हम इन प्रतिवादों का निदान करने के तरीकों का पता लगा सकते हैं''। माओ-जी-डोंन्ग के अनुसार विरोधात्मक प्रतिवादों का विघटन करने के लिये संघर्ष करने की आवश्यकता पड़ती है जब कि गैर-विरोधात्मक प्रतिवादों का खण्डन, समझाने, मित्रतापूर्ण परिचर्चाओं एवं इसी प्रकार के अन्य अहिंसक तरीकों के माध्यम से किया जा सकता है। उसने लिखा था, "प्रतिवाद सर्वव्यापी एवं निश्चित रूप के होते हैं एवं वस्तुओं के विकास की समस्त प्रक्रियाओं में विद्यमान होते हैं और शुरू से आखिर तक की सारी प्रक्रियाओं में देखे जा सकते हैं''।

अपने जानकारी के सिद्धान्त को विस्तारपूर्वक बताते हुए उसने लिखा था कि दल के सदस्यों को क्राँन्तिकारी आचरणों या मेहनत करने वाले जन-समूहों द्वारा किये जाने वाले वास्तविक रूप के क्राँन्तिकारी आन्दोलनों के साथ अपने स्वयं के परिष्कारों का सम्बन्ध विच्छेद नहीं करना चाहिये। उसने लिखा था, "अपने आचरण के माध्यम से सच्चाई की खोज कीजिये और फिर अपने आचरण के माध्यम से ही सच्चाई को प्रमाणित करके उसका विकास कीजिये। प्रत्यक्षिक ज्ञान से शुरू कीजिये एवं उसको सक्रिय रूप से विकसित करके तर्कपरक ज्ञान का रूप दीजिये : उसके तर्कपरक ज्ञान की सहायता से शुरू कीजिये एवं क्राँन्तिकारी आचारण को सक्रिय रूप से निर्देशित करके व्यक्तिपरक एवं वस्तुपरक दोनों विश्वों में परिवर्तन ले आइये। आचरण, ज्ञान, फिर से आचरण, फिर ज्ञान। यह स्वरूप अविरत क्रम से चलता रहता है और प्रत्येक क्रम के बाद आचरण एवं ज्ञान का स्तर ऊपर

बढ़ता रहता है। ज्ञान के भौतिकवादी सिद्धान्त का यही सार है एवं जानने और कार्य करने की एकता के सिद्धान्त का भौतिकवादी सार भी यही है''।

उसने दल के सभी कार्यकर्ताओं से निजी स्वार्थों से ऊपर उठने की माँग की थी और कहा था कि "किसी भी साम्यवादी को किसी भी समय एवं किसी प्रकार की परिस्थितियों में अपने निजी स्वार्थों को प्राथमिकता नहीं देनी चाहिये–उसको उन्हें देश एवं जनता के हितों के नीचे रखना चाहिये। इसलिये स्वार्थपरता, निकम्मापन, बेईमानी, लोकप्रसिद्धि का प्रयास करना इत्यादि सब सबसे अधिक अवहेलनीय होते हैं, जब कि निस्वार्थता, अपनी समस्त शक्ति लगाकर कार्य करना, जन कार्य हेतु सम्पूर्ण हृदय से त्यागमन होना एवं शान्तिपूर्वक कड़ी मेहनत करना, ऐसे गुण होते हैं जिनसे व्यक्ति को सम्मान प्राप्त होता है''।

किसी भी क्राँन्तिकारी दल के लिये माओ-जी-डोंन्ग ने "अनुशासन के लिये तीन प्रमुख नियमों'' एवं "ध्यान देने हेतु आठ विषयों'' को नियत किया था।

अनुशासन हेतु तीन प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं :

1) अपनी समस्त गतिविधियों में आदेशों का पालन कीजिये।

2) जन-समूहों से एक सुई या धागा तक मत लीजिये।

3) जब्त की गई प्रत्येक वस्तु समर्पित कर दीजिये।

ध्यान देने हेतु आठ विषय निम्नलिखित हैं:

1) विनम्रतापूर्वक बोलिये।

2) जो कुछ आप खरीदें, उसका उचित मूल्य दीजिये।

3) उधार ली गई प्रत्येक वस्तु को वापस लौटाइये।

4) अपने द्वारा की गई किसी भी क्षति की भरपाई कीजिये।

5) जनता की कसम मत खाइये।

6) फसल की किसी भी रूप में क्षति मत कीजिये।

7) महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार का दुराचरण मत कीजिये।

8) बन्दियों के साथ दुरव्यवहार मत कीजिये।

ये, वे नियम थे, जिनके आधार पर सेना एवं साम्यवादी दल दोनों का विकास किया गया था और एक नये चीन का निर्माण करने हेतु उन्होंने क्राँन्तिकारी संघर्षों को लड़ा था।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) प्रत्येक प्रश्न की नीचे दिये गये स्थान का उपयोग अपना उत्तर देने हेतु कीजिए।

ii) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए उत्तरों से मिला लीजिए।

1) चीनी क्राँन्ति के सिद्धान्तों के क्या आधार थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मार्क्सवाद के प्रति माओ जीडांग द्वारा दिये गये मुख्य योगदानों पर चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

5.8 सारांश

क्रान्ति तब होती है जब कोई समाज वस्तुपरक एवं व्यक्तिपरक, दोनों रूपों में सुधारवादी परिवर्तन हेतु तैयार होता है। वस्तुपरक परिस्थितियों आर्थिक एवं राजनीतिक संकटकालीन अवस्थाओं एवं किसी समाज में सामाजिक रूप की क्राँन्ति की सम्भावनाओं द्वारा उत्पन्न होती है। किसी सामाजिक रूप की क्राँन्ति की विजय सुनिश्चित करने हेतु केवल वस्तुपरक परिस्थितियों का आस्तित्व होना काफी नहीं होता। वस्तुपरक परिस्थितियों के साथ व्यक्तिपरक कारणों का होना भी आवश्यक होता है, जो दुख भोगने वाले जन-समूहों की स्वार्थरहित रूप और बहादुरी से संघर्ष करने की तत्परता द्वारा उत्पन्न होता है एवं एक ऐसे दल का होना आवश्यक होता है, जो सामाजिक रूप की रणनीतियों एवं कुशल निर्देशन प्रदान कर सके। क्राँन्ति के पूर्व के करीब सौ वर्षों के काल तक चीन एक अर्ध-उपनिवेशिक एवं अर्ध-सामन्ती देश के रूप में रहा था, जिनके योगदान स्वरूप वहाँ के समाज में सामाजिक स्तर का आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था। चीन के साम्यवादी दल ने जनता को नेतृत्व, सामरिक रणनीति, एवं कुशल निर्देशन प्रदान करके, इस अवसर का लाभ उठाते हुए क्राँन्ति का आवाहन किया था।

विदेशियों का अंत:प्रवेश केवल आर्थिक रूप के शोषण तक ही सीमित नहीं था। इसने सांस्कृतिक एवं प्रजात्मक रूप के प्रभाव क्षेत्रों में भी अंत: प्रवेश कर लिया था। विज्ञान, टैकनोलौजी एवं सरकार की प्रणाली के क्षेत्रों में यूरोप के विकसित देशों द्वारा उपलब्ध की गई प्रगति के बारे में चीन के प्रतिभा-सम्पन्न जन समुदाय को जानकारी प्राप्त हो गई थी। प्रतिभा-सम्पन्न जन समुदाय ने तुरन्त ही अपने पड़ोसी देश जापान के अनुरूप पश्चिमी रूपरेखा पर चीन का पुनर्निमाण करने की माँग करना शुरू कर दिया था। परन्तु शासक वर्ग में शामिल मंचू राजाओं, दरबार के कर्मचारियों, सामंन्ती भू-स्वामियों एवं अन्य परम्परागत रूप के रूढ़िवादी तत्वों ने मिलकर उभरते हुए सुधार आन्दोलनों का दमन कर दिया था। हालाँकि लोकताँत्रिक राष्ट्रवादियों ने सन् 1911 में मंचू शासन का समापन कर दिया था, परन्तु वे रूढ़िवादी प्रतिक्रियाशील तत्वों के जाल में फँस गये थे, जो अपनी सत्ता एवं सुविधाओं को बनाये रखने हेतु विदेशी ताकतों से भी सहायतार्थ निवेदन करने में नहीं चूके थे। रूसी साम्यवादियों द्वारा बताये मार्ग पर चलते हुए, चीन के सुधारवादियों ने चीनी साम्यवादी दल की स्थापनी की। चीनी साम्यवादी दल ने, विदेशी ताकतों एवं आँतरिक प्रतिक्रियावादी दलों से संघर्ष करने हेतु जनता को संगठित किया एवं युद्ध रणनीति को सूचित किया था। क्राँन्ति की विजय को सुनिश्चित करने के लिये इसको एक दीर्घकालिक गृहयुद्ध में संघर्षरत होना पड़ा था।

5.9 शब्दावली

दिव्य राज्य : स्वर्ग-राज्य। प्राचीन काल में चीन निवासी अपनी भूमि को स्वर्ग-राज्य कहते थे।

क्राँन्ति : समाज के स्वरूप में एक सुधारवादी बदलाव लाना, एक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से दूसरी सामाजिक अवस्था में परिवर्तन करने की माँग करना, प्राचीन व्यवस्था को प्रगतिशील व्यवस्था में परिवर्तन करने की माँग करना।

युद्ध समान्त : बीसवीं सदी के प्रारंम्भिक दशकों में स्वायत्त शक्तिशाली सैनिक नेताओं ने चीन की

गोरो का शासन : साम्यवादी सत्ता विरोधी सरकार। चियाँन्ग-काई-शेक की सरकार को गोरों का शासन कहा जाता था।

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) आरिफ डरलिक; 1992 : **चीन के साम्यवाद के स्रोत**, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन केन्द्र।

2) लूसिन बिआँन्को; 1971 : **चीनी क्राँन्ति के स्रोत 1915-1949** स्टेन्डफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन केन्द्र।

3) फ्रेरेन्ज शूरमान; 1972 : **साम्यवादी चीन में सिद्धान्त एवं संगठन**, केलीफोर्निया विश्वविद्यालय प्रकाशन केन्द्र।

4) चून-टू-शेह; 1962 : **चीन का साम्यवादी आन्दोलन, 1937-1949** हूवर संस्थान, स्टेन्डफोर्ड।

5) ज्योर्ज एफ बोटतर; 1979 : **राष्ट्रवादी चीन का एक संक्षिप्त इतिहास 1919-1949**; न्यू योर्क; प्रटमान्स।

6) ए. डोक बारनेट; 1963 : **साम्यवादियों द्वारा सत्ता पर अधिकार ग्रहण करते समय का चीन**, न्यू योर्क; प्रेगर।

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) औद्योगीकरण किये जाने के कारण मजदूर वर्ग का उद्गमन। 4 मई के आन्दोलन ने राजनीति में सुधार किया था। सन् 1917 की रूस की क्राँन्ति।

बोध प्रश्न 2

1) प्राय: किये जाने वाले जापानी आक्रमणों एवं दमन ने सारे चीन में जापान विरोधी भावना उत्पन्न कर दी थी। जापान विरोधी संयुक्त मोर्चे का विकास करने के लिये सी.पी.सी. ने जापान विरोधी भावनाओं का लाभ उठाया था।

2) अ) शरद-कालीन फसल की कटाई के समय का युद्ध, सितम्बर 1927 कुआमिन्टाँग के सैनिक दलों के विरुद्ध लड़ा गया था। इस युद्ध में हुए अनुभवों द्वारा माओ-जी-डोग को ग्रामीण आधार क्षेत्रों को विकसित करने की अपनी अभिधारणा प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

ब) चियाँन्ग-काई-शेक द्वारा किये जाने वाले बार-बार के आक्रमणों ने सन् 1934-35 में, सी. पी.सी. एवं उसकी सेना को दक्षिण से उत्तर तक के 12500 कि.मी. लम्बी यात्रा करने हेतु विवश कर दिया था।

बोध प्रश्न 3

1) सुन-यात-सेन द्वारा शुरू किये गये राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को सही दिशा प्रदान करने हेतु कुओमिन्टाँग द्वारा नेतृत्व प्रदान न कर पाने की असमर्थता ही मुख्य रूप से उसकी पराजय की उत्तरदायी थी। सनु-यात-सेन की योजना, कुआमिन्टाँग के झन्डे के अधीन एक साम्राज्यवाद विरोधी लोकताँत्रिक आधार को विकसित करने की थी परन्तु चियाँन्ग-काई-शेक ने इसका स्वरूप बदल कर इसको एक, साम्यवादविरोधी, रूढ़िवादी समर्थक एवं साम्राज्यवाद समर्थक राजनीतिक दल का रूप प्रदान कर दिया था। सी.पी.सी. ने इस कमज़ोरी का लाभ उठाया एवं

2) भू-स्वामियों की भूमि को जब्त करना एवं ज़ब्त की गई भूमि को ग्रामीण किसानों के बीच वितरित करना।

3) (के.एम.टी.) कुआमिन्टाँग द्वारा किये गये शान्ति प्रस्तावों के प्रति सी.पी.सी. ने सदैव साकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।

बोध प्रश्न 4

1) अ) चीन के दर्शन शास्त्र की भौतिकवादी परम्परा।

ब) मार्क्सवादी-लेनिनवाद।

स) सी.पी.सी. द्वारा किये गये अनुभव।

2) अ) सामाजिक क्राँन्ति में किसान वर्ग का महत्व।

ब) नया लोकतंत्र।

स) ज्ञान के लिये भौतिकवादी धारणा।

द) प्रतिवादों का विघटन करने की पद्धति।

ध) क्राँन्तिकारी कार्यकर्ताओं के लिये नियम एवं अनुशासन।

इकाई 6 चीन में राजनैतिक व आर्थिक सुधार

संरचना

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 ऐतिहासिक समीक्षा 1949—1978
6.3 आर्थिक सुधार
  6.3.1 ग्रामीण सुधार
  6.3.2 शहरी एवं अन्य आर्थिक सुधार
6.4 राजनैतिक सुधार
6.5 मूल्यांकन
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में, आप चीनी जनवादी गणतंत्र में माओ-जीडांग की मृत्यु के बाद डैंग-ज़िआओ-पिंग तथा नेताओं के एक नये गुट के सत्ता में आ जाने से लेकर अब तक हुए, सुधारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपको निम्नलिखित बातों में संक्षम होना चाहिये :

- समाजवादी व्यवस्था में मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था को अपनाए जाने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना;
- यह देखने में कि सुधारवादी निज़ाम द्वारा किस तरह से एक मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था के समाजवादी व्यवस्था में एकीकरण को न्यायोचित ठहराया गया है;
- यह समझना कि किस तरह से सीमित राजनैतिक सुधार एक आवश्यक शर्त रही है किन्तु आर्थिक सुधारों को लागू किये जाने के लिये पर्याप्त नहीं रहे हैं;
- इन सुधारों के चीन की जनता, खासतौर पर, वर्तमान पीढ़ी के, सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को समझना।

6.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के चीन का इतिहास, दो अतिवादी नीतियों के बीच दोलन करते रहने का इतिहास रहा है। 1949 के बाद से इसके अस्तित्व के दौरान शुरू से अब तक, चीनी कम्युनिस्टों के दो प्रमुख लक्ष्य, समतावाद तथा आर्थिक आधुनिकीकरण रहे हैं। ये दोनों लक्ष्य परस्पर विरोधी रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप, जब भी किसी एक पर बल दिया गया तो दूसरे को हासिल किये जाने पर विपरीत प्रभाव पड़ा। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की प्राथमिकता लगातार सामाजिक क्रांति से आर्थिक विकास की तरफ खिसकती रही है। एक ही समय पर दोनों को प्राप्त करने का लक्ष्य, अब तक भ्रामक रहा है। माओ के बाद के सुधार, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्राँति की क्रांतिकारी-राजनीति के एक दौर के उपरान्त किये गये थे, जिसके तहत उस दौर में वर्ग-संघर्ष, समतावाद तथा राजनैतिक प्रतिबद्धता को प्राथमिकता दी गई थी। क्रांतिकारी राजनीति के इस दौर से, पैण्डुलम पुनः तीव्र आर्थिक विकास के आधार पर धीरे-धीरे सामाजिक बदलाव पर ज़ोर देने की तरफ सरक गया। राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में किये गये सुधार इसी ध्येय को ध्यान में रखते हुए शुरू किये गये हैं।

6.2 ऐतिहासिक समीक्षा 1949-1978

माओ के बाद के काल में हुए सुधारों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिये यह जरूरी है कि उस दिशा को समझा जाये, जिसमें 1949 से चीन में आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तन होते रहे हैं। 1949 से 1992 के बीच की अवधि इसीलिये निम्नलिखित मोटे चरणों में विभाजित की जा सकती है: 1) 1949-1952, 2) 1953-1957, 3) 1958-1960, 4) 1961-1965, 5) 1966-1976, 6) 1976 से आज तक।

1) **1949-1952** का काल स्वाधीनता के तुरंत बाद वाला काल है, जबकि चीन आर्थिक तौर पर पिछड़ा हुआ था। करीब-करीब 90% आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती थी। मुद्रास्फीति आसमान छू रही थी। लघु स्तर की कृषि, पुरानी पड़ चुकी उत्पादन तकनीकें तथा विधियां, ग्रामीण क्षेत्रों में नियम बन गई थीं। आधुनिक उत्पादक उद्योग सीमित थे।

   इस काल में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने नई जनवादी राजनीति के सिद्धान्त को लागू किया। इसने अभी समाजवाद के निर्माण के लिये प्रयास नहीं किया, बल्कि उसके बजाय संक्रमणकालीन प्रकृति के एक समाज के निर्माण की कोशिश की, जिसमें चार क्रांतिकारी वर्गों औद्योगिक सर्वहारा, किसान, पेटी-बुर्जुआ तथा राष्ट्रीय बुर्जुआ की सामान्य आकांक्षाओं को पूरा किया जा सके। इस अवधि के दौरान, आर्थिक पुनर्निर्माण को भारी महत्व दिया गया। मुख्य उद्देश्य यह रहा कि अर्थव्यवस्था की बुनियादी मशीनरी तथा प्रशासन को चालू हालत में बनाए रखा जाए और कृषि सुधार, जिनके तहत भूस्वामियों की ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद जमीनों व वस्तुओं को बिना कोई हर्जाना दिये जब्त कर लिया गया था और बंधुआ मजदूरी तथा सामंती सेवाओं का उन्मूलन कर लिया गया था।

2) **1953-1957** का समय ऐसा था जबकि चीन ने स्पष्टत: आर्थिक व साथ-ही-साथ राजनैतिक तौर पर भी, स्वयं को सोवियत संघ के नमूने के अनुरूप ढाल लिया था। सैद्धान्तिक तौर पर, प्रथम पंचवर्षीय योजना ने भारी उद्योगों का पक्ष लिया, तकनीकी निपुणता, संस्थागत ढांचों तथा जनता के बड़े हिस्सों को शिक्षा उपलब्ध कराये जाने पर बल दिया गया। राजनैतिक व्यवस्था पार्टी तथा राज्य के वर्णक्रमों पर आधारित थी। पार्टी द्वारा देश का संचालन, जनवादी-केन्द्रीयता के सिद्धान्त के अनुसार किया जाता था। इस अवधि में चीन की अर्थव्यवस्था ने शानदार किन्तु असंतुलित प्रगति की। कृषि-क्षेत्र पर बुरा असर पड़ा जबकि उद्योगों को बढ़ावा मिला। 1955 में कृषि सहकारिताओं की स्थापना की गई, जिन्होंने केन्द्र के शक्तिशाली शासन की जगह ले ली। यह उग्र-परिवर्तन की शुरूआत थी, जिसने 1958 में आगे की दिशा में लम्बी छलांग का रास्ता तैयार किया।

3) **1958-1960;** आगे की दिशा में लम्बी छलांग, सोवियत संघ से उधार ली गई विकास रणनीति का एक विकल्प थी और इस युक्ति पर आधारित थी कि चीन के पास विशाल जनसंख्या है जोकि राजनैतिक एवं सामाजिक रूप से जागरूक तथा परिश्रमी है। उनके एकजुट प्रयास से सीमित पूंजी की समस्या को दूर कर दिया जायेगा और यह थोड़े से समय में ही समूचे देश का रूपान्तरण कर देगी। यह "दो पैरों पर चलते हुए" किया जाना था अर्थात् उद्योगों को प्राथमिकता देना जारी रखा जाना था किन्तु कृषि को प्रगति का आधार बन जाना था। सैद्धान्तिक रूप से यह अविवेकपूर्ण नहीं था किन्तु इसने चीन को अत्यंत तीव्र गति से रूपान्तरित कर डालने का प्रयास किया। आन्दोलन दो वर्षों तक चल सका, जिसके बाद की अवधि में इसके विनाशकारी परिणाम दिखाई पड़ने लगे। अर्थव्यवस्था में आगे की दिशा में लम्बी छलांग के साथ-साथ, कम्यून-प्रणाली का 1958 में, समूचे चीन में विस्तार कर दिया गया। सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया, जिसके चलते स्थानीय इकाइयों का महत्व बढ़ गया। जनवादी कम्यून को समाजवादी सामाजिक ढांचे की बुनियादी इकाई बनाया गया।

4) **1961-1965;** 1961 के शुरू में आर्थिक स्थिति के भयावह हो जाने से, यह स्पष्ट कर दिया कि लम्बी छलांग के वर्षों में अपनाई गई आर्थिक नीति को दोबारा से समायोजित किया जाना चाहिये। आर्थिक लक्ष्यों को संशोधित किये जाने के साथ-साथ, जनवादी कम्यूनों की प्रणाली को

भी पुनर्गठित किया गया तथा सुदृढ़ीकरण का एक दौर चालू हुआ। हालांकि, 1961-1965 के बीच के काल में, उन नीतियों को लेकर निरंतर राजनैतिक संघर्ष चलता रहा, जिन्हें कि अपनाया जाना चाहिये।

5) **1966-1976,** महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति, जोकि मई 1966 में शुरू हुई थी, उसका उद्देश्य उन विचारों, मूल्यों तथा मानसिक आदतों को बदलना, जोकि चीन की परंपरा का हिस्सा थी तथा एक नई समाजवादी संस्कृति का निर्माण करना था। राजनैतिक क्षेत्र में, लाल गार्ड (क्रांतिकारी नौजवान) तथा क्रांतिकारी विद्रोहियों ने नये सांस्कृतिक क्रांति गुट के मार्ग-दर्शन में, पार्टी तथा सरकारी यंत्र को तहस-नहस कर डाला। उनके स्थान पर क्रांतिकारी समितियां गठित की गई। ये क्रांतिकारी समितियां छोटे-छोटे समूह थे जोकि नये क्रांतिकारी जन संगठनों, पी.एल.ए. तथा क्रांतिकारी कैडरों से आये प्रतिनिधियों से मिलकर बने थे। राजनैतिक चेतना को किसी खास क्षेत्र में किसी तरह की विशेष क्षमता की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया। हालांकि राजनीति को सबसे ऊपर रखने तथा वरिष्ठ पदों पर बैठे लोगों का अपमान करने व उन्हें गाली देने की अतिवामपंथी नीतियों ने, पूरे तौर पर अफरा-तफरी की स्थिति पैदा कर दी। आर्थिक दृष्टि से यद्यपि कृषि को मामूली नुकसान पहुँचा, किन्तु अनेक उद्योगों में उत्पादन काफी नीचे आ गया। विदेश-व्यापार में भी इसी तरह की उल्लेखनीय गिरावट आई। यह मुख्यत: राजनैतिक गड़बड़ी तथा चीन द्वारा अपनाई गई अलगाव की नीति के फलस्वरूप ही हुआ। रोज़गार की सुरक्षा तथा सभी मजदूरों के लिये रोज़ी-रोटी उपलब्ध कराने की मुहिम के चलते उत्पादकता में वृद्धि को पुन: धक्का लगा। दूसरी तरफ उद्यमशीलता को प्रोत्साहन देने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी क्योंकि राज्य के निर्देशानुसार ही लोगों को उत्पादन करना होता था। इस तरह सांस्कृतिक क्रांति के दौरान जहां कम्यून-प्रणाली ने अधिकांश जनता की कुछ बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति की, वहीं केन्द्रीकृत निर्देशों पर चलने वाली अर्थव्यवस्था ने भारी उद्योग तथा पूंजी के संचय का रास्ता तैयार किया, उपभोग को नाममात्र का बनाये रखा गया तथा लोगों का जीवन-स्तर अवरूद्ध हो गया अथवा उसमें गिरावट आ गई। इस प्रकार की कठोर आर्थिक प्रणाली, उत्पादन की नई व विकासमान शक्तियों की, जरूरतें पूरी नहीं कर पाई। अब उपभोक्ता उद्योग के विकास तथा आर्थिक प्रगति को तेज किये जाने की जरूरत महसूस की गई। इस तरह परिस्थिति डैंग-ज़िआओ-पिंग द्वारा पैण्डुलम को सुधार नीतियों तथा आर्थिक उदारीकरण के पक्ष में मोड़ देने के लिये परिपक्व हो गई।

6) 1949-1976 के बीच के काल पर दोबारा नज़र डालने पर, यह तथ्य उभर कर सामने आ जाता है कि कम्युनिस्ट पार्टी, एक तरफ एक बेहतर समतावादी समाज की स्थापना करने तथा दूसरी तरफ आर्थिक आधुनिकीकरण किये जाने के प्रयोग बारबार करती आई है। हमेशा उद्देश्य यह रहा है कि दोनों लक्ष्यों को एक साथ हासिल किया जाय, किन्तु मुख्य जोर हमेशा एक से दूसरे पर अदला-बदली करता रहा है। दोनों ही दिशाओं में लम्बे डग भरे गये हैं, किन्तु आमतौर पर, उस दौर में, जबकि उग्र सामाजिक नीतियों पर मुख्य बल दिया गया है, देश में अफरा-तफरी फैली है। निस्संदेह, जनता की सामाजिक चेतना उच्च स्तरों तक पहुँची है तथा सामूहिक कार्यवाही तथा भिन्न रूप में हितों का संस्थानीकरण हुआ है।

यह बात, कि कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर एक ऐसी क्रिया चल रही थी, जोकि समाजवाद के लक्ष्य को आर्थिक उदारीकरण के माध्यम से प्राप्त करना चाहती थी, हमेशा से दिखाई पड़ती रही है, किन्तु इसे व्यापक शक्ति, माओ की मृत्यु तथा 1976 के उत्तरार्द्ध में "चार की चौंकड़ी" की गिरफ्तारी के बाद ही, हासिल हो सकी। यहाँ तक कि उसके बाद भी, नये उत्तराधिकारी हुआ-कुओ-फैंग बने, जोकि सुधारों के प्रति बहुत अधिक झुकाव नहीं रखते थे। 1978 तक पहुँचते-पहुँचते, डैंग-ज़िआओ-पिंग, तमाम विरोध को दूर करने तथा अपनी हैसियत को मजबूत बना लेने में कामयाब हो गये। सुधार-कार्यक्रम भी उसके बाद ही लागू किया गया।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) आपके उत्तर के लिये नीचे रिक्त स्थान दिया गया है।

2) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिये।

1) 1978 में चीन द्वारा उठाई गई वे आर्थिक समस्याएं क्या थी, जिनके चलते सुधार आवश्यक हो गये? एक सौ अथवा कम शब्दों में उत्तर लिखिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.3 आर्थिक सुधार

नये नेतृत्व ने आर्थिक विकास तथा चार आधुनिकीकरणों को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। 1978 में एक नई दस वर्षीय योजना की घोषणा की गई। इसे कृषि, उद्योग, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विज्ञान व तकनीक के क्षेत्रों में विकास को अत्यधिक तेज करने की दृष्टि से तैयार किया गया था। व्यावहारिकता, सद्भाव तथा व्यवस्था पर बल दिया गया; जोकि पिछले दस वर्षों में टकराव एवं विचारधारा पर दिये जाते रहे बल के ठीक विपरीत था। 1980 के दशक से, इसी के आधार पर नये नेतृत्व ने, सामूहिकता तथा समतावाद पर जोर देने वाले माओवादी नमूने तथा सोवियत नमूने, जोकि एक समाजवादी आर्थिक अधिरचना का ढाँचा प्रदान करने के लिये केन्द्रीकृत राज्य नियोजन तथा राज्य-प्रशासन को आवश्यक मानता था दोनों को ठुकरा दिया।

चूंकि नये नेतृत्व का घोषित उद्देश्य, चीन को वर्ष 2000 तक उसके 1980 के सकल औद्योगिक तथा कृषि उत्पाद मूल्य को चौगुना करके एक "आधुनिक" समाजवादी देश बनाना था, अतः उन पुरानी नीतियों को सुधारने के व्यापक कदम उठाये गये, जिन्हें इस लक्ष्य की प्राप्ति में एक कमजोरी माना गया। नई आर्थिक नीति को चार शब्दों वाले एक निर्देश से संचालित होना था। ये थे, "पुनः समायोजन, पुनर्निमाण, सुदृढ़ीकरण, सुधार"। इसके मायने हैं : बुनियादी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का "समायोजन", जोकि सांस्कृतिक क्रांति के दौरान अपनाई गई "अति वामपंथी" नीतियों के चलतें गड़बड़ा गई थी : आर्थिक प्रबंधन की मौजूदा अति-केन्द्रीकृत, सख्त व नौकरशाही प्रणाली का "पुनर्निमाण", उद्यमशील प्रबंधन में "सुधार"। इन सिद्धान्तों का निर्धारण, अप्रैल 1979 में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सी.सी.पी.) की केन्द्रीय समिति के एक कार्यकारी सम्मेलन में किया गया।

उसमें निर्धारित किये गये सिद्धांतों के अनुरूप ही ग्रामीण तथा साथ ही शहरी क्षेत्रों में, चीनी अर्थव्यवस्था में सुधार ने एक आकार ग्रहण करना शुरू किया।

6.3.1 ग्रामीण सुधार

कृषि क्षेत्र में हुए प्रमुख सुधारों में से एक ग्रामीण उत्पादन के प्रबंधन में किया गया। यह महसूस किया गया कि यद्यपि समान फायदे के लिये एक साथ मिलकर काम करना सीमित निवेश की समस्याओं का समाधान कर सकता है, किन्तु यह उन लोगों को अतिरिक्त लाभ प्रदान नहीं करता जिनमें बड़ी उद्यमशील क्षमता मौजूद हो तथा जो परिश्रमी हों। इसीलिये भौतिक अतिरिक्त लाभ किसानों के लिये बहाल किये गये। उत्पादन उत्तरदायी प्रणाली : इस दिशा में पहला कदम, करार संबन्धी उत्पादन उत्तरदायित्व प्रणाली अथवा घरेलू ठेका प्रणाली के ज़रिये धीरे-धीरे पारिवारिक खेती की तरफ लौटने का था। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की ग्यारहवीं केन्द्रीय समिति के चौथे प्लैनरी सत्र में पारित ठोस उपाय, "कृषि विकास को तेज करने से जुड़े अनेक प्रश्नों पर लिये गये निर्णय" थे। प्रणाली के तहत राज्य के नियोजनकर्ताओ ने पहले किसी इलाके की प्रत्येक उत्पादन टीम को मोटे तौर पर उत्पादन की योजना बनाने की सलाह दी। उत्पादन टीम उसके बाद उसके कोटे के तौर पर आपूर्ति किये जाने वाली मात्रा के संबन्ध में राज्य के साथ एक समझौता करती थी। उसके बाद

वह विभिन्न परिवारों अथवा समूहों के साथ इस आशय के समझौते करती थी। इन समझौतों में दो-टूक ढंग से यह दर्शाया गया होता था कि समझौता करने वाले पक्ष किन शर्तों पर स्वयं अपने ऊपर उत्तरदायित्व ले रहे हैं और फसल अथवा आय को वे आपस में किस अनुपात में बाँटेंगे। उसके बाद दल को भूमि आवंटित की जाती थी तथा उनके परिवारों को हल, बैल तथा खेती में काम आने वाले छोटे व मझौले उपकरण प्रदान किये जाते थे। करारनामें में तय किये गए उत्तरदायित्वों के ऊपर से उत्पादन में दिये जाने वाले समय तथा काम के क्रम के बारे में निर्णय लेने के लिये किसान स्वतंत्र थे। सबसे बड़ा प्रोत्साहन जिसकी कि पेशकश की गई थी वह यह था कि वे करारनामें के तहत टीम को बेचे जाने वाली मात्रा से ऊपर की तमाम फसल को अपनी मर्जी से बेचने के लिये स्वतंत्र थे। वे उसका उपभोग कर सकते थे, उसे अपने पशुओं को खिला सकते थे, अथवा मुक्त बाजार में बेच सकते थे। वे उसे राज्य की क्रय-एजेन्सियों को भी बेच सकते थे, जिसके अंतर्गत इस स्थिति में उन्हें सरकारी खरीद मूल्य से कहीं अधिक बड़ा प्रीमियम मूल्य प्राप्त होता था।

यह प्रणाली पहले कुछ समस्याग्रस्त क्षेत्रों में शुरू की गई जहाँ खेती करना कठिन काम था, किन्तु इस प्रणाली द्वारा की जाने वाली छूट की पेशकशों ने देशभर में इस तरह के समझौतों का आम फैलाव किये जाने की किसानों की लगभग ऐसी मांग का उभार दिया, जिसे नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता था। हालांकि, इस प्रणाली का पार्टी कैडरों के बीच से भारी विरोध हुआ, किन्तु यह कारगर होती प्रतीत हुई क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों से उत्पादन में भारी वृद्धि दर्ज की गई।

कम्यूनों का विघटन :- इस प्रणाली के परिणामस्वरूप, उत्पादन टीम की जिम्मेदारियां बढ़ गई और कम्यून की भूमिका घट गई। 1983-84 तक पहुंचते-पहुंचते, ग्रामीण कम्यून पूरी तरह विघटित कर दिये गये। पहले उन्हें उनके प्रशासनिक कार्यभारों से मुक्त किया गया, जिन्हें पुनरूज्जीवित स्थानीय सरकारों ने अपने हाथ में ले लिया। इनकी आर्थिक जिम्मेदारियों ने "औद्योगिक-कृषि-वाणिज्यिक-ट्रस्टों" जैसे नाम ग्रहण कर लिये। यद्यपि, माओ के बाद के नेतृत्व ने कम्यूनों की कटु आलोचना की थी, फिर भी कम्यूनों ने चीनी समाजवाद के विकास में, निस्संदेह एक महान योगदान दिया था। उन्होंनें विशाल स्तर की जल संरक्षण परियोजनाओं के निर्माण भूमि के रूपान्तरण तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास में सहायता की।

कृषि उत्पादन का विविधीकरण :- कृषि के प्रबंधन में सुधार के साथ-साथ, अनाज की खेती की एकरूपी संस्कृति को बदलकर सब्जियों व अन्य फसलों की विविद्यतापूर्ण कृषि पैदावार, वानिकी, पशुपालन, मछलीपालन तथा अन्य सहायक व्यवसायों के जरिये, कृषि संरचना में भी सुधार लाये गये। इन उत्पादों को स्थानीय स्तर पर खुले बाजार में बेचा जा सकता था। इससे किसानों को अपनी आय में वृद्धि करने में काफी मदद मिली।

उत्पादन में वृद्धि :- इन सुधार-उपायों के प्रभाव के चलते 1983 तथा 1984 में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में काफी तेजी आई, यहाँ तक कि कृषि तथा सहायक ग्रामीण गतिविधियों के परिणाम लगभग प्रत्येक क्षेत्र में एक कीर्तिमान साबित हुए। कृषि उत्पादों का कुल मूल्य 1983 में 9.6% तथा 1984 में 17.6% बढ़ गया। 1984 में, फसलों के उत्पादन में 9.9%, पशुपालन में 13.4% तथा सहायक गतिविधियों के उत्पादन में एक ही वर्ष में 47.9% की वृद्धि हुई। 1984 में, चीन के इतिहास में पहली बार, अनाज का वार्षिक उत्पादन 400 मिलीयन टन से भी अधिक हुआ, कपास का उत्पादन 6 मिलीयन टन रहा, अर्थात् 6 वर्ष पूर्व 1978 में हुए उत्पादन की तुलना में, अनाज का उत्पादन 100 मिलीयन टन अधिक रहा तथा कपास का उत्पादन 4 मिलीयन टन अधिक हुआ। औसत प्रति व्यक्ति ग्रामीण आय में जबर्दस्त वृद्धि हुई।

ग्रामीण कस्बे तथा कस्बाई उद्यम :- बढ़ी हुई क्रय-शक्ति के चलते अनेक किसानों ने बेहतर मकान बनवाये तथा कैसेट रिकार्डर, टेलीवीजन, तथा रैफ्रीजरेटरों जैसे ऐशोआराम की चीजें अपने लिये खरीदी। इसके परिणाम-स्वरूप ग्रामीण कस्बों का विकास हुआ जिसने अतिरिक्त ग्रामीण श्रमिकों को रोज़गार उपलब्ध कराया और ग्रामीण क्षेत्रों में हल्के व सेवा उद्योगों के विकास का रास्ता तैयार किया। अब इन कस्बाई उद्यमों को चीन की अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्तंम्भ और किसानों की संपन्नता का प्रमुख स्त्रोत माना जाता है। 1978 से, चीन के कस्बाई उद्यम प्रतिवर्ष लगभग 6.7 मिलीयन ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार प्रदान कर रहे हैं और 1990 में इन उद्यमों में 92 मिलीयन श्रमिक स्टाफ काम कर रहा था, जिससे अतिरिक्त श्रम-शाक्ति द्वारा पैदा किया गया दबाव काफी कम हो गया था।

तकनीकी सुधार :- कृषि उत्पादन 1984 में अपने शिखर पर पहुंच गया और उसके बाद के वर्षों में उसमें गिरावट आने लगी। हालांकि, वह पुन: अब तक के सर्वोच्च स्तर पर पहुंचा। ऐसा प्राय: कृषि तकनीक में सुधार की वजह से संभव हुआ। सांस्कृतिक क्रांति के दौर के विपरीत अब कृषि के मशीनीकरण को अत्यधिक जनसंख्या वाले देश में एक नकारात्मक चीज नहीं माना जाता था, हालांकि नेतृत्व ने श्रम-सघन उत्पादन की जरूरत को नकारा नहीं था, फिर भी कृषि के मशीनीकरण को बढ़ावा दिया गया और यह माना गया कि अधिक उत्पादन होने पर सभी को उसका लाभ पहुंचेगा। कृषि अनुसंधान को प्रोत्साहन दिया गया है और आधुनिक उत्पादन के साधनों को बेहतर किस्म के बीजों व खादों को लोकप्रिय बनाने के प्रयास किये गये हैं।

6.3.2 शहरी एवं अन्य आर्थिक सुधार

ग्रामीण क्षेत्रों में मिली सफलता की तुलना में, शहरी औद्योगिक व वाणिज्यिक क्षेत्रों में सुधारों की गति धीमी रही।

लोहे की चावल वाली प्याली का टूटना :- सबसे महत्वपूर्ण कदम, अतिसमाजवादी समतावादी उस दृष्टिकोण को त्याग देने का था, जोकि इस युक्ति के जरिये लोकप्रिय ढंग से अभिव्यक्त हुआ था कि "प्रत्येक व्यक्ति एक बड़े बर्तन में से भोजन करेगा'' तथा "लोहे की चावल वाली प्याली'' से भी। पुरानी प्रणाली के तहत राज्य किसी भी आर्थिक इकाई के वेतनों के भुगतान की गारंटी करता था, भले ही उसके उत्पादों की गुणवत्ता कुछ भी क्यों न हो अथवा इस तथ्य के बावजूद कि वह घाटे में चल रही हो, इसीलिये श्रमिकों तथा प्रबंधकों में जिम्मेदारी की भावना ही नहीं थी, सभी "बड़े बर्तन'' में से एक हिस्सा प्राप्त कर लेने के प्रति आश्वस्त थे, तथा खराब काम के लिये मजदूरों पर न तो कोई दण्डात्मक कार्यवाही की जा सकती थी और न ही घटिया प्रदर्शन करने पर उनके वेतनों में कोई कमी हो सकती थी इसीलिये उनकी "चावल की प्यालियां'' (रोजगार) कथित रूप से "लोहे'' की बनी हुआ करती थीं। इस प्रणाली में धीरे-धीरे सुधार किया गया ताकि मजदूरों को और अधिक उत्पादन करने के लिये प्रोत्साहित किया जा सके। उन्हें अतिरिक्त प्रोत्साहन राशियां दी जा रही हैं। अब वेतन संबन्धी कानूनों को इस हद तक संशोधित कर लिया गया है कि जो श्रमिक उचित ढ़ंग से काम के नतीजे प्रस्तुत नहीं करते, उन्हें काम से हटाया भी जा सकता है। वेतन-पैकेज में भी काफी बड़े स्तर की बढ़ोत्तरी हुई है।

प्रबंधन उत्तरदायित्व प्रणाली :- औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करने के लिये सबसे पहले राज्य के उद्यमों के प्रबंधन की दशाएं सुधारने के प्रयास किये गये, इसके लिये उद्यमों की स्वायत्ता में बढ़ोत्तरी की गई तथा आर्थिक इकाइयों को उनके लाभ-हानि के प्रति जवाबदेह बनाया गया। राज्य ने आर्थिक इकाइयों के कामकाज में प्रत्यक्ष भागीदारी से स्वयं को पीछे हटा लिया। इकाइयों को अपने वित्त की व्यवस्था करनी होती थी, उन्हें बैंकों से सीधा सारोकार रखना पड़ता था तथा खराब प्रबंधन नतीजे भुगतने पड़ते थे।

साथ ही, राज्य ने किसी भी आर्थिक इकाई के मुनाफों पर से अपना दावा छोड़ दिया, वह केवल करों पर ही अपना दावा पेश करने लगा। इससे इकाइयों के पास उनके मुनाफे सुरक्षित रहे जिनका इस्तेमाल वे कार्यकुशलता श्रमिकों व प्रबंधकों के वेतनों में बढ़ोत्तरी करने तथा अपनी मशीनों व तकनीक को उन्नत बनाने हेतु कर सकती थी।

राज्य नियोजन बाज़ार के नियमों के साथ एकबद्ध हुआ :- उद्यमों को अधिक स्वायत्ता समेत, बाज़ार क्रियाविधि अथवा बाज़ार की शक्तियों को वस्तुओं की गुणवत्ता, उनके मूल्य तथा वितरण के मामले में काफी हद तक स्वतंत्रता प्रदान की गई। राज्य-नियोजन का पूरी तरह से परित्याग नहीं किया गया है किन्तु यह बाज़ार-अर्थव्यवस्था के साथ सह-अस्तित्व बनाये हुए हैं।

सरकार द्वारा स्पष्ट तौर पर यह कहा गया कि "समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित एक नियोजित अर्थव्यवस्था है, जिसमें मूल्य के नियम का सचेतन ढ़ंग से पालन व प्रयोग किया जाना चाहिये। एक काल अर्थव्यवस्था का संपूर्ण विकास, समाज को आर्थिक प्रगति में एक अपरिहार्य अवस्था है और हमारे आर्थिक आधुनिकीकरण की पूर्वशर्त है''।

मूल्य संबन्धी सुधार :- सुधारकों के सामने मूल्य संबन्धी सुधारों की आवश्यकता भी स्पष्ट तौर पर उभर आई। अत: मूल्य प्रणाली को तर्कसंगत बनाने के लिये प्रयास किया गया। 1954 से 1984 तक सरकार की नियंत्रण ऐजेंसियों के जरिये मूल्यों को स्थिर बनाये रखा गया था। बाजार द्वारा मूल्यों का नियंत्रण नगण्य था। 1979 से कृषि उत्पादों के क्रय-मूल्यों में बढ़ोत्तरी की गई। इसी समय, करार उत्तरदायित्व प्रणाली के प्रसार के साथ ही, कृषि उत्पादों का खुले बाजार में व्यापार भी विस्तृत हुआ। इसलिये वस्तुओ की मांग व पूर्ति ने मूल्यों पर भी प्रभाव डाला। इसलिये 1985 में पुरानी आर्थिक प्रणाली से नई आर्थिक प्रणाली में संक्रमण की प्रक्रिया में मदद देने के लिये, दोहरी मूल्य प्रणाली शुरू की गई। यह दोहरे मूल्य, मूल्य प्रणाली में इतने बड़े बदलाव के झटके को वहन करने, तथा और अधिक मुद्रा-स्फीति से बचने के लिये भी थे। अनाजों तथा आवश्यक वस्तुओं के लिये दी जाने वाली राज्य-सब्सिडियों को अब धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है, ताकि बाजार के नियमों को अधिक महत्व प्रदान किया जा सके।

हलके उद्योगों पर बल :- भारी उद्योगों पर अधिक बल दिये जाने के चलते अर्थव्यवस्था में पैदा हुए असंतुलन को भी समाप्त करने की मांग की गई। भारी उद्योगों के विस्तार को धीमा करने के सचेत प्रयास किये गये तथा कृषि एवं हल्के उद्योगों के विकास पर बल दिया गया। कुल मिलाकर प्रगति की दर काफी प्रभावशाली रही। 1979-1984 के बीच के 5 वर्षों में हल्के उद्योगों का 11% से भी अधिक की प्रगतिशील वार्षिक दर पर विकास हुआ तथा भारी उद्योगों का 5% से भी अधिक की दर पर।

निजी उद्यम :- सेवा उद्योग क्षेत्र में भी सुधारों की शुरूआत की गई। निजी स्वामित्व वाले निजी उद्यमों को इस क्षेत्र में बढ़ावा दिया गया। ये उद्यम शुरूआत में केवल लघु उद्योग ही थे, जोकि मरम्मत के काम, रेस्टोरैण्ट, सिलाई के छोटे केन्द्र ट्रॉंसपोर्ट तथा इसी तरह के काम करते थे। इन्होंने स्थानीय आर्थिक परिदृश्य में एक नये जीवन का संचार कर दिया। ये निजी उद्यम अब तेजी से विकास कर रहे हैं। निजी उद्यमों के लिये मिली इस स्वतंत्रता ने शहरी परिवारों की आय में वृद्धि करने में मदद की है। शहरी वेतनों में भी सुधार हुआ है। इस सबके चलते उपभोग में वृद्धि हुई है। हल्के उद्योगों पर दिये गये बल ने उपलब्ध उपभोक्ता वस्तुओं की गुणवत्ता तथा परिमाण में भी जबर्दस्त वृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है।

विदेश व्यापार :- आर्थिक क्षेत्र में सबसे ज्यादा शानदार सुधार, विदेश व्यापार, तकनीक तथा निवेश में, "दरवाजे खोले जाने" का था। यह आत्म-निर्भरता की पहले वाली नीति के ठीक विपरीत था, जो कि 1970 तक चली जबकि विश्व के साथ पुन: जुड़ने का एक सचेतन प्रयास शुरू हुआ था। हालांकि, 1979 से पहले समस्त चीनी विदेशी व्यापार केन्द्रीय नियंत्रण व नियोजन के अधीन था। आयातों को केवल निर्यातों के स्तर के बराबर ही मंजूरी दी जाती थी। इसलिये, विदेश व्यापार अत्यधिक सीमित था। 1979 के बाद विदेश नीति के कानूनों को उदार बना लिया गया है।

विदेशी निवेश :- विदेशी निवेश में भी जबर्दस्त वृद्धि हुई है, खासतौर पर संयुक्त उद्यमों के मामले में। विदेशी उद्यमियों को सर्वश्रेष्ठ माहौल प्रदान करने के लिये, कुछ क्षेत्रों को संयुक्त उद्यमों के लिये चुन लिया गया। ये चार विशेष आर्थिक क्षेत्र – शेनझॉन, झुहाई, शान्टो तथा जियामेन (बाद में हेनांन भी) थे। 14 अन्य शहरों को भी विशेष आर्थिक विकास के लिये चुना गया। इन क्षेत्रों में विदेशी पूंजी के निवेश के लिये लाभकारी माहौल तैयार किया गया। साथ-ही-साथ, चीनी व विदेशी फर्मों के बीच संयुक्त उद्यमों के संदर्भ में जनवादी चीनी गणतंत्र के आय-कर कानून भी निर्धारित किये गये। संयुक्त उद्यमों का मुख्य उद्देश्य, तकनीक का आयात करने में सहायता करना है, जोकि चीन की अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण की दर को तेज करने, चीनी अर्थव्यवस्था की कमजोर कड़ियों अर्थात् धानुकर्म, दूर-संचार, खनन, परिवहन, तेल की खोज तथा परमाणु बिजली घरों, को मजबूत बनाने में मदद करेगी। हाल ही में, हेनांन प्रायद्वीप के यांगपू विकास क्षेत्र को, 70 वर्षों तक के लिये विदेशों को पट्टे पर देने के लिये चुना गया है।

लोक वित्त :- शंघाई तथा शेनझॉन में शेयर बाजार स्थापित किये गये हैं तथा कुछ उद्यमों के लिये वित्त जुटाने के लिये शेयर जारी किये गये हैं।

इस तरह 1978 से अब तक अर्थव्यवस्था में ऐसा सुधार ले आया गया है कि अब उसे पहचान पाना भी कठिन है। मुक्त बाजारों का विकास हुआ है, विदेश व्यापार बढ़ा है। कृषि व उद्योग, दोनों ही क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ गया गया है। यह एक प्रगतिशील एवं विकासमान अर्थव्यवस्था है, जिसमें विकास के फलों को समान रूप से वितरित किया जाता है। उद्यमशीलता को बढ़ावा दिया गया है तथा विदेशियों को बार-बार उच्च तकनीक के क्षेत्र में अधिक-से-अधिक निवेश करने के लिये आमंत्रित किया गया है, ताकि चीन एक आधुनिक विकसित देश बन सके।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) आपके उत्तर के लिये नीचे रिक्त स्थान उपलब्ध कराया गया है।

2) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये उत्तर से कीजिये।

1) "चार आधुनिकीकरणों" के नाम बताइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) नई आर्थिक नीति का मार्ग दर्शन करने वाले "चार शब्द (दिशा-निर्देश)" क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

3) उत्पादन उत्तरदायित्व प्रणाली का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

4) अर्थव्यवस्था में किन तरीकों से सुधार लाया गया?

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 राजनैतिक सुधार

प्रस्तावना :- डैंग-जियाओ-पिंग के साथ जो नया नेतृत्व सत्ता में आया, उसमें अधिकांशत: ऐसे लोग थे, जिन्हें सांस्कृतिक क्रांति के दौरान भारी कठिनाइयां झेलनी पड़ी थीं। वे न केवल उन लोगों को

उखाड़ फैंकना चाहते थे, जिन्होंने सांस्कृतिक क्रांति के नाम पर अत्याचार किये थे, बल्कि एक ऐसा संस्थागत ढांचा भी तैयार करना चाहते थे, जिसके तहत उस तरह की राजनैतिक ज्यादतियां दोबारा न हो सकें, जैसाकि सांस्कृतिक क्रांति के दौरान अनुभव की गई थीं। साथ-ही-साथ, यह भी महसूस किया गया कि आर्थिक सुधार तथा आधुनिकीकरण, राजनैतिक प्रकृति के सुधार लाये बगैर संभव नहीं हैं। मौजूदा विचारधारा पार्टी-प्रणाली तथा प्रशासनिक तंत्र में किये जाने वाले सुधारों को वह आधार उपलब्ध कराना था, जिस पर आर्थिक सुधारों को लागू किया जा सके। यही वह परिस्थिति थी जिसमें कि राजनैतिक सुधार प्रभावी हुए।

समस्याएँ :- डैंग-ज़ियाओ-पिंग ने स्वयं, "पार्टी प्रणाली तथा राज्य नेतृत्व में सुधार" विषय पर दिये गये, अपने भाषण में स्थापित राजनैतिक प्रणाली की प्रमुख कमजोरियों को गिनाया था। मुख्य समस्याएँ, जोकि उनकी निगाह में, समाजवाद के महान फायदों के विकास में बाधा बनी हुई थीं, इस प्रकार थीं : नौकरशाही, सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण, कुलपिता जैसा बर्ताव, नेतृत्वकारी पदों तथा विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकारों का आजीवन बरकरार रहना"। जिन प्रमुख स्वरूपों में, ये समस्याएं अभिव्यक्त हुईं, वे थे: "जनता से ऊपर उठी हुई हैसियत, सत्ता का दुरुपयोग: स्वयं को वास्तविकता तथा जनता से काटकर अलग कर लेना . . . . . सोचने के एक अड़ियल रवैये पर डटा रहना . . . . . जनतंत्र का गला घौटनां, वरिष्ठों व कनिष्ठों का जमघट, मनमानी करना तथा निरंकुश हो जाना, इत्यादि"।

पार्टी सुधार :- चूंकि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी चीनी राजनैतिक व्यवस्था के केन्द्र में है, अत: पार्टी में इसके नेतृत्व में इसके ढांचे में इसके प्राधिकार क्षेत्र में तथा काम के तौर-तरीकों में बदलाव लाये बिना व्यवस्था में कोई सुधार लाना असंभव था। पहला प्रमुख कार्यभार चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की वैधता को पुन: स्थापित करने का था। यह माओ तथा चार की चौंकड़ी द्वारा किये गये कामों का पुनर्मूल्यांकन करके किया गया। चार की चौंकड़ी को सांस्कृतिक क्रांति के दौरान की गई तमाम ज्यादतियों के लिये दोषी ठहराया गया। माओ की भूमिका का मूल्यांकन करना बहुत कठिन काम था। इसकी वजह केवल उनका प्रभाव ही नहीं बल्कि यह भी थी कि पार्टी तथा चीन में साम्यवादी क्रांति की भर्त्सना किये बगैर उनकी भर्त्सना करना मुश्किल था। इस समस्या का समाधान माओ के जीवन को उनके आरंभिक अच्छे चरण तथा बाद के बुरे चरण में विभाजित करके कर लिया गया। चीनी क्रांति की विजय तथा समाज़वाद की नींव रखने में उनकी शानदार भूमिका व सेवा को सराहा गया। जबकि उनकी भयंकर भूलों की भर्त्सना की गई। माओ के जीवन तथा योगदान को 70% अच्छा तथा 30% बुरा आंका गया। माओ के सिद्धांत को भी माओ के व्यवहार से पृथक करके देखा गया, और यह इंगित किया गया कि यद्यपि उन्होंने जो कुछ किया उसमें गलतियां हुईं, फिर भी उनके सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक हैं तथा पार्टी विचारधारा के सबसे अहम् पहलुओं का निर्माण करते हैं। इसलिये यह कहा गया "माओ जीडांग के विचार, चीन में लागू किया गया तथा विकसित किया गया मार्क्सवाद-लेनिनवाद हैं, यह एक सही सिद्धान्त से मिलकर बने हैं, सही सिद्धान्तों के एक तत्व तथा उस अनुभव का सारांश हैं, जिसकी चीनी क्रांति के व्यवहार ने पुष्टि की है और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की सामूहिक बुद्धिमता का प्रतीक है।"

पार्टी के भीतरी मतभेदों पर प्रस्ताव :- अगला कदम इस बात पर जोर देने का था कि पार्टी के भीतर के मतभेदों को शान्तिपूर्वक हल किया जाना चाहिये था, न कि उन लोगों को अपमानित व सार्वजनिक तौर पर नंगा करके, जो भिन्न राय रखते थे। इसलिये मतभेदों को बातचीत के ज़रिये हल किया जाना था। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने यह स्वीकार किया कि सांस्कृतिक क्रांति के दौरान, सामूहिक नेतृत्व के बिखर जाने के लिये, वह भी आंशिक तौर पर उत्तरदायी है। इसके परिणामस्वरूप, पार्टी नेतृत्व में परिवर्तन किये गये। चूंकि यह महसूस किया गया कि हुआ-कुओ-फैंग का भी माओ तथा चौकड़ी के साथ नजदीकी संबन्ध रहा था, तथा दूसरे यह कि वह लम्बी अवधि के सुधारों के पक्ष में नहीं थे, अत: उन्हें केन्द्रीय समिति तथा सैन्य-समिति के अध्यक्ष के पद से हटा दिया गया। हू याओबैंग को पार्टी अध्यक्ष तथा डैंग-जियाओ-पिंग को सैन्य-समिति का अध्यक्ष चुना गया। कार्यों के वितरण के परिणामस्वरूप, केन्द्रीय समिति के पोलिट-ब्यूरो की स्थाई समिति तथा प्रेज़ीडियम में भी फेरबदल किये गये। इन घटनाओं के परिणामस्वरूप, एक अपेक्षाकृत एकीकृत वैचारिक एवं राजनैतिक मंच, सुधार की एक नीति विकसित करने के लिये, तैयार किया गया।

पार्टी सदस्यता :- जनता का विश्वास पुन: अर्जित करने के लिये, पार्टी सदस्यता की पात्रता को पुन: परिभाषित किया गया। अधिक शिक्षित, सक्षम तथा युवा कैडरों की भर्ती का आह्वान किया गया। पार्टी नेताओं व कैडरों के आजीवन कार्यकाल की प्रणाली का अंत कर दिया गया। इस नीति से प्रभावित होने वाले लोगों को शान्त करने के लिये, डैंग-जियाओ-पिंग ने पुराने कैडरों को सलाहकार-समितियों में रख देने का प्रस्ताव किया। डैंग ने स्वयं भी उप-प्रधानमंत्री का पद छोड़ दिया और सैन्य-आयोग के अध्यक्ष बन गये (जबकि वास्तविकता में डैंग का हर चीज पर नियंत्रण बरकरार रहा)। हालांकि, पार्टी के अनेक वरिष्ठ सदस्य अपने पदों को छोड़ने के लिये राजी नहीं थे। इस नीति का, निचले स्तरों पर भी विरोध हुआ, जहां एक राजीनामे वाला समाधान यह निकाला गया कि यद्यपि पुराने कैडरों को बनाये रखा जायेगा किन्तु साथ ही उन्हीं पदों पर नये कैडरों की भी भर्ती की जायेगी।

पार्टी अनुशासन :- पार्टी अनुशासन को सुनिश्चित करने के लिए एक अन्य उपाय, चेन युन की अध्यक्षता में एक अनुशासन जांच आयोग का गठन किया जाना था। इसके पर्यवेक्षण में, प्रांतीय तथा कांउण्टी स्तरों पर पथभ्रष्ट सदस्यों को हटाने के लिये अनुशासन जांच समितियां गठित की गईं।

इन उपायों के विरोध के बावजूद, 1981—1985 के बीच के 5 वर्षों के दौरान किये गये प्रयासों के फलस्वरूप 10 लाख से भी अधिक चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ कैडरों को पैंशन देकर सेवामुक्त कर दिया गया। सितम्बर 1985 में, 131 उच्च पदों पर बैठे वरिष्ठ सदस्यों ने इस्तीफे दे दिये, हालांकि उनमें से अनेक ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के एक नये केन्द्रीय सलाहकार आयोग के सदस्यों के रूप में, अपनी परिलब्धियों (आय) को बरकरार रखा।

पार्टी व सरकार के कार्यों का बँटवारा :- पार्टी नेताओं के हाथों में सत्ता के अत्यधिक केन्द्रीकरण को, पार्टी व सरकार के बीच कार्यों को पृथक-पृथक बांटकर, कम करने का आह्वान किया गया था। इस बात पर बल दिया गया कि पार्टी को मार्ग-दर्शन करना चाहिये और दैनिक प्रशासनिक गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।

कानूनी प्रणाली :- चूंकि नया नेतृत्व सुधार नीतियों को संस्थागत स्वरूप प्रदान करना चाहता था, इसने एक औपचारिक कानूनी प्रणाली की पुन: स्थापना करने का आह्वान किया। इसे न केवल व्यक्ति के लिये सुरक्षा उपलब्ध करानी थी बल्कि विदेशियों से पेश आने व प्रबन्ध कार्यों को स्वतंत्र रूप से निपटाने के लिये भी इसका होना जरूरी था। न्याय मंत्रालय, जिसे 1959 में समाप्त कर दिया गया था, 1979 में पुन: बहाल किया गया। 1980 के दशक में कानूनी प्रणाली का जबर्दस्त फैलाव हुआ, उसके तहत न केवल आपराधिक मसले बल्कि वाणिज्य कानून, करार कानून तथा परिवार कानून, खासतौर पर तलाक के मसले, जैसे विभिन्न प्रकार के नागरिक मसले भी शामिल हो गये। जनता की अदालतें एक पृथक स्तर पर गठित की गईं। इसी समय पर जन-मुख्तारियों का गठन भी किया गया। सभी स्तरों पर व्यावसायिक अधिवक्ताओं को रखे जाने की इजाजत दी गई।

चूंकि सांस्कृतिक क्रांति के दौरान कानूनी स्वतंत्रता के सभी अवशेषों को मिटा दिया गया था, अत: यह एक प्रमुख बदलाव था। इसने वकीलों के रूप में, लोगों की विशाल संख्या के प्रशिक्षण का रास्ता तैयार किया। इसके परिणामस्वरूप, अनेक विश्वविद्यालयों ने अपने यहाँ विधि-विभाग शुरू किये। 1980 के दशक के दौरान, आम रुझान इस सिद्धान्त को मान्यता देने का था कि न्याय को पार्टी अथवा राज्य से स्वतंत्र होना चाहिये तथा व्यक्तिगत नेता कानूनी प्रणाली का इस्तेमाल पार्टी, राज्य अथवा स्वयं अपनी राजनैतिक शक्ति को बढ़ाने के लिये किये जा रहे हैं। हालांकि, तियानमान चौंक पर हुए बीजिंग कत्लेआम के बाद के सालों में यह रुझान उलट गया प्रतीत होता है।

संविधान में संशोधन : 1982 में संविधान को संशोधित किया गया। नये संविधान की शुरुआत के जरिये लाये गये प्रमुख बदलाव निम्न प्रकार थे :

1) जनवादी चीनी गणतंत्र के राष्ट्रपति का पद पुन: बहाल किया गया ताकि घरेलू व विदेशी मामलों में देश का प्रतिनिधित्व हो सके।

2) देश की सेना का नेतृत्व करने के लिये, एक केन्द्रीय सैन्य आयोग का गठन किया गया और इस तरह तकनीकी तौर पर इसे पार्टी के प्रभाव क्षेत्र से बाहर ले आया गया।

3) नेशनल पीपुल्स कॉंग्रेस की स्थाई समिति की शक्तियों में बढ़ोत्तरी करके इसे सर्वोच्च विधानमंडलीय निकाय बना दिया गया।

4) यह गारण्टी की गई की कानून के समक्ष सभी नागरिक बराबर हैं और व्यक्ति की स्वतंत्रता, व्यक्ति की शालीनता तथा पत्र व्यवहार की गोपनीयता की गारंटी की गई।

निर्वाचन कानून : इस तरह से व्यक्तिगत अधिकारों को समाजवादी ढांचे के भीतर सम्मान दिया गया। राजनैतिक क्षेत्र में और अधिक खुलेपन का प्रदर्शन, चुनावी सुधारों के जरिये दिखाई दिया। मई 1979 में एक नया निर्वाचन कानून पारित किया गया, जिसमें एक प्रतिनिधित्व करते दिखाई देने वाली सरकार का प्रावधान किया गया। सबसे निचले स्तरों पर प्रत्येक कम्यून (बाद में प्रत्येक प्रशासनिक कस्बे) में कांग्रेसें थी। इनके ऊपर प्रत्यक्ष निर्वाचन के जरिये चुनी जाने वाली 2756 काउण्टी कांग्रेसें थीं। उनके ऊपर पांच वर्ष के कार्यकाल वाली चीन के 29 प्रान्तों की कांग्रेसें स्वायत्ता क्षेत्रों व शंघाई, बीजिंग तथा तियानजिन की 3 नगरपालिकाएं थी। सर्वोच्च शिखर पर नेशनल पीपुल्स कांग्रेस थी। काउण्टी स्तर के ऊपर के प्रतिनिधियों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से उनसे ठीक निचली पीपुल्स कांग्रेसों से किया जाता था। पार्टी द्वारा इसे केन्द्रीयता के नेतृत्व वाला जनतंत्र कहा गया। यह स्पष्ट कर दिया गया कि इसके मायने बुर्जुआ संसदीय जनतंत्र की स्थापना नहीं हैं। यह बार-बार जोर देकर कहा गया है कि यह समाजवादी जनतांत्रिक प्रणाली, जिसमें कि चुनावी खर्चों को राज्य द्वारा वहन किया जाता है, पूंजीवादी जनतंत्र से कहीं ज्यादा बेहतर है जिसमें धन चुनावों में अहम् भूमिका अदा करता है।

राजनैतिक क्षेत्र में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने तथा सरकार के दैनिक क्रिया-कलाप में कम्युनिस्ट पार्टी के हस्तक्षेप की सीमाओं में बांधने का एक प्रयास किया गया है। कानूनी प्रणाली तथा निर्वाचन कानूनों को कुछ हद तक जनतांत्रिक बनाया गया है। हालांकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कोई भी सुधार चार मूलभूत सिद्धान्तों को नहीं नकार सकते अर्थात् मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ जीडांग के सिद्धान्त, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व, जनता का जनवादी अधिनायकत्व तथा समाजवाद।

6.5 मूल्यांकन

उत्पादन :- सुधार-नीति की उपलब्धियां क्या हैं? जैसाकि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, जहाँ तक उत्पादन का प्रश्न है, इस अवधि में कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन, दोनों में जबर्दस्त वृद्धि हुई है। 1978 से 1988 के बीच अनाज की पैदावार 304.8 मिलीयन टन से बढ़कर 394.1 मिलीयन टन हो गई। जिन फसलों से तेल प्राप्त किया जाता है उनका तथा चीनी व गोश्त (खासतौर पर सुअर का गोश्त) का उत्पादन बढ़ गया। औद्योगिक क्षेत्र में, इस्पात, कच्चा लोहा, सीमेण्ट, रासायनिक फाइबर, मोटर वाहन, इन सभी के उत्पादन में वृद्धि दिखाई पड़ी है। कुल मिलाकर उत्पादन में जो वृद्धि हुई है वह चीन के इतिहास में अभूतपूर्व है। प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद 1978 में 372 युआन से बढ़कर 880 युआन हो गया है (1965 में यह 244 युआन था)।

विदेश व्यापार :- सांस्कृतिक क्रांति के दौरान चीन ने विदेश व्यापार के मामले में अपने दरवाजे लगभग बंद कर लिये थे। यद्यपि 1970 में उसने विदेश व्यापार पुनः शुरू किया, किन्तु 1978 के बाद के काल में ही, विदेश व्यापार आश्चर्यजनक तेजी के साथ बढ़ा। विदेश-व्यापार की कुल बिक्री 1978 में 20.6 बिलीयन यू.ए. डॉलर से बढ़कर 1988 में 102.8 बिलीयन यू.एस. डॉलर पर पहुँच गई। जोकि औसतन 17.4 प्रतिशत की वृद्धि दर है।

उपभोक्ता माल : उपभोक्ता मालों के उत्पादन में भी जबर्दस्त वृद्धि हुई है, जिसने स्थानीय बाज़ार में उन्हें आसानी से उपलब्ध बना दिया है। कुछ उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन निम्न प्रकार रहा है।

	1952	1965	1978	1988	
सिलाई मशीनें	0.1	1.2	4.9	9.8	मिलीयन पीस
बाइसिकिल	0.1	1.8	8.5	41.4	वही
वाशिंग मशीन (घरेलू)	-	-	0.0	10.5	वही
टेलीवीजन सैट (रंगीन)	-	-	0.0	10.3	वही

इन उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धता के चलते, लोगों का जीवन स्तर ऊपर उठा है। आमतौर पर जनता इन मशीनों को खरीदने के लिये काफी इच्छुक रहती है, जोकि दैनिक जीवन को कहीं अधिक खुशहाल बनाती हैं, और उन्हें अनेक बोझिल कामों से मुक्ति दिलाती हैं।

बढ़ी हुई क्रय-शक्ति :- उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन तथा घरेलू बाजार में उनकी बिक्री करना संभव न हुआ होता, यदि वेतन-नीति को संशोधित न किया गया होता। उच्चतर वेतन पैकेजों तथा सहायक व्यवसायों के जरिये और अधिक धन अर्जित करने की स्वतंत्रता के चलते चीन के लोगों की क्रय-शक्ति में जबर्दस्त बढ़ोत्तरी हुई है। जहां पहले चन्द उच्च पदों पर बैठे कैडरों को छोड़कर, किसी के पास रैफ्रीजरेटर, टेलीवीजन, टेप रिकार्डर आदि जैसी आधुनिक सुविधाएं नहीं थीं, आज वे न सिर्फ शहरों में, बल्कि अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में भी, प्रत्येक घर में एक सामान्य बात है।

कुल मिलाकर चीन की जनता की सभी विशाल हिस्सों में संपन्नता की एक सांझी मौजूद है, जोकि पिछले समय की निर्धनता की सांझी भावना के ठीक विपरीत है। चीनी लोग अब अपनी अर्थव्यवस्था की वृद्धि और विकास पर गर्व करते हैं, और अपने देश को बहुत जल्दी एक विकसित देश की अवस्था में देखने के लिये व्याकुल हैं। बाहरी दुनिया के लिये दरवाजा खुल जाने से, वे विश्व में चीन की प्रतिष्ठा को लेकर काफी सजग हो गये हैं।

कमजोरियां :- कोई भी नीति स्वयं में पूर्ण नहीं होती। सुधार-नीति ने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में बढ़े हुए उत्पादन का रास्ता तैयार किया तथा जनता की क्रय-शक्ति में भी बढ़ोत्तरी की, किन्तु बहुत सारी वस्तुओं की आपूर्ति, बढ़ी हुई क्रय-शक्ति के साथ कदम मिलाकर न चल सकी। इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में आवश्यकता से अधिक सरगर्मी बढ़ गई और मुद्रास्फीति बढ़ गई।

असमानताओं में वृद्धि :- आर्थिक विकास पर बल, निजी पहलकदमी को प्रोत्साहन तथा प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की परिणिति निस्संदेह चीन में विभिन्न प्रकार की असमानताओं के पुन: प्रकट हो जाने में हुई है। बढ़ते हुए व्यापार तथा सेवा उद्योगों में भागीदारी के चलते चन्द लोगों के हाथों में ज्यादा धन जमा हो गया है। असमान आय में वृद्धि का सबसे अधिक सुस्पष्ट कारण, विदेशों के साथ संयुक्त उद्यम लगाये जाना है। इन फर्मों में काम करने वाले चीनी श्रमिक को किसी स्थानीय कम्पनी में मैनेजर के पद पर काम करने वाले व्यक्ति से भी कहीं अधिक वेतन मिलता है। इस सबके चलते एक स्तरीकृत समाज का पुन: उदय हो गया है, जिसके विरुद्ध कम्युनिस्ट पार्टी स्वाधीनता प्राप्त करने के समय से तथा उससे भी पहले से, संघर्ष करती आ रही है।

क्षेत्रीय असमानताएं :- क्षेत्रीय असमानताएं भी बढ़ गई हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्रों के निर्माण की नीति ने तटीय क्षेत्रों में तीव्र गति से विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। चूंकि इनमें से अधिकांश क्षेत्र पूर्वी तट के आसपास स्थित हैं, अत: यह माओ के तटीय क्षेत्र तथा भीतरी प्रदेशों के बीच के अंतर्विरोध को समाप्त करने के सिद्धान्त के खिलाफ जाता प्रतीत होता है। क्षेत्रीय विकास का नज़रिया किसी एक क्षेत्र के भीतर भी असंतुलित विकास की दिशा में ले गया है, जहां कुछ इलाके आधुनिकीकरण के शिखर पर पहुंच गये हैं, वहीं उनके नजदीक के इलाके अभी भी पिछड़े ही बने हुए हैं।

उपभोक्तावाद :- विश्व के साथ आमना-सामना, हल्के उद्योगों की प्रगति, तथा लघु उद्यमशीलता मे वृद्धि के चलते उपभोक्तावाद में बढोत्तरी हुई है। टेलीवीज़न के विज्ञापन बच्चों को तरह-तरह की मिठाइयों व टॉफियों और पोशाकों व शैम्पुओं से लेकर फैशनेबुल रेस्टोरैण्टों व खास तरह के फर्नीचर तक के विभिन्न उत्पादों की एक श्रृंखला को खरीदने के लिये आकर्षित करते हैं, जिसके कारण लोग

अनेक ऐसी ऐशोआराम की चीजों व वस्तुओं के पीछे भाग रहे हैं जोकि खासतौर से सादा जीवन के सिद्धान्त से मेल नहीं खातीं।

भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद तथा सामाजिक पतन :- आर्थिक असमानता, उपभोक्तावाद, तथा बढ़ी हुई मांग व आपूर्ति की कमी दूसरी तरफ भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद तथा सामाजिक पतन का रास्ता तैयार किया है। ऊंची सिफारिशें वाले लोग बेहतर रोज़गारों को हासिल करने की कोशिश करते हैं और विदेशी फर्मों के साथ बेहतर ठेके प्राप्त करना चाहते हैं। पार्टी में कुलीनों के बच्चे अपने बच्चों को विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजने की जुगाड़ कर लेते हैं, वहां संपर्क बना लेते हैं तथा व्यापार प्रतिष्ठानों की स्थापना कर लेते हैं।

नये आर्थिक प्रोत्साहनों ने आर्थिक अपराधों में खतरनाक स्तर तक वृद्धि कर दी है, अक्टूबर 1983 तथा अप्रैल 1984 के बीच केवल राज्य खाद्यान्न ब्यूरो में ही करीब 14,700 आपराधिक मामले दर्ज किये गए थे। कम से कम 30000 अन्य आर्थिक अपराध, जोकि "नौकरशाही व दुष्कर्म" का परिणाम थे, इस अवधि में दर्ज किये गये। सामाजिक जीवन पूरी तरह से परिवर्तित हो गया है, डिस्को तथा काराओक, युवाओं में काफी लोकप्रिय हो गये हैं। अमरीका उनके लिये आदर्श बन गया है तथा जोड़ों का हाथ में हाथ डाल सड़कों पर घूमना, सामाजिक प्रगति का लक्षण माना जाने लगा है। 1980 के दशक के मध्य में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने एक आध्यात्मिक प्रदूषण विरोधी अभियान शुरू किया था, जिसके तहत उसने पूंजीवादी समाजों की अच्छाईयों व बुराईयों को छाँट कर अलग करने की कोशिश की थी, जिसमें अच्छाईयों को अपनाना व बुराईयों को छोड़ना शामिल था, किन्तु यह हमेशा संभव नहीं हो पाता।

चन्द लोगों के हाथों में आर्थिक एवं राजनैतिक सत्ता का केन्द्रीकरण तथा उसका दुरुपयोग, अधिक राजनैतिक स्वतंत्रता की मांग सहित एक प्रमुख कारण था, जिसने 1980 के दशक के अंत में अनेक छात्र विद्रोहों का रास्ता तैयार किया। पाश्चात्य नमूने के उदार जनतंत्र के लिये पहली संगठित मांग दिसम्बर 1986 में छात्रों व बुद्धिजीवियों द्वारा उठाई गई। सरकार की आलोचना तथा अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग अप्रैल-जून 1989 में अपने परमोत्कर्ष पर पहुंच गई, जबकि अनेक शहरों में छात्रों के जबर्दस्त प्रदर्शन आयोजित किये गये। इनमें से सबसे प्रभावशाली प्रदर्शन बीजिंग के तिआनमांन चौक पर किया गया। छात्र प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध ताकत का इस्तेमाल किया जाना साफतौर पर प्रदर्शित करता है, कि वे लोग जोकि सत्ता में हों, राजनैतिक प्रणाली के इस प्रकार से पूर्ण रूपान्तरण के पक्षधर नहीं थे। हालांकि, यदि पार्टी आर्थिक लाभों का वितरण अधिक समानतापूर्वक करने में सक्षम रहती है और जनता की राय को अभिव्यक्ति देने के लिये संस्थाओं का निर्माण करती है, तो चीन का भविष्य स्थायित्व तथा संपन्नता वाला हो सकता है।

कुल मिलाकार, इस तथ्य को देखते हुए कि चीन एक विकासशील देश है, आर्थिक सुधार नीति ने इसे आर्थिक विकास के लम्बे डग भरने में सक्षम बनाया है। इसने विश्व-बाजार में एक सम्मानजनक हैसियत प्राप्त कर ली है। अनेक आगे बढ़े हुए अमरीकी, यूरोपियन व एशियाई देश, चीन के साथ अपने आर्थिक रिश्ते मजबूत करने मे रुचि दिखा रहे हैं। हालांकि, केवल जापान, ताईवान तथा हांगकांग में बसे चीनी लोग ही हैं, जोकि बड़े स्तर के निवेश कर रहे हैं। भारत व चीन के बीच भी व्यापक व्यापार बढ़ रहा है और ऐसा लगता है कि उसका भविष्य उज्जवल है। सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र, दोनों के ही कुछ भारतीय उद्यम, चीन के साथ संयुक्त क्षेत्र में स्थापित किये जा रहे हैं।

यद्यपि, चीन द्वारा अर्थव्यवस्था में खुलापन लाने के प्रयासों को अमरीका व योरोप द्वारा सराहा गया है, किन्तु 1980 के दशक के अंतिम समय में, तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों की वजह से, वे निवेश करने में हिचकिचा रहे थे। पश्चिम का मानना अब भी यही है (जैसाकि चीन की अच्छी खासी आबादी का भी मानना है) कि राजनैतिक सुधारों की गति काफी धीमी रही है, और इसलिये चीन की सरकार के बार-बार दिये गये इस आश्वासन के बावजूद, कि कम-से-कम अगले 100 वर्षों तक आर्थिक सुधारों से किसी तरह पीछे नहीं हटा जायेगा, चीन तथा पश्चिम के बीच आर्थिक अन्योन्यक्रिया ने अभी जोर नहीं पकड़ा है। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सुधारों के जरिये अधिक आर्थिक संपन्नता ही आर्थिक प्रगति के लाभों का और अधिक समान वितरण किये जाने की तरफ ले जायेगी।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) आपके उत्तर के लिये नीचे रिक्त स्थान उपलब्ध कराया गया है।

2) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये उत्तर से कीजिये।

1) डैंग-ज़ियाओ-पिंग द्वारा राजनैतिक परिदृश्य में पहचानी गई वे मुख्य समस्याएं क्या हैं, जिन्होंने राजनैतिक सुधारों को आवश्यक बना दिया?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनैतिक सुधारों द्वारा किन क्षेत्रों को छुआ गया है?

.....

.....

.....

.....

.....

6.6 सारांश

इस इकाई में आपने, डैंग-जियाओ-पिंग के नेतृत्व में चीन की सरकार द्वारा लागू किये गये आर्थिक एवं राजनैतिक सुधारों के बारे में अध्ययन किया। आर्थिक सुधारों ने जीवन के सभी पहलुओं को छुआ है। नियोजित तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का एक मिश्रण तैयार करके संतुलन बनाने की कोशिश की गई है। लोगों की आय में बढ़ोत्तरी हुई है और उनका जीवन-स्तर भी ऊपर उठा है, यद्यपि मुद्रास्फीति, भ्रष्टाचार तथा सामाजिक असमानता की समस्याओं से परे रहते हुए नहीं। राजनैतिक सुधार केवल उस सीमा तक ही लागू किये गये हैं जहां तक उन्होंने अधिक आर्थिक आधुनिकीकरण के लिये एक माहौल पैदा किया है। हालांकि, चीन को पाश्चात्य नमूने का एक उदार जनतंत्र बनाने को कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

6.7 शब्दावली

1) **चार आधुनिकीकरण** : कृषि उद्योग, रक्षा तथा विज्ञान व तकनीक का आधुनिकीकरण माओ के बाद के काल में, वे आर्थिक सुधार के प्रमुख लक्ष्य रहे हैं।

2) **उत्पादन उत्तरदायित्व प्रणाली** : परिवारों अथवा प्रबंधन को उत्पादन के लिये उत्तरदायी बनाना। जब तक प्रत्येक पारिवारिक इकाई अथवा परिवार राज्य द्वारा सौंपे गये कार्यभारों को पूरा करता है, तब तक यह अपने सदस्यों के बचे हुए समय को उनकी इच्छानुसार अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने के लिये इस्तेमाल करने को स्वतंत्र है।

3) **विशेष आर्थिक क्षेत्र** चीन की सरकार द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को स्वीकृति देने के लिये चुने गए शहर, जिन्हें चीन के निर्यात को बढ़ाने तथा विदेशी तकनीक को अपनाने के एक सेतु के रूप में काम करने की दृष्टि से तैयार किया गया है।

4) **खुलापन** : विदेशों के साथ व्यापार तथा चीन के उद्योगों में विदेशी निवेश की इजाजत दिया जाना।

6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) दत्त वी.पी. एवं गार्गी; **चाइना सिंस माओ**।

2) ग्रे. जैक; **रिबैलियन्स एण्ड रिवोल्यूशन्स : चाइना फ्राम द 1800स टू द 1980ज**।

3) फेयरबैंक, जान; **द ग्रेट चाइनीज रिवोल्यूशन 1800-1985**।

4) मैकराज एवं यार्की; **द कैम्ब्रिज हैण्डबुक आफ कन्टेम्पोरेरी चाइना**।

5) टालस, बर्ना; **एकोनोमिक रिफार्मस एण्ड पोलीटिकल रिफोर्म अटैम्पटस इन चाइना**; 1979-1989।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) 1979 में चीन की अर्थव्यवस्था, प्रथम पंचवर्षीय योजना, आगे की दिशा में लम्बी छलांग तथा सांस्कृतिक क्रांति, जैसे विभिन्न चरणों से होकर गुजरी थी। अन्तिम दो चरणों की नीतियों ने चीन की आर्थिक प्रगति पर बुरा असर डाला। समतावाद इस काल का स्तंभ बना रहा, किन्तु चीन की जनता को भौतिक रूप से लाभ नहीं मिला। वेतन कम थे तथा औद्योगिक व कृषि क्षेत्रों में उत्पादन भी उसी तरह निम्न स्तर का था। राज्य की विचारधारा निजी भौतिक प्रोत्साहनों तथा मुक्त उद्यमशीलता का विरोध करती थी, जिसके चलते अर्थव्यवस्था में ठहराव आ गया। इन समस्याओं को हल करने के लिये सुधार जरूरी हो गये।

बोध प्रश्न 2

1) उद्योगों, कृषि, रक्षा तथा विज्ञान व तकनीक का आधुनिकीकरण।

2) पुनः समायोजन, पुनर्निर्माण, सुदृढ़ीकरण, सुधार।

3) इसके तहत ग्रामीण क्षेत्रों में पारिवारिक खेती की ओर वापसी तथा औद्योगिक उद्यमशीलता की स्वतंत्रता शामिल है। राज्य का कोटा पूरा कर देने के उपरान्त, उत्पादक अपने उत्पादों को खुले बाजार में बेचने के लिये स्वतंत्र है। किसानों को अपनी नियमित आय में वृद्धि करने के लिये सहायक आमदनियां करने की इजाजत है।

4) अर्थव्यवस्था में सुधार ला दिया गया है। मुक्त बाज़ार फला-फूला है, विदेश-व्यापार में वृद्धि हुई है। कृषि तथा औद्योगिक, दोनों क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ा है। यह एक प्रगतिशील विकासमान अर्थव्यवस्था है, जिसमें विकास के फलों का वितरण, क्षमता के सिद्धान्त के आधार पर होता है। उद्यमशीलता को प्रोत्साहन दिया गया है, तथा विदेशियों को उच्च तकनीक के क्षेत्र में अधिक से अधिक निवेश करने का आमंत्रण दिया गया है, ताकि चीन एक आधुनिक विकसित देश बन सके।

बोध प्रश्न 3

1) नौकरशाही, सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण, कुलपिता जैसा बर्ताव, नेतृत्वकारी पदों तथा विभिन्न तरह के विशेषाधिकारों का आजीवन कार्यकाल।

2) पार्टी, सरकार, कानूनी प्रणाली तथा निर्वाचन कानून। सरकार के दैनिक कार्यों में पार्टी के हस्तक्षेप को सीमित बनाया गया है। कानूनी प्रणाली व निर्वाचन कानूनों को उदार बनाया गया है।

इकाई 7 चीन की विदेश नीति

संरचना

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 चीन की विदेश नीति के निर्धारक कारक
7.3 दक्षिण एशियाई पड़ौसियों के साथ संबन्ध
  7.3.1 भारत के साथ संबन्ध
  7.3.2 पाकिस्तान के साथ संबन्ध
  7.3.3 बंगला देश एवं नेपाल के साथ संबन्ध
7.4 आसियान (ए.एस.ई.ए.एन.) देशों के साथ संबन्ध
7.5 माहशक्तियों एवं पश्चिम योरोपीय देशों के साथ संबन्ध
  7.5.1. सोवियत संघ के साथ संबन्ध
  7.5.2 संयुक्त राज्य अमरीका के साथ संबन्ध
  7.5.3 पश्चिम योरोपीय देशों के साथ संबन्ध
7.6 संयुक्त राष्ट्र संघ में भूमिका
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य, चीन की विदेश नीति एवं पड़ौसियों समेत अन्य देशों के साथ उसके आपसी सम्बन्धों का विवरण प्रस्तुत करना है। इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप निम्नलिखित बातों में सक्षम हो जायेगें।

- चीन की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताओं को पहचानने में;
- अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धों में चीन के आचरण का निर्धारण करने वाली शक्तियों एवं घटकों का स्पष्टीकरण करने में;
- निकट पड़ौसियों एवं महाशक्तियों के साथ कठिनाइयों एवं समस्याओं को उत्पन्न करने वाले कारणों की जानकारी प्राप्त करने में;
- राष्ट्रो की समिति में चीन के स्थान एवं स्तर का मूल्यांकन करने में ।

7.1 प्रस्तावना

चीन एशियाई उपमाहद्वीप का सबसे अधिक बृहत एवं विश्व का सबसे अधिक सघन आबादी वाला देश हैं। भौगोलिक आकार की दृष्टि से यह केवल कनाडा के बाद दूसरे नम्बर पर हैं एवं भारत से करीब तीन गुना अधिक बृहत हैं। चीन, विश्व के सबसे अधिक बृहत उपमहाद्वीप के केन्द्र में स्थित हैं एवं एशियाई उपमहाद्वीप की बहुमात्रा चीन संस्कृति के प्रभाव क्षेत्र में आती हैं। चीन के परिसर पर स्थित देश दुर्बल एवं छोटे हैं एवं उन पर चीनी प्रभाव पड़ने की सम्भावनायें बहुत अधिक हैं। चीन के उल्लेखनीय सामाजिक-राजनीतिक स्तर को यू.एस. एवं अन्य बड़ी ताकतों द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है।

करीब चार हजार वर्षों से भी अधिक काल का, चीन का संकलित किया गया इतिहास एक ऐसे महान देश का इतिहास हैं, जो सभ्यता के सबसे प्रारंभिक काल में भी, आर्थिक एवं सांस्कृति रूप से

काफी संपन्न था। इसके इतिहास के अधिकाँश काल में, चीन स्वेच्छाकृत रूप से अलगॉववादी बना रहा है और बाहरी दुनिया से इसके सम्पर्क नाम मात्र का रहा हैं। चीन की जनता को समकालीन चीनी सम्राटों द्वारा यह विश्वास दिलाया गया था कि चीन एक दिव्य(स्वर्ग) साम्राज्य है जहाँ सब वस्तुऐं भरपूर मात्रा में उपलब्ध हैं एवं बाहरी दुनिया से इसको कुछ भी प्राप्त करने की कोई इच्छा नहीं हैं।

उन्नीसवीं सदी के काल में चीन के सामीप्य में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विकास एवं लड़ाकू जापान के उद्‌गमन ने इस क्षेत्र में चीन की स्थिति को खतरा उत्पन्न कर दिया था। ब्रिटेन एवं जापान के साथ हुए युद्धों द्वारा चीन में हुए विध्वसों के फलस्वरूप चीन के प्रभाव क्षेत्र में गिरावट आई थी। सन् 1911 में राजतंत्र का तख्ता उलट जाने के फलस्वरूप, सुन-यात-सेन के नेतृत्व में चीनी गणतंत्र की स्थापना की गई थी। अक्टूबर; सन् 1917 में रूस में हुई बौल्शेविक क्रॉन्ति का प्रभाव चीन पर भी पड़ा था जिसके पराकाष्टा पर पहुँच जाने पर माओ के नेतृत्व के अधीन चीन के साम्यवादी दल द्वारा सशस्त्र क्रॉन्तिकारी आन्दोलन का विकास एवं उत्थान किया गया था। सन् 1927 में अलग होते समय तक कुओमिन्टॉंग एवं साम्यवादी दल के कार्यकर्त्ता मिलकर कार्य करते रहे थे। उसके बाद उस समय के सत्ताधारी, चियॉंन्ग-कोई-शेक के नेतृत्व वाले कुओमिन्टॉंग दल के विरुद्ध, चीन के साम्यवादी दल ने सैनिक संघर्ष शुरू कर दिया था। शेष में इस संघर्ष के पराकाष्टा पर पहुँचने पर अक्टूबर, 1949 में चीन के साम्यवादी दल के आधीन चीन में जनवादी गणतंत्र स्थापित किया गया एवं माओ को इसका अध्यक्ष बनाया गया।

7.2 चीन की विदेश नीति के निर्धारक कारक

किसी देश की विदेश नीति, उसके घरेलू एवं बाहरी, दोनों प्रकार के कारकों की समाविष्ट रूप की प्रतिक्रिया होती है। वैदेशिक परिमंडल में विदेश नीति का तीन स्तरों पर सुगमीकरण किया जाता है विश्वव्यापी, क्षेत्रीय एवं द्विपक्षीय। किसी देश की विदेश नीति को रिक्त या निर्वात स्थिति में सूत्रित एवं कार्यान्वित नहीं किया जाता। बल्कि, यह कुछ ऐसे मूलरूप के कारकों का वास्तविक परिणाम होती है, जैसे उस क्षेत्र की भू-राजनीतिक यथार्थतायें, जहाँ यह देश स्थित है, सुरक्षा के लिये उसका संघर्ष, उसकी घरेलू किस्म की आवश्यकतायें एवं आर्थिक विकास हेतु उसके द्वारा किये जाने वाले प्रयास एवं सिद्धान्तों के प्रति उसका समर्पण। इसी प्रकार चीन की विदेश नीति कुछ ऐसे मूल सिद्धान्तों द्वारा नियंत्रित की जाती है, जो उनकी उपलब्धि प्राप्त करने के तरीकों एवं साधनों में विभिन्नता होने के बावजूद भी अडिग रूप धारण किये रहे हैं। देश एवं विदेश, दोनों की बदलती हुई परिस्थितियों द्वारा ये विभिन्नतायें प्रभावित हुई हैं।

अक्टूबर, सन् 1949 में चीन के जनवादी गणतंत्र में साम्यवादी शासन स्थापित हो जाने के बाद से सुरक्षा के प्रति चिन्ता, चीन की विदेश नीति का प्रमुख कार्य बना हुआ है। पिछले चार दशकों में चीन के नेताओं ने बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को ढ़ालने एवं राष्ट्रीय सुरक्षा के लक्ष्य को हासिल करने हेतु अनेक प्रकार की रणनीतियों का उपयोग करने की, अभूतपूर्व क्षमता का प्रदर्शन किया है। जिन कारकों द्वारा चीन की विदेश नीति प्रभावित हुई हैं, वे इस प्रकार है : राष्ट्रीय हित, राष्ट्रवादिता, ऐतिहासिक अनुभव एवं सांस्कृतिक सिद्धान्त, (क्रान्तिकारी रणनीति, प्रतिवादिता का सिद्धान्त एवं तीन विश्वों का सिद्धान्त) एवं नेतृत्व और निर्णय करने के अधिकार। सन् 1949 में साम्यवादी शासन लागू हो जाने के बाद एवं उसके पूर्व से भी चीन की नीति, प्रभुत्वशाली विश्व रूझानों के बारे में चीनियों की समझ के आधार पर बने एक ढ़ाँचे में कार्य कर रही है। पिछले चार दशकों के काल की चीन की विदेश नीति का विश्लेषण करने से यह देखने को मिलता है कि सन् 1950 के बाद से प्रत्येक दशक के अन्त में इस ढ़ाँचे में स्पष्ट रूप के रूपांतरण किये जाते रहे हैं।

सन् 1950 के दशक में चीन की विदेश नीति एक द्विपक्षीय ढ़ाँचे के अर्न्तगत चलाया गया था, जिसमें बीजिंग का झुकाव स्पष्ट रूप से सोवियत यूनियन के प्राधिकार क्षेत्र वाले समाजवादी शिविर के प्रति था। सन् 1960 में हुए चीन-सोवियत संघ मतभेद ने चीन को शिविर राजनीति का बहिष्कार करने हेतु प्रेरित किया था। चीनियों के दृष्टिकोण से सन् 1960 के काल में सोवियत यूनियन संशोधनवादी हो गया था इसलिये चीन के विचार से समाजवाद की रक्षा का भार उसके कन्धों पर आ पड़ा है,

हुआ था। सन् 1970 के दशक में चीन का यू.एस. के प्रति रणनीतिक झुकाव देखने को मिला, यह संयुक्त राष्ट्र में शामिल हो गया एवं इसने तीन विश्वों के सिद्धान्त का सूत्रीकरण भी किया : पहला विश्व महाशक्तियों का, तीसरा विश्व, एशिया, अफ्रिका एवं लेटिन अमरीका के विकासशील देशों की विशाल बहुसंख्या का एवं दूसरा विश्व जो इन दोनों के मध्य संस्थित है जिसमें मूल रूप से जापान एवं योरोप आते हैं। चीन को तीसरे विश्व के एक भाग के रूप में देखा गया था।

सन् 1980 के दशक में क्षेत्रीय एवं विश्वव्यापी दृष्यपटल पर अभिघातन रूप के परिवर्तन हुए थे एवं इस काल में राजनीतिक के बजाय आर्थिक एवं तकनीकि मुद्दों पर अधिक बल देने का बदलाव देखने में आया था। जापान एवं पश्चिमी योरोप की विकसित होती हुई शक्ति एवं यू.एस.-सोवियत की बढ़ती हुई वैमनस्यता ने एक नये बहुध्रवी आकार की सत्ता हेतु ढाँचा प्रस्तुत कर दिया था। सन् 1980 के दशक की समाप्ति होने तक चीनी नेताओं ने यह विश्वास करना शुरू कर दिया था कि किसी देश की श्रेष्ठता या दुर्बलता का निर्णय उसकी सैनिक शक्ति कारक द्वारा नहीं बल्कि उसकी आर्थिक एवं तकनीकि क्षमताओं द्वारा किया जायगा। इसलिये उसके बाद से चीनियों ने विश्व के ऐसे दृश्यचित्र को सूत्रित करने के दृष्टिकोण से विश्वव्यापी रूझानों एवं अर्न्तराष्ट्रीय स्थिति का विश्लेषण करना शुरू कर दिया था, जो तदनुसार उनकी रणनीति को आकार प्रदान करेगा एवं उनकी विदेश नीति को निर्धारित करेगा।

सन् 1990 के दशक का आरम्भ कुछ अभूतपूर्व रूप की घटनाओं की विशेषताओ से परिपूर्ण रहा है, जैसे दो जर्मनियों का एकीकरण, पूर्व सोवियत यूनियन का ढह जाना, रूसी संघ का उद्गम, बालटिक स्टेट्स, एवं पांच मध्य एशियाई गणतंत्रों का प्रभुसत्ता संपन्न स्वतंत्र देशों के रूप में उभर कर आना, चैक एवं स्लोवाक गणतंत्रों के रूप में चैकोस्लेवेकिया का विभाजन, खाड़ी युद्ध, एवं मास्ट्रिट संधि पर हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात और एक नई विश्व व्यवस्था के संघर्ष में योरोप के संयुक्त राज्यों के निर्माण हेतु प्रयास। इन विकासों के प्रति चीन की प्रतिक्रिया का उसकी विदेश नीति के साथ निकट रूप का सम्बन्ध है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये गये स्थान का उपयोग अपना उत्तर देने हेतु कीजिये।

2) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर के साथ अपने उत्तर की पड़ताल कीजिये।

2) चीन की विदेश नीति में बल को बदले जाने की मुख्य अवस्थाऐं क्या रही हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 दक्षिण एशियाई पड़ौसियों के साथ सम्बन्ध

यू.एस. एवं सोवियत यूनियन के बीच शीत युद्ध की प्रतिद्वन्दिता के काल में विश्वव्यापी राजनीतिक क्षेत्र में दक्षिण एशिया की स्थिति में उल्लेखनीय रूप से वृद्धि हुई हैं। सोवियत यूनियन के ढह जाने के साथ ही दक्षिण एशिया के सामरिक महत्व में कोई कमी नहीं हुई है। सोवियत यूनियन के उत्तरवर्ती, यू.एस., चीन एवं रूस के राज्यों द्वारा किये जाने वाले सामरिक महत्व के परिकलनों में इस क्षेत्र को और अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है। चीन की सीमा रेखायें भूटान, नेपाल, भारत एवं पाकिस्तान के साथ जुड़ी हुई हैं। इससे चीन को इस क्षेत्र की एक पूर्व घोषित उत्कृष्ट सत्ता का स्थान प्राप्त हो गया है।

भारत एवं पाकिस्तान दक्षिण एशिया की दो प्रमुख ताकतें हैं। यहाँ के क्षेत्रीय घटना विकास के प्रति चीन का ध्यान आकर्षित होता है एवं इसी प्रकार चीन द्वारा उठाये जाने वाले कदमों का इस क्षेत्र

बढ़ाने हेतु भारत से प्रति-स्पर्धा की थी एवं इस क्षेत्र को भारत-केन्द्रिक एवं चीन-केन्द्रीक, दो भागों में विभाजित कर दिया था। अक्टूबर, सन् 1962 में भारत एवं चीन के बीच युद्ध से भारत की सैनिक पराजय के फलस्वरूप इस क्षेत्र में चीनी प्रभाव में वृद्धि हुई थी। इसके परिणामस्वरूप उस काल में चीन के पाकिस्तान, नेपाल एवं श्रीलंका के साथ सम्बन्धों में सुधार हुआ था।

सन् 1980 के दशक के आरंम्भिक काल से भारत एवं चीन के सम्बन्धों में सुधार आने के बाद से, चीन ने दक्षिण एशिया के सभी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की नींव का पालन किया है एवं बहुत लम्बे काल से चले आ रहे सीमा के मुद्दों का, विशेष तौर से भारत के साथ, शान्तिपूर्वक हल खोजने हेतु वचनबद्ध है।

7.3.1 भारत के साथ सम्बन्ध

भारत के साथ चीन के सम्बन्धों में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव आये हैं। यद्यपि दोनों देशों के साँस्कृतिक एवं आर्थिक ऐतिहासिक संपर्क सूत्र सदियों से एक-दूसरे से जुड़े रहे हैं। फिर भी कुछ उत्तेजक घटनायें घटित हुई हैं, विशेष तौर से सीमा-विवाद जिसके कारण दोनों देशों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को क्षति पहुंची है। सन् 1949 में बीजिंग में स्थापित किये गये साम्यवादी शासन को मान्यता प्रदान करने वाले गैर-साम्यवादी देशों में भारत का दूसरा स्थान था। चीन को संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश दिलवाने में भी भारत ने पर्याप्त उत्साह प्रदर्शित किया था।

सन् 1950 के दशक के काल में, जब शीत युद्ध शिखर पर था, तो चीन ने माओ के दो शिविरों के सिद्धान्त का अनुमोदन किया था और बीजिंग जिसका सैद्धान्तिक रूप से सोवियत यूनियन के प्रति अधिक झुकाव था द्वारा भारत की गुट निरपेक्षता की नीति को पसन्द नहीं किया गया था। सन् 1950 में कोरिया के संकट काल के समय भारत द्वारा अमरीकन नीति की निन्दा करने एवं चीन को समर्थन प्रदान करने से भारत एवं चीन एक दूसरे के और अधिक निकट आ गये थे। फिर भी, आपस के अच्छे पड़ौसियों जैसे सम्बन्धों में तिब्बत के मुद्दे को लेकर बाधा पड़ गई थी। तिब्बत का मुद्दा अंग्रेजों द्वारा छोड़ी गई एक विरासत के रूप में था, जिसके द्वारा भारत को कुछ विश्राम स्थलों का स्वामित्व, अपने कुछ सैनिक दलों को वहाँ तैनात करने एवं कुछ स्थानों पर अपनी डाक एवं संचार व्यवस्था स्थापित करने जैसे कुछ विशेष राजनैतिक हित एवं अतिरिक्त राज्य क्षेत्रीय विशेष अधिकार विरासत के रूप में प्राप्त हुए थे। इसलिये अक्टूबर सन् 1950 में चीन द्वारा तिब्बत में की गई सैनिक कार्यवाही ने भारत को सतर्क कर दिया था।

फिर भी, अप्रैल, सन् 1950 में पंचशील (शान्तिपूर्वक सह आस्तित्व हेतु पाँच सिद्धांतों) के आधार पर दोनों देशों ने अपने मतभेदों को कम करने हेतु प्रयास किये थे। उसके बाद चीन-भारत मित्रता के एक अल्पकालीन (1954-1958) चरण की शुरूआत हुई थी। इस चरण के काल में चीन के प्रधानमंत्री, चाऊ-एन-लाई ने भारत का दौरा किया था। यह प्रावस्था अधिक काल तक नहीं चली थी एवं सन् 1959 के अन्त तक सीमा विवादों एवं सैनिक मुठभेड़ों की उत्तेजना के फलस्वरूप दोनों एशियाई महाशक्तियाँ युद्ध की तरफ प्रवाहित हो उठी थी, जो मूलभूत रूप से अक्टूबर, सन् 1962 में शुरू हो गया था।

अक्टूबर, सन् 1962 के चीन-भारत युद्ध में भारत की सैनिक पराजय हुई थी और हालांकि अक्टूबर 1962 के अन्त में चीन द्वारा एकपक्षीय रूप से युद्ध विराम घोषित कर देने से सैनिक संघर्ष प्राय: समाप्त हो गये थे परन्तु दोनों देशों के बीच एक शीत युद्ध प्रारंभ हो गया था। इसके परिणामस्वरूप भारत-चीन मित्रता एकदम समाप्त हो गई थी एवं पंचशील के युग का स्थान टकराव के युग ने ले लिया था। इस काल में भारत को यू.एस. एवं सोवियत यूनियन द्वारा सैनिक एवं आर्थिक रूप की सहायता प्रदान की गई थी। फिर भी, भारत एवं अमरीका की मित्रता की प्रावस्था काफी अल्पकालीन साबित हुई थी जब कि उसके बाद के काल में सोवियत यूनियन के साथ भारत के सम्बन्धों ने स्थायी रूप ग्रहण कर लिया था। चीन के सम्बन्ध पाकिस्तान के साथ कुछ अधिक घनिष्ट हो गये थे, जिसके भारत के साथ पहले से ही तनावपूर्ण सम्बन्ध थे।

(1966-68) साँस्कृतिक क्राँति के बाद के काल से चीन ने एशिया एवं अफ्रीका के देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को स्थापित कर के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के अलगाववाद को समाप्त करने की नीति

समर्थन प्रदान करके चीन-भारत सम्बन्धों के द्रवित होने की सभी प्रकार की सम्भावनाओं को कम कर दिया था। 1960 के दशक के अन्तिम काल एवं 1970 के दशक के आरंभिक काल तक भारत में नक्सलवादियों एवं भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में होने वाले विप्लवो का चीन द्वारा खुला समर्थन प्रदान करने से दोनों देशों के सम्बन्धों को सामान्य रूप प्रदान करने की प्रक्रिया को भी क्षति पहुँची।

सन् 1970 के दशक के मध्य काल तक दोनों देशों के बीच सामान्य रूप के सम्बन्ध स्थापित होने की सम्भावनाओं के किसी प्रकार के सहायक संकेत नहीं दिखाई पड़ते थे। परन्तु सन् 1975-76 तक दोनों देश सामान्य सम्बन्ध पुनः स्थापित करने हेतु उत्साहित प्रतीत होने लगे थे। सन् 1976 में चीन एवं भारत, दोनों देशों ने राजदूत स्तर पर राजनयिक सम्बन्धों को पुनः स्थापित किया था। इसके बाद से व्यापार, बैन्किग एवं जहाजरानी पर लगे प्रतिबन्धों को हटा लिया गया था एवं कार्यमूलक सम्पर्कों को पुर्नारम्भ हो गया था। फरवरी, सन् 1979 में भारत का विदेश मंत्री चीन के दौरे पर गया था।

दोनो देशों के बीच, अपने सामान्य सम्बन्धों को समान स्तर पर लाने की तीव्र इच्छा होते हुए भी एक पेचीदा रूप की सीमा समस्या अकेले उत्तेजक के रूप में आड़े आ रही थी। सन् 1981 तक दोनों देश सीमा के मुद्दे को सुलझाने हेतु इच्छुक प्रतीत होने लगे थे जिसके फलस्वरूप दिसम्बर, सन् 1981 में दोनों देशों के विशेषज्ञों के बीच पहले दौर की बातचीत भारत द्वारा पहल करने पर हुई थी। इस संयोजन में चीन "यथापूर्व स्थिति" बनाये रखने के पक्ष में प्रतीत होता था। चीन ने कुछ शर्तों का प्रस्ताव रखा जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ चीन द्वारा पूर्व में मैकमोहन लाइन को भारत द्वारा अक्साई चीन को चीन के एक भाग के रूप में मान्यता प्रदान करना शामिल था।

दिसम्बर सन् 1981 के काल में सीमा के मुद्दे पर चीन एवं भारत के मध्य हुई बातचीत के पहले दौर पर दोनों पक्ष अपनी-अपनी स्थितियों पर अड़िग बने रहे थे। जब कि चीन "यथास्थिति" को स्वीकार किये जाने के पक्ष में था, वहाँ भारत द्वारा किसी प्रकार के तुलनीय धुबो के अभाव में इस स्वीकृति के प्रति अपना कड़ा विरोध प्रकट किया गया था। मई, सन् 1982 में हुई दूसरे दौर की बातचीत में सीमा के प्रश्न पर कोई प्रशंसनीय रूप की प्रगति नहीं हुई थी। इसके बाद, चीन एवं भारत के मध्य बातचीत के अनेक दौर हुए हैं परन्तु सीमा विवाद पर कोई समझौता नहीं हो सका है। फिर भी, दोनों देशों के मध्य व्यापार, वाणिज्य, विज्ञान एवं तकनीक तथा संस्कृति के क्षेत्रों में अनेकों समझौते हुए हैं। सन् 1988 में भारत के प्रधानमंत्री, राजीव गाँधी चीन के दौरे पर गये थे एवं दिसम्बर, 1991 में चीन के प्रधानमंत्री, ली.पेन्ग ने भारत का दौरा किया था।

सन् 1988 में प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा चीन के दौरे के काल में, दोनों देशों ने सीमा के प्रश्न पर विचार विमर्श करने हेतु एक संयुक्त कार्यकारी दल स्थापित किये जाने पर सहमति व्यक्त की थी। दोनों देशों द्वारा व्यापार एवं विज्ञान और तकनीक के क्षेत्रों में सहयोग करने के अलावा बाकी द्विपक्षीय मुद्दों का समाधान करने पर भी सहमति व्यक्त की गई थी। चीन के प्रधानमंत्री ली.पेन्ग द्वार भारत में सन् 1991 से किये गये दौरे के समय दोनों देशों ने संयुक्त कार्यकारी दल के बैठक शीघ्र बुलाने एवं दोनों देशों के मध्य आर्थिक सहयोग को बढ़ाने के प्रति पुनः पुष्टीकरण किया गया था। चीन-भारत सीमा पर सैनिक बलों की संख्या कम किये जाने के प्रस्ताव समेत एक-दूसरे के प्रति विश्वास जागृत करने जैसे प्रस्तावों (सी.बी.एम.एस.) पर प्रशासनिक स्तर पर परिचर्या की जा रही हैं। इसलिये सीमा के मुद्दे के समाधान की सम्भावनायें सुस्पष्ट हो गई हैं।

7.3.2 पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध

पाकिस्तान के साथ चीन के सम्बन्धों में विकास भारत-चीन सीमा विवाद के बाद के काल में हुआ था, जब दोनों देशों ने सन् 1963 में सीमा के समझौते पर हस्ताक्षर किये थे। कशमीर के प्रश्न के लेकर भारत के साथ पाकिस्तान के सम्बन्ध पहले से ही तनावपूर्ण थे। इस प्रकार यह सम्बन्ध एक पुरानी कहावत पर आधारित था "दुश्मन का दुश्मन, दोस्त होता हैं"। पाकिस्तान के साथ चीन द्वार सम्बन्धों को बढ़ाने का एक अन्य उद्देश्य, एस.ई.ए.टी.ओ. एवं सी.ई.एन.टी.ओ., जैसे शीत युद्ध के सैनिक संघों के प्रभाव को मिटाना था, जिनका पाकिस्तान एक सदस्य था और इस्लामिक विश्व में अपनी छवि बढ़ाने हेतु पाकिस्तान को चीनी प्रभाव क्षेत्र के अर्न्तगत लाना था।

सन् 1965 एवं 1992 के बीच के काल में पाकिस्तान को चीन द्वारा विशाल रूप से सैनिक एवं आर्थिक सहायता प्रदान की गई हैं। अत्याधुनिक हथियारों की आपूर्ति द्वारा पाकिस्तान की सुरक्षा का आधुनिकीकरण करने में चीन का उल्लेखनीय योगदान रहा हैं। पाकिस्तान के आणविक कार्यक्रम में भी चीन का समुचित योगदान रहा हैं। सन् 1980 के अन्तिम काल में पाकिस्तान को परिष्कृत परम्परागत हथियारों की और अधिक आपूर्ति किये जाने पर यू.एस. द्वारा प्रतिबन्ध लगाया गया था तो चीन द्वारा इस कमी को पूरा किया गया था। भारत के साथ अपने सम्बन्धों को सामान्य बनाने की उत्सुकता के बावजूद भी चीन ने पाकिस्तान के साथ अपने विशेष सम्बन्धों को शिथिलता प्रदान करने के प्रति कोई विचार नहीं किया हैं।

7.3.3 बंगला देश एवं नेपाल के साथ सम्बन्ध

बंगला देश के अस्तित्व में आने के आरंभिक वर्षों (सन् 1971-74) में ढाका एवं बीजिंग के मध्य किसी प्रकार के राजनयिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हुए थे, जिसका प्रमुख कारण चीन द्वारा नव-स्थापित बंगला देश को मान्यता प्रदान करने से मना करना था। फिर भी, सन् 1975 में चीन एवं बंगला देश के मध्य राजनयिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद से उनके आपसी सम्बन्धों में प्राय: सभी क्षेत्रों में स्थायी रूप का सुधार देखने को मिला है। चीन द्वारा बंगला देश को आर्थिक सहायता एवं कुछ सैनिक सहायता भी उपलब्ध कराई गई है। दोनों देशों में, सर्वोच्च स्तर पर, आपस में अक्सर दौरों का आदान-प्रदान होता रहता है। फिर भी चीन एवं बंगला देश के सम्बन्ध सहृदयता के उस स्तर पर नहीं पहुँच सके हैं जिस पर चीन एवं पाकिस्तान के सम्बन्ध हैं और इसका कारण शायद भारत के ऊपर बंगला देश की निर्भरता को देखते हुए उसकी चीन के प्रति नीति की अनिश्चतता हो सकती है। बीजिंग के साथ व्यवहार करते समय बंगला देश इस विषय में पूर्ण सतर्कता बरतता है, कि कहीं वह भारत एवं सोवियत यूनियन को अप्रसन्न न कर दे। चूंकि अनेक अवसरों पर चीन ने, दक्षिण एशियाई क्षेत्र के देशों के साथ अपने सम्बन्धों को बढ़ावा देने की, अपनी इच्छा को दुहराया है इसलिये चीन एवं बंगला देश के सम्बन्धों में भी स्थायी रूप से प्रगति हुई है।

नेपाल के साथ चीन के सम्बन्धों की शुरूआत केवल 1960 के दशक के प्रारंम्भिक काल में हुई थी। दूसरे विश्व युद्ध के पूर्व विश्व के बाहरी देशों के साथ नेपाल के सम्बन्ध केवल ब्रिटिश अधीन भारत एवं तिब्बत तक सीमित थे। विश्व के बाहरी देशों के साथ नेपाल के सम्बन्ध स्थापित होने की शुरूआत केवल दूसरे विश्व युद्ध के समाप्त हो जाने के पश्चात हुई थी। सन् 1950 के दशक में नेपाल के सम्बन्ध प्रमुख रूप से भारत के साथ थे एवं चीन के साथ इसने अपने सम्बन्धों को निम्न स्तर पर बनाया हुआ था। सन् 1960 के दशक के प्रारंम्भिक काल में नेपाल ने चीन के साथ और अधिक निकटतम सम्बन्ध स्थापित किये थे परन्तु चीन के साथ नेपाल के सम्बन्धों का निर्णय करने में भारत की भूमिका एक विशिष्ट कारक के रूप में रही थी।

नेपाल को आर्थिक सहायता प्रदान करके एवं नेपाल द्वारा प्रेशित शान्ति क्षेत्र के प्रस्ताव को समर्थन प्रदान करके चीन ने नेपाल को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने के प्रयास किये थे। परन्तु भारत-चीन सम्बन्ध सामान्य हो जाने के बाद से चीन ने नेपाल से सम्बन्धित भारत की विशिष्ट स्थिति के प्रति समझौता कर लिया है। फिर भी, भारत एवं नेपाल के सम्बन्धों में किसी प्रकार का विघ्न पड़ने की स्थिति में नेपाल द्वारा चीन के और अधिक निकट आ जाने की सम्भावना है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे उपलब्ध स्थान का उपयोग अपना उत्तर देने हेतु कीजिये।

2) इस इकाई के अन्त में दिये उत्तर के साथ अपने उत्तर की पड़ताल कीजिये।

1) चीन एवं भारत के सम्बन्धों में कब एवं क्यों गिरावट आई थी ?

.....

.....

.....

.....

.....

2) दक्षिण एशिया के अन्य पड़ौसी देशों से चीन ने मित्रतापूर्ण सम्बन्ध क्यों बनाये हुए हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 आसियान (ए.एस.ई.ए.एन.) देशों के साथ सम्बन्ध

इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपाइन्स, सिंगापुर एवं थाईलेन्ड को मिलाकर 8 अगस्त, सन् 1967 को दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रो के संगठन (ए.एस.ई.ए.एन.) का गठन किया गया था। आसियान देशों के साथ चीन के सम्बन्धों में सन् 1960 के दशक में शत्रुतापूर्ण की जगह सन् 1970 के दशक के अन्तिम काल के बाद से पुनः मित्रतापूर्ण होने का बदलाव आया है। सन् 1950 एवं 1960 के दशकों में, जिन वर्षों में शीत युद्ध अपने शिखर पर था, उस समय दक्षिण-पूर्व एशिया में अमरीका के अधिक रूप से संबद्ध होने, दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन (एस.ई.ए.वी.ओ.) के गठित होने, एवं थाईलेन्ड और फिलिपाइन्स में अमरीकी सेना के आधार क्षेत्रों के स्थापित होने के कारण, दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों का बहिष्कार करना चीन का मुख्य राजनीतिक कार्यक्रम बन गया था। आसियान के गठन की चीन द्वारा कटु आलोचना की गई थी। इसके अलावा आसियान का सूत्रपाल चीन की सांस्कृतिक क्राँन्ति एवं वियतनाम युद्ध में अमरीका की सक्रिय भागीदारी ये घटनायें सब एक साथ घटित हुई थी।

भौगोलिक रूप से थाईलेन्ड की चीन के साथ निकटता एवं थाईलेन्ड के अमरीका के साथ निकटतम सैनिक सम्बन्ध, चीन के लिये चिन्ता का एक कारण बना रहा है। तदनुसार, थाईलेन्ड के प्रति चीन का रवैया उसके इस पूर्वआभास पर निर्भर करता रहा है कि उसकी सुरक्षा को थाईलेन्ड से किस हद तक खतरा उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार और अधिक विस्तृत संदर्भ में, आसियान के प्रारंभ को चीन द्वारा एक ऐसे संगठन के रूप में माना गया था जो वियतनाम में "अपने युद्ध प्रयासो की पूर्ति करने हेतु अमरीकी साम्राज्यवाद द्वारा पल्लवित किया गया हो"। सन् 1971 में चीन के संयुक्त राष्ट्र में शामिल हो जाने एवं सन् 1972 में चीन एवं अमरीका के मध्य घनिष्टता हो जाने के बाद से आसियान के प्रति चीन के रवैये में भी परिवर्तन हुआ था। सन् 1974-75 के काल में मलेशिया, थाईलेन्ड एवं फिलिपाइन्स द्वारा चीन के साथ राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किय गये थे। इन्डोनेशिया एवं सिंगापुर के चीन के साथ राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना 1980 के दशक के अन्तिम काल में हुई थी।

सन 1970 के दशक के अन्तिम काल से 1980 के दशक तक, सोवियत-वियतनाम मैत्रीभाव के विरूद्ध आसियान देशों के साथ चीन एक मूक संधि बनाये रहा था, जिसे आसियान देशों के सदस्यों द्वारा एक मिश्रित उपहार स्वरूप माना गया था। फिर भी, चीन एवं वियतनाम के मध्य युद्ध स्थिति के प्रति आसियान देशों के विविध प्रकार के संदेहास्पद दृष्टिकोण थे। थाईलेन्ड के लिये, चीन द्वारा दोबारा अचानक आक्रमण किये जाने की आशंका के कारण, चीन एवं वियतनाम के मध्य युद्ध स्थिति लाभदायक थी क्योंकि इस स्थिति में चीन को वियतनाम की सेना के एक विशाल भाग का सामना, थाईलेन्ड की सीमाओं से काफी दूर पर करना पड़ेगा। इसके विपरीत, वियतनाम में चीन द्वारा हस्तक्षेप करने की, उसकी इच्छा को, इन्डोनेशिया एवं मलेशिया द्वारा शंका की दृष्टि से देखा गया था। इस आशंका का आधार इस क्षेत्र में साम्यवादी के पुनरुत्थान को चीन द्वारा समर्थन का परित्याग कर देने के प्रति चीन का अविरोध था क्योंकि साम्यवाद के चीन के साथ परंम्परागत सम्बन्ध बने हुए थे।

इसके अलावा इन्डोनेशिया एवं मलेशिया का यह भी अनुमान था कि खुमेर रूग को थाईलेन्ड द्वारा लगातार सहायता प्रदान किये जाने से थाईलेन्ड पर वियतनाम द्वारा फिर से अचानक आक्रमण किया जा सकता है, जिसके फलस्वरूप, इस क्षेत्र में चीन का प्रभाव सदैव बढ़ता जाएगा। तदनुसार, मार्च सन् 1980 में कुआन्टन में हुई एक बैठक में मलेशिया एवं इन्डोनेशिया ने इन सम्भावनाओं का

निवाकरण करने हेतु एक योजना बनाई, जिसमें सोवियत यूनियन के साथ वियतनाम की निकटता को कम किये जाने के बदले में चीन से वियतनाम के ऊपर दबाव कम करने के लिये कहा गया। सन् 1980 के दशक के अन्तिम काल तक, चीन एवं आसियान देशों के मध्य सम्बन्धों की यथापूर्व स्थिति की पुष्टि करने हेतु कुआन्टन सिद्धान्त का अकेला युक्ति संगत विकल्प बना रहा था। फिर भी, चीन एवं अमरीका के मध्य बढ़ते हुए मैत्रीभाव के कारण अमरीका द्वारा कुआन्टन में किये गये प्रस्ताव को समर्थन प्रदान नहीं किया था। सोवियत यूनियन के खंडित हो जाने के बाद और उसके पूर्व कम्बोडिया से वियतनाम के सैनिक बलों को वापस बुला लिये जाने एवं उस देश में लोकतंत्र की पुनः स्थापना हो जाने के बाद से, चीन एवं आसियान के सदस्य देशों के मध्य के सम्बन्धों के और अधिक सामान्य हो जाने की सम्भावनायें उज्ज्वल हो गई हैं।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) नीचे दिए स्थान पर उत्तर लिखिए।

2) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए उत्तरों से मिला लीजिए।

1) सन् 1960 के दशक में चीन एवं आसियान देशों के मध्य सम्बन्ध तनावपूर्ण क्यों हो गये थे?

.....

.....

.....

.....

2) कुआन्टन प्रस्ताव क्या है ?

.....

.....

.....

.....

.....

7.5 महाशक्तियों एवं पश्चिम योरोपीय देशों के साथ सम्बन्ध

दक्षिण एशिया के महत्वपूर्ण पड़ौसी देशों एवं आसियान देशों के साथ चीन के सम्बन्धों की परीक्षा कर लेने के पश्चात्, अब हम चीन एवं महाशक्तियों और पश्चिम योरोपीय देशों के मध्य संबधों का परीक्षण करेंगे।

7.5.1 सोवियत संघ के साथ सम्बन्ध

सन् 1949 में चीन के जनवादी गणतंत्र का उद्‌गमन एवं अर्न्तराष्ट्रीय स्थिति में कुछ उल्लेखनीय परिवर्तनों की घटनायें एक साथ घटित हुई थी। यू.एस. एवं सोवियत यूनियन के मध्य शीत युद्ध की प्रतिद्वन्दिता, इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय घटना थी, जिसने सारे भूमण्डल को प्रभावित किया था। अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों में, पहले एशिया में और तत्पश्चात अफ्रीका में कुछ स्वतंत्र देशों का उद्‌गमन होना था। आरनोल्ड टायनबी के अनुसार, सन् 1940 के दशक के अन्तिम काल की अर्न्तराष्ट्रीय व्यवस्था को निर्धारित करने हेतु प्रमुख कारक यह था कि दूसरे विश्व युद्ध के विजेता अपना युद्ध कालीन सहयोग बनाये रखने हेतु असफल रहे थे जिसके फलस्वरूप विश्व दो विरोधी शिविरों में, पुनः विभाजित हो गया था।

विदेश नीति को सूत्रित किये जाने के काल में, इन दो शिविरों में से किसी एक का चयन करने हेतु, चीन के पास शायद ही कोई राजनयिक विकल्प था। यू.एस. द्वारा ताईवान को समर्थन प्रदान किये जाने की दृष्टि से एवं साम्यवाद को विश्वव्यापी रूप प्रदान करने की नीति के पीछे लगे रहने की

दृष्टि से चीन का जनवादी गणतंत्र वाशिन्गटन के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ रहा था और इसलिये सहायता एवं समर्थन प्राप्त करने के लिये चीन, सोवियत यूनियन की तरफ मित्रता का हाथ बढ़ा सकता था। तदनुसार, चीन ने सोवियत यूनियन के नेतृत्व के अधीन समाजवादी शिविर के साथ पक्ष ग्रहण करने का चयन किया था। इस काल में चीन की विदेश नीति का मूल परिसर, माओ की सर्व-विदित प्रतिज्ञा "एक पक्ष के प्रति झुकाव" पर आधारित थी, जो सोवियत नेतृत्व के अधीन समाजवादी शिविर में राजनयिक हितों की स्वाभाविक एकरूपता की द्योतक थी। जैसा कि माओ ने जुलाई, सन् 1949 में कहा था।

"साम्यवादी दल द्वारा पूर्व में किये गये अनुभवों ने हमें एक पक्ष के प्रति झुकाव रखने का शिक्षण प्रदान किया है, और हम इस बात से पूर्ण रूप से सहमत है कि विजय प्राप्त करने एवं उसको दृढ़ स्वरूप प्रदान करने के लिये हमको एक पक्ष के प्रति झुकाव रखना आवश्यक है.....। सब चीनियों के लिये, बिना किसी उपवाद के, या तो आवश्यक रूप से साम्राज्यवाद के प्रति झुकाव है या फिर आवश्यक रूप से सामाजवाद के पक्ष के प्रति झुकना है। चार दीवारी में बंद रहने से कोई लाभ नहीं होगा और न ही कोई तीसरा मार्ग है.....। हम सोवियत यूनियन की अध्यक्षता वाले साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे के साथ सम्बन्धित है, इसलिये किसी प्रकार की स्वाभाविक एवं मैत्रीपूर्ण सहायता के लिये हम केवल इस पक्ष की तरफ हाथ बढ़ा सकते हैं, न कि साम्राज्यवादी मोर्चे की तरफ"।

15 फरवरी, सन् 1950 को मित्रता, संघत्व एवं भौतिक सहायता पर एक सन्धि पर हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात, चीन एवं सोवियत यूनियन के बीच और अधिक निकटतम सम्बन्ध हो गये थे। चीन को सोवियत यूनियन द्वारा दीर्घ-कालीन ऋण देने के एक अन्य समझौते पर भी हस्ताक्षर किये गये थे। चीन को किसी प्रकार के खतरे, विशेषरूप से जापान द्वारा, की स्थिति में सोवियत यूनियन द्वारा समर्थन प्रदान करने का वायदा किया गया था। चीन की पूर्वी रेलवे का नियंत्रण चीन के अधिकार क्षेत्र में दे दिया गया था। सन् 1950-59 के मध्य में, संगठन का आधुनिकीकरण करने, एवं चीनी सशस्त्र बलों को प्रशिक्षण प्रदान करने और सैनिक सामग्री प्रदान करने में सोवियत यूनियन द्वारा सहायता प्रदान की गई थी। सैनिक सहायता उपलब्ध कराने के अलावा, मास्को, द्वारा चीन को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता भी समुचित रूप में उपलब्ध कराई गई थी।

सन् 1959 के बाद से, चीन एवं सोवियत यूनियन के मध्य सम्बन्ध खराब होने शुरू हो गये और सन् 1962 में, पराकाष्टा पर पहुँच कर, करीब-करीब पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। दोनों देशों के मध्य सैद्धान्तिक रूप के मतभेदों के कारण सम्बन्ध बिगड़ने की शुरूआत हुई थी। सन् 1953 में स्टालिन के निधन के पश्चात जिन नेताओं ने सत्ता सम्भाली थी, उन्होने युद्ध से सम्बन्धित, लेनिन के सिद्धान्तों में परिशोधन किया था। नये सोवियत दृष्टिकोण के निष्कर्ष रूप में यह मान्यता थी कि आणविक हथियारों की उपस्थिति से युद्ध के खतरे की सम्भावनाओं की स्वीकार्यता कम हो गई है। परन्तु चीन ने सोवियत यूनियन द्वारा दी गई, लेनिन के सिद्धान्तों की नई व्याख्या को स्वीकार करने से मना कर दिया और सोवियतों को "संशोधनवादी" कहने लगे। इसके विपरीत, "राष्ट्रीय मुक्ति के युद्धों में" चीन ने आणविक हथियारों समेत बल प्रयोग करने का समर्थन किया था।

सैद्धान्तिक समस्याओं, एवं प्रादेशिक अधिकार के झगड़ो के अलावा, सोवियत द्वारा चीन को आणविक जानकारी उपलब्ध कराने की अनिच्छा एवं चीन को तकनीकी सहायता प्रदान करने हेतु सन् 1959 में किये गये समझौते को सोवियत यूनियन द्वारा निरस्त किये जाने से दोनों देशों के मध्य की दरार और अधिक चौड़ी हो गई थी। चीन एवं सोवियत यूनियन, दोनों को अलग-अलग होना निश्चित प्रतीत होने लगा था। सन् 1959 में सोवियत नेता, निकिटा खुश्चेव द्वारा यू.एस. का दौरा करने के बाद के काल में मास्को द्वारा वाशिन्गटन से किये गये संधि प्रस्तावों एवं सन् 1960 में चीन-रूस सीमा पर होने वाले छिट पुट रूप की सैनिक मुठभेड़ों द्वारा दोनों देशों के मध्य की अनबन को और अधिक तीव्र रूप प्रदान कर दिया गया था, जिसको अक्टूबर, सन् 1962 में क्यूबन पक्षेपास्त्र संकट को देखते हुए सरकारी स्तर पर औपचारिक रूप प्रदान कर दिया गया था। उसके बाद से चीन द्वारा सोवियत यूनियन की कुछ आलोचना और प्रबल रूप से की जाने लगी थी।

चीन एवं सोवियत यूनियन के सम्बन्ध विच्छेद को औपचारिक रूप प्रदान किये जाने के पश्चात, यू. एस.-सोवियत मैत्रीभाव को चीन द्वारा चीन की घेराबन्दी एवं नेतृत्व हेतु संघर्ष, के एक साधन के रूप में देखा जाने लगा। वियतनाम युद्ध में तेज़ी आ जाने के बाद से सोवियत एवं अमरीकी सम्बन्धों के

बारे में चीन की निर्मूल आशंकाओ में और अधिक वृद्धि हो गई। भारत, मंगोलिया एवं एशिया के अन्य देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को सुधारने हेतु, सोवियत यूनियन द्वारा किये गये प्रयासों को बीजिन्ग में, चीन की घेराबन्दी हेतु, दायें-बांये स्थित सैनिक टुकडियों के रूप में देखा गया था। सन् 1960 के दशक के अन्तिम काल में उत्तर वियतनाम के प्रति सोवियत यूनियन की नीति को चीन द्वारा "बनावटी रूप का समर्थन एवं यथार्थ रूप में विश्वासघात" के रूप में देखा जाता था। इसने सोवियत यूनियन पर यह भी आरोप लगाया कि उत्तर वियतनाम को नियंत्रित करने हेतु उसने "संयुक्त कार्यवाही" का उपयोग किया है एवं चीन और वियतनाम की सैनिक एकता की जड़ खोदने हेतु उसने, चीन एवं वियतनाम की जनता में मतभेदों को उत्पन्न किया है।

सन् 1970 के दशक के आरंम्भिक काल में चीन एवं यू.एस. के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद से, वियतनाम युद्ध के बारे में चीन के रवैये में भी परिवर्तन हुआ और सोवियत यूनियन पर उसने इस आरोप को भी लगाना समाप्त कर दिया कि इस युद्ध में उसने यू.एस. का साथ दिया था। यद्यपि चीन द्वारा यू.एस. की आलोचना में काफी कमी आ गई थी परन्तु उसने सोवियत यूनियन पर "समाजवादी नेतृत्व हेतु संघर्ष" करने का आरोप लगाया था। इसलिये, दिसम्बर, सन् 1979 में अफगानिस्तान पर रूस द्वारा किये गये आक्रमण को बीजिंग द्वारा, चीन के लिये खतरा एवं अर्न्तराष्ट्रीय सुरक्षा एवं शान्ति के लिये खतरे के रूप में देखा गया था और मंगोलिया में सोवियत सेना की उपंस्थिति की भी व्याख्या, चीन के लिये खतरे, के रूप में की गई थी।

सन् 1980 के दशक में, विशेष तौर से दोनों देशों के नेतृत्व में परिवर्तन हो जाने के संदर्भ में, चीन एवं सोवियत सम्बन्धों में कुछ सुस्पष्ट परिवर्तन हुए थे। सम्बन्धों को सामान्य बनाने हेतु मध्यम स्तर की बातचीतो की शुरूआत अक्टूबर, सन् 1982 में हुई थी और उसके पश्चात से छः माह के अन्तराल पर निरंन्तर रूप से होती रही थी। सन् 1984-85 के दौरान दोनों देशों द्वारा अनेक आर्थिक समझौतों पर हस्ताक्षर किये गये थे। मार्च, सन् 1985 में सोवियत साम्यवादी दल के महासचिव मिखाईल गौरबचेव द्वारा चीन के साथ सम्बन्धों में गम्भीर सुधार करने हेतु आव्हान किया गया था। सन् 1987 में सीमा के प्रश्न पर दोनों देशों के मध्य आपसी बातचीत के दो दौर कराये गये थे, जिनके फलस्वरूप दोनों के आपसी सम्बन्धों में कुछ सुधार हो गया था।

7.5.2 संयुक्त राज्य अमरीका के साथ सम्बन्ध

माओ के "एक पक्ष के प्रति झुकाव" के सिद्धान्त के अनुसार सोवियत यूनियन के नेतृत्व में समाजवादी शिविर के साथ संधि करने की नीति एवं टूमेन सिद्धान्त के अर्न्तगत साम्यवाद के विश्वव्यापी प्रभाव को अंतर्वेशन करने की यू.एस. की नीति को ध्यान में रखते हुए, चीन के जनवादी गणतंत्र एवं यू.एस. के मध्य किसी प्रकार के राजनयिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हुए थे। दोनों देशों के मध्य एक दूसरा उत्तेजक विषय, यू.एस. द्वारा चियाँग काई शेक के ताईवान को समर्थन प्रदान करने को लेकर था। सन् 1949 में, जब माओ के नेतृत्व में साम्यवादी सैनिक बलों द्वारा चियाँग काई शेक के कुआमिन्टौंना सैनिक बलों के ऊपर विजय प्राप्त की गई थी, तब चियाँग काई शेक ने भाग कर ताईवान में शरण ली थी। इसलिए दो चीन उभर कर आये थे—मुख्य भूमि वाला चीन या चीन का जनवादी गणतंत्र एवं ताईवान या चीनी गणतंत्र राज्य। बीजिंग में साम्यवादी नेतृत्व द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि ताईवान कोई स्वतंत्र राज्य प्रदेश नहीं है बल्कि चीन की मुख्य भूमि का एक भाग है। बीजिंग ने दो चीन के मत का सफाया कर दिया और स्वयं को असली चीन मानना शुरू कर दिया। यू.एस. द्वारा ताईवान को केवल मान्यता ही प्रदान नहीं की गई थी बल्कि उसके साथ राजनीतिक, आर्थिक एवं सुरक्षा सम्बन्धी सम्बन्ध भी स्थापित कर लिये गये थे। वाशिन्गटन द्वारा बीजिंग के साम्यवादी शासन को मान्यता प्रदान नहीं की गई थी और संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा समिति में अपनी विशेषाधिकार (वीटो) के उपयोग द्वारा चीन के संयुक्त राष्ट्र में सम्मिलित किये जाने का विरोध तक किया था। वाशिन्गटन में यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि प्रशान्त महासागर में यू.एस. की सुरक्षा व्यवस्था बनाये रखने में ताईवान एक आवश्यक कड़ी के रूप में हैं। सन् 1962 में यू.एस. एवं चीन के मध्य मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो जाने के तुरन्त बाद से एवं अक्टूबर, सन् 1971 में चीन के जनवादी गणतंत्र के संयुक्त राष्ट्र में शामिल हो जाने के बाद बीजिंग एवं वाशिन्गटन के मध्य सम्बन्धों में काफी सुधार हुआ है। परन्तु ताईवान का मुद्दा अभी भी दोनों देशों के लिये उत्तेजना का विषय बना हुआ है।

जून, सन् 1950 में उत्तरी कोरिया एवं दक्षिण कोरिया के मध्य हुए सशस्त्र संघर्षो ने, चीन के प्रति, अमरीका के रवैये को और अधिक कड़ा रूख प्रदान कर दिया था। उत्तरी कोरिया को सोवियत यूनियन एवं चीन का समर्थन प्राप्त था, जबकि यू.एस.ए., इस युद्ध में, दक्षिण कोरिया की सहायता हेतु आया था। तीन वर्षों तक चले कोरियन युद्ध में करीब 50,000 अमरीकन हताहत हुए थे, जिसके परिणामस्वरूप चीन के सम्बन्ध में वाशिन्गटन को अपनी निष्क्रिय तटस्थता की स्थिति में परिवर्तन करके चीन को दुर्बल करने एवं अलग करने की सक्रिय नीति को अपनाना पड़ा था। कोरियन युद्ध में चीन के द्वारा हस्तक्षेप किये जाने के फलस्वरूप साम्यवादी विश्व में उसकी छवि काफी बढ़ गई थी एवं उसको एक बड़ी शक्ति का स्तर भी प्राप्त हो गया था। हालांकि, संयुक्त राष्ट्रो में अमरीका द्वारा चीन के ऊपर "आक्रमणकारी" के रूप में छाप लगाने में सफलता प्राप्त हो गई थी, परन्तु एशिया के अनेक देशों द्वारा चीन के प्रति सहानुभूति एवं प्रशंसनीय भाव व्यक्त किये गये थे। फिलिपाइन्स, थाईलेन्ड एवं पाकिस्तान को चीन के विरूद्ध एक संघ के रूप में दक्षिण एशिया सन्धि संगठन (एस.ई.ए.टी.ओ.), में शामिल होने के लिये राजी करने में यू.एस. सफल हो गया था, जिसको औपचारिक रूप से 8 सितम्बर, सन् 1954 को आरंम्भ किया गया था। फिलिपाइन्स एवं थाईलेन्ड द्वारा पहले से ही यू.एस. को सैनिक आधार क्षेत्र उपलब्ध करवा रखे थे, इसलिये उनको तो एस.ई.ए.टी.ओ. में सम्मिलित होना ही था परन्तु पाकिस्तान इसमें, चीन से किसी खतरे के कारण नहीं बल्कि भारत के साथ अपनी क्षेत्रीय समस्याओं के कारण, सम्मिलित हुआ था।

सन् 1960 के दशक में चीन अधिकांश रूप से सोवियत यूनियन की समस्या ले कर उलझा रहा था, विशेष तौर से चीन-सोवियत सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के बाद की परिस्थितियों को लेकर एवं सोवियत-यू.एस. के बढ़ते हुए मैत्रीभाव को लेकर, जिसे चीन की घेराबन्दी करने हेतु, महाशक्तियों द्वारा की जाने वाली दुस्संधि के रूप में देखा जा रहा था। 1960 के दशक के दूसरे भाग में, चीन अपनी आन्तरिक राजनीतिक समस्याओं में उलझ गया था, जो सन् 1966 में चीन में हुई सांस्कृतिक क्राँन्ति के कारण उत्पन्न हो गई थी और इस प्रकार चीन, विश्व के मामलों में, किसी प्रकार की भूमिका निभाने से स्वेच्छापूर्वक अलग हो गया था। फिर भी 1960 के दशक के अन्तिम काल में वाशिन्गटन द्वारा, चीन को मित्रतापूर्ण संन्धि प्रस्ताव भेजे जाने लगे थे, जिनको शुरू में चीन द्वारा शंका की दृष्टि से देखा गया था। चीन एवं सोवियत संघ के औपचारिक रूप से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने से चीन को यह महसूस होने लगा था कि ऐतिहासिक भू-राजनीतिक एवं अन्य दृष्टि-कोणों से चीन को यू.एस. की अपेक्षा सोवियत यूनियन का खतरा अधिक सन्निकट है। इसके अलावा, बीजिंग में यह भी महसूस किया जाने लगा था कि यू.एस. के साथ किसी रूप में समझौता कर लेने से ताईवान की समस्या हल की जा सकती है।

पाकिस्तान की सहायता से, यू.एस. एवं चीन के मध्य आपसी सम्बन्धों को सामान्य बनाने हेतु बातचीत की शुरूआत हुई थी। अप्रैल, सन् 1971 में चीन के टेबिल टेनिस के खिलाड़ियों द्वार यू.एस. के दौरे ने, जिसे बाद में "पिन्गपोन्ग" राजनयकता का नाम दिया गया था, इस प्रक्रिया हेतु मार्ग प्रशस्त किया था। 15 जुलाई, सन् 1971 को वाशिन्गटन में एक घोषणा की गई थी कि सन् 1972 की बसंत में यू.एस. राष्ट्रपति, रिचार्ड निक्सन चीन के दौरे पर जायेगे। फरवरी सन् 1972 में राष्ट्रपति निक्सन के चीन के दौरे ने यू.एस. एवं चीन के मध्य सामान्य मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने हेतु मार्ग प्रशस्त कर दिया था। निक्सन द्वारा चीन का दौरा किये जाने के पश्चात जारी की गई संयुक्त सरकारी विज्ञप्ति, जिसे शंघाई विज्ञप्ति के नाम से भी जाना जाता हैं, मे यू.एस. की इस अभिरूचि की पुष्टि की गई थी कि ताईवान के मसले का शान्तिपूर्ण समाधान स्वयं चीन द्वारा किया जायेगा एवं वहाँ से यू.एस. सैनिक बलो को शीघ्र उत्तरोतर रूप में वापस बुला लिया जायेगा। चीन के लिये यह एक बहुत बड़ी राजनयिक उपलब्धि थी ।

1 जनवरी, 1979 को चीन एवं अमरीका के बीच के सम्बन्ध औपचारिक रूप से सामान्य हो गये थे, जब दोनों देशों के मध्य राजदूतों का आदान प्रदान हुआ था और उसके बाद से उनके आपसी सम्बन्धों में कोई गिरावट नहीं आई हैं।

सामान्य हो जाने के बाद से यू.एस. एवं चीन के सम्बन्धों के दो विशेष पहलू रहे हैं : सोवियत विरोधी संयुक्त मोर्चा (1972-81) एवं स्वतंत्र विदेश नीति (1982-89)। 1970 के दशक के आरंभिक काल में, अपनी विदेश नीति की घोषणाओं में चीन अभी भी "यू.एस. द्वारा नेतृत्व के संघर्ष" का वर्णन करता था। परन्तु, सन् 1976 में माओ एवं जाऊ एन लाई के निधन के पश्चात्, अमरीकी

विदेश नीति पर चीन द्वारा आक्रमण किया जाना समाप्त हो गया था क्योंकि चीन विश्व की किसी सोवियत विरोधी सरकार एवं आन्दोलन के साथ सन्धि करने का इच्छुक था।

माओ के शासन काल के बाद एवं "चार के गिरोह" का विलोपन हो जाने के पश्चात, सन 1978 में चीन के साम्यवादी दल द्वारा "चार आधुनिकीकरण" के कार्यक्रम को अपनाया गया था। विदेश नीति के इन "चार आधुनिकीकरण" के कार्यक्रम को अपनाया गया था। विदेश नीति के इस "चार आधुनिकीकरण" के स्तरो का तात्पर्य निम्नलिखित था :

अ) तीव्रता से आर्थिक निर्माण एवं चीन का आधुनिकीकरण;

ब) विकास एवं आधुनिकीकरण के प्रकार्यो को अनुशलिन करने हेतु शान्तिपूर्ण विदेशी पर्यावरण;

स) सुरक्षा समस्याओं में कमी लाना–सर्वप्रथम पश्चिमी देशों के साथ, उसके बाद पड़ौसी देशों के साथ एवं शेष में सोवियत यूनियन और समाजवादी गुट के साथ; एवं

द) ताईवान, हांगकांग एवं मकाओ का चीन के साथ एक सूत्रीकरण एवं बीजिंग को राजधानी के रूप में मानते हुए चीन का दृढ़तापूर्वक एक स्वरूप में स्थापति करना।

इस उद्देश्यों को लक्ष्य के रूप से उपलब्ध कराने हेतु यह अति आवश्यक था कि यू.एस. के नेतृत्व वाले पूँजीवाद विश्व के साथ चीन के निकटतम सम्बन्ध हों। आधुनिकीकरण हेतु चीन के अभियान, उसके मास्को के साथ सम्बन्ध विच्छेद एवं वियतनाम के साथ उसके स्पष्ट रूपी संघर्ष ने यू.एस. एवं उसके मित्र राष्ट्रों के साथ मिल कर "संयुक्त मोर्चा" गठित करने हेतु और अधिक प्रेरणा प्रदान की थी। चीन ने यू.एस. एवं उत्तरी कोरिया के मध्य स्पष्ट वार्ता हेतु सुविधा प्रदान की थी। संयुक्त राष्ट्र में, इसने नाम्बिया से ले कर दो खाड़ी युद्धो—पहला ईराक एवं ईरान के मध्य एवं दूसरा ईराक एवं यू.एस. के नेतृत्व में मित्र राष्ट्रों के सैनिक बलों के साथ के मुद्दो पर यू.एस. को सहयोग प्रदान किया था। इसके बदले में, यू.एस. ने चीन द्वारा हाल में अपनाये गये विकासात्मक लक्ष्यों का समर्थन किया हैं, उसको तकनीक एवं पूँजी की कमी महसूस नहीं होने दी हैं एवं व्यापार और ताईवान की समस्याओं पर काबू पाने में चीन को सहायता प्रदान की हैं।

सन् 1980 में यू.एस. के सुरक्षा सचिव, हेरोल्ड ब्राउन द्वारा बीजिंग का दौरा किये जाने के पश्चात चीन एवं यू.एस. के मध्य सुरक्षा सहयोग का विकास होना शुरू हुआ था। इस सहयोग का धीरे-धीरे तीन दिशाओं में विकास हुआ : उच्च स्तर के दौरो का आदान-प्रदान, सैनिक स्तरो पर कार्यमूलक आदान-प्रदान एवं तकनीकों का आदान-प्रदान। सन् 1985 में अप्रैल, सन् 1989 के बीच दीर्घकालीन कार्यक्रमों के अर्न्तगत यू.एस द्वारा चीन को केवल सैनिक हथियारों की बिक्री बढ कर 800 मिलियन यू.एस. डालर तक पहुँच गई थी।

चीन एवं यू.एस. के मध्य आपसी व्यापार के क्षेत्र में कई गुना वृद्धि हुई हैं। सन् 1972 में मैत्री सम्बन्ध स्थापित होते समय दोनो पक्षों द्वारा किये जाने वाले व्यापार का मूल्य केवल 96 मिलियन यू. एस. डालर था, जो सन् 1979 में बढ़कर 2.3 बिलियन यू.एस. डालर तक पहुँच गई थी। सन् 1989 में चीन एवं अमरीका के बीच व्यापार की मूल्य संख्या बढ़कर 17.8 बिलियन यू.एस. डॉलर तक पहुंच गई थी और इस प्रकार, पिछले दो दशकों में, इसमें 700 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। चीन का स्थान उभर कर यू.एस. के दसवें सबसे बड़े व्यापार सहभागी के रूप में हो गया है और बदले में हांगकांग के बाद, यू.एस. का स्थान चीन के सबसे बड़े व्यापारी सहभागी एवं पूंजी विदेशी पूंजी निवेषक के रूप में दूसरा हो गया है। सन् 1988 में चीन में अमरीकी पूंजी निवेश 400 परियोजनाओं से बढ़कर 630 परियोजनाओं तक पहुंच गया था, जिनमें 3500 यू.एस. डॉलर निवेष किये जाने की वचन-वद्धता थी। चीन को यू.एस. द्वारा सबसे अधिक कृपा पात्र राष्ट्र (एम.एफ.एन.) होने की प्रतिष्ठा भी प्राप्त है। जून, सन् 1989 में हुई घटनाओं के बाद के काल में जब चीनी अधिकारियों द्वारा बीजिंग के तियांनमान स्क्वायर में विद्यार्थियों के एक प्रदर्शन को कुचल दिया था एवं दमनकारी नीतियों को अपनाया था, तब चीन एवं यू.एस. के निकटतम एवं सुगम सम्बन्धों में सूक्ष्म रूप का व्यवधान पड़ने की परिकल्पना की गई थी।

(जी-7) सात के गुट के अन्य सदस्य देशों के साथ जिनमें यू.एस. फ्राँन्स, पश्चिम जर्मनी, ब्रिटेन, जापान, कनाडा एवं इटली शामिल थे। यू.एस. द्वारा, इस दमन को लेकर, चीन की भर्त्सना की गई थी एवं बीजिंग के साथ द्विपक्षीय सहायता, व्यापार एवं सुरक्षा सहयोग को बंद कर दिया गया था। फिर भी, अपने आन्तरिक मामलों में चीन द्वारा समाधान किये जाने की नीति अपनाये जाने के तुरन्त बाद यू.एस. द्वारा समाधान किये जाने की नीति अपनाये जाने के तुरन्त बाद यू.एस. द्वारा कुछ प्रतिबंधों को नवम्बर, 1990 तक हटा लिया गया था। चीन में मानव अधिकारों की स्थिति, एक प्रमुख कारक हैं। चीन के प्रति यू.एस. की नीतियों में इस समय, यह सबसे अधिक अलंकृत रूप का विकास प्रतीत होता है।

7.5.3 पश्चिम योरोपीय देशों के साथ सम्बन्ध

द्विपक्षीय आधार पर एवं योरोपीय समुदाय के विस्तृत ढाँचे के अर्न्तगत, अभी हाल के वर्षों में चीन एवं पश्चिमी योरोप के राष्ट्रो के बीच सम्बन्धों में समुचित विकास हुआ है। शीत युद्ध के काल में, चीन एवं पश्चिमी योरोप के देशों के साथ करीब करीब नगन्य रूप के आपसी सम्बन्धों की विशेषता प्राय: एक-दूसरे को आशंका की दृष्टि से देखने की थी। अपने विदेशी सम्बन्धों का चीन द्वारा व्यवहारिक रूप से स्थिति निर्धारण करने के प्रयासों में चीन की विदेश नीति में पश्चिमी योरोप को ले कर समय-समय पर परिवर्तन किये जाते थे। सन् 1950 में, जब चीन "दो शिविरो की धारणा" से चिपका हुआ था, तब पश्चिम योरोप को यू.एस. द्वारा नियंत्रित "साम्राज्यवादी शिविर" का एक अधीनस्थ भाग माना जाता था। इसलिये चीन द्वारा, पश्चिमी योरोप के प्रति किसी स्वतंत्र विदेश नीति बनाने के प्रयासों, को अस्वीकार कर दिया गया था।

सन् 1960 में चीन एवं सोवियत सम्बन्धों में स्पष्ट रूप से विच्छेद हो जाने के पश्चात, सन् 1964 में चीन द्वारा, अर्न्तराष्ट्रीय व्यवस्था की एक नई व्याख्या "तीन मंडलों" के रूप में की गई थी जिसमें पश्चिमी योरोप को "दूसरे मध्यवर्ती मंडल" के एक भाग के रूप में चित्रित किया गया था। सन् 1974 में, जब अपनी इस धारणा में सुधार कर के चीन ने यह अभिधारणा प्रस्तुत की, कि अर्न्तराष्ट्रीय व्यवस्था अब "तीन विश्वों" की बनी हुई है, तो जापान के साथ पश्चिमी योरोप को दूसरे विश्व में स्थित किया गया था, जिनकी कथित रूप से विश्व के मामलों में एक स्वतंत्र रूप की भूमिका थी।

सन् 1972 में चीन एवं अमरीका के मध्य सामान्तया आ जाने के बाद, चीन ने पश्चिमी योरोप के साथ सम्पर्क स्थापित करना शुरू कर दिया था। सन् 1970 के दशक में समस्त योरोपीय देशों में चीन के दूतावासों को विस्तृत कर के उनका कोटि-उन्नियन किया गया था एवं सन् 1975 में बेल्जियम स्थित चीनी राजदूत को ब्रुसेल्स में योरोपीय समुदाय के सामने चीन के हितों को प्रतिनिधित्व करने का अधिकार प्रदान किया गया था।

चीन के सैनिक बलों का आधुनिकीकरण करने हेतु आवश्यक सुरक्षा सम्बन्धी आपूर्ति करने के लिये, पश्चिम योरोपीय देश एक शक्तिशाली साधन स्वरूप हैं। यू.एस. या अब वर्तमान रूसी संघ की तुलना में चीन सैनिक रूप से दुर्बल पड़ता है। इस मूल चिन्ता से प्रेरित होकर, चीन के राजनीतिक एवं सैनिक नेतृत्व ने एक साथ दो मुखी नीति को अपनाया है : सत्ता के संतुलन में बदलाव लाने हेतु कौशल पूर्ण हथकन्डों को उपयोग करना एवं हथियारों के उद्योग और सैनिक बलों का स्थायी रूप से विकास करना।

चीन की सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, योरोपीय समुदाय के प्रमुख देश अपने आधुनिक हथियार उद्योग के कारण चीन के लिये बहुत उपयुक्त हैं। हालांकि चीन एवं यू.एस के बीच सुरक्षा सहयोग के सम्बन्ध हैं, परन्तु सुरक्षा सम्बन्धी आपूर्ति के क्षेत्र में चीन एवं योरोपीय देशों के बीच विस्तृत सहयोग स्थापित हो जाने से यू.एस. के ऊपर चीन की निर्भरता बहुत कम हो जायगी।

1970 के दशक के अन्तिम काल में, योरोपीय समुदाय के देश बीजिंग की सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकि जानकारी एवं हथियारों, दोनो की आपूर्ति कर सकते थे। परन्तु चीन को हथियारों की बिक्री का प्रश्न सी.ओ.सी.ओ.एम., के अधिकर क्षेत्र के अन्तर्गत आता है, जो एन.ए.टी.ओ. के अन्तर्गत बनी एक संयोजक समिति हैं और जिसका उत्तरदायित्व, साम्यवादी देशों को

ए.टी.ओ. का एक प्रभावशाली सदस्य है, बीजिन्ग को हथियारों की बिक्री को स्वीकृति प्रदान करने का विरोध किया गया था। चूंकि योरोपीय समुदाय के सदस्य भी एन.ए.टी.ओ. के सदस्य थे, इसलिये वे वाशिन्गटन की अवज्ञा करने हेतु अनिच्छुक थे।

चीन एवं यू.एस. के मध्य सम्बन्धों के सामान्यीकरण हो जाने के कारण एवं अफगानिस्तान के ऊपर सोवियत आक्रमण के तुरन्त बाद यू.एस.-सोवियत सम्बन्धों में तेजी से गिरावट को दृष्टिगत रहते हुए यू.एस. के रवैये में परिवर्तन हुआ था, जिसके फलस्वरूप यू.एस. के साथ-साथ योरोपीय देशों द्वारा चीन को सैनिक सम्बन्धी सामानों एवं तकनीको की बिक्री का मार्ग खुल गया। इस समय चीन को हथियारों के निर्यात करने वाले प्रमुख देश यू.के., फ्रान्स, एवं पश्चिमी जर्मनी हैं।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : 1) नीचे दिए स्थान पर उत्तर लिखिए।

2) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए उत्तरों से मिला लीजिए।

1) चीन-सोवियत सम्बन्धों में दरार पड़ने के प्रमुख कारणों का स्पष्टीकरण कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) संयुक्त राष्ट्र में चीन द्वारा प्रवेश किये जाने के प्रति यू.एस. का विरोध क्यों था ?

.....

.....

.....

.....

.....

7.6 संयुक्त राष्ट्र संघ में भूमिका

अक्टूबर, सन् 1949 में, बीजिंग में साम्यवादी दल के शासन की स्थापना होने के समय तक संयुक्त राष्ट्र को स्थापित हुए चार वर्ष हो चुके थे। चीन के नेता माओ अगस्त, सन् 1949 में दिये एक वक्तव्य में, सन् 1945 में सैन फ्राँन्सिसकों में आयोजित "अर्न्तराष्ट्रीय संगठनों पर संयुक्त राष्ट्र के एक सम्मेलन'', का स्वागत किया था। अपनी "दो चीन'' की नीति, का अनुसरण करते हुए संयुक्त राष्ट्र में चीन को सदस्यता प्रदान करने का यू.एस. द्वारा प्रचंड रूप से विरोध किया गया था क्योंकि इस नीति के अन्तर्गत यह ताईवान का समर्थन करता था एवं चीन की मुक्ति हेतु कुओमिन्टाँन्ग को समर्थन प्रदान करने के कारण बीजिंग का विरोध करता था। चीन को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता अक्टूबर, सन् 1971 में प्राप्त हो सकी थी।

अर्न्तराष्ट्रीय विवादों को हल करने में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका को लेकर एवं यू.एन. के शान्ति बनाये रखने हेतु कार्यवाहियों को लेकर चीन की अनुभूतियों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। 1940 के दशक के अन्तिम काल से 1950 क दशक के आरंम्भिक काल तक, अर्न्तराष्ट्रीय विवादों का हल ढूंढ निकालने में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका की चीन द्वारा सराहना की जाती रही है। 1950 के दशक के अन्तिम काल से 1980 के दशक के आरंम्भिक काल तक संयुक्त राष्ट्र की भूमिका की चीन आलोचना करता रहा है।

परन्तु सन् 1985 के अन्तिम काल में एक नये चीनी रवैये का उद्‌गमन हुआ था, जिसके प्रभाव स्वरूप अर्न्तराष्ट्रीय विवादों का निबटारा करने हेतु संयुक्त राष्ट्र को एक सक्रिय रूप की भूमिका निभाने के लिये चीन द्वारा प्रोत्साहित ही नहीं किया था बल्कि यह निर्दिष्ट भी किया था कि इन प्रयासों में चीन भी अपना यथोचित योगदान कर सकता है जो उसे करना चाहिये।

1940 के दशक के अन्तिम काल से 1950 के दशक के आरंम्भिक काल तक, कोरियन युद्ध में संयुक्त राष्ट्र द्वारा हस्तक्षेप किये जाने के बावजूद भी यू.एन. के प्रति चीन द्वारा साकारात्मक रवैया बनाये रखने का कारण यह था कि चीन को यह आशा थी कि उसका मित्र राष्ट्र, सोवियत यूनियन इस विश्व संस्था पर यू.एस. के नेतृत्व वाली पश्चिमी ताकतों का नियंत्रण स्वीकार नहीं करेगा। परन्तु सन् 1950 के दशक के अन्तिम काल में चीन-सोवियत सम्बन्धों में अवनति होना, यू.एन. के प्रति चीन की अनुभूति में बदलाव लाने में, सहायक सिद्ध हुआ था, जो बाद में आलोचनात्मक रूप की हो गई थी। चीन की अनुभूति थी कि संयुक्त राष्ट्र सामान्य तौर से एवं सुरक्षा परिषद विशेष रूप से, साम्राज्यवाद एवं/या सामाजिक साम्राज्यवादियों के उपकरण स्वरूप हैं, जिनका उपयोग उनके द्वारा अपने हितों को बढाने एवं तीसरे विश्व के देशों और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के खर्चे पर सामरिक, राजनीतिक, आर्थिक और यहाँ तक कि प्रादेशिक रूप के लाभ भोगने हेतु किया जाता है।

सन् 1960 के दशक में यू.एन. के प्रति चीन के रवैये का नियंत्रण, अर्न्तराष्ट्रीय व्यवस्था एवं दो महाशक्तियों के साथ उसके सम्बन्धों, की धारणा द्वारा होता था। इस विश्व संस्था को वह नव-उपनिवेशवाद एवं बड़ी सत्ताओं की राजनीति को आगे बढाने हेतु, अमरीकी साम्राज्यवादी एवं सोवियत संशोधनवादियों का एक उपकरण स्वरूप मानता था। अक्टूबर, सन् 1971 में संयुक्त राष्ट्र में सम्मिलित हो जाने एवं सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बन जाने के पश्चात यू.एन. के प्रति चीन के रवैये में आंशिक रूप का परिवर्तन हुआ था। यू.एन. की सदस्यता के अपने पहले दशक में 1971-81, चीन की क्रियात्मकता एवं प्रक्रिया एक पूर्णरूप के उत्तरदायी सदस्य के बजाय एक बाहरी परिवेक्षक के रूप की रही थी और यह इस विश्व संस्थान की कटु आलोचना करने का अवसर नहीं चूकता था।

माओ के निधन के पश्चात एवं "चार के गिरोह" के पतन के पश्चात और चीन में डेन्गु जियाओपोन्ग के अधिक खुले विचारों वाले एवं अधिक व्यवहारिक नेतृत्व के उद्‌गमन के पश्चात यह सम्भव हो सका था कि चीन ने यू.एन. बनाम स्वयं की भूमिका पर पुनर्विचार करना शुरू किया था। सन 1980 में चीन ने एक "स्वतंत्र विदेश नीति" को अपनाया था, जिसमें अमरीका के साथ अधिक निकटता का बचाव करने पर जोर दिया गया था, मास्कों के साथ समझौता करने की चेष्ठा का सुझाव दिया गया था एवं तीसरे विश्व के देशों के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने के लिये कहा गया था। ऐसी नीति को कार्यान्वित रूप प्रदान करने के अपरिहार्य फलस्वरूप, उसके विदेशी सम्बन्धों में परिवर्तन होना एवं चीन के हितों को बढ़ावा देने हेतु उसके द्वारा विश्व के साथ और अधिक रूप से संबद्ध होना था। इसके लिये संयुक्त राष्ट्र में चीन की और अधिक सक्रिय रूप की भूमिका का होना भी आवश्यक था।

सन् 1985 से संयुक्त राष्ट्र के प्रति चीन का रवैया और अधिक सहयोगी रूप का हो गया है। चीनियों द्वारा संयुक्त राष्ट्र की भरपूर प्रशंसा की गई है। संयुक्त राष्ट्र के चालीसवें स्थापना दिवस के समारोह के अवसर पर भाषण देते हुए चीन के प्रधानमंत्री जाऊ जियाँन्ग ने कहा था "विश्व के इतिहास में किसी भी अर्न्तराष्ट्रीय राजनीतिक संगठन को संयुक्त राष्ट्र के समान चिरस्थायी रूप की सजीवता प्राप्त करना प्राय: दुर्लभ समान है, जिसकी विश्व व्यापकता एवं महत्व में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है" और उसके बाद से चीन, संयुक्त राष्ट्रो में और अधिक रचनात्मक एवं सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : 1) नीचे दिए स्थान पर उत्तर लिखिए।

2) अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए उत्तरों से मिला लीजिए।

1) संयुक्त राष्ट्र में चीन द्वारा, कब से और क्यों, सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया गया था ?

.....

.....

.....

.....

.....

7.7. सारांश

इस इकाई में हमने देखा है कि अक्टूबर, सन् 1949 में साम्यवादी शासन के आरंम्भ होने के बाद से, चीन की विदेश नीति भूमंडलीय एवं क्षेत्रीय विकासों के प्रति इसकी प्रतिक्रिया एवं चीन के राष्ट्रीय हितों का मिश्रण स्वरूप रही है। सन् 1950 में जब दो महाशक्तियों–यू.एस. एवं सोवियत यूनियन के बीच शीत युद्ध अपनी चरम सीमा पर था, तब सैद्धान्तिक रूप की विभिन्नताओं एवं यू.एस. द्वारा दो चीन की अभिधारणा पर अड़े रहने को भी ध्यान में रखते हुए, चीन एवं सोवियत यूनियन के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे एवं यू.एस. के प्रति चीन का विरोधाभास था। संयुक्त राष्ट्र को चीन अमरीकी सम्राज्यवाद का एक उपकरण स्वरूप मानता था और वाशिन्गटन के साथ निकटतम सम्बन्ध रखने वाले दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में स्थित अपने पड़ौसी देशों को शंका की दृष्टि से देखता था।

1960 के दशक में, सन् 1959-60 में चीन-सोवियत सम्बन्धों में दरार पड़ जाने के तुरन्त बाद चीन की विदेश नीति में प्रतिघातक रूप के परिवर्तन किये गये और इसके बाद वह सामाजिक साम्राज्यवाद से खतरा भी महसूस करने लगा। दक्षिण एशियाई देशों में, जब कि पाकिस्तान एवं नेपाल के साथ चीन के सम्बन्धों में सुधार हुआ था, वहीं अक्टूबर, 1962 में भारत-चीन युद्ध के तुरन्त बाद चीन एवं भारत के सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये थे। 1960 के दशक के अन्तिम वर्षों के, काल में चीन सांस्कृतिक क्राँन्ति में उलझा रहा था, जिसके फलस्वरूप चीन बाहरी विश्व से अलग थलग पड़ गया था।

1970 के दशक में यू.एस. के साथ चीन के सम्बन्धों में सुधार हुआ था और अक्टूबर, सन् 1971 में चीन संयुक्त राष्ट्र में सम्मिलित हो गया था। फिर भी, चीन-सोवियत सम्बन्ध तनावपूर्ण बने रहे थे। माओ एवं ज़ाऊ एन लाई के निधन और चार के गिरोह के समाप्त हो जाने के पश्चात डेन्ग जियाओपिन्ग के नेतृत्व का उद्गमन हुआ था। 1970 के दशक के अन्तिम काल में चीन द्वारा, चार आधुनिकीकरणों के महत्वकांक्षी कार्य, को अपनाया गया था एवं आर्थिक और तकनीकि सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से, उसने जापान एवं पश्चिम के औद्योगिक देशों के साथ अपने सम्बन्धों को सुधार लिया था। आसियान (ए.एस.ई.ए.एन.) देशों के साथ भी, इसने अपने सम्बन्धों में सुधार किया था।

1980 के दशक में, यू.एस., पश्चिमी योरोपीय देशों एवं जापान के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखते हुए, चीन द्वारा एक "स्वतंत्र विदेश नीति" को अपनाया गया था जिसका उद्देश्य, यू.एस. के साथ सम्बन्धों की अति-निकटता को कम करना एवं तीसरे विश्व के देशों के साथ अपने सम्बन्धों में सुधार करना था। 1980 के दशक के मध्य काल के बाद से, अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए चीन ने संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों में भी सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू कर दिया हैं।

7.8 शब्दावली

शीत युद्ध : तीसरे विश्व के देशों को अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों के अर्न्तगत लाने हेतु, दो महाशक्तियों–यू.एस. एवं सोवियत यूनियन के बीच हुआ संघर्ष।

सांस्कृतिक : सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्राँन्तिकारी उद्देश्यों के प्रति विश्वासघात किये जाने एवं संशोधनवाद के विरूद्ध, माओ के समर्थकों द्वारा सन् 1960 दशक के बीच काल में एक नवीन लोकप्रिय संघर्ष छेड़े जाने का संकेत।

पुनःमैत्री : कुछ काल के विरोधभास के पश्चात, विरोधी राज्यों द्वारा समझौता करने का प्रयास : राज्यों के बीच मैत्री सम्बन्धों का पुनरारंभ।

मित्रभाव : विरोधाभास समाप्त करके, समझौता करना।

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) चौधरी जी.डब्लू; 1982; **विश्व के सार्वजनिक मामलों में चीन, 1970 के बाद से पी.आर.सी. की विदेश नीति**; वेस्ट व्यू प्रैस; बोल्डर; कोलोरेड।

2) हार्डिन्ग हैरी एंड; 1984; **सन् 1980 के दशक में चीन के विदेशी सम्बन्ध**; येल विश्वविद्यालय प्रैस; न्यू योर्क।

3) हसुयेह; जेम्स सी एवं किम सेमुअल एस. एंड 1980; **भू-मंडलीय समुदाय में चीन का स्थान**; प्रेजर न्यू योर्क।

4) हसुयेह चुन-टू. एंड. 1982 **चीन के विदेशी सम्बन्ध : नये परिप्रेक्षय प्रेजर**; न्यू योर्क।

5) याहुघ, मिचेल; 1983; **अलगाववाद के समापन के करीब : मामो के पश्चात्, चीन की विदेश नीति**; मेकमिलियन, लन्दन।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) चीन की विदेश नीति में अवधारणा का बदलाव चार प्रक्रमों में हुआ है। सन् 1950 के दशक में पहले प्रक्रम में चीन की विदेश नीति सोवियत यूनियन के नेतृत्व वाले समाजवादी शिविर के अर्न्तगत परिचालित की जाती थी। सन् 1960 के दशक में दूसरे प्रक्रम में चीन द्वारा गुट राजनीति का त्याग किया गया एवं वह अपनी घरेलू राजनीति में उलझ गया था। 1970 के दशक में तीसरे प्रक्रम में चीन अलगाववाद से बाहर निकल कर आया था एवं पश्चिम के और अधिक निकट हो गया था। सन् 1980 के दशक में चौथे प्रक्रम के काल में चीन द्वारा अपनी स्वतंत्र भूमिका का दावा किया था एवं चार आधुनिकीकरणों को अधिक महत्व प्रदान किया था।

बोध प्रश्न 2

1) चीन एवं भारत के सम्बन्धों में अवनति, प्रमुख रूप से तिब्बत के प्रश्न एवं भारत-चीन की सीमा के मुद्दे को लेकर हुई थी।

2) अक्टूबर, सन् 1962 के पश्चात चीन-भारत सम्बन्धों में व्याप्त विरोधाभासों को दृष्टिगत रखते हुए; भारत के विरूद्ध राजनयिक लाभ एवं सद्भावना प्राप्त करने के लिये चीन ने नेपाल, पाकिस्तान एवं दक्षिण एशिया के अन्य देशों के साथ अपने सम्बन्धों में सुधार किया था।

बोध प्रश्न 3

1) **दक्षिण पूर्व एशिया के कुछ देशों** के ऊपर यू.एस. के असाधारण रूप के प्रभाव के कारण एवं **आसियान के कुछ सदस्य देशों के** यू.एस. के प्रति मैत्रीभाव के कारण चीन एवं आसियन देशों के मध्य सम्बन्धों का विच्छेद हुआ था।

2) मई, सन् 1980 में कुआन्टान में मलेशिया एवं इन्डोनेशिया के मध्य हुई गोष्टी में कुआन्टन प्रस्ताव प्रेषित किया गया था, जिसके अर्न्तगत सोवियत यूनियन पर वियतनाम द्वारा अपनी

निर्भरता कम करने के बदले में चीन से वियतनाम के ऊपर दबाव कम करने हेतु आवाहन किया गया था।

बोध प्रश्न 4

1) अ) सैद्धान्तिक रूप के मतभेद।

ब) दोनों देशों के मध्य सीमा विवाद।

2) अपने दो चीन के सिद्धान्त एवं ताईवान का समर्थन करने के कारण यू.एस. द्वारा चीन के यू. एन. में सम्मिलित किये जाने का विरोध किया गया था।

बोध प्रश्न 5

1) अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का परिचालन करने हेतु एवं अधिक से अधिक देशों के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने हेतु, सन् 1985 के बाद से चीन द्वारा यू.एन. के प्रचलनों में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू कर दिया था।

इकाई 8 ऐतिहासिक संदर्भ—राष्ट्रवाद और पूँजीवाद

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 भूगोल और लोग
8.3 सामंतवाद
8.4 राजनैतिक व्यवस्था
- 8.4.1 तोकूगावा वर्ग-संरचना
- 8.4.2 अलगाव की नीति
- 8.4.3 तोकूगावा शासन को कमजोर बनाने वाले कारण
- 8.4.4 अलगाव का अंत
- 8.4.5 शोगुनेट का पतन

8.5 नया शासन
- 8.5.1 'दाइम्यो डोमेन' व्यवस्था का अंत
- 8.5.2 नये शासन द्वारा सुधार
- 8.5.3 राज्य और धर्म
- 8.5.4 जमीन की लगान
- 8.5.5 आर्थिक परिवर्तन

8.6 राष्ट्रवाद
- 8.6.1 चिंतन-धाराएँ
- 8.6.2 राज्य का उदय
- 8.6.3 अनिवार्य सैनिक सेवा
- 8.6.4 सभ्यता और ज्ञानोदय
- 8.6.5 विस्तारवादी राष्ट्रवाद
- 8.6.6 शिक्षा और राष्ट्रवाद

8.7 पूँजीवाद का उदय
- 8.7.1 औद्योगीकरण
- 8.7.2 निजी उद्यम
- 8.7.3 पूँजीवाद का दूसरा पहलू
- 8.7.4 पूँजी संरचना
- 8.7.5 व्यवसाय के नये अवसर

8.8 सारांश
8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में जापान में राष्ट्रवाद और पूँजीवाद के विकास के बारे में बताया गया है। दूसरे विश्व युद्ध तक लगभग 100 सालों के दौरान जापान में राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में आए परिवर्तनों के ऐतिहासिक विकास पर चर्चा के जरिए सामंती जापान के आधुनिक, औद्योगीकृत जापान में संक्रमण की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- यह समझ सकेंगे कि किस तरह जापान ने सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के अनुकूल संस्थाओं और सुविधाओं का निर्माण किया,
- जापानी राष्ट्रवाद की विशिष्टता जान सकेंगे,
- यह बता सकेंगे कि किस तरह जापान में शिक्षा के जरिए पूँजीवाद और राष्ट्रवाद के विकास के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण तैयार किया गया, और
- परिस्थितियों की विषमता के बावजूद जापानी पूँजीवाद के विकास का मूल्यांकन कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

शताब्दियों तक जापान अलग-थलग पड़ा रहा और राज्य के सभी अधिकारों पर वंशगत सैन्य-अभिजात, शोगुन का नियंत्रण था और राजा एकाकी जीवन व्यतीत करने को बाध्य था। व्यवस्था सामंती थी। 1850 के दशक में जापानी समुद्र-तटों पर अमेरिकी जहाजी-बेड़ों के आगमन के पश्चात जापान का अलगाव खत्म होना शुरू हुआ। जापान पश्चिमी देशों की औद्योगिक प्रगति से हक्का-बक्का रह गया। इस अनुभव ने जापानी राष्ट्रवाद को हवा दी। शताब्दियों पुरानी 'शोगुनेट' व्यवस्था समाप्त कर दी गयी। सम्राट मेजी का सत्ता पर वास्तविक नियंत्रण स्थापित हो गया और बहुत कम समय में ही जापान के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी। जापान में पाश्चात्य तकनीक, विज्ञान, शासन-व्यवस्था एवं शिक्षाप्रणाली को देशज परंपराओं एवं रीति-रिवाजों के अनुकूल ढाला और थोड़े समय में पश्चिमी देशों से प्रतिद्वंद्विता करने लगा।

8.2 भूगोल और लोग

जापानी में जापान को निहान या निप्पोन कहा जाता है, जिसका मतलब है सूर्य की उत्पत्ति। भौगोलिक रूप से यह, पूर्वी एशिया तट के 4 बड़े द्वीपों — होंशू, होक्काइदों, शिकोकू एवं क्यूशू तथा अन्य कई छोटे द्वीपों का समूह है। जापान एक पहाड़ी देश है और क्षेत्रफल की लगभग 16 प्रतिशत जमीन ही खेती योग्य है। यहां प्राप्त होने वाला कोयला एकमात्र खनिज है। भूकम्पों का प्रकोप जापान के लिए आम बात है। नदियाँ छोटी एवं तेज बहाव वाली हैं जो यातायात के लिए उतनी उपयोगी नहीं हैं जितनी कि जल-विद्युत के उत्पादन के लिए।

जापान के ज्यादातर क्षेत्रों में प्रति वर्ष 60 से 100 इंच वर्षा होती है। इसके समुद्र मछली के प्रमुख स्रोत हैं। जापान का क्षेत्रफल 142,300 वर्गमील है। धान यहां की प्रमुख फसल है तथा गेहूँ, जौ, आलू, चाय, बाजरा आदि अन्य फसलें भी उगाई जाती हैं।

मार्च 1992 की जनगणना के अनुसार, जापान की कुल आबादी लगभग 12.5 करोड़ है और ज्यादातर मंगोल जातीयता के हैं। यहां की एकमात्र भाषा 'जापानी' है जिसका ज्ञान हर जापानी नागरिक के लिए अनिवार्य है।

जापानी राष्ट्रीय चरित्र की बात करना तो मुश्किल है लेकिन जापानियों के व्यवहार की कुछ समानताएँ ध्यान देने योग्य हैं। उदाहरण के रूप में, कोई भी जापानी एक समूह के सदस्य के रूप में व्यवहार करना पसंद करता है और समूह के प्रति गहरी प्रतिबद्धता रखता है। सामाजिक इकाई के रूप में परिवार का प्रमुख स्थान है जिसे कई अन्य सामाजिक संरचनाओं के लिए आदर्श माना जाता है। आत्म हत्या विरोध प्रकट करने का एक मान्य तरीका है।

8.3 सामंतवाद

16वीं शताब्दी तक जापान राजनैतिक और सामाजिक तौर पर कई छोटे-छोटे स्वतंत्र कुनबों में बंटा हुआ था। इन कुनबों के अपने अपने अनुवांशिक शासक होते थे जो पूरे जापान पर आधिपत्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा से अनवरत रूप से एक दूसरे के साथ युद्ध में संलग्न रहते थे। 1600 ई. में तोकूगावा इयाशू ने सेकिगाहरा के युद्ध में सभी प्रमुख प्रतिद्वंद्वियों को परास्त कर दिया और बाकियों ने डर से आत्मसमर्पण करके उसके प्रति वफादारी के शपथपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

तोकूगावा की शक्ति का भौतिक आधार यह था कि देश भर के कुल चावल उत्पादन का 37% उसके आधीन क्षेत्र में पैदा होता था तथा सोने और चांदी की खानों एवं प्रमुख नगरों पर भी नियंत्रण था।

सम्राट सभी वैध शक्तियों और अधिकारों का स्रोत था। नामांकित क्षेत्रीय शासक — दाइम्यों की पहुँच सम्राट तक नहीं होती थी और उसके कामों पर तोकूगावा सूबेदारों की कड़ी निगरानी रहती थी कोई भी दाइम्यों सम्राट की इच्छा से महीने तोकूगावा राजधानी में रहने को बाध्य होता था अपने क्षेत्र में वापस जाते समय अपना परिवार बंधक के रूप में छोड़ना पड़ता था, बिना अनुमति के कोई भी दाम्यो न तो सिक्के ढाल सकता था, न वैवाहिक अनुबंध कर सकता था, युद्धपोत नहीं बना सकता था और अपनी सीमा के बाहर सेना नहीं भेज सकता था।

कई इतिहासकारों का मानना है कि तोकूगावा की संकीर्णतावादी नीतियों के चलते जापान में 'सामंतवाद की वापसी' हुई। ईशाइयत का दमन और अलगाव की नीति, जापान के तोकूगावा शासकों द्वारा उसे विश्व इतिहास की मुख्यधारा से

अलग रखने के प्रयास के रूप में रेखांकित किया गया है। अलगाव की नीति के बावजूद, तोकूगावा काल में जापान में सांस्कृतिक और संस्थागत क्षेत्रों में उल्लेखनीय विकास हुआ। इसी दौर में जापानी राष्ट्रीयता और संस्कृति के आधार मजबूत हुए।

शासन, यद्यपि अभिजात सैनिक तंत्र के ही आधीन था लेकिन अंततोगत्वाद, नौकरशाही के एक अभिजात समूह के रूप में समुराई वर्ग का उदय हुआ जिसके दिशा-निर्देश में, प्रशासन तार्किक ढंग से सुव्यवस्थित हुआ। तोकूगावा काल में शहरीकरण की प्रक्रिया चलती रही और इतिहास में पहली बार जापान की अर्थव्यवस्था को जापानी 'राष्ट्रीयता' के साथ जोड़ा गया। आध्यात्मिक रूप से लगभग सारे ही जापानियों पर कन्फ्यूशियसवाद का प्रभाव दिखता है। शैक्षणिक सुविधाओं के विस्तार से आबादी का ज्यादातर हिस्सा साक्षर तो हुआ ही, निम्न वर्गों को भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ।

8.4 राजनैतिक व्यवस्था

तोकूगावा काल की राजनैतिक व्यवस्था को इतिहासकारों ने **बाकू-हान** नाम दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि इस दौर में जापान में **शोगुनेट (बाकूफू)** और लगभग 250 दाइम्यो इलाकों (हान), समानांतर सह-अस्तित्व में थे। राष्ट्रीय सत्ता शोगुनेट में निहित थी।

जैसा कि दाइम्यो और शोगुनेट के पारस्परिक संबंधों से स्पष्ट है, व्यवस्था को जोड़े रखने वाला शीर्षस्थ शासन सामंती था। शासन सामंती और नौकरशाही तकनीकों के बीच और केन्द्रीकृत एवं विकेंद्रीकृत सत्ता के बीच जीवंत तनाव बनाए रखता था।

सभी राजनैतिक अधिकारों का अंतिम स्रोत सम्राट था। तोकूगावा नीति एक तरफ सम्राट की प्रतिष्ठा का महिमा मंडन करने की थी तो दूसरी तरफ उसे दाइम्यों के साथ सीधे संपर्क से वंचित करके उस पर नियंत्रण रखने की थी। सभी दाइम्यों शोगुन के प्रति व्यक्तिगत रूप से वफादारी और उसके विरुद्ध किसी साजिश में शामिल न होने की शपथ लेते थे। इसके बदले शोगुन अपने इलाके पर हर दाइम्यों के स्वामित्व को मान्यता देता था।

बाकू-हान व्यवस्था, सशक्त एवं व्यापक प्रशासनिक व्यवस्था की एक अद्भुत मिसाल थी। शासन का समीकरण यह था कि अपेक्षाकृत स्वायत्त ग्रामीण एवं कस्बाई समुदायों से ऊपरी स्तर के सभी महत्वपूर्ण अधिकारों पर सैनिक तंत्र का कब्जा था और प्रशासन पर समुराई वर्ग का पूर्ण नियंत्रण था। सरकार के समस्त अधिकार, सैनिक वर्ग के मुख्य सेनाध्यक्ष के नाते, शोगुन के पास आ गए। तोकूगावा शासन पेशेवर सैनिक वर्ग द्वारा नियंत्रित नागरिक शासन, तोकूगावा शासन की उल्लेखनीय विशिष्टता थी।

8.4.1 तोकूगावा वर्ग-संरचना

शासन को कमजोर करने वाले परिवर्तनों को रोकने और उसे एक सामाजिक आधार प्रदान करने के उद्देश्य से एक ठोस, अनुवांशिक वर्ग-संरचना तैयार किया, जिसके आधार पर जापानी समाज **समुराई**, किसान, शिल्पी और दस्तकार एवं व्यापारी वर्गों में विभाजित हो गया।

इस वर्ग-संरचना में वरीयता में समुराई सबसे ऊपर थे, यद्यपि उनकी संख्या कुल आबादी की केवल छः प्रतिशत थी। सेना में साधारण सिपाही से लेकर सेनाध्यक्ष तक इसी वर्ग के होते थे। उन्हें खेती, व्यापार या दस्तकारी करने की मनाही थी। चावल भत्ता ही उनकी आय का प्रमुख स्रोत था। कई इलाकों में बहुत से पद अनुवांशिक होने लगे। शांति स्थापना के साथ, समुराई वर्ग के लोगों ने प्रशासन तक ही सीमित न रहकर ज्ञानार्जन के क्षेत्र में भी प्रवेश किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान में सैनिक वर्ग ही बौद्धिक वर्ग और नौकरशाही का भी प्रतिनिधि बन गया।

आबादी के हिसाब से किसानों की संख्या सबसे अधिक थी। जमींदार और किसान दोनों ही गांवों में रहते थे। खेती की लगान उपज के 25% से लेकर 50% से भी अधिक हो सकती थी। प्रशासनिक दृष्टिकोण से गांव एक स्वायत्त इकाई होता था। जमींदारों की मिल्कियतें एक समान नहीं थीं।

गांव के प्रशासन, सामूहिक जमीन या जल के बंटवारे में प्रबंध में भागीदारी का अधिकार जमींदारों को ही प्राप्त था। धनी व्यक्ति ज्यादा पढ़े-लिखे होते थे इसलिए गांव के प्रबंधन संबंधी लेखा-जोखा रखने के लिए उपयुक्त माने जाते थे। तकनीकी रूप से सारी जमीनों पर सम्राट का स्वामित्व था, जमींदारों के पास महज उसे जोतने का अधिकार अनुवांशिक होता था जिसे बेचा और खरीदा जा सकता था। व्यवहार में जमीन का वास्तविक मालिक जमींदार ही था।

अन्य वर्ग शिल्पियों/दस्तकारों और व्यापारियों के थे। सुविधा के लिए इन्हें 'कस्बे के लोग' कहा जाता था। दो प्रशासनिक इलाकों को सीधे आपसी व्यापार की छूट नहीं थी। ओसाका एक महत्वपूर्ण विशाल बाजार के रूप में विकसित हुआ। शहरों में आधुनिक जीवन शैली और संपत्ति संचय की प्रवृत्ति तेजी से प्रतिष्ठा का मानदंड बन रहे थे।

8.4.2 अलगाव की नीति

1639 में तोकूगावा ने डच और चीनी व्यापारियों के अलावा जापान में सभी विदेशियों का प्रवेश निषिद्ध घोषित कर दिया। डच और चीनी व्यापारियों को भी कड़ी निगरानी के तहत नागासाकी में व्यापार की अनुमति प्राप्त थी। बाद में तो जापानी व्यापारियों के विदेश जाने पर भी रोक लगा दी गई। अलगावर की इस नीति के परिणामस्वरूप एक तरफ पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से जापान वंचित हो गया और दूसरी तरफ व्यापारियों के विदेश जाने पर रोक से पूर्व एवं दक्षिणपूर्व एशिया में जापानी व्यापार के विस्तार की संभावनाएँ कम हुईं।

8.4.3 तोकूगावा शासन को कमजोर बनाने वाले कारण

तोकूगावा शासन के दौरान आर्थिक और शैक्षणिक विकास ही अन्ततोगत्वा उसके पतन का कारण बना और शोगुनेट, इस परिवर्तन को नहीं रोक सका। तोकूगावा शासन की नीतियों के चलते जापान में व्यापारियों का एक विशाल समूह अस्तित्व में आया जिसने दाइम्यों से सीधे व्यापार की अनुमति हासिल की। आर्थिक विस्तार और समृद्धि के इस दौर में शहरी आबादी का एक तबका देश के प्राकृतिक स्रोतों के उपयुक्त दोहन की हिमायत कर रहा था। किसानों की स्थिति बहुत बुरी हो गई और उसका असर शोगुनेट और दाइम्यों के कोषों पर भी पड़ा। इस परिस्थिति से निपटने के लिए शोगुनेट व्यापारियों से जबरन कर्ज लेने लगा। महंगाई के मारे दाइम्यों बुरी तरह कर्ज में डूब गए। अतिरिक्त आय के लिए कई दाइम्यों ने अपने इलाके में स्थानीय मालों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। दाइम्यों और शोगुनेट दोनों ने ही अपने समुराइयों (सैनिकों) के खर्च में कटौती करना शुरू कर दिया। इससे समुराइयों को मजबूरन महाजन की ही शरण में जाना पड़ता था। इन सबसे फायदा उठाते हुए व्यापारियों ने, समुराई परिवार में शामिल होने का अधिकार खरीद कर या अपनी बेटियों को समुराई परिवारों में ब्याह कर, सामाजिक प्रतिष्ठा खरीदना शुरू कर दिया। उन्होंने जमीनें खरीद कर किसानों से गैर-कानूनी लगान वसूलना शुरू कर दिया।

8.4.4 अलगाव का अंत

19वीं शताब्दी की शुरुआत तक जापान की अलगाव की नीति पश्चिमी नवल शक्तियों, खासकर अमरीका के लिए विशिष्ट महत्व का विषय बन गई। शोगुनेट (सैन्य-तंत्र) जो अलगाव बनाए रखने के लिए दृढ़ संकल्प था किन्तु 1853 में कमांडर मैथ्यू गैलब्रेथ के नेतृत्व में अमरीकी युद्धपोत के आगमन ने जापान को 31 मार्च 1854 को **कनगवा की संधि** के लिए बाध्य कर दिया। इस संधि की शर्तों के तहत **शिमोद** और **हकोडेट** में अमेरिकी व्यापार को अनुमति प्राप्त हो गई। इसके बाद तो शोगुनेट ने इंगलैंड और 1855 में रूस के साथ भी उसी तरह की संधि पर हस्ताक्षर किये।

8.4.5 शोगुनेट (सैन्य शासन) का पतन

उपरोक्त संधियों से जनता में शोगुनेट-विरोधी और विदेशी विरोधी भावनाओं ने जड़ पकड़ना शुरू किया। विरोधी गुट विरोध की भावनाओं को व्यवहाररूप देने के लिए गिरफ्तारी और हत्या के तरीकों का भी इस्तेमाल करते थे। 'सम्राट के प्रति सम्मान' और 'बर्बरों के निष्कासन' के नारों के साथ विदेशी-विरोधी सामुराइयों ने विदेशियों को निशाना बनाना शुरू किया।

'बंधक प्रथा' की समाप्ति के कारण दाइम्यों पर शोगुनेट के नियंत्रण में ढील आ गई। 1863 में सम्राट की आज्ञा पर शोगुन को विदेशियों को बाहर निकालने को बाध्य होना पड़ा। लेकिन दाइम्यों ने इस आदेश का पालन नहीं किया। शोगुन को बाध्य होकर सहमत होना पड़ा कि भविष्य में दाइम्यों सीधे सम्राट के प्रति जवाबदेह होंगे। सत्सुमा, चोशु, एचिजेन आदि इलाकों में दाइम्यों शाही सलाहकार का काम करने लगे। 1866 में संतानहीन शोगुन की मृत्यु हो गई और उसकी जगह ली तोकुगावा कुल के दरबार समर्थक गुट के एक सदस्य ने। अंततोगत्वा, 1867 में सिंहासन पर बैठे युवा सम्राट मेजी ने सत्ता की बागडोर संभाली और उसके बाद का घटनाक्रम मेजी पुनर्स्थापना के नाम से जाना जाता है।

8.5 नया शासन

प्रत्यक्ष शाही शासन की पुनर्स्थापना के बाद शोगुन को अपने अधिकारों का त्याग करना पड़ा। तोकूगावा समर्थक तत्वों ने विद्रोह किया, लेकिन नए शासकों ने सफलतापूर्वक उसे दबा दिया।

मेजी पुनर्स्थापना के शुरुआती सालों में प्रशासन के ढांचे में काफी फेरबदल हुआ। वरिष्ठ अधिकारियों को दरबारी रईश और दाइम्यों की कोटियों में बांट दिया गया और छोटे अधिकारियों के पदों पर ऐसे महत्वाकांक्षी और योग्य समुराइयों को नियुक्त किया गया जो शाही फरमानों को कार्यरूप देने में दक्ष थे।

8.5.1 'दाइम्यो डोमेन' व्यवस्था का अंत

1868 में केन्द्रीय शासन का प्रशासनिक और वित्तीय नियंत्रण भूतपूर्व तोकूगावा शासन के अधिकारों और संपत्ति पर ही

था। दाइम्यों इलाकों में अपनी सत्ता का विस्तार करने के प्रयास में 1869 में केन्द्रीय शासन ने **सत्सुमा, चोशू** और **हिजेनका दाइम्यों** को अपने भूमि-दस्तावेजों को सौंपने के लिए राजी कर लिया। तनाव की स्थिति को टालने के लिए दाइम्यों को पहले की आय के आधे वेतन पर उनके इलाकों का राज्यपाल नियुक्त कर दिया गया। समुराइयों को निवृत्ति वेतन (पेंशन) देने की व्यवस्था की गई। 1871 में दाइम्यों-इलाकों को खत्म करके केन्द्रीय सरकार के नुमाइंदों द्वारा शासित इकाइयां गठित की गई।

8.5.2 नये शासन द्वारा सुधार

मार्ग अवरोध हटा लिए गए और सभी को आवाजाही की आजादी दे दी गई। हर नागरिक को व्यवसाय के चुनाव की भी आजादी प्रदान की गई। तोकूगावा वर्ग विभाजन को समाप्त करके कानून के समक्ष सभी को बराबरी का अधिकार दिया गया। जर्मनी की तरह अनिवार्य सैनिक सेवा की प्रथा की शुरुआत हुई। शुरू में फ्रांसीसी सैनिक सलाहकार रखे गए थे बाद में उनकी जगह जर्मन सैन्य सलाहकारों को रखा गया। अंग्रेजों के निर्देशन में जापान ने एक छोटी-सी नवसेना का भी गठन किया।

1871 में शैक्षणिक व्यवस्था कायम करने के उद्देश्य से शिक्षा विभाग का गठन हुआ और 1900 ई. तक जापान में साक्षरता की दर लगभग 100 प्रतिशत हो गई थी। केइओ, दोशीशा और वसेदा विश्वविद्यालयों जैसे कई निजी विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। शिक्षा का ढांचा व्यक्ति के विकास की बजाय राज्य हितों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था।

8.5.3 राज्य और धर्म

सम्राट और उसकी सरकार के प्रति जापानी जनता की वफादारी रेखांकित करने के लिए मेजी राजनीतिज्ञों ने शिन्टों के तरीके की हिमायत की। यह प्रकृति और पूर्वजों की पूजा के संयोग का आदिकालीन तरीका था। बाद में इसने ब्रह्मांड की अवधारणा को विकसित किया। प्रमुख शिन्टों मंदिरों को शासकीय संरक्षण प्राप्त था।

मेजी सरकार ने शिन्टों के महत्व को बढ़ाने के प्रयास में बौद्ध विरोधी रवैया आख्तियार करना शुरू कर दिया। शाही घराने के सदस्यों ने बौद्ध मठों और अन्य संस्थाओं से संबंध विच्छेद कर लिया और महल में बौद्धोत्सवों की मनाही कर दी गई। काफी मात्रा में बौद्ध संपत्ति जब्त कर ली गई और कई बौद्ध मंदिर तोड़ डाले गए। राज्य शिन्टों को राजकीय धर्म के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता रहा। 1930 का दशक आते-आते लगभग 100,000 पूजास्थलों का रख-रखाव और 15,000 से अधिक पुजारियों का भरण पोषण सरकारी अनुदान पर चलने लगा था। इन पूजास्थलों पर उपस्थिति सम्राट के प्रति जापानियों की वफादारी की सूचक मानी जाने लगी।

शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से शिन्टों पंथ के निम्नलिखित सिद्धांतों को आत्मसात करने की जापानियों की मनःस्थिति तैयार की जाती थी :

1. 'सम्राट दैवीय गुणों से संपन्न होता है क्योंकि वह अतीत के महान पूर्वजों की आत्मा और शरीर का विस्तार है, खासकर सूर्य देवी के भौतिक और आध्यात्मिक गुणों का',
2. 'चूँकि जापान पर देवताओं की विशेष कृपा रहती है। इसलिए इसकी जमीन, इसके लोग और इसकी संस्थाएं अद्वितीय हैं और अन्य जगहों की तुलना में श्रेष्ठ', और
3. 'जापान का यह दैवीय कर्तव्य है कि वह पूरी दुनिया को एकीकृत करके शेष मानवता को भी सम्राट के शासन का सौभाग्य दिलाए'।

8.5.4 जमीन की लगान

मेजी शासन ने पारंपरिक 'चावल-कर' की प्रथा को जारी रखा। अतः भू-राजस्व चावल के दाम के अनुसार घटता बढ़ता रहता था। इससे वित्तीय योजनाएं बनाना मुश्किल हो गया। लगान की दर को मुद्रा में परिवर्तित करने के उद्देश्य से 1872 में सरकार ने जुताई का अधिकार का प्रमाण पेश करने वालों के नाम भू-स्वामित्व प्रमाण-पत्र जारी किया। इसके साथ ही जापान में जमीन के निजी स्वामित्व की प्रथा शुरू हुई। जमीन में चावल की पैदावार के आधार पर प्रति इकाई जमीन की मालियत के रूप में एक निश्चित रकम तय कर दी गई। इस मूल्य का 3 प्रतिशत लगान के रूप में वसूला जाने लगा। 1890 के दशक तक भू-राजस्व (लगान) ही मेजी शासन के राजस्व का प्रमुख आधार था।

इस परिवर्तन से किसानों में असंतोष फैलने लगा। जंगल, चारागाह और सामूहिक इस्तेमाल की अन्य जमीन, जिस पर सभी ग्रामीणों का साझा अधिकार था, अब राज्य की संपत्ति घोषित कर दी गई। नई लगान अदा करने में उपज का 35-40 प्रतिशत चला जाता था। चूँकि लगान एक निश्चित समय पर नकदी के रूप में जमा करना पड़ता था, इसलिए उन्हें उसी समय अपनी फसल को बेचना पड़ता था, बाजार भाव जो भी हो इस तरह दोनों के उतार-चढ़ाव का असर साल भर किसानों के ऊपर पड़ने लगा। वे अनिवार्य सैनिक सेवा से दुखी थे और प्रारंभिक शिक्षा के लिए लगाया गया

कर उन्हें अनावश्यक बोझ लगता था। इन्हीं कारणों से 1870 के दशक में, कई किसान विद्रोह हुए। अभूतपूर्व मुद्रास्फीति के कारण सरकार को लगान में ढाई प्रतिशत छूट देने के लिए राजी होना पड़ा और यह कि इसका एक हिस्सा किसान, अनाज के रूप में अदा कर सकता है।

8.5.5 आर्थिक परिवर्तन

मेजी नेताओं ने एक आधुनिक सेना और अर्थतंत्र का निर्माण किया। 1860 तक एक परावर्तक वित्तीय व्यवस्था, पोत-निर्माण स्थल और एक आधुनिक शास्त्रागार अस्तित्व में आ चुके थे। सूत की अंग्रजी बुनाई की तकनीक और मशीनरी वाली सूती मिलों की स्थापना की गई। योकोसुका का नौसैनिक अड्डा एक नौ सेना शक्ति के रूप में जापान के उदय का द्योतक था। इसमें यूरोपीयों द्वारा विकसित संयंत्रों में सामरिक जरूरतों को ध्यान में रख कर सुधार किये गये। इसके अलावा सूती एवं रेशमी कपड़े, टाइल, सीमेंट, ऊन, ब्लीचिंग पाउडर आदि उत्पादन के क्षेत्रों में कल कारखाने लगाए गए। 1871 से टेलीग्राफ बेतार व्यवस्था शुरू हुई और 1893 में 2000 मील लंबी पहली रेल लाईन बिछाई गई।

1880 के बाद राज्य ने औद्योगिक और खनन कार्यों से राज्य का नियंत्रण समाप्त कर व्यक्तिगत उद्यमियों को सस्ते दामों पर बेचने का फैसला किया। इसी दौर में बहुत से जैबात्सू परिवारों ने भविष्य में अपार धन कमाने का आधार तैयार किया।

इन आर्थिक गतिविधियों की दो प्रमुख समस्याएं थीं: (1) पूंजी निवेश को देश के अंदर एकत्रित करना, और (2) आयातित कलपुर्जों और तकनीकी सहायता के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा का प्रबंध। औद्योगिक पूंजी का कुछ हिस्सा लगान एवं रेशम, चाय और चावल आदि के निर्यात से प्राप्त हुआ। विकसित कृषि तकनीकों एवं सुविधाओं के चलते कृषि-उत्पाद में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई। 1878-82 और 1888-92 के बीच खेती योग्य भूमि में 7 प्रतिशत की और उपज में 21 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

1894 तक जापान में अच्छा औद्योगिक विकास हो चुका था लेकिन अभी भी खेती का काफी महत्व था। 70 प्रतिशत परिवारों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था और 84 प्रतिशत लोग 10,000 से कम आबादी वाली जगहों पर रहते थे।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : नीचे दी गई जगह में ही उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर की जांच कर लें।

1. जापान को जापानी में क्या कहते हैं ?

   .....

   .....

   .....

   .....

2. जापान की प्रमुख फसलें क्या हैं ?

   .....

   .....

   .....

   .....

3. दाइम्यों कौन होते थे ?

   .....

   .....

   .....

   .....

4. तोकूगावा राजनैतिक व्यवस्था को क्या कहा जाता है ?

.....

.....

.....

.....

5. 1854 में कनगवा की संधि किन के बीच संपन्न हुई थी ?

.....

.....

.....

.....

6. तोकूगावा की अलगाववादी नीति के प्रभावों का वर्णन करिए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 राष्ट्रवाद

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के बीच जापान में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास में राष्ट्रवाद, एक सशक्त कारक था। मेजी युग के समाप्त होने तक जापान सामंती समाज से आधुनिक राष्ट्र-राज्य में तब्दील हो चुका था। ज्यादातर जापानियों में कोकूगाकू और मितोगाकू के प्रभाव में देशभक्ति की भावना बहुत मजबूत थी।

8.6.1 चिन्तन-धाराएँ

कोकूगाकू एक बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन था। इसका उद्देश्य कन्फ्यूशियसवादी बौद्धिक प्रभावों के प्रभुत्व को नकारते हुए उसकी जगह जापानी भाषा और साहित्य के आधार पर विकसित जापानी परंपरा की स्थापना करना था। समय बीतने के साथ कोकूगाकू एक सक्रिय राजनैतिक आंदोलन में तब्दील हो गया, इसका बौद्ध विरोधी तेवर आक्रामक हो गया और इसने 'जापानी संस्कृति' की बजाय 'जापानी राष्ट्र' पर जोर देना शुरू कर दिया। केइचू अजारी, कादा अजुमामारो, कामा अबूची, मोतूरी नोरी नागा आदि विद्वानों एवं उनकी रचनाओं ने इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

इस आंदोलन ने जापानी सम्राट के महत्व को अतिरंजित करके (बढ़ा-चढ़ाकर) प्रचारित किया। कहावत थी "कोई तब तक वफादार जापानी नहीं हो सकता जब तक उसके मन में जापानी परंपरा और सम्राट के प्रति सम्मान और वफादारी की भावना न हो।" मेजी नेताओं ने सम्राट की दैवीय महिमा के मिथ को दो कदम आगे बढ़ाते हुए उसे सभी राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र बना दिया। राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना को व्यापक बनाने के उद्देश्य से, स्कूलों में जापानी इतिहास को पाठ्यक्रम का अनिवार्य विषय बना दिया गया। जापानियों के चिन्तन और व्यवहार पर शिन्टो मत का प्रभाव हावी हो गया और मेजी शासन ने उसे राज्य-धर्म का दर्जा दे दिया।

मितोगाकू आन्दोलन के अनुसार, राजनैतिक सत्ता पर चूँकि मूल रूप से सम्राट का अधिकार है जिसे कि मिनामोतो योरोतीयो और उसके उत्तराधिकारियों ने छीन लिया था। इस आंदोलन का उद्देश्य राजसत्ता पर सम्राट के अधिकार की पुनःस्थापना सुनिश्चित करना था। इसके नेताओं का यह भी मानना था कि कई कोटियों में विभाजित राजसत्ता, राष्ट्रीय वफादारी की भावना के विकास में बाधक थी। इस तरह इस आंदोलन ने सम्राट की सर्वोच्चता और उसके प्रति पूरी वफादारी की अवधारणा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

इस तरह हम देखते हैं कि कोकूगाकू आंदोलन कन्फ्यूशियसवादी का विरोधी था और मितोगाकू आंदोलन का वैचारिक आधार चीनी सिद्धांतों और जापानी परंपरा का संश्लेषित रूप था। कोकूगाकू आंदोलन 'जापान-केन्द्रित' था तो मितोगाकू 'सम्राट केन्द्रित'। इन और अन्य चिन्तनधाराओं ने जापानियों के अंदर सद्यन राष्ट्र और प्रेम की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

मेजी युग (1868-1972) के दौरान जापान सामंती समाज से आधुनिक राष्ट्र और द्वीप देश से साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभरा। जापान एक सशक्त केंदीकृत राज्य के रूप में यूरोपीय शक्तियों का प्रतिद्वंद्वी बन गया। इस दौरान औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेजी से चलती रही।

एक आधुनिक राज्य के रूप में उदय की प्रक्रिया में जापान के निम्न कारणों से तेजी आ गई :

(क) विदेशी आक्रमण का खतरा।

(ख) आंतरिक एकता और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की समस्या।

(ग) एशिया में यूरोपीय उपनिवेशवाद का विस्तार।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि जापान को बाध्य होकर कई असमान संधियों पर हस्ताक्षर करना पड़ा था, जिनके तहत वह विदेशी शक्तियों को राज्य क्षेत्रातीत अधिकार देने के लिए विवश था। इसके चलते आम जापानी के दिलो-दिमाग में विदेशी खतरे की बात तेजी से घर करने लगी। इसीलिए आंतरिक एकता और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के मुद्दे जापानी सरोकारों के केन्द्र में बने रहे। राष्ट्रीय एकता के लिए मेजी नेताओं ने लोगों की वफादारी को राष्ट्रीय प्रतीकों की तरफ आकर्षित करने की नीति को अपनाया। इसके अलावा उन्होंने लोगों में आर्थिक, समाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में परिवर्तन के राष्ट्रीय लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्धता की भावना पैदा करने की कोशिश की। "फुकोकू क्योहेई" — समृद्ध और सशक्त सेना के नारे ने मेजी शासकों के इस प्रयास को सफल बनाने की दिशा में जादुई असर दिखाया। मेजी पुनर्स्थापना के पहले दस सालों के दौरान संस्थागत परिवर्तनों का औचित्य साबित करने में भी इस नारे की भूमिका उल्लेखनीय थी, जिसको उस समय के विद्वानों ने अपने लेखन में रेखांकित किया है।

8.6.2 राज्य का उदय

मेजी काल के दौरान जापान में एक अत्यधिक सशक्त राज्य का उदय, ज्यादातर जापानियों द्वारा समृद्धि, शक्ति और राष्ट्रीय महानता के सिद्धांतों की स्वीकृति का परिणाम था। जापान को शक्तिशाली और समृद्ध बनाने के दौरान शास्त्रागार, व्यापार, उद्योग और अभियांत्रिकी जैसे क्षेत्रों में कई आमूल परिवर्तन आए। आधुनिक राज्य के रूप में जापान की स्थापना के लिए उसे धन, ताकत और एकता की जरूरत थी जिनके लिए मेजी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों की नीतियां अपनाने को प्रतिबद्ध थे। एकसमान प्रशासन और न्यायिक व्यवस्था की स्थापना के साथ ही राष्ट्रीय मुद्रा, राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था और राष्ट्रीय सेना की अवधारणाओं को व्यवहार रूप प्रदान किया। इन परिवर्तनों ने तोकूगावा शासन काल की सामंती देशभक्ति को आधुनिक राष्ट्रवाद का रास्ता दिखाया।

8.6.3 अनिवार्य सैनिक सेवा

नए शासन के प्रति समुराइयों (सैनिक वर्ग) की संदिग्ध वफादारी के चलते सार्वभौमिक सैनिक सेवा की प्रथा शुरू की गई। अनिवार्य सैनिक सेवा के तहत समुराई वर्ग के लोगों एवं अन्य लोगों को एकसमान प्रशिक्षण एवं शिक्षा दी जाती थी। इससे वर्गीय अंतरों को कम करके राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करने में मदद मिली थी। अनिवार्य स्कूली शिक्षा और अनिवार्य सैनिक सेवा, दोनों का उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना को तेज करना।

8.6.4 सभ्यता और ज्ञानोदय

मेजी शासन के दौरान आर्थिक परिवर्तनों का दूरगामी लक्ष्य विकसित देशों की बराबरी में पहुंचने का था। इसके लिए यूरोपीय देशों की आर्थिक अधीनस्थता से बचे रहते हुए जापान ने राष्ट्रीय आर्थिक एकता हासिल करने की नीति को अपनाया और करों की स्वायत्तता को समाप्त कर दिया। व्यवसाय की स्वतंत्रता, माल और व्यक्तियों की देश के अंदर आवाजाही की स्वतंत्रता, और आवास एवं संपत्ति के अधिकारों से प्रतिबंध हटा लिए गए।

8.6.5 विस्तारवादी राष्ट्रवाद

जापान ने इस दौर में कई महत्वपूर्ण निर्धारित लक्ष्य पूरे किए किन्तु पश्चिमी देशों के साथ असमान संधि बरकरार रही। इस वजह से मेजी शासन के दूसरे दौर में जापानी राष्ट्रवाद ने विस्तारवादी रवैया अपनाना शुरू कर दिया।

पाश्चात्य मूल्यों को पूरी तरह नकारे बिना, जापान की विशिष्टता स्थापित करने का अभियान शुरू किया गया। एशिया में जापान की विस्तारवादी नीति के लिए मेजी शासन ने यह तर्क दिया कि उसके कमजोर पड़ोसी देशों की स्वतंत्रता की पश्चिमी आक्रमणकारियों से रक्षा के लिए उसके संरक्षण की आवश्यकता थी। कई असंतुष्ट भूतपूर्व समुराइयों ने यूरोपीय प्रभावों से बचने का उपाय समझ कर, विस्तारवादी विचार का समर्थन किया।

8.6.6 शिक्षा और राष्ट्रवाद

पाठ्यक्रम या पाठ्य-पुस्तकों के निर्धारण का पूरा अधिकार शिक्षा मंत्रालय के पास था। माध्यमिक शिक्षा के बाद सार्वजनिक सेवाओं में प्रवेश करने और उच्च शिक्षा के, दोनों ही रास्ते खुले थे। शिक्षा के विस्तार के लिए अध्यापकों की आवश्यकता होती है, जिसके लिए अध्यापन में प्रशिक्षण के लिए अलग से स्कूलों की स्थापना की गई। ये स्कूल अध्यापकों एवं छात्रों को अन्य विषयों के अलावा देशभक्ति की भावना में भी प्रशिक्षित करते थे।

अनुशासन के महत्व को ध्यान में रखकर, प्रायः इन स्कूलों के संचालन के लिए सेना या सरकार के अवकाशप्राप्त अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। अध्यापन-प्रक्रिया की योजना का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा के निचले स्तरों तक राष्ट्रभक्ति की भावना पहुंचाना था। इस शिक्षा पद्धति ने राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत व्यावसायिक वर्गों को जन्म दिया।

1886 में स्थापित टोक्यो का शाही विश्वविद्यालय देश की शैक्षणिक ढांचे के शीर्ष पर था। सैद्धांतिक रूप से यह विश्वविद्यालय स्वायत्त था किन्तु व्यवहार में इसका मुख्य उद्देश्य राज्य की विचारधारा का प्रचार-प्रसार करना था।

मेजी युग के मध्य तक राज्य केन्द्रित राष्ट्रवाद मजबूती से जड़ें जमा चुका था। राज्य को राष्ट्रवाद के प्रचार-प्रसार का माध्यम बना दिया। लोगों ने इसकी छुट-पुट आलोचना जरूर की लेकिन शिक्षा में राज्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध कभी कोई प्रभावी आंदोलन नहीं खड़ा हुआ।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : अपने उत्तर नीचे दी गई जगह में लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर लें।

1. राष्ट्रवाद से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

2. कोकूगाकू के नेता कौन थे ?

.....

.....

.....

.....

3. मितोगाकू क्या है ?

.....

.....

.....

.....

4. जापान के आधुनिक राष्ट्र के रूप में उदय की प्रक्रिया में तेजी क्यों आई थी ?

.....

.....

.....

.....

8.7 पूँजीवाद का उदय

मेजी युग के उत्तरार्ध से जापान ने आर्थिक विकास के लिए पूँजीवादी रास्ता अपनाया। राष्ट्रीय पूंजीवादी व्यवस्था के विकास के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन एवं अनुकूल वातावरण तैयार करने की जिम्मेदारी शिक्षा व्यवस्था को सौंप दी गई।

पूंजीवाद के विकास के साथ, शांतिवाद, समाजवाद और ट्रेड यूनियन के रूपों में विरोध के स्वर उभरने लगे। विरोध के स्वर को मेजी शासकों ने आर्थिक प्रगति और राजनैतिक स्थिरता के लिए खतरनाक बताया। इससे निपटने के लिए कामगारों और प्रबंधकों को आध्यात्मिक प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम चलाया। कहा गया कि इससे राष्ट्रीय उत्पादन क्षमता में वृद्धि होगी।

मेजी शासकों ने, सादगी, ब्रह्मचर्य, अनुशासन, उद्यमशीलता, परिश्रम का सुख, ग्रामीण समुदायों में पारस्परिक सहयोग एवं व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और देश भक्ति जैसे मूल्यों को जापानी आचरण में ढालने के लिए, कन्फ्यूशियसवादी मान्यताओं का सहारा लिया। इसका उद्देश्य औद्योगिक विकास में तेजी लाने के साथ लोगों को विलासिता और आलस्य से दूर रखना था। इस तरह जापान में पारंपरिक मूल्यों को छोड़े बिना औद्योगिक क्रांति की प्रक्रिया शुरू हुई।

8.7.1 औद्योगीकरण

जापान में औद्योगीकरण की शुरुआत राज्य ने की। बाजार की दिक्कतों के कारण व्यापारी वर्ग नए उद्यम में पूँजी निवेश नहीं करना चाहता था। इसलिए औद्योगिक विकास और व्यापार से संबंधित सारे फ़ैसले भी राज्य ही लेता था। और जब बाजार की दिक्कतें कुछ कम हुईं तो कुछ प्रतिष्ठानों को रियायती दरों पर निजी स्वामित्व को हस्तांतरित कर दिया। यद्यपि आर्थिक मामलों में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका बरकरार रही। शिक्षित अधिकारियों, प्रबंधकों और उद्यमियों की नई पीढ़ी ने बैंकिंग, खान, जहाजरानी, चीनी, वस्त्र आदि उद्योगों की जिम्मेदारी से राज्य को मुक्त कर दिया। राज्य पर केवल भारी उद्योगों और सुरक्षा-संबंधी उद्योगों की जिम्मेदारी रह गई थी।

व्यापार को हेय दृष्टि से देखने का सामंती पूर्वाग्रह समाप्त करके व्यापारी की राष्ट्र के प्रति सेवाओं को नेताओं और राजनेताओं के समतुल्य चित्रित किया जाने लगा। सरकार ने आधुनिक पूंजीवादी विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों और संस्थाओं का निर्माण किया। बड़े घरेलू बाजार, बैंक, प्रतियोगिता, लाभ का आकर्षण और संस्थागत निजी पूंजी के सिद्धांतों को राज्य का प्रोत्साहन प्राप्त था। औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए नवोदित पूंजीपति वर्ग को रियायतें और संरक्षण प्रदान किया गया। प्रशासनिक दिशा-निर्देश देने के नाम पर, राज्य पूंजीवादी वर्ग पर कुछ हद तक नियंत्रण रखता था। इस नीति का फायदा उठाकर मित्सुविशी जहाज रानी उद्योग ने विदेशी जहाज कंपनियों को मात दे दी। मुश्किल ठिकानों पर आदमी और माल पहुंचाकर इस कंपनी ने अपार धन कमाया था।

8.7.2 निजी उद्यम

आर्थिक क्षेत्र में विकसित देशों की बराबरी की राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए, निजी उद्यम को आवश्यक माना गया। पूंजीपति वर्ग के हितों की सुरक्षा के लिए राज्य ने वित्तीय सहायता के अलावा अनुकूल जनमत भी तैयार किया। सरकार ने आमजनों को यह समझाया कि पूंजीपति का मुनाफा, शोषण न होकर राष्ट्र की सेवा में किए गए उसके श्रम का पुरस्कार था। लाभ कमाने को कानूनी और नैतिक मानदंडों पर वैध घोषित कर दिया गया। उत्पादन की पूंजीवादी प्रतिक्रिया से अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता में जापान की स्थिति मजबूत हुई। पूंजीवाद और राष्ट्रवाद में समन्वय स्थापित करने के साथ ही औद्योगिक घरानों पर इसलिए थोड़ा अंकुश रखा जाता था कि वे राज्य-सत्ता के विरुद्ध विद्रोह न कर दें।

मेजी शासकों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतिद्वंद्विता का आभास था। राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता तब तक अच्छी होती है जब तक यह राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने में मददगार हो। आपसी सहयोग और सहायता को राष्ट्रहित में महत्वपूर्ण माना जाता था। राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता नियंत्रित रखी जाती थी लेकिन अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता में जापान ने आक्रामक रुख अख्तियार किया। आक्रामक भावना का उद्देश्य दुनिया को जापान के लक्ष्यों के बारे में अवगत कराना था।

जापान के नियंत्रित पूंजीवाद में सरकारी हस्तक्षेप की पूरी गुंजाइश थी, जिसे ज्यादातर व्यापारियों ने, राष्ट्रहित में स्वीकार कर लिया। व्यापारिक समुदाय में राष्ट्रीय हित की सर्वोच्चता और राष्ट्र के हित के लिए त्याग को उचित और वांछनीय मानता था। व्यापार को देश सेवा माना जाने लगा और धीरे-धीरे व्यापारिक वर्गों के नेता राजनैतिक सत्ता में शामिल होने लगे।

8.7.3 पूंजीवाद का दूसरा पहलू

पूंजीवाद के विकास में बाहरी प्रतिद्वंद्विता और घरेलू दिक्कतों से, देशभक्ति के बहाने पूंजीपतियों को राज्य का संरक्षण प्राप्त था। पूंजीवादी शोषण के शिकार लोगों की सहायता के सामाजिक कार्यक्रमों को अवरुद्ध कर दिया जाता था। औद्योगिक घराने मजदूरों के शोषण को यह कह कर उचित ठहराते थे कि इससे पूरे राष्ट्र का फायदा होगा। राष्ट्रवाद के नाम पर आर्थिक विकास का बोझ कामगारों को ही ढोना पड़ता था। लंबे घंटों तक कठिन परिश्रम ही मजदूरों की राष्ट्रभक्ति का मानदंड था।

व्यापारिक घराने औद्योगीकरण को तेज करने के लिए, पूंजी-संचय की राष्ट्रीय जरूरत के नाम पर मजदूरों की दयनीय मजदूरी को उचित ठहराते थे। मजदूरों से कहा जाता था जिस तरह नाविक और सैनिक देश के लिए त्याग करते थे उसी तरह वे भी उद्योग के विकास और उत्पादन के लिए त्याग करें। जापान में भी पूंजीवाद के परिणाम अन्य जगहों की ही तरह थे। काम के लंबे घंटे, कम मजदूरी, काम की दयनीय स्थिति आदि। सरकार ने किसी प्रकार की जन कल्याण या राहत की नीति को नहीं अपनाया।

8.7.4 पूँजी संरचना

पूंजी और मानव-संसाधन तैयार करना, मेजी शासन की एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी। इसके लिए उसने वित्तीय, मुद्रा संबंधी और सामाजिक नीतियों का समन्वय कुछ इस प्रकार किया जो जापानी आबादी के स्वभाव के अनुकूल था। लोगों की कम खपत और ज्यादा बचत करने की मानसिकता थी। जापानी स्वभाव से ही अनुशासनप्रिय और परिश्रमी होते हैं। शिक्षा और प्रचार से उनके इस स्वभाव को और भी निखारने का प्रयास किया गया। 1894 से 1914 के बीच जापान ने उत्पादन इतना बढ़ा लिया कि वह राष्ट्रीय आय का 12 प्रतिशत से 17 प्रतिशत बचत करके उसे फिर से निवेश करने के योग्य हो गया। मेजी काल में खेती की लगान से प्राप्त राजस्व को आर्थिक विकास तेज करने के लिए सार्वजनिक परियोजनाओं, जैसे कारखाने लगाने, सिंचाई की सुविधाओं, रेल और स्कूल बनाने में लगाया जाता था।

स्वैच्छिक बचत को प्रोत्साहित करने के लिए हर डाकघर में बचत बैंक खोले गए और इस क्षेत्र में व्यापारिक बैंक भी तेजी से सक्रिय हुए। राष्ट्रीय बैंकों में निजी जमा की राशि 1891 में 5.1 करोड़ येन से बढ़कर 1907 में 130.7 करोड़ येन तक पहुंच गयी। डाकघर बचत खातों की जमा राशि 1890 में 1.9 करोड़ येन से बढ़कर 1905 में 5.2 करोड़ येन हो गया। बचत, खपत में कटौती का परिणाम था।

आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था के माध्यम से जमा पूंजी का उपयोग औद्योगिक विकास के लिए होने लगा। यह पूंजी प्रमुख रूप से धनी व्यापारियों, जमींदारों और रेशम एवं चाय के निर्यातकों के पास से आती थी। संदेह के चलते जो पूंजी लोगों ने छिपा कर रखी था, नई आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास के कारण, वह फिर से बाजार-चक्र में आ गई।

विदेश व्यापार के फायदे ग्रामी[illegible]ी पहुंचाने लगा। धन की ताकत के वर्चस्व के चलते किसानों और खेतिहर मजदूरों [illegible]बल[illegible] तक उद्योगों के विकास में ग्रामीणों के योगदान का सवाल है, उनकी बेटियाँ [illegible] रोजगार की नई संभावनाओं में भी शिरकत का उन्हें मौका मिला।

8.7.5

व्यवसाय एवं व्यापार की स्वत[illegible]ा में व्यापार के नये अवसर प्रदान किये। कुछ लोगों ने जल्दी फायदा कमाने के लिए आयातित चीजें खरीद [illegible]ना शुरू किया और कुछ ने सट्टा बाजारों एवं शस्त्रों के व्यापार से अपार धन कमाया। इसका नकारात्मक असर यह हुआ कि कई धनी व्यापारी, जिनमें से ज्यादातर ने सूती कपड़ों की बुनाई, रेल या बैंकिंग में धन लगाया था, दिवालिया हो गये। कइयों ने चीनी मिल, मशीनरी उत्पादन और विदेश व्यापार में पूंजी निवेश से अकूत फायदा कमाया। मुनाफे की संभावनाओं से उनकी पूंजी में वृद्धि होती रही।

शुरुआती उद्यमियों में भविष्य को लेकर बेचैनी थी लेकिन नए बंदरगाहों के खुलने से उन्हें योकोहामा और नागासाकी में फायदा कमाने के नए अवसर प्राप्त हुए। वे दोनों ही पक्षों को शास्त्रास्त्र बेचते थे। नागासाकी में, खासकर, जहाजरानी के निर्माण में वे पश्चिमी कंपनियों के प्रतिद्वंद्वी बन गए। इन शुरुआती उद्यमियों में जाइबात्स के संस्थापक यासुदा, ओकरा और असानों एवं निर्यातक ओटोनी और मोशिमुरा आदि थे। इन शुरुआती उद्यमियों ने ज्यादातर बैंकिंग, रेलवे भारी उद्योग और बिजली उत्पादन के क्षेत्रों में पूंजी निवेश किया। छोटे स्तर से शुरुआत करने वाले इन उद्यमियों ने आधुनिक अर्थतंत्र की सामान्य जरूरतों को पूरा करते हुए लाभ की कई मंजिलें पार की।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : प्रश्नों के उत्तर नीचे दी गई जगह में लिखें और इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से उनका मिलान कर लें।

1. जापान में पूंजीवाद का विकास कैसे हुआ ?

.....

.....

.....

.....

.....

2. मेजी युग के कुछ सफल व्यापारिक नेताओं के नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.8 सारांश

जापान एशिया का पहला देश है जिसने आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक उद्देश्यों के लिए, सफलतापूर्वक शिक्षा के माध्यम से लोगों में देशभक्ति के संचार का रास्ता अपनाया। इसने यूरोपीय अनुभव से वही बातें अपनायी जो कि इसे आधुनिक बनाने में मददगार थीं। इसके अलावा निजी समृद्धि को इस पूरे काल में प्रोत्साहन मिलता रहा। विश्व शक्ति बनने और पूँजीवादी विकास में पश्चिमी ताकत बनने के बावजूद भी यह अपनी जापानी विशिष्टता बनाए रखा। 1868 के बाद के परिवर्तनों से यातायात, मिडिया, साक्षरता, शहरीकरण और आधुनिक उद्योगों के क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इससे ग्रामीण और पारिवारिक बंधन ढीले पड़े और राष्ट्रीय वफादारी या राष्ट्रभक्ति को राज्य और सम्राट के प्रति वफादारी के रूप में चित्रित किया गया। सामाजिक संगठन, राजनैतिकता सरंचना और सांस्कृतिक ढर्रे, जापानी राष्ट्रवाद के प्रमुख निर्धारक थे। जापानी राष्ट्रवाद को 'अति राष्ट्रवाद' भी कहा गया है। आधुनिक जापानी राष्ट्रवाद के उदय में, तोकूगावा काल के अंतिम वर्षों में यूरोपीय संपर्क के प्रभाव का योगदान है। जापानी राष्ट्रवाद ने जनतांत्रिक ताकतों को अपना सहयोगी नहीं बनाया, बल्कि राज्य या सम्राट को परिवार या गांव का विस्तृत रूप बताया जिसमें व्यक्ति की निजी अस्मिता विलीन हो जाती है। इससे ही 'परिवार-राज्य' की अवधारणा बनी। विदेशी आक्रमणों और जापान के साम्राज्यवादी विस्तार ने राष्ट्रवादी चेतना को और सुदृढ़ किया।

पूंजीवाद का विकास किसानों की कीमत पर हुआ और राज्य के संरक्षित व्यक्तियों को ही, शासन द्वारा शुरू किए गए उद्यमों से लाभ हुआ। धीरे-धीरे पूंजीवाद ने औपनिवेशिक रूप अख्तियार कर लिया।

8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

नरसिम्हा मूर्ति, पी.ए. *राईज ऑफ मॉडर्न नेशनलिज्म इन जापान*, नई दिल्ली

नोबुताका इके, *जापानीज पॉलिटिक्स*, न्यूयार्क, 1972

पीटर डस, *राइज ऑफ माडर्न जापान*, बोस्टन, 1976

राबर्ट ई. वाई. *जापान्स पॉलिटिक्स सिस्टम*, न्यू जर्सी, 1978

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. निप्पोन या निहोन
2. चावल, गेहूँ, ज्वार, जौ, चाय और बाजरा
3. तोकूगावा शासन काल में उन्हें क्षेत्रीय शासक नामांकित किया गया था
4. ब्राकू-हान
5. अमेरिका के कमाडोर पेटी
6. जापान, पश्चिम के विकसित देशों से संपर्क न बना पाने के कारण पिछड़ गया था।

बोध प्रश्न 2

1. अपने समुदाय, क्षेत्र या राष्ट्र के प्रति लगाव की भावना।
2. काइचू अजारी, कामा अबूची, मोतोरी, नोरीनाग एवं अन्य।
3. एक ऐसी चिन्तन धारा जो सम्राट के राजनैतिक अधिकारी की वापसी की हिमायती थी।
4. विदेशी आक्रमण के खतरे, राष्ट्र की एकता और अखंडता एवं एशिया में यूरोपीय उपनिवेशवाद के विस्तार की समस्याएँ।
5. एक ऐसी अवधारणा जो पैतृक अधिकार एवं नियंत्रण पद की वरीयता और सम्राट के दैवीय मर्यादा की हिमायत करती है।

बोध प्रश्न 3

1. निजी निवेश आकर्षित करने के लिए बड़ी घरेलू बाजार, बैंक, प्रतिद्वंद्विता, लाभ की वैधता को मान्यता और निजी पूंजी को संस्थागत करने के माध्यम से।
2. व्यवसायी यतारो, गोदई, तो आमात्सू, शिबूसावा एईची।

इकाई 9 संरचना और प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 संविधान
9.3 राष्ट्रीय संसद (डिएट)
  9.3.1 डिएट (संसद) के कार्य
  9.3.2 डिएट (संसद) का संचालन
  9.3.3 सारांश
9.4 स्थानीय शासन
9.5 निर्वाचन प्रणाली
9.6 राजनैतिक दल
  9.6.1 उदारवादी जनतांत्रिक दल (लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी)
  9.6.2 जापान की सोसलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी
  9.6.3 जापान की कम्युनिस्ट पार्टी
  9.6.4 कोमेइतो
9.7 दलीय (दलगत) समर्थन
9.8 गठबंधन
9.9 दबाव समूह
9.10 नौकरशाही (शासन)
9.11 सारांश
9.12 प्रमुख शब्दावली
9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें
9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में जापान की राजनैतिक संरचना और प्रक्रिया के बारे में बताया गया है। इसके अध्ययन के बाद आप :

- मेजी संविधान की विशिष्टताओं और महत्व को समझ सकेंगे और जापान के समकालीन संविधान से उसकी तुलना कर सकेंगे,
- सम्राट की प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय संसद एवं स्थानीय शासनों की क्रियाकलापों का वर्णन कर सकेंगे,
- जापानी राजनैतिक व्यवस्था, विभिन्न राजनैतिक दलों, उनकी सामर्थ्य एवं कार्यक्रमों के बारे में बता सकेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि जापानी राजनैतिक दलों को राजनैतिक और वित्तीय समर्थन कैसे और कहां से मिलता है,
- नौकरशाही और दबाव-समूहों की भूमिका के बारे में बता सकेंगे, और
- जापानी शासन की उपलब्धियां रेखांकित कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

राजनैतिक व्यवस्था, राजनैतिक समस्या की पहचान एवं उसे सूचिबद्ध करने का तरीका है जिसके तहत सार्वजनिक मामलों में फैसले लागू किए जाते हैं। जिस सरकारी मशीनरी द्वारा ये फैसले लागू किए जाते हैं, उसे सरकार कहते हैं। सरकार पूरी राजनैतिक व्यवस्था का एक हिस्सा भर है। इसके अन्य हिस्से हैं : (क) समाज की ऐतिहासिक विरासत, (ख) भौतिक संसाधन और संसद, (ग) सामाजिक और आर्थिक गठन, (घ) इसकी विचारधारा एवं सामाजिक मूल्य, (च) राजनैतिक संस्कृति और शैली, (छ) दलीय व्यवस्था, दबाव समूह एवं नेतृत्व संरचना। राजनैतिक रूप से जापान एक साम्राज्य था जिसके सम्राट का सूर्य-देवी के वंशज होने का दावा था।

मेजी पुनर्स्थापना के केवल 100 साल पहले तक जापान का जो शहरी, औद्योगिक, व्यापारिक और अभियांत्रिक रूप से विकसित रूप आज दिखाई देता है, वैसा नहीं था। 1868 के बाद अलग-थलग पड़ा जापान, पूर्वी एशिया की सशक्त ताकत के रूप में उभरा।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जापानी सामाजिक संरचना में भी कई महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। वर्ग-विभाजन समाप्त करके सार्वजनिक और सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था शुरू हुई। सामाजिक और आर्थिक अवसरों और गतिशीलता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

"कानून के समक्ष समानता" के सिद्धांत पर आधारित कानूनी संहिता पर अमल शुरू हुआ। लोगों के जीवन-स्तर और सार्वजनिक कल्याण के क्षेत्रों में उल्लेखनीय सुधार हुआ। राजनैतिक रूप से सम्राट की स्थिति वास्तविक शासक से प्रतीकात्मक शासक की हो गई। पुराने अभिजातों की जगह निर्वाचित संसद (डिएट) ने ले ली। केन्द्रीय एवं प्रांतीय और स्थानीय सरकारों के गठन, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर होने लगा। निर्वाचित सरकारों के निर्देश में काम करने के लिए एक पेशेवर नौकरशाही का गठन किया गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद के दिनों में अमेरिका के लिए जापान एक पराजित शत्रु से अहम सहयोगी बन गया। जापान की आर्थिक स्थिति और उत्पादन क्षमता पश्चिमी गुट की प्रतिष्ठा के लिए अपरिहार्य सी लगती है। इसके अलावा जापान में अमेरिकी सैनिक अड्डा और राजनयिक सामर्थ्य के चलते एशियाई और विश्व राजनीति में जापान का विशिष्ट महत्व है। 1991 के खाड़ी युद्ध से स्पष्ट हो गया है कि भविष्य में किसी भी युद्ध के लिए जापानी आर्थिक सहायता की जरूरत पड़ेगी। अमेरिका की मौजूदा हालत में अमेरिकी और अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए जापानी आर्थिक सहयोग की निर्णायक भूमिका है।

9.2 संविधान

जापान एक संवैधानिक राज्य है। मौजूदा संविधान निम्न मूल-भूत सिद्धांतों पर आधारित है :

1. संप्रभुता का वास्तविक स्रोत जनता होती है और सम्राट राज्य का प्रतीक है।

2. जापान दुनिया का ऐसा पहला राष्ट्र है जिसने राज्य के युद्ध के अधिकार का संवैधानिक रूप से परित्याग किया (धारा-9)। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है, "हम मानव संबंधों के उच्च आदर्शों के प्रति सजग जापानी लोग सार्वकालिक शांति की कामना करते हैं और दुनिया के शांति प्रिय लोगों की आस्था और न्याय में विश्वास रखते हुए अपने अस्तित्व और सुरक्षा के संरक्षण के प्रति दृढ़ संकल्प हैं।" प्रस्तावना में आगे कहा गया है, "न्याय और मानवीय मूल्यों पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय शांति की हार्दिक अभिलाषा व्यक्त करते हुए हम जापानी लोग राष्ट्र के युद्ध के अधिकार एवं अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को धमकी या बल के प्रयोग से हल करने के तरीकों का परित्याग करते हैं।" इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में जापान, "जल, थल या नव सेना या युद्ध का कोई अन्य संगठन नहीं खड़ा करेगा एवं राज्य के युद्ध के अधिकार को मान्यता नहीं दी जाएगी।"

   संविधान की धारा-11 में घोषित किया गया है, "लोगों के मौलिक अधिकारों पर पाबंदी नहीं लगाई जा सकती।" धारा-12 और 13 में समानता और स्वतंत्रता का अधिकार, सामाजिक अधिकार, मताधिकार सहित राजनैतिक अधिकार आदि मानव अधिकारों की विस्तृत सूची दी गई है। विचार और विवेक की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, शैक्षिक स्वतंत्रता, सभा करने और संगठन बनाने की स्वतंत्रता एवं बोलने और प्रकाशन की स्वतंत्रता, मौलिक अधिकारों की सूची में है।

   सम्राट की प्रतिष्ठा और शक्ति के मामले में 1947 का यह संविधान 1889 में मेजी संविधान से बिल्कुल ही अलग है, मेजी संविधान के तहत राज्य की संप्रभुता का अधिकार सम्राट के पास था। सिद्धांततः प्रशासन, न्यायपालिका और विधायिका राज्य के अलग-अलग अंग थे लेकिन वास्तविकता यह थी कि सभी ही क्षेत्रों में निर्णय का अंतिम अधिकार सम्राट के पास होता था।

   मेजी संविधान के तहत युद्ध की घोषणा और संधि पर हस्ताक्षर करना सम्राट का विशेषाधिकार था [अनुच्छेद-13], गिरफ्तारी का कानून [अनुच्छेद-14] एवं शाही अध्यादेशों [अनुच्छेद-8 और 9] के तहत प्रशासनिक आदेश जारी करना, सम्राट के कुछ अन्य विशेषाधिकार थे।

   शाही संसद (डिएट) में दो सदन थे — प्रतिनिधि सभा एवं अभिजात सदन जिसमें शाही खानदान, खानदानी अभिजात एवं सम्राट द्वारा नामांकित सदस्य होते थे। संसद के सत्र का उद्घाटन, समापन एवं निलंबन तथा प्रतिनिधि सभा को भंग करने के अधिकार भी सम्राट के विशेषाधिकारों का हिस्सा थे।

   मंत्रियों और प्रिवी परिषद् के अलावा सम्राट के सलाहकारों में जेनरो (वरिष्ठ राजनीतिज्ञ) भी होते थे जो संविधान

के प्रावधानों से बाध्य नहीं थे। उनके कार्यों में प्रधानमंत्री का चयन भी शामिल था। मेजी संविधान के अनुच्छेद-11 के अनुसार, "सम्राट सेना और नवसेना का सर्वोच्च सेनापति" था।

अदालतें न्यायपालिका के अधिकारों के इस्तेमाल सम्राट के नाम से करती थीं [अनुच्छेद-57]। प्रशासन के मामले में सम्राट राज्य करता था, शासन नहीं।

जापान का वर्तमान संविधान प्रशासन, विधायिका एवं न्यायपालिका के पृथकीकरण और स्वायत्तता का स्पष्ट उल्लेख करता है।

विधायिका के मामले में, अनुच्छेद-41 के अनुसार, "डिएट (संसद) राज्य का सर्वोच्च एवं कानून बनाने वाला एकमात्र संगठन है।" कार्यपालिका के अधिकार, मंत्रिमंडल के आधीन होंगे [अनुच्छेद-65] और न्यायपालिका के सारे अधिकार सर्वोच्च न्यायालय एवं कानून द्वारा स्थापित अन्य न्यायालयों (8 उच्च न्यायालय एवं 47 जिला न्यायालय) द्वारा इस्तेमाल किए जायेंगे [अनुच्छेद-76]। डिएट (संसद) में सभी सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। यही प्रतिनिधि सभा (डिएट) राज्य की संप्रभुता की वाहक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक जापान एक संसदीय जनतंत्र वाला राज्य है। किसी भी कानून, अध्यादेश या आधिकारिक आदेश की वैधता पर निर्णय का अंतिम अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है। मौजूदा वर्तमान संविधान के अंतर्गत जापानी राज्य के चरित्र में एक विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय परिवर्तन यह आया कि अब संप्रभुता का स्रोत सम्राट के बजाय वहां की जनता है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दी गई जगह में प्रश्नों के उत्तर लिखे और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर लें।

1. जापान के प्रमुख द्वीपों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

2. 10वीं शताब्दी में जापानी समाज व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

3. मेजी पुनर्स्थापना का वर्ष बताइए।

.....

.....

.....

4. कौन-सा देश जापान का सैन्य-सहयोगी है?

.....

.....

.....

5. जापान के संविधान के अनुच्छेद-9 का भाव क्या है?

.....

.....

.....

9.3 राष्ट्रीय संसद (डिएट)

द्वितीय विश्व युद्ध से पहले राष्ट्रीय संसद को शाही (डिएट) संसद कहा जाता था। जापान जनप्रतिनिधित्व वाली विधायिका का 1890 में, गठन करने वाला पहला एशियाई देश है। अनुच्छेद-41 और 42 में दो सदनों वाली संसद — जनप्रतिनिधि सभा और पार्षद सभा, का प्रावधान है। संसद जापानी राज्य का सर्वशक्तिशाली अंग है। इसकी शक्ति आधार संप्रभु जनता है, जिसका यह प्रतिनिधित्व करती है।

प्रतिनिधि सभा में देश के 130 चुनाव क्षेत्रों से निर्वाचित 512 सदस्य हैं। हर चुनाव क्षेत्र (मध्यम आकार के चुनावी जिले) से तीन से पांच सदस्य निर्वाचित होते हैं, अनुच्छेद-45 के अनुसार, प्रतिनिधि सभा के सदस्य 4 सालों के लिए निर्वाचित किए जाते हैं। लेकिन यदि प्रतिनिधि सभा इस अवधि के पहले ही भंग हो जाती है तो उसके साथ इनकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जाती है।

पार्षद सभा में राष्ट्रीय चुनाव क्षेत्रों से निर्वाचित 252 सदस्य होते हैं। इनका कार्यकाल छः साल का होता है और हर तीसरे साल सदन के आधे सदस्यों का चुनाव होता है। अनुच्छेद-46 के अनुसार, पार्षद सभा को भंग नहीं किया जा सकता और कोई भी व्यक्ति एक साथ दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता।

प्रतिनिधि सभा में तीन तरह के सत्र होते हैं : साधारण सत्र, असाधारण सत्र और विशेष सत्र। साधारण सत्र साल में एक बार दिसंबर में होता है। साधारण सत्र में विचारार्थ सबसे महत्वपूर्ण विधेयक आगामी वर्ष का बजट होता है।

असाधारण सत्र आवश्यकता पड़ने पर मंत्रिमंडल द्वारा बुलाया जा सकता है या फिर किसी भी सदन के एक-चौथाई या उससे अधिक सदस्यों की मांग पर। विशेष सत्र का प्रावधान प्रतिनिधि सभा के चुनाव के 30 दिन के अंदर बुलाने का प्रावधान है। प्रधानमंत्री का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण अवसर माना जाता है। इस अवसर पर विशेष सत्र बुलाया जा सकता है।

संसद के दोनों सदनों के बीच पर्याप्त सापेक्ष स्वायत्ता का संबंध है और सत्र की अवधि का निर्णय संसद स्वयं करती है। डिएट के सदस्यों के सदन के अंदर भाषणों, वक्तव्यों आदि के लिए उन पर सदन के बाहर कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती। संसद सदस्य, सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी के वेतन के बराबर वार्षिक भत्ता के अधिकारी होते हैं। यात्रा, डाक सेवा आदि के खर्च का भी प्रावधान है। इन्हें दफ्तर, सचिव, मुफ्त रेल यात्रा आदि सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं।

9.3.1 डिएट के कार्य

विधायिका संबंधित सर्वोच्च संगठन डिएट को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं :

1. संवैधानिक सुधार शुरू करने के,
2. महाभियोग चलाने के,
3. बजट पर निर्णय करने के,
4. संधियां अनुमोदित करने, और
5. प्रधानमंत्री की नियुक्ति के अधिकार।

प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के पास सदन में अविश्वास या विश्वास का प्रस्ताव पेश करने का अधिकार है और पार्षद सभा के सदस्यों के पास आपात सत्र बुलाने का।

इसके अलावा डिएट के अन्य प्रमुख कार्य हैं : केन्द्रीय चुनाव प्रबंध एजेंसी के सदस्यों की नियुक्ति, सरकारी अधिकारियों को बर्खास्त करने की प्रक्रिया, गठित करना, राष्ट्रीय सुरक्षा बलों की लामबंदी एवं आपात स्थिति की घोषणा का अनुमोदन। डिएट का प्रमुख कार्य कानून बनाना है। मंत्रिमंडल अध्यादेश जारी करता है जबकि अन्य प्रशासनिक इकाइयां, मंत्रिमंडल अध्यादेश को लागू करने के दिशा-निर्देश निर्धारित करती है।

विधायिका संबंधी मामलों में, संविधान में प्रतिनिधि सभा को पार्षद सभा की तुलना में वरीयता दी गई है। यदि प्रतिनिधि सभा द्वारा पारित कोई विधेयक पार्षद सभा में पारित न हो पाए और फिर वही विधेयक दुबारा प्रतिनिधि सभा के सदन में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई मत से पारित हो जाए तो वह स्वतः कानून बन जाता है।

मंत्रिमंडल द्वारा तैयार बजट को संसद के अनुमोदन के लिए पेश करना आवश्यक है। प्रतिनिधि सभा को पेश किए जाने के पहले ही उस पर बहस का अधिकार है। यह एक प्रथा स्थापित हो गई है कि प्रतिनिधि सभा सबसे पहले संधि एवं समझौता संबंधी विषयों पर बहस करती है।

सरकार की विभिन्न प्रशासनिक शाखाओं के नियंत्रण और सर्वेक्षण का अधिकार प्रधानमंत्री को है। प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल को महत्वपूर्ण न्यायिक और वैधानिक अधिकारों का प्रावधान है।

9.3.2 डिएट का संचालन

डिएट में 16 स्थाई समितियों का प्रावधान है और हर सत्र के दौरान संबद्ध विषयों के लिए विशेष समितियां भी गठित की जाती हैं। इस तरह ये समितियां संसद की गतिविधियों के प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं। सरकार की नीति संबंधी बहसों में राजनैतिक दलों की शिरकत के बाद, डिएट की गतिविधियों का केन्द्र यही समितियां होती हैं।

किसी संसद सदस्य के प्रस्ताव पर बहस कराने के लिए प्रतिनिधि सभा के कम से कम 20 और पार्षद सभा के कम से कम 10 सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। यदि प्रस्ताव बजट से संबंधित हुआ तो उस पर प्रतिनिधि सभा के 50 और पार्षद सभा के 20 सदस्यों के समर्थन से बहस करायी जा सकती है। इसीलिए छोटी पार्टियां दोनों सदनों में क्रमशः 50 और 20 स्थानों पर चुनाव जीतने का लक्ष्य निर्धारित करती हैं।

संसद की बैठकें आम जन के लिए खुली होती हैं लेकिन समितियों की बैठकों में सिर्फ संसद सदस्यों और समाचारपत्रों के प्रतिनिधियों को ही अनुमति है। प्रधानमंत्री या अन्य कोई भी मंत्री किसी मुद्दे पर दोनों सदनों में बोल सकता है।

चूंकि जापान ने संसदीय प्रणाली को अपनाया है, इसलिए प्रधानमंत्री संसद के निर्वाचित सदस्यों में से ही चुना जाता है। अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री करता है।

मंत्रिमंडल के नेता के रूप में प्रधानमंत्री संसद में विधेयक पेश करता है, उसे सामान्य राष्ट्रीय मुद्दों और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से अवगत कराता है एवं विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों को नियंत्रित करता है।

सामान्य तौर पर एक कबीना मंत्री 12 मंत्रालयों में से किसी एक मंत्रालय का मुखिया होता है या फिर प्रधानमंत्री कार्यालय के अंतर्गत एजेंसियों जैसे आर्थिक योजना एजेंसी, पर्यावरण एजेंसी, राष्ट्रीय सार्वजनिक सुरक्षा आयोग, प्रबंध और समन्वय एजेंसी, होक्काइयो विकास एजेंसी, सुरक्षा एजेंसी, विज्ञान एवं अभियांत्रिकी एजेंसी में से एक या अधिक एजेंसियों का मुखिया होता है।

प्रतिनिधि सभा में अविश्वास मत पारित होने की स्थिति में प्रधानमंत्री त्यागपत्र दे देता है और संसद नये प्रधानमंत्री का चुनाव करती है या फिर प्रधानमंत्री प्रतिनिधि सभा भंग करके नये चुनाव का आदेश जारी कर सकता है। इस स्थिति में नए सदन के गठन के तुरंत बाद प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल को त्यागपत्र दे देना पड़ता है।

9.4 स्थानीय शासन

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले तक जापान में अतिकेन्द्रीकृत सरकार थी। 1945-52 के दौरान अमेरिकी विजेताओं की देखरेख में जापान में जनतांत्रिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। सूबों, शहरों, कस्बों और गांवों को स्व-शासन के पर्याप्त अधिकार देकर जापानी सरकार के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता महसूस हुई। इस प्रक्रिया में स्थानीय शासन स्थानीय परिस्थितियों और जरूरतों के प्रति उत्तरदायी होने लगा और जनतांत्रिक संभावना की व्यापकता काफी बढ़ गई।

स्थानीय शासन 47 सूबों में बंटा है और हर सूबा शहरों, कस्बों और गांवों में। अनुच्छेद-92 और 93 में स्थानीय विधानमंडलों के सदस्यों के निर्वाचन के प्रावधान हैं। सूबे का मुखिया राज्यपाल होता है और शहर, कस्बा और गांव के मुखिया को मेयर कहा जाता है। प्रत्यक्ष मतदान द्वारा निर्वाचित प्रशासनिक अधिकारी स्थानीय शासन का प्रतिनिधित्व और निरीक्षण करता है और प्रशासनिक मामलों में स्थानीय कर्मचारियों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखता है। राज्यपाल और मेयर अपनी-अपनी विधानसभाओं में बजट एवं अन्य विधेयक पेश करने के लिए भी उत्तरदायी होते हैं।

इनके अलावा सूबों और नगरपालिकाओं में एक सदन की विधान सभाएं होती हैं जिनका काम अध्यादेशों को लागू करने और खत्म करने पर बहस करना, सालाना बजट का अनुमोदन करना, एवं राजस्व एवं व्यय के लेखा-जोखा को अधिकृत करना होता है।

जापान में स्थानीय स्वशासन अपने नागरिकों को नियत कार्य प्रणाली के तहत, निम्नलिखित अधिकार प्रदान करते हैं :

(क) अध्यादेशों की रचना एवं समाप्ति करने का,

(ख) राजस्व एवं व्यय के निरीक्षण और विधान सभा भंग करने का, और

(ग) विधान सभा के सदस्यों एवं प्रमुख प्रशासनिक अधिकारियों को वापस बुलाने का।

विपक्षी दलों की बढ़ती गतिविधियां एवं सफलताएं जापान की स्थानीय राजनीति के महत्वपूर्ण पहलू हैं। लेकिन वहां वास्तविक अर्थों में स्थानीय स्वायत्ता इसलिए नहीं है क्योंकि स्थानीय सरकारें अपने अस्तित्व के लिए केन्द्र सरकार पर निर्भर रहती हैं।

औद्योगिक विकास, सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों, यातायात और संप्रेषण के माध्यमों से लोगों की गतिशीलता बढ़ी है। स्थानीय एवं क्षेत्रीय प्रशासनिक कार्यक्रमों में बेहतर तालमेल की जरूरत है। जापान की नई चुनौतियों के संदर्भ में स्थानीय स्वायत्ता की मांग पूरी करने के लिए राजनैतिक प्रशासन की संरचना और प्रक्रियाओं में परिवर्तन की जरूरत महसूस की जा रही है।

बोध प्रश्न 2

अपने उत्तर नीचे दी गई जगह में लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर लें :

1. राष्ट्रीय डिएट (संसद) क्या है?

   .....

   .....

   .....

   .....

2. प्रतिनिधि सभा में कितने सदस्य होते हैं?

   .....

   .....

   .....

   .....

3. जापान की राजनीति में प्रतिनिधि सभा और पार्षद सभा में कौन सर्वाधिक शक्तिशाली है?

   .....

   .....

   .....

   .....

4. डिएट की 2 या 3 स्थाई समितियों के नाम बताइए?

   .....

   .....

   .....

   .....

5. जापान की स्थानीय राजनीति के बारे में आप क्या जानते हैं?

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

9.5 निर्वाचन प्रणाली

संविधान के तहत निर्वाचन की जनतांत्रिक प्रणाली सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार तथा प्रत्यक्ष एवं गुप्त मतदान पर आधारित है। 25 वर्ष से ऊपर के सभी जापानी नागरिकों को मतदान का अधिकार है तथा प्रतिनिधि सभा की सदस्यता के लिए न्यूनतम आयु सीमा 25 वर्ष है और पार्षद सभा के लिए 30 वर्ष।

मूल सिद्धांतों के अर्थ में जापान की निर्वाचन प्रणाली पूरी तरह युक्तिसंगत है, फिर भी जिला निर्वाचन क्षेत्र, डिएट की सदस्य संख्या एवं निष्पक्ष चुनावों के प्रबंध जैसे मामलों में सुधार की पर्याप्त गुंजाइश है।

चुनाव क्षेत्र की प्रणाली में परिवर्तन की मांग शासक पार्टी के विभिन्न घटकों के बीच आपसी खींचातानी का परिणाम है। चुनाव क्षेत्रों के चलते दलों में घटकवाद को बढ़ावा मिलता है, चुनाव में व्यय बढ़ता है और इनके परिणामस्वरूप राजनैतिक भ्रष्टाचार फैलता है।

विपक्षी दल बड़े चुनाव क्षेत्रों और आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व की मांग करते हैं जबकि शासक दल छोटे चुनाव क्षेत्रों के पक्षधर है।

राजनैतिक कोष सीमा का कानून इसलिए बनाया गया जिससे कि निष्पक्ष चुनाव और भ्रष्टाचार से मुक्त राजनैतिक गतिविधियां सुनिश्चित करने के लिए राजनैतिक अनुदानों की सीमा निश्चित की जा सके।

इस कानून के अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी राजनैतिक दल को अधिकतम 2 करोड़ येन और राजनैतिक समूहों, घटकों, समर्थक संगठनों को एक करोड़ येन का अनुदान दे सकता है। व्यापारिक संगठन, मजदूर, यूनियन एवं अन्य एजेंसियां भी राजनैतिक अनुदान दे सकती हैं। अनुदान की राशि की अधिकतम सीमा कंपनी या समूह के आकार पर निर्भर करती है।

9.6 राजनैतिक दल

संसदीय जनतंत्र राजनैतिक दलों के माध्यम से काम करता है। जापान में तीन तरह के राजनैतिक दल हैं। पहला है रूढ़िवादी खेमा जिसमें सबसे बड़ा शासक दल — लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी (एल डी पी), दूसरा खेमा समाजवादी खेमा है जिसमें प्रमुख दल हैं — जापान की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी (एस डी पी जे)। समय-समय पर इस खेमे से छोटे-छोटे घटक और समूह छोटी-छोटी पार्टियां बनाते रहते हैं, जिनमें से कुछ को तो थोड़ी-बहुत चुनावी सफलताएं भी मिली हैं। तीसरा खेमा जापान की कम्युनिस्ट पार्टी और कोमेइतो जैसे छोटे-छोटे दलों का है। 1960 के दशक में स्थापना के बाद से ही कोमेइतो को छोटी-मोटी चुनावी सफलताएं मिलती रहती हैं।

9.6.1 लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी

अपने मौजूदा रूप में लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी का उदय कई लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टियों के मेल से हुआ। बेहतर चुनावी सफलताओं के बावजूद इसे आम सदस्यता वाला संगठन नहीं कहा जा सकता। इसकी सदस्य संख्या जापान की कम्युनिस्ट पार्टी एवं कोमेइतो की तुलना में काफी कम है। इसका केन्द्रीय ढांचा बहुत जटिल है। पार्टी के अधिकारों का प्रयोग पेशेवर राजनीतिज्ञों की एक पार्टी कांग्रेस करती है। सामान्य तौर पर एल डी पी का अध्यक्ष ही जापान का प्रधानमंत्री बनता है। अन्य महत्वपूर्ण पद उपाध्यक्ष एवं महामंत्री के हैं। संगठनात्मक उपकरण और समितियों के माध्यम से पार्टी अपनी नीतियां निर्धारित करती है और संसदीय तरीके से उन्हें कार्यान्वित करती है। जून, 1991 के आंकड़ों के अनुसार, 512 सदस्यों वाली प्रतिनिधि सभा में इसके 279 सदस्य और 252 सदस्यों वाली पार्षद सभा में 114 सदस्य हैं।

महंगे चुनाव प्रचार के चलते शासक दल राजनैतिक भ्रष्टाचार को प्रश्रय देता है और पिछले कुछ सालों से कई वित्तीय विवादों में फंसता रहा है। इस तरह के विवाद में फंसे व्यक्ति को कई बार सत्ताच्युत होना पड़ा है। हाल के रिकुट कोस्मोस विवाद और सागवा क्यूबिन विवादों से एल डी पी की प्रतिष्ठा को काफी क्षति पहुंची है। इसके चलते कबीना मंत्रियों और प्रधानमंत्री को त्यागपत्र देना पड़ा।

एल डी पी के कार्यक्रम समय-समय पर मुद्दों के महत्व के अनुसार बदलते रहते हैं। जैसे कि 1991 में खाड़ी युद्ध में सैनिक भेजने का मुद्दा एल डी पी के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। इसका प्रमुख सरोकार संसद में बहुमत बरकरार रखते हुए शासक दल बने रहना है।

9.6.2 जापान की सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले भी समाजवादी एवं अन्य वामपंथी पार्टियों का अस्तित्व तो था लेकिन उनका प्रभाव नगण्य था। 1947-48 में इन दलों ने थोड़े समय के लिए मिली-जुली सरकार भी बनाई थी। 1955 में सभी घटकों का

एकीकरण हुआ। 6 जून, 1991 के आंकड़ों के अनुसार, प्रतिनिधि सभा में इसके 139 और पार्षद सभा में 73 सदस्य हैं।

ट्रेड यूनियन आंदोलनों एवं राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों के अनुसार इसके कार्यक्रम बदलते रहते हैं। संसद में बहुमत में आने की इसकी संभावना कम दिखाई देती है। इसका मुख्य सरोकार जे सी पी और कोमेइतो के चुनावी अतिक्रमण से अपना जनाधार सुरक्षित रखना है।

9.6.3 जापान की कम्युनिस्ट पार्टी (जे सी पी)

1945 से ही जापान की कम्युनिस्ट पार्टी वैधानिक राजनैतिक दल के रूप में अस्तित्व में है। 1946 के बाद से यह सभी चुनावों में प्रत्याशी खड़ा करती है। इसका समर्थन आधार लगभग 60% महानगरों में है और बाकी शहरी क्षेत्रों में इसे यूनियनों के किसी भी राष्ट्रीय फेडरेशन का समर्थन प्राप्त नहीं है।

कम्युनिस्ट उम्मीदवारों की वामपंथी ट्रेड यूनियनों, जनतांत्रिक महिला संगठन, रेटाइल परिषद और छात्र संगठनों का समर्थन मिलता है। इसकी सफलता का श्रेय प्रमुख रूप से इसके संगठनात्मक विशिष्टता और नेतृत्व के गुणों को जाता है। पार्टी का सर्वोच्च नेतृत्व केन्द्रीय समिति करती है। केन्द्रीय समिति एक अध्यक्ष परिषद का चुनाव करती है जिसका पार्टी पर वास्तविक नियंत्रण होता है। वर्तमान में पार्टी 3,50,000 सदस्यता का दावा करती है। पार्टी के दैनिक अखबार **अकादाता** (लाल झंडा) की हर रोज लगभग 5,50,000 प्रतियां बिकती हैं और रविवारीय संस्करण की 1,95,000 प्रतियां बिकती हैं। जे सी पी का पार्टी कोष प्रमुख रूप से इसके प्रकाशनों से आता है।

जे सी पी के जन-मोर्चों में जनवादी युवा संगठन प्रमुख है। इसकी शाखाएं सभी जापानी सूबों में हैं। यह पार्टी के सदस्यों की भरती में और कालेज और विश्वविद्यालय परिसरों में छात्र गतिविधियों में प्रमुख भूमिका निभाता है।

जे सी पी अमेरिका-जापान सुरक्षा संधि का विरोधी है और रक्षा व्यय में कटौती की हिमायत करती है। यह उर्जा-उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, कृषि उत्पादों के मूल्य में वृद्धि, नये भूमि सुधार कार्यक्रम, सामाजिक कल्याण और सुरक्षा के उपायों को ज्यादा कारगर बनाने और सरकारी खर्चों में कटौती की हिमायत करती है। यह रूसी या चीनी प्रभाव से स्वायत्ता का दावा करती है फिर भी जापानियों की कम्युनिस्ट भय के चलते निकट भविष्य में किसी मिली-जुली सरकार में इसके शामिल होने की संभावना कम है। जून, 1991 के आंकड़ों के मुताबिक राष्ट्रीय संसद की प्रतिनिधि सभा में इसके 16 सदस्य हैं और पार्षद सभा में 14 सदस्य।

9.6.4 कोमेइतो

कोमेइतो का मतलब होता है साफ-सुथरी राजनैतिक पार्टी। आम तौर पर जापानी धार्मिक समूहों का अपना कोई संगठित राजनैतिक दल नहीं है। हाल तक कोमेइतो स्पष्ट रूप से **सोका गुक्काई** धार्मिक समूह का प्रतिनिधित्व करती थी। **सोका गुक्काई** जापान का एक नया धर्म है जिसका एक करोड़ अनुयायियों का दावा है।

1971 में इसने धर्मनिरपेक्ष पार्टी की प्रतिष्ठा हासिल करने के लिए **सोका गुक्काई** से संबंध विच्छेद कर लिया। लेकिन अब भी **सोका गुक्काई** ही इसका मुख्य चुनावी आधार है।

यह जीवन-स्तर में बेहतरी, सामाजिक सुरक्षा, छोटे व्यापारियों पर करों में कटौती, आयकर में कटौती और वृद्धों को पेंशन आदि मुद्दों पर जोर देती है। यह शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण का विरोध तथा वृद्ध लोगों के लिए मुफ्त चिकित्सा व्यवस्था एवं किसानों को मिलने वाली रियायतों में बढ़ोत्तरी की वकालत करती है।

विदेश नीति के मामले में यह अमेरिका, जापान संधि का चरणों में समाप्ति की हिमायत करती है और सोवियत संघ (अब रूस) और चीन के साथ शांति संधियों की। यह एशिया और प्रशांत क्षेत्र को नाभिकीय मुक्त क्षेत्र बनाना चाहती है और विवादित द्वीपों की वापसी के लिए रूस के साथ शिखर वार्ता की मांग करती है। इसका आगे का विकास मिली-जुली सरकार में इसकी भागीदारी पर निर्भर है। कोमेइतो के लिए मौजूदा हालात में अपने बूते पर सत्ता में आना असंभव लगता है। राष्ट्रीय डिएट (संसद) की प्रतिनिधि सभा में इसके 46 निर्वाचित सदस्य हैं और पार्षद सभा में 20 सदस्य।

इनके अलावा **शिन्यो मिंश रेंगो**, डी सी पी, सानन्इन क्लब आदि अन्य छोटी-छोटी पार्टियां भी हैं जिनका राष्ट्रीय राजनीति में महत्व नगण्य है।

9.7 दलीय समर्थन

जापान की पार्टियों को व्यक्तिगत समर्थन संगठन को **कोएन्कई** कहा जाता है। वित्तीय समर्थन संगठन भी होते हैं। महत्वपूर्ण नेताओं के पास निजी समर्थन आधार होता है। एस डी पी जे के संदर्भ में राष्ट्रीय श्रम संगठन **कोएन्कई** की भांति काम करते हैं।

पार्टियों के आंतरिक समीकरण सामान्यतः किसी नेता के प्रति वफादारी पर निर्भर करता है न कि पार्टी की वफादारी पर। कई जगहों पर पार्टियों के घटक स्वतंत्र पार्टियों की तरह काम करते हैं। ये सदस्यों की भरती करते हैं, प्रचार के लिए धन जुटाते हैं और अपने सदस्यों की स्थिति सरकार और पार्टी में मजबूत बनाने की कोशिश करते हैं। एल डी पी के मामले में तो प्रधानमंत्री के चुनाव में ताकतवर घटक ही निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

जापान के राजनीतिक दलों का समर्थन करने वाले दबाव समूहों की भूमिका राजनैतिक प्रक्रिया का एक अन्य पहलू है। यद्यपि एल डी पी खेतिहर हितों के प्रति उदासीन नहीं है लेकिन प्रमुख रूप से यह व्यापारिक हितों का प्रतिनिधित्व करती है। एल डी पी के समर्थन के प्रमुख आधार बड़े व्यापारी एवं नौकरशाही के बड़े अधिकारी हैं। व्यापारिक नेता संसद सदस्य नहीं बन सकता लेकिन एल डी पी अक्सर उच्च पदों पर रह चुके भूतपूर्व नौकरशाहों की पार्टी में भरती को काफी तरजीह देती है। हाल के सालों में देखने में आया है कि एल डी पी के प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के लगभग एक-चौथाई और पार्षद सभा के सदस्यों के लगभग एक-तिहाई सदस्य भूतपूर्व नौकरशाह होते हैं। ऐसा इसलिए है कि एक तो सार्वजनिक नीतियों के संबंध में वे अनुभवी होते हैं और दूसरे वित्तीय समूहों और मौजूदा नौकरशाहों से उनके अच्छे संबंध होते हैं। इसीलिए वे एल डी पी के नेतृत्व में वरीयता क्रम में तेजी से आगे बढ़ सकते हैं और सार्वजनिक नीति-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

जापान की ट्रेड यूनियनों के सामान्य (आम) परिषद्, सोहयो एक वामपंथी मजदूर फेडरेशन है। जिसमें जापान एक शिक्षक संघ, राष्ट्रीय रेल कर्मचारी यूनियन आदि हैं। आधे से ज्यादा समाजवादी सदस्य, मजदूर संगठन के भूतपूर्व नेता हैं।

कोमेइतो का समर्थन आम जनता के स्तर पर इसके संपर्क पर निर्भर करता है। इसका समर्थन आधार प्रमुखतः निम्न वर्ग और शहरी मध्य वर्ग में है।

9.8 गठबंधन

पाश्चात्य देशों की चुनौतियों का सामना करने के लिए राजनैतिक नेताओं, वरिष्ठ नौकरशाहों और बड़े व्यापारिक घरानों के बीच घनिष्ठ सहयोग जापान की राजनैतिक जरूरत थी।

"जापान इन्कोर्पोरेटेड" मुहावरा आम तौर से दूसरे विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और आर्थिक विकास के उद्देश्य से सरकार और व्यापार घरानों के बीच विकसित संबंध को परिलक्षित करने के लिए किया जाता है। निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के संयुक्त प्रयास का ही परिणाम है कि औद्योगिक विकास में जापान पाश्चात्य देशों की तुलना में एक महत्वपूर्ण ताकत बन सका।

युद्ध में पराजय के बाद जापान में संरक्षित प्रतिद्वंद्विता समाप्त हो गई और नये नेतृत्व की संरचना में व्यापारी, नौकरशाही, राजनीतिज्ञ गठबंधन देश के भविष्य के निर्धारण में निर्णायक आधार के रूप में उभरा।

व्यापार घरानों की पहुंच प्रशासन और राजनीति के शीर्षस्थ नेतृत्व तक है और मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि राजनैतिक माहौल व्यापारिक हितों के अनुकूल है।

सरकार जापान की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता बढ़ाने के लिए व्यापारिक सहयोग, आयात प्रतिबंध, विदेश निवेश के परिसीमन आदि मामलों में हस्तक्षेप करती है। व्यापारिक घराने भी व्यापक राष्ट्रीय हित में लाभ के प्रति अपने सरोकार में ढील देने को तैयार रहते हैं।

9.9 दबाव समूह

आर्थिक राजनैतिक विकास के साथ समूहों और व्यक्तियों की गतिविधियों पर, सांसदों और नौकरशाहों की नीतियों और कार्रवाइयों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न समूहों के सामूहिक हितों की अभिव्यक्ति तेजी से होने लगी और वे शासन में दबाव समूहों के रूप में हस्तक्षेप करने लगे।

युद्धोत्तर काल में जितनी तेजी से देश की आर्थिक संरचना में बदलाव आया लगभग उसी तेजी से दबाव समूहों के चरित्र में भी बदलाव आया। कृषि सहकारिता परिषद जापानी प्रमुख दबाव समूहों में है। इससे जुड़े अन्य समूह हैं — कृषि सहकारिता, क्रय परिषदों का नेशनल फेडरेशन, कृषि विक्रय परिषदों का राष्ट्रीय फेडरेशन, जापानी परिषद आदि। ये सभी, राजनीतिक उद्देश्यों पर समर्थन करते हैं और उम्मीदवारों की वित्तीय सहायता भी करते हैं।

व्यापारी और मजदूर संगठनों के प्रतिनिधि ज्यादा कामयाबी के साथ नीति निर्धारण को प्रभावित करते हैं। सामूहिक व्यापारिक हितों को राजनैतिक संदर्भ में जापानी लोग जाकाकाई कहते हैं। इनमें से आर्थिक संगठनों की फेडरेशन

सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली है। इसकी सदस्यता सूची में लगभग 700 बड़े-बड़े निगम और औद्योगिक परिषदें हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य बड़े व्यापार-घरानों के साझे सरोकारों की पहचान करना, चर्चा और बहस के माध्यम से उन पर आम सहमति तैयार करना और अपने विचारों को सरकार, राजनैतिक दलों, नौकरशाही एवं आम जनता के समक्ष पेश करना है। यह विदेशों में जापानी व्यापार के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। यह जापानी सरकार और मंत्रालयों — खासकर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग मंत्रालय से नियंत्रित संपर्क बनाए रखता है। सुनियोजित तरीके से यह उद्योग और व्यापार संबंधी सरकारी नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास करता है। यह एल डी पी का एक ठोस समर्थन आधार है।

नियोक्ताओं के संगठन के फेडरेशन का प्रमुख सरोकार, श्रम-संबंधों की नीति है जिसे यह प्रबंधन के दृष्टिकोण के अनुसार प्रभावित करने की कोशिश करता है। इसमें 60,000 से अधिक सदस्य फर्म हैं। जापान चैम्बर ऑफ कॉमर्स छोटे और बड़े सभी व्यापारिक हितों का प्रतिनिधित्व करता है और इसमें लगभग 2,50,000 सदस्य फर्म हैं।

जापान के लगभग 5.5 करोड़ मजदूर अच्छी तरह से संगठित हैं। मजदूरों का सांगठनिक आधार कारखाना न होकर उद्यम है।

जापान में सबसे बड़ा और राजनैतिक रूप से सर्वाधिक सक्रिय मजदूरों का फेडरेशन है **सोहयो** — जापानी ट्रेड यूनियनों की आम फेडरेशन (जनरल फेडरेशन आफ जपनीज ट्रेड यूनियन्स) 22,000 यूनियनें और 45 लाख सदस्य **सोहयो** से संबद्ध हैं। एस डी पी के जनसमर्थन का यह प्रमुख संगठित आधार है।

जापान के मजदूर संगठनों का दूसरा बड़ा फेडरेशन जापान कन्फेडरेशन ऑफ लेबर (मजदूर महासंघ) है जिसे **दोमेई** कहते हैं।

अन्य दबाव समूह हैं : जापानी डाक्टरों की परिषद्, (जापान डाक्टर्स एसोसियेशन), गृहणियों का संगठन — अखिल जापान नारी संगठनों का फेडरेशन। प्रमुख राजनैतिक दलों के अपने-अपने महिला संगठन, स्थानीय निवासी परिषद आदि होते हैं।

स्थानीय शासनों ने भी सामूहिक हितों की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संगठित होने को लाभप्रद पाया। इस तरह के संगठन हैं : सूबों के राज्यपालों का राष्ट्रीय परिषद, सूबों के विधान सभा अध्यक्षों का राष्ट्रीय परिषद, मेयरों की राष्ट्रीय परिषद आदि।

प्रदूषण विरोधी आंदोलन, उपभोक्ता आंदोलन, पर्यावरण गुट आदि अन्य दबाव समूह हैं। ये सब मिल कर प्रदूषण फैलाने वाले नये उद्योगों का प्रभावशाली ढंग से विरोध करते हैं और पर्यावरण की स्वच्छता के अभियान में कुछ तक कामयाब भी होते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि जापान में काफी संख्या में दबाव समूह हैं। इनमें से काफी राष्ट्रीय और स्थानीय दोनों स्तरों पर राजनीति से जुड़े हैं। ये समूह पार्टियों और उम्मीदवारों की वित्तीय सहायता करते हैं और उनके लिए वोट जुटाते हैं और बदले में उनसे सामूहिक हित के अनुकूल नीति, रियायतें एवं अन्य लाभों की उम्मीद रखते हैं।

9.10 नौकरशाही

नौकरशाही आधुनिक शासन व्यवस्था की रीढ़ होती है। यह विविध जिम्मेदारियां निभाती है। कानूनी, नीति एवं अन्य शासकीय निर्णयों को नौकरशाही ही लागू करती है।

जापान के विकास में नौकरशाही की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। जापान विकासोन्मुख राष्ट्रवाद का पहला उदाहरण हैं जिसमें नौकरशाही की राष्ट्रीय प्रतिबद्धता की भावना जगाने में अहम भूमिका रही है। आज भी जापान की राजनीति में नौकरशाहों का दबदबा है।

सरकार को सलाह देने के लिए हजारों की सदस्यता वाले सैंकड़ों आयोग गठित किए गए हैं। इनमें सामान्यतः संबद्ध मंत्रालय या संस्था के अधिकारी, नौकरशाह (अवकाश प्राप्त), संसद सदस्य, बुद्धिजीवी और श्रमिक संगठनों के अधिकारी होते हैं। ये आयोग सार्वजनिक हितों और खास आर्थिक मुद्दों दोनों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

मेजी शासन काल में नौकरशाही में निम्न वर्ग के समुराइयों और दरबारियों को भरती किया जाता था। लेकिन बाद में नौकरशाही की भरती के लिए सार्वजनिक प्रतियोगात्मक परीक्षाओं के आधार पर नागरिक सेवाओं का गठन किया गया। आज भी नौकरशाही में सरकारी संस्थानों, विशेषकर टोक्यो विश्वविद्यालय से पढ़े-लिखे लोगों की बहुलता है। ज्यादातर व्यापारिक प्रतिष्ठान अवकाशप्राप्त नौकरशाहों की सेवाओं का उपयोग करते हैं। निर्वाचित पद पर पहुंचने में नौकरशाहों के लिए, दबाव समूह आधार प्रदान करते हैं। जब कोई नौकरशाह त्यागपत्र देकर चुनाव लड़ता है तो प्रायः वह उन संगठनों का समर्थन पाने की कोशिश करता है नौकरी के दौरान जिनके साथ उसके घनिष्ठ संपर्क थे।

युद्ध के पहले तक जब राजनीतिक दल इतने सक्षम नहीं थे कि सरकार चला सकें तो अक्सर कबीना स्तर के मंत्री पद

पर वरिष्ठ नौकरशाह चुने जाते थे। युद्ध के बाद महत्वाकांक्षी नौकरशाहों ने नौकरशाही छोड़कर सीधे राजनीति में प्रवेश किया। अपने कार्यकाल में वे पद का फायदा उठाकर प्रतिष्ठानों, दबाव समूहों, स्थानीय राजनीतिज्ञों एवं अन्य के साथ संपर्क बनाते हैं जो इनके राजनैतिक जीवन में प्रवेश करने पर मददगार साबित होते हैं। राजनीति में घुसने के बाद एल डी पी के नेतृत्व के उसके अभियान में उसका ज्ञान और प्रशासनिक अनुभव तथा सरकारी प्रतिष्ठानों के साथ संबंध सभी मददगार होते हैं।

बोध प्रश्न 3

नीचे दी गई जगह में अपने उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर लें :

1. तीन प्रकार के जापानी राजनैतिक दलों के नाम बताइए।

   .....

   .....

   .....

2. जापान के शासक दल का क्या नाम है?

   .....

   .....

   .....

3. जापान के दो ऐसे राजनैतिक दलों के नाम बताइये जो कार्यकर्ता (केडर) पर आधारित हों।

   .....

   .....

   .....

4. एस डी पी जे क्या है?

   .....

   .....

   .....

5. सोह्यो क्या है?

   .....

   .....

   .....

9.11 सारांश

जापानी राजनैतिक प्रणाली का संक्षिप्त मूल्यांकन उसे संपूर्णता में समझने के लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रणाली का जनाधार जापानियों की यह आस्था है कि जनतंत्र अधिकारों की सुरक्षा के लिए अनिवार्य है। इसीलिए जापान में मतदान का प्रतिशत बहुत ऊंचा जाता है। संगठित विशाल राजनैतिक प्रदर्शन जापान में सामान्य बात है। अमेरिका-जापान सुरक्षा संधि, वियतनाम युद्ध, नाभिकीय विरोध और युद्ध विरोधी मुद्दों पर प्रदर्शन उल्लेखनीय है। जापानी राजनैतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू सामाजिक नियंत्रण पर जोर भी है।

रक्षा व्यय एवं सामाजिक कार्यक्रम के व्यय के परिसीमन की सरकारी नीति का जापान के आर्थिक विकास में उल्लेखनीय

योगदान है। आर्थिक विकास और विदेश व्यापार के मामलों में सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सरकार जापानी औद्योगिक हितों की विदेशी प्रतिद्वंद्विता से भी रक्षा करती है। इस तरह हम देखते हैं कि जापान के राष्ट्रीय आर्थिक विकास में शासन ने महत्वपूर्ण राजनैतिक भूमिका अदा की है।

इस तरह हम देखते हैं कि दूसरे विश्व युद्ध की पराजय और तबाही एवं उसके बाद के अमेरिकी नियंत्रण के बावजूद जापान ने थोड़े ही समय में अपने को एक आधुनिक विश्वशक्ति के रूप में पुनर्स्थापित करने के साथ एक स्थिर जनतंत्र में तब्दील कर लिया।

बोध प्रश्न 4

नीचे दी गई जगह में प्रश्नों के उत्तर लिखें और इकाई के अंत में में द्रिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर लें :

1. क्या जापान में अमेरिकी सुधार सफल हुए थे?

   .....

   .....

   .....

2. जापान के विपक्षी दल कितने प्रभावशाली हैं?

   .....

   .....

   .....

3. क्या एल डी पी जापान की शासक पार्टी बनी रहेगी?

   .....

   .....

   .....

4. जापान की राजनैतिक प्रणाली की महत्वपूर्ण उपलब्धियां बताइये?

   .....

   .....

   .....

9.12 प्रमुख शब्दावली

मेजी पुनर्स्थापना : राजनैतिक सत्ता के केन्द्र में सम्राट मेजी की पुनर्स्थापना

जेनरो : वरिष्ठ राजनीतिज्ञ

डिएट : जापानी संसद

कोमेइतो : स्वच्छ सरकार पार्टी

सोह्यो : मजदूर संगठनों का सबसे बड़ा फेडरेशन

दोमई : मजदूर फेडरेशनों का दूसरा सबसे बड़ा फेडरेशन

कोएन्काई : निजी समर्थन संगठन

जाइकाई : राजनैतिक संदर्भ में संगठित व्यापार और मजदूरों की गतिविधियां

शुंटो : सरकारी और निजी प्रतिष्ठानों पर वेतन वृद्धि के लिए दबाव डालने के उद्देश्य से वार्षिक प्रदर्शन

9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चार्ल्स बर्गमैन, *जापानी सरकार, नेतृत्व और प्रबंधन*, लंदन, 1989

वारेन एम्. त्सुनेइशी, *जापानी राजनैतिक शैली*, लंदन, 1986

9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. होंशु, होक्काइदो, क्यूशू और शिकोकू
2. जापानी समाज ग्रामीण, कृषि प्रधान, गतिशीलता रहित सामंती, वर्ग-विभाजित और अधिनायकवादी था।
3. 1868
4. अमेरिका
5. अनुच्छेद-9 में जापानी संविधान में युद्ध के राष्ट्रीय अधिकार के परित्याग की घोषणा की गई है।

बोध प्रश्न 2

1. जापानी संसद को राष्ट्रीय डिएट कहते हैं।
2. 511
3. प्रतिनिधि सभा
4. आर्थिक योजना एजेंसी, सुरक्षा एजेंसी, विज्ञान और अभियांत्रिकी एजेंसी
5. प्रमुखतः रूढ़िवादी है।

बोध प्रश्न 3

1. रूढ़िवादी, समाजवादी और छोटी पार्टियां
2. लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी
3. जापान कम्युनिस्ट पार्टी और कोमेइतो
4. जापान की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी
5. सोह्यो जापान की ट्रेड यूनियनों का संघ है।

बोध प्रश्न 4

1. सुधारों ने सफलतापूर्वक राजनैतिक और सामाजिक प्रणाली को आधार प्रदान किया।
2. प्रभावहीन
3. संदेहास्पद हैं क्योंकि पारंपरिक ग्रामीण समर्थन घट रहा है
4. इसने आर्थिक विकास और विदेश व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा युद्धोपरांत की चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया।

इकाई 10 जापान की विदेश नीति

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 आधुनिक जापान की विदेश नीति के आधार
  10.2.1 जापान की विदेश नीति के मूल उद्देश्य
  10.2.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले जापान की विदेश नीति
10.3 विदेश नीति का निर्माण
  10.3.1 संसद की भूमिका
  10.3.2 विदेश मंत्रालय की भूमिका
  10.3.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय की भूमिका
  10.3.4 राजनैतिक दलों की भूमिका
  10.3.5 दबाव समूहों की भूमिका
  10.3.6 जनमत की भूमिका
  10.3.7 बाहरी कारणों की भूमिका
10.4 जापान की रक्षा और सुरक्षा के सरोकार
  10.4.1 रक्षा एवं सुरक्षा नीति
  10.4.2 जापान की रक्षा शक्ति
  10.4.3 संवैधानिक सीमाएँ
  10.4.4 रक्षा बजट
  10.4.5 राष्ट्रीय सुरक्षा के महत्व
  10.4.6 क्षेत्रीय और विश्व सुरक्षा
10.5 जापान के विदेश संबंध
  10.5.1 भारत और जापान
  10.5.2 जापान, उत्तरी अमेरिका और यूरोपीय समुदाय
  10.5.3 नये औद्योगिक देश
  10.5.4 जापान, पूर्व सोवियत संघ और चीन
  10.5.5 जापान और विकासशील देश
10.6 जापान और संयुक्त राष्ट्र संघ
10.7 अंतर्राष्ट्रीय विनिमय और सहयोग
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में जापान की विदेश नीति के निर्माण और कार्यान्वयन के आर्थिक कारणों की चर्चा की गई है। इसमें जापान की विदेश नीति के कार्यान्वयन की वरीयताओं के बारे में भी बताया गया है। द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांत की हिमायत के माध्यम से — अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में असमानता दूर करने के जापान के प्रयासों का भी संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसे पढ़कर आप :

- जापान की विदेश नीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझ सकेंगे,
- जापान की विदेश नीति निर्माण की प्रक्रिया और इसमें विभिन्न प्रतिष्ठानों की भूमिका समझ सकेंगे, और
- जापान की विदेश नीति एवं रक्षा नीति के प्रमुख चरित्र का मूल्यांकन कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

आज जापान विश्व का एक महत्वपूर्ण देश है। और विकसित एवं विकासशील दोनों ही प्रकार के देश जापान के साथ संबंधों को वरीयताक्रम में ऊपर रखते हैं। वे जापान से पूंजी और तकनीक की अपेक्षा रखते हैं।

पिछले कुछ दशकों से जापान जिस गति से आर्थिक विकास की दिशा में बढ़ रहा है, अतुलनीय है। इसने भू-राजनैतिक प्रभावों की तुलना में परस्पर निर्भरता की तरफ बढ़ते विश्व अर्थ तंत्र में शक्ति के स्रोत के रूप में भू-आर्थिक प्रभावों को वरीयता दी। स्वतंत्र विदेश नीति की जापान की घोषणा के बावजूद इस पर अमेरिकी प्रभाव स्पष्ट दिखता है। जापान की विदेश नीति का एक उल्लेखनीय पहलू इसकी जनतांत्रिक अंतर्वस्तु है। जापान अपने विदेशी स्रोतों और ऊर्जा को विस्तार तो देता है लेकिन वे जापानी सामानों, सेवाओं और तकनीक पर पूर्णतः निर्भर हो जाते हैं।

जापान की विदेश नीति के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए कुछ देशों के साथ इसके संबंधों के बारे में चर्चा की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में जापान की भूमिका के बारे में भी बताया गया है।

10.2 आधुनिक जापान की विदेश नीति के आधार

आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के क्षेत्रों में जापान द्वारा पाश्चात्य मूल्यों और तकनीक को जापानी समाज और परंपरा की जरूरतों के अनुसार ढाल कर अपने को विश्व-शक्ति के रूप में स्थापित करने की गति अतुलनीय है। 20वीं शताब्दी के निम्नलिखित घटनाओं पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

क. 1900 में रूस को, जो कि उस समय तक एक पश्चिमी ताकत माना जाता था, हरा कर पूर्वी एशिया में यूरोपीय साम्राज्यवादी विस्तार को चुनौती दी।
ख. 1920 के दशक में यूरोपीय माल की नकल पर बने और सस्ते दामों पर उपलब्ध जापानी माल ने अंतर्राष्ट्रीय बाजार में यूरोपीय देशों के वर्चस्व को चुनौती दी।
ग. 1940 के दशक में पूर्वी एशिया में यूरोपीय उपनिवेशवाद की संभावनाएं खत्म करने के नाम पर जापान स्वयं एक उपनिवेशवादी देश बन गया।
घ. 1960 के दशक में परिष्कृत जापानी तकनीकों ने यूरोप की तकनीकी श्रेष्ठता को चुनौती दी।
ड. 1980 के दशक में विश्व के सबसे बड़े कर्जदाता देश के रूप में जापान ने यूरोपीय वर्चस्व को समाप्त कर दिया।

उपरोक्त उपलब्धियों और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में इसकी प्रतिष्ठा की वजह से तमाम विकासशील देश विकास की चुनौतियों से निबटने एवं अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निबटाने में जापान से सहायता की अपेक्षा रखते हैं। इसलिए जापान की विदेश नीति की समझ महत्वपूर्ण है।

इसकी भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक विकास और तत्कालीन तकनीकी विकास तथा संसाधन और जरूरतों के बीच, लोगों की राजनैतिक अपेक्षाओं और मांगों को ध्यान में रख कर तारतम्य, मिलकर विश्व में जापान की स्थिति को परिभाषित करते हैं। जापान की विदेश नीति के मूल्यांकन में भू-राजनैतिक और भू-आर्थिक कारणों एवं उनके आर्थिक परिणामों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

10.2.1 जापान की विदेश नीति के मूल उद्देश्य

जापान की विदेश नीति का घोषित मूल उद्देश्य, विश्व-शांति और स्थायित्व की स्थापना एवं संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की सद्भावनापूर्ण प्रगति के प्रयासों में योगदान करना है। इसके घोषित उद्देश्य हैं : पाश्चात्य जनतांत्रिक देशों के साथ सहयोग और मैत्री के संबंधों को जारी रखना, एशिया में अपने पड़ोसी देशों के साथ पारिवारिक मैत्रीपूर्ण संबंधों को बरकरार रखना और अमेरिका के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए रखना।

10.2.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले जापान की विदेश नीति

जापान के लिए 19वीं शताब्दी का समय आक्रमण को तत्पर, अशुभ माने जाने वाले देशों के विरुद्ध संघर्ष का समय था। इसलिए मेजी संविधान में सेना के अधिकार पर जोर स्वाभाविक लगता है। विदेशी भाषा खासकर अंग्रेजी की समस्याओं, जापानी प्रथाओं आदि बाधाओं के बावजूद जापानी राजनयिकों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में जापान की प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए कठिन परिश्रम किया। जेनरों के अलावा, सेना और विदेश व्यापार के हितों के दबाव समूह भी विदेश नीति संबंधी निर्णयों को प्रभावित करते थे। इससे प्रायः कई देशों के साथ संपर्क कट जाता था। इस दौर में विदेश मंत्रालय में लगातार परिवर्तन होते रहे। 1890 के दशक तक विदेशी मामलों के लिए किसी पेशेवर सेवा का गठन नहीं हुआ था। 1900 तक एक पेशेवर विदेशी सेवा उभरने लगी थी और अगले 40 वर्षों तक विदेश मंत्री इसी सेवा से होते रहे।

1920 के दशक में अन्य जगहों की तरह जापान में भी विदेश मंत्रालय की तुलना में रक्षा और व्यापार मंत्रालय ज्यादा महत्वपूर्ण मंत्रालय बन गए। सेना नागरिक सत्ता को चुनौती देने की स्थिति में थी। सेना का प्रभाव बढ़ने के साथ समाज में राजनयिकों की प्रतिष्ठा में गिरावट आने लगी। एक बहुत लोकप्रिय सेनापति तोजो ने एक बार कहा था, "विदेश मंत्रालय को अपने आपको शिष्टाचार और विदेशी राजनयिकों को दावतें देने तक ही सीमित रखना चाहिए, निर्णय की जिम्मेदारी सेना पर छोड़ देना चाहिए जिसे चीजों की सही समझ है"।

स्थिति यह हो गई कि पदोन्नति के लिए न तो वरिष्ठता का मानदंड था और न ही कुशलता का। सेना के प्रभुत्व के चलते मंत्रालय की कम होती प्रतिष्ठा प्रमुख सरोकार बन गई। 1940 के दशक में विदेश मंत्रालय का प्रमुख काम सेना के विस्तारवादी कृत्यों की जवाबदेही था। विदेश में जापान के शांति वक्तव्य अविश्वसनीय हो चुके थे। स्थिति से ऊबकर विदेश मंत्रालय से जुड़े, शिदेहारा तोकूगवा, इएमासा और शिगेरुयोशिदा जैसे कई बड़े नेताओं ने त्यागपत्र दे दिया।

जापानी विदेश नीति का कोई सैद्धांतिक आधार नहीं था। हर विदेश मंत्री अपनी विचारधारा के तहत चीन या एशिया के मसलों पर फैसले लेता था। जापानी नीति में जो एक वाह्य निरंतरता नजर आती है वह यह है कि कच्चे माल की प्राप्ति लाभप्रद विदेश व्यापार, आक्रमण के लिए और विदेशी आक्रमण को रोकने के लिए अपने बंदरगाह, दूसरे देशों से अच्छे संबंध और अंतर्राष्ट्रीय मंचों में उचित हिस्सेदारी इसके प्रमुख सरोकार थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक जापान की चीन के प्रति शत्रुता और एशिया एवं प्रशांत क्षेत्र में विस्तारवाद की नीति में निरंतरता देखने को मिलती है।

यद्यपि विस्तारवाद जापान की विदेश नीति का महत्वपूर्ण पहलू रहा है लेकिन यह लगातार चलने वाली प्रक्रिया नहीं थी। 1870 से 1920 तक विदेश नीति निर्माताओं के लिए यूरोप से संबंध एशियाई सरोकारों से अधिक महत्वपूर्ण थे। 1930 तक समीकरण बदल चुके थे। बदली हुई परिस्थितियों में 'पश्चिमी शत्रुओं के विरुद्ध सावधानी' और एशियाई देशों के साथ मित्रता की नीति अपनाई गई। 1942 तक जापानी विस्तारवाद सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर चुका था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विदेश मंत्रालय फिर से विदेश नीति निर्धारण में अहम भूमिका निभाने लगा।

जापान के आधुनिक इतिहास में यूरोप या अमेरिका को मॉडल नहीं बनाया गया बल्कि एक ऐसा नया मॉडल तैयार किया गया जो इनको पीछे छोड़ दे। ज्यादातर जापानियों के दिमाग में बैठा था कि आधुनिकीकरण पश्चिमीकरण का ही दूसरा नाम है। लेकिन युद्ध के बाद जापानी विदेश नीति ने अमेरिकी मॉडल चुना। खासकर रक्षा और विदेश नीति के मामलों में जापान ने अमेरिकी नेतृत्व का अनुसरण किया है। तकनीक, राष्ट्रीय आय, जीवन स्तर आदि में पश्चिमी देशों को पीछे छोड़ चुके जापान के लिए पश्चिमी देश कोई आदर्श दे पाने में समर्थ नहीं दिखते। अब जापान को विश्व-शांति और अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए स्वयं ही अपना दृष्टिकोण बनाने की जरूरत है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दी गई जगह का इस्तेमाल प्रश्नों का उत्तर लिखने के लिए करें। अपने उत्तर इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिला लें।

1. जापान की विदेश नीति को समझने के लिए किन तथ्यों की जानकारी आवश्यक है?

   .....

   .....

   .....

   .....

2. पिछले 30 वर्षों में जापान की दो प्रमुख उपलब्धियों के बारे में बताइए।

   .....

   .....

   .....

   .....

3. जापान की विदेश नीति के मूल उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

4. जापान की विदेश नीति की वाह्य निरंतरताएं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

10.3 विदेश नीति का निर्माण

1945-52 के विदेशी आधिपत्य के दौरान अधिकारियों ने जापान के जनतांत्रिकरण के लिए कई राजनैतिक और संवैधानिक परिवर्तन किए। तभी से जापान की विदेश नीति निर्धारण प्रक्रिया में संसद, राजनैतिक दल, दबाव समूह और नौकरशाही सभी की भागीदारी रहती है।

10.3.1 संसद की भूमिका

विदेश नीति संप्रभुता की अभिव्यक्ति होती है इसलिए इसके निर्माण का अधिकार अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से जनता को है। संसद की संस्तुति के बिना कोई भी संधि या समझौता अमान्य है। स्थाई समिति के गठन से नीति निर्धारण में संसद (डिएट) की भूमिका का महत्व बढ़ गया है। इस समिति में संसद में संख्या के अनुपात में सभी राजनैतिक दलों का प्रतिनिधित्व होता है। विदेश नीति के निर्माण से संबंधित दो प्रमुख समितियां है। बजट समिति और विदेशी मामलों की समिति विदेश मंत्रालय के बजट निर्धारण को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। विदेशी मामलों की समिति की विविध सिफारिशों पर संसद में चर्चा और मतदान होता है। जाहिर है कि अपने बहुमत के चलते समितियों में शासक दल का प्रतिनिधित्व अधिक है। और वह विदेश नीति निर्धारण में निर्णायक भूमिका अदा करता है। विपक्षी दल प्रस्ताव का अध्ययन करने के बाद, परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार शासक दल की आलोचना करते हैं। प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान करते हैं या मतदान का बहिष्कार करते हैं। और शासक दल के बहुमत के चलते प्रस्ताव पारित हो जाता है। ऐसा भी होता है कि समान विचारों वाले सांसद किसी खास मुद्दे पर दबाव समूह के रूप में नीति निर्धारण को प्रभावित करते हैं।

10.3.2 विदेश मंत्रालय की भूमिका

नीति निर्धारण के लिए आवश्यक अंतर्राष्ट्रीय माहौल और विदेशी स्थिति के बारे में सूचनाएं एकत्रित करने में विदेश मंत्रालय की अहम भूमिका होती है। व्यवहार में निर्णय के अधिकार का इस्तेमाल राजनैतिक नेतृत्व करता है, मंत्रालय के अधिकारी नहीं। दूसरे विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग मंत्रालय जैसे मंत्रालय भी विदेश नीति को प्रभावित करने लगे हैं। बहुराष्ट्रीय गतिविधियां बढ़ने से निजी एवं अन्य गैर सरकारी क्षेत्रों में भी जापान की भागीदारी बढ़ती जा रही है।

10.3.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय की भूमिका

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित मामलों पर निर्णय का समस्त अधिकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय के पास होता है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक नीति के कार्यान्वयन में यह और विदेश मंत्रालय परस्पर सहयोग करते हैं। इस मंत्रालय के अधिकारों को संसद द्वारा कानूनी मान्यता प्राप्त है। इन अधिकारों का उपयोग आमतौर पर, सलाह देने और प्रेरित करने, अप्रत्यक्ष रूप से समझाने-बुझाने जैसे तरीकों के माध्यम से किया जाता है। कम बजट और मानव संसाधन के बावजूद अपनी उपलब्धियों के लिए इसकी प्रशंसा और आलोचना दोनों करते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों की कमी और विकसित औद्योगीकरण के चलते जापान का अस्तित्व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर निर्भर करता है। ऐतिहासिक रूप से एक व्यापारिक देश होने के नाते जापान के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय का महत्वपूर्ण होना स्वाभाविक है। इस मंत्रालय के अधिकारी विदेश मंत्रालय, विदेशों में स्थित दूतावासों, वित्त मंत्रालय एवं अन्य मंत्रालयों में भी स्थानांतरित किए जा सकते हैं।

10.3.4 राजनैतिक दलों की भूमिका

बहुमत के सिद्धांत के आधार पर शासक दल द्वारा लिए गए निर्णय ही जापान में नीति बन जाती है। लेकिन कई बार शासक दल के ही किसी घटक और विपक्षी दलों के मेल से स्थिति बदल जाती है।

सभी राजनैतिक दलों में विदेशी मामलों के विभाग हैं जो नीति से संबंधित शोध और अध्ययन करते हैं एवं योजना तैयार करता है। सामान्यतः सरकार और पार्टियों में अलग-अलग गुट (लॉबी) होते हैं। जो सरकारी नीति एवं घटकों को अपने हितों के अनुकूल मोड़ने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के तौर पर ज्यादातर राजनैतिक दलों में एक शक्तिशाली अमेरिकी लॉबी होती है। इसी तरह अलग-अलग समय पर चीनी लॉबी और कोरिया लॉबी सक्रिय थी।

राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष होने के नाते, विदेश नीति निर्माण की प्रक्रिया में प्रधानमंत्री का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। हाल के सालों में मंत्रालय के सचिवालय की अहमियत बढ़ने से विदेश नीति से संबंधित मसलों पर बैठकों में शरीक होने वाले एल डी पी के सदस्यों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। विदेश नीति के मसलों पर एल डी पी की संबद्ध समितियों (जैसे राजनैतिक मामलों की परिषद और अंतर्राष्ट्रीय मामलों का विभाग) में भी चर्चा होती है।

10.3.5 दबाव समूहों की भूमिका

प्रमुख आर्थिक संगठन, राष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों की नीतियों की ही तरह विदेश नीति के निर्माण की प्रक्रिया को भी प्रभावित करते हैं। व्यापारिक, औद्योगिक और वित्तीय हितों वाले समूह आमतौर पर विभिन्न मंत्रालयों से जुड़ी परामर्श देने वाली संस्थाओं के माध्यम से नीति निर्धारण को प्रभावित करने की दबाव समूहों की गतिविधियां तेज हो गई हैं। इन समूहों का प्रमुख सरोकार दबाव के जरिए सामूहिक हितों को आगे बढ़ाना है। द्वितीय विश्व युद्ध के पहले परिवार आधारित जाइबात्सू व्यापारिक घराना ही दबाव समूह के रूप में काम करता था। उसके बाद से राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावशाली दबाव समूह है : आर्थिक संगठनों का संघ, नियोक्ता संगठनों का संघ, आर्थिक विकास समिति, जापान चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री, और औद्योगिक नीति परिषद। सरकार विभिन्न आर्थिक और राष्ट्रीय हितों के बीच समन्वय स्थापित करने का काम करता है। इनके अलावा व्यापार संगठन, क्षेत्रीय आर्थिक संगठन एवं द्विपक्षीय मैत्री संगठन भी विदेश नीति निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

10.3.6 जनमत की भूमिका

संचार माध्यमों के विकास और 100% साक्षरता के चलते जापानी नागरिक समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों की जानकारी रखते हैं। इसके परिणामस्वरूप — एक सशक्त एवं सुस्पष्ट जनमत का उदय हुआ। विदेश नीति के मुद्दों — जापान-अमेरिका संबंध, संयुक्त राष्ट्र शांति सेना के लिए सैनिक भेजने का मसला, सेना व्यय में वृद्धि आदि मुद्दों पर जापानी जनमत व्यापक प्रदर्शन आयोजित कर सकती है। हस्ताक्षर अभियान जैसे अन्य जन अभियानों के माध्यम से विदेश नीति को प्रभावित कर सकती है। ऐसे नौकरशाहों की भी कमी नहीं है जिनके अनुसार, "विदेश नीति का निर्धारण राष्ट्रीय जनमत से नहीं किया जा सकता"।

10.3.7 बाहरी कारणों की भूमिका

बाहरी ताकतों में, अमेरिका अधिकतम दबाव डालकर जापान की विदेश नीति की दिशा तय कर सकता है। जापान की विदेश नीति के ज्यादातर आर्थिक मसले सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तरह के बाहरी कारणों से प्रभावित होते हैं। वियतनाम युद्ध और कोरिया युद्ध सकारात्मक कारण थे जबकि 'निक्सन शॉक' और 'आयल शॉक' नकारात्मक कारण थे। जापान अभी भी अमेरिकी संरक्षणवाद से निकलने में सफल नहीं हो सका है।

1970 के दशक तक जनता के सरोकार से विदेश नीति के अलग होने से, राष्ट्रीय हितों को, न्यूनतम बाहरी प्रभाव के साथ विदेश नीति में परिलक्षित किया जा सकता था। लेकिन 1980 के दशक में जापान के अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने के साथ, विदेश नीति में आंतरिक एवं बाहरी कारणों की भूमिका बढ़ गई।

बोध प्रश्न 2

नीचे दी गई जगह में प्रश्नों के उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर लें।

1. जापान की विदेश नीति के निर्माण को प्रभावित करने वाले विभागों, मंत्रालयों एवं एजेंसियों के नाम बताइए।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय की प्रमुख भूमिका क्या है?

   .....

.....

.....

.....

3. विदेश नीति निर्माण में प्रधानमंत्री का स्थान क्यों महत्वपूर्ण है?

.....

.....

.....

.....

10.4 जापान के रक्षा और सुरक्षा के सरोकार

10.4.1 रक्षा और सुरक्षा नीति

जापान की रक्षा नीति, दो प्रमुख सरकारी निर्णयों—राष्ट्रीय रक्षा की मूल नीतियां, 1957 और राष्ट्रीय रक्षा योजना की रूपरेखा, पर आधारित है।

राष्ट्रीय सुरक्षा नीति का उद्देश्य, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आक्रमण को रोकना और आक्रमण की स्थिति में दुश्मनों को वापस खदेड़ कर राष्ट्रीय स्वतंत्रता की रक्षा करना है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जापान ने निम्न चार सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है :

(क) संयुक्त राष्ट्र संघ की नीतियों एवं गतिविधियों के समर्थन और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के विकास में भागीदारी के जरिए विश्व-शांति की स्थापना करना,

(ख) जन कल्याण को स्थायित्व प्रदान करके और लोगों में जापानी राष्ट्र प्रेम की भावना भर कर जापान की सुरक्षा का मजबूत आधार तैयार करना,

(ग) राष्ट्र के संसाधन और देश की आंतरिक स्थिति को ध्यान में रख कर आत्मरक्षा के लिए आवश्यक रक्षा-क्षमता विकसित करना,

(घ) जब तक संयुक्त राष्ट्र संघ वाह्य आक्रमण को रोकने में सक्षम नहीं हो जाता, बाहरी आक्रमण का मुकाबला जापान-अमेरिका सुरक्षा समझौते के अनुसार करना।

राष्ट्रीय सुरक्षा की रूपरेखा में जापान के सुरक्षा बलों की किसी भी राष्ट्रीय उहा-पोह या वाह्य आक्रमण से निबटने की क्षमता सरोकार के केन्द्र में है।

जापान का संविधान, शांतिवाद एवं युद्ध का अधिकार त्यागने के सिद्धांत पर आधारित है। किन्तु इससे जापान का आत्मरक्षा का अधिकार नहीं समाप्त हो जाता। इसी तर्क पर जापानी शासन आवश्यक न्यूनतम सैन्य शक्ति को असंवैधानिक नहीं मानता। जापान का **आत्म रक्षा बल (एस. डी. एफ.)** उसकी न्यूनतम सैन्य शक्ति है।

जापान की नीति नाभिकीय शस्त्रों के रखने, निर्माण करने, या शुरू करने के विरुद्ध प्रतिबद्धता की है।

10.4.2 जापान की रक्षा शक्ति

जापान की थल, जल और वायु सेनाएं, आकार और क्षमता के संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। अधिकतम रक्षा बजट से तैयार जापान की सैन्य शक्ति की तकनीकी परिष्कार और दक्षता की तुलना दुनिया के श्रेष्ठ सैन्य शक्ति वाले किसी भी देश से की जा सकती है। अमेरिकी प्रभाव और प्रेरणा से जापान में पुनः शस्त्रीकरण की क्रमिक प्रक्रिया जारी है। इसके अलावा जापान में 45,000 अमेरिकी सैनिक तैनात रहते हैं। और वहां 119 अमेरिकी सैनिक हवाई अड्डे हैं। तथा अमेरिका का सातवां बेड़ा भी जापानी तट पर ही डेरा डाले है।

पांच क्षेत्रीय कमानों के तहत जापान की आत्मरक्षा की थल सेना जी. एस. डी. एफ. में 1,55,000 सैनिक एवं अधिकारी हैं तथा 43,000 की रिजर्व सेना है।

आत्म रक्षा की जल सेना (एम. एस. डी. एफ.) में 44,000 नौसैनिक हैं। एवं 600 रिजर्व नौसैनिक हैं। और नौसैनिक अड्डे योको सुका, कूरे, सासबो, माइजरु और ओमिनाटो में हैं।

आत्म रक्षा की वायुसेना में 46,000 लोग हैं।

10.4.3 संवैधानिक सीमाएँ

जैसा कि आप पिछली इकाइयों में पढ़ चुके हैं जापान के संविधान के अनुच्छेद-9 में राष्ट्र के संप्रभु अधिकार के रूप में युद्ध का परित्याग, अंतर्राष्ट्रीय विवाद के निबटारे के लिए युद्ध या युद्ध की धमकी का प्रयोग न करने और विश्व शांति की स्थापना के प्रति प्रतिबद्धता का उल्लेख है। राज्य का युद्ध का अधिकार संवैधानिक रूप से निषिद्ध है। लेकिन आत्म रक्षा के तर्क पर सैन्य शक्ति के गठन पर संवैधानिक रोक नहीं है।

प्राकृतिक विपदाओं में राहत कार्यों से जापान का आत्म रक्षा बल काफी प्रतिष्ठा अर्जित कर चुका है। कुछ राजनैतिक हलकों में अनुच्छेद-9 के संशोधन पर बहस चल रही है।

10.4.4 रक्षा बजट

आपानी गणना के अनुसार, रक्षा बजट हमेशा ही कुल राष्ट्रीय आय के 1% से थोड़ा सा कम होता है। वैसे यह आंकड़ा रक्षा बजट की सही तस्वीर नहीं पेश करता। आत्म रक्षा बल (एस. डी. एफ.) के पेंशन और सैन्य विषयक शोध मिला कर, रक्षा बजट कुल राष्ट्रीय व्यय के 63% तक पहुंच जाती है। एक अत्यधिक सम्पन्न देश, जो युद्ध निषेध की घोषणा करता हो, इसके लिए यह रक्षा बजट कम नहीं है।

10.4.5 राष्ट्रीय सुरक्षा का महत्व

किसी खास समय पर अंतर्राष्ट्रीय माहौल के अनुसार, जापान की सुरक्षा के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आक्रमण के विविध रूपों की कल्पना की जा सकती है। दुनिया का महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र होने के नाते इसकी सुरक्षा और भी महत्वपूर्ण है। इसके लिए जापान की नीति संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति प्रयासों में सहयोग, दुनिया के आर्थिक और राजनैतिक विकास की दिशा में योगदान और निःशस्त्रीकरण की है। इसके साथ ही आक्रमण से निबटने में सक्षम जापान की अपनी सेना है तथा अमेरिका-जापान सुरक्षा संधि इसकी अतिरिक्त गारंटी है।

10.4.6 क्षेत्रीय और विश्व सुरक्षा

आर्थिक और सैन्य शक्ति के रूप में अमेरिका की घटती प्रतिष्ठा और सोवियत संघ के बिखराव के चलते बहुत से एशियाई देश क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए जापान की तरफ देखने लगे हैं। दक्षिण-पूर्व और पूर्व एशिया के देश, जापान से क्षेत्रीय सुरक्षा में अग्रणी भूमिका की अपेक्षा तो करते हैं लेकिन वे इसके नाभिकीय शक्ति बनने के पक्षधर नहीं हैं।

इसकी सुरक्षा भूमिका निम्न दो शर्तों पर ही मान्य हो सकती है:

1. यह अमेरिका-जापान सुरक्षा संधि की सीमा में हो, और
2. संबद्ध सैन्य तैयारी क्षेत्र के मित्र राष्ट्रों के साथ नियमित विचार-विमर्श के बाद हो।

जापान अभी तक अपनी क्षेत्रीय सुरक्षा भूमिका के प्रति स्पष्ट नहीं है। विश्व स्तर पर यह आर्थिक सहयोग और संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों के समर्थन के जरिए विश्व शांति और स्थायित्व का समर्थक है।

बोध प्रश्न 3

नीचे दी गई जगह में प्रश्नों के उत्तर लिखें और उन्हें इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से मिला लें।

1. जापान की रक्षा नीति के प्रमुख स्रोत क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

2. जापान की राष्ट्रीय सुरक्षा के तत्कालीन उद्देश्य क्या हैं?

.....

.....

.....

3. बाहरी आक्रमण से निपटने की जापानी नीति क्या है?

.....

.....

.....

4. जापान की आत्म-रक्षा बल की कौन-कौन तीन शाखाएं हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 जापान के विदेश संबंध

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आर्थिक विकास ने इसके विदेश संबंधों का ढांचा तैयार किया। इसके विदेश संबंध, विश्व बाजार के साथ राष्ट्रीय अर्थतंत्र के तालमेल की समस्याओं पर निर्भर करते हैं। युद्ध के बाद जापानी नेतृत्व को लगा कि आर्थिक आधार पर ही राजनैतिक ताकत बना जा सकता है। इसलिए जापान की आर्थिक विदेश नीति को अन्य देशों के साथ आर्थिक संबंधों और विदेश संबंध का पर्याय माना जाने लगा है।

विस्तारवादी महत्वाकांक्षा और सैन्य शक्ति के बिना ही जापान, विशिष्ट आर्थिक शक्ति के रूप में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य के एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। 1950 से 1973 के तेल संकट के समय तक इसके विकास की गति अभूतपूर्व थी। 1973 के बाद भी विकास की रफ्तार अन्य विकसित औद्योगिक देशों की तुलना में बेहतर रही है। यह संसाधनों की कमी और औद्योगिकरण की तेज रफ्तार के साथ अस्तित्व की निरंतरता की अनिवार्य शर्त है।

10.5.1 भारत और जापान

भारत के साथ संबंध कभी भी जापान की वरीयता की सूची में नहीं था। जापान पश्चिमी खेमे के साथ है और भारत गुटनिरपेक्ष आंदोलन का सदस्य है। भारत सोवियत संघ का मित्र समझा जाता था और जापानी विदेश नीति अमेरिकी हितों और अमेरिका के साथ संबंधों की अवहेलना नहीं कर सकता था। भारत-जापान संबंध आर्थिक मामलों तक ही सीमित थे। बदली परिस्थितियों में भारत के साथ संबंधों में विकास की संभावनाएं बढ़ी है।

भारत की उदारीकरण की नीति से यहां जापानी निवेश की संभावनाएं बढ़ी हैं। 'एक भारत-जापान औद्योगिक कस्बा' स्थापित करने की बात चर्चा में है। भारत-जापान औद्योगिक सहयोग के कुछ महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान निम्नलिखित हैं :

मोटर वाहन : मारुति सुजुकी, हीरो होन्डा, डीसीएम-टोयाटो, आइचर-मित्सुबिशी, टीवीएस-सुजुकी एवं एक्सेर्ट-यामहा।

इलेक्ट्रानिक्स : वीडियोकॉन—मत्सुशिता, वेस्टन—हितात्री, ओनिडा जे वी सी और सनयानी—डर्मा।

भारत का प्रयास है कि जापान अपने व्यापारिक लाभांश में से भारत के विकास में मदद करे और औद्योगिक सहयोग के अलावा यहां नये उद्योग भी लगाए।

भारत जापान को लोहे का अयस्क, इंजीनियरिंग के कुछ सामान, कृषि सामग्री, कपड़ा, चमड़ा और चमड़े का सामान,

जवाहारात और आभूषण निर्यात करता है। वहां से यह सिंथेटिक सामग्री, उपकरण एवं मशीनरी आयात करता है। तमाम विभिन्नताओं के बावजूद व्यापार, जहाजरानी, विज्ञान और तकनीक के क्षेत्रों में दोनों देशों के दृष्टिकोणों में समानता दिखती है।

10.5.2 जापान, उत्तरी अमेरिका और यूरोपीय समुदाय

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही जापान के अमेरिका और पश्चिमी देशों के साथ घनिष्ठ आर्थिक-राजनैतिक संबंध रहा है। लेकिन हाल के वर्षों में जापान की आर्थिक शक्ति बढ़ने के साथ संबंधों के संतुलन में थोड़ा-सा तनाव आया दिखता है। अमेरिका जापान को आधारभूत जरूरत की चीजें निर्यात करता है। जबकि जापान अमेरिका की बाजार में निर्मित माल की आपूर्ति करता है। जापान-अमेरिका सुरक्षा समझौते के विरोधियों का मानना है कि जापान को अपनी आर्थिक क्षमताओं के अनुरूप सैन्य शक्ति बन जाना चाहिए जिससे वह अमेरिकी प्रभाव से मुक्त विदेश नीति का निर्माण कर सके। लेकिन जापानी शासन इन संबंधों को तोड़ने की बजाय मजबूत बनाने की कोशिश करता है। 1983 में अमेरिका के साथ रक्षा तकनीक पर द्विपक्षीय समझौते के तहत जापान संयुक्त राष्ट्र संघ के (स्ट्रेटजिक आर्म्स इनिशिएटिव (एस. डी. आई.) का सदस्य है।

जापानी उत्पादन और कनाडा के प्राकृतिक संसाधनों में अच्छे संतुलित तालमेल के चलते कनाडा के साथ जापान के संबंध बहुत अच्छे हैं। औद्योगिक रूप से विकसित पश्चिमी यूरोप और जापान दोनों में ही संसाधनों का अभाव है। यूरोपीय समुदाय जापानी उत्पादकों के लिए एक बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध कराता है। और जापान वहां से महत्वपूर्ण आधार सामग्री आयात करता है।

10.5.3 जापान और औद्योगिक देश

कोरिया और ताइवान दोनों जापान के उपनिवेश थे और इनके साथ जापान के संबंधों पर औपनिवेशिक छाप दिखाई पड़ती है। ये संबंध आर्थिक की बजाय सामरिक और भू-राजनैतिक स्थितियों से निर्धारित होते हैं। जापान कोरिया के एकीकरण का पक्षधर नहीं है और न ही उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया के बीच का तनाव का, जो जापान की सुरक्षा के लिए खतरे पैदा कर सकता है। हाल के वर्षों में दक्षिण कोरिया के साथ संबंधों में सुधार हुआ है। 1983 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नकासो याशुहिए की कोरिया यात्रा के बाद जापान कोरिया को 4 अरब डालर की सहायता के लिए राजी हुआ है। जापान और ताइवान के बीच चीन की नीति के चलते राजनयिक संबंध तो नहीं है लेकिन उनके बीच आर्थिक सहयोग को महत्वपूर्ण माना जा रहा है।

10.5.4 जापान, पूर्व सोवियत संघ और चीन

शीत युद्ध के दौरान पूर्व सोवियत संघ के साथ जापान के संबंध तनावपूर्ण थे और सोवियत संघ के आक्रमण की आशंका से आत्मरक्षा के सरोकार के चलते उसने क्षेत्रीय सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना शुरू किया। गोर्बाचोव के शासन काल में संबंधों को सुधारने की दिशा में महत्वपूर्ण राजनयिक शुरुआतें हुईं। लेकिन सोवियत संघ के शांति प्रयासों के प्रति जापान सशंकित ही रहा। विवादित क्षेत्रों की वापसी की मांग के चलते शांति स्थापित करने के सोवियत प्रयासों को विशेष सफलता नहीं मिल पायी। सोवियत संघ के विघटन से विवादित क्षेत्रों की जापान को वापस करने का मुद्दा और भी जटिल हो गया है।

जापान-चीन संबंधों में मौजूदा स्थिरता, आर्थिक कारणों और भू-राजनैतिक पहलू पर जापान के दूरगामी समझ का परिणाम है। जापान चीन के साथ सहयोग के मामले में सावधानीपूर्ण रवैया अपनाता है। जापान नहीं चाहता कि अमेरिकी नौसेना के विकास में मदद करे क्योंकि इसे वह अपनी सुरक्षा के लिए खतरनाक मानता है। चीन जापान की बढ़ती सैन्य शक्ति पर चिंता व्यक्त करता है। जापान चीन के आधुनिकीकरण में सहायता करके लाभ तो कमाना चाहता है लेकिन उसे विकसित औद्योगिक देश के रूप में नहीं देखना चाहता।

10.5.5 जापान और विकासशील देश

जापान आशिअन (एसोसिएशन ऑफ साउथ ईस्ट एशियन नेशन्स—उत्तर पूर्वी एशियाई देशों की परिषद) की संरचनात्मक विसंगतियों से परेशानी महसूस करता है। और आशिअन के सदस्य देश जापान द्वारा क्षेत्र के कच्चे माल के दोहन और जापानी कंपनियों के पूंजीनिवेश के चलते अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं पर बढ़ते जापानी पूंजी के वर्चस्व को लेकर चिंतित हैं। हाल में जापान ने प्रदूषण फैलाने वाले अपने उद्योग क्षेत्र को अन्य देशों में स्थानांतरित करना शुरू किया है।

तेल के लिए जापान पूरी तरह खाड़ी देशों पर निर्भर है। तेल की आपूर्ति दो देखते हुए पहले तेल संकट के समय से ही जापान अरब-समर्थन की नीति अपनाए हुए है। ईरान और इराक दोनों के साथ जापान के संबंध मैत्रीपूर्ण हैं। इसलिए वह ईरान-इराक विवाद हल करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की स्थिति में है। जापान अपनी तेल की खपत का दो-तिहाई फारस की खाड़ी के रास्ते मध्यपूर्व एशिया से आयातित करता है।

जापान अफ्रीका के उन देशों को आर्थिक और तकनीकी सहायता देने के मामले में वरीयता देता है जिनके पास निर्यात योग्य संसाधन हैं। जापान ने संसाधन संपन्न दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद के मुद्दे पर कोई स्पष्ट रुख नहीं अपनाया।

लैटिन अमेरिकी राजनीति की अस्थिरता के बावजूद वहां के देशों के साथ जापानी संबंध सौहार्दपूर्ण एवं सहयोग के हैं।

बोध प्रश्न 4

नीचे दी गई जगह में प्रश्नों के उत्तर लिखें और उन्हें इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से मिला लें।

1. जापान-अमेरिका संबंधों की मौजूदा समस्या क्या है?

.....

.....

.....

.....

2. चीन में जापान की क्या रुचि है?

.....

.....

.....

.....

3. मध्यपूर्व में जापान का कौन-सा हित दांव पर है?

.....

.....

.....

.....

10.6 जापान और संयुक्त राष्ट्र संघ

संयुक्त राष्ट्र संघ में जापान को 1956 में प्रवेश मिला। तभी से जापान इसकी हर क्षेत्र की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी करता है। जैसे-जैसे इन गतिविधियों का प्रभाव क्षेत्र बढ़ने लगा और विशेषज्ञ संगठनों का विस्तार होने लगा, जापान के योगदान में भी वृद्धि हुई।

जापान की संयुक्त राष्ट्र संघ के नियमित बजट और शांति स्थापना के प्रयासों के व्यय में जापानी योगदान में पर्याप्त वृद्धि हुई।

जापान संयुक्त राष्ट्र के निम्न संगठनों में भी अपनी सक्रियता और आर्थिक योगदान बढ़ा है : विकास और व्यापार पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (अंकटाड), संयुक्त राष्ट्र विकास योजना (यू.एन.डी.पी.), संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (यूनिडो), संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनीसेफ), शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्चायोग (यू एन एच सी आर), विश्व स्वस्थ संगठन (डब्ल्यू एच ओ), खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ ए ओ), अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा संगठन (आई एम एफ)।

आर्थिक शक्ति होने के नाते निकट भविष्य में जापान को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद का स्थाई सदस्य बनाने की संभावनाओं की भी चर्चा है।

10.7 अंतर्राष्ट्रीय विनिमय और सहयोग

आर्थिक विकास के साथ अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जापान के योगदान में भी वृद्धि हुई है। सरकारी विकास सहायता (ओ.डी.ए.) की मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है। दुनिया के सभी देशों की कुल राष्ट्रीय आय में जापान का योगदान 10% है जिससे

..ान विश्व परिषद का प्रमुख हस्ती बन गया है। अमेरिका की आर्थिक शक्ति में अपेक्षाकृत कमी, कुल राष्ट्रीय आय को देखते हुए न्यूनतम रक्षा बजट 1985 के बाद से येन के मूल्य में अभूतपूर्व वृद्धि आदि कारणों से जापान विकासशील देशों के लिए पूंजी, तकनीक और विदेशी सहायता की आशा का केन्द्र बन गया है। जापानी राजनय अपनी जड़ें मजबूत करके अपनी गतिविधियों को विस्तार दे रहा है। निम्न अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियों में जापान का योगदान उल्लेखनीय है :

(क) शांति के लिए सहयोग

(ख) सरकारी विकास सहायता का विस्तार

(ग) सांस्कृतिक आदान-प्रदान का विकास

शांति के लिए सहयोग की अवधारणा के अंतर्गत जापान अंतर्राष्ट्रीय विवादों को हल करने की दिशा में सक्रिय हस्तक्षेप करता है।

इस प्रयास में वह विवाद से संबंधित देशों के साथ और ऐसे देशों के साथ जो विवाद को हल करने में सार्थक भूमिका निभाने की स्थिति में हों, राजनयिक वार्ताओं का आयोजन करता है। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी के जरिए सहयोग करता है। अंतर्राष्ट्रीय शांति स्थापना की गतिविधियों में अपने अधिकारी एवं प्रतिनिधि भेजता है, शरणार्थियों की मदद करता है, और पुनर्निर्माण में सहायता करता है।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना के पीछे जापान के निम्न उद्देश्य हैं :

(क) सहायता पाने वाले देश के निवासियों के जीवन स्तर में सुधार,

(ख) उन देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना,

(ग) विकासशील देशों की आर्थिक प्रगति में सहयोग के जरिए विश्व अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान, और

(घ) अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की शांति और स्थायित्व बनाए रखने में योगदान।

1987 में जापान ने 7.5 अरब डालर विदेशी सहायता के रूप में दिया था। 1988 में यह राशि 9.13 अरब डालर और 1989 में 8.9 अरब डालर थी। 1992 से अगले पांच सालों में जापान का लक्ष्य 50 अरब डालर विदेशी सहायता का है। ओ.डी.ए. (सरकारी विकास सहायता) जापान की कुल बजट के संदर्भ में बहुत थोड़ी लगती है। यद्यपि जापान सबसे बड़े दाताओं में से है। फिर भी निर्णय के कार्यान्वयन की व्यवस्था पश्चिमी यूरोपीय देशों जैसे विकसित नहीं है।

विवाद में मध्यस्थता की नीति से युद्धोपरांत की अंतर्राष्ट्रीय मामलों में तटस्थता और निष्क्रियता का क्रम टूटा। अब भी जापान की विदेश नीति विशेष सक्रिय नहीं है।

बाहर के लोग, जापान के आर्थिक विकास की रफ्तार के चलते, उसे समझने में कठिनाई महसूस करते हैं। लेकिन सांस्कृतिक विनिमय की नीति के तहत शायद जापान विदेशों में विकास के अपने मंत्र को स्पष्ट कर सके।

बोध प्रश्न 5

नीचे दी गई जगह में प्रश्नों के उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों में उन्हें मिला लें।

1. जापान संयुक्त राष्ट्र संघ में कब भरती हुआ ?

.....

.....

.....

.....

2. ओ.डी.ए. सरकारी विकास सहायता क्या है ?

.....

.....

.....

.....

3. जापान का अंतर्राष्ट्रीय योगदान किन-किन रूपों में है ?

.....

.....

.....

.....

4. 1992-96 के दौरान जापान की कितनी विदेशी सहायता प्रदान करने की योजना है ?

.....

.....

.....

.....

10.8 सारांश

एक पराजित देश के लिए स्वतंत्र विदेश नीति बना पाना बहुत मुश्किल काम है। इसीलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की जापान की विदेश नीति पर अमेरिकी प्रभाव की छाप स्पष्ट दिखती है। इन सीमाओं के बावजूद जापान की विदेश नीति उत्तर-दक्षिण के गरीब और अमीर देशों में बंटी दुनिया में एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने में सफल रही है। जापान विदेश नीति के निर्धारण में भू-आर्थिक कारणों को अत्यधिक महत्व देता है। जापान आज दुनिया का अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति बन चुका है। बाजार के अपने अंतर्राष्ट्रीय स्रोतों को विस्तार देने के साथ जापान ने उन्हें जापानी माल, सेवाओं, तकनीक और पूंजी पर निर्भर बना दिया है।

भारत के साथ पूर्वी एशिया के अन्य देशों की भांति जापान के साथ भी सभ्यतागत ऐतिहासिक संबंध रहे हैं। आधुनिक काल में एक आधुनिक राज्य के रूप में इसके उदय और 1904-1905 में रूस पर इसकी विजय ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में प्रेरणा का काम किया। जापान ने भारतीय क्रांतिकारियों को शरण, प्रोत्साहन और आर्थिक सहायता भी दी थी। हाल के सालों में दोनों देशों के संबंधों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

10.9 शब्दावली

भू-अर्थशास्त्र : भौगोलिक स्थिति पर निर्भर अर्थतंत्र।
एम. आई. टी. आई. : अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय।
एस. डी. एफ. : आत्म सुरक्षा बल।

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. ड्रिफ्टे, राइनहार्ड, *जापांस फॉरेन पालिसी*, लंदन, 1990
2. नेस्टर, विलियन आर, *जापान एंड थर्ड वर्ल्ड*, लंदन, 1992

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. (क) भू-राजनीति
   (ख) राष्ट्रीय सुरक्षा
   (ग) संसाधन संपन्नता और कमजोरी

2. (क) जापान ने पाश्चात्य तकनीकी ज्ञान को सफलतापूर्वक चुनौती दी।

   (ख) दुनिया का सबसे बड़ा कर्जदाता बनकर जापान ने यूरोपीय/अमेरिका आर्थिक वर्चस्व समाप्त कर दिया।

3. विश्व शांति और स्थायित्व की स्थापना और संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की समन्वित प्रगति में योगदान करना।

4. (क) आर्थिक और व्यावसायिक
   (ख) नए कच्चे माल की प्राप्ति
   (ग) लाभप्रद व्यापार के रास्ते में रोड़ों को हटाना
   (घ) बाह्य आक्रमण से जापान की रक्षा
   (ङ) अन्य देशों से अच्छे संबंध बनाए रखना
   (च) जापान की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता हासिल करना।

बोध प्रश्न 2

1. संसद, विदेश मंत्रालय, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय, राजनैतिक फण्ड, दबाव समूह आदि।
2. देखें 10.3.3 3. देखें 10.3.4

बोध प्रश्न 3

1. (क) संसद
   (ख) विदेश मंत्रालय
   (ग) बड़े व्यापारिक घराने
   (घ) जनमत

2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और उद्योग मंत्रालय यह अपने अधिकार संवैधानिक रूप से संसद से प्राप्त करता है और उनका प्रत्यक्ष उपयोग करता है।

3. सरकार की कार्यपालिका के प्रमुख और शासक दल के अध्यक्ष होने के नाते।

बोध प्रश्न 4

1. द्विपक्षीय व्यापार में जापान अमेरिका पर भारी पड़ने लगा है, समस्या की जड़ यही है।

2. जापान चीन के आधुनिकीकरण को समर्थन देकर उससे लाभ कमाना चाहता है।

3. यह अपनी खपत का दो-तिहाई तेल महत्वपूर्ण एशिया से आयातित करता है। तेल आपूर्ति इसकी अर्थव्यवस्था के लिए अनिवार्य है।

बोध प्रश्न 5

1. 1956 में

2. विदेश विकास सहायता

3. (क) ओ डी ए का विस्तार
   (ख) शांति के लिए सहयोग
   (ग) सांस्कृतिक आदान-प्रदान का उत्थान

4. 50 अरब डालर

इकाई 11 आधुनिक कोरिया का विकास

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कोरिया की पाक-आधुनिक सभ्यता
- 11.2.1 शासन का रूप
- 11.2.2 कोरिया का सामाजिक-राजनीतिक पतन

11.3 कोरिया में आधुनिकता की खोज का आरम्भ

11.4 राजतंत्र का बिखराव
- 11.4.1 पश्चिमी हस्तक्षेप
- 11.4.2 कांघवा की संधि
- 11.4.3 तोंघक का विद्रोह
- 11.4.4 जापान द्वारा कोरिया का विलय

11.5 कोरिया में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विकास
- 11.5.1 प्रगतिशील दलों का सुधार आन्दोलन
- 11.5.2 स्वतंत्रता क्लब का प्रबोधन आन्दोलन
- 11.5.3 आधुनिक आर्थिक ढांचे का विकास
- 11.5.4 आधुनिक शिक्षा का विकास
- 11.5.5 स्वतंत्रता आंदोलन के बीच सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

यह इकाई आधुनिक कोरिया के विकास का वर्णन करती है। इसमें कोरिया के इतिहास, भूगोल, सभ्यता तथा एक प्राचीन प्रदेश के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की चर्चा की गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न बातों को समझ सकेंगे :

- कोरिया की भौगोलिक स्थिति तथा भूराजनीतिक महत्व
- कोरिया का ऐतिहासिक विकास
- कोरियाई प्रायद्वीप के आधुनिकीकरण के सुधार आन्दोलन
- जापानी ओपनिवेशवादी शोषण की गहनता
- विदेशी शासन के खिलाफ कोरियावासियों का स्वतंत्रता संघर्ष।

11.1 प्रस्तावना

कोरियाई प्रायद्वीप पूर्व एशिया में सामरिक दृष्टि से स्थित है। रूस चीन तथा जापान इसके पड़ोसी हैं। यद्यपि समुद्र, नदियाँ तथा पहाड़ इन्हें प्रायद्वीपीय क्षेत्र से अलग करते हैं फिर भी ये सभी एक शत्रु कोरिया को खतरनाक समझते हैं। इसी कारण से अति प्राचीन समय से ये राष्ट्र (शक्तियां) कोरिया के मामलों में हस्तक्षेप करने का प्रयास करते रहे हैं। अमरीका जो कि बहुत दूर का देश है वह भी द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त (1945) तक सामरिक कारणों से कोरिया के मामले में शामिल हो गया।

कोरिया एक प्राचीन प्रदेश है। सभ्यता के आरम्भ में कोरिया भी दूसरे प्राचीन देशों की तरह कई स्वतंत्र राज्यों में विभाजित था। कालक्रम में यह देश एक राजनीतिक सत्ता के अधीन एकीकृत हो

गया। राजनीतिक फूट एक समरूप संस्कृति भाषा तथा सभ्यता के विकास में बाधा नहीं बन सकी। संभवतः इसका कारण यह है कि कोरिया के लोग एक ही जाति-भाषा समूह के हैं। कोरिया-वासियों ने अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का विकास किया। परन्तु अपने पड़ोसी चीन तथा जापान से सीखने में वे नहीं हिचके। चीन तथा जापान की संस्कृति तथा सभ्यता के सर्वोत्तम तत्वों को कोरिया ने अपनी स्थिति के अनुरूप ढाल लिया, 20वीं सदी के प्रथम दशक तक कोरिया एक स्वतंत्र राष्ट्र था। इस समय जापान ने कोरिया को अपना उपनिवेश बना लिया। द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की हार के पश्चात जापानी शासन का अन्त हुआ। परन्तु इस देश पर अमरीका तथा रूस का कब्जा हो गया। इस कब्जे की परिणति इस प्राचीन राष्ट्र के दक्षिणी क... या तथा उत्तरी कोरिया नामक दो स्वतंत्र राष्ट्रों में विभाजन में हुई।

प्रायद्वीप का दक्षिणी हिस्सा जिसे कोरियाई गणतंत्र के रूप में भी जाना जाता है, दक्षिणी कोरिया के कब्जे में है। कोरियाई गणतंत्र के उत्तर में उत्तरी कोरिया है। इसके दक्षिण में पूर्वी चीन का समुंद्र तथा पूर्व में जापान का समुंद्र तथा कोरियाई गणतंत्र के पश्चिम में पीला समुंद्र है। कोरियाई गणतंत्र के पास 99,091 वर्ग किलोमीटर भूमि है। यहां 1991 के आंकड़ों के अनुसार 43 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं। राज्य की भाषा कोरियन है। बौद्ध तथा ईसाई दो प्रमुख धर्म हैं। इसके अतिरिक्त दाओबाद कन्फ्यूशसवाद आदि गौण धर्म हैं।

उत्तरी कोरिया जिसे कोरिया का प्रजातांत्रिक जनवादी गणतंत्र नाम दिया गया है, का निर्माण प्रायद्वीप के उत्तरी भाग से हुआ है। डी.पी.आर.के. के उत्तर में चीन का जनवादी गणराज्य है। इसके पास 122,400 वर्ग किलोमीटर भूमि है। 1990 के आकलन के अनुसार इसकी जनसंख्या 20 करोड़ है। डी.पी.आर.के. की भाषा कोरियन है। आर.ओ.के. की तरह ही यहां भी बौद्ध तथा ईसाई धर्म प्रधान धर्म हैं।

11.2 कोरिया की पाक-आधुनिक सभ्यता

एशिया महादेश उत्तरी-पूर्वी छोर पर बसे कोरिया प्रायद्वीप को प्रकृति ने मनमोहक सुन्दरता दी है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के आस-पास चोसोन नामक एक भव्य सभ्यता का उत्थान हुआ। चोसोन का शाब्दिक अर्थ सुबह की ताजगी होता है। आठवीं सदी के आसपास यह सभ्यता अपनी सम्पन्नता के उत्कर्ष की ओर पहुँच गयी। उस समय तक सम्पूर्ण राष्ट्र एक राज्य बन गया था, जिस पर सीला वंश का शासन था। सीला वंश के शासन काल में कोरिया की बहुत दिनों तक टिकने वाली संस्कृति की बुनियाद रखी गई। कला, साहित्य, विज्ञान भवन-निर्माण आदि के क्षेत्र में भी असाधारण उपलब्धि हुई। बौद्ध मत, कनफ्यूसस का आचार-शास्त्र तथा चीन की तकनीक को कोरिया की, जन्मजात संस्कृति में शामिल कर लिया गया, जिसने कोरियन सभ्यता को समृद्ध बनाया। बाद में कोरिया तथा यी वंशों के शासन में चल छपाई, टंकन तथा संस्कृत ध्वनिविज्ञान पर आधारित लेखन पद्धति की खोज हुई। इन सारी उपलब्धियों ने कोरियाई राज्य को शिक्षित मद, लोगों का देश बना दिया जैसा कि चीन के टांग वंश के ताय त्सुंग ने कहा था। कोरियन समाज पर भारतीय तथा चीनी प्रभाव ने इसकी सभ्यता को मानवतावादी स्पर्श दिया। इसकी अभिव्यक्ति कोरिया के सबसे प्रबुद्ध शासक सेजोंग के काल में कनफ्यूसस के मानववाद के रूप में हुई। पूरे देश में एकान्त तथा स्वच्छ परिवेश में बिखरे बौद्ध स्तूपों तथा मन्दिरों के कारण कोरिया को साधुओं का राज्य भी कहा जाता था। पूर्व के अगुआ सभ्यता के रूप में यह आधुनिक यूरोपीय सभ्यताओं के एशिया पहुँचने से पहले बिकसित हुआ था। इन आरम्भिक दिनों में जब भी किसी पहले ब्रिटिश ने यहां कदम रखा था, तब कोरिया एक शक्तिशाली, व्यवस्थित तथा सभ्य राज्य था। यह एक सत्य है कि जापान ने भी कुछ कलात्मक तथा भाषायी दक्षता कोरिया से सीखी थी।

परन्तु बढ़ती हुई सम्पन्नता ने यहां के शासकों को लापरवाह तथा आत्मसंतुष्ट बना दिया। कोरिया का कुलीन वर्ग घमंडी हो गया तथा कई गुटों में बंट कर सत्ता के लोभ तथा धन के लिए एक दूसरे से लड़ने लगा। परिणामतः सामान्य जनों के हित की अनदेखी होने लगी और वे गरीब तथा उत्पीड़ित हो गया। पड़ोसी शक्तियों तथा बर्बर जातियों द्वारा विदेशी आक्रमण का एक सिलसिला आरम्भ हआ। जिसने बारबार देश को बरबाद किया।

11.2.1 सरकार का रूप

यीं वंश के शासन में एक वंशानुगत राजा राज्यों की एक सलाहकार परिषद् की सहायता से शासन करता था। इस परिषद् में राज्य के मुख्यमंत्री तथा कुछ अन्य मंत्री होते थे। कार्यपालिका का कार्य

छः मंत्रियों या कार्मिकों की समितियों द्वारा किया जाता था। यह भी राजस्व संस्कार, युद्ध न्याय तथा जन कार्य समितियाँ सरकार के तीन अन्य अंग थे नियंत्रक समिति, निरीक्षकों की समिति तथा यही व्याख्यान की समिति। इनकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी। प्रशासनिक कार्यों को करने के लिए एक याही सचिवालय भी था। देश आठ राज्यों में बंटा हुआ था। इन राज्यों का शासन वार्षिक रूप से केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपालों द्वारा होता था, प्रत्येक राज्य तथा जिलों को प्रशासनिक इकाइयों में बांटा गया था। एक राष्ट्रीय असैनिक सेवा परीक्षा द्वारा सरकारी अधिकारियों की नियुक्तियां होती थीं। उच्च सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए परीक्षा में "योगवान" वर्ग के लोग ही शामिल हो सकते थे।

सिद्धांत रूप में शासन की सारी शक्तियाँ राजा के पास थीं परन्तु हकीकत में ये शक्तियाँ सामन्त कुलीन वर्ग के लोग प्रयोग करते थे। सारे सरकारी पद इन लोगों के पास थे। कुलीन वर्ग के ये अधिकारी बहुत ही लालची तथा क्रूर थे। अक्सर ये लोग सामान्य जनता को सताने तथा शासन करने में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते थे। इसी प्रकार जबकि कनफ्यूसस का नीति-शास्त्र राजाओं से परोपकारी होने की अपेक्षा रखता था वहां अधिकांश राजा सामन्तों के हाथ में खेलते थे तथा अत्याचारी की तरह काम करते थे। इस तरह "यी" वंश के शासन में कोरिया का राजतन्त्र कुलीन तंत्र में बदल गया। इस के बावजूद "सेजोंग" जैसे कुछ राजा प्रबुद्ध तथा सद्भावपूर्ण भी थे। इन राजाओं ने जन कल्याण के लिए कार्य किये।

11.2.2 कोरिया का सामाजिक-राजनीतिक पतन

प्रशासकों की शिथिलता का फायदा उठाकर सामन्त तथा अभिजात वर्ग अपनी निजी सम्पत्ति तथा शक्ति का विस्तार करने लगे। ये निजी सम्पत्ति राज्य के भीतर स्वतंत्र राज्य की तरह हो गयी। "यी" वंश ने इस अभिजात वर्ग के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जिसने पूरे देश की संरचना को प्रभावित किया।

सर्वप्रथम उन्होंने नव कनफ्युससवाद (जो कि कनफ्युसस के शिष्य चू हसी ने शुरू किया था) को अपनाया, जिसने शासकों तथा शासितों के बीच श्रेणीबद्ध सम्बन्ध पर जोर दिया। इससे कोरिया का समाज मजबूती से श्रेणीबद्ध हो गया तथा चार वर्गों में बंट गया। ये चार वर्ग थे—अभिजात्य, मध्यम, सामान्य लोग तथा निम्न वर्ग। उच्चतम स्तर पर अभिजात्य वर्ग था जिसे "योगवान" भी कहते थे। इन लोगों ने समाज के राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन पर शासन किया तथा सामान्य जनता तथा निम्न लोगों के साथ गुलामों की तरह व्यवहार किया। सामान्य लोगों पर राज्य का बोझ था। ये लोग राज्य को खाद्य सामग्री, मजदूर तथा सेना उपलब्ध कराते थे। इसके अतिरिक्त यह कर भी देते थे। यही वर्ग सामान्य जनता का शोषण भी करता था। इनमें सबसे ज्यादा सताये तथा गरीब लोग थे, भूमिहीन किसान। इन लोगों को केवल रैयत की तरह जमीन जोतनी पड़ती थी। इन्हें जमींदारों को ऊंचा लगान तथा सरकार को कर देना पड़ता था। दूसरे "यी" शासकों ने स्थानीय कुलीन वर्ग की नजर में अपना सम्मान बढ़ाने के लिए (साथ ही बाह्य आक्रमण से अपनी रक्षा का दायित्व सौंपने के लिए चीन की सर्वोच्च सत्ता से कूटनीतिक मदद मांगी। इसके लिए इन्हें कोरिया पर चीन के आधिपत्य को स्वीकार करना पड़ा। यह कनफ्यूसस की "साडे" (बड़े या महान की आज्ञाकारिता) की अवधारणा पर आधारित थी। परन्तु इससे कोरिया की संप्रभु स्थिति कमजोर हुई तथा कोरिया में बाहरी हस्तक्षेप का रास्ता खुल गया। तीसरे कनफ्यूससवान उन लोगों को घृणा की दृष्टि से देखता था जो व्यापार कार्य में लगे थे। इस तरह 19वीं सदी के मध्य तक आर्थिक तथा औद्योगिक विकास को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। चौथे शासकों ने करीब तीन सौ वर्षो तक चीन के अतिरिक्त अन्य बाहरी दुनियां से अलगाव की नीति अपनायी। वे अंतर्राष्ट्रीय उलझन से अलग रहना चाहते थे। इसका कारण लगातार विदेशी आक्रमण के अतीत का अनुभव था। इस नीति के द्वारा चीन को थोड़ा सम्मान दिखाकर तथा जापान को सीमित व्यापार की सुविधा देकर संतुष्ट करने का प्रयास किया गया। इसके साथ ही कोरिया ने स्वयं को बाकी दुनियां से अलग कर लिया। परन्तु इससे राष्ट्र की सुरक्षा में मदद नहीं मिली। इससे कोरियन समाज में नई विचारधाराओं का प्रभाव अवरुद्ध हो गया।

यी वंश के शासन काल में इन सब कारणों से शासक वर्ग तथा सामान्य जनता के बीच की खाई बढ़ गई। जनता का शोषण तथा गरीबी बहुत ज्यादा बढ़ गई। समाज स्थिर हो गया तथा बहुत पुरानी सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाएं अप्रचलित तथा पतनशील हो गयीं।

11.3 कोरिया में आधुनिकता की खोज का आरम्भ

कोरिया में सृजनात्मक युग का अंत 15वीं सदी के मध्य (राजा संजोग जो कि सबसे प्रबुद्ध तथा उदार था, की मृत्यु के बाद) में हुआ। इस बीच वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास पश्चिमी राष्ट्रों को भीषण आर्थिक तथा सैन्य शक्ति प्रदान कर रहे थे। यह राष्ट्र अपनी इस शक्ति का उपयोग पूरे विश्व पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए चाहते थे। पश्चिमी प्रसार की लहर ने एशिया को भी डराया। परन्तु कोरिया तब भी अपनी सीमा के बाहर होने वाली घटनाओं से अनभिज्ञ था।

परन्तु सतही शान्ति के नीचे परिवर्तन के लिए दवाब बढ़ रहे थे। समाज की कठोर श्रेणीबद्धता तथा पुरातन रीति-रिवाज में धीरे-धीरे परिवर्तन आया और लोग पूरी खराब व्यवस्था की वैद्धता को चुनौती देने लगे। चल रही व्यवस्था के प्रति अविश्वास तथा आलोचना के लिए प्रेरणा "यांगवान" वर्ग के लोगों से ही मिली। उस समय की चल रही व्यवस्था का दुरुपयोग करने के लिए भी "यांगवान" वर्ग के लोग ही जिम्मेदार थे। यह कैसे हुआ यह एक अलग ही रोचक कहानी है।

यद्यपि कनफ्युसस की विचार धारा ने "यांगवान" को अपना विशेषाधिकार जारी रखने सामाजिक श्रेणीबद्धता लादने तथा सामान्य जनता की वफादारी तथा आज्ञापालन हासिल करने में मदद की। परन्तु समय बीतने के साथ-साथ इनकी अपनी स्थिति दयनीय होती गई। प्रत्येक "यांगवान" सोचता था कि सरकार की सेवा कर उसके साथ मिलने वाला विशेषाधिकार पाना उसकी एक मात्र भूमिका है। शाही सेवा के अतिरिक्त और किसी कार्य को वे अपने तथा अपने परिवार का अपमान समझते थे। इस प्रकार जो "यांगवान" सरकारी नौकरी नहीं पाते वे कुछ नहीं करते थे और गरीब हो जाते थे।

इसके अतिरिक्त सरकारी पद पर चयन के दो आधार थे। सामाजिक स्थिति तथा राष्ट्रीय परीक्षा में सफलता जिसके लिए कनफ्युसस के गौरव-ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान जरूरी था। इसके परिणामस्वरूप कोरिया में "यांगवान" को शाही सेवा में जाने की इच्छा रखने तथा कनफ्यूसस साहित्य जानने वाले एक नये वर्ग का जन्म हुआ। इनमें से जिन लोगों को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली वे गरीब हो गये। इससे उन्हें सामान्य जनता की स्थिति तथा दुख से तादात्म्य स्थापित करने का अवसर मिला। धीरे-धीरे वे पुरानी संरचना में परिवर्तन तथा सुधार की जरूरत को समझ गये। तथा इस कार्य के लिए वे पश्चिमी विज्ञान तथा तकनीक अपना कर मानव प्रतिष्ठा समानता स्वतंत्रता जन कल्याण तथा आर्थिक उन्नति की धारणा का प्रचार करने लगे।

उसने "सिरहक" या "व्यवहारिक शिक्षण" नामक चिन्तन के एक नये सम्प्रदाय को जन्म दिया। यह कोरिया के प्रगतिशील चिन्तन की मुख्य धारा बन गया।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिए स्थान को अपने उत्तर के लिए उपयोग करें।

2) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अन्त में दिए उत्तर से करें।

1) कोरिया में वंश के शासन की मुख्य विशेषताएं क्या थीं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कोरिया के "यी" वंश के शासकों द्वारा उठाये गये दो महत्वपूर्ण राजनीतिक कदमों तथा उनके प्रभावों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्न अभ्यासों को सावधानी पूर्वक पढ़ें तथा सही उत्तर या वक्तव्यों पर निशान लगायें।

1) कोरिया में "यी" वंश के शासन काल के दौरान निम्न कारणों में से किस कारण से क्षेत्रीय बद्धता मजबूत हो गई।

अ) बौद्ध धर्म [ ]

ब) कनफ्यूससवाद [ ]

स) नव कनफ्यूससवाद [ ]

द) पश्चिमी साम्राज्यवाद [ ]

2) निम्न में से कौन सा वक्तव्य सही है।

कोरिया में "यी" वंश के शासन के दौरान .....

अ) सामान्य जनता राष्ट्रीय असैनिक परीक्षा में सफल होकर सरकार में उच्च पद प्राप्त कर सकती थी।

ब) "यांगवान" वर्ग के लोग बिना राष्ट्रीय असैनिक परीक्षा दिये नौकरी प्राप्त कर सकते थे।

स) किसी कनफ्यूसस-वादी विद्वान को सरकार में उच्च पद बिना राष्ट्रीय असैनिक परीक्षा दिये मिल सकता था।

ब) "यांगवान" वर्ग का कोई सदस्य राष्ट्रीय असैनिक परीक्षा में सफल होने पर उच्च सरकारी पद पा सकता था।

11.4 कनफ्यूसस प्रभावित राजतंत्र का विघटन

अब तक आप जान चुके हैं कि कैसे कोरिया का सदियों पुराना सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक ढांचा "यी" वंश के शासन काल में अप्रचलित तथा अत्याचारी बन गया। साथ-साथ यह भी कि कैसे कोरियन लोगों में अन्यायी तथा कुलीन शासन तंत्र के खिलाफ परिवर्तन की इच्छा जागी। इस परिवर्तन की इच्छा ने कोरिया में आधुनिकीकरण की दोहरी प्रक्रिया को आरम्भ किया। एक तरफ कोरिया के लोगों में अतीत से अलग होने तथा चीनी शिकंजे को उठा फेंकने की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ। दूसरी तरफ तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक संरचना, नए विचार तथा संस्थाओं को अपना कर सुधारने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे कनफ्यूसस प्रभावित राजतंत्र बिखर गया तथा एक प्रगतिशील राष्ट्र का उदय हुआ। इन दोनों प्रक्रियाओं को कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं तथा परिस्थितियों ने तीव्र किया।

जिन प्रमुख घटनाओं तथा परिवर्तनों ने 19वीं सदी के उत्तरार्ध में प्राचीन व्यवस्था के पतन तथा नई ताकतों के उदय का मौका दिया उनमें पश्चिमी हस्तक्षेप, कांघवा की संधि, तोंघक विद्रोह तथा जापान द्वारा कोरिया पर नियंत्रण किया जाना आदि शामिल हैं।

11.4.1 पश्चिमी हस्तक्षेप

आपको मालूम होगा कैसे पश्चिमी शक्तियां फ्रांस ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमरीका ने चीन तथा जापान को 19वीं सदी के मध्य में व्यापार के लिए अपनी बन्दरगाहें खोलने के लिए बाध्य किया। पूर्वी एशिया में उनकी प्रसार की नीति को बन्दूक–नाव राजनय (गन बांट डिपलोमेसी) के रूप में जाना जाता है, चीन तथा जापान में अपनी सफलता के पश्चात वे कोरिया की तरफ मुड़े तथा आर्थिक रियायतें देने के लिए उस पर दबाव डालने लगे। इनमें से कुछ ने इसके कुछ क्षेत्र को भी हथिया लिया। यद्यपि कोरिया वासियों ने इन दवाबों का विरोध बड़े निश्चय के साथ किया। इससे उनको अपने देश की आन्तरिक कमजोरियों का पता भी चल गया और उसे मजबूत बनाने की जरूरत का भी एहसास हुआ।

11.4.2 कांघवा की संधि

कोरिया पर चीन के प्रभाव के कारण जब पश्चिमी शक्तियों को कोरिया के साथ सीधे सम्बंध स्थापित करने में कठिनाई हुई तो उन्होनें कोरिया के सदियों पुराने अलगाव को खत्म करने के लिए जापान को प्रोत्साहित किया। उस समय तक जापान एशिया का शक्तिशाली राष्ट्र बन चुका था। उसने कोरिया को 1876 में मित्रता तथा व्यापार की एक संधि करने को बाध्य किया। इस संधि को कांघवा की संधि भी कहते हैं। जापानी संधि का लाभ उठाकर करीब-करीब सभी साम्राज्यवादी शक्तियों ने कोरिया को संधि करने के लिए बाध्य किया। इन पश्चिमी राष्ट्रों ने कोरिया को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए अपनी बन्दरगाह का इस्तेमाल करने के लिए भी बाध्य किया। यह साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा कोरिया की गुलामी का आरम्भ था। इस प्रकार कांघवा की संधि ने कोरिया के शासक वर्ग को एक भारी झटका दिया।

11.4.3 तोंघक का विद्रोह

जैसा कि ऊपर भी बताया जा चुका है "यी" वंश के कुलीनतंत्रिय शासन में सामान्य जनता की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई थी। इनमें भी किसानों की स्थिति सबसे खराब थी। विदेशी हस्तक्षेप तथा कांघवा की संधि के बाद शोषण से उनकी स्थिति और भी खराब हुई। इसके बावजूद कोरिया की सरकार जनता की कठिनाई के प्रति निर्दयी बनी रही। परिणामतः भ्रष्ट तथा शोषण करने वाली सरकार के प्रति एक गहरी अप्रसन्नता ने जन्म लिया। इस गहरी अप्रसन्नता ने 1894 में किसान विद्रोह का रूप लिया। इसे "तोघक" विद्रोह के नाम से जाना जाता है। "चीनदोग्यो" जिसका अर्थ स्वर्ग के रास्ते का धर्म और जिसे सामान्यतः "तोघक" या पूर्वी ज्ञान कहते हैं, ने इस विद्रोह को वैचारिक आधार दिया। यह विचार एक गरीब "यांगवान" विद्वान ची च्यू द्वारा दिया गया। इन्होंने अपने देशवासियों से पुराने कोरियन समाज को पूरी तरह उखाड़ फेंकने तथा स्वतंत्रता और समानता के एक नये युग का आरम्भ करने का आग्रह किया। यद्यपि इस विद्रोह को कोरिया की सरकार ने चीनी तथा जापानी सैनिकों की मदद से दबा दिया परन्तु इसके संदेश ने कोरिया के समाज पर क्रान्तिकारी प्रभाव डाला। इससे "यांगवान" तथा सामान्य लोगों के बीच की खाई भी समाप्त हो गई तथा सामन्तवादी सरकारी व्यवस्था को एक भारी झटका लगा। इससे कोरिया में समता पर आधारित समाज के विकास को मार्ग मिला।

11.4.4 जापान द्वारा कोरिया पर नियंत्रण

कांघवा संधि द्वारा मिली कोरियन अर्थव्यवस्था पर आंशिक नियंत्रण से जापान संतुष्ट नहीं था। कोरिया के प्रायद्वीप पर एकाधिकारपूर्ण सम्पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के लिए जापान चिन्तित था। कोरिया पर अपने नियंत्रण को जापान एशिया में अपने प्रसार का आधार बनाना चाहता था। जापान ने 1894 में चीन-जापान युद्ध तथा 1904 के रूस-जापान युद्ध में चीन तथा रूस को पराजित कर इन्हें कोरिया पूर्णतः छोड़ने पर मजबूर कर दिया। ब्रिटेन पूर्व एशिया में रूस की महत्वाकांक्षा पर लगाम लगाने के लिए समर्थन कर रहा था। अंतर्राष्ट्रीय स्थिति तथा कोरिया की कमजोरी का फायदा उठाकर जापान ने 1910 में कोरिया को हथिया लिया। कोरिया पर "यी" वंश के शासन तथा चीनी प्रभाव का अंत हो गया। इससे कोरिया वासियों का साम्राज्यवाद, पूँजीवाद तथा सैन्यवाद से सीधा सामना हुआ। इससे कोरिया वासियों में आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना करने का निश्चय भी विकसित हुआ।

इन सारी घटनाओं तथा उथल-पुथल ने कोरिया वासियों के सोचने के ढंग को बदल दिया तथा वे नये विचार तथा नई संस्थाओं का उपयोग कर अपने देश के पुनर्निर्माण के लिए उत्सुक हो गये। इसने आधुनिकीकरण के दौर का आरंभ किया।

11.5 कोरिया में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का आरंभ

इस इकाई के अन्तिम भाग में आप कोरिया के उस प्रगतिशील आन्दोलन के बारे में पढेंगे जिससे इस देश को एक आधुनिक राष्ट्र में परिवर्तित होने का रास्ता मिला। इससे कोरिया में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के आरंभ को समझने में भी मदद मिलेगी।

11.5.1 प्रगतिशील दलों का सुधार आन्दोलन

जब 1876 में कोरिया को कांघवा की संधि के लिए बाध्य होना पड़ा तब कुछ कोरियन विद्वान जापानी तकनीक आर्थिक एवं सैन्य प्रगति से बहुत प्रभावित तथा प्रेरित थे। कीम-ओक-क्यूम नामक सुधारक के नेतृत्व में उन लोगों ने कोरिया को जापान के रास्ते पर बदलना आरंभ किया तथा प्रगतिशील दल के झंडे के नीचे आधुनिकीकरण की एक नई योजना का आरंभ किया। इन लोगों ने कोरिया पर चीन के प्रभाव को समाप्त तथा जापान से निकटता की वकालत की। इन लोगों ने जातों में असमानता खत्म करने, कृषि तकनीक में सुधार, प्राकृतिक साधनों के विकास, अच्छे रास्तों का निर्माण, औद्योगिक व्यवसायिक विकास तथा सरकारी संरचना में सुधार का प्रस्ताव रखा। इन लोगों ने राजा को शैक्षणिक संस्थानों, हस्पताल, जन सुविधा, डाक घर आदि में सुधार की सलाह दी और तब तक वह भी देश के विकास कार्यों में अभिरुचि लेने लगा था, परन्तु सरकार का रूढ़िवादी गुट प्रगतिशील दल के सुधार प्रस्तावों के प्रति संशाकित हो गया और उनका विरोध करने लगाा। किम-ओक-क्यून तथा उसके सहयोगियों ने कुछ रूढ़िवादी मंत्रियों की हत्या कर सत्ता हथियाने का प्रयास किया। यह प्रयास कोरिया में पहला डाकघर खुलने के अवसर पर किया गया। प्रगतिशील लोगों के ऐसे व्यवहार तथा सत्ता हथियाने के लिए ऐसे मौके के चुने जाने से आधुनिकीकरण आन्दोलन को गंभीर झटका लगा। इसके बावजूद इस आन्दोलन ने कोरिया की आधुनिकता का वापिस न लोटने वाला मार्ग खोला।

11.5.2 स्वाधीनता क्लब का प्रबोधन आन्दोलन

प्रगतिशील दिशा में दूसरा कदम तब उठा जब कोरिया के शिक्षित अभिजात्य वर्ग ने स्वतंत्रता क्लब नामक संगठन बनाया। 1896 में बने इस संगठन का उद्देश्य कोरिया वासियों के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के लिए कार्य करना था। इस क्लब के सदस्यों ने जनता की शिक्षा, वाणिज्य, मैडिकल तथा सैनिक कालेज की स्थापना में मदद की। इसके साथ ही इन लोगों ने विदशी भाषा, बढ़ई कार्य, कागज बनाने, सिल्क बुनने, लोहा, शीशा, चमड़ा, बिजली के कार्यो के लिए कारखाने बनवाये। विधवा विवाह की वकालत की तथा अंधविश्वासों, कुरीतियों और शोषण के खिलाफ आवाज उठायी। इस क्लब ने जीविका के नये रास्ते ढूंढने तथा जनता के जीवन स्तर को उठाने के लिए प्रयत्न किये। इसने अवसर की समानता तथा नागरिकों के समान अधिकार दिये जाने की वकालत की।

इस क्लब ने गला काटने तथा शरीर विकृत करने की सजा को खत्म करने की माँग की। इसने औरतों तथा बच्चों की अमानवीय व्यवहारों से रक्षा की वकालत की। इसने किसान तथा सताये हुए लोगों के लिए राहत की जरूरत पर बल दिया। राजनीतिक क्षेत्र में इस क्लब ने चीन के प्रभुत्व की निंदा की तथा लोगों में प्रजातांत्रिक विचारों को फैलाया। कोरिया के संवैधानिक विकास में इसने संसदीय प्रणाली की सरकार की सलाह दी। इस क्लब ने जन-विवाद नुक्कड़ सभा तथा जन प्रदर्शनों द्वारा लोगों को राजनीतिक शिक्षा दी। परन्तु इस क्लब के कार्य ज्यादातर शहरी केंद्रों में ही सिमटे हुए थे। इसके नेताओं ने इस आन्दोलन को ग्रामीण क्षेत्र में ले जाने का कोई प्रयास नहीं किया। इस सीमा के होते हुए भी क्लब द्वारा चलाये गये प्रबोधन आन्दोलन ने कोरिया वासियों के दृष्टिकोण को विस्तृत बनाया। इससे दलित लोगों के प्रति उच्च श्रेणी के लोगों की धारणा बदली। इसने कोरिया के समाज को युगों से चले आ रहे अंधकार, अज्ञान तथा अंधविश्वास से बाहर निकाला।

11.5.3 कोरिया में नये आर्थिक ढांचे का विकास

कोरिया को अपने राज्य में मिला लेने के पश्चात जापानी सरकार कोरिया के प्राकृतिक तथा कृषि संसाधनों को अधिकतम धोना चाहती थी। इसके लिए जापान ने कोरिया में मजबूत तथा कार्यकुशल प्रशासन की स्थापना की तथा देश को आधुनिकीकरण तथा औद्योगीकरण की ओर ले जाने वाले प्रयास भी किये। सड़क, रेलवे, बन्दरगाह, जल विद्युत आदि का आन्तरिक ढांचा बनाया। जन स्वास्थ्य तथा स्वच्छता की सुविधाओं में सुधार किया गया। वैज्ञानिक पद्धति से जमीन की पैमाइश कराई गई। इन सभी कार्यों ने जिनका वास्तविक उद्देश्य साम्राज्यवादी था कोरिया वासियों की स्थिति को और दुखद बना दिया। परन्तु उन लोगों ने जिस मौलिक आन्तरिक ढांचे की नींव डाली वह कोरिया के आधुनिक आर्थिक विकास का आधार भी बनी। कोरिया की परंपरागत अर्थ तथा कृषि व्यवस्था इन उपायों में संरचनात्मक परिवर्तन लायी तथा इससे समाज में एक मध्यम वर्ग

के विकास में भी मदद मिली। इस मध्यम वर्ग में सौदागर उद्योगपति तथा पेशेवर लोग शामिल थे। इससे कोरिया में एक औद्योगिक मजदूर वर्ग का भी उदय हुआ।

11.5.4 आधुनिक शिक्षा का विकास

जापानी प्रशासन ने कोरिया में एक आधुनिक शिक्षा पद्धति के निर्माण के लिए भी प्रयत्न किया। इसका उद्देश्य कोरिया वासियों को जापानी साम्राज्य की वफादार तथा कार्यकुशल प्रजा बनाना था। इस क्षेत्र में कुछ प्रयास जापानियों के आने से पहले भी हुए थे। जापान में मिलाए जाने के समय कोरिया में 94 सरकारी विद्यालय थे जिनमें करीब 12,000 विद्यार्थियों का नामांकन था परन्तु जापानी प्रशासन के 25 वर्षों में ही शिक्षण संस्थाओं की संख्याा बढ़कर 3,771 हो गई, इसमें छात्रों की संख्या बढ़कर 8,67,562 थी। पाठ्यक्रम में विविधता लाई गई। इसमें कला और भाषा के अतिरिक्त अब तकनीकी, वैज्ञानिक, औद्योगिक, वाणिज्य कृषि शिक्षण आदि भी शामिल हुए। कोरियन विद्यार्थियों के प्रति जातिगत भेदभाव किया जाता था। फिर भी जापानी प्रशासन के अन्तर्गत मिली शिक्षा सुविधाओं का कोरिया वासियों ने अधिकतम लाभ उठाया।

11.5.5 स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन

अन्ततः कोरिया वासियों ने जापानी प्रशासन से मुक्ति के लिए जोर शोर से आन्दोलन भी आरंभ किया। इस संघर्ष ने कोरिया समाज के सारे बंधनों को तोड़कर सभी हिस्सों में अभूतपूर्व सामंजस्य पैदा किया। युवा सामान्य वर्ग मध्यम वर्ग तथा औद्योगिक मजदूर राष्ट्रीय आन्दोलन मे आगे आये। इससे लोगों में प्रजातांत्रिक राष्ट्रवादी तथा क्रान्तिकारी भावना का प्रसार हुआ। अपने स्वतंत्रता आन्दोलन के माध्यम से कोरिया वासियों ने हमेशा के लिए राजतंत्रीय शासन प्रणाली तथा सामन्तवादी व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित सभी उथल-पुथल तथा घटनाओं ने कोरिया को कभी न मुड़ने वाली प्रगति तथा आधुनिकीकरण के रास्ते पर कर दिया। रास्ता प्रयोग तथा गलतियों का था। दूसरी इकाई में आप इस आधुनिक कोरिया के राजनीतिक तथा आर्थिक विकास को समझ सकेंगे।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग करें।

2) इकाई के अन्त में दिये उत्तर से अपने उत्तर की जाँच करें।

1) कोरिया में आधुनिकीकरण की दो मुख्य प्रवृतियों का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) तोंघक विद्रोह का क्या संदेश था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

निम्नलिखित अभ्यास को सावधानी से पढ़ें तथा सही उत्तर पर निशान लगाइए।

3) निम्न में से किसको आप सही वक्तव्य समझते हैं?

(क) 19वीं सदी के अन्त में जापान ने कोरिया को अपने में मिला लिया।

(ख) जापान ने कोरिया को बीसवीं सदी के आरम्भ में मिला लिया।

(ग) कोरिया के शासक प्रगतिशील दल के इरादों से संशकित थे।

(घ) कोरिया की सरकार के रूढ़िवादी गुट ने प्रगतिशील दल के आधुनिकीकरण प्रस्तावों का विरोध किया।

(ड) स्वतंत्रता दल ने कोरिया में संसदीय प्रणाली की सरकार का समर्थन किया।

(च) स्वतंत्रता दल ने कोरिया में गणतंत्रीय प्रजातंत्र की सलाह दी।

(छ) अपने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कोरिया वासियों ने कोरिया के राजतंत्र को पुनः प्रतिष्ठित करने का निर्णय लिया।

(ज) जापानी शासन से मुक्ति के संदर्भ ने कोरीयन समाज में सामन्ती व्यवस्था को कमजोर किया।

11.6 सारांश

इस इकाई में आपका परिचय एक अनोखी सभ्यता से कराया गया। साथ-साथ आधुनिकीकरण के लिए इसके द्वारा किये गये प्रयासों के बारे में बताया गया। प्राचीन समय में कोरियाई महाद्वीप में एक कुशल तथा समृद्ध राज्य की स्थापना हुई थी। परन्तु "यी" वंश के शासन के दौरान शासन अभिजात तंत्रिय हो गया तथा समाज उच्च तथा निम्न वर्ग में विभक्त हो गया। परिणामतः सामान्य लोगों का असहनीय शोषण तथा दमन हुआ। दमनकारी शासन के प्रति जनता के रोष ने दो प्रकार की प्रवृत्ति को आरंभ किया (1) सड़े हुए राजतंत्र तथा सामन्ती व्यवस्था का पतन, (2) कोरियाई समाज का प्रगतिशील रूपांतरण। दोनों का परिणाम 19वीं सदी के अन्तिम वर्षों से कभी न मुड़ने वाली आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के विकास में हुआ।

11.7 शब्दावली

अभिजात तंत्र : एक प्रकार की सरकार जिसमें शासक के पास असीमित सत्ता होती है। इस पर कोई संवैधानिक प्रतिबंध नहीं होता है।

पूँजीवाद : एक प्रकार की आर्थिक व्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधन कुछ लोगों के अधीन होते हैं।

कनफ्यूससवाद/नव कनफ्यूससवाद : चीनी दार्शनिक कनफ्यूसस का नैतिक शिक्षण। इसके बाद का संशोधित रूप नव कनफ्यूससवाद कहा जाता है।

समतावादी : एक प्रकार का समाज जिसमें सबको अधिकारों और अवसरों की समानता मिली हो।

सामन्तवाद : जमीनदार सामन्त वर्ग द्वारा जमीन रखने की प्रथा जिसमें इनके पास राजनीतिक शक्ति भी होती है। जमीन जो उत्पादन का प्रधान साधन होती है, उस पर शासक वर्ग तथा सामन्तों का एकाधिकार होता है। इस व्यवस्था में छोटे उत्पादक तथा किसान अपने औजारों के प्रयोग से अर्थव्यवस्था को चलाते हैं।

बन्दूक-नाव राजनय : एक तरीका जिसके द्वारा पश्चिमी शक्तियों ने पूर्व एशिया के राष्ट्रों को 19वीं सदी में अपने युद्धक जहाजों की मदद से संधि करने के लिए बाध्य किया।

पदसोपान : उच्च तथा निम्न पद के आधार पर सत्ता का संगठन व बँटवारा।

साम्राज्यवाद : एक सरकार के शासन तथा प्रभाव को दूसरों पर बढ़ाने की ऐसी नीति जिसका उद्देश्य दूसरे राष्ट्र का शोषण होता है।

बादशाहत : एक राज्य जिस पर किसी राजा का शासन हो।

राजतंत्र : एक प्रकार का शासन जिसमें एक राजा एक देश पर शासन करता है।

कुलीनतंत्र : कुछ लोगों द्वारा चलने वाला एक प्रकार का भ्रष्ट शासन।

प्रायद्वीप : ऐसी भूमि जो तीन तरफ से समुद्र से घिरी हो तथा एक तरफ से मुख्य भूमि से जुड़ी हो।

सामाजिक स्तरीकरण : समाज का उच्च तथा निम्न वर्ग में बँटवारा।

अधिराज्यता : एक महाशक्ति द्वारा छोटे राज्य की सुरक्षा।

तानाशाही : निरंकुश, अन्यायी तथा निर्दयी शासन।

यांगवान : मध्ययुगीन कोरिया का कुलीन तंत्रीय वर्ग।

यी वंश : कोरिया का एक शासक परिवार जिसे यी या चोसोन कहा जाता है।

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए. सी. नहम, कोरिया : 1988, *ट्रेडीशन एन्ड ट्रान्सफारमेशन,* होलिन, सेओल

ए. जे. ग्राजडानजें : 1944, *मार्डन कोरिया :* जान डे न्यूयार्क

बी. एस. अग्रवाल : 1992, *ए स्टडी आफ द कोरीयन नेशनल मूवमेन्ट,* गोयल बुक डिपो, ग्वालियर

चोंग - सीक ली : 1965, *द पोलिटिक्स आफ कोरीयन नेशनलिज्म* : यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोंनिया प्रेस बर्कले

एफ. ए. मकेन्जी : 1920, *स्वतंत्रता के लिए कोरिया का संघर्ष* : रेमेल न्यूयार्क

एच. एस. हेरोल्ड : 1970, *कोरिया : ए पोलिटिकल हिस्ट्री इन मार्डन टाइमज* लोंगफेलो, न्यूयार्क

आर. आर. क्रिशनन : 1991, भारत-कोरिया सम्बंध, योनसी यूनिवर्सिटी, सेयोल

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) एक वंशानुगत राजा एक सलाहकार परिषद की सहायता से शासन करता था। कार्यपालक तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए छः मंत्री तथा एक सचिवालय था। देश प्रशासकीय इकाईयों में बँटा था। अधिकारियों की भर्ती एक राष्ट्रीय असैनिक परीक्षा के द्वारा होती थी।

2) (निम्न में से कोई दो बिन्दु) नव कनफ्यूससवाद के लागू होने से कठोर सामाजिक स्तरीकरण हुआ। चीनी अधिराज्यता स्वीकार किये जाने से कोरिया की संप्रभुता को क्षति पहुँची। अलगाव की नीति के अपनाए जाने से कोरियाई समाज में नई विचारधाराओं का प्रवाह अवरुद्ध हो गया।

3) (1) स

(2) द

बोध प्रश्न 2

1) (1) अतीत से हटकर चीनी प्रभाव को उठाकर फैंकना

(2) तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाओं का सुधार तथा पुनरुद्धार

2) कोरिया के परंपरागत समाज को हटाकर स्वतंत्रता और समानता के नये युग का निर्माण

3) (1) ख

(2) घ

इकाई 12 राजनीतिक तथा आर्थिक विकास का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 जापानी शासन का प्रारंभ

12.3 कोरिया का बंटवारा
- 12.3.1 संयुक्त राष्ट्र का हस्तक्षेप
- 12.3.2 कोरिया का युद्ध

12.4 आर.ओ.के. का दक्षिण कोरिया में राजनीतिक तथा आर्थिक विकास
- 12.4.1 संवैधानिक विकास
- 12.4.2 दल व्यवस्था
- 12.4.3 राजनीतिक प्रक्रिया
- 12.4.4 आर्थिक विकास

12.5 डी.पी.आर.के. (उत्तर कोरिया) में राजनीतिक तथा आर्थिक विकास
- 12.5.1 संवैधानिक विकास
- 12.5.2 दल व्यवस्था
- 12.5.3 राजनीतिक प्रक्रिया
- 12.5.4 आर्थिक विकास

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 कुछ उपयोगी इकाइयां

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में जापान के आत्मसम्पर्ण के पश्चात कोरिया के राजनीतिक तथा आर्थिक विकास के प्रतिमान का वर्णन किया गया है । इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप निम्न बातें समझ सकेंगे :

- कोरिया महाद्वीप का दक्षिण तथा उत्तर कोरिया में बंटवारा,
- उत्तर तथा दक्षिण कोरिया में विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं का मूल्यांकन तथा तुलना,
- दोनों खंडों में आर्थिक विकास की रणनीतियों का विश्लेषण, तथा
- दक्षिण तथा उत्तर कोरिया में वर्तमान आर्थिक स्थिति की परीक्षा।

12.1 प्रस्तावना

कोरिया पूर्व एशिया में एक प्राचीन देश है । यह एक प्रायद्वीप है । यहां पर 1392 से 1910 तक "यी वंश" का निरंतर शासन रहा । 1910 में इसे जापानी उपनिवेश बना दिया गया । द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर 1945 के अंत में जापान के आत्मसर्म्पण के साथ ही कोरिया स्वतंत्र तो हुआ परंतु जल्द ही यहां एक गृह युद्ध आरंभ हुआ जिसने एक पूर्ण युद्ध का रूप ले लिया जिसमें विदेशी शक्तियां भी शामिल थीं । युद्ध ने 38वीं समानांतर के दोनों ओर दक्षिण तथा उत्तर कोरिया में इस प्रायद्वीप के विभाजन की औपचारिकता पूरी की । ऐतिहासिक रूप से कोरिया एक भाषा, एक जाति वाला विकसित देश था ।

परंतु अब लोग दो अलग-अलग राज्यों में विभक्त हैं ।

12.2 जापानी प्रशासन का प्रारंभ

पहले 1905 में जापान ने कोरिया को एक संरक्षित राज्य बनाया और 1910 में [illegible]

प्रायद्वीप की स्वतंत्रता का अंत कर दिया । कोरिया पर जापान का शासन 35 वर्षों 1910-1945 तक जारी रहा । इस शासन के दौरान कोरिया में मौलिक सामाजिक आर्थिक परिवर्तन हुए । पुरानी सामंतवादी प्रशासनिक पद्धति की जगह औपनिवेशिक केंद्रीकृत प्रशासन पद्धति आई । औपनिवेशिक सरकार ने सामूहिक शिक्षा, एक नई वैधानिक व्यवस्था, आधुनिक परिवहन और संचार व्यवस्था का आरंभ किया । कोरियाई लोगों की नागरिक स्वतंत्रता पर पाबंदी लगाने के लिए इसने एक मजबूत पुलिस बल को खडा किया । जापानी शासन के आधार के रूप में इसने एक सामंत वर्ग बनाया । एक बहुत बड़ा बेरोजगार मजदूर वर्ग बना जिसे जापान की मुख्यभूमि तथा जापान के दूसरे उपनिवेशों में जापानी कल कारखानों में कार्य करने के लिए भेज दिया गया । इसने प्रतिस्पर्द्धा विहीन संरक्षित मूल्य पर जापान भेजने के लिए अन्न उत्पादन को प्रोत्साहित किया । कोरिया को आर्थिक रूप से लूटा गया । अलग-अलग बहाने बनाकर कोरिया के संसाधन तथा धन को जापान भेज दिया गया । जापान के युद्ध यंत्र में ज्यादातर जापानी लोग काम कर रहे थे परंतु इस पर कोरिया का पैसा खर्च होता था । जापानी शासकों की शोषण नीतियों का प्रतिकार उपनिवेश विरोधी स्वतंत्रता आंदोलन में हुआ । कोरिया में जापानी प्रशासन को कई बार शांतिपूर्ण तथा हिंसक विद्रोहों तथा प्रदर्शनों का सामना करना पडा । औपनिवेशिक प्रशासन ने इन राष्ट्रवादी आंदोलनों को कठोरता से दबा दिया। लगातार दबाये जाने से उभरती हुई राष्ट्रवादी ताकतों के लिए देश के भीतर से किसी आंदोलन का प्रारंभ करना असंभव हो गया । इसके बाद कुछ राष्ट्रवादी तथा साम्यवादी चीन, सोवियत संघ तथा दूसरे देशों में शरण लेकर अलग-अलग जापानी शासन के खिलाफ लड़ने लगे । परिणामतः जापानी शासन के खिलाफ कोई संगठित एकजुट राष्ट्रीय आंदोलन नहीं हो सका । कोरिया वासियों ने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ एक कटु संघर्ष किया परंतु स्वतंत्रता के समय वे निराश करने वाले ढंग से बंटे हुए थे । राष्ट्रीय ताकतों के बीच मुख्य मुद्दों पर गंभीर मतभेद थे ।

संक्षेप में यह जापानी शासन की विरासत है और इन विरासतों ने इस प्रायद्वीप के भविष्य को प्रभावित किया है ।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) अपने उत्तर के लिए प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये गये स्थान का उपयोग करें ।

2) इकाई के अंत में दिय गए उत्तरों से अपने उत्तर की जांच करें ।

1) कोरिया में जापानी शासन की समीक्षा करें ।

.....

.....

.....

.....

12.3 कोरिया का बंटवारा

जापान के आत्मसर्म्पण के बहुत पहले ही मित्र राष्ट्र स्वतंत्र कोरिया की स्वतंत्रता की योजना पर विचार करने लगे थे । 1945 में जापान ने आत्मसमर्पण किया तथा कोरिया स्वतंत्र हुआ । जापान के समर्पण के तुरंत बाद ही राष्ट्रवादी इकट्ठा हुए तथा उ ोंने सम्पूर्ण कोरिया सरकार बनाने का निश्चय किया । कोरिया के राष्ट्रीय निर्माण की तैयारी नामक एक समिति बनी । देश प्रत्यावर्तित स्वतंत्रता सेनानियों तथा जापानी कारागाहों से छूटे राजनीतिक कैदियों ने इसका समर्थन किया । नव निर्मित समिति ने प्रायद्वीप का शासन अपने हाथ में ले लिया तथा बहुत कम समय में सम्पूर्ण कोरिया को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया । इस समिति में बहुत से साम्यवादी तथा राष्ट्रवादी वामपंथी लोग भी थे ।

रूस की सेना ने 1945 के अगस्त के आरंभ में जापानी प्रतिरोध को कुचल कर कोरिया में प्रवेश किया । विजयी लाल सेना सम्पूर्ण उत्तर कोरिया को स्वतंत्र कराने के पश्चात् प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग की ओर बढ़ी । इस बीच जापान के आत्मसमर्पण के बाद कोरिया के पुनर्निर्माण के लिए जो समिति बनी थी उसने राष्ट्रीय विधान सभा को बुलाकर कोरिया की स्वतंत्रता की घोषणा की तथा कोरिया के जनवादी राज्य की स्थापना की । इस गणतंत्र ने सम्पूर्ण कोरिया की अकेली वैधानिक

सत्ता होने का दावा किया । रूस (उस समय सोवियत संघ) ने इस गणतंत्र की वैधता को स्वीकार कर लिया ।

रूस की विजय ने अमरीका को अपनी सेना भी भेजने के लिए उकसाया । इसके पीछे इरादा यह था कि सम्पूर्ण कोरियाई प्रायद्वीप रूस के नियंत्रण में चला जाय । अमरीकी सैनिकों ने 38वीं समानांतर के दक्षिणी भाग पर कब्जा कर लिया । तथापि अमरीका ने गणतंत्र की वैधता को स्वीकार नहीं किया । इसने दक्षिणी कोरिया के लिए अलग सरकार बनाने के लिए कदम उठाये । अमरीकी सेना ने कोरिया में सैनिक सरकार की स्थापना की । इस अवधि में सैनिक सरकार ने राजनीतिक गतिविधियों को आजादी दी । कई राजनीतिक दलों की स्थापना हुई । अमरीकी सेना ने गैर साम्यवादी ताकतों को इकठ्ठा कर दिया । अमरीकी सेना से प्रेरित होकर कठोर दक्षिण पंथी ताकतों ने इकठ्ठा होकर अमरीकी संरक्षण में दक्षिण कोरिया में सरकार बनायी । प्रायद्वीप के उस भाग में अमरीका समर्थित दक्षिण कोरिया की सरकार ने अपनी स्थिति मजबूत करने के सभी कदम उठाये । इसने राष्ट्रवादियों के एक भाग को ललचाकर अपने समर्थन में सम्पूर्ण कोरिया को अंतरिम विधायी सभा खडी करने की भी चेष्ठा की । परंतु अमरीका समर्थित शासन सही जन समर्थन प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ । इसके विपरीत लोगों ने कोरिया में अमरीका की भूमिका का विरोध किया । तथा कोरिया के लोगों ने अमरीका के उस दावपेंच की निंदा की तथा उसे कोरिया पर कब्जा बनाये रखने की रणनीति की संज्ञा दी ।

12.3.1 संयुक्त राष्ट्र संघ का हस्तक्षेप

दिसंबर 1945 में इंग्लैंड, अमरीका तथा सोवियत संघ ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये । इस समझौते में कोरिया पर इन देशों तथा चीयांग काइ शेक के चीन की देख रेख में अधिदेश-शासन की व्यवस्था की । इन न्यासियों को संयुक्त कोरिया की स्थापना का काम सौंपा गया । कोरिया के राष्ट्रवादियों ने अधिन्यासी शासन की व्यवस्था का विरोध किया तथा इसके विरूद्ध सम्पूर्ण कोरिया में प्रदर्शन कराये । महाशक्तियों ने अपने निर्णय के खिलाफ कोरिया के विरोध को नजरअंदाज किया । अमरीका तथा सोवियत संघ के एक इकठ्ठे आयोग का गठन हुआ जिसका उद्देश्य प्रजातांत्रिक ताकतों के सहयोग से सम्पूर्ण कोरिया की सरकार की स्थापना करना था । यह आयोग 1946 तथा 1947 में मिला परंतु किसी समझौते पर नहीं पहुंच सका । समझौते नहीं होने का कारण देश की भावी संरचना में कोरिया की भागीदारी का मुद्दा था । इसके बाद इस आयोग का विघटित कर दिया गया ।

आयोग के विघटन तथा अमरीका के असैनिक सरकार की स्थापना के असफल प्रयास के बाद अमरीका ने कोरिया का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया । संयुक्त राष्ट्र संघ ने कोरिया पर एक अस्थायी आयोग का गठन किया तथा इसे इस प्रायद्वीप में सामान्य चुनाव कराने के लिए अधिकृत किया । इसे चुनाव के बाद चुने हुए प्रतिनिधियों की सरकार बनाने के लिये भी अधिकृत किया । संयुक्त राष्ट्र संघ के इस निर्णय को इस क्षेत्र में अमरीकी प्रभाव बनाये रखने का दूसरा दाव कहा गया । उत्तर कोरिया तथा भूतपूर्व सोवियत संघ के लोगों ने इसे अस्वीकार कर दिया । आयोग उत्तर में चुनाव कराने में असमर्थ रहा तथा दक्षिण में चुनाव कराने का फैसला किया । बहुत से राष्ट्रवादियों ने देश के एक भाग में चुनाव कराये जाने का विरोध किया । उन लोगों ने यह भय, व्यक्त किया कि ऐसा करने से कोरिया के विभाजन की औपचारिकता पूरी हो जायेगी । राष्ट्रवादी जिनमें अमरीका समर्थक कुछ राजनीतिज्ञ भी शामिल थे, ने 1948 में दक्षिण कोरिया की स्वतंत्रता. की मांग की । तथा दक्षिण कोरिया में चुनाव कराने की संयुक्त राष्ट्रसंघ की योजना का विरोध किया। दक्षिण कोरिया की जनता के बहुत बडे भाग के विरोध तथा असहयोग ने 1948 में दक्षिण कोरिया में चुनाव कराया । अमरीका समर्थित संचार माध्यमों ने इस चुनाव के सफल होने का दावा किया । एक तथाकथित चुनी हुई राष्ट्रीय सभा अस्तिस्व में आई तथा इस सभा ने एक संविधान अपनाया । डॉ0 सींगमन रही, जो अमरीका में अपने आत्म-निर्वासन से इस समय तक लौट चुके थे को इस सभा ने दक्षिण कोरिया का पहला अध्यक्ष चुना । 15 अगस्त 1948 को कोरिया का गणतंत्र और ओ.के. का आरंभ हुआ ।

इस बीच साम्यवादियों तथा लोकतंत्रवादियों ने उत्तर कोरिया में अपनी स्थिति मजबूत कर ली । उन लोगों ने जनता की सर्वोच्च सभा 'सुप्रीम पीपल्स एसेम्बली', उच्चतम कानून बनाने वाली संस्था केंद्रीय जन समिति तथा सरकार के मुख्य कार्यपालक अंग की स्थापना कर अपनी स्थिति संस्थागत कर ली । सोवियत संघ ने अधिकांश शक्तियां इन संस्थाओं को हस्तांतरित कर दीं । इन संस्थाओं ने बहुत जल्द देश को एक प्रशासन दिया । अगस्त 1948 में उत्तरी कोरिया में चुनाव हुए जिसमें

जनता की सर्वोच्च सभा के 527 सदस्यों का चुनाव किया गया । इस निर्वाचित सभा ने सितंबर 9 को कोरिया के जनवादी प्रजातांत्रिक गणतंत्र डी.पी.आर.के. की घोषणा की ।

12.3.2 कोरिया का युद्ध

जापान के आत्म-समर्पण के पश्चात् कोरिया अनौपचारिक रूप से उत्तर तथा दक्षिण दो भागों में विभक्त हो गया। समय बीतने पर दो प्रकार की राजनीतिक सत्ता दोनों भागों में प्रकट हुई । उत्तर में साम्यवादी तथा वामपंथ समर्थित कोरियाई मजदूर पार्टी जो बहुत तेजी से विकसित होती हुई संगठित पार्टी थी, ने एक स्थाई सरकार बनायी । इसने एक सेना भी खडी की । सरकार ने तुरंत ही जनप्रिय भूमि सुधार के लिए कानून बनाये तथा लागू किया । सदियों से चले आ रहे पिछड़ेपन को दूर करने के लिए विकास की रणनीतियां चलाई गई । पूरे कोरिया में जनता ने उत्साह के साथ इन कदमों का स्वागत किया । तथापि दक्षिण में राजनीतिक सत्ता पर घोर दक्षिणपंथियों का नियंत्रण हो गया । ऐसा उस देश में रह रही अमरीकी सैनिकों की सहायता से हुआ । दक्षिण कोरिया में सरकार बहुत दमनकारी थी । इसने देश में फैले हुए वामपंथियों को खत्म करने तथा सभी जन आंदोलनों को दबाने के लिए कदम उठाये । भूमि सुधार, अमरीकी नियंत्रण का हटाया जाना आदि लोकप्रिय मांगे थीं । परंतु इन मांगों पर सरकारी प्रतिक्रियां सिर्फ नकारात्मक ही नहीं अपितु कठोर थी । जन मांगों के प्रति सरकार के ऋणात्मक दृष्टिकोण ने दक्षिण कोरिया में गृह युद्ध को जन्म दिया । हकीकत में यह गृह युद्ध ही उत्तर तथा दक्षिण कोरिया के बीच कोरिया युद्ध में परिवर्तित हो गया । जहां दक्षिण कोरिया सरकार को अमरीका तथा इसके मित्र राष्ट्रों का समर्थन प्राप्त था। उत्तर कोरिया को साम्यवादी खेमें तथा उपनिवेशों में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलनों तथा नव स्वतंत्र देशों से नैतिक तथा भौतिक सहायता मिली । 1948 में आर.ओ.के. के उद्घाटन के पश्चात् इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता मिल गई । परंतु संयुक्त राष्ट्र संघ ने डी.पी.आर.के. को मान्यता नहीं दी । इसलिए जब कोरिया के दोनों भागों के बीच युद्ध आरंभ हुआ तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने सदस्य राज्य की मदद का निश्चय किया । इसने जल्द ही एक बहु-राष्ट्रीय सैन्य बल को खडा किया तथा इसे अमरीकी नेतृत्व में रखा । अमरीका के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना सितंबर 1950 से डी.पी.आर.के. के खिलाफ कार्य करने लगी।

भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने अमरीकी नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र संघ की सेना को 38वीं समानांतर पार नहीं करने की सलाह दी । उन्होंने चेतावनी दी कि ऐसी कार्रवाई चीन के जनवादी गणराज्य को डी.पी.आर.के. के पक्ष में हस्तक्षेप करने के लिए उकसाएगी तथा इससे युद्ध की स्थिति और उलझ जायेगी । संयुक्त राष्ट्र की सेना ने इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया । वह 38वीं समानांतर को पार कर डी.पी.आर.के. के मध्य भाग तक पहुंच गई । अक्टूबर 1950 में चीन के जनवादी गणराज्य ने हस्तक्षेप किया तथा उत्तर दक्षिण की शत्रुता लम्बे खिंचे पूर्ण युद्ध में बदल गई ।

युद्ध ने कई शहरों को नष्ट कर दिया । कई लाख कोरिया वासी मारे गये तथा सम्पूर्ण कोरिया विध्वस्त हो गया । केवल दक्षिण कोरिया में 8,00,000 से ज्यादा जानें गईं । यह लड़ाई तीन वर्षों तक चली तथा युद्धरत पक्षों के बीच बिना किसी औपचारिक शांति समझौते के समाप्त हो गई । 1953 में अंतर्राष्ट्रीय सहमति से एक युद्ध विराम हुआ तथा मोटामिटी 38वीं समानातंर के साथ ही युद्ध स्थगन रेखा खींची गई । यही रेखा दोनों कोरियाइयों की सीमा है । इस रेखा के साथ एक असैन्यीकृत क्षेत्र बनाया गया । युद्ध के परिणाम स्वरूप कोरिया के विभाजन की औपचारिकता पूरी हुई तथा प्रायद्वीप में दो स्वतंत्र देशों का उदय हुआ । कोरिया के युद्ध से कोरिया की एकता की समस्या का समाधान नहीं हुआ जिसके लिए लोग जापान की वापसी के समय से ही इच्छुक थे । युद्ध ने इस सबसे जुडी हुई कुछ अन्य समस्याओं का भी समाधान नहीं किया । इसके विपरीत ऐतिहासिक रूप से विकसित एक लोग एक देश के विभाजन ने बहुत सी नई समस्याओं को जन्म दिया जिससे इस प्रायद्वीप का भविष्य प्रभावित हुआ ।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये स्थान को अपने उत्तर के लिये प्रयोग करें ।

2) इस इकाई के अंत में दिये गये संकेतों से अपने उत्तर की जांच करें ।

1) कोरिया के विभाजन की औपचारिकता कैसे पूरी हुई ?

12.4 आर.ओ.के. का दक्षिण कोरिया में राजनीतिक तथा आर्थिक विकास

1948 में कोरिया के गणतंत्र की स्थापना हुई । तब से आर.ओ.के. में बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । हर नई सरकार अपने को एक नया गणतंत्र होने का दावा करती है । इस तरह अब तक छः गणतंत्रों की स्थापना हो चुकी है । 1948 से अब तक यह देश 25 वर्षों से अधिक सैनिक शासन के अधीन रह चुका है। सेना ने अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था से तानाशाही की स्थापना कर दी थी । लम्बे जन आंदोलनों के बाद 1988 से प्रजातांत्रिक पद्धति कार्य कर रही है । अब तक कई संविधानों की घोषणा की गई है तथा उनमें शासकों के फायदे के लिए भारी संशोधन किये गये हैं । आर.ओ.के. एक ऐसा संविधान बनाने में असमर्थ रहा है जो टिकाऊ हो तथा जो जनता को मंजूर हो । यह देश कमजोर दल व्यवस्था के दौर से गुजरा है । सामान्यतः सैनिक समर्पित दलों के हाथ में सत्ता रही है । आंदोलनों या असैनिक राजनीतिक ताकतों द्वारा स्थापित दल सत्ता में नहीं आ पाये हैं । राजनीतिक उत्तराधिकार का प्रश्न बहुत हद तक समस्यात्मक रहा है । ऊँचे आर्थिक विकास के बावजूद सामाजिक तथा आर्थिक अशांति बनी हुई है । अमरीका तथा इसकी सेना और रूढिवादि ताकतों के दक्षिण कोरिया के आंतरिक मामलों में दखलंदाजी पर आर.ओ.के. का राजनीतिक व्यवस्था को दुर्बल बनाने का आरोप है ।

12.4.1 संवैधानिक विकास

1948 में दक्षिण कोरिया का पहला संविधान बना तथा लागू हुआ । संविधान ने देश को कोरिया के गणतंत्र की संज्ञा दी । इसने अध्यक्षीय प्रणाली की सरकार की व्यवस्था की । परंतु अध्यक्ष का चुनाव राष्ट्रीय संसद द्वारा होना था । कोरिया युद्ध के बाद उदारवादी दल की सरकार को बनाये रखने के लिए संविधान में कई बार संशोधन किये गये । 1952 में राष्ट्रीय संसद ने संविधान में एक संशोधन किया जिसमें राष्ट्रपति के जनमत द्वारा चुनाव की व्यवस्था थी । 1954 में राष्ट्रपति के पद को और अधिक शक्तिशाली बनाने वाले बहुत से संशोधन पारित हुए । इन उपायों को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था । उन्होंने सरकार की तानाशाही शासन कह कर निंदा की । धीरे-धीरे जन आंदोलन इतना शक्तिशाली हो गया कि पदस्थ राष्ट्रपति डॉ0 शींगमन रही को 1960 में त्याग पत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा । एक काम चलाऊ सरकार ने सत्ता संभाली । राष्ट्रीय सभा (संसद) ने प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली संसदीय पद्धति वाली सरकार बनाने के लिए संविधानिक संशोधन पारित किया । इस गणात्मक फस्विर्तन के बाद कोरिया के दूसरे गणतंत्र का आरंभ हुआ । मौलिक राजनीतिक समस्याओं पर राजनीतिक शक्तियों में तीव्र मतभेद के कारण संसदीय पद्धति बहुत दिनों तक नहीं चल सकी । इसका कारण पदस्थ प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तथा अन्य मंत्रियों में एकता की कमी भी था । उन लोगों के पीछे लोकप्रिय जनमत नहीं था । पुनर्एकीकरण तथा अन्य सामाजिक आर्थिक मांगों के समर्थन में जन आंदोलन बने । सरकार उदार थी अतः राजनीतिक गतिविधियों की अनुमति थी । इस परिस्थिति में सेना ने हस्तक्षेप किया तथा सत्ता पर कब्जा कर लिया । इसने संविधान को निलंबित कर दिया । सैनिक शासन ने एक संवैधानिक संशोधन का प्रारूप तैयार किया तथा इसे दिसंबर 1962 में एक राष्ट्रीय जनमत संग्रह द्वारा पारित कराया । इस संशोधन ने एक मजबूत अध्यक्षीय प्रणाली की सरकार को पुनर्जीवित कर दिया । इस सरकार ने एक राजनीतिक दल बनाया; चुनाव कराये, असैनिक जामा पहना तथा काफी तामझाम के साथ तृतीय गणतंत्र 1963-72 की स्थापना की । चूंकि जनता सरकार के कार्यों से संतुष्ट नहीं थी अतः जन आंदोलनों का आरंभ हुआ जिसकी मांग संसदीय प्रजातंत्र की स्थापना थी। बढ़ती हुई राजनीतिक अस्थिरता को देखकर जनरल पार्क की सरकार ने सैनिक शासन की घोषणा कर दी । उसने संविधान को रद्द कर दिया । संसद (राष्ट्रीय सभा) सहित सभी संवैधानिक निकायों को भंग कर दिया। एक नया संविधान बनाया गया तथा 1972 के नवंबर में एक राष्ट्र व्यापी जनमत संग्रह द्वारा इसकी मंजूरी कराई गई । नये संविधान ने मजबूत अध्यक्षीय प्रणाली की स्थापना की तथा पहली बार अप्रत्यक्ष चुनाव आरंभ हुआ तथा 2,359 सदस्यों वाले एक निर्वाचक मंडल की तरह राष्ट्रीय एकीकरण सभा का गठन किया । एन.सी.यू. को राष्ट्रपति तथा संसद (राष्ट्रीय सभा) को निर्वाचित करने की जिम्मेदारी थी । सेनाओं ने इसे कोरिया के

चतुर्थ गणतंत्र (1972-79) की संज्ञा दी । सैनिक तानाशाही शासन के खिलाफ जन विरोध तथा व्यापक आंदोलन के कारण यह जनतंत्र सात वर्ष से ज्यादा नहीं चल सका । 1979 के अंत में चोइ-क-हा के नेतृत्व में एक अंतरिम सरकार बनी । परंतु व्यापक आंदोलन होते रहे तथा 1980 के अप्रैल-मई में इन्होंने हिंसक रूप ले लिया । सेना ने प्रशासन पुनः अपने हाथ में ले लिया । जनरल चुन देश के राष्ट्रपति बने तथा 1981 के आरंभ में पांचवें गणतंत्र की घोषणा की । प्रत्यक्ष चुनाव तथा मजबूत अध्यक्षीय प्रणाली चलते रहे । व्यापक आंदोलन ने 1980 के वर्षों में सम्पूर्ण दक्षिण कोरिया को विनष्ट कर दिया । सरकार नया संविधान बनाने पर सहमत हो गई । संविधान निर्माण करने के लिए आठ सरकारी तथा गैर-सरकारी सदस्यों की समिति बनायी गयी । इसने एक सविधान बनाया जिसे अक्टूबर 1987 में एक जनमत संग्रह द्वारा मंजूर कर लिया गया तथा छठा गणतंत्र फरवरी 1988 से कार्य करने लगा ।

नये संविधान ने अध्यक्षीय प्रणाली के प्रशासन की स्थापना की है । राष्ट्रपति का चुनाव पांच वर्ष के लिए प्रत्यक्ष मतदान द्वारा होता है । राष्ट्रपति सर्वशक्तिमान नहीं है । उसके पास निषेधाधिकार हैं परंतु संसद (राष्ट्रीय सभा) उसकी शक्ति को अस्वीकृत कर सकती है । राष्ट्रपति संसद (राष्ट्रीय सभा में) बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है । सेना को राजनीति में हिस्सा लेने पर रोक है । संविधान ने सार्वभौम व्यस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की है । कार्यपालक शक्तियां एक राज्य परिषद् में निहित है, इसमें राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा 15 से 30 सदस्य होते हैं । विधायी शक्तियां संसद (राष्ट्रीय सभा) में निहित हैं। इसके 200 सदस्य हैं जिनका चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर चार वर्षों के लिए होता है । एक अलग तथा स्वतंत्र न्यापालिका का विस्तृत प्रावधान है । नागरिकों को मौलिक मानव अधिकारों का आश्वासन दिया गया है ।

12.4.2 दल व्यवस्था

राष्ट्रपति रही जब सरकार में थे तब 1952 में उदारवादी दल नामक पहले राजनीतिक दल की स्थापना की गई । 1950 के दशक में इस दल को राष्ट्रीय सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त था। यह दल भ्रष्टाचार तथा दल की अंदरूनी फूट के कारण अलोकप्रिय हो गया । 1956 तथा 1960 के राष्ट्रपति चुनाव में इस दल के उम्मीदवार राष्ट्रपति पद पर तो जीते परंतु उप-राष्ट्रपति पद पर इसके उम्मीदवार हार गये । 1956 के राष्ट्रपति चुनाव के दरम्यान प्रजातांत्रिक दल (डेमोक्रेटिक पार्टी) बना । 1958 के राष्ट्रीय सभा के चुनाव में इसकी स्थिति अच्छी रही । 1960 के चुनाव में भी उप-राष्ट्रपति के पद पर इसके उम्मीदवार विजयी हुए । इस दल ने संसदीय प्रणाली के प्रजातंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष किया। 1960 में इसने संसदीय प्रणाली के तहत सरकार बनाई परंतु दल के अंदरूनी संघर्षों के कारण सत्ता में नहीं बना रह सका । 1961 में प्रजातांत्रिक दल से सेना ने शासन ले लिया । सैनिक शासकों ने राजनीतिक गतिविधियों को वैधता देने के बाद प्रजातांत्रिक गणतंत्रिय दल (डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन) पार्टी नामक दल बनाया । परंतु यह दल जन समर्थित रहा । सैनिक शासन के अंतिम वर्षों में राजनीतिक शक्तियों ने एक जुट होकर नया प्रजातांत्रिक दल (न्यू डेमोक्रेटिक पार्टी) का निमार्ण किया । इसने संसदीय प्रजातंत्र की पुनर्स्थापना की मांग की । 1978 के संसदीय राष्ट्रीय सभा के उम्मीदवारों को कुल सीटों का 33 प्रतिशत मिला तथा डी.आर.पी. को 31.7 प्रतिशत सीटे मिलीं । एन.डी.पी. सदस्यों ने 1980 में सेना समर्थित सरकार की दमनकारी तथा निरंकुश नीतियों के विरोध में त्याग पत्र दे दिया । परंतु जल्द ही दल एक निष्क्रिय ताकत होकर रह गया । तथापि किम यंग-सन के नेतृत्व में इसे पुनर्जीवित किया गया । उसने विपक्ष के कुछ जाने माने राजनीतिज्ञों को अपने दल में मिलाया ।

सैनिक शासन जारी रहने के विरूद्ध जन आंदोलनों द्वारा निर्मित दबाव के कारण 1972 में लादे गये सैनिक शासन को जनवरी 1981 में हटाना पडा और राजनीतिक गतिविधियों पर से पाबंदी हटा ली गई । तुरंत कई नये दल बने । नये दलों में डेमोक्रेटिक जस्टिस पार्टी तथा डेमोक्रेटिक कोरियन पार्टी का नाम प्रमुख है । 1981 के राष्ट्रीय विधान सभा (नेशनल एसेम्बली) के 276 सीटों के चुनाव में इन दलों ने अधिकांश सीटों पर जीत हासिल की । डी.जे.पी. तथा डी.के.पी. ने क्रमशः 151 तथा 81 सीटें जीतीं । कुछ वर्षों तक डी.जे.पी. सत्ता में रहीं । राष्ट्रपति चुन की उदारवादी व्यवस्था में 1980-85 तक कई राजनीतिक कैदियों को छोड दिया गया तथा उन्हें राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने की अनुमति दी गई । मुक्त हुए राजनीतिक कैदियों के एक समूह ने जनवरी 1985 में न्यू कोरियन डेमाक्रेटिक पार्टी (एन.के.डी.पी.) बनाई । फरवरी 1985 के नेशनल एसेम्बली के चुनाव में डी.जे.पी. का बहुमत बना रहा । परंतु 276 में से 67 सीटें जीत कर एन.के.डी.पी. एक प्रमुख विपक्षी दल के रूप में उभरा । डी.के.पी. तथा दूसरे राजनीतिक दल

इस संघर्ष में हार गये तथा महत्वहीन राजनीतिक शक्ति बनकर रह गये । 1987 में एन.के.डी.पी. में फूट पड़ गई तथा इसके एक गुट ने रियूनिफिकेशन डेमोक्रेटिक पार्टी (आर.डी.पी.) बनायी । दिसंबर 1987 के राष्ट्रपति चुनाव में इसने राष्ट्रपति पद के लिये कीम डे जुंग को अपना उम्मीदवार मनोनीत किया । इस दल को डाले गये कुल मतों का करीब 27 प्रतिशत मिला । एन.के.डी.पी. के दूसरे टूटे हुए गुट ने नवंबर 1987 में पीस एंड डेमोक्रेटिक पार्टी बनायी । अप्रैल 1988 के चुनाव में पी.डी.सी. मुख्य विपक्षी दल के रूप में उभरा । दक्षिण कोरिया की राजनीतिक घटनाओं ने 1990 में एक नाटकीय मोड़ लिया तथा डी.जे.पी. आर.डी.पी. तथा एन.डी.आर.पी. का विलय होकर डेमोक्रेटिक लिबरल पार्टी बनी । यह नया दल एसेम्बली में एक प्रमुख शक्ति हो गया । आर.डी.पी. के एक हिस्से ने इस विलय का विरोध किया तथा डेमोक्रेटिक पार्टी बनायी । बाद में पी.डी.पी. तथा दूसरे छोटे दल विपक्ष को मजबूत बनाने के लिए डेमोक्रेटिक पार्टी में मिल गये । नेशनल एसेम्बली के मार्च 1992 के चुनाव में डी.एल.पी. अपना बहुमत बनाये रखने में असमर्थ रही । 299 में से इसे मात्र 149 सीटें मिली । डी.पी. 97 सीटें जीत कर प्रमुख विपक्ष के रूप में उभरा । आगामी राष्ट्रपति चुनाव के लिए उम्मीदवारों के मनोनयन की समस्या पर करीब-करीब सभी राजनीतिक दलों से दल बदल हुए । दल बदलुओं ने मिलकर न्यू कोरियन पार्टी बनायी । 1992 के राष्ट्रपति चुनाव में डी.एल.पी. उम्मीदवार किम यंग सम ने चुनाव जीता । अब दक्षिण कोरिया में डी.एल.पी. डी.पी. तथा यूनाइटेड पीप्लस पार्टी, तीन प्रमुख राजनीतिक दल हैं ।

12.4.3 राजनीतिक प्रक्रिया

(अ) चुनाव

विधायी संस्था नेशनल एसेम्बली के लिए दक्षिण कोरिया में सबसे पहला चुनाव 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ की देख-रेख में हुआ था । संयुक्त राष्ट्र संघ की योजना के अनुसार चुनाव पूरे कोरिया में होने थे । परंतु उत्तर कोरिया ने यू.एन.ए. की देख-रेख में चुनाव कराये जाने की योजना का विरोध किया । तथापि नेशनल एसेम्बली के लिए चुनाव हुए । नेशनल एसेम्बली अंत में एक मात्र विधायी संस्था बनी । इसने संविधान के प्रावधान के अनुसार दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति का चुनाव किया । इस संविधान की घोषणा नेशनल एसेम्बली ने पहले की थी । नेशनल एसेम्बली बिना किसी रूकावट के 1961 तक काम करती रही । 1961 में सैनिक शासकों ने इसका विघटन कर दिया । 1948-61 तक नेशनल एसेम्बली के लिए नियतकालिक चुनाव होते रहे। 1963 में नेशनल एसेम्बली को पुनर्जीवित किया गया । सैनिक तथा सैनिक समर्थित दलों की देख रेख में इसके लिए चुनाव हुए । तथा सेना समर्थित डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी इसमें विजय हुई । 1972 में पुनः नेशनल एसेम्बली भंग कर दी गई तथा सार्वभौम व्यस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव खत्म कर दिया गया । इसके बदले में नेशनल कानफ्रेंस फार यूनिफिकेशन नामक एक निर्वाचक मंडल बनाया गया । जिसमें 2,354 सदस्य थे । इस निर्वाचक मंडल को राष्ट्रपति तथा व्यवस्थापिका का चुनाव करना था । 1988 में लागू किये गये नये संविधान के द्वारा सार्वभौम व्यस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव पुनः आरंभ हुए ।

कई अवसरों पर राष्ट्रपति पद का चुनाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से हुआ । 1948 के पहले संविधान में राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था थी । 1952 में इसका संशोधन कर राष्ट्रपति चुनाव की व्यवस्था को जनमत पर आधारित कर दिया गया । 1961 में सेना ने सत्ता पर कब्जा कर लिया तथा नागरिक अधिकारों तथा संविधान को निलंबित कर दिया । 1972 में पुनः अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था शुरू की गई । सेवा समर्थित सरकार ने नेशनल कनफ्रेंस फार यूनिफिकेशन की स्थापना की । यह एक निर्वाचक मंडल था । इस निर्वाचक मंडल ने 1980 के दशक में इस व्यवस्था के रद्द किये जाने तक राष्ट्रपति को निर्वाचित किया । 1988 में राष्ट्रपति का चुनाव पुनः जनमत के आधार पर आरंभ हो गया । चुनाव के अतिरिक्त कई अवसरों पर जनमत संग्रह भी हुआ । सैनिक प्रशासन ने छावनी में बनाई गयी राजनीतिक व्यवस्था की पुष्टि के लिये जनमत संग्रह का आरंभ किया । यह मानना मुश्किल है कि चुनाव या जनमत संग्रह स्वतंत्र तथा निष्पक्ष थे । क्योंकि चुनाव के समय हर बार राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संचार माध्यमों ने अनियमितता का आरोप लगाया ।

(ब) उत्तराधिकार

जहां दक्षिण कोरिया की जनता संसदीय प्रजातंत्र तथा आवश्यक नागरिक अधिकारों की आकांक्षा रखती थी वहाँ इस देश में कई दशकों तक कठोर अधिनायक शासन रही है ।

का उत्तराधिकार हमेशा शांतिपूर्ण या संविधान के प्रावधान के अनुकूल नहीं हुआ । अधिकांश समय अप्रत्यक्ष चुनाव हुए हैं तथा सार्वभौम मताधिकार पर समय-समय पाबंदी लगी रही है । इसके अतिरिक्त कई अवसरों पर सैनिकों द्वारा सत्ता हथिया ली गई तथा सत्ता पलट हुए । इन दशकों में राजनीतिक हत्यायें, राजनीतिक नेताओं का बंदी बनाकर अनिश्चित समय तक रखा जाना तथा नागरिक अधिकारों ने करीब तीन दशकों से अधिक सीधे सैनिक शासन को झेला ।

डॉ0 सींगमन रही कोरिया के गणतंत्र (दक्षिण कोरिया) का पहला राष्ट्रपति था । उसका चुनाव 1948 में नेशनल एसेम्बली के सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से हुआ था । अप्रत्यक्ष चुनाव की पद्धति को बदल दिया गया तथा बाद के मौकों पर रही जनता के प्रत्यक्ष मत से भी राष्ट्रपति चुना गया । 1960 में चांग न्योन रही का उत्तराधिकारी बना । परंतु यह राज्यारोहण बिना किसी परेशानी के नहीं था । अपने शासन के विरूद्ध आंदोलनों से रही को त्याग पत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा । सैनिक द्वारा सत्ता हथियाए जाने से 1961 में मीयन को भी पदच्युत कर दिया गया । जनरल पार्क चुंग ही ने सत्ता पलट कर राजनीतिक सत्ता हथिया ली । इस तरह लम्बे सैनिक शासन का सिलसिला आरंभ हुआ । अक्टूबर 1979 के निष्फल सत्ता पलट में पार्क की हत्या कर दी गई । यह सत्ता पलट का प्रयास कोरिया के गुप्तचर विभाग के प्रमुख ने किया था। जिनको बाद में फांसी दे दी गई । पार्क के शासन काल में प्रधानमंत्री चोइकीन हाह ने कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्यभार संभाला । उनको नियमित कर दिया गया तथा वे अपने पद पर 1984 तक बने रहे । अपने शासन के खिलाफ विरोध के कारण उन्हें भी त्यागपत्र देना पड़ा । जनरल चुन डाकह्वान जो कि अपने पूर्ववर्ती को पदच्युत करके सेना का प्रधान बना था, अब दक्षिण कोरिया का राष्ट्रपति बना । सैनिक शासकों ने अप्रत्यक्ष चुनाव का आरंभ किया तथा अध्यक्षीय प्रणाली को मजबूत बनाया । जनता ने इस लगातार सैनिक शासन को अप्रजातांत्रिक समझा । लोगों ने प्रजातंत्र की पुनर्स्थापना के लिए संघर्ष जारी रखा । आंदोलनों के दबाव के कारण 1988 में अंततः प्रजातांत्रिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना हुई । रोह टाक वू एक चुने हुए असैनिक राजनीतिक नेता जनरल चुन का उत्तराधिकारी बना । इस प्रकार 25 वर्षों में दक्षिण कोरिया की जनता द्वारा चुना हुआ एक असैनिक राष्ट्रपति मिला । 1992 के राष्ट्रपति चुनाव के द्वारा कीम-यंग-सन ने रोह-टोई-वू का स्थान लिया ।

राजनीतिक दलों में भी उत्तराधिकार का प्रश्न मुश्किल था । इसका कारण दल व्यवस्था में अस्थायित्व तथा उसमें व्याप्त दरार था ।

(स) राजनीतिक आंदोलन

1948 में दक्षिणी क्षेत्र में कोरिया के गणतंत्र की स्थापना को उस प्रदेश के सभी लोगों का समर्थन नहीं प्राप्त था । जल्द ही वहां एक विद्रोह का आरंभ हुआ । क्रांतिकारियों ने अमरीकी सेना की वापसी, कोरिया का एकीकरण, प्रगतिशील भूमि सुधार तथा जनता की प्रजातांत्रिक आंकाक्षाओं की पूर्ति की मांग की । इस विद्रोह को हिंसात्मक रूप से दबा दिया गया । यद्यपि विद्रोह दबा दिया गया जनता के सरकार विरोधी विचारों को खत्म नहीं किया जा सका । 1950 के अंत में दमन के बावजूद सरकार के विरोध में वृद्धि हुई । स्थानीय स्वायत्त कानूनों को रद्द कर तथा नये सुरक्षा नियमों को पारित कर सरकार ने जनता के प्रजातांत्रिक अधिकारों को छीन लिया । सरकार के तानाशाही रवैये तथा सरकार में सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार के विरोध में 1960 में हिंसक छात्र आंदोलन हुए । छात्र विद्रोह ने सिगमन रही की सरकार को सत्ता छोडने के लिए बाध्य कर दिया। हो चोंम के नेतृत्व में एक अंतरिम सरकार ने सत्ता संभाली । संसदीय प्रणाली की सरकार की स्थापना हुई। अंतरिम सरकार ने यद्यपि उदारवादी व्यवस्था की स्थापना की परंतु यह बढ़ती हुई सामाजिक आर्थिक समस्याओं के समाधान में असमर्थ रही । यह कोरिया के पुनर्एकीकरण के लिए ठोस कदम नहीं उठा सकी । एक बार पुनः व्यापक अशांति हुई तथा प्रायद्वीप के 22 पुनर्एकीकरण के पक्ष में छात्र आंदोलन हुए । इस स्थिति में 1961 में सेना ने हस्तक्षेप किया तथा राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर लिया । सैनिक शासन ने संविधान को निलंबित कर दिया, राजनीतिक गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी गई तथा एक कठोर राष्ट्रपति शासन पद्धति की स्थापना की गई ।

1963 में जनरल पार्क ने जनरल चोग से सर्वोच्च सत्ता हासिल की । पार्क ने राजनीतिक गतिविधियों को वैध करार दिया । पार्क के शासन काल में दक्षिण कोरिया में सराहनीय आर्थिक प्रगति हुई । परंतु अप्रजातांत्रिक शासन तथा राजनीति में सेना के अधिपत्य से लोगों में अशांति फैली । अक्टूबर 1979 में व्यापक छात्र आंदोलन हुए । शासन का कठोर रूप पार्क की उदार

नीतियों को अशांति के लिए दोषी ठहराया गया । कोरिया की गुप्तचर संस्था (कोरियन सट्रैल इन्टेलिजेंस एजेंसी) के प्रधान ने पार्क की हत्या कर दी । पार्क की हत्या ने दक्षिण कोरिया को अभूतपूर्व राजनीतिक संकट में डुबो दिया । सैनिक शासन लागू किया गया तथा पार्क के शासन काल में प्रधानमंत्री चोइ कीन शासन अध्यक्ष बने । उसने बहुत से राजनीतिक कैदियों को छोड दिया तथा आपात आदेशों को रद्द कर दिया । पार्क के हत्यारे को फांसी की सजा हुई । परंतु जनता ने राजनीतिक संवैधानिक हजारों राजनीतिज्ञों को हिरासत में ले लिया गया तथा बहुतों को राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया । जनरल चून ने सैनिक सेवा से त्याग पत्र दे दिया तथा प्रशासन के असैन्यकरण के लिए कई कदम उठाये । उसने कोरिया के पुनर्एकीकरण की बात की तथा उत्तरी कोरिया के नेताओं को दक्षिण कोरिया आने का निमंत्रण दिया । उसने प्रशासन से भ्रष्टाचार मिटाने के कई उपायों की भी घोषणा की । इन सभी कार्यो से चुन की लोकप्रियता बढ़ गई । अब उसने अपने आपको सात वर्ष के लिए राष्ट्रपति निर्वाचित करवा लिया। दक्षिण कोरिया की अर्थव्यवस्था में फिर भी कोई सुधार नहीं हो सका । आर्थिक संकट के बढ़ने से जनता के कष्ट में वृद्धि हुई । इस परिस्थिति में 1981 के अंतिम महीनों में छात्र तथा मजदूरों ने आंदोलन का आरंभ किया । क्रोध को कम करने के लिए चून ने बहुत से सुनेहरे वायदे किये परंतु स्थिति में सुधार के लिए तुरंत कोई कदम नहीं उठाया, आंदोलन जारी रहा । सरकार के पूर्ण प्रजातांत्रिकरण, संसदीय व्यवस्था की स्थापना की मांग के जबाव में 1987 से धीरे-धीरे सरकार का असैन्यकरण आरंभ हुआ । 1988 तथा उसके बाद के वर्षों में भी जन आंदोलन तथा छात्र अशांति बनी रही । ये कोरिया के एकीकरण तथा कोरिया में स्थित अमरीकी सेना की वापसी की मांग कर रहे थे ।

12.4.4 आर्थिक विकास

कोरिया प्रायद्वीप के कुल क्षेत्र का 45 प्रतिशत भाग दक्षिण कोरिया के पास है । यह पहाडी इलाका है जमीन का सिर्फ 22 प्रतिशत कृषि योग्य है जिसकी जुताई की जाती है । जमीन का 66 प्रतिशत भाग वन प्रदेश की तरह चिन्हित है । दक्षिण कोरिया उत्तर कोरिया से चावल के खेत में धनी है । इस देश की जलवायु व्यापक कृषि के लिए बहुत ही उपयुक्त है । इस प्रदेश के पास मत्स्य तथा वन संसाधन दोनों हैं। यद्यपि जापानी शासन के अंतिम वर्षों में अंधाधुंध पेड़ गिराये गये तो अतः शक्ति के होने से देश ने पुनः अच्छे वन विकसित किये हैं । यह बड़ी मात्रा में लकड़ी का निर्यात करता है । दक्षिण कोरिया का समुद्रतट बहुत विस्तृत है जिससे मत्स्य उद्योग को अवसर प्राप्त है । देश मत्स्य निर्यात से बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित करता है । 1985 में दक्षिण कोरिया ने बड़ी मात्रा में मछली का निर्यात किया । इसकी कीमत 9600 लाख डालर थी ।

परंतु इस देश के पास ज्यादा खनिज पदार्थ नहीं हैं । इसके पास पैट्रोलियम का कोई सुरक्षित भंडार नहीं है । परंतु दक्षिण कोरिया के पास 50 तरह के खनिज हैं । इसका उद्योग आयातित खनिजों पर भारी रूप से निर्भर है । इन खनिजों में लोहा, तांबा, जस्ता, अल्युमिनियम आदि शामिल हैं । दक्षिण कोरिया में कोयला उपलब्ध है परंतु अपने देश में बढ़ती हुई मांग को पूरा करने तथा लोहा तथा इस्पात कारखाने को चलाते रहने के लिए यह कोयला आयात करता है ।

दक्षिण कोरिया ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को चुना है । राज्य की भागीदारी मूलतः निजी उद्यम को मौलिक संरचना उपलब्ध कराने तक ही सीमित है । सरकार ने एक योजना की संस्था विकसित कर, आर्थिक नीतियां बनायी हैं तथा बाजार के नियंत्रण के उपाय किये हैं । देश उन सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं कों निर्देशित करता है जिसका देश के आर्थिक विकास पर सीधा प्रभाव है

दक्षिण कोरिया के आर्थिक विकास में मौलिक दबाव निर्यात के माध्यम से आमदनी बढ़ाने पर है इसने देश के आर्थिक विकास को निर्यातोन्मुख बनाया है । यह दूसरे देशों के बाजारों के व्यवहार पर आधारित है । निर्यात प्रमुख विकास नीति 1962 में शुरू की गई तथा उस समय से आर.ओ. के. ने उसी नीति का पालन किया है । पहले आर.ओ.के. निर्यात प्रतिस्थापन की नीति अपना रहा था । एक सुशिक्षित कार्य बल तथा सस्ते मजदूरों के उपलब्ध होने ने अर्थव्यवस्था के बाह्मय उन्मुख होने की नीति लागू करने में सहायता की है । तथापि इस रणनीति ने देश की अर्थव्यवस्था को विकसित पूंजीवाद देशों पर निर्भर बना दिया है। एक उन्नत अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी संसाधन तथा कच्चा माल दक्षिण कोरिया के पास नहीं है। इसलिए इसे बृहत पैमाने पर कच्चे माल का आयात करना पड़ा । ऐसा करना उसे अपने कारखानों को चलाने के लिए जरूरी था । कच्चे माल के आयात पर निर्भरता ने भी अर्थव्यवस्था को दूसरे देशों पर निर्भर बना दिया

आरंभिक वर्षों में यह देश कठिन आर्थिक सकंट के दौर से गुजर रहा था । आर्थिक रूप से इसका कारण तीन वर्ष के कोरियाई युद्ध में हुई बर्बादी था । परंतु इसका प्रमुख कारण डा. रही की सरकार की रूढ़िवादी नीतियां थी । मूल्य वृद्धि की दर बहुत ऊंची थी परंतु विकास दर शून्य के स्तर पर थी । सैनिक शासन आने के बाद बनाई गई नीतियों से बहुत फायदा हुआ । 1963 से 1983 तक की अवधि में वार्षिक विकास दर 8.4 प्रतिशत थी । नई नीति बाह्मय उन्मुख है परंतु विकास दर स्थाई नहीं हो पा रही है । यह दर तुरंत घट कर 5.4 प्रतिशत हो गयी । परंतु 1986 में यह पुनः बढकर 12.5 प्रतिशत हो गयी । एक बार पुनः 1990 से संकट का आरंभ हो चुका है । आर्थिक विकास दर 1991 में 8.4 प्रतिशत थी जो कि 1992 में घटकर 5 प्रतिशत रह गई । 1993 में औद्योगिक उत्पादन में गिरावट आई और ऐसा भय व्यक्त किया जा रहा है कि कहीं देश निकट भविष्य में भीषण आर्थिक मंदी की चपेट में नहीं आ जाय । दक्षिण कोरिया की अर्थव्यवस्था की दूसरी कमजोरी यह है कि इसकी नीतियों ने आय के स्तर में बहुत बड़ा अंतराल पैदा कर दिया है । सामान्यतः कोई भी कोरियाई तथा खासकर ग्रामीण इस आय की समानता से परेशान हैं । उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती है । 17.5 प्रतिशत के कार्यकाल में से 2.6 प्रतिशत से ज्यादा लोग बेरोजगार हैं । बार-बार होने वाले जन आंदोलन तथा मजदूर वर्ग की बैचेनी भी इस बात की सबूत है कि उत्तरोत्तर सरकारों द्वारा अनुसरण की गई आर्थिक नीतियां एक समतावाद प्रजातांत्रिक समाज विकसित करने में असमर्थ रही है ।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये स्थान को अपने उत्तर के लिये प्रयोग करें ।

2) इस इकाई के अंत में दिये संकेतों से अपने उत्तर की जांच करें

1) आर.ओ.के. राजनीतिक विकास की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) आर.ओ.के. की आर्थिक नीतियों की आलोचनात्मक समीक्षा करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 डी.पी.आर.के. (उत्तर कोरिया) में राजनीतिक तथा आर्थिक विकास

आर.ओ.के. के विपरीत डी.पी.आर.के. में विकसित राजनीतिक व्यवस्था ज्यादा स्थाई है । 1972 तक देश का प्रशासन 1948 में बनाये एक संविधान के प्रावधानों के अनुसार चला। 1972 में एक नया संविधान बना तथा कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बाद अभी भी चल रहा है । यद्यपि डी.पी.आर.के. में एक दलीय व्यवस्था है परंतु दल का संरचनात्मक तंत्र पूरे देश में फैला हुआ है। यद्यपि शीर्ष नेतृत्व प्रारंभ से ही किम उल्ल सुंघ के हाथ में है। मध्यम स्तर तथा सामान्य कार्यकर्त्ता में कुछ परिवर्तन समय-समय पर हुए हैं। समय-समय पर चुनाव होते रहे हैं । परंतु डी.पी.आर.के. में खुली राजनीति की कोई गुंजाइश नहीं है। सामान्यतः मतभेद की अनुमति नहीं है। इन सब कारणों से आलोचक डी.पी.आर.के. को सर्वसत्तात्मक राज्य कहते हैं ।

12.5.1 संवैधानिक विकास

उत्तरी कोरिया में संवैधानिक विकास की शुरुआत 1947 में हुई। इस समय एक व्यवस्थापिका, जनता की सर्वोच्च सभा (सुप्रीम पीपल्स एसेम्बली) की स्थापना हुई। इस एसेम्बली कां चुनाव 1948 में हुआ । इस नव-निर्वाचित जनता की सर्वोच्च सभा ने उत्तर कोरिया को कोरिया का प्रजातांत्रिक जनवादी गणराज्य घोषित किया । प्रारंभिक संविधान जिसे 1947-48 में आरंभ किया गया ने 1972 तक उत्तर कोरिया को प्रशासनिक ढांचा दिया । तब 1972 में एक नया संविधान बनाया गया तथा उसकी घोषणा की गई । 1947 से हुए परिवर्तन को ध्यान में रखकर यह संबिधान बनाया गया । कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ वह संविधान अभी चल रहा हैं । 1992 में शीत युद्ध के बाद की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को देखते हुए संविधान संशोधन देश को वैचारिक अनुकूलन तथा आर्थिक खुलेपन का बढ़ावा देने के लिए किये गये राज्य के निर्देशक तत्वों में आत्म-निर्भरता का सिद्धांत भी जोड़ दिया गया है ।

कोरिया का प्रजातांत्रिक जनवादी गणराज्य एक स्वतंत्र समाजवादी राज्य है । देश की संप्रभुता कामगार लोगों के पास है। वे अपनी इस शक्ति का प्रयोग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा करते हैं। नागरिकों को मौलिक मानवाधिकारों के आश्वासन हैं। काम करने का अधिकार मौलिक अधिकारों में एक है।

राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष है। राष्ट्रपति प्रभावी कार्यपालक प्रधान भी है । उसके बहुत से अधिकार हैं परंतु वह जनता की सर्वोच्च सभा के प्रति उत्तरदायी है । सुप्रीम पीपल्स एसेम्बली कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था है । यह चार वर्ष के लिए राष्ट्रपति का चुनाव सार्वभौम मताधिकार के सिद्धांत के अनुसार गुप्त मतदान द्वारा करती है । सदस्यों की संख्या लचीली है । वर्तमान में इस सभा में 687 सदस्य हैं । दूसरी महत्वपूर्ण संस्था है केंद्रीय जन समिति (सेंट्रल पीपल्स कमेटी) है । इसमें राष्ट्रपति उप-राष्ट्रपति सचिव तथा जनता की सर्वोच्च सभा (सुप्रीम पीपल एसेम्बल) द्वारा चुने हुए सदस्य होते हैं । संसद की यह कार्यपालक परिषद है तथा राज्य के दूसरे अंगों की देखरेख करती है । यह प्रधानमंत्री, उप-राष्ट्रपति तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करती है तथा सभा द्वारा पारित विधायन को लागू करती है। संसद के दो अधिवेशनों के अंतराल में यह सरकार के मुख्य अंग की तरह कार्य करती है। एक मंत्रिपरिषद का भी प्रावधान है इसे प्रशासकीय परिषद के रूप में जाना जाता है। यह केंद्रीय जन समिति की देख रेख में काम करती है। स्थानीय स्वायत्त शासन का भी प्रावधान है। इन्हें जन सीयें कहा जाता है। केंद्रीय न्यायालय की अध्यक्षता में स्वतंत्र न्यायपालिका का भी प्रावधान है। यहां पर स्थानीय, जन तथा विशेष अदालतें हैं। न्यायधीशों की नियुक्ति सर्वोच्च जन सभा द्वारा होती है। न्यायपालिका जनता को तथा सरकार के दूसरे अंगों को स्वेच्छाचार व्यवहार से रक्षा करती है। सा न्यायिक कार्यों का खर्च सरकार वहन करती है। इसमें सामान्य नागरिकों का खर्च भी शामिल होता है ।

12.5.2 दल व्यवस्था

उत्तर कोरिया में कई सक्रिय राजनीतिक दल तथा दबाव समूह हैं । इनमें से कई वैध संस्थायें हैं। परंतु व्यवस्था के काम करने के ढंग से ऐसा लगता है कि डी.पी.आर.के. में एक दलीय व्यवस्था रही है । सभा के सदस्य निर्विरोध चुने जाते हैं । राजनीतिक मतभेद को सामान्यतः सहन नहीं किया जाता है । यद्यपि प्रजातांत्रिक केंद्रीयवाद का प्रावधान रहा है। परंतु लम्बे समय तक एक ही व्यक्ति के शासन में रहने से यह सिद्धांत अप्रभावी हो गया है । विरोध आंदोलनों को बल प्रयोग से दबा दिया जाता है । परिणामतः विरोध राजनीतिक भूमिगत रूप से या विदेश भूमि से कार्य करता है । असफल सत्ता पलट की खबरें अक्सर सुनने में आती हैं । इसके अतिरिक्त शासक दल में समय-समय पर सदस्यों को खत्म किया जाता रहा है ।

कोरिया के राजनीतिक दलों का आर्विभाव जापान के उपनिवेशवाद के विरूद्ध साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलनों में हुआ । साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलनों का प्रारंभ 1910 में कोरिया पर जापान के शासन के प्रारंभ से ही हो गया । 1920 के दशक में स्वतंत्रता आंदोलन का आरंभ करने के लिए कई राजनीतिक दल बने । इस समय कोरिया का साम्यवादी दल भी बना । चूंकि जापानी शासन बहुत ही हिंसक तथा अत्यधिक दमनकारी था, कोरिया के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं को विदेशों में शरण लेनी पड़ी । ज्यादातर साम्यवादी अपने देश में ही बने रहे तथा भूमिगत होकर संघर्ष करते रहे । कोरिया से जापान की वापसी के समय साम्यवादियों ने पहली स्वतंत्र सरकार बनायी । बाद में जब राजनीतिक कार्यकर्त्ता निर्वासन से लौट आये तो उनके साथ सहयोग से

साम्यवादियों ने उत्तर कोरिया कामगार दल (नार्थ कोरिया वर्क्स पार्टी) बनायी। के.डब्लू.पी.डी.पी.आर. के. के आरंभ से ही शासन कर रहा है तथा 1946 से किम इन संग सर्वोच्च पद पर बने हुए हैं। इस दल ने प्रलयकारी कोरिया युद्ध के बाद उत्तर कोरिया का पुनर्निर्माण किया । यह दल एक अखण्डित राजनीतिक संगठन है जो मार्क्सवाद लेनिनवाद में विश्वास करता है । इसकी संगठनात्मक संरचना विस्तृत है । दल तथा सरकार आंतरिक संरचना में बहुत कम अंतर है । अन्य राजनीतिक दलों में चोन्छोइस्ट चोंगा पार्ट तथा शोसल डेमोक्रेटिक पार्टी का नाम लिया जा सकता है । यह बहुत पुराने दल है परंतु इन्होंने अब स्वतंत्र कार्य करना बंद कर दिया है । इन दलों ने के.डब्ल्यू.पी.के. सहयोग से 1946 में पितृ भूमि की एकता के लिए डेमोक्रेटिक फ्रंट बनाया। यह मोर्चा फ्रंट तब से ही पुनर्एकीकरण के विचार का प्रचार कर रहा है । 1990 में विरोधी राजनीतिक शक्तियों ने सालमेशन फ्रंट मुक्ति मोर्चा बनाया । मुक्ति मोर्चा देश में बहु दलीय व्यवस्था की स्थापना तथा प्रजातांत्रिक तरीकों से कोरिया का पुनर्एकीकरण करना चाहता है । उत्तर कोरिया में मजदूर संघ आंदोलन चलाने की अनुमति है। परंतु इन आंदोलनों की शुरुआत शासक दल के प्रधान संगठन के झंडे के नीचे ही हो सकती है । दबाव समूहों की बहुलता की अनुमति नहीं है।

12.5.3 राजनीतिक प्रक्रिया

उत्तर कोरिया की जनता की सर्वोच्च सभा (सुप्रीम पीपल्स एसेम्बली) तथा राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव संविधान के प्रावधान के अनुसार तथा निर्बाध रूप से समय-समय पर होते हैं । पहली बार चुनाव 1947 में हुए थे तथा उसके बाद समय-समय पर चुनाव होते रहे हैं । जनता की सर्वोच्च सभा के लिए सदस्यों का चुनाव निर्विरोध हुआ । 17 वर्ष तथा उससे अधिक के नागरिकों को मतदान का अधिकार है ।

देश के सर्वोच्च कार्यपालक राष्ट्रपति के पद का उत्तराधिकार अब तक निर्बाध रहा है तथा संविधान के प्रावधान के अनुसार हुआ है । किम-इल-सुंग समय-समय पर राष्ट्रपति तथा देश के मुख्य कार्यपालक के रूप में चुने जाते हैं । दूसरे महत्वपूर्ण पदों पर उत्तराधिकार आदि महत्वपूर्ण पदों पर के.डब्ल्यू.पी. के सदस्यों को समाप्त किये जाने के कारण नियमित रूप से होता रहा है । यद्यपि विरोधी राजनीतिक गतिविधियों की अनुमति नहीं है। के.डब्ल्यू.पी. जनता के साथ अपना संबंध बनाये रखती है । इससे इसे अपनी सामाजिक राजनीतिक योजनाओं के लिए जनता का समर्थन प्राप्त होता है । जनता को अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक समस्याओं पर भी संगठित किया जाता है । दक्षिण कोरिया में अमरीका की उपस्थिति को डी.पी.आर.के. के लिए खतरे के रूप में उपस्थित किया जाता है । ऐसे खतरों के लिए जनता संगठित रहती है । कभी-कभी उन्हें कोरिया के एकीकरण के लिए भी संगठित कियां जाता है । विरोधी राजनीतिक गतिविधियां भी चलती रहती हैं । कभी-कभी उनकी भूमिगत गतिविधियां शासक दल पर दबाव भी डालती हैं । परिणामतः हाल में के.डब्ल्यू.पी. ने देश को खोलने तथा राजनीतिक व्यवस्था को उदार बनाने का कदम उठाया है । इसने रूढिवादी, मार्क्सवादी, लेनिनवादी सिद्धांतों को अपनाया था । अब यह कोरियाई राष्ट्रवाद आत्मनिर्भरता आदि की बात करता है । इसे सामूहिक रूप से कोरिया की भाषा में "जूचे" का सिद्धांत कहते हैं ।

12.5.4 आर्थिक विकास

उत्तर कोरिया में कृषि भूमि कुल भूमि का 20 प्रतिशत तक सीमित है । इस देश के पास विपुल कृषि संसाधन नहीं हैं । देश के दक्षिण तथा उत्तरी भाग में क्रमशः फसल की ऋतु 4 तथा 6 महीने की होती है । तथापि डी.पी.आर.के. ने वृक्षारोपण, जल संरक्षण तथा भूमि सुधार द्वारा कृषि योग्य भूमि में वृद्धि की है । खान तथा खनिज संसाधनों में उत्तर कोरिया दक्षिण कोरिया से अपेक्षाकृत रूप से समृद्ध है । कोयला, लोहा, अयस्क सीसा, जस्ता, टंगस्टन तथा फ्लोराइड काफी मात्रा में उपलब्ध है । इस देश के पास खनिज तेल नहीं हैं ।

यद्यपि यहां की जलवायु अच्छे वन के विकास के लिए उपयुक्त है परंतु अच्छे किस्म के पेड़ बड़ी मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं । उत्तर कोरिया के पास समुद्री तथा मीठे जल दोनों ही प्रकार के मत्स्य संसाधन हैं । जल संरक्षण से तट पर मछली पकड़ने की सुविधा मिल जाती है । जापानी समुद्र तथा पीले समुद्र में गहरे समुद्र से मछली पकड़ने की सुविधा प्राप्त है ।

इस प्रायद्वीप के संपूर्ण क्षेत्र का करीब 5 प्रतिशत डी.पी.आर.के. अधिकार क्षेत्र में पड़ता है । सम्पूर्ण भूमि 538 वर्ग किलोमीटर है । इस देश की आजादी सघन नहीं है । हकीकत में इस देश

में मानव शक्ति की कमी है ।

र कोरिया ने बहुत केंद्रीयकृत तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास की नीति अपनायी है । अर्थ व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण प्रायः पूर्ण है । निजी क्षेत्र सिर्फ नाम मात्र है । छोटे से लेकर बड़े उद्योग अर्थव्यवस्था का सा क्षेत्र राजकीय क्षेत्र के अंदर आता है । राजनीतिक अधिकारियों के द्वारा आर्थिक स्वाबलम्बन का उद्देश्य रखा गया है । अर्थव्यवस्था का विकास भीतर की ओर उन्मुख है । तथापि 1980 के दशक के मध्य से सरकार ने देश को विदेशी पूंजी निवेशकों के लिए खोलना शुरू कर दिया है । विदेशी कंपनियों के साथ सांझा उपक्रम को प्रोत्साहित किया जा रहा है । डी.पी.आर.के. आधुनिकीकरण की बृहत योजना पर प्रस्थान कर चुका है । उनको सफल बनाने के लिए यह पश्चिम से मदद मांग रहा है ।

डी.पी.आर.के. ने योजनाबद्ध विकास के मार्ग को चुना । कोरिया युद्ध के तुरंत बाद इसने पहले तीन वर्ष की पुनर्निर्माण योजना बनायी बाद में यह पांच वर्षीय योजना बनी । पंचवर्षीय योजनाओं के बाद यह सात वर्ष की योजना बनाने लगा । अब यह देश अपनी तीसरी सात वर्षीय योजना (1987-93) में पहुंच चुका है । योजना का मुख्य दबाव सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है। 1946 में सरकार बनाने के तुरंत बाद शासक दल ने जोतने वालों के बीच जमीन बांटने के उद्देश्य से भूमि सुधार का कार्य शुरू किया । आरंभ में निजी खेती को प्रोत्साहन दिया गया । कोरिया युद्ध की समाप्ति के पश्चात सामूहिक खेती की शुरुआत हुई । 1958 के अंत तक निजी खेती को पुर्णतः समाप्त कर दिया गया । अब या तो सहकारी कृषि होती है या सरकारी खेतों में खेती होती है ।

डी.पी.आर.के. ने 1950 के दशक में भीषण सफलता हासिल की । प्रथम दोनों योजनाएं पूरी तरह लागू की गई तथा समय से पहले ही लक्ष्य की प्राप्ति कर ली गई । परंतु तीसरी योजना में समस्याएं उत्पन्न हुई । सात वर्ष की जगह योजना अवधि को बढ़ाकर दस वर्ष कर दिया गया । 1950-53 के कोरिया युद्ध के दौरान नष्ट हुई अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण का कार्य पहली योजना (तीन वर्ष) में पूरा कर लिया गया। द्वितीय योजना में औद्योगिक तथा सैनिक विकास की नींव डाली गई। तीसरी योजना में उद्योग को गति मिली। बाद की योजनाओं में तकनीक के विकास, औद्योगिक उत्पादन, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, नये उर्जा स्रोत बनाने, उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाने, क्षेत्रीय संतुलन तथा आधुनिकीकरण पर जोर दिया गया।

जापान के शासकों ने कोरिया की अर्थव्यवस्था को सामंत शासित रखा । एक दशक के भीतर डी. पी.आर.के. की सरकार ने कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था को अत्यधिक विकसित औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था में बदल दिया । अब कुल घरेलू उत्पान का 80 प्रतिशत उद्योग धंधे से आता है । कृषि का यांत्रिकरण हुआ है तथा 1950 के आंरभिक वर्षों की तुलना में उत्पादन में कई गुणा वृद्धि हुई है । चूंकि देश कृषि संसाधनों में बहुत धनी नहीं है। डी.पी.आर.के. ने उद्योगों का विकास किया है। ये इस्पात, लोहा, गैर फेरस धातु, मशीन औजार, खाद, प्लास्टिक, सीमेंट का उत्पादन करते हैं। इस देश में मध्यम हल्के तथा छोटे स्तर के उद्योगों को प्रोत्साहन मिला है । ये उपभोक्ता संबंधी वस्तुएं पैदा करती हैं । चूंकि कोरिया में पेट्रोलियम उपलब्ध नहीं है। डी.पी.आर.के. में जल विद्युत उत्पादन तथा कोयला के खनन पर अधिक जोर दिया जाता है । इसने खनन क्षेत्र को परिष्कृत तकनीक की सहायता से विकसित किया है । डी.पी.आर.के. ने दावा किया है कि 1980 के दशक के मध्य में इसने राष्ट्रीय द्रव्य उत्पादन में 8.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त किया तथा औद्योगिक उत्पादन में 12.2 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की । वर्तमान योजना का लक्ष्य कुल घरेलु उत्पाद में 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि प्राप्त करना है ।

यद्यपि उत्तर कोरिया एक स्वतंत्र औद्योगिक आधार तथा आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की नींव डालने में सफल रहा है। देश तुलनात्मक रूप से विदेशी सहायता पर कम निर्भर है, फिर देश को कभी-कभी आर्थिक संकट का सामना करना पडा है । 1990 में डी.पी.आर.के. को कई आघात लगे । उन आघातों पर काबू पाने के लिए इसने अपनी अर्थव्यवस्था को आंशिक रूप से खोल दिया । अब साझा प्रयासों में विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ावा दिया जाता है । हकीकत में अब उत्तर कोरिया विदेश पूंजी निवेशकों को मनाने के लिए जोर शोर से प्रयास कर रहा है । इसने अपने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भी विविधता लाई है । अब यह देश पश्चिमी देशों, जापान तथा तृतीय विश्व के कई देशों के साथ व्यापार को प्रोत्साहन दे रहा है ।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे के स्थान को अपने उत्तर के लिये प्रयोग करें ।

2) अपने उत्तर की जांच हेतु इकाई के अंत में दिये संकेतों से तुलना करें ।

1) डी.पी.आर.के. में दल व्यवस्था पर निबंध लिखें ।

.....

.....

.....

2) डी.पी.आर.के. की आर्थिक विकास नीति का विश्लेषण करें ।

.....

.....

.....

.....

12.6 सारांश

कोरिया एक देश था । विदेशी शक्तियों के षड्यंत्र से इसका बंटवारा हुआ । जनता ने अभी भी बंटवारे को स्वीकार नहीं किया है । पुनर्एकीकरण की मांग अभी भी कोरिया की राजनीति का मौलिक विषय है ।

आर.ओ.के. ने भारी आर्थिक विकास किया है परंतु यह आश्रित विकास है । इसके अतिरिक्त आर.ओ.के. में जिस प्रकार का विकास हुआ है, उससे अमीर-गरीब तथा शहर और गांव के बीच अंतर बढ़ा है । परिणामतः देश को समय-समय पर सामाजिक राजनीतिक अशांति का सामना करना पड़ता है ।

डी.पी.आर.के. ने एक स्थाई राजनीतिक व्यवस्था बनायी है । साथ ही साथ इसने तुलनात्मक रूप से आत्मनिर्भर तथा समाजवादी व्यवस्था का आधार रखा है । परंतु यह समाजवादी प्रजातंत्र के ऊँचे आदर्श को प्राप्त नहीं कर सका है । परिणामतः लोगों को राज्य की संरचना सर्वसत्तात्मक लगती है ।

12.7 शब्दावली

प्रायद्वीप : यह एक ऐसा भूमि का क्षेत्र है जो प्रायः जल से घिरा रहता है ।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

हेनर्थोन विलियम : 1971 : *ए हिस्ट्री ऑफ कोरिया,* न्यूयार्क, द फ्री प्रेस

हलवर्ट, हेमर बी, : 1962, *हिस्ट्री ऑफ कोरिया,* लंदन, रोन्टलेज

राइट इडवर्ड.आर. (एडिटेड) : 1975, *कोरियन पालिटिक्स इन ट्रानजिशन,* सयाटल, वाश, यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन प्रेस

चुग, जोसेफ सांगा ह्यन : 1974 : *द नार्थ कोरियन इकोनोमी : सटरक्चर एण्ड डवलेपमेंट* : हूमर इंस्टीट्यूशन प्रेस : स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी

कंजनेट्स, पाल डब्ल्यू : 1977 : *इकोनोमिक ग्रोथ एण्ड स्टरक्चर इन रिपब्लिक ऑफ कोरिया* : न्यू हेमेन, कान, येल यूनिवर्सिटी प्रेस

कीहल, यंग ह्वान : 1984 : *पालिटिक्स एण्ड पालिसीज इन डीवाइडड कोरिया : रिजीम्स इन कन्ट्रास्ट* : बाउल्डर, कोलो एण्ड लंदन, वैस्टमिय प्रेस

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जापानी शासन औपनिवेशिक, दमनकारी तथा शोषक था ।

2) जापान ने केंद्रीयकृत प्रशासन लागू किया तथा सामाजिक आर्थिक मूल संरचनाओं को विकसित किया ।

3) जापान ने अपने साम्राज्यवादी हितों की वृद्धि के लिये कोरिया वासियों तथा उनके सामानों का इस्तेमाल किया ।

4) जापान ने कोरिया में किसी प्रकार की राजनीतिक गतिविधि की अनुमति नहीं दी ।

बोध प्रश्न 2

1) दक्षिण कोरिया पर अमरीकी सेना तथा उत्तर कोरिया पर सोवियत संघ के कब्जे के कारण उत्तर तथा दक्षिण कोरिया के बीच विभाजन रेखा खींचनी पड़ी। कोरिया युद्ध ने विभाजन की औपचारिकता पूरी कर दी ।

बोध प्रश्न 3

1) 1) बार-बार नये संविधानों की घोषणा संविधानों में भारी संशोधन तथा संविधानों का रद्द किया जाना ।

   2) दुर्बल दल व्यवस्था

   3) बार-बार जनमत संग्रह

   4) राजनीति में सेना की भागीदारी

   5) राजनीतिक पदारोहण का निर्बाध नहीं होना

   6) विवादास्पद चुनाव

   7) निरंतर राजनीतिक तनाव

   8) पुनर्एकीकरण जनता की मांग रही है

2.) 1) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था

   2) बाह्य तथा निर्यातोन्मुख अर्थव्यवस्था

   3) कच्चे मालों के आयात पर निर्भरता

   4) ऊँची विकास दर

   5) असमानता धनी गरीब तथा शहर के बीच अंतर बढ़ा

बोध प्रश्न 4

1) 1) एक दलीय व्यवस्था

   2) राजनीतिक दल बनाने पर कोई संवैधानिक प्रतिबंध नहीं है। परंतु विरोधी गतिविधियों की अनुमति नहीं है ।

   3) शासक दल, कोरियन वर्कर्ज पार्टी रचनात्मक मार्क्सवाद का अनुसरण करती है ।

2) 1) राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था

   2) केंद्रीकृत योजना व्यवस्था

   3) निजी स्वामित्व को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है ।

   4) मुख्य लक्ष्य आत्म-निर्भरता प्राप्त करना है ।

   5) भारी तथा मौलिक उद्योगों की प्रधानता

   6) समूर्ण कृषि सामूहिक सत्ता तथा सरकारी क्षेत्र में है ।

इकाई 13 विदेश नीति

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 दक्षिण आर.ओ.के. तथा उत्तर डी.पी.आर.के. की विदेश नीतियां
- 13.2.1 विदेश नीति के निर्धारक तत्व
- 13.2.2 विदेश नीति का विकास

13.3 विदेश सम्बन्ध : कोरिया का गणतंत्र—कोरिया (आर.ओ.के.)
- 13.3.1 आर.ओ.के. तथा संयुक्त राज्य अमरीका के सम्बन्ध
- 13.3.2 आर.ओ.के. तथा जापान के सम्बन्ध
- 13.3.3 दक्षिण कोरिया तथा दूसरे राष्ट्र

13.4 विदेश सम्बन्ध : कोरिया का जनवादी प्रजातंत्रात्मक गणतंत्र (डी.पी.आर.के.—उत्तर कोरिया)
- 13.4.1 डी.पी.आर.के. तथा चीन के सम्बन्ध
- 13.4.2 डी.पी.आर.के. तथा भूतपूर्व सोवियत संघ के सम्बन्ध
- 13.4.3 डी.पी.आर.के. तथा जापान के सम्बन्ध
- 13.4.4 डी.पी.आर.के. तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सम्बन्ध
- 13.4.5 डी.पी.आर.के. तथा दूसरे देश के सम्बन्ध

13.5 उत्तर-दक्षिण कोरिया सम्बन्ध

13.6 परमाणु अप्रसार संधि की समस्या

13.7 भारत-कोरिया सम्बन्ध

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में दक्षिण (आर.ओ.के.) तथा उत्तरी (डी.पी.आर.के.) कोरिया की विदेश नीति का वर्णन है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न बातें जान सकेंगे ।

- आर.ओ.के. तथा डी.पी.आर.के. विदेश नीति के निर्धारक तत्वों को पहचान सकेंगे ।
- दोनों देशों की विदेश नीति के विकास को समझ सकेंगे ।
- विश्व के अन्य देशों के साथ इन दोनों राज्यों के सम्बन्ध को समझ सकेंगे ।
- भारत तथा कोरिया के बीच ऐतिहासिक सम्बन्धों को समझ सकेंगे ।
- परमाणु (अप्रसार संधि) समस्या का विश्लेषण कर सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

कोरिया पूर्व एशिया का एक पुराना देश है । 19वीं सदी के उत्तरार्ध से इस देश में पश्चिमी शक्तियों की उपस्थिति को महसूस किया जाने लगा । पश्चिमी शक्तियों की मौजूदगी ने कोरिया को अपना उपनिवेश बनाने के लिए जापान को उकसाया । इस प्रायद्वीप से जापान की वापसी के तुरंत बाद इस पर संयुक्त राज्य अमरीका तथा भूतपूर्व सोवियत संघ का कब्जा हो गया । इस तरह कोरिया महाशक्तियों के बीच शत्रुता का शिकार हो गया । इस भूमि पर बड़े पैमाने पर एक लड़ाई लड़ी गई तथा इस लड़ाई के अन्त में कोरिया का औपचारिक बंटवारा हो गया । दक्षिण तथा उत्तरी कोरिया की विदेश नीति को इन बातों ने प्रभावित किया ।

13.2 दक्षिण आर.ओ.के. तथा उत्तरी डी.पी.आर.के. की विदेश नीति

किसी भी देश की विदेश नीति घरेलू तथा विदेशी कारकों की मिश्रित प्रतिक्रिया होती है । किसी भी देश की विदेश नीति तीन स्तरों पर कार्य करती है। विश्व, क्षेत्रीय तथा द्विपक्षीय पर किसी भी देश की विदेश नीति जहां पर वह देश स्थित हैं वहां की भू-राजनीतिक जरूरतें पूरा करने के लिए इसके संघर्ष, इसकी घरेलू जरूरतों, आर्थिक विकास के प्रयास तथा किसी विचारधारा के प्रति इसकी प्रतिबद्धता का ठोस परिणाम होती है ।

13.2.1 निर्धारक तत्व

कोरिया से जापान के निकलते ही उस पर संयुक्त राज्य अमरीका तथा भूतपूर्व सोवियत संघ का कब्जा हो गया । विदेशी शक्तियों के कब्जे की परिणति दो क्षेत्रों में इस प्रायद्वीप के बंटवारे में हुई : वह क्षेत्र जो 38वीं सामानान्तर के उत्तर था उत्तर कोरिया कहलाया और 38वीं समानान्तर के दक्षिण का क्षेत्र दक्षिण कोरिया बना । जहां उत्तरी कोरिया पर भूतपूर्व सोवियत संघ का नियंत्रण था, वहां दक्षिण कोरिया पर संयुक्त राज्य अमरीका का नियंत्रण था । संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य सत्रों ने इन दोनों भागों को इकठ्ठा करने के कई उपाय सुझाये परन्तु इनमें से कोई भी उपाय सभी सम्बद्ध पक्षों को मंजूर नहीं हुआ । अन्ततः 1950 में युद्ध का आरंभ हुआ । इस युद्ध में दक्षिण कोरिया को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा खड़ी की गई सोलह देशों की सेना, जिसका नेतृत्व अमरीका के हाथ में था, का समर्थन प्राप्त था । उत्तरी कोरिया को सोवियत संघ तथा चीनी जनवादी गणराज्य का समर्थन मिला । जान माल की भारी हानि में युद्ध का अन्त हुआ तथा विभाजन की औपचारिकता पूरी हुई । दक्षिणी कोरिया पश्चिमी खेमें में रहा जबकि उत्तरी कोरिया एक समाजवादी राज्य में विकसित हुआ । दो भिन्न प्रकार की शासन तथा आर्थिक व्यवस्था का आरंभ दोनों राज्यों में हुआ । दोनों देशों की विदेश नीतियों पर विभाजन तथा अलग-अलग प्रकार की व्यवस्थाओं का प्रभाव भी पड़ा है । जहां दक्षिण कोरिया ने पश्चिमी खेमें के साथ घनिष्ट सम्बन्ध बनाने की कोशिश की है वहीं उत्तरी कोरिया ने चीन तथा भूतपूर्व समाजवादी राष्ट्रों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये हैं ।

दक्षिण कोरिया की उत्तर कोरिया के अतिरिक्त और किसी राज्य से प्रादेशिक सीमा नहीं है । इस प्रायद्वीप के बाहर इसका निकटतम पड़ोसी जापान है। यह भी सामरिक रूप से स्थित है । दक्षिण कोरिया के रास्ते चीन पहुंचना आसान है। इसकी ऐसी भौगोलिक स्थिति ने अमरीका की प्रधानता वाले पश्चिमी खेमें में दक्षिण कोरिया की अपने प्रभाव क्षेत्र में रखने की इच्छा उत्पन्न की ।

कोरियाई प्रायद्वीप के देशों को विरासत में एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था मिली । ये देश आवश्यक वस्तुओं की कमी से आक्रान्त थे । जबकि संयुक्त राष्ट्र अभिकरण तथा अमरीका ने दक्षिण कोरिया को आसन्न आर्थिक संकट से उबरने में मदद की । उत्तरी कोरिया को समाजवादी खेमें से समर्थन मिला । दक्षिण कोरिया आरंभ से ही रूढिवादी तथा दक्षिण पंथी राजनीतिक नेताओं का गढ़ रहा है । राष्ट्रपति डा. सींगमन रही अमरीका द्वारा शिक्षित राजनीतिज्ञ थे । उनके बाद सेना ने सत्ता संभाली । यह सेना अमरीकी सहयोग से खडी की गई थी । यहां का उत्तरोत्तर नेतृत्व समाजवाद के भय से आक्रान्त था। इसी कारण से यहां के नेताओं को अमरीका तथा पश्चिमी खेमें के साथ मजबूत सम्बन्ध बनाने मे हिचक नहीं हुई । दक्षिण पंथी नेतृत्व ने संयुक्त राष्ट्र अभिकरणों तथा अमरीका द्वारा निर्धारित विकास रणनीति को चुना । इस तरह इस देश को पश्चिम समर्थक विदेश नीति का अनुसरण करना पडा ।

उत्तरी कोरिया पर हमेशा ही साम्यवादियों तथा राष्ट्रवादियों का प्रभाव रहा है । इन लोगों ने समाजवादी खेमें तथा गुट-निरपेक्ष राष्ट्र समूह के देशों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाये । उत्तरी कोरिया के नेतृत्व ने विकास का ऐसा रास्ता चुना जिसके लिए उसे मुख्यतः समाजवादी देशों से सहायता तथा मदद लेनी पडी । समाजवादी खेमें के विघटन के पश्चात यह राष्ट्र अलग-थलग पड गया । अब धीरे-धीरे यह अपने अलगाव से बाहर निकल रहा है । परमाणु अप्रसार संधि के मामले ने इस बात को स्थापित कर दिया कि उत्तर कोरिया अब अलग-थलग नहीं है ।

13.2.2 विदेश नीतियों का विकास

इन दोनों देशों आर.ओ.के. तथा डी.पी.आर.के. की विदेश नीति का विश्लेषण तीन स्तरों में

सामान्यीकरण तक फैला हुआ था । दूसरा चरण चीन तथा अमरीका के बीच सामान्य सम्बन्ध स्थापित होने से लेकर शीत युद्ध की समाप्ति (सोवियत संघ के विघटन) तक फैला था । तीसरा चरण शीत युद्ध के बाद का समय है । प्रथम चरण में दक्षिण कोरिया (आर.ओ.के.) पश्चिमी खेमें तथा जापान के साथ ही कूटनीतिक, आर्थिक तथा दूसरे सम्बन्ध रख रहा था तथा उत्तर कोरिया (डी.पी.आर.के.) समाजवादी खेमें तक ही सीमित था । चीन तथा अमरीका के बीच सम्बन्धों की सामान्यीकरण तथा कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना ने डी.पी.आर.के. तथा आर.ओ.के. दोनों की विदेश नीतियों में गुणात्मक परिवर्तन लाये । डी.पी.आर.के. जहां गुटनिरपेक्ष आंदोलन में मित्र ढूंढ रहा था तथा समाजवादी खेमें के देशों से संबंध बनाने का आरंभ कर रहा था वहीं आर.ओ.के. चीन सोवियत संघ के खेमें के बाहर के देशों से सम्बन्ध बनाने का प्रयास कर रहा था । शीत युद्ध की समाप्ति के बाद विश्व मंच पर दूसरे प्रकार के विकास का आरंभ किया । अब अमरीका अकेली महाशक्ति के रूप में उभरा है । भूतपूर्व समाजवादी खेमा विखंड़ित हो गया है। अपने गहन आर्थिक संकट तथा राजनीतिक अस्थिरता से रूस अब महाशक्ति नहीं रह गया है । इस तरह से इस महाद्वीप से महाशक्तियों की शत्रुता समाप्त हो गई । दक्षिण कोरिया चीन तथा रूस के प्रयासों के बावजूद उत्तरी कोरिया अमरीका तथा जापान के साथ मित्रवत् होने में असमर्थ रहा है। चीन विश्व की महाशक्तियों में एक है बिना इसकी सहमति के कोरियाई महाद्वीप में कोई महत्वपूर्ण फैसला नहीं किया जा सकता है। परिणामतः हाल में जब यह प्रायद्वीप परमाणु अप्रसार संधि की समस्या को लेकर युद्ध की कगार पर पहुंच गया था, किसी कठोर कदम उठाये जाने से चीन के विरोध ने अमरीका तथा इसके मित्र राष्ट्रों को रोक दिया । शायद यह प्रायद्वीप एक और विध्वंस से बच गया है ।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये गये स्थान का अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें ।

2) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर की जांच करें ।

1) कोरियाई प्रायद्वीप के राज्यों की विदेश नीतियों के निर्धारक तत्वों की चर्चा करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.3 आर.ओ.के. (दक्षिण कोरिया की) के विदेश सम्बन्ध

कोरिया के युद्ध ने आर.ओ.के. विदेश सम्बन्धों के भविष्य को प्रभावित किया । यह देश पश्चिमी खेमें से लम्बे समय के लिए बंध गया । अमरीका-चीन के सम्बन्ध का सामान्यीकरण तथा शीत युद्ध की समाप्ति ने आर.ओ.के. की विदेश नीति तथा सम्बन्धों में नये तत्वों का समावेश किया ।

13.3.1 आर.ओ.के. तथा अमरीका से सम्बन्ध

आर.ओ.के. तथा अमरीका सम्बन्ध दो स्वतंत्र संप्रभु राष्ट्रों के सम्बन्ध से बिल्कुल मिलता है। अमरीका की सेना ने द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त में दक्षिण कोरिया पर कब्जा कर लिया । तब से अमरीका का एक बड़ा सैनिक दस्ता दक्षिण कोरिया में तैनात रहा है । दक्षिण कोरिया अपनी सुरक्षा के लिए मूलतः अमरीका पर निर्भर है। 1945 में इस क्षेत्र पर कब्जा करने के बाद अमरीका इस क्षेत्र के राजनीतिक आर्थिक विकास में गहराई से उलझ गया है । 1948 में स्थापित सबसे पहली सरकार सींगमन रही की, अमरीका शिक्षित रूढिवादी राजनीतिज्ञ की अध्यक्षता में बनी । दक्षिण कोरिया की सेना अमरीका द्वारा खडी की गई । इसको अमरीका ने ही शिक्षित किया तथा अमरीकी शस्त्रों से सुसज्जित किया । इस तरह सेना पर स्पष्ट अमरीकी प्रभाव है, अमरीका

प्रभावित किया तथा आर्थिक विकास में सहायता दी । उत्तरोतर सरकारों द्वारा विकास ने निर्यात उन्मुख विकास नीति को अपनाया । दक्षिण कोरिया बाजार के प्रधानता के लिए अमरीका तथा उसके मित्र राष्ट्रों पर निर्भर था ।

जब तक ऐसी स्थिति है तब तक दोनों देशों के बीच तनाव के अवसर बहुत कम हैं । वैसे तो दक्षिण कोरिया में अमरीका विरोधी प्रदर्शन नियमित रूप से होते रहे हैं फिर भी दोनों देशों के बीच बिना तनाव का सम्बन्ध रहा है । आर.ओ.के. में समय-समय पर हुए लोकप्रिय असंतोष तथा विरोध आंदोलनों ने देश को हिला दिया । विरोध करने वालों ने कोरिया से अमरीका सेना की वापसी की मांग की । साथ-साथ कोरिया के एकीकरण तथा समतावादी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के निर्माण की मांग की । इन आंदोलनों को हिंसक रूप से दबा दिया गया । अमरीका के मानव अधिकार आंदोलनकारी तथा प्रजातांत्रिक ताकतों ने आर.ओ.के. में जन आंदोलनों के दबाये जाने का विरोध किया । आंदोलनकारियों ने इस दमन को मानव अधिकारों का निषेध माना । 1973 में जब आर.ओ.के. के एक विपक्षी नेता कीम-डे-जूंग को तथाकथित सरकार समर्थक ताकतों ने अपहृत कर लिया तो अमरीका के विरूद्ध जनविरोध पराकाष्ठा पर पहुंच गया । आर.ओ.के. के अमरीका सम्बन्ध निम्नतम बिन्दु पर पहुंच गये । अमरीकी राष्ट्रपति जेराल्ड फोर्ड ने आर.ओ.के. की यात्रा की तथा आर.ओ.के. के नेतृत्व को अमरीकी समर्थन का पुनर्आश्वासन दिया । 1976 में कार्टर के राष्ट्रपति चुने जाने के बाद अमरीका दक्षिण कोरिया सम्बन्ध पुनः तनावयुक्त हो गये । अपनी सारी थल सेना को वापस बुलाने का अमरीकी निर्णय, तथा अमरीका मे कोरियाई राजदूत का चावल विक्रयकर्ता के रूप में काम करने वाले कोड़ ने सम्बन्धों को दूषित कर दिया । अमरीका में कोरिया विरोधी आंदोलन ने जोर पकड़ लिया । चीन तथा अमरीका के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध की स्थापना से यह तनाव और बढ़ गया । इसी तरह अमरीकी टेनिस दल का उत्तरी कोरिया में खेल प्रतियोगिता में भाग न लेना भी इस तनाव को बढाने में सहयोगी रहा । यह तनाव कार्टर की दक्षिण कोरिया यात्रा तथा सेना की वापसी के निलंबन से आंशिक रूप से कम हो गया । इसके बावजूद दक्षिण कोरिया में मानव अधिकारों के दमन की निंदा अमरीका में होती रही । 1985 में जब कोरिया आये अमेरीकी नागरिकों को कोरिया के हवाई अड्डे पर सुरक्षा बलों द्वारा पीटा गया तो पुनः मतभेद उभरे । 1980 के वर्षों में स्वतंत्र प्रजातंत्र की पुनर्स्थापना के पश्चात अमरीका दक्षिण कोरिया सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गये ।

इन वर्षों में इन दो देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों का विकास हुआ । 1980 के वर्षों में आर. ओ.के. विश्व में अमरीका का सातवां बड़ा व्यापारी हिस्सेदार बन गया । आर.ओ.के. का 40 प्रतिशत से अधिक निर्यात अमरीका को होता है जबकि अमरीका का 20 प्रतिशत निर्यात दक्षिण कोरिया से आता है ।

दक्षिण कोरिया अमरीका को निर्यात अधिक तथा उससे आयात कम करता है अतः अमरीका का कोरिया से व्यापार घाटा बना रहा है। अब अमरीका निर्यात के लिए अमरीका दक्षिण कोरिया पर दबाव डाल रहा है । अमरीका आर्थिक पाबन्दियों की धमकी भी देता है । प्रतिबंधों से बचने के लिए दक्षिण कोरिया ने जापान सरीखें देशों से आयात बढ़ाया है । अब दक्षिण कोरिया अमरीका से करीब 100 ऐसी चीजें मंगाता है जो वह पहले दूसरे देशों से मंगाता था । कोरियाई बाजार अमरीका सामानों की प्रतिस्पर्धा बढाने के लिए कोरियाई सिक्के की मूल्य वृद्धि की गई । प्रतिरक्षा क्षेत्र में भी दोनों देशों में काफी सहयोग रहा है।

अमरीका तथा दक्षिण कोरिया "टीम स्प्रीट" नामक नौसैनिक अभ्यास कोरियाई प्रायद्वीप में हर वर्ष करते हैं । 1992 में कोरियाई लोगों के विरोध के कारण "टीम स्प्रीट" अभ्यासों को निलंबित कर दिया गया । उत्तरी कोरिया के विरोधों के बीच 1993 में इस अभ्यास को पुनः शुरू किया गया। सैनिकों की एक बहुत बड़ी संख्या को दक्षिण कोरिया में स्थाई रूप से रखा गया है । अमरीका ने दक्षिण कोरिया में परमाणु अस्त्र भी रखे थे, परंतु 1992 में अमरीका ने घोषणा की कि परमाणु शस्त्रों को दक्षिण कोरिया से हटा लिया गया हैं ।

इस क्षेत्र में परमाणु अप्रसार संधि को लेकर बढ़े तनाव के कारण अमरीका आर.ओ.के. में अपनी सैन्य उपस्थिति को पुनः दृढ कर रहा है । हाल में (अप्रैल 1994) दो अमेरीकी सैन्य परिवहन आर.ओ.के. के दक्षिणी शहर पूसन बन्दरगाह पर पहुंचे । इन जहाजों पर प्रक्षेपास्त्रभेदी पैट्रीयट तोपखाना है। एक अनुमान के अनुसार तीन पैट्रीयट तोपखाना 24 प्रक्षेपकों के साथ पहुंच चुका है । 84 स्टींगर प्रक्षेपास्त्र भी पहुंच चुके हैं । अमरीकी स्रोंतों ने दावा किया है कि दक्षिण कोरिया को ये सामग्री इसलिए भेजनी पड़ी कि दक्षिण कोरिया को उत्तरी कोरिया के राकेट हमलों से रक्षा करनी थी । दक्षिण कोरिया के लोग अमरीकी तर्क से सहमत नहीं थे । प्रक्षेपास्त्रों की खेप भेजे

जाने का विस्तृत विरोध हुआ । परिणामतः सरकार ने सैनिकों की एक बहुत बड़ी टुकड़ी विरु. को रोकने के लिए नियुक्त की । 18 मार्च 1994 को विभिन्न शहरों में एकत्रित छात्र पुलिस से टकराये। ये लोग अमरीका के सुरक्षा सचिव वीलियम पेरी की दक्षिण कोरिया अफ्रीका यात्रा का विरोध कर रहे थे। छात्रों को तितर-बितर करने के लिए पुलिस को अश्रु गैस छोडनी पड़ी । 19 मार्च को पेरी दक्षिण कोरियाई अधिकारियों से सैनिक तैयारी के सम्बन्ध में तीन दिन की बातचीत के लिए आने वाले थे। इस समय उत्तर कोरिया की परमाणु योजना को लेकर बहुत अधिक तनाव बना हुआ था। छात्रों का मत था कि पेरी की यात्रा तथा पैट्रीयट प्रक्षेपास्त्रभेदी तोपखाने का लगाया जाना डी.पी.आर.के. युद्ध के लिए उकसायेगा । उनका कहना था कि दक्षिण कोरिया में पहले से ही 36,000 अमरीकी सैनिक मौजूद हैं । इससे इस प्रायद्वीप में तनाव में वृद्धि होगी ।

13.3.2 आर.ओ.के. के जापान से सम्बन्ध

जापान ने कोरिया पर अपने उपनिवेश की तरह चार दशक तक शासन किया । जापान की वापसी के समय यह एक कटु विरासत थी जिसने दोनों देशों के सम्बन्धों के भविष्य को प्रभावित किया । अमरीकी हस्तक्षेप ने इस क्षेत्र में तनाव को कम किया तथा आर.ओ.के. और जापान के बीच सम्बन्धों के सामान्यीकरण में मदद की । परन्तु सम्बन्धों के सामान्यीकरण की प्रकिया बहुत समय तक धीमी थी । इसका कारण समय-समय पर मतभेदों का उभरना था । 1980 के वर्षों में जापान में एक इतिहास की पुस्तक प्रकाशित हुई । इस पुस्तक में जापान तथा कोरिया सम्बन्ध के अतीत के सम्बन्ध में बहुत हानिकारक तथा विकृत करने वाली बातें थी । आर.ओ.के. ने जापान से एक ऋण की मांग की थी। जापान द्वारा इन्कार करने से इस पुस्तक के प्रकाशन से उत्पन्न चिड़चिड़ाहट को और बढ़ाया । यह चिड़चिड़ापन उस पुस्तक को वापस कर लिये जाने तथा बाद में 1983 में जापानी प्रधानमंत्री की दक्षिण कोरिया यात्रा से कम हुआ । 1984 में चून जो आर. ओ.के. के राष्ट्रपति थे जापान यात्रा पर गये । 40 वर्षों में कोरिया के किसी उच्च अधिकारी द्वारा यह पहली जापान यात्रा थीं । इस यात्रा में राजा हिरोहितो सहित कई जापानी नेताओं ने अतीत में कोरिया पर औपनिवेशिक शासन के लिए पश्चाताप व्यक्त किया । 1990 में आर.ओ.के. राष्ट्रपति शंह-टे-वु ने जापान की सरकारी यात्रा की । इस तरह से दोनों देशों के बीच यात्राओं का सिलसिला आरंभ हुआ जिससे परस्पर सम्बन्धों में स्पष्ट सुधार हुआ ।

वर्तमान में जापान आर.ओ.के. का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है तथा ये दोनों मजबूत आर्थिक सूत्र में बंधे हैं । दोनों के बीच वार्षिक व्यापार 31 करोड़ अमेरीकी डालर से अधिक का है । कच्चे माल के आयात के लिए दक्षिण कोरिया प्रधानतः जापान पर निर्भर है जिससे जापान के निर्यात की वस्तुएं बनायी जाती हैं ।

13.3.3 दक्षिण कोरिया तथा दूसरे देश

विश्व के अधिकांश स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ दक्षिण कोरिया का कूटनीतिक सम्बन्ध है । परन्तु अमरीका तथा जापान के अतिरिक्त इसके प्रमुख व्यापारिक साझेदार जर्मनी, आस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, कैनाडा, फ्रॉस, इटली, मलेशिया, साउदी अरबीया, ओमान, ताइवान, संयुक्त अरब एमिरेट, इंग्लैण्ड, सिंगापुर तथा होंगकांग हैं ।

बहुत से देशों के साथ दक्षिण कोरिया का व्यापार संतुलन प्रतिकूल है । परन्तु अमरीका, इंग्लैंड, जापान, सिंगापुर तथा कुछ अन्य देशों के साथ बहुत ही अनुकूल व्यापार संतुलन है । दक्षिण कोरिया के व्यापार में हाल के वर्षों में कई गुणा वृद्धि हुई है । दक्षिण कोरिया के समग्र व्यापार का प्रायः 50 प्रतिशत केवल अमरीका तथा जापान के साथ होता है ।

पश्चिमी खेमें के देशों ने कोरियाई युद्ध में दक्षिण कोरिया का समर्थन किया । तब से इन देशों के साथ दक्षिण कोरिया के राजनीतिक सम्बन्ध और भी मजबूत हुए ।

तीन वर्ष तक चले कोरियाई युद्ध में भूतपूर्व समाजवादी देश तथा चीन ने उत्तर कोरिया को समर्थन दिया । तब से वर्षों तक इन देशों के साथ दक्षिण कोरिया का सम्बन्ध ठंड़ा पड़ गया था। 1980 के दशक के अन्तिम वर्षों में ही सम्बन्ध सुधरना आरंभ हुआ । प्रजातांत्रिक ढंग से चुनी गई रोह-ताओ-वु की सरकार के आरंभ से सम्बन्ध सुधरने प्रारंभ हो गये । 1988 में दक्षिण कोरिया ने रूस तथा चीन के साथ अपने व्यापार का विस्तार किया । 1990 में दक्षिण कोरिया तथा पूर्व यूरोपीय देशों के बीच कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना हुई। रूस तथा दक्षिण कोरिया के बीच पूर्ण कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना के पश्चात सम्बन्धों को और अधिक सामान्य करने तथा

व्यापार बढ़ाने के लिए दोनों देशों के बीच कई उच्च स्तरीय बैठकें हुई । चीन तथा आर.ओ.के. के साथ पूर्ण कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना अगस्त 1992 में हुई । कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना के पश्चात रूस इस प्रायद्वीप के दोनों भागों के बीच सम्बन्ध सामान्य करने के लिए प्रयास करता रहा है । परमाणु अप्रसार संधि की समस्या को लेकर इस क्षेत्र में बढ़ते हुए तनाव के कारण दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति किमेयंग चीन पहुंचे । वे चीन के सभी प्रमुख नेताओं से मिले तथा परमाणु अप्रसार संधि को लेकर उत्तर दक्षिण कोरिया के बीच उलझन में हस्तक्षेप कर उसके समाधान करने का आग्रह किया । इस यात्रा के दरम्यान चीन तथा दक्षिण कोरिया आर्थिक सम्बन्धों के विस्तार करने पर सहमत हुए । कार के कलपुर्जे, हवाई जहाज तथा कुछ अन्य चीजें बनाने के लिए योजनायें बनायी गई ।

अगस्त 1992 में कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना के पश्चात चीन में दक्षिण कोरिया से व्यापार तथा चीन में पूंजी निवेश में काफी वृद्धि हुई है । अमरीका तथा जापान के पश्चात चीन दक्षिण कोरिया के निर्यात का सबसे बड़ा बाजार बन गया है ।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये हुए स्थान को अपने उत्तर के लिए उपयोग करें ।

2) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की जांच करें ।

1) आर.ओ.के. तथा अमरीका के सम्बन्धों की चर्चा करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) दक्षिण कोरिया तथा जापान के बीच बढ़ते सम्बन्धों का विश्लेषण करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) चीन तथा दक्षिण कोरिया एक दूसरे के पास कैसे आये ? इन देशों के सम्बन्धों में आगे विस्तार की कोई संभावना आपको लगती है ?

.....

.....

.....

.....

.....

13.4 डी. पी. आर. के. (उत्तर कोरिया) के विदेश सम्बन्ध

डी. पी. आर. के. की विदेश नीति तथा सम्बन्ध भी कोरिया युद्ध से प्रभावित हुए । बाद में अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद में बढते हुए विवाद, चीन अमरीका के आर.ओ.के. के कूटनीतिक सम्बन्धों की स्थापना, समाजवादी खेमें के विघटन ने डी.पी.आर.के. के विदेशी सम्बन्धों को प्रभावित किया ।

13.4.1 डी.पी.आर.के. तथा चीन के सम्बन्ध

चीन कोरिया सम्बन्ध बहुत पुराना है । कोरियाई समाज, सभ्यता तथा संस्कृति पर चीन का स्पष्ट प्रभाव है । बौद्ध धर्म जो इस प्रायद्वीप का प्रधान धर्म है, चीन से ही यहां आया । मध्य युग में कोरियाई असैनिक सेवा चीनी व्यवस्था का अनुकरण थी । कोरिया ने 13वीं सदीं में छपाई की तकनीक भी चीन से आयात की । दोनों देशों के बीच आर्थिक सम्बन्ध बढ़ते रहे हैं । जब कोरिया जापानी शासन से स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था, चीन ने उन राष्ट्रवादी कोरीयाईयों को शरण दी जिन्हें देश छोड़ने के लिए बाध्य किया गया था। कोरियाई राष्ट्रवादियों ने चीनी लोगों के क्रांतिकारी संघर्ष में भी हिस्सा लिया । उन लोगों ने छापामार युद्ध का अनुभव हासिल किया । कोरिया युद्ध के समय चीनी तथा कोरियाई लोगों के ऐतिहासिक बन्धन की जांच हुई तथा यह बंधन और मजबूत हुआ । 1950-53 तक चले कोरिया युद्ध में जब अमरीका के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र की सेना ने डी.पी.आर.के. के पक्ष में हस्तक्षेप किया तब चीन ने करीब एक लाख अनुभवी सैनिकों को भेजा जिसने आक्रमणकारियों को निष्कासित कर सम्पूर्ण उत्तरी कोरिया को आज़ाद करा लिया ।

चीनी लोगों के खून बहने से जिस दोस्ताना सम्बन्ध की स्थापना हुई वह निर्बाध रूप से बना हुआ है । 1970 के दशक में जब चीन अमरीका सम्बन्धों में सुधार हुए तो इस बात की प्रबल संभावना थी कि डी.पी.आर.के. के तथा चीन सम्बन्ध खराब होंगे । परन्तु समय बीतने पर ऐसा लगा कि ऐसी अटकलें बेबुनियाद थीं । चीनी नेता हुआ गुओ फेंग तथा डेंग सियाओ पींग ने 1978 मे डी.पी.आर.के. की यात्रा की तथा उत्तर कोरिया के विकास के लिए हर संभव सहायता देने का वचन दिया । 1982 में डेंग सियाओ पींग तथा झाओ जियांग (तत्कालीन प्रधानमंत्री) ने उत्तरी कोरिया की यात्रा की । 1987 तथा 1989 में उत्तरी कोरिया के सबसे बड़े नेता कीन जतल सुंग ने चीन की यात्रा की । यात्राओं के इस विनिमय से सम्बन्ध और मजबूत हुए ।

चीन डी.पी.आर.के. का एक प्रमुख साझेदार रहा है । दोनों देशों के बीच अब तक का व्यापार वस्तु विनिमय के सिद्धांत पर हुआ है । 1991 में धीरे-धीरे वस्तु विनिमय से नकद अदायगी व्यवस्था पर आधारित व्यापार की ओर बढ़ने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए । अभी भी व्यापार का एक बहुत बड़ा प्रतिशत वस्तु विनिमय के आधार पर होता है ।

13.4.2 डी.पी.आर.के. तथा रूस (भूतपूर्व सोवियत संघ) के सम्बन्ध

1945 के अगस्त के आरंभ में जापानी प्रतिरोध को दबाने के बाद सोवियत संघ की सेना ने कोरिया में प्रवेश किया । इसने संघर्षरत राष्ट्रवादियों को कोरिया की स्वतंत्र सरकार बनाने में समर्थन दिया । राष्ट्रवादियों ने 1947 में कोरिया के जनवादी गणतंत्र की स्थापना की । सोवियत संघ ने इस सरकार को मान्यता दे दी तथा रूसी सैनिकों की वापसी का वचन दिया । 1948 में रूसी सैनिकों को कोरिया से बुला लिया गया । कोरियाई प्रायद्वीप से लौटते समय सोवियत संघ ने कोरिया की सेना खड़ी करने में मदद की तथा अपने शस्त्र छोड़ दिये । कोरियाई युद्ध में सोवियत संघ ने डी.पी.आर.के. की मदद की । कोरियाई युद्ध के बाद सोवियत संघ ने युद्ध से क्षतिग्रस्त डी.पी.आर.के. के पुनर्निर्माण के लिये भारी सहायता दी । 1961 में दोनों देशों ने शांति मित्रता तथा सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर किये ।

अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन में विभाजन तथा चीन और सोवियत संघ के बीच बढ़ते हुए विवाद से सोवियत संघ तथा डी.पी.आर.के. सम्बन्ध में कुछ धब्बे विकसित हुए । ये धब्बे तुरंत हटा दिये गये तथा 1977 में दोनों देशों ने आर्थिक तथा तकनीकी सहयोग के समझौते पर हस्ताक्षर किये । समझौते की शर्तों के अनुसार सोवियत संघ ने डी.पी.आर.के. को बृहत पैमाने पर सहायता दी । 1979 में अफगान मुद्दे पर कुछ गलतफहमी पुनः पैदा हुई । उत्तर कोरिया तथा चीन ने अफगान गृह युद्ध में सोवियत संघ के शामिल होने को समर्थन नहीं दिया । सोवियत संघ ने डी.पी.आर.के. को पैट्रोलियम देना बन्द कर दिया । 1984 में सोवियत संघ के एक उच्च

स्तरीय प्रतिनिधिमंडल की डी.पी.आर.के. की यात्रा से सम्बन्ध पुनः सुधरे । इस प्रतिनिधि मंडल ने क्रिम-डल-सुंग के जन्मदिन समारोह में भी भाग लिया । मई 1984 में किम-डल-सुंग ने सोवियत संघ तथा अन्य पूर्व यूरोपीय देशों की यात्रा की । सोवियत संघ ने आर्थिक तथा सैन्य सहायता देना पुनः आरंभ किया तथा व्यापार सम्बन्धों को विस्तृत करने पर सहमत हुआ । 1985 में सोवियत संघ ने डी.पी.आर.के. की प्रतिरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए विमान भेजे । सहयोग के बढते हुए क्षेत्र के साथ ही दोनों के बीच उच्च स्तरीय प्रतिनिधिमंड़लों का आना जाना जारी रहा ।

1986 मे डी.पी.आर.के. ने सोवियत संघ को अपना नाम्पो बन्दरगाह इस्तेमाल करने की अनुमति दे दी । अक्टूबर 1986 में किम-इल-सुंग सोवियत संघ की राजकीय यात्रा पर गये । तथापि सोवियत संघ के विघटन के पश्चात सम्बन्धों में भारी परिवर्तन हुए । 1990 के वर्षों में दक्षिण कोरिया ने रूस तथा पूर्वी यूरोप के अन्य देशों के साथ अपने सम्बन्धों में सुधार किया । रूस ने वस्तु विनिमय पर आधारित व्यापार को खत्म कर तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार दर पर परिवर्तनीय मुद्रा में व्यापार को चुना । रूस ने 1961 में की गई शांति, मित्रता तथा सहयोग की संधि को भी 1993 में समाप्त कर दिया । इन सब बातों ने पूर्ववर्ती सोवियत संघ के उत्तराधिकारी राज्यों जिसमें रूस भी शामिल है, के साथ डी.पी.आर.के. के सम्बन्ध में तनाव उत्पन्न कर दिया । अब रूस अप्रत्यक्ष रूप से परमाणु अप्रसार संधि पर अमरीकी विचार का समर्थन करता है ।

13.4.3 डी.पी.आर.के. तथा जापान के सम्बन्ध

जापान तथा डी.पी.आर.के. के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध नहीं रहे हैं परन्तु व्यापार तथा आर्थिक सम्बन्ध चलते रहे हैं । तथापि ये निवधि नहीं रहे हैं । कभी-कभी चिड़चिड़ाहट आ जाती थी । 1982 में रंगून में एक बम विस्फोट की घटना घटी । इस विस्फोट में यात्रा पर आये दक्षिण कोरिया के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य मारे गये । डी.पी.आर.के. पर बम विस्फोट करने का संदेह किया गया । इस घटना के बाद जापान ने कुछ प्रतिबंध लगाये जिन्हें तुरंत हटा लिया गया । 1987 में पुनः डी.पी.आर.के. पर दक्षिण कोरिया के विमान को गिराने तथा नष्ट करने का दोष लगाया गया । डी.पी.आर.के. को एक आंतकवादी राष्ट्र होने के लिए दोषी ठहराया गया । जापान ने पुनः प्रतिबंध लगाये । तथापि 1990 में सम्बन्धों में स्पष्ट सुधार हुए । जापानी उच्च स्तरीय प्रतिनिधिमंडल ने कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने की संभावनाओं का पता लगाने के लिए उत्तर कोरिया का दौरा किया । इस प्रतिनिधिमंडल ने कोरिया में जापान के शासन के समय औपनिवेशिक आक्रमण तथा शोषण के लिए जापान सरकार की तरफ से माफी मांगी । यह हरजाना देने पर भी सहमत हुआ । दोनों देशों के बीच व्यापार में वृद्धि हुई तथा 1992 में यह 530 करोड़ अमरीकी डालर तक पहुंच गया । जापानी पूंजी निवेशक उत्तरी कोरिया में पूंजी लगाने के लिए आगे बढ़े । परंतु हाल में जापान के उत्तरी कोरिया के दावे के अनुसार हरजाना देने से इन्कार करने के सम्बन्ध में पुनः कुछ बाधायें उत्पन्न हुई हैं । इसका एक कारण डी.पी.आर.के. के द्वारा जमा विदेशी ऋण का भुगतान नहीं किया जाना भी है । जापानी पूंजी निवेशकों ने तब तक पूंजी निवेश करने से इन्कार किया है जब तक पूर्ण कूटनीतिक सम्बन्ध की स्थापना नही हो जाती तथा विदेशी ऋण की समस्या का समाधान नहीं हो जाता । परमाणु अप्रसार संधि के मामले ने डी.पी.आर.के. तथा जापान के सम्बन्धों को और भी तनावग्रस्त किया है ।

13.4.4 डी.पी.आर.के. तथा अमरीका में सम्बन्ध

चीन-अमरीका सम्बन्धों के सामान्य होने के बाद डी.पी.आर.के. तथा अमरीका सम्बन्ध भी सुधरने लगे । 1974 में डी.पी.आर.के. ने अमरीका के समक्ष 1953 के युद्ध विराम की जगह शांति संधि का प्रस्ताव रखा । इसने दक्षिण कोरिया से विदेशी सेना की वापसी के लिए भी निवेदन किया । डी.पी.आर.के. के प्रस्ताव के उत्तर में अमरीका के राज्य सचिव हेनरी किसींजर ने कई चरणों में कोरियाई समस्या के समाधान की सलाह दी । डी.पी.आर.के. ने शांति संधि के अपने प्रस्ताव को दुहराया । साथ ही साथ सम्बन्धों को सामान्य बनाने के कदम भी उठाए । तथापि सम्बन्धों में बहुत सुधार नहीं आया । 1977 में एक अस्वभाविक घटना घटी । एक निहत्थे अमरीकी हेलीकाप्टर को डी.पी.आर.के. के द्वारा विसोयिकृत क्षेत्र में मार गिराया गया। इस घटना ने दोनों देशों को पूर्ण लड़ाई के कगार पर धकेल दिया । परंतु अमरीकी नेता कार्टर तथा डी.पी.आर.के. के नेता किम-इल-सुंग के तात्कालिक हस्तक्षेप से स्थिति संभाल ली गई । उत्तरी कोरिया ने मृतक तथा घायल चालक मंड़ल को दक्षिण कोरिया में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधियों को सौंप दिया ।

यद्यपि शांति की पुनर्स्थापना हुई पर तनाव बना रहा । 1982 मे रंगून की घटना तथा 1987 में हवाई जहाज वाली घटना को लेकर पुनः संकट आया । अमरीका ने डी.पी.आर.के. को उन देशों की सूची में डाल दिया जो आंतकवाद का समर्थन करते थे । उस समय चल रहे कूटनीतिक सम्पर्क पर भी सीमा लगा दी गई । हाल में परमाणु अप्रसार संधि के मुद्दे पर सम्बन्ध और खराब हुए हैं ।

13.4.5 डी.पी.आर.के. तथा अन्य देश

उत्तरी कोरिया ने गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए ठोस कदम उठाये । इसने गुट निरपेक्ष आंदोलन में भाग लेने के लिए आवेदन किया । 1976 में आंदोलन के मंत्रिमंडल. स्तर की बैठक ने इसके आवेदन को मंजूर कर लिया । गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्ध को मजबूत करने के लिए किम-इल-सुंग ने मौरीटानिया बलगारिया तथा यूगोस्लावियां आदि देशों की यात्रा की । 1976 में यह पाया गया कि कुछ उत्तर कोरियाई कूटनीतिज्ञों ने अपने कूटनीतिक विशेषाधिकारों का दुरुपयोग कर नशीले पदार्थों का व्यापार कर रहे थे । इन घटनाओं ने स्केन्डनेवियाइ देशों से इसके सम्बन्धों को खराब कर दिया । डेनमार्क, स्वीडन, नार्वे तथा रूस (तत्कालिन सोवियत संघ) से बहुत से कूटनीतिज्ञों को निष्कासित कर दिया गया । ईराक ईरान युद्ध में उत्तरी कोरिया ने ईरान का पक्ष लिया । इसके परिणामस्वरूप ईराक सीरीया तथा लीबीया ने उत्तरी कोरिया से अपने कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ लिये । रूस के साथ भी सम्बन्ध कमजोर हो गये । क्योंकि उत्तर कोरिया ने रूस की अफगान नीति का समर्थन नहीं किया । 1982 में उत्तर कोरिया को बहुत बड़ा कूटनीतिक झटका लगा । अक्टूबर 9 को दक्षिण कोरिया का एक प्रतिनिधिमंड़ल जो बर्मा की यात्रा पर था रंगून में एक बम विस्फोट में मारा गया । बम विस्फोट की जिम्मेदारी उत्तर कोरिया पर लादी गई । इसके तुरंत बाद बहुत से दक्षिण पूर्व एशिया के देशों ने जिसमें बर्मा भी शामिल था, उत्तर कोरिया से कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ लिये । पाकिस्तान ने प्रस्तावित कूटनीतिक सम्बन्ध निलंबित कर दिया । बेल्जियम ने व्यापार समझौता करने से इन्कार कर दिया । जुलाई में उत्तर कोरिया के नेतृत्व की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ । उत्तर कोरिया ने अपने देश को विदेशी पूंजी निवेश का स्वागत किया । यह कदम आर्थिक संकट पर काबू पाने के लिए लिया गया हो सकता है । 1970 के दशक में डी.पी.आर.के. ने बहुत से देशों के साथ नये व्यापार तथा आर्थिक समझौते पर हस्ताक्षर किया । ये समझौते उत्तर कोरिया के औद्योगिक आधार को विकसित करने के उद्देश्य से किये गये ।

हाल में डी.पी.आर.के. की दक्षिण पूर्व एशिया में अपनी छवि रंगून वाली घटना से बहुत धूमिल हो गई थी । 1982 में तोडे कूटनीतिक सम्बन्ध को थाईलैंड ने पुनः स्थापित कर लिया है । थाईलैंड इन्डोनेशिया, मलेशिया आदि देशों के साथ व्यापार समझौता किया गया है ।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये हुए स्थान को अपने उत्तर के लिए उपयोग करें ।

2) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की जांच करें ।

1) डी.पी.आर.के. के साथ चीन के सम्बन्धों का वर्णन करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) डी.पी.आर.के. के रूस के साथ सम्बन्ध पर एक टिप्पणी लिखें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) अमरीका, जापान तथा अन्य देशों के साथ डी.पी.आर.के. के सम्बन्ध में तनाव उत्पन्न करने वाली कौन सी समस्यायें है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.5 उत्तर-दक्षिण कोरिया संबंध

कोरिया के विभाजन को उस प्रायद्वीप के लोगों का बहुत कम समर्थन प्राप्त था । इसके परिणामस्वरूप पुनर्एकीकरण की मांग जनता द्वारा बार-बार उठाई गई । उत्तर कोरिया की सरकार ने विभाजन को स्वीकार नहीं किया । इसने कभी-कभी पुनर्एकीकरण के पक्ष में जनमत को सुस्पष्ट किया । उत्तर दक्षिण सम्बन्ध पर पुनर्एकीकरण की समस्या छायी रही । विभाजन की औपचारिकता पूरी होने के बाद दोनों कोरिया जिसमें एक ही कोरियावासी रहते थे में दो दशक तक कोई औपचारिक सम्बन्ध नहीं था । दक्षिण कोरिया में भीषण जन आंदोलन ने आर.ओ.के. को डी.पी.आर.के. के साथ वार्ता करने के लिए बाध्य कर दिया । दोनों देशों का रेड काल समाज 1971 में मिला । यह सबसे पहली उत्तर दक्षिण बैठक थी । यह बैठक कई दिनों तक चली । 1972 में दोनों देशों ने सांझा वक्तव्य जारी किया । इससे पुनर्एकीकरण के प्रस्ताव की स्पष्ट पुष्टि हुई । इसके द्वारा पुनर्एकीकरण को शांतिपूर्ण तरीके से प्राप्त करने के निश्चय को व्यक्त किया गया । इसमें एक दूसरे के विरूद्ध राजनीतिक मुहिम को निलंबित करने पर सहमति व्यक्त की गई। इसके बाद कुछ दिनों तक पुनर्एकीकरण की बातचीत जारी रही । परन्तु बिना किसी स्पष्ट कारणों के 1973 में इसे निलंबित कर दिया गया । वार्ता के निलंबन के फलस्वरूप दोनों भागों के बीच सम्बन्ध पुनः खराब हो गये । एकीकरण की मुहिम को पुनः जीवित किया गया । 1974 में उत्तर दक्षिण नौसैनिक मुठभेड़ बार-बार होती रही । 1978 में दक्षिण कोरिया में संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारी ने डी.पी.आर.के. पर आरोप लगाया कि उसने 1953 के युद्ध विराम का उल्लंघन किया है । डी.पी.आर.के. ने भी पुनर्एकीकरण के समर्थन में प्रचार करना आरंभ किया तथा जरूरत पढ़ने पर बल प्रयोग से इन्कार नहीं किया । इसने संयुक्त राज्य अमरीका पर कोरिया वासियों के खिलाफ षडयंत्र करने का आरोप लगाया । डी.पी.आर.के. ने कहा कि कोरिया की भूमि पर अमरीका की उपस्थिति पुनर्एकीकरण में सबसे बड़ी बाधा है । 1980 के दशक के मध्य में स्थिति बदली । डी.पी.आर.के. ने एक त्री-पक्षिय बैठक का प्रस्ताव रखा जिसमें अमरीका, आर.ओ.के. तथा डी.पी.आर.के. शामिल हों । इससे आर.ओ.के. के प्रति इसकी धारणा में परिवर्तन हुआ तथा इसने दक्षिण कोरिया में आई भयानक बाढ़ के शिकार लोगों के लिए सहायता के लिए सामग्री भेजी । 1984 में आर्थिक सम्बन्ध के आरंभ के लिए समझौते की शुरुआत हुई । समझौता जारी रहा परंतु बिना किसी परिणाम के समाप्त हो गया । 1986 के मध्य में डी.पी.आर.के. इन समझौतों से बाहर हो गया । ऐसा उसने अमरीका तथा दक्षिण कोरिया के वार्षिक सैनिक अभ्यास टीम-स्प्रीट के विरोध में किया । डी.पी.आर.के. ने इसका विरोध 1976 में इसके आरंभ से किया था । सम्बन्ध तनावग्रस्त हो गये । आर.ओ.के. ने कींगांग पर्वत पर एक बांध के निर्माण का विरोध किया । उसका कहना था कि जमा किए हुए पानी को दक्षिण कोरिया में बाढ़ लाने के लिए उपयोग किया जा सकता है । तथापि बाद के वर्षों में बहुत हद तक सम्बन्ध सामान्य हो गया । सिर्फ

कभी-कभी आर.ओ.के. के अन्दर तोड़ फोड़ के कार्य में डी.पी.आर.के. के शामिल होने के आरोप कभी-कभी लगते थे । 1990 के दशक के आरंभ में सम्बन्धों में पर्याप्त सुधार हुए थे। इसके परिणाम स्वरूप 1991 के सितम्बर में दोनों कोरिया को अलग-अलग संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यत दे दी गई ।

1991 में उच्च स्तरीय वार्ता के कई दौर चले। इसके पांचवे दौर के अन्त में सामंजस्य अनाक्रमण तथा सहयोग के समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। यह समझौता उत्तर-दक्षिण कोरिया के बीच सम्बन्ध में एक युगान्तकारी घटना है। दोनों राज्य एक दूसरे के विरूद्ध मुहिम न चलाने, आर्थिक तथा एक दूसरे के फायदे वाले सम्बन्ध को बढ़ावा देने, परिवार के अलग हुए सदस्यों को मिलने देने तथा प्रायद्वीप में शान्ति तथा अमन चैन के लिए काम करने पर सहमत हुए।

1988 में उत्तर तथा दक्षिण कोरिया के बीच व्यापार सम्बन्ध का आरम्भ हुआ। 1991 में यह व्यापार 192 करोड़ अमरीकी डालर का था। 1992 में यह बढ़ कर 220 करोड़ का हो गया। व्यापार के आरम्भ से उत्तर कोरिया को फायदा हुआ है। दक्षिण कोरिया को इसका समग्र निर्यात इसके समग्र आयात से अधिक है। उत्तर कोरिया का निर्यात 166 करोड़ डालर है जबकि इसका आयात सिर्फ 26 करोड़ डालर का है।

तथापि प्रमाण अप्रसार संघ की समस्या, तथा टीम-स्प्रीट सैनिक अभ्यासों के प्रस्तावित पुनर्आरम्भ के कारण सम्बन्ध पुनः बिगड़ गये।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिए गये स्थान को अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें ।

2) इकाई के अन्त में दिए उत्तरों से अपने उत्तर की जांच करें ।

1) दोनो भागों के बीच सम्बन्धों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

13.6 परमाणु अप्रसार संधि की समस्या

डी.पी.आर.के. ने मार्च 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद को अधिसूचित किया है चूंकि इसका हित खतरे में है तथा देश की सुरक्षा अमरीका आर.ओ.के. 1,20,000 सैनिकों के साझा सैनिक अभ्यासों से खतरे में है। इसलिए यह प्रमाणु अप्रसार संधि से हट जायेगा। इस संधि में ऐसे प्रावधान हैं जिसके अनुसार यदि कोई राष्ट्र जो हस्ताक्षरकर्ता है खतरा महसूस करने पर इस संधि से बाहर निकल सकता है। जापानी अमरीकी तथा पश्चिमी स्रोतों ने दावा किया है कि डी. पी.आर.के. ने गुप्त रूप से बहुत से प्रमाणु बम बनाने की तकनीक विकसित कर ली है । अंतर्राष्ट्रीय आणविक उर्जा प्राधिकार जो कि प्रमाणु अप्रसार संधि को मानीटर करता है, जापान तथा अमरीका के दवाब में आकर आरोप लगाया कि डी.पी.आर.के. के पास गुप्त प्रमाणु ठिकाने हैं। आइ.ए.इ.ए. ने इसे एक विषय बना लिया है तथा डी.पी.आर.के. से अपने परमाणु ठिकानों की अंतर्राष्ट्रीय जांच कराने को कहा है। आद.ए.इ.उ. के दबाव का कारण डी.पी.आर.के. द्वारा एन.पी. टी. से हटने की अधिसूचन भी हो सकता है । अपने निर्णय के पक्ष में डी.पी.आर.के. अधिकारी ने कहा कि उन.पी.टी. से हटना आत्म रक्षा में लिया गया उचित कदम है। इसका औचित्य अमेरिका के प्रमाणु युद्ध युद्धाभ्यास तथा आइ.ए.ई.ए. के सचिव के डी.पी.आर.के. के खिलाफ किये अनुचित कार्य में है । डी.पी.आर.के. ने टीम-स्प्रीट परियोजना को अमरीका दक्षिण कोरिया साझा सैनिक अभ्यास का उत्तरी कोरिया को धमकाने वाले प्रमाणु युद्ध का पूर्वाभ्यास कहा। आइ.ए.इ.ए. की समस्या है उत्तर कोरिया पर दवाब डाल कर अपनी बात मनवाना। कोरियन अधिकारियों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि यदि उन ताकतों ने (अमरीका शासित अंतर्राष्ट्रीय अभिकरण

संयुक्त राष्ट्र संघ और दूसरे) जो कि उत्तरी कोरिया के प्रति शत्रुतापूर्ण है दवाब डाल कर हमें भयभीत करना चाहते हैं तो यह एक मूर्खता पूर्ण स्वप्न है । . . . . . हम कठोर कदमों का जवाब आत्म सुरक्षा के कदम तथा सैनिक कार्यवाई से देंगे । अतीत में डी.पी.आर.के. ने अमरीकी दक्षिण कोरियाई "टीम-स्प्रीट" सैनिक अभ्यासों का उग्रता से विरोध किया। डी.पी.आर.के. का एन. पी.टी. से हटने के निर्णय ने इस प्रायद्वीप की स्थिति को तनाव पूर्ण कर दिया है। अमरीका डी.पी.आर.के. पर कार्रवाई करने की धमकी देता रहा है। चीन ने उत्तर कोरिया पर आइ.ए.इ.ए. तथा अमरीका प्रशासन के एन.पी.टी. पर विचार को पुष्टि नहीं दी है । शायद इस समस्या पर चीन के विचार से अब तनाव कम करने तथा समस्या के शांतिपूर्ण समझौतों से समाधान के प्रयास किये जा रहे हैं। अमेरिका ने टीम-स्प्रीट अभ्यासों को निलंबित कर दिया है।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये स्थान को अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें।

2) इस इकाई के अन्त में दिये उत्तरों से अपने उत्तर की जांच करें।

1) एन. पी. टी. समस्या पर एक टिप्पणी लिखें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.7 भारत-कोरिया सम्बन्ध

आधुनिक काल के पूर्व भारत कोरिया के बीच सीधे सम्पर्क के बहुत कम प्रमाण मिलते हैं। तथापि कोरिया में बौद्ध धर्म फला-फूला तथा यह अभी भी वहाँ का प्रधान धर्म है। मध्य युग के आरम्भ में बौद्ध धर्म ग्रंथ त्रापीतका का अनुवाद कोरियाई भाषा में हुआ। दूसरे बौद्ध धर्म ग्रन्थों का अनुवाद भी कोरियाई भाषा में हुआ। इन की छपाई 13वीं तथा 14वीं शताब्दी में हुई। इस समय तक कोरिया में छपाई की तकनीक का विकास हो चुका था। बौद्ध धर्म के करीब 81,000 पन्ने कोरियाई भाषा में उपलब्ध हैं।

19वीं सदी में तथा 20वीं सदी के आरम्भ में भारत कोरिया सम्बन्धों में आगे बढ़ने की बहुत कम गुंजाइश थी। 1950-53 के कोरियाई युद्ध में भारत ने किसी का पक्ष नहीं लिया। परन्तु इसने अमेरिका समर्थित कोरिया की सेना को 38वीं समानान्तर को पार करने से मना किया। भारत ने महसूस किया कि 38वीं समानान्तर को करना चीन को हस्तक्षेप करने के लिए उकसायगा। यह भविष्यवाणी सही साबित हुई। दक्षिण कोरिया की सेना ने 38वीं समानान्तर को पार किया और चीन ने उत्तर कोरिया के पक्ष में हस्तक्षेप किया। युद्ध काफी उलझ गया। तब से दक्षिण कोरिया के साथ भारत का सम्बन्ध सामान्य स्तर तक ही सीमित था। हाल में खास कर 1993 में भारतीय प्रधानमंत्री की दक्षिण कोरिया यात्रा के बाद भारत दक्षिण कोरिया सम्बन्ध फैलने लगा है। दक्षिण कोरिया के साथ भारत का आर्थिक सम्बन्ध बढ़ रहा है । दोनो देशों के बीच व्यापार का हेर-फेर 1983 में 8,57,683 अमरीकी डालर था जो कि 1984 में अमरीकी डालर 1,449,269 हो गया। 1988-89 में सम्पूर्ण व्यापार 46,006 करोड़ रुपये का था। दो वर्षों में यह राशि बढ़कर 6,487.1 करोड़ रुपया हो गयी। हाल की घटनाओं से ऐसा लगता है कि निकट भविष्य में दोनों देशों के बीच सम्बन्ध आगे बढ़ेगा ।

से इन दोनों के बीच मधुर सम्बन्ध विकसित होने लगे थे। उत्तर कोरिया के साथ भारत का व्यापार सम्बन्ध है। 1984 तथा 1985 में व्यापार का कुल हेर-फेर क्रमशः 37.34 करोड़ डालर तथा 18.73 करोड़ डालर था। इन वर्षों में दोनों देशों के बीच व्यापार में वृद्धि हुई है।

बोध प्रश्न 6

टिप्पणी : 1) प्रत्येक प्रश्न के नीचे दिये गये स्थान का अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें ।

2) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की जाँच करें

1) कोरिया के युद्ध में भारत की भूमिका पर टिप्पणी लिखें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.8 सारांश

पिछले पन्नों में दक्षिण तथा उत्तर कोरिया की विदेश नीतियों तथा सम्बन्धों की व्याख्या की गई है। कोरिया युद्ध ने इन दोनों देशों की विदेश नीति को प्रभावित किया है । सम्पूर्ण विश्व की घटनायें खास कर पूर्व एशिया में घटित होने वाली घटनाओं ने पुरानी विरासत से बाहर आने में मदद की। परिणामतः विश्व के देशों के साथ इन प्रायःद्वीपीय देशों की विदेश-नीति तथा सम्बन्धों में ऐसे मौलिक परिवर्तन हुए जो विदेश नीतियों के भविष्य को प्रभावित करेंगे।

13.9 शब्दावली

पैट्रिअट प्रक्षेपशास्त्र : एक प्रकार का बहुत ही आधुनिक अमरीकी शस्त्र जो दुश्मन के किसी भी प्रकार के राकेट को विफल कर सकता है ।

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

स्कालपिनो रोबर्ट एण्ड किम जून-याप (एडिटर्स) 1984 : *नार्थ कोरिया अड्डे* : स्ट्रेटीजिक एण्ड डमेस्टीक ठस्यूप्न : लास एन्जेल्स यूनिवर्सिटी आफ क्लेलिफोरनिया

प्रेस यांग संग-चुल, 1981 : *कोरिया टू कैम्ब्रीज* एम. एस. एस. सेहेयूकमन प्रब्लिशिंग कम्पनी

ब्रीजज ब्रियन : 1986 : *कोरियन एन्ड द वेस्ट* : लन्डन राउटलेज एन्ड केगन पॉल

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) कोरिया युद्ध

2) कोरिया प्रायद्वीप में विश्व शक्तियों का उलझाव

3) आर्थिक पिछड़ापन

4) भौगोलिक स्थिति

5) राजनैतिक नेताओं का दृष्टिकोण

बोध प्रश्न 2

1) 1) गौण सम्बन्ध

2) आर. ओ. के में जन आन्दोलनों के दबाय जाने से मधुर सम्बन्धों में अस्थाई चिड़चिड़ाहट आयी।

3) मजबूत व्यापार तथा आर्थिक सम्बन्ध

4) कोरिया के लिए व्यापार संतुलन हमेशा फायदेमन्द रहा है।

5) दक्षिण कोरिया में अमरीकी सैनिक अड्डा है।

6) अमरीका की सैनिक उपस्थिति का जनता ने विरोध किया है ।

2) 1) औपनिवेशिक विरासत के कारण आरम्भ में मनमुटाव था।

2) इस क्षेत्र में अमरीका के हस्तक्षेप ने जापान–आर. ओ. के. सम्बन्ध को सामान्य करने में सहायता पहुँचायी

3) जापान के व्यापारिक तथा आर्थिक सम्बन्ध मजबूत हैं।

3) 1) अमरीका-चीन सम्बन्ध के सामान्यीकरण से चीन के प्रति दक्षिण कोरिया का रुख बदल गया।

2) चीन को अपनी अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण तथा उदारीकरण के लिए दक्षिण कोरिया की आर्थिक समृद्धि उपयोगी लगी।

बोध प्रश्न 3

1) 1) ऐतिहासिक विरासत

2) कोरिया युद्ध में डी.पी.आर.के. के पक्ष में चीन का हस्तक्षेप ।

3) भूगौलिक सामिप्य

4) सैद्धान्तिक साम्य

2) 1) चीन-रूस विवाद से डी. पी. आर. के. तथा सोवियत संघ सम्बन्ध में समस्यायें उत्पन्न हुईं ।

2) सोवियत संघ ने उत्तर कोरिया को आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सहायता की ।

3) भूतपूर्व सोवियत संघ के विघटन के कारण वर्तमान में सम्बन्ध उतने मित्रवत नहीं हैं।

3) 1) उत्तर कोरिया के राजनयिकों का चावल व्यापार से सम्बद्ध अपकीर्ति में उलझना ।

2) अमरीकी सैनिक हैलिकाप्टर को गिराकर नष्ट करना

3) रंगून की घटना

4) 1987 के हवाई जहाज का मामला ।

5) ऋण चुकाने में उत्तर कोरिया की असमर्थता ।

बोध प्रश्न 4

1) 1) दोनों देशों के लोग पुनर्एकीकरण चाहते हैं। दक्षिण कोरिया में अक्सर ही लोग पुनर्एकीकरण की माँग करते हुए विद्रोह कर उठते हैं।

2) 1972 में सरकारी कदम उठाये गये।

3) यदि अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप नहीं होता तो उत्तर दक्षिण कोरिया सम्बन्ध मधुर रहे होते ।

बोध प्रश्न 5

1) उत्तर कोरिया एन. पी. टी. हस्ताक्षर कर्त्ता है । परन्तु "टीम-स्प्रीट" सैनिक अभ्यासों तथा दक्षिण कोरिया अमरीका की विशाल सैनिक उपस्थित से उत्तर कोरिया भयभीत महसूस करता है । परिमाणामतः उत्तर कोरिया ने एन. पी. टी से हटने की धमकी दी है।

बोध प्रश्न 6

1) 1) भारत ने अमरीका के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र की सेना को 38वीं समानान्तर के पार नहीं जाने के लिए कहा।

2) भारत ने तटस्थता का पालन किया परन्तु यह उत्तर कोरिया के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था।

इकाई 14 सिंगापुर

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 इतिहास
  14.2.1 प्रारंभिक योरोपीय संपर्क में मलाका का महत्व
  14.2.2 जौहर के सल्तान का शासन
  14.2.3 आधुनिक सिंगापुर की स्थापना
  14.2.4 द्वितीय विश्व युद्ध एवं सिंगापुर
14.3 स्वतंत्रता
  14.3.1 प्रारम्भिक राजनीतिक संरचना
  14.3.2 नये संविधान की उत्पत्ति
  14.3.3 सन् 1955 का रैन्डल संविधान
  14.3.4 सन् 1955 के चुनाव
  14.3.5 डेविड मार्शल एवं उसके बाद
  14.3.6 सिंगापुर का मलाया के साथ विलयन का मुद्दा
  14.3.7 पीपुल्स एक्शन पार्टी की आन्तरिक समस्याएं
  14.3.8 मलेशिया महासंघ का गठन
14.4 सरकार एवं राजनीति
  14.4.1 सिंगापुर की लोक सभा
  14.4.2 न्यायिक प्रणाली
  14.4.3 सामाजिक व्यवस्था
14.5 अर्थव्यवस्था
  14.5.1 आर्थिक रूप का आरंभिक परिवर्तन
  14.5.2 विशेषज्ञ उन्मुख आर्थिक विकास की नीति
  14.5.3 ए.एस.ई.ए.एन (आसियान) का गठन
  14.5.4 आयात प्रतिस्थापन से निर्यात प्रोत्साहन तक
  14.5.5 विदेशी मुद्रा भंडार एवं आर्थिक विकास
  14.5.6 सरकारी कदम
14.6 सुरक्षा एवं विदेश नीतियां
  14.6.1 पीपुल्स एक्शन पार्टी एवं साम्यवादी प्रभाव का विलोपन
14.7 सारांश
14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- आपको यह जानकारी प्राप्त कराना कि दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में सिंगापुर की खोज किस प्रकार हुई थी।
- सिंगापुर के स्वतंत्रता संघर्ष एवं वहां के संविधान और सरकार के बारे में आपको बताना।
- सिंगापुर द्वारा अपनाई गई आर्थिक रणनीति का मूल्यांकन करने में आपको सहायता प्रदान करना।
- सिंगापुर की सुरक्षा एवं विदेश नीतियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने में आपको सहायता प्रदान करना।

14.1 प्रस्तावना

जैसा कि नाम से विदित होता है, सिंगापुर या सिंहपुर (शेरों का नगर) स्वयं यह प्रमाणित करता है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के इस क्षेत्र पर भारतीय धर्मों एवं संस्कृति का काफी प्रभाव है। सिंगापुर जो अलग होने तक एवं सन् 1965 में अपने आप को एक स्वतंत्र गण राज्य घोषित करने तक मलाया प्रायद्वीप (मलेशिया) का एक भाग था, उसका अपना कोई गौरवपूर्ण इतिहास नहीं है। सामरिक स्थिति के रूप में सिंगापुर के महत्व की खोज मूल रूप से योरोपीय महानगरी द्वारा व्यापारिक एवं अन्य व्यावसायिक गतिविधियों के लिये क्षेत्रों एवं बन्दरगाहों पर नियंत्रण करने की प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप हुआ था। स्वतंत्रता के पश्चात् दीर्घकालीन संदर्शों एवं दूरदर्शी नेतृत्व ने सिंगापुर की रणनीतिक भौगोलिक स्थिति का सफलतापूर्वक लाभ उठाया है। दूसरी तरफ शीत युद्ध के प्रभाव स्वरूप इस दक्षिण-पूर्व एशियायी राज्य की राजनीति ने एक अत्यधिक रूप से प्रभावशाली एवं समृद्ध ऐसे नगर-राज्य का विकास किया है जहां पर प्रति व्यक्ति आय सम्पूर्ण एशिया प्रशान्त में दूसरे नम्बर की है। आज सिंगापुर सारे सुदूर पूर्व में बैंकों, वित्तीय एवं सेवाओं की गतिविधियों में एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभर कर आया है। अब यह बिजली के सस्ते सामानों का बाजार मात्र नहीं रहा, परन्तु वास्तव में उच्च तकनीकी एवं बहुमूल्य वस्तुओं का एक महत्वपूर्ण उत्पादन केन्द्र बन गया है। मलेशिया के दक्षिणी मुहाने पर भूमध्य रेखा के समीप स्थित सिंगापुर की स्वच्छता एवं कार्यकुशलता मंत्र मुग्ध कर देने वाली भावनाओं का अहसास देती है।

14.2 इतिहास

सिंगापुर के प्रारंभिक इतिहास के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। सिंगापुर का वर्णन सबसे पूर्व जावा के "नगराक्रोगामा" में किया गया है जिसमें इसको द्वीप का टैमसिक (समुन्द्री कस्बा) कहा गया है। सिंगापुर के आरंभिक काल की अधिकतर जानकारी सिजरा मलाय या "माले ऐनाल्स" में विस्तृत रूप से दी गई है। ऐसा कहा जाता है कि सिंगापुर का नाम श्री ट्री बौरा का दिया हुआ है जो कि पालेमबग का शासक था और एक दिन तूफान से बचने के लिये टेमासिक पर रुक गया था। उसने वहां एक जानवर को देखा जिसको उसने शेर समझा और वहां एक बस्ती बसाने का निर्णय लिया जिसका नाम सिंगापुर रखा गया। चौदहवीं शताब्दी में माले प्रायः द्वीप पर नियंत्रण के प्रश्न पर सिंगापुर को लेकर सियाम (थाईलैंड) एवं जावा के माजापहित साम्राज्य के बीच काफी समय तक झगड़ा चलता रहा। "नगराक्रोगामा" के अनुसार एक माजापहित हमले में सिंगापुर पर विजय प्राप्त कर ली गयी थी परन्तु जब इस द्वीप पर पालेम बौंग का एक राजकुमार परमेश्वर आया तब इसका महत्व फिर से बढ़ गया। परमेश्वर ने स्थानीय सूबेदार को मार डाला और स्वयं को इस द्वीप का शासक घोषित कर दिया। सन् 1400 के कुछ पूर्व माजापहित साम्राज्य के जावानीज टुकड़ियों ने सिंगापुर पर हमला कर दिया और परमेश्वर को वहां से भागना पड़ा। उसके पश्चात उसने पड़ौसी मलाया में मलाका सल्तनत की स्थापना की।

14.2.1 प्रारंभिक योरोपीय संपर्कों में मलाका का महत्व

ब्रिटिशों द्वारा सिंगापुर को एक प्रमुख बन्दरगाह के रूप में विकसित करने के काफी पहले यह मलाका का एक शहर था जो इस बसेरे पर शासन करके सदियों तक दक्षिण-पूर्व एशिया के इस द्वीप का उपयोग समुन्द्री व्यापार द्वारा धन अर्जित करने में लगा रहा था। दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ यूरोपीयों का पहला सम्पर्क सन् 1509 में मलाका में हुआ था और सन् 1511 में पुर्तगालियों ने एक घमासान युद्ध कर के इस शहर पर अपना अधिकार कर लिया। अपनी सामरिक महत्व की स्थिति एवं व्यापारिक गतिविधियों के कारण इस शहर को महत्वपूर्ण माना जाता था। मलाका पर एक सदी से भी अधिक काल तक

नियंत्रण रखने के पश्चात् पुर्तगालियों का स्थान डचों ने ग्रहण कर लिया। विश्व के इस भाग में अपना स्थान बनाने की आवश्यकता एवं ब्रिटिशों और डचों की प्रतिद्वन्द्विता के कारण ब्रिटिश की ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने अपने एक महत्वाकांक्षी ब्रिटिश कैप्टेन फ्रान्सिस लाइट को केदाह के सुल्तान से मलेशिया के पश्चिमी तट पर बसे पैनाना द्वीप पर कब्जा करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। बाद में सन् 1786 में यहां पर कम्पनी ने अपना अधिकार कर लिया। नीदरलेन्ड पर नेपोलियन के अधिकार के कारण ब्रिटिश तुरन्त मलाका पर अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रेरित हुए थे। वास्तव में, उनको ये अधिकार सन् 1824 में एन्गलो-डच मैत्री द्वारा प्राप्त हुआ था। ब्रिटिश द्वारा पहले से स्थापित पैनाना और मलाका के बन्दरगाहों में एक अन्य बन्दरगाह सिंगापुर को मिला लिया गया। बाद के वर्षों में इसका विकास ब्रिटेन साम्राज्य के बहुमूल्य अधिकार क्षेत्रों के रूप में हुआ।

14.2.2 जौहर के सुल्तान का शासन

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में सिंगापुर पर नाममात्र के लिये जौहर के सुल्तान का शासन था एवं उसने अपने प्रतिनिधि के रूप में इस द्वीप पर एक "टैमेन्योंन्य" (सुरक्षामंत्री) को रखा गया था। उसी समय ब्रिटिशों ने सिंगापुर की सामरिक स्थिति के महत्व को समझा। चीन के साथ बढ़ते हुए व्यापारिक सम्बन्धों को देखते हुए ब्रिटेन को माले महाद्वीप में एक ऐसे बन्दरगाह की आवश्यकता महसूस हुई जिसका भारत से चीन जाने वाले जहाजों के लिये विश्राम पत्तन के रूप में उपयोग किया जा सके, माले द्वीप समूह में व्यापार पर नियंत्रण कर सके एवं ईस्ट इन्डीज में डचों की पूर्व की तरफ होने वाली प्रगति को रोक सके।

14.2.3 आधुनिक सिंगापुर की स्थापना

आधुनिक सिंगापुर की स्थापना सन् (1781-1826) में सर स्टैमफोर्ड रैफलस द्वारा की गई थी जो उस समय बैन्कोलेन का लैफिटीनेन्ट-गर्वनर था एवं जिसने सन् 1818 में भारत के गवर्नर जनरल लौर्ड हेस्टिंगस से माले महाद्वीप के दक्षिणी मुहाने पर एक व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने की निहित स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। सन् 1819 की 29 जनवरी को सिंगापुर पर उतरते ही रैफल्स को इस क्षेत्र की सम्भावित सक्षमता का आभास हो गया। उसी वर्ष फरवरी में रैफिल्स ने जौहर के सुल्तान हुसैन के साथ एक प्रस्ताविक सन्धि कर ली। तीन वर्ष के अन्दर ही सिंगापुर द्वारा अर्जित राजस्व की मात्रा पैनाना जैसे सुस्थापित बन्दरगाह से भी अधिक होने लगी, जिसके फलस्वरूप सन् 1824 में सिंगापुर का द्वीप ब्रिटेन के साम्राज्यवादी शासन के अधिराजस्व में आ गया। उन्नीसवीं सदी के बाद के काल में विशेष तौर से सन् 1869 में स्वेज नहर के खुल जाने से एवं भाप से चलने वाले जहाजों के आविष्कार के बाद (जिससे हवा द्वारा चलने वाले जहाजों पर निर्भरता समाप्त हो गई थी), यूरोप से सुदूर पूर्व जाने वाले जहाजों के लिये विश्राम पक्षिका के रूप में सिंगापुर एक आदर्श बन्दरगाह बन गया था, जिसका प्रमुख कारण इस द्वीप की भौगोलिक स्थिति एवं इसके किनारों पर समुन्द्र का गहरा पानी था। उन्नीसवीं सदी के अन्त एवं बीसवीं सदी के शुरू होने पर सिंगापुर के विकास में एक नाटकीय रूप की वृद्धि हुई क्योंकि सन् 1873 एवं सन् 1913 के मध्य इसका व्यापार आठ गुना बढ़ा। इस समय तक सिंगापुर पूर्ण रूप से अपने से अधिक पुराने पैनाना एवं मलाका के बन्दरगाहों पर छा गया था। इसके फलस्वरूप सिंगापुर में चीन (चीनी कुली) एवं भारतीय (भारतीय कर्ल्क) प्रवासी आ कर बसने लगे। सन् 1860 में की गई जनगणना के अनुसार सिंगापुर की जनसंख्या बढ़ कर 80000 से ऊपर हो गई जिसमें चीनी, द्वीप की कुल जनसंख्या के 61.9 प्रतिशत थे, एवं मैलाया और भारतीय 13.5 प्रतिशत एवं 16.05 प्रतिशत थे। यूरोपियनों को मिला कर बाकी के व्यक्ति 8.5 प्रतिशत थे।

14.2.4 द्वितीय विश्व युद्ध एवं सिंगापुर

द्वितीय विश्व युद्ध में बाकी दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ-साथ सिंगापुर भी जापान के अधिकार में आ गया। जापानी दलों ने 15 फरवरी सन् 1942 में सिंगापुर पर अपना अधिकार कर लिया एवं इसका नाम बदल कर स्योनान (दक्षिण का उजाला) रख दिया।

युद्ध के समाप्त होने तक सिंगापुर पर जापान का अधिकार रहा और जब ब्रिटिशों ने पुरानी स्थिति को बहाल करने का प्रयत्न किया तब तक सिंगापुर बिल्कुल बदल चुका था। युद्ध काल के बाद के सिंगापुर में शक्ति संतुलन एवं अपेक्षाओं में काफी बदलाव आ गया था और ब्रिटिशों को युद्ध काल के पहले जैसा सम्मान फिर कभी प्राप्त नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त शान्ति हो जाने के बावजूद आर्थिक तंगी का अन्त नहीं हुआ क्योंकि खाद्य पदार्थों की कमी हो गई थी, जीवन-यापन के खर्चों में वृद्धि हो गई थी एवं आवश्यक सेवाएं करीब-करीब समाप्त हो गई थीं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी i) अपने उत्तर के लिये नीचे दी गई जगह का उपयोग कीजिये।

ii) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से अपने उत्तरों का मिलान कीजिये।

1) साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत सिंगापुर का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने के क्या कारण थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) आधुनिक सिंगापुर की स्थापना किसने एवं क्यों की थी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.3 स्वतंत्रता

अप्रैल सन् 1946 में सिंगापुर को एक अलग ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश घोषित कर के उस के मलाया के साथ चले आ रहे पुराने सम्बन्धों को समाप्त कर दिया। शेष मलाया को स्वतंत्र घोषित करते समय अंग्रेजों का विचार था कि सिंगापुर को वह अपने व्यापार एवं सैनिक आधार के रूप में अपने अधिकार में रखेगा।

14.3.1 प्रारंभिक राजनीतिक संरचना

प्रारंभ में सिंगापुर की संवैधानिक सत्ता वहां के गवर्नर के हाथों में रहती थी और उसकी सहायता के लिये सरकारी कर्मचारियों एवं नामजद गैर सरकारी व्यक्तियों की एक सलाहकार समिति का गठन किया जाता था। जुलाई सन् 1947 में इसकी जगह अलग-अलग कार्यकारी परिषद एवं विधान परिषद का गठन किया गया। हालांकि उपनिवेश अभी भी गवर्नर के पूर्ण नियंत्रण में रहता था परन्तु विधान परिषद के छः सदस्यों को जनमत द्वारा चुना जा सकता था। इसलिये विधान परिषद के छः सदस्यों का चुनाव करने के लिये 20 मार्च सन् 1948 में सिंगापुर में सर्वप्रथम चुनाव कराये गये।

हालांकि सिंगापुर में अंत तक कोई हिंसक घटनायें नहीं हुईं थी फिर भी जून सन् 1948 के माले महाद्वीप के (कंम्यूनिस्ट) साम्यवादी आन्दोलन को कुचलने के लिये ब्रिटिशों द्वारा घोषित आपात कालीन स्थिति को सिंगापुर में भी लागू कर दिया गया था।

14.3.2 नये संविधान की उत्पत्ति

हालांकि अंग्रेजों का विचार था कि सिंगापुर की सत्ता को धीरे-धीरे ऐसे अंग्रेजी-शिक्षित वर्ग को स्थानान्तर कर दिया जाये, जो उनके विचार से उनके प्रति निष्ठावान बना रहेगा परन्तु चीन में हुए साम्यवादी आन्दोलन की गतिशीलता के प्रभाव को वे आभास करने में असमर्थ रहे क्योंकि इस आन्बोलन द्वारा चीन का शिक्षित युवा वर्ग बहुत शक्तिशाली रूप से प्रेरित हुआ था। सन् 1953 के अंत में ब्रिटिश सरकार ने सिंगापुर की संवैधानिक स्थिति की समीक्षा करने के लिये सर जौजे रैंन्डिल के आधीन एक आयोग की नियुक्ति की एवं उससे परिवर्तन के लिये अपने सुझाव देने के लिये कहा। इस आयोग के सुझावों के आधार पर, जिन्हें सरकार ने स्वीकार कर लिया था, सिंगापुर को एक नया संविधान प्रदान किया जिसके अन्तर्गत सिंगापुर को स्वशासन के अधिक अधिकार प्राप्त हुए।

14.3.3 सन् 1955 का रैन्डल संविधान

सन् 1955 में बनाये गये रैन्डल संविधान के प्रमुख आकर्षणों में यह सुझाव था कि कार्यकारी परिषद के स्थान पर नौ मंत्रियों की एक परिषद बनाई जाये जिसको सुरक्षा, विदेशी मामले एवं आन्तरिक सुरक्षा के अलावा अन्य सब मसलों के लिये संयुक्त रूप से उत्तरदायी बनाया जाये। मंत्रियों की इस परिषद का सभापति गर्वनर होगा जिसको महत्वपूर्ण विषयों पर मुख्यमंत्री (विधान परिषद में सबसे बड़ी पार्टी का नेता) से सलाह लेना अनिवार्य था। मंत्रियों की परिषद में छः मंत्री मुख्य मंत्री की सलाह पर रखे जाते थे एवं 3 मंत्री गवर्नर द्वारा नियुक्त किये जाते थे। यह परिषद बत्तीस सदस्यों की विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होती थी। रैन्डल द्वारा इस संविधान का सुझाव दिये जाने पर दो राजनीतिक दलों का गठन हुआ : डेविड मार्शल के नेतृत्व में मजदूर मोर्चा (लेबर फ्रन्ट) एवं ली, कुआं वी के नेतृत्व में पीपुल्स एक्शन पार्टी (पी.ए.पी.)।

14.3.4 सन् 1955 के चुनाव

सिंगापुर के इतिहास में सन् 1955 का चुनाव पहला जीवन्त राजनैतिक संघर्ष था। स्वतः पंजीकरण के कारण मतदाताओं की सूची की संख्या 75000 से बढ़ कर 300000 से भी ऊपर पहुंच गई थी जिसमें चीनियों की एक बहुत बड़ी संख्या सम्मिलित थी, जिन्होंने पिछले चुनाओं में कोई रुचि नहीं दिखायी थी। छः राजनैतिक दलों के चुनाव में भाग लेने के फलस्वरूप चुनाव अभियान एवं विशेषतौर से बड़ी-बड़ी रैलियों सिंगापुर के व्यक्तियों के लिये कुछ ऐसी राजनीतिक घटनायें थी जिनका उन लोगों ने पहले कभी नहीं अनुभव नहीं किया था। सन् 1955 के चुनाव के फलस्वरूप सिंगापुर में एक नये युग का प्रारंभ हुआ जिसके फलस्वरूप ब्रिटेन समर्थक रूढ़िवादी तत्वों का खात्मा हो गया। परिषद में दस स्थानों पर विजय प्राप्त करके, मजदूर मोर्चा (लेबर फ्रन्ट) सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर आया जब कि तीन स्थान पीपुल्स एक्शन पार्टी (पी.ए.पी.) को प्राप्त हुए। इन दोनों दलों को वामपंथी माना जाता था और दोनों ही द्वीप में साम्राज्यवादी शासन को समाप्त करने के लिये दृढ़ संकल्प थे।

14.3.5 डेविड मार्शल एवं उसके बाद

सन् 1955 में डेविड मार्शल अपने मजदूर मोर्चे (लेबर फ्रंट) की मिली-जुली सरकार का सिंगापुर का पहला मुख्यमंत्री बना जिसे यूनाइटेड मालाया नेशनल आर्गनाइजेशन (यू.एम.एन.ओ.) एवं मलायन चाइनीज एसोसिएशन (एम.सी.ए.) को मिला कर बनाया गया था। हालांकि मार्शल के शासन काल में कई बार मजदूरों द्वारा हिंसक आन्दोलन किये गये थे फिर भी उसने ब्रिटिशों पर दबाव डाल कर सिंगापुर के भावी संविधान के विषय पर विधान सभा के समापन के पूर्व सन् 1956 में किसी तरह बातचीत की व्यवस्था की।

लन्दल में अप्रैल-मई 1956 में संविधान के संबंध में हुई बातचीत में मार्शल सिंगापुर को पूर्ण रूप से आंतरिक स्वयं सरकार दिलवाने के लिये शपथबद्ध था पर बातचीत के इस दौर में असफल होने पर छः जून 1956 को उसने अपना पद त्याग दिया। जून 1956 में लिन वी हौक, जो मार्शल के शासन काल में उप मुख्यमंत्री था, मुख्यमंत्री बना और उसके शासन काल में (जो सन् 1959 तक चला था) साम्यवादियों के अधिकांश अग्र-संगठनों का सफाया कर दिया गया। मार्च सन् 1957 में लिन वी हौक के नेतृत्व में एक संवैधानिक मंडल लन्दन गया और सिंगापुर के नये संविधान की मुख्य शर्तों को स्वीकार करने में उसने सफलता प्राप्त की। इसके अंतर्गत सिंगापुर को अपनी स्वयं की आन्तरिक सरकार बनाने का अधिकार दिया गया परन्तु सुरक्षा का भार एक आन्तरिक सुरक्षा परिषद को सौंपा गया था जिसमें सिंगापुर एवं ब्रिटिश सरकार के तीन-तीन प्रतिनिधि रखे जाने थे।

सन् 1959 में सिंगापुर एक साम्राज्यवादी उपनिवेश के स्थान पर स्वःशासित सरकार वाला राज्य बन गया। मई सन् 1959 में सिंगापुर की प्रथम पूर्ण रूप से चुनी गई विधान सभा के 51 प्रतिनिधियों को चुनने के लिये प्रथम आम चुनाव करवाये गये। 51 सीटों में से 43 सीटों पर विजय प्राप्त कर के, ली कुओ वी के नेतृत्व वाली पीपुल्स एक्शन पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर आई। 3 जून सन् 1959 को सिंगापुर की सरकार को स्वायत्तता प्रदान करने वाले नये संविधान को लागू करने की घोषणा गवर्नर द्वारा की गई। सिंगापुर राज्य की सर्वप्रथम सरकार को 5 जून को शपथ ग्रहण करवाइ गई एवं ली कुओ वी वहां का नया प्रधान मंत्री बना।

14.3.6 सिंगापुर का मलाया के साथ विलयन का मुद्दा

मलाया एवं सिंगापुर दोनों जगहों के शिक्षित चीनी व्यक्तियों में इस समय तक सिंगापुर एवं मलाया के विलयन के सम्बन्ध में वाद-विवाद होना प्रारम्भ हो गया था। सन् 1959 के चुनाव में विजय प्राप्त कर लेने के बावजूद भी ली कुओ वी इस विलयन प्रस्ताव का सबसे बड़ा समर्थक बन गया। उसके विचार से स्वतंत्र सिंगापुर का कोई विशेष आर्थिक भविष्य नहीं था। मलाया में रहने वाले चीनी इस विलयन को इसलिये चाहते थे जिससे कि संयुक्त मलाया में चीनी समुदाय की शक्ति में सम्पूर्ण रूप से वृद्धि हो सके। इसका कारण था कि सिंगापुर की जनसंख्या में 75 प्रतिशत व्यक्ति मूल रूप से चीनी थे और विलयन हो जाने से मलाया में चीनियों की सौदे करने की शक्ति में स्वतः वृद्धि होगी। मलाया में जन जातियों के एक असाधारण संगठन के कारण, जिसमें करीब 50 फीसदी मलाया के स्वदेशी व्यक्ति थे, 35 फीसदी चीनी थे एवं 15 फीसदी भारतीय थे, मलाया मूल के निवासी सिंगापुर के साथ विलयन करने के लिये अधिक उत्सुक नहीं थे। सिंगापुर में रहने वाले तेरह लाख (1.3 मिलियन) चीनियों के मिल जाने से लाया के जाति संगठन के सन्तुलन के बिगड़ जाने का ही खतरा नहीं था बल्कि मलाया के साथ विलयन के कारण सिंगापुर का महत्व मलाया की तुलना में ज्यादा हो जाने की भी आशंका थी क्योंकि मलाया का अधिकांश व्यापार सिंगापुर द्वारा ही होता था। मलाया वासी सिंगापुर की वामपंथी झुकाव वाले राजनीतिक दलों से भी आशंकित थे जिनमें ली कुओ वी की पीपुल्स एक्शन पार्टी भी सम्मिलित थी।

14.3.7 पीपुल्स एक्शन पार्टी (पी.ए.पी.) की आन्तरिक समस्याएं

अपनी सम्पूर्ण विजय के बावजूद भी पीपुल्स एक्शन पार्टी की अपनी आन्तरिक समस्यायें थी। जिस घटना ने पीपुल्स एक्शन पार्टी के अन्दर विघटन की शुरुआत करवायी थी, वह 27 मई सन् 1961 को मलाया संघ के प्रधानमंत्री श्री टुन्कू अब्दुल रहमान का ऐतिहासिक भाषण था। रहमान ने पहली बार मलाया, सिंगापुर, सारावाक, उत्तरी बीरनीओ (साबाह) एवं ब्रुर्नी के राज्यों को मिला कर मलेशिया महासंघ के गंठन करने का प्रस्ताव किया था। रहमान को चिन्ता थी कि यदि उसने विलयन के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया तो सिंगापुर अवश्य ही एक वामपंथी स्वतंत्र राज्य बन जाएगा एवं दक्षिण-पूर्व एशिया का क्यूबा बन जायेगा।

अन्त में सितम्बर सन् 1961 में मलाया एवं सिंगापुर के प्रधानमंत्रियों के मध्य एक विलयन प्रस्ताव पर एक समझौता हो गया और यह योजना बनाई गई कि दोनों राज्य क्षेत्रों का जून 1963 के पूर्व एकीकरण कर दिया जाये।

14.3.8 मलेशिया महासंघ का गठन

सितम्बर 1963 में मलेशिया महासंघ के गठन होने के समय ब्रूनी ने निर्णय कर लिया कि विलयन के बजाय वह एक ब्रिटिश संरक्षित राज्य के रूप में बना रहना पसन्द करेगा। मलेशिया महासंघ में सिंगापुर की सदस्यता भी कुछ काल तक ही रही। नई राजनैतिक व्यवस्था में जातीय मतभेद शायद निभ भी जाते परन्तु टुन्कू अब्दुल रहमान एवं ली कुओ वी इन दोनों प्रतिद्वन्द्वी नेताओं के बढ़े हुए अस्कार का परस्पर मेल खाना मुश्किल हो गया। इन दोनों नेताओं के मध्य बीच-बचाव करके समझौता करवाने के ब्रिटिशों के सारे प्रयास विफल हो गये और उसके पूर्व कि ब्रिटेन या राष्ट्र मंडल के कुछ अन्य नेता कुछ अधिक प्रयत्न कर पाते रहमान ने अगस्त सन् 1965 में अकस्मात सिंगापुर को मलेशियन महासंघ से बाहर निकाल फेंका। इसके पश्चात् सिंगापुर द्वारा स्वयं में सम्पन्न बने रहने एवं अपने **यहां की असमान आप्रावासियों की जनसंख्या में एक राष्ट्रीय भावना जगत करने** एवं स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में प्रेषित करने के संघर्ष की शुरुआत हुई।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का उपयोग कीजिये।

ii) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों के साथ अपने उत्तरों का मिलान कीजिये।

1) रेन्डिल संविधान के प्रमुख आकर्षणों की संक्षिप्त रूप में व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मलेशिया का गठन करने के लिये सन् 1962 में सिंगापुर एवं मलाया का विलयन क्यों हुआ था? सन् 1965 में सिंगापुर उससे अलग क्यों हो गया?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 सरकार एवं राजनीति

सिंगापुर एक गणराज्य है एवं वहां एक संसदीय प्रणाली की सरकार है। यहां के लिखित संविधान के अनुसार राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष होता है, जिसका प्रत्येक चार वर्ष बाद वहा की लोक सभा द्वारा चुनाव किया जाता है। अभी हाल ही में संविधान में किये गये संशोधनों के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव आम चुनाव द्वारा किया जायेगा एवं राजकीय बजट एवं सार्वजनिक नियुक्ति में राष्ट्रपति को वीटो अधिकार होगा। लोक सभा के इस सदस्य का

राष्ट्रपति द्वारा प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्त किया जाता है, जो लोक सभा में बहुमत विश्वास पात्र होता है। प्रधान मंत्री एवं केबिनेट के अन्य मंत्रियों को राजनीतिक शक्ति निहित होती है एवं वे लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं, जो संवैधानिक रूप से सर्वोच्च विधायी सत्ता मानी जाती है। सिंगापुर की नौकरशाही के दक्ष होने के कारण सिंगापुर को एक प्रशासनिक राज्य भी कहा जाता है। यहां करीब तीन सौ से अधिक सुशिक्षित एवं निष्ठावान उद्योग तंत्रवादी व्यक्तियों का अधिकारी वर्ग है जो राज्य की नौकरशाही एवं सांविधिक समितियों एवं निगमों में उच्च पदों पर आसीन है।

14.4.1 सिंगापुर की लोक सभा

सिंगापुर की लोक सभा एक सदनीय है और इस में 81 सदस्य होते हैं जिनको गुप्त मतदान द्वारा चुना जाता है और जहां 21 वर्ष एवं उससे अधिक आयु के प्रत्येक नागरिक को मतदान करने का अधिकार प्राप्त होता है। एक लोक सभा के भंग हो जाने के तीन माह के अन्दर आम चुनाव करवाये जाते हैं एवं लोक सभा की अधिक से अधिक आयु पांच वर्ष होती है। सन् 1959 से चुनावों में मतदान करना अनिवार्य घोषित कर दिया गया है। सन् 1959 से बाद के सारे आम चुनावों में विजय प्राप्त करके पीपुल्स एक्शन पार्टी (पी.ए.पी.) सत्ता में बनी हुई है। सन् 1988 के आम चुनावों के बाद से सिंगापुर को पचपन (55) चुनावी खण्डों में विभाजित कर दिया गया है जिनमें ब्यालीस (42) मतदान क्षेत्र एक सदस्यीय हैं एवं तेरह (13) मतदान क्षेत्रों से सामूहिक रूप से प्रतिनिधियों का चुनाव करवाया जाता था। प्रत्येक सामूहिक मतदान क्षेत्र से तीन लोक सभा के सदस्य चुने जाते हैं जिनमें से एक का मालें, भारतीय या किसी अन्य अल्प समुदाय का होना आवश्यक होता है।

14.4.2 न्यायिक प्रणाली

न्यायिक सत्ता उच्च न्यायालय, पुनरावेदन न्यायालय, एवं तेईस (23) उप न्यायालयों में निहित होती है। न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। अभिनिर्णयक न्याय प्रयोग (juritrial) को सन् 1970 में समाप्त कर दिया गया। जिन व्यक्तियों द्वारा देश की सुरक्षा को खतरा होने की आशंका होती है, उनको आन्तरिक सुरक्षा कानून के अंतर्गत न्याय प्रयोग किये बगैर बन्द किया जा सकता है जिसकी मियाद दो वर्ष की होती है। उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य ऐसे न्यायाधीश होते हैं जिनकी समय-समय पर नियुक्ति की जाती है। संविधान में ऐसे विशेष प्राविधान हैं जिनके द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के कार्यकाल एवं स्वतंत्रता की सुरक्षा की जा सके।

14.4.3 सामाजिक व्यवस्था

आकार एवं जनसंख्या के आधार पर आपेक्षित रूप से छोटा होते हुए भी सिंगापुर में एक बहुजातीय समाज है। यहां के जातीय विश्लेषण के अनुसार यहां पर 77.7 प्रतिशत चीनी, 14.1 प्रतिशत माले, 7.17 प्रतिशत भारतीय, एवं 1.1 प्रतिशत अन्य जाति के व्यक्ति रहते हैं। स्वाभाविक रूप से यह एक बहु सम्प्रदायवादी राज्य है। फिर भी यह राज्य स्वयं को धर्मनिरपेक्ष कहता है। विशेष बात यह है कि यहां की बहुजातियों की 86 प्रतिशत इमारतों का निर्माण सरकार द्वारा करवाया गया है।

14.5 अर्थव्यवस्था

चूंकि सिंगापुर की आर्थिक सफलता का क्षेत्र प्रायः यहां के उन्नत निर्यात को दिया जाता है इसलिये यहां की आर्थिक नीतियों एवं आर्थिक पद्धतियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। स्पष्ट रूप से सिंगापुर को अन्य देशों के लिये एक नमूने के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता क्योंकि किसी भी एक विशेष देश की समस्याएं अन्य देशों की समस्याओं से विभिन्न होती हैं। इसके अलावा सिंगापुर एक बहुत ही छोटा-सा शहरी द्वीप

राज्य है जहां की जनसंख्या दिल्ली से भी करीब 26 लाख कम है। परन्तु अन्य देशों को यहां से बहुत कुछ सीखने को मिल सकता है।

14.5.1 आर्थिक रूप का आरंभिक परिवर्तन

सिंगापुर के आर्थिक परिवर्तन का आरंभ सन् 1959 से हुआ जब इस देश की स्वयं की आन्तरिक सरकार बनी। उस समय से यहां की अर्थ व्यवस्था में अनेक स्तरों पर विकास हुआ है जिस के फलस्वरूप सिंगापुर आज एक आधुनिक एवं विभिन्न व्यापार का केन्द्र माना जाता है। आरंभ के वर्षों में सिंगापुर की अर्थव्यवस्था के विकास के लिये रोजगार बढ़ाने पर बल दिया गया क्योंकि यहां बेरोजगारी व्याप्त थी। सन् 1961 में प्रौद्योगीकरण कार्यक्रम को विस्तृत रूप देने के लिये यहां एक आर्थिक विकास बोर्ड की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य उद्योगों की स्थापना द्वारा रोजगार उत्पन्न कराना था।

14.5.2 विशेषज्ञ उन्मुख आर्थिक विकास की नीति

सन् साठ के दशक में जब अन्य विकासशील देश बहुराष्ट्रीय निगमों पर कम निर्भरता एवं स्वयं की निर्भरता पर बल दे रहे थे सिंगापुर ने निर्यात उन्मुख आर्थिक विकास की नीति को अपनाया। इस नीति को अपनाने का मूल कारण यहां के बाजार का छोटा आकार एवं बड़े उद्योगों को स्थापित करने हेतु पूँजी की कमी थी। स्थानीय रूप से पूँजी निवेशों एवं प्रौद्योगिकी के लिये सिंगापुर के पास बाहरी साधनों, विशेषतौर से बहुराष्ट्रों का सहारा लेने के सिवा कोई चारा नहीं था। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक पटल पर सिंगापुर ने ऐसे समय पर प्रवेश किया जब कि प्रबल प्रतियोगिता के कारण बहुराष्ट्रीय देश अपने उत्पादनों के लिए और अधिक प्रतियोगितावाद की तलाश में थे। सिंगापुर प्रोत्साहनों एवं पूंजी निवेशों के लिए श्रेष्ठ अवसरों को प्रदान करके मजदूर प्रबलित उद्योगों की स्थापना के लिये शीघ्र ही स्वर्ग बन गया क्योंकि साठ के दशक के अन्तिम काल एवं सत्तर के दशक के प्रारंभिक काल में मज़दूरी की कीमत बहुत कम थी।

14.5.3 ए.एस.ई.ए.एन. (आसियान) का गठन

सन् 1967 में सिंगापुर, इन्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपाइन्स एवं थाईलैंड को मिलाकर दक्षिण-पूर्व एशियन राष्ट्रों के संगठन का गठन करने से सिंगापुर के आर्थिक विकास को एक अतिरिक्त गतिशीलता प्रदान हुई। (असियान) के गठन से दक्षिण-पूर्व एशिया की राजनैतिक स्थिरता को आवश्यक बल प्राप्त हुआ, जो कि युद्धों एवं विद्रोहों के कारण क्षतिग्रस्त बना हुआ था। हालांकि अमेरिका के सीधे सैनिक हस्तक्षेप के कारण वियतनाम का युद्ध अब भी जारी था परन्तु सौभाग्यवश यह शेष दक्षिण-पूर्व एशिया में नहीं फैल पाया था, जिसका मूल कारण असियान देशों को अमेरिका द्वारा प्रदान किया हुआ संरक्षण था। सन् 1965 में इन्डोनेशिया में जनरल सुहार्टो द्वारा वहां के राष्ट्रपति सुकानों को पदच्युत कर देने के साथ ही दक्षिण-पूर्व एशिया के द्वीप क्षेत्र की अधिकांश अन्तरक्षेत्रीय समस्याओं का समाधान हो गया। इन राजनैतिक परिवर्तनों का (असियान) के सदस्य देशों की आर्थिक नीतियों एवं विकास क्रिया पर सीधा प्रभाव पड़ा।

14.5.4 आयात प्रतिस्थापन से निर्यात प्रोत्साहन तक

आयात प्रतिस्थापन से निर्यात प्रोत्साहन तक सारी अर्थव्यवस्थाओं की योजनाओं में विकास के लिये सशक्त परिवर्तनों को प्रोत्साहित करने के प्रयास किये गये। अमेरिका एवं अन्य पश्चिमी देशों द्वारा अधिक मात्रा में पूंजी निवेश कर के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के आत्मीय प्रयासों का सबसे अधिक लाभ सिंगापुर को प्राप्त हुआ। सन् 1970 के दशक के शुरू में ही जापान भी एक बहुत बड़े पूँजी निर्यात करने वाले देश के रूप में उभर कर आया। अपनी राजनीतिक स्थिरता एवं आर्थिक नीतियों के कारण सिंगापुर जैसा देश जापान के लिये स्वभाविक पसंद बन गया। आर्थिक रूप से यह अमेरिका, पश्चिमी देशों एवं विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी वित्तीय संस्थाओं द्वारा अपनाई गई एक निश्चित नीति थी जिससे सिंगापुर, हांगकांग, ताईवान एवं दक्षिणी कोरिया जैसे छोटे देशों का तेजी

से विकास के द्वारा आर्थिक समृद्धता लाकर सर्व प्रथम वामपंथी प्रवाह को रोका जा सके और दूसरा शेष विकासशील देशों को पूंजीवाद एवं मुक्त व्यवसाय की आर्थिक नीतियों के महत्वों को बताया जा सके।

14.5.5 विदेशी मुद्रा भण्डार एवं आर्थिक विकास

विदेशी व्यापार एवं पूंजी निवेश के फलस्वरूप एशिया में सबसे अच्छा आर्थिक विकास कर लेने के पश्चात सिंगापुर अब अपने विदेशी मुद्रा भण्डार को निवेश करने की योजना बना रहा है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि सिंगापुर के पास विदेशी मुद्रा भंडार के रूप में 30 अरब से भी अधिक अमेरिकी डालर हैं–जो एशिया भर में प्रति व्यक्ति सबसे अधिक मुद्रा कोष की दर है। सिंगापुर की दृष्टि में द्वीप की बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए आर्थिक विकास को बनाये रखने के लिए अपनी पूंजी एवं अपने प्रबंध कौशलों को विदेशों में निवेश करना बहुत आवश्यक है। सिंगापुर अपनी बहुजातीय विशेषता का भी पूर्ण लाभ उठा कर समस्त एशिया के उच्च कौशल प्राप्त व्यक्तियों को अपनी तरफ आकर्षित करना चाहता है जिससे कि यह चीनी एवं भारतीय प्रसारों के केन्द्र बिन्दु बन सके।

सिंगापुर जोहोर बारू का दक्षिणी मलेशियाई प्रान्त एवं बाटाम एवं इन्डोनेशिया के अन्य द्वीपों की पूर्व नियोजित "विकास त्रिकोण" के प्रौद्योगीकरण, प्रसारण यंत्र एवं अवसंरचना की परियोजनाओं में सिंगापुर पहले से ही संयुक्त उद्योग का एक भागीदार है। अपने विशाल कोष की सहायता से सिंगापुर अपने को एक बहुत बड़ा पूँजी निर्यात करने वाला देश बनाने की योजना बना रहा है। भूमण्डल के मापदण्डों के हिसाब से वर्तमान विकास अभी भी प्रभावशाली है परन्तु यह एशियाई पड़ोसियों के मुकाबिले गिर रहा है। भविष्य में सिंगापुर आधुनिक अर्थव्यवस्था के साथ कुछ मध्यमगति के विस्तार कार्यक्रम को अपनाना पड़ सकता है।

14.5.6 सरकारी कदम

सिंगापुर की धनी कम्पनियों को बाहरी देशों में पूँजी निवेश करने एवं अपने यहां की जनसंख्या को बढ़ाने और उनके कौशल का स्तर ऊपर बढ़ाने के लिये पिछले कुछ वर्षों में सरकार ने अनेक कदम उठाये हैं। सिंगापुर को एक अन्तरराष्ट्रीय शहर बनाने की उच्चाकांक्षा की योजना अवरोध रहित नहीं है। अपना आकार कम होने के कारण आर्थिक विकास लाने हेतु सिंगापुर को अपने स्थानीय बाजार का विकास करने का बहुत सीमित साधन है, न ही अवसंरचना का विकास करने की अधिक गुंजाइश है क्योंकि अधिकांश प्रवसंरचना भली-भांति विकसित एवं आधुनिक है। दूसरा कारण यह है कि सिंगापुर के पास धन तो है परन्तु प्रौद्योगिकी की कमी है। कुछ और अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि अगले कुछ दशकों में सिंगापुर में जनसांख्यिक परिवर्तनों के होने की सम्भावना है। सिंगापुर की जनसंख्या 27 लाख है जिसका विकास कुछ मध्यम गति से हो रहा है, और यह वृद्धावस्था की ओर बढ़ रही है और ऐसी आशंका की जाती है कि अगली सदी में वहां मजदूरों की कमी पड़ सकती है। ऐसी आशा की जाती है कि 1990 के दशक में जनसंख्या का विकास 1 फीसदी की दर से भी कम होगा एवं सन् 2025 तक विकास की दर 0.2 फीसदी तक गिर सकती है। जनसंख्या के विकास की मध्यम गति से भी अधिक चिन्ता का विषय यहीं की आयु की संरचना में हो रहा परिवर्तन है। वृद्ध व्यक्तियों की बढ़ती संख्या के निर्वाह करने के कारण सामाजिक सेवाओं का विस्तार करने की आवश्यकता पड़ेगी एवं साथ ही जीविका-उपार्जन करने वाले व्यक्तियों एवं अवकाश प्राप्त व्यक्तियों के बीच का अनुपात और नीचे गिरेगा। इसलिये सिंगापुर को अपनी संपन्नता की गति बनाये रखने हेतु आने वाले वर्षों के लिये योजनाएं तैयार करने की आवश्यकता है। इसलिये उन्नत तकनीकी पर ध्यान देने एवं अपनी कुशल सेवाओं के वर्ग का अधिक से अधिक लाभ उठाने और विदेशों में पूँजी निवेश करने की योजनाएं सक्रिय हैं।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपना उत्तर देने के लिये नीचे दिये हुए स्थान का उपयोग कीजिये।

ii) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों के साथ अपने उत्तरों का मिलान कीजिये।

1) सिंगापुर के संविधान की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) संक्षिप्त में सिंगापुर की आर्थिक नीति का विश्लेषण कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.6 सुरक्षा एवं विदेश नीतियां

सिंगापुर में स्वतंत्रता के पूर्व एवं तुरन्त बाद जो उपद्रवी घटनाएं घटित होती रही थीं उनको ध्यान में रखना आवश्यक है, जैसे कि जातीय झगड़े एवं साम्यवादियों द्वारा किया गया विद्रोह। इसलिये सिंगापुर की प्रतिरक्षा एवं सुरक्षा की नीतियों का विकास मूल रूप से इन आशंकाओं का मुकाबला करने एवं देश की स्वाधीनता की रक्षा करने की दृष्टि से किया गया है। जातीय सामंजस्य का सही तालमेल बैठाने के लिये सेना में अनिवार्य भर्ती के कदम को प्रभावशाली माना जाता है। देश की संपन्नता के साथ-साथ प्रति रक्षा का विकास करने पर और अधिक बल दिया गया। सिंगापुर की प्रतिरक्षा पर प्रति वर्ष करीब 2 अरब अमरीकी डालर खर्च किये जाते हैं एवं यहां के सैनिक दलों के पास सबसे आधुनिक सैनिक उपकरण उपलब्ध है। प्रारंभ में सिंगापुर की विदेश नीति क्षेत्रीयता पर आधारित थी एवं "आसियान" ए.एस.ई.ए.एन. के माध्यम से पड़ोसियों के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित किये गये थे। हालांकि सिंगापुर को पड़ोसी देशों से किसी भी प्रत्यक्ष रूप से खतरे की आशंका नहीं है परन्तु वह इस मामले में कोई मौका नहीं देना चाहता। मुस्लिम प्रधान मलेशिया के मध्य में सिंगापुर की स्थिति इसराइल के समान है। असलियत में इसकी नीतियों को भी इसराइल की नीतियों के आधार पर निर्मित किया गया है।

14.6.1 पीपुल्स एक्शन पार्टी एवं साम्यवादी प्रभाव का विलोपन

स्वतंत्रता के तुरंत बाद सिंगापुर में जो गड़बड़ियां हुईं थी उसके फलस्वरूप वहां के सबसे प्रमुख दल (पी.ए.पी.) के नेताओं ने साम्यवादी प्रभाव को समाप्त करने का निर्णय किया। आर्थिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिये सिंगापुर ने सबसे अच्छे विकल्प को अपनाया यानि

स्वतंत्र व्यवसाय की आर्थिक नीति और इस नीति को सफल बनाने के लिये यहां की विदेश नीति को भी उसके अनुकूल बनाया गया था। इसलिये इसने पश्चिमी देशों के साथ गंठबंधन करने का निर्णय किया। साम्यवाद का विरोध करके एवं अमरीका समर्थक बन कर सिंगापुर ने यह सुनिश्चित कर लिया था कि उसकी सुरक्षा को किसी प्रकार का खतरा नहीं रहा। दूसरा लाभ यह था कि यह ए.एस.ई.ए.एन. (आसियान) की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने में सक्षम हो सका। तीसरे, इसको (अमेरिका) जैसे शक्तिशाली देश से सक्रिय विदेशी सहयोग प्राप्त हो सका जिससे कि किसी भी प्रकार के क्षेत्रीय खतरों की सम्भावनाएं कम हो गईं। अंततः यह अपनी विदेश नीति को अपनी आर्थिक हितों के अनुकूल बनाने में सफल हो सका। इसका सबसे अच्छा दृष्टांत सिंगापुर एवं वियतनाम के हाल में बने अच्छे सम्बन्ध हैं जो अब तक परस्पर विरोधी थे।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ii) इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों के साथ अपने उत्तरों का मिलान कीजिये।

1) सिंगापुर की सुरक्षा सम्बन्धी चिन्ताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) सिंगापुर की विदेश नीति के प्रमुख पहलू क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.7 सारांश

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि मूल रूप से सिंगापुर को ब्रिटिशों ने अपनी साम्राज्यवादी व्यावसायिक गतिविधियों को सक्रिय बनाने के लिए सृजित किया था। परन्तु अपनी सामरिक रूप की स्थिति के कारण धीरे-धीरे सिंगापुर सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया का एक प्रमुख बन्दरगाह बन गया। दूसरे विश्व युद्ध के काल में सिंगापुर पर जापान के अधिकार के पश्चात ब्रिटिशों ने मलेशिया का गठन करने हेतु सिंगापुर का मलाया के साथ विलयन कर दिया था परन्तु मलाया में जातीय समस्याएं होने के कारण सन् 1965 में सिंगापुर मलेशिया से अलग हो गया एवं एक स्वतंत्र गणराज्य बन गया। तब से सिंगापुर के नेता गण समय-समय पर उपयुक्त कदम उठाते रहे हैं। सिंगापुर को आर्थिक संपन्नता प्राप्त करने के लिये कुछ राजनीतिक कीमत चुकानी पड़ी है। हालांकि यहां पर समयांतर से चुनाव करवाये जाते हैं एवं लोकतांत्रिकता के कुछ नियमों का पालन भी किया जाता है परन्तु यहां का शासकीय दल (पी.ए.पी.) राजनीतिक विरोधियों को बहुत कम सह पाता है। विरोध का मुकाबला बहुत सख्ती से किया जाता है एवं विरोधियों को सामना करने के लिये

आन्तरिक सुरक्षा के डरावने कानूनों का उपयोग किया जाता है। पी.ए.पी. के अलावा किसी अन्य दल के चुने जाने के खिलाफ जनता को बार-बार उसके दुष्परिणामों की चेतावनी दी जाती है। आर्थिक रूप से सम्पन्नता प्राप्त कर लेने के पश्चात् सिंगापुर वासियों में कुछ बेचैनी का आभास होने लगा है क्योंकि वे महसूस करते हैं कि राजनीतिक रूप से वे सिर्फ एक झलक बन कर रह गये हैं। पी.ए.पी. के निर्विरोध अधिकारों पर रोक लगाने की घोषित इच्छा के कारण विरोधी दल धीरे-धीरे अधिक मतों को अपनी तरफ आकर्षित करते जा रहे हैं। फिर भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि निकट भविष्य में पी.ए.पी. को सत्ता से हटाया जा सकेगा।

अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के अनुकूल नीतियों को अपना कर आर्थिक रूप से सिंगापुर ने अपनी स्थिति एक गतिशील नये औद्योगिक देश के रूप में कर ली है। इसकी दूरदृष्टि एवं इसके विशाल मुद्रा भण्डार इसकी सबसे बड़ी सम्पत्ति हैं, जिनका उपयोग, जैसा कि साबित हो चुका है, यह बहुत बुद्धिमानी से कर सकने में सक्षम है।

14.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डी.जी.ई. हौल *दक्षिण पूर्व एशिया का इतिहास* (लन्दन : मेर्कामलियन 1981)

जार्ज काहिन (एड) *दक्षिण पूर्व एशिया में सरकार एवं राजनीति* (न्यूयार्क : कौर्नेल यूनीवर्सिटी प्रैस, 1968)

सिंगापुर 1990 (सिंगापुर : सूचना मंत्रालय, 1989 : *दक्षिण-पूर्व एशिया के सार्वजनिक मामले* (वार्षिक पुस्तक) (सिंगापुर : दक्षिण पूर्व एशिया के अध्ययनों का संस्थान), सिंगापुर पर दिये गये परिच्छेद का प्रवलोकन कीजिये।

जे.आनाह ऐट आल : (ऐडस), *सिंगापुर की सरकार एवं राजनीति* सिंगापुर, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस, 1989.

आर.एस. मिलने एवं डाइने के. मौजी सिंगापुर : *ली कुआँ.वी. की वसीयत संपदा* बोल्डन कोलो, 1990.

टामस.जे. बलोस सिंगापुर, *इन जोयल क्रीजर, एड, विश्व की राजनीति का आक्सफोर्ड साथी*, न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस, 1993.

जे. डैनिस डर्बीशायर एवं जान डेस्बीशायर : *विश्व की चेम्बर्स राजनीतिक प्रणालियां*, नई दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स 1990.

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) 15.2.3 उप-परिच्छेद का अवलोकन कीजिये।

2) 15.2.3 उप-परिच्छेद का अवलोकन कीजिये।

बोध प्रश्न 2

1) 15.3.3 उप-परिच्छेद का अवलोकन कीजिये।

2) 15.3.6 एवं 15.3.9 परिच्छेदों का अवलोकन कीजिये।

बोध प्रश्न 3

1) 15.4 परिच्छेद का अवलोकन कीजिये।

2) 15.5 परिच्छेद का अवलोकन कीजिये।

बोध प्रश्न 4

1) 15.6 परिच्छेद का अवलोकन कीजिये।

2) 15.6 परिच्छेद का अवलोकन कीजिये।

इकाई 15 मलेशिया

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 देश
  15.2.1 जनता
  15.2.2 धर्म
15.3 अर्थव्यवस्था
  15.3.1 नई आर्थिक नीति
15.4 प्रशासनिक एवं सामाजिक स्थितियां
  15.4.1 प्रशासनिक संरचना
  15.4.2 न्याय प्रणाली
  15.4.3 सैन्य बल
  15.4.4 शिक्षा प्रणाली एवं स्वास्थ्य सेवाएं
  15.4.5 सांस्कृतिक जीवन
15.5 मलेशियाई राजनैतिक संस्कृति
15.6 संविधान का विकास
  15.6.1 योरोपीय आक्रमण
  15.6.2 ब्रिटिश प्रशासन
  15.6.3 युद्धोत्तर मलाया
  15.6.4 स्वाधीनता
  15.6.5 मलेशिया का निर्माण
  15.6.6 कोबोल्ड आयोग
15.7 संविधान की प्रमुख विशेषताएं
15.8 संघीय कार्यपालिका
  15.8.1 यांग डी-परटुआन आगौंग
  15.8.2 चुनाव
  15.8.3 शासकों का सम्मेलन
  15.8.4 प्रधानमंत्री
  15.8.5 कैबिनेट एवं मंत्रीगण
  15.8.6 यांग डी-परटुआन आगौंग की संवैधानिक स्थिति
15.9 संघीय संसद
  15.9.1 दीवान नेगारा
  15.9.2 दीवान राकयत
  15.9.3 सत्र
  15.9.4 समिति प्रणाली
  15.9.5 विधानमंडलीय प्रक्रिया
  15.9.6 संसद के कार्य
15.10 संघीय न्यायपालिका एवं नागरिकों के अधिकार
  15.10.1 न्यायिक प्राधिकारी
  15.10.2 प्रभावक्षेत्र
  15.10.3 न्यायपालिका की स्वतंत्रता
  15.10.4 नागरिकों के अधिकार
15.11 पार्टी प्रणाली
  15.11.1 आम चुनाव, संक्षेप में
  15.11.2 एलाइन्स पार्टी
  15.11.3 अन्य पार्टियां
  15.11.4 पार्टी व्यवस्था की प्रकृति
15.12 मलेशिया अंतर्राष्ट्रीय मामलों में
  15.12.1 भावी परिणाम
  15.12.2 विदेश संबंध

15.13 सारांश
15.14 शब्दावली
15.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें
15.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- मलेशिया की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का वर्णन करना
- उस पृष्ठभूमि का वर्णन करना जिसके जवाब में मौजूदा संविधान की उत्पत्ति हुई और यह किस तरह काम करता है, तथा
- इसकी सरकार तथा राजनीति का वर्णन करना।

15.1 प्रस्तावना

मलेशियाई संघ, जोकि एक संवैधानिक सम्राट द्वारा शासित संसदीय जनतंत्र है, तथा राष्ट्रकुल देशों का एक सदस्य है, 1963 में बना था। इसकी एक पुरानी लम्बी राजनैतिक परंपरा तथा विशिष्ट सामाजिक एवं राजनैतिक ढांचा रहा है। मलेशिया एक बहुल समाज है। इसकी बहुल प्रकृति के चलते ही मलेशिया ने शनैः शनैः एक बहुदलीय प्रणाली की उत्पत्ति का अनुभव किया है।

15.2 देश

मलेशियाई संघ दक्षिण पूर्व एशिया का हृदय-स्थल है। यह भूमध्य रेखा के नजदीक स्थित एक अर्धचन्द्राकार देश है। इसके तहत दो पृथक क्षेत्र शामिल हैं–क्रा इस्थमस से जोहोर के जलसंयोगी क्षेत्रों तक फैला मलेशियाई प्रायद्वीप, तथा बर्नियो द्वीप के उत्तर-पश्चिमी तट पर स्थित सबाह एवं सरवाक।

इन क्षेत्रों को लगभग 750 कि.मी. लम्बे दक्षिण चीनी समुद्र ने पृथक करके रखा हुआ है। मलेशिया प्रायद्वीप की सीमाएं उत्तर में थाइलैण्ड से लगी हैं। दक्षिण में एक सेतु मार्ग द्वारा यह सिंगापुर संघ से जुड़ा हुआ है। पश्चिम में मैलम्का के जलसंयोगी क्षेत्रों के पार सुमात्रा का इंडोनेशियाई द्वीप स्थित है।

15.2.1 जनता

मलेशिया में विविध जातीय समूह मौजूद हैं। किन्तु वहां अनेकता में एकता का लक्षण मौजूद है। मलेशियाई लोग, मालेओ अन्य देसी लोगों, समुद्री दायकों (इबानो), मैदानी दायको (बिदायुंओ), कडाजनो, कनायाओ, मेलानाऊओ तथा मारूतों (जिन्हें ''भूमिपुत्रों' के नाम से जाना जाता है), तथा साथ ही साथ चीनीयों, भारतीयों, यूरेशियनों तथा अन्य अनेक तरह के लोगों से मिलकर बने हैं। वे सभी एक साथ रहते और काम करते हैं। 1990 में 14.6 मिलियन की कुल जनसंख्या में से 57.3% माले व अन्य देसी लोग थे, 32.1% चीनी, 10% भारतीय तथा 0.6% अन्य लोग थे।

15.2.2 धर्म

संविधान के अन्तर्गत मलेशिया का सरकारी धर्म इस्लाम है। किन्तु वहां पूजा के अधिकार की स्वतंत्रता है। माले, जो कि प्रायः मुसलमान है और बहासा मलेशियाई (राष्ट्र भाषा) बोलते हैं, मलेशिया कि आबादी का आधा हिस्सा हैं। कुछ भारतीय व चीनी लोग भी हैं जोकि मुसलमान हैं, चीनी लोग मुख्यतः बौद्ध अथवा ताओवादी हैं। अधिकांश भारतीय लोग हिन्दू हैं किन्तु वहां सिख अल्पसंख्यक भी मौजूद हैं। शासक मैलम्का में पुलाऊ पिनांग को छोड़कर, जहां धार्मिक प्रमुख, यांग डी-परटुआन आगौंग, यानि सर्वोच्च राज्य प्रमुख होता है, शेष सभी राज्यों में इस्लाम का धर्म प्रमुख है। प्रत्येक राज्य में राज्य को सलाह देने के लिये एक धार्मिक परिषद है। देश पर लागू होने वाले सभी इस्लामी प्रचलन अथवा समारोहों का निर्णय कुल मिलाकर इस्लामी मामलों की राष्ट्रीय परिषद द्वारा किया जाता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) मलेशियाई समाज का जातीय गठन क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.3 अर्थव्यवस्था

1960 से मलेशिया की अर्थव्यवस्था का विकास प्रभावशाली रहा है और आज यह एशिया की अत्यंत समृद्ध एवं तेजी से विकासमान अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। मलेशिया प्रमुख रूप से एक बाजार अर्थव्यवस्था है जोकि पेट्रोलियम, रबर, टिन, तथा ताड़-तेल के उत्पादन एवं निर्यात पर अत्यधिक निर्भर है, जोकि विकासशील अर्थव्यवस्था का चारित्रिक लक्षण है। मलेशिया के सामने चार प्रमुख आर्थिक समस्याएं हैं। पहली, तेजी से बढ़ती जनसंख्या बढ़ती श्रम शक्ति को रोजगार प्रदान करने तथा उनके जीवन स्तर में सुधार नहीं तो कम से कम उसे बरकरार रखने के मामले में समस्याएं पैदा कर रही है। दूसरी, गैर-ईंधन कच्चे मालों के निर्यात पर मलेशिया की भारी निर्भरता ने इसकी अर्थव्यवस्था को काफी सुमेध्य बना दिया है। इसके अलावा, प्राकृतिक रबर का बाजार सिकुड़ता जा रहा है तथा टिन के खनन में होने वाली मुनाफे की अवस्था 1970 के अंत में गिरावट का शिकार होना शुरू हो गई है क्योंकि आसानी से पहुंच के भीतर आने वाले भंडार समाप्त होने लगे हैं। तीसरी, प्रायद्वीपों मलेशिया तथा सरवाक एवं सबाह के बीच तथा जातीय समूहों के बीच आय का अत्यधिक असमान वितरण है। अंततः दक्ष श्रम-शक्ति का गंभीर अभाव मौजूद है।

देश की आर्थिक योजनाओं में दो तरीकों से अपने आर्थिक भविष्य को सुरक्षित करने का प्रयास किया है। कृषि के विविधीकरण का प्रयास करने के उद्देश्यों से किसानों को इस बात पर सहमत कराया गया है कि वह केवल रबड़-उत्पादन पर ही निर्भर न रहें, अपितु

ताड़-तेल और अनन्नास जैसी फसलें भी पैदा करें। दूसरे यह कि औद्योगीकरण पर काफी बल दिया जाए।

15.3.1 नई आर्थिक नीति

नई आर्थिक नीति, जिसकी शुरूआत 1970 में समृद्ध अल्पसंख्यक (प्रायः चीनी अथवा भारतीय व्यापारियों) समुदायों के खिलाफ जातीय दंगों के बाद की गई थी गरीबी का उन्मूलन करके "राष्ट्रीय एकता" को बढ़ावा देने की दृष्टि से तैयार की गई थी। यह काम सभी मलेशियाईयों की आय के स्तरों में वृद्धि करने व रोजगार के बढ़े हुए अवसर प्रदान करके किया जाना था। साथ ही आर्थिक असंतुलनों को दूर करके मलेशियाई समाज के पुनर्गठन की प्रक्रिया को तेज करके भी ऐसा किया जाना था।

नई आर्थिक योजना (एन.ई.पी.), जिसका 1971-75 की दूसरी मलेशियाई योजना में समायोजन किया गया था, ने एक 30 प्रतिशत शासन की व्यवस्था रखी, जिसका अर्थ यह था कि 20 वर्षों के भीतर, अर्थात् 1990 तक, माले तथा अन्य देसी लोग कुल वाणिज्यिक एवं औद्योगिक गतिविधियों के कम से कम 30 प्रतिशत का स्वामित्व एवं प्रबंधन अपने हाथों में ले लेंगे। सरकार ने विभिन्न स्तरों पर जनता के बीच के जातीय गठन में असंतुलनों को दूर करने के लिये तुरन्त कदम भी उठाये।

जहां तक कृषि क्षेत्र का संबंध है, यह सकल घरेलू उत्पाद का लगभग एक चौथाई हिस्सा है तथा लगभग आधी श्रम शक्ति को रोजगार प्रदान करता है। फैडरल लैण्ड डवलपमैण्ट ओथारिटी देश में ताड़-तेल का सबसे बड़ा उत्पादक है। विदेशी मुद्रा का प्रमुख स्रोत जापान, सिंगापुर तथा यूरोपीय आर्थिक समुदाय के सदस्यों को किया जाने वाला गोल लकड़ी का निर्यात है।

मलेशिया ने प्रायः व्यापारिक माल के निर्यात में, व्यापारिक माल के आयात में इसके द्वारा किये गये खर्च की तुलना में अधिक धन कमाया है। 1980 में इन निर्यातों से 12.9 बिलियन यू.एस. डॉलर की आमदनी हुई थी जबकि आयातों पर कुल खर्च 10.6 बिलियन यू.एस. डॉलर का रहा। मलेशिया के वाणिज्य का लगभग चौथाई भाग जापान के साथ होता है। संयुक्त राज्य अमरीका तथा सिंगापुर भी प्रमुख व्यापार सहयोगी हैं। मलेशिया को मुख्यतः प्रत्यक्ष निवेषों के रूप में विदेशी मुद्रा के प्रसार से भी लाभ होता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) **नई मलेशियाई आर्थिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों की चर्चा कीजिये।**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) **मलेशियाई अर्थव्यवस्था द्वारा जिन प्रमुख आर्थिक समस्याओं का सामना किया गया, वे क्या थीं?**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.4 प्रशासनिक एवं सामाजिक स्थितियां

15.4.1 प्रशासनिक संरचना

मलेशिया एक संघीय संवैधानिक राजतंत्र है, जिस में एक अराजनैतिक राज्य प्रमुख अथवा यांग डी-परटुआन आगौंग विद्यमान है जिसे नौ राज्य के वंशानुगत शासकों के लिये चुना जाता था। विधानमंडल दीवान नेगरा, अथवा सीनेट से मिलकर बना है जिसकी सदस्यता 69 है, जिनमें 26 निर्वाचित तथा 43 मनोनीत सदस्य होते हैं, तथा दीवान राकयत अथवा हाउस ऑफ रिप्रैजेण्टेटिव, जो कि ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स से मिलते जुलते तरीके से काम करता है और 180 सदस्यों से मिलकर बना है, सार्वजनिक वयस्क मताधिकार द्वारा 5 वर्ष की अवधि के लिये निर्वाचित किया जाता है। संसद में सबसे अधिक सीटों वाली पार्टी का नेता प्रधानमंत्री के रूप में काम करता है और केबीनेट के लिये नामों को प्रस्तुत करता है, जिसके सदस्यों की नियुक्ति प्रमुख शासक द्वारा की जाती है। नेशनल फ्रंट प्रभुत्वशाली राजनैतिक संगठन है, जो कि देश के तीन प्रमुख जातीय समूहों का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियों का गठबंधन है।

संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि संसदीय चुनाव तथा राज्य विधानमंडलों के चुनाव कम से कम 5 वर्ष में एक बार अवश्य कराये जायें।

15.4.2 न्याय प्रणाली

मलेशिया का संविधान, जो कि देश का सर्वोच्च कानून है, यह प्रावधान करता है कि संघ की न्यायिक शक्तियां पश्चिम मलेशिया के उच्च न्यायालय तथा पूर्वी मलेशिया के उच्च न्यायालय के साथ-साथ निचली अदालतों में भी निहित रहेगी। उच्च न्यायालय के ऊपर संघीय न्यायालय है, जिसका कार्यक्षेत्र उच्च न्यायालय के किसी भी निर्णय पर की गई अपील की सुनवाई तथा उसका निर्धारण करना है। न्यायपालिका का सर्वोच्च प्रमुख संघीय न्यायालयं का लॉर्ड प्रेसीडैण्ट है।

15.4.3 सैन्य बल

मलेशियाई सैन्य बल ने, जोकि थल सेना, जल सेना व वायुसेना से मिलकर बना है, 1963 में मलेशिया की स्थापना के बाद से अपनी शक्ति एवं सामर्थ में बढ़ोत्तरी कर ली है। 1971 के अंत में ब्रिटिश सेना की मलेशिया व सिंगापुर से वापसी हो जाने के बाद, बाहरी आक्रमण से सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये मलेशिया, सिंगापुर, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया तथा ग्रेट ब्रिटेन के बीच पांच शक्तियों का समझौता हुआ था। दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की एसोशिएशन (आसियान) भी अतिरिक्त क्षेत्रीय सुरक्षा प्रदान करती है।

मलेशिया के राज्यों ने अपने सांझे औपनिवेषिक अतीत से ब्रिटिश नमूने पर आधारित आन्तरिक सुरक्षा की विरासत प्राप्त की है। पुलिस बल अच्छी प्रकार से प्रशिक्षित हैं और वे न सिर्फ अपराधों पर अंकुश रखते हैं बल्कि सशस्त्र कम्युनिस्ट विद्रोह समेत विघटनकारी गतिविधियों पर भी काबू पा लेते हैं।

15.4.4 शिक्षा प्रणाली एवं स्वास्थ सेवाएं

शिक्षा 6 से 15 वर्ष की आयु के बच्चों के लिये मुफ्त एवं अनिवार्य है। अनुमान है कि प्राथमिक स्कूल में जाने वाली उम्र के सभी बच्चों का 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग प्राथमिक स्कूलों में भाग लेता है।

मलेशिया की समाज-कल्याण व्यवस्था रोजगार शुदा लोगों को काम के दौरान चोट लग जाने, वृद्धावस्था तथा वांछित लाभ उपलब्ध कराती है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से देश में स्वास्थ्य के आम स्तर में काफी सुधार हुआ है। स्वास्थ्य सेवाओं का देश भर में प्रसार हुआ है तथा सेवाओं को बेहतर बनाने के लिये आवश्यक कदम उठाए गए हैं। डॉक्टर-जनसंख्या अनुपात में निरंतर कमी आई है। 1980 में जनसंख्या के मुकाबले डॉक्टरों का अनुपात 3600 व्यक्तियों पर एक डॉक्टर का था, यह अनुपात 1988 में घटकर 2700 रह गया है। आमतौर पर देश में औसत आयु दर पुरुषों के लिये 68 वर्ष तथा स्त्रियों के लिये 63 वर्ष है।

15.4.5 सांस्कृतिक जीवन

मलेशिया, लोगों व संस्कृतियों के अपने जटिल परिवार के साथ माले आर्चीपेलेगों के साथ साथ चीन, भारत तथा पश्चिम से पैदा हुई परंपराओं का संगम है। माले तथा बौर्नी संस्कृतियां क्षेत्र की स्वदेशी संस्कृतियां हैं। सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति सेजराह मेलायु ("माले एनल्स") को माना जाता है जोकि करीब 1535 में लिखी गई थी और जिसमें मलम्का के मध्ययुगीन नगर-राज्य के बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) मलेशिया के संघीय ढांचे का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के काल में स्वास्थ्य सेवाओं के सामान्य स्तर की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.5 मलेशियाई राजनैतिक संस्कृति

यदि हम प्रकृति पर गौर करें तो, मलेशियाई राजनैतिक व्यवस्था को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। यह व्यवस्था प्रकृति के तहत काम करती है। मलेशियाई जनता की जनतांत्रिक संस्थाओं, सभी मनुष्यों की बराबरी तथा अलग न किये जा सकने वाले अधिकारों की प्राप्ति में गहन आस्था है। किन्तु उग्र जातीय, आर्थिक एवं राजनैतिक अवयवों के एक संघ के तौर पर, मलेशिया को 1963 में अपनी स्थापना के समय से ही

कठिनाइयों व समस्याओं का सामना करना पड़ा है। इन समस्याओं में से सबसे प्रबल समस्या, यानि पश्चिम मलेशिया व सिंगापुर के बीच तनावपूर्ण संबंधों, का समाधान एक राजनैतिक विभाजन करके कर लिया गया था। किन्तु इतनी ही अधिक गंभीर समस्याएं बरकरार रहीं। मालेओ व चीनीयों के बीच मई 1969 में हुए जातीय दंगे, जिनके चलते संसदीय शासन को स्थगित करके आपातकाल की घोषणा की गई थी जो कि फरवरी 1971 तक जारी रही–जातीय असंतुलन से पैदा होने आन्तरिक तनाव का एक संकेत ही थे। ये तनाव 1980 तथा आरंभिक 1990 तक जारी रहे, जबकि मलेशिया के छः सबसे गरीब राज्यों में से पांच में मालेओ की संख्या जनसंख्या का बहुमत बनी रही। माले, जिनमें से लगभग सभी मुसलमान हैं, लगातार इस्लाम के उग्र स्वरूप के प्रति आकर्षित होते गए, और इस तरह जातीय तनावों में और भी वृद्धि हो गई।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) मलेशिया की राजनैतिक संस्कृति पर संक्षिप्त चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.6 संविधान का विकास

मलेशिया के आरंभिक इतिहास को लेकर अनेक व्याख्याएं पेश की गई हैं। यह माना जाता है कि सबसे पहले संगठित राजनैतिक राज्यों की उत्पत्ति माले प्रायद्वीप के उत्तर में हुई। नवीं व 14वीं शताब्दी के बीच के काल में आधुनिक मलेशिया का क्षेत्र बौद्ध श्री विजयन साम्राज्य का हिस्सा रहा था। यह एक ऐसा साम्राज्य था जिस का आगे चलकर एक जावेनी हिन्दु साम्राज्य द्वारा तख्ता पलट दिया गया था। उत्तरवत्ती काल में इस्लाम का प्रवेश हुआ तथा 1511 में पुर्तगाल द्वारा विजय प्राप्त करने से पूर्व एक अच्छी खासी सल्तनत का निर्माण हो गया था। उसके बाद यह क्षेत्र एक एक करके क्रमशः डच (1641-1795), ब्रिटिश (1795-1817), डच (पुनः 1818-1824) तथा अन्त में फिर एक बार ब्रिटिश (1824-1963) नियंत्रण में आता रहा।

15.6.1 योरोपीय आक्रमण

1511 में मलक्का पर पुर्तगालियों ने कब्जा कर लिया। इससे मलक्का पर योरोपीय आक्रमण की शुरुआत हुई। 1641 में मलक्का डचों के नियंत्रण में आ गया। किसी भी विजय ने माले समाज में किसी महत्वपूर्ण सामाजिक बदलाव लाने में योगदान नहीं दिया। 18वीं शताब्दी के आखिर में, ब्रिटिश वाणिज्यिक हितों का प्रसार भारत से पुलाऊ पिनांग तक हो गया, जिसे अंग्रेजों ने 1786 में केडा के सुल्तान से छीना था। 1819 में, अंग्रेजों ने जोहर के सुल्तान से सिंगापुर को हथिया लिया। 1824 में ब्रिटेन ने डचों से सुमात्रा में बेनकूलेन के बदले में मलक्का प्राप्त कर लिया। दो साल बाद, पुलाऊ पिनांग, मलक्का तथा सिंगापुर को संयुक्त रूप से स्ट्रेट-सैटिलमैण्टों के नाम से जाना जाने लगा।

15.6.2 ब्रिटिश प्रशासन

स्ट्रेट सैटिलमैण्टों में एक धनी वाणिज्यिक वर्ग के विकसित हो जाने के फलस्वरूप प्रायद्वीप में निवेषों की बढ़ोतरी का सूत्रपात हुआ, और धीरे-धीरे ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो गया। 19वीं शताब्दी के मध्य तक, प्रायद्वीप पर आर्थिक आक्रमण शुरू हो गया। पूंजी आ लगी और बड़ी संख्या में टीन का खनन करने वाले चीनी मजदूरों ने प्रवेश किया। 1867 में, स्ट्रेट सैटिलमैण्टों का प्रशासन भारतीय कार्यालय से औपनिवेषिक कार्यालय को हस्तांतरित कर दिया गया। 1874 के पांगको समझौते ने माले राज्यों में उग्र-राजनैतिक ए प्रशासनिक बदलाव का मार्ग प्रशस्त किया। अंग्रेजों ने उन दायित्वों को अपने हाथ में ले लिया जिन्हें किसी जमाने में राजकुमारों तथा राजसी लोगों द्वारा ही निभाया जाता था। इस तरह के परिवर्तनों की समूची प्रक्रिया अनेक वर्षों तक जारी रही।

रैजीडैन्शियल प्रणाली शुरू की गई जिसके तहत माले के रीति-रिवाजों व धर्म से जुड़े मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों पर सुल्तानों को सलाह देने के लिये रेजीडैण्ट कहलाने वाले ब्रिटिश अधिकारियों की नियुक्ति की गई। 1895 में पैरक, सेलण्गर, नेगिरी, सैम्बिलन तथा पहंग को मिलाकर एक संघ बनाया गया जिसे फैडरेटेड माले स्टेटस (एफ.एम.एस.) कहा जाने लगा। 1877 तथा 1878 में, ब्रिटिश व्यापारिक हित बुनेई तथा सुलु के सुल्तानों से उत्तरी एवं पुर्वी बोर्नियो को अलग कर देने में सफल हो गये। जब 1882 में ब्रिटिश नार्थ बोर्नियो कम्पनी की स्थापना हुई, तो इसने सभी परिसंपत्तियों पर अधिकार कर लिया। 1888 में, सारवाक, बुनेई तथा उत्तरी बोर्नियो (अब साबा) ब्रिटिश संरक्षण में आ गये।

1909 में, सियामियों ने केडा, पर्लिस, केलण्टान तथा टेरेण्गानु पर से अधिपत्य के अपने अधिकारों का अंग्रेजों को हस्तांतरण कर दिया। उसके बाद इन चारों राज्यों में से प्रत्येक के लिए एक ब्रिटिश सलाहकार नियुक्त किया गया। 1914 में जोहर भी इस समूह में शामिल हो गया और असंघीय माले राज्यों की स्थापना हो गई। इन पांच राज्यों ने अंग्रेजों के सामने अपनी सत्ता के समाप्त हो जाने पर कभी भी संघ में प्रवेश नहीं किया।

15.6.3 युद्धोत्तर मलाया

युद्ध के बाद ब्रिटिश फौजी प्रशासन कायम किया गया। स्ट्रेट सैटिल्मैण्टस् को समाप्त कर दिया गया तथा सिंगापुर एक साम्राज्यी उपनिवेष बन गया। अंग्रेजों ने अप्रैल 1946 में मलाया संघ का निर्माण किया जिसके अंतर्गत मलक्का, पुलाऊ पिनांग तथा माले राज्य शामिल थे। 1948 में माले राष्ट्रवादियों के जबर्दस्त विरोध के चलते मलाया संघ भंग कर दिया गया। मलाया शासकों से ब्रिटिश सम्राट को सत्ता हस्तांतरित किये जाने के कारण असंतोष पैदा हुआ था। इसके स्थान पर 1948 के मलाया समझौते का संघ उभर कर आया जिसने एक उच्चायुक्त तथा 75 सदस्यों वाली विधान परिषद का प्रावधान किया, जिसके 50 सदस्य गैर-सरकारी सदस्य होते थे। राज्य तथा सैटिलमैण्ट सरकार को काफी अधिकार दिये गये खासतौर से भूमि के प्रशासन के मामले में और यह वायदा किया गया कि यथाशीघ्र चुनाव कराये जायेंगे। उच्चायुक्त से यह अपेक्षा की गई कि वह "माले की विशेष हैसियत" तथा "अन्य समुदायों के वांछित हितों" की रक्षा भी करेगा।

15.6.4 स्वाधीनता

1955 में, सरकार की अधिकांश जिम्मेदारियों का हस्तांतरण जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों को करते हुए एक नये संविधान की रचना की गई। नई संघीय विधान परिषद 52 सदस्यों वाली होनी थी, उसमें तीन (एक्स औफ़िशियो) सदस्य, 11 राज्य तथा सैटिलमैण्ट प्रतिनिधि, 22 अनुसूचित हितों के प्रतिनिधि, 3 जातीय अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि तथा 7 उच्चायुत द्वारा नामजद किये जाने वाले आरक्षित सदस्य रखे जाते थे, निर्वाचित सदस्यों के बीच बहुमत प्राप्त पार्टी के नेता की सलाह से दो स्थान अधिकारियों द्वारा तथा 5 गैर-अधिकारियों द्वारा भरे जाने थे। 1 जुलाई 1955 में हुए चुनावों में यूनाइटेड मालेस नेशनल ऑर्गेनाइज़ेशन (यू.एम.एन.ओ.) तथा मलायन इण्डियन कांग्रेस

(एम.आई.सी.) के एक गठबंधन, एलाइन्स पार्टी ने 52 में से 51 सीटें जीत लीं। यू.एम.एन.ओ. के अध्यक्ष, टुंकू अब्दुल रहमान, जो कि गठबंधन के मुखिया भी थे, मुख्यमंत्री बने।

1956 के आरंभ में स्वाधीनता के प्रश्न पर चर्चा करने के लिये लंदन में एक सम्मेलन हुआ। अन्य बातों के अलावा इस बात पर सहमति हुई कि संविधान का मसविदा तैयार करने के लिये यथाशीघ्र एक आयोग की नियुक्ति की जाय जिसके तहत यदि संभव हो तो अगस्त 1957 तक राष्ट्रमंडल के भीतर रहते हुए पूर्ण स्व-सरकार बनाये जाने का प्रावधान किया जाये। उसी वर्ष मार्च आते आते लार्ड रीड की अध्यक्षता में एक स्वतंत्र संवैधानिक आयोग नियुक्त किया गया। विधान परिषद ने संसदीय जनतंत्र पर आधारित एक संघीय संविधान के बारे में, फरवरी 1957 में आयोग द्वारा प्रस्तुत संवैधानिक प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया तथा अगस्त 1957 में फैडरेशन ऑफ मलाया समझौता हो गया। महिने के अंत तक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली गई जिसके बाद टंको अब्दुल रहमान प्रथम प्रधानमंत्री बने।

15.6.5 मलेशिया का निर्माण

1959 तक, हालांकि एलान्इस पार्टी का मलाया में दृढ़ नियंत्रण कायम हो चुका था, किन्तु सिंगापुर में चिंताजनक स्थिति बन गई। वामपंथी तत्वों ने अपनी स्थिति मजबूत बना ली थी। कुछ ही समय बाद ब्रिटिश सरकार ने 1963 के मध्य तक सिंगापुर द्वारा अपनी स्वतंत्रता हासिल कर लेने संबन्धी योजनाएं बना लीं। मलाया की सरकार सबाह एवं सारवाक की स्थिति से भी चिंतित थी जहां ब्रिटिश सरकार ने देसी लोगों के हितों की सुरक्षा के लिये कुछ खास काम नहीं किया था। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, मलाया के प्रधानमंत्री, टुंकू अब्दुल रहमान ने 27 मई 1961 को सार्वजनिक तौर पर मलाया के सिंगापुर, सबाह, ब्रुनी तथा सारवाक के साथ घनिष्ट रूप से मिलकर कार्य करने का इरादा जाहिर किया। इस इरादे ने ही आगे चलकर मलेशिया के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।

15.6.6 कोबोल्ड आयोग

1962 की फरवरी से अप्रैल के मध्य तक, लार्ड कोबोल्ड, जोकि बैंक ऑफ इंग्लैण्ड का एक भूतपूर्व गवर्नर था, उसने उत्तरी बोर्नियो तथा सारवाक की जनता की मलेशियाई संघ पर राय जानने के लिये एक पांच सदस्यीय जांच-आयोग का नेतृत्व किया। ब्रिटिश तथा मलाया सरकार ने आयोग की सर्वसम्मत सिफारिशों को करीब करीब ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया और सिद्धांत रूप में यह फैसला कर लिया कि मलेशिया का प्रस्तावित संघ 31 अगस्त 1963 तक अस्तित्व में आ जाना चाहिये। इससे सिंगापुर, सारवाक एवं उत्तरी बोर्नियो के ऊपर सार्वभौमिकता का हस्तांतरण तथा उत्तरी बोर्नियो तथा सारवाक के लिये, उनके विशेष हितों की रक्षा समेत, दोनों क्षेत्रों के विधानमंडलों से सलाह करके विस्तृत संवैधानिक व्यवस्थाएं की जा सकेगी। इस तरह 16 सितम्बर 1963 को मलेशिया अस्तित्व में आया और उसके तहत मलाया का संघ, सिंगापुर राज्य (जोकि 1965 में अलग हो गया) तथा उत्तरी बोर्नियो के उपनिवेष (जिन्हें सबाह एवं सारवाक का ही नाम दिया गया) शामिल थे।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) मलाया में यूरोपीय आक्रमण का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) 1948 के फैडरेशन ऑफ मलाया समझौते के मुख्य प्रावधान क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.7 संविधान की प्रमुख विशेषताएं

मलेशियाई संविधान की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं :

लिखित एवं जटिल

संविधान लिखित व जटिल दोनों ही हैं। इसके तहत 161 धाराएं हैं तथा इसमें इतनी आसानी से संशोधन नहीं किये जा सकते जितनी आसानी से कानून बनाये जाते हैं।

देश का सर्वोच्च कानून

संविधान की धारा 4 स्पष्ट तौर पर प्रावधान करती है : यह संविधान देश का सर्वोच्च कानून है तथा मरडेका (स्वतंत्रता) दिवस के बाद पारित किया गया कोई भी कानून जोकि संविधान के अनुरूप नहीं है, जहां तक उसकी अनुरूपता न होने का प्रश्न है, रद्द माना जायेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि संविधान संघीय है, इस तरह का प्रावधान किया जाना आवश्यक है। इसकी सर्वोच्चता को मलेशिया में संघीय न्यायालय स्थापित रखता है।

इसकी रचना किये जाने के साथ-साथ ही इसकी उत्पत्ति भी हुई है

मूल दस्तावेज 1948 में तैयार किया गया था। मलेशिया का निर्माण होने पर कोई नया संविधान स्वीकार नहीं किया गया था। यहां तक कि 1957 का संविधान भी 1948 के संविधान का एक संशोधित रूप ही था। वह संविधान भी नये सिरे से नहीं लिखा गया था यह निवर्तमान सरकार के नमूने का एक संशोधित रूप में तैयार किया गया संविधान ही था। इन कारणों से यह कहा जा सकता है कि इसकी रचना किये जाने के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति भी हुई।

संघीय संविधान

संघ में राज्य प्रमुख यांग डीपरटुआंग आगौंग है जोकि 5 वर्ष की अवधि के लिये शासकों के सम्मेलन द्वारा निर्वाचित सर्वोच्य शासक है। वहां सर्वोच्च शासक के एक सहायक का भी प्रावधान है। संवैधानिक सम्राट को एक कैबीनेट द्वारा सलाह दी जाती है, जोकि संसद के प्रति उत्तरदायी है। 1957 के संविधान में संघीय कार्यपालिका के बारे में जो स्थिति थी, वही 1963 के संविधान में भी जारी रखी गई है। संघ में 13 राज्य हैं।

संघीय न्यायपालिका

वहां एक शीर्षस्थ संघीय न्यायालय है तथा मलाया एवं बोर्नियो क्षेत्रों के लिये उच्च न्यायालय मौजूद है। संघीय न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को संविधान की व्याख्या करने

तथा न्यायिक समीक्षा करने की शक्तियां प्राप्त हैं। न्यायपालिका गैर-राजनैतिक तथा स्वतंत्र है।

मौलिक अधिकार

संविधान में नागरिकों के अधिकारों व स्वतंत्रताओं को सम्मिलित किया गया है जिन्हें मौलिक कहा जा सकता है क्योंकि उन्हें न्यायालयों द्वारा लागू कराया जा सकता है तथा संविधान उनकी सुरक्षा प्रदान करता है।

धर्म की स्थिति

धारा 3 के अनुसार, संघ का धर्म इस्लाम बताया गया है: किन्तु संघ के किसी भी भाग में अन्य धर्मों का पालन भी शान्ति एवं सद्भाव के साथ किया जा सकता है। हालांकि यह सबाह एवं सरवाक राज्यों का धर्म नहीं है।

बोध प्रश्न 6

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) क्या मलेशियाई संविधान लिखित, जटिल अथवा दोनों ही है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) संविधान में धर्म की स्थिति क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.8 संघीय कार्यपालिका

मलेशिया एक संवैधानिक राजतंत्र है जोकि 13 राज्यों से मिलकर बना है जिनमें से 9 पहले ब्रिटिश संरक्षण के अधीन सल्तनतें थीं तथा 4 (मलम्का, पुलाउ पिनांग, सरवाक तथा सुबाह) पूर्व में नियुक्त किए जाने वाले गवर्नरों द्वारा शासित ब्रिटिश सैटिलमैण्ट थे। 31 अगस्त 1957 को लागू किया गया संविधान, जिसमें आगे चलकर संशोधन हुए, राज्य प्रमुख, यांग डी-परटुआंग अगौंग, जोकि सर्वोच्च शासक है, का शासकों के सम्मेलन द्वारा 5 वर्ष की अवधि के लिये निर्वाचन करने का प्रावधान करता है।

कार्यपालक शक्तियां प्रधानमंत्री द्वारा, जोकि बहुमत प्राप्त पार्टी का नेता होता है, चयनित केबिनेट को सौंपी गई हैं।

15.8.1 यांग डी-परटुआंग आगौंग

महामहिम यांग डी-परटुआंग आगौंग मलेशिया का सर्वोच्च प्रमुख है। सरकार का प्रत्येक कार्य उसकी सत्ता के अधीन है, हालांकि वह संसद एवं केबीनेट की सलाह पर कार्य करता है। प्रधानमंत्री की नियुक्ति करना दरअसल उसी का न्याय निर्णय है। वह प्रधानमंत्री की सलाह के विरुद्ध जाकर भी संसद को भंग करने से इन्कार कर सकता है। न्याय के स्रोत के रूप में, वह संघीय संविधान के प्रावधानों के अनुरूप, प्रधानमंत्री की सलाह पर सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। सम्मान के स्रोत के रूप में, वह शूरवीरता के लिये आदेश जारी कर सकता है अथवा सम्मान अथवा मान्यता प्रदान कर सकता है। इसके अतिरिक्त यांग-डी परटुआंग अगौंग को क्षमा देने अथवा राहत प्रदान करने की शक्ति भी प्राप्त है।

15.8.2 चुनाव

यांग डी-परटुआंग अगौंग का चुनाव शासकों के सम्मेलन द्वारा किया जाता है। चुनाव का पात्र होने के लिये उसे नौ में से एक शासक का होना आवश्यक है। वह अपने त्यागपत्र अथवा मृत्यु होने की स्थिति को छोड़ कर पांच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर रहता है। जब पद खाली हो जाता है, तो शासकों का सम्मेलन उत्तराधिकारी का चुनाव करने के लिये अपनी बैठक करता है। निर्वाचित हो जाने पर यांग डी-परटुंआंग आगौंग, अपने राज्य के शासक के रूप में अपने कार्यकाल की अवधि तक, अपने सभी कार्यों का त्याग कर देता है और एक रीजैण्ट की नियुक्ति कर सकता है। यद्यपि वह अपने राज्य में धार्मिक प्रमुख (मुस्लिम धर्म) बना रहता है। उसके बाद रीजैन्सी के रिक्त हो जाने की स्थिति में, वह अपने राज्य के संविधान के अनुरूप एक नये रीजैण्ट की नियुक्ति कर सकता है। वह अपने राज्य के संविधान में किसी संशोधन को भी मान्यता प्रदान कर सकता है।

15.8.3 शासकों का सम्मेलन

शासकों के सम्मेलन को संविधान में स्थापित किया गया है तथा इसमें शासक एवं यांग डी परटुआं–यांग डी-परटुआ नेगैरी शामिल है। इसका प्रमुख कर्तव्य यांग डी-परटुआंग आगौंग का चुनाव करना है। न्यायाधीशों, अटोर्नी जनरल, चुनाव आयोग तथा लोक सेवा आयोग की नियुक्तियां करते समय उससे सलाह ली जानी आवश्यक है। इसी तरह सम्मेलन मे राज्य की सीमाओं में परिवर्तन संघ के आमतौर पर प्रसार किए जाने, मुस्लिम धार्मिक कृत्यों व समारोहों तथा संविधान संशोधन के विधेयकों पर सलाह ली जानी भी जरूरी है। प्रधानमंत्री मैण्टरी बेसर तथा मुख्यमंत्री यांग डी–परटुंआंग आगौंग अथवा टिबंलन यांग डी-परटुआंग अगौंग की नियुक्ति के लिये होने वाली बैठक को छोड़कर शासकों के सम्मेलन की सभी बैठकों में भाग लेते हैं।

15.8.4 प्रधानमंत्री

यांग डी-परटुआंग अगौंग देश की कार्यपालक सत्ता का प्रमुख है। संघीय सरकार का प्रत्येक कार्यपालक कृत्य प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से राजसी सत्ता के अंतर्गत ही किया जाता है। किन्तु जनतांत्रिक शासन प्रणाली के सिद्धांत के अनुरूप, प्रमुख कार्यपालक प्रधानमंत्री ही है। सरकार के प्रमुख के रूप में, प्रधानमंत्री सभी सरकारी मामलों में यांग डी-परटुआंग आगौंग के प्रति उत्तरदायी है। प्रधानमंत्री की नियुक्ति दीवान राकयत में बहुमत प्राप्त पार्टी के नेताओं में से की जाती है तथा वह राजसी समर्थन प्राप्त रहने तक पद पर बना रहता है। वह मंत्रिपरिषद का भी प्रमुख है, जहां वह बराबर के लोगों में प्रथम होता है।

15.8.5 कैबीनेट एवं मंत्रीगण

यांग डी-परटुआन अगौंग एक कैबीनेट की नियुक्ति करता है–एक मंत्रिपरिषद जोकि उसके कार्यों के संपादन में उसे सलाह देती है। इसके अन्तर्गत प्रधानमंत्री तथा अनिश्चित संख्या में मंत्रीगण रहते हैं, जिन सभी को संसद का सदस्य होना चाहिये। मंत्रियों की नियुक्ति

प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाती है। कैबीनेट नियमित रूप से अपनी बैठक करती है, प्रायः सप्ताह में एक बार, प्रधानमंत्री इसकी अध्यक्षता करता है और सरकार की नीति निर्धारित की जाती है। मंत्रीगण विभिन्न जिम्मेदारियां संभालते हैं और कैबीनेट द्वारा लिये गये सभी निर्णयों के लिये सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं, जोकि देश का सर्वोच्च नीति-निर्धारक निकाय है।

15.8.6 यांग डी-परटुआन आगौंग की संवैधानिक स्थिति

यद्यपि यांग डी-परटुआन अगौंग हर समय कैबीनेट की सलाह पर काम करने के लिये संवैधानिक रूप से बाध्य संवैधानिक सम्राट है। फिर भी उसे कैबीनेट अथवा स्वयं मलेशियाई संसद द्वारा भी हटाया नहीं जा सकता। इस संदर्भ में, उसकी स्थिति भारत के राष्ट्रपति से अधिक मजबूत है, जिसे हटाया नहीं जा सकता। किन्तु वह अंग्रेज सम्राट जितना मजबूत नहीं है, जिसे किसी भी स्थिति में हटाया नहीं जा सकता, जबकि यांग डी-परटुआंग अगौंग को शासकों के सम्मेलन द्वारा पद से हटाया जा सकता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि यांग डी-परटुआंग अगौंग को हटाने के लिये शासकों के सम्मेलन के प्रस्ताव को 9 में से कम से कम 5 शासकों का समर्थन प्राप्त हो।

हालांकि, यांग डी-परटुआंग आगौंग का एक संवैधानिक अस्तित्व है और वह संसद का एक हिस्सा है, फिर भी कुछ ऐसे कार्य है जिन्हें वह समुची संसद तथा सदन के मामले में अलग से निष्पादित करता है। वह संसद को बुला सकता है, उसकी बैठक को आगे बढ़ा सकता है और उसे भंग भी कर सकता है। वह किसी भी सदन में अथवा दोनों सदनों को संयुक्त रूप से संबोधित कर सकता है। वह 32 सीनेटरों की नियुक्ति भी करता है—जोकि व्यवसायों, वाणिज्य, उद्योग, इत्यादि के विशिष्ट लोग होते हैं।

प्रधानमंत्री की सलाह पर, तथा शासकों के सम्मेलन से मशवरा करने के बाद, यांग डी-परटुआंग अगौंग निम्न लोगों की नियुक्ति करता है:

(1) संघीय न्यायालय के लार्ड प्रेसीडैण्ट (2) उच्च न्यायालयों के चीफ जस्टिस तथा (3) इन न्यायालयों के अन्य न्यायाधीश। वह संघीय न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कार्यकाल को भी 65 वर्ष की आयु से अधिक बढ़ा सकता है, किन्तु उस कार्य से 6 माह की अवधि से अधिक नहीं। अंततः उसे यह निर्धारित करने का अधिकार है कि बोर्नियो राज्यों में किस स्थान पर उच्च न्यायालय अपना प्रमुख रजिस्ट्री रखेगा और बोर्नियो में उच्च न्यायालय के कामकाज को निपटाने के लिये उसे एक न्यायिक आयुक्त की नियुक्ति करने का अधिकार भी प्राप्त है। संविधान की धारा 53(1) में कहा गया है कि मालेओ व अन्य समुदायों के वांछित हितों की रक्षा, उक्त धारा के प्रावधानों के अनुरूप करने की जिम्मेदारी यांग डी-परटुआंग अगौंग पर है।

बोध प्रश्न 7

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) यांग डी-परटुआंग आगौंग के निर्वाचन की प्रक्रिया का संक्षिप्त उल्लेख कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.9 संघीय संसद

वैधानिक सत्ता मूल रूप से कानून बनाने तथा कर लगाने की शक्ति तथा विभिन्न खर्चों की स्वीकृति प्रदान करने पर केन्द्रित है।

संघीय स्तर पर, वैधानिक सत्ता यांग डी-परटुआंग आगौंग के नेतृत्व में द्विसदनीय विधान मंडल को सौंपी गई है जो कि दीवान नेगारा (सीनेट) तथा दीवान राकयत (हाउस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव) से मिलकर बना है। प्रत्येक राज्य में एक-सदन वाला विधानमंडल है जिसके चुनाव प्रत्येक पांच वर्ष में एक बार होते हैं।

संघीय एवं राज्य सरकार के बीच वैधानिक शक्ति का बंटवारा संघीय संविधान की नवीं अनुसूची के तहत किया गया है और इसने एक संघ सूची, राज्य सूची व एक समवर्ती सूची निर्धारित की हुई है।

यदि संघीय तथा किसी राज्य कानून के बीच कोई असंबद्धता पैदा हो जाये तो संघीय कानून को मान्यता दी जाती है।

15.9.1 दीवान नेगारा

दीवान नेगारा में 69 सदस्य हैं जिनमें से 40 यांग डी-परटुआंग आगौंग द्वारा मनोनीत किये जाते हैं जिन्होंने उसकी दृष्टि में विशिष्ट लोक सेवा अथवा व्यावसायिक विशिष्टता प्राप्त करने का काम किया हो। कुआलालंपुर के संघीय प्रक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले दो सदस्यों तथा लाबुआन के संघीय प्रदेश से एक सदस्य की नियुक्ति भी यांग डी-परटुआंग आगौंग द्वारा की जाती है। शेष 26 सदस्यों का चुनाव मलेशिया के 13 राज्यों की विधान सभाओं द्वारा किया जाता है, प्रत्येक राज्य से दो सीनेटर चुने जाते हैं। राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति, दोनों का चुनाव दीवान नेगारा द्वारा अपने सदस्यों के बीच से किया जाता है। एक सीनेटर तीन वर्षों तक अपने पद पर रहता है। सीनेट को भंग नहीं किया जा सकता।

15.9.2 दीवान राकयत

यह एक जनतांत्रिक कोष्ठ है जिसे जनता द्वारा मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्षरूप से निर्वाचित किया जाता है। इसका आकार जनसंख्या पर आधारित है। 6.6 मिलियन आबादी के साथ 1959 की पहली संसद में 104 सदस्य थे। 1969 में सदस्यता बढ़कर 144 हो गई तथा 1990 में 180 तक पहुंच गई। स्पीकर तथा डिप्टी स्पीकर का चुनाव दीवान राकयत द्वारा किया जाता है। किन्तु संविधान में दीवान राकयत की सदस्यता से बाहर के किसी व्यक्ति को निर्वाचित 180 सदस्यों के अतिरिक्त दीवान का एक सदस्य माना जाता है। दीवान राकयत की सदस्यता 21 वर्ष या अधिक की आयु के नागरिकों के लिये सीमित है तथा उन लोगों के लिये जो कि सीनेट के सदस्य हों। निचले सदन का कार्यकाल 5 वर्ष है। हालांकि, यांग डी-परटुआंग आगौंग यदि चाहे तो संसद को उससे पहले भी भंग कर सकता है, यदि प्रधानमंत्री ऐसी सलाह दे।

15.9.3 सत्र

यांग डी-परटुआंग आगौंग समय-समय पर संसद का अधिवेशन बुलाता है और उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी एक सत्र की पिछली बैठक तथा अगले सत्र की पहली बैठक के लिये निश्चित की गई तारीख के बीच 6 माह से अधिक का अन्तर न रखे। संसद प्रायः एक बार में एक सप्ताह के लिये मिलती है, केवल बजट पर विचार करने के लिये जरूरी लम्बी बैठक को छोड़कर, और फिर बर्खास्त हो जाती है।

15.9.4 समिति प्रणाली

प्रस्तुत किए जाने के बाद किसी विधेयक पर, उसे किसी समिति को प्रेषित करने से पूर्व, समूचे सदन द्वारा विचार किया जाता है। किन्तु आमतौर पर सलैक्ट समितियां मलेशिया की संसद में मौजूद नहीं हैं। हाऊस ऑफ रिप्रेजैन्टेटिव का सामान्य प्रचलन विधेयकों की समिति अवस्था के दौरान समूचे सदन की समिति को उपयोग में लाना है। दूसरे पठन के बाद, सदन स्वयं ही विस्तारों पर गौर करता है और जब बिल को समिति के बाहर रिपोर्ट कर दिया गया हो तो एक संक्षिप्त तृतीय पठन की व्यवस्था की जाती है।

15.9.5 विधानमंडलीय प्रक्रिया

संविधान तथा स्थायी आदेशों द्वारा जिस विधानमंडलीय प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है, ब्रिटिश तथा भारतीय संसदों की प्रक्रिया से काफी मिलती जुलती है। विधेयकों को साधारण विधेयकों एवं धन विधेयकों में विभाजित किया गया है। इसके अलावा निजी सदस्य विधेयक भी होते हैं, जिन्हें निजी सदस्यों द्वारा पेश किया जाता है।

धारा 67 के अनुरूप, धन विधेयक के अतिरिक्त अन्य कोई विधेयक किसी भी सदन में पहले प्रस्तुत किया जा सकता है। जब किसी विधेयक को उस सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है जहां से उसकी शुरुआत हुई थी, तो इसे अन्य सदन में भेज दिया जाता है, और इसे यांग डी-परटुआंग आगौंग के पास उसकी स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। यांग डी-परटुआंग आगौंग की स्वीकृति के बाद कोई विधेयक कानून का रूप ले लेता है किन्तु कोई भी कानून तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे बिना किसी पूर्वाग्रह के प्रकाशित न कर दिया गया हो, हालांकि संसद को यह अधिकार है कि वह किसी कानून के क्रियान्वयन को स्थगित कर सकती है अथवा उसे किसी भूतकालीन दिनांक से प्रभावी बना सकती है।

कोई विधेयक धन विधेयक तब माना जाता है यदि स्पीकर की राय में उसके अंतर्गत धारा 67(1) में उल्लेखित सभी अथवा उनमें से कोई भी प्रावधान शामिल हो, अथवा किसी कर का विनिमयन तथा उससे जुड़े मामले शामिल हों। जब हाउस ऑफ रिप्रेजैण्टेटिव द्वारा कोई धन विधेयक पारित किया जाता है तथा सत्र की समाप्ति से कम से कम एक माह पूर्व उसे सीनेट के पास भेज दिया गया हो, तो उसे यांग-डी परटुआंग आगौंग के पास उसकी स्वीकृति के लिये भेजा जाना चाहिये, बशर्ते यदि हाउस ऑफ रिप्रेजैण्टेटिव इसके विपरीत निर्देश न करें।

15.9.6 संसद के कार्य

संसद अपने स्वयं के क्षेत्रों की सीमाओं के तहत, अर्थात् संघीय एवं समवर्ती सूची तथा कभी कभी राज्य सूची के तहत, कानून बना सकती है। कानून बनाने की संसद के प्राधिकार की संघीय न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। यांग डी-परटुआंग आगौंग को आपातकाल के दौरान, अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है, जिसे धारा 150 के अनुसार कानून की शक्ति प्राप्त होती है।

किसी भी कर अथवा दर को आरोपित करने, किसी भी मौजूदा कर को बढ़ाने अथवा घटाने, राज्यों को अनुदान देने, सांसदों व उच्च अधिकारियों को दिये जाने वाले वेतन के बारे में कानून बनाने, की शक्ति केवल संसद को प्राप्त है। सार्वजनिक कोष का संरक्षक होने के फलस्वरूप, संसद कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने के लिये व्यापक कदम उठाने में सक्षम है, अधिकतर बजट-बहस के दौरान चर्चाओं के माध्यम से।

संविधान में स्पष्ट तौर पर निर्धारित किया गया है कि कैबीनेट अपनी नीतियों तथा कार्यक्रमों के लिये सामूहिक तौर पर हाउस ऑफ रिप्रेजैण्टेटिव के प्रति उत्तरदायी है। जब भी यह सदन में बहुमत का विश्वास अथवा समर्थन खो देती है, तो इसे त्यागपत्र देना पड़ता है। यदि बहुमत का समर्थन प्राप्त कोई वैकल्पिक कैबीनेट न बनाई जा सके, तो सदन को भंग कर दिया जाता है और 90 दिन के भीतर आम चुनाव कराये जाते हैं।

कार्यपालिका संविधान में संशोधनों का प्रस्ताव करती है तथा संसद उन्हें स्वीकार, रद्द अथवा संशोधित करती है जिसमें अब तक 20 बार संशोधन किया जा चुका है। किन्तु धारा 10(4)14—31, 38, 63(3), 70, 71(1), 72(4), 152, 153 तथा 159(5) में संशोधन किये जाने संबन्धी कुछ सीमाएं हैं, और वे यह कि नमें शासकों के सम्मेलन की स्वीकृति के बिना संशोधन नहीं किया जा सकता।

संसद के दोनों सदनों तथा उनके सदस्यों को कुछ सुविधाएं प्रदान की गई हैं। उनके अपराधों, यदि कोई हों, पर संबद्ध सदन द्वारा दंड दिया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जोकि सदन की अवमानना करने का दोषी हो, उसे भी सदन द्वारा दण्ड दिया जा सकता है, जोकि ऐसी स्थिति में न्यायालय की तरह काम करता है।

बाध प्रश्न 8

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) दीवान नेगारा .....सदस्यों से मिलकर बनी है जिनमें से .....को .....द्वारा नामज़द किया जाता है।

2) उस तरीके का वर्णन कीजिये जिसके द्वारा मलेशियाई संसद कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.10 संघीय न्यायपालिका एवं नागरिकों के अधिकार

मलेशिया में न्यायालयों की मौजूदा प्रणाली ने मलेशिया में ब्रिटिश प्रभाव के विस्तार का ही अनुसरण किया है। 1957 के संविधान ने यह प्रावधान करते हुए कि, एक सर्वोच्च न्यायालय होना चाहिये तथा ऐसे सहायक न्यायालय होने चाहिये जिनका निश्चय संघीय कानून द्वारा किया जा सकता है, वर्तमान न्याय प्रणाली को जारी रखा था।

1963 में, मलेशिया के निर्माण के साथ ही सर्वोच्च न्यायालय विलुप्त हो गया। ऐसा तब हुआ जबकि धारा 121 में संशोधन करके यह प्रावधान किया गया कि संघ की न्यायिक शक्तियां संभावित प्रभाव क्षेत्र व प्रतिष्ठा वाले तीन उच्च न्यायालयों तथा कानून द्वारा यथा उपबंधित ऐसे अधीनस्थ न्यायालयों को सौंपी जायेगी। तीन उच्च न्यायालय मलाया, सिंगापुर तथा बोर्नियो के थे। 1965 में सिंगापुर के अलग हो जाने के बाद से अब केवल दो ही रह गये हैं: इनमें से प्रत्येक का प्रमुख उनका अपना चीफ जस्टिस है। 16 सितम्बर 1963 के मलेशिया दिवस से, सर्वोच्च न्यायालय के उन्मूलन किये जाने के साथ ही अपील न्यायालय भी समाप्त हो गया और उसका स्थान संघीय न्यायालय ने ले लिया।

15.10.1 न्यायिक प्राधिकारी

मलाया में उच्च न्यायालय मलाया के राज्यों के लिये है तथा कुआलालम्पुर में इसकी प्रमुख रजिस्ट्री है। बोर्नियो में स्थित उच्च न्यायालय सबाह व सरवाक राज्यों के लिये है, तथा क्रमशः प्रमुख रजिस्ट्री यांग डी-परटुआंग आगौंग द्वारा निश्चित किये जाने वाले स्थान पर

होती है। प्रत्येक उच्च न्यायालय के तहत एक चीफ जस्टिस तथा कम से कम चार अन्य न्यायाधीश होते हैं, किन्तु अन्य न्यायाधीशों की संख्या में तब तक वृद्धि नहीं की जाती जब तक कि संसद इस तरह का कोई निर्णय न करे, यह संख्या माले के उच्च न्यायालय में 12 तथा बोर्नियो के उच्च न्यायालय में 8 की है।

संघीय न्यायालय का लार्ड प्रेजीडैण्ट, उच्च न्यायालयों के चीफ जस्टिस तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति यांग डी-परटुआंग आगौंग द्वारा की जाती है, जोकि शासकों के सम्मेलन से सलाह-मशविरा करने के बाद प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाती है।

संघीय न्यायालय का कोई न्यायाधीश किसी भी समय त्यागपत्र दे सकता है किन्तु कुछ प्रावधानों के अलावा उसे पद से हटाया नहीं जा सकता। इस तरह, यदि प्रधानमंत्री अथवा प्रधानमंत्री से सलाह करने के बाद लार्ड प्रेसीडैण्ट यांग डी-परटुआंग आगौंग को ज्ञापन देकर यह मांग करें कि संघीय न्यायालय के किसी न्यायाधीश को दुर्व्यवहार अथवा स्वास्थ्य की खराबी अथवा मानसिक विकृति के फलस्वरूप अपने पद के दायित्वों को निभाने में अक्षम होने की वजह से पद से हटा दिया जाना चाहिये, तो यांग डी-परटुआंग आगौंग एक ट्रिब्यूनल नियुक्त करेगा तथा इस ज्ञापन को उसके पास भेज देगा। ट्रिब्यूनल की सिफारिश पर न्यायाधीश को पद से हटा भी सकता है। अधीनस्थ अथवा निम्नतर न्यायालयों के तहत, जिन्हें कानून द्वारा स्थापित किया गया है, सैशन कोर्ट, मजिस्ट्रेट कोर्ट तथा पैन्गुलम कोर्ट शामिल है, जिनकी सीमित एवं स्थानीय प्रभाव क्षेत्र रहता है। उन्हें राज्य विधानमंडलों द्वारा स्थापित किया गया है तथा वे अदालतों की पृथक प्रणाली का निर्माण करते हैं। किन्तु सामान्य कार्यों के साथ कोई राज्य न्याय प्रणाली मौजूद नहीं है।

15.10.2 प्रभावक्षेत्र

संघीय न्यायालय को उच्च न्यायालयों अथवा उनके किसी न्यायाधीश द्वारा सुनाए गए फैसलों के विरुद्ध अपील का निर्णय करने का विशेष अधिकार प्राप्त है। यह ऐसा मूल प्रभाव क्षेत्र है जिसकी व्याख्या धारा 130 में की गई है। अपने मूल प्रभाव क्षेत्र के तहत, संघीय न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने तथा राज्यों के बीच तथा किसी राज्य तथा संघीय सरकार के बीच के विवादों का निपटारा करने की शक्ति प्राप्त है। धारा 128 (1) इसे इस बात का निधारण करने के लिए अधिकृत करते हुए, कि संसद अथवा किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाया गया कोई कानून, यदि संविधान के प्रावधानों के अनुरूप न हो, तो क्या उसे रद्द किया जाना चाहिये, इसे न्यायिक समीक्षा की शान्ति प्रदान करती है। धारा 128(2) के तहत इसे प्रेषण प्रभावक्षेत्र भी प्राप्त है जो कि यह कहती है कि जब कोई मामला किसी अन्य न्यायालय के अधीन विचाराधीन हो तथा संविधान के किसी प्रावधान के प्रभावों से जुड़ा कोई प्रश्न पैदा हो जाये तो संघीय न्यायालय को उस प्रश्न का निर्धारण करने तथा अन्य न्यायालय में केस का निपटारा (उस निर्धारण के अनुरूप) कर देने का अधिकार है। अन्ततः धारा 130 के तहत इसका सलाहकार के रूप में भी प्रभावक्षेत्र हैं जो कि यांग डी-परटुआंग आगौंग को किसी भी मामले में संघीय न्यायालय से सलाह प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करता है।

प्रत्येक उच्च न्यायालय का मूल तथा अपील संबंधी प्रभावक्षेत्र है तथा संविधान की व्याख्या करने की शक्ति प्राप्त है।

15.10.3 न्यायपालिका की स्वतंत्रता

पृथक् राज्य मंत्रालय का 1970 में इस आधार पर उन्मूलन कर दिया गया था कि इसकी मौजूदगी न्यायपालिका की स्वतंत्रता के विपरीत है। अब न्याय मंत्री की अनुपस्थिति में, लार्ड प्रेसीडैण्ट तथा दो चीफ जस्टिस, न्यायालयों में बैठने व फैसले लिखने के अलावा, उनके अधीनस्थ न्यायालयों की भी देखरेख करते हैं। संविधान की व्याख्या करते हुए तथा निजी अधिकारों के संरक्षक के रूप में काम करते हुए यह जरूरी है, न्यायाधीश स्वतंत्र रहते हुए कार्य करें। इसके परिणामस्वरूप न्यायपालिका स्वतंत्र रूप से, राज्य सरकारों अथवा संघीय एवं राज्य सरकारों के बीच विवादों का निपटारा करने वाली संस्था के रूप में काम करती है।

15.10.4 नागरिकों के अधिकार

किसी भी अन्य संविधान की तरह ही, मलेशिया का संविधान भी नौ विभिन्न मौलिक अधिकारों अथवा स्वतंत्रताओं को स्वीकार करता है तथा उनका पालन सुनिश्चित करता है। वे निम्न प्रकार हैं:

बोध प्रश्न 9

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) मलेशिया में न्यायिक समीक्षा के प्रचलन का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मलेशिया में नागरिक को दिये गये विभिन्न अधिकार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.11 पार्टी प्रणाली

मलेशिया में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष ढंग से प्रत्येक पांच वर्षों में कम से कम एक बार चुनाव कराये जाते हैं तथा एक बहुदलीय प्रणाली के आधार पर हाउस ऑफ रिप्रेजैण्टेटिव तथा राज्य विधान सभाओं के सदस्यों का चुनाव किया जाता है, अर्थात् जिस प्रत्याशी को किसी चुनाव क्षेत्र में अधिकांश मत प्राप्त होने हैं उसे ही निर्वाचित घोषित किया जाता है।

15.11.1 आम चुनाव, संक्षेप में

1957 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से आठ आम चुनाव कराये जा चुके हैं 1959, 1964, 1969, 1974, 1978, 1982, 1986, 1990। 1964 तथा 1969 दोनों के चुनावों में संघीय स्तर पर एलाइन्स पार्टी ही, 1955 से शासक दल होने के अपने अटूट कीर्तीमान को कायम रखते हुए, सत्ता में वापस आई थी।

1969 के चुनावों के बाद, कुछ समय तक अंतर-जातीय दंगों का दौर चला, जिसे आगे चलकर "मई 18 की घटना" के नाम से जाना जाता है, जिसने सरकार को आयात स्थिति की घोषणा करने पर मजबूर कर दिया तथा देश का प्रशासन चलाने के लिये एक नेशनल ऑपरेशन काउन्सिल की स्थापना की गई।

1970 में, टुन अब्दुल रजाक बिन हाजी हुसैन मलेशिया के दूसरे प्रधानमंत्री बने, जबकि टुंकु अब्दुल रहमान के पुत्र, अल-हज उनके समर्थन में अपने पद से अलग हो गए।

1971 में, दोबारा संसद बुलाई गई तथा जातीय सद्भाव के ऊपर बुरा असर डालने वाली सार्वजनिक चर्चा पर रोक लगाने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। साथ ही इस आशय के उपाय किये गये ताकि देसी जनता की देश के आर्थिक जीवन में पूर्ण भागीदारी के लिये अवसर सुनिश्चित किये जा सके। इसे आगे बढ़ाते हुए, एलांइन्स पार्टी ने सफलता के साथ एक राष्ट्रीय मोर्चा बनाने के लिये पहल की, जिसके अंतर्गत अनेक विरोधी दल शामिल हो गये। 24 अगस्त 1974, मलेशियाई में चौथे आम चुनाव हुए और राष्ट्रीय मोर्चे को जबर्दस्त विजय हासिल हुई। उसने 154 संसदीय सीटों में से 135 पर विजय प्राप्त कर ली। 15 जनवरी 1976 को, द्वितीय प्रधानमंत्री, टुन अब्दुल रजाक की मृत्यु हो गई। हुसैन आनैं मलेशिया के तीसरे प्रधानमंत्री बने।

1978 में पांचवां आम चुनाव हुआ। इसमें भी राष्ट्रीय मोर्चे ने उल्लेखनीय प्रदर्शन किया और 10 राज्य विधानसभाओं में अपने नियंत्रण को बरकरार रखा। इसके बाद पेन इस्लामिक पार्टी मोर्चे से अलग हो गई। लेकिन मोर्चे के प्रभाव में गिरावट आई, इसे 1974 में 60.7 प्रतिश्त के मुकाबले 1978 में 55.14 प्रतिशत मत मिले। सीटों की दृष्टि से, मोर्चे को दो-तिहाई बहुमत प्राप्त हो गया।

16 जुलाई 1981 को, दातो सेती महाथिर मौहम्मद मलेशिया के प्रधानमंत्री बने। ऐसा टुन हुसैन ऑन के अवकाश ग्रहण कर लेने पर हुआ। 1982 तथा 1986 के आम चुनावों में, शासक राष्ट्रीय मोर्चे ने दो-तिहाई बहुमत प्राप्त करके विजय हासिल की। 1982 में, राष्ट्रीय मोर्चे ने 154 सीटों में से 132 सीटें जीत कर जबर्दस्त विजय प्राप्त की। आठवां आम चुनाव अक्टूबर 1990 में हुआ और राष्ट्रीय मोर्चे ने 180 सदस्यों वाली दीवान राकयत में 128 सीटें जीत लीं।

15.11.2 एलाइन्स पार्टी

दूसरे विश्व युद्ध से पहले, मलाया में सीमित राजनैतिक गतिविधि होती थी किन्तु जापानी आधिपत्य तथा उसके बाद से एक नई राजनैतिक जागरुकता पैदा हुई। युद्धोत्तर राजनैतिक दलों ने स्वतंत्रता की मांग की और यद्यपि मलेशिया को भारी आबादी वाले अल्पसंख्यकों के प्रभुत्व हो जाने का भय था, खासतौर पर आर्थिक रूप से शक्तिशाली चीनीयों से, फिर भी माले की नेतृत्वकारी पार्टी, यूनाइटेड मालेस नेशनल ऑगेनाइजेशन (यू.एम.एन.ओ.) तथा मलेशियन चाइनीज एसोशीएशन (एम.सी.ए.) ने 1952 में एलाइन्स पार्टी का निर्माण किया। आगे चलकर इस पार्टी में मलेशियन इण्डियन कांग्रेस भी शामिल हो गई और यह राष्ट्र की प्रभुत्वशाली राजनैतिक पार्टी बन गई।

संघ की एक प्रमुख राजनैतिक पार्टी के रूप में, यू.एम.एन.ओ. ने मूलतः 1946 में देश की आजादी के लिए संघर्ष करने तथा स्वदेशी लोगों के हितों की सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन तथा एक "निरपेक्ष नीति" पर अमल करना, लक्ष्य रखा है।

1987-88 में यू.एम.एन.ओ. के भीतर मतभेद पैदा हुए, जिनका पटाक्षेप फरवरी 1988 में उच्च न्यायालय के एक आदेश के रूप में हुआ, जिसने अप्रैल 1987 के पार्टी के आंतरिक चुनावों में धांधलियों के फलस्वरूप, यू.एम.एन.ओ. को एक गैर-कानूनी निकाय घोषित किया। अतः उसे भंग किया जाना जरूरी हो गया और तुरन्त ही डॉ. महाथिर द्वारा एक नई यू.एम.एन.ओ. (यू.एम.एन.ओ. बारू) का गठन कर लिया गया। भूतपूर्व प्रधानमंत्री टुंकू अब्दुल रहमान के नेतृत्व में, यू.एम.एन.ओ. के असंतुष्ट सदस्यों तथा भूतपूर्व व्यापार एवं उद्योग मंत्री टुंकू तन श्री रजालेग हामजा को बाहर रहने पर विवश कर दिया गया और मई 1989 में उन्होंने एक वैकल्पिक पार्टी, सेमंगत '46' (1946 की भावना) बना ली।

वर्तमान में 12 अन्य पार्टियां भी शासक राष्ट्रीय मोर्चा गठबंधन की सदस्य हैं, उनमें से अधिकांश सांप्रदायिक अथवा क्षेत्रीय आधार पर हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण चीनी उन्मुख, एम.सी.ए. हैं, जो कि 1949 में बना एक रूढ़िवादी गठबंधन हैं, जिसने हाल ही में 5,00,000 सदस्यता होने का दावा किया है। डाक्टर लिंग लिआंग सिक उसके नेता हैं।

15.11.3 अन्य पार्टियां

देश की राजनीति में अन्य सभी पार्टियों की भूमिका अत्यंत सीमित रही है। इसके अलावा उनका वर्गीकरण कर पाना भी आसान नहीं है। कुछ गैर-माले हैं, कुछ सांप्रदायिक हैं, जबकि कुछ सांप्रदायिक झुकावों से मुक्त हैं। पीयुन्स प्रोग्रेसिव पार्टी (पी.पी.पी.) का गठन सीलौन के दो वकीलों द्वारा पेरक में, जनवरी 1953 में किया गया था। 14 अक्टूबर 1953 की संघीय चुनाव समिति को प्रेषित अपने ज्ञापन में, इसने अपने गैर-सांप्रदायिक रुझान पर बल दिया और यह सिफारिश की कि चुनाव गैर-सांप्रदायिक आधारों पर कराये जाने चाहिये। 1953-55 के संक्षिप्त काल के दौरान पार्टी ने गठबंधन के साथ सहयोग किया था। पार्टी की खास अपील गैर-मालों के बीच है, खासतौर पर भाषाई तथा धार्मिक मुद्दों पर।

युनाइटेड डैमोक्रेटिक पार्टी (यू.डी.पी.) का गठन एम.सी.ए. के कुछ भूतपूर्व नेताओं द्वारा अप्रैल 1962 में किया गया था, जिसमें गठबंधन में एक संकट उभर आने के बाद संगठन को छोड़ दिया था। यह एक गैर-सांप्रदायिक पार्टी होने का दावा करती है। डॉक्टर लुग चांग ऊ, जो कि एम.सी.ए. के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं, इसकी प्रमुख शक्ति रहे हैं। पी.पी.पी. तथा यू.डी.पी., दोनों ही गैर-माले पार्टियां हैं। उन्हें विपक्षी दलों के रूप में ही अपना अस्तित्व बनाये रखने की आज्ञा दी गई है, जो कि संसदीय जनतंत्र में एक आवश्यक जरूरत होती है, और इस तरह गैर-माले असंतोष को एक कानूनी तौर पर गठित एवं नियंत्रित प्रवाह प्रदान किया गया है।

संघ के भीतर प्रमुख विपक्षी पार्टी, लिंओग किट सियांग के नेतृत्व वाली 12000 सदस्यों की डैमोक्रेटिक एक्शन पार्टी.(डी.ए.पी.) है, जिसमें चीनीयों का ही प्रायः प्रभुत्व है। 1966 में गठित डी.ए.पी. जनतांत्रिक समाजवाद पर आधारित एक बहु-जातीय समाज की स्थापना करने की पैरवी करती है। इस्लामिक-रेडीकल, 250000 सदस्यों वाली पानँ-मलेशियन इस्लामिक पार्टी (पी.ए.एस.) भी महत्वपूर्ण है, जिसका गठन 1951 में हुआ था और जो पूर्ण रूप से इस्लामिक समाज की स्थापना की वकालत करती है।

अन्य पार्टियों में कडाजम-समर्थित सबाह यूनाइटेड पार्टी (पी.बी.एस.) शामिल है जोकि 1985 से अस्तित्व में आई है और उसके नेता एक रोमन कैथोलिक डाटुक जोजफ पेरिन किटांगन है। हिजबुल मुस्लिम की स्थापना पी.बी.एस. से अलग हुए एक गुट के रूप में 1986 में हुई थी। पार्टी बंसा दायक सरवाक (पी.बी.डी.एफ.) का गठन 1983, मलेशियन इस्लामिक काउंसिल फ्रंट (एफ.एम.आई.सी.) का 1977 में तथा सरवाक नेशनल पार्टी (एस.एन.पी.) का 1961 में हुआ था।

15.11.4 पार्टी व्यवस्था की प्रकृति

पार्टी व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं पर निम्नलिखित तरीके से संक्षिप्त चर्चा की जा सकती है:

राजनैतिक पार्टियों की वैधानिक स्थिति

मलेशिया का संविधान, अन्य अधिकांश संविधानों की भांति ही, इस विषय पर मौन है। मलेशिया में 20 से भी अधिक राजनैतिक पार्टियां हैं। राजनैतिक पार्टी का निर्माण सोसाइटीज एक्ट 1966 के तहत, समय समय पर संशोधित किये जाते रहे नियमों, के अनुरूप किया जाता है। अधिनियम की धारा 7(1) रजिस्ट्रार ऑफ सोसाइटीज को किसी राजनैतिक पार्टी के पंजीकरण से इंकार कर देने के लिये भी अधिकृत करती है, यदि मंत्री की राय में उससे संघ अथवा उसके किसी हिस्से के हितों अथवा सुरक्षा पर, सार्वजनिक सुरक्षा अथवा नैतिकता पर असर पड़ सकता हो, तथा जो ऐसी राजनैतिक प्रकृति वाला संगठन अथवा समूह हो अथवा जिसकी संबद्धता अथवा संपर्क संघ के बाहर भी हो। औपनिवेषिक काल में ही मलेशिया की कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था, उसने पंजीकरण के लिये कभी भी आवेदन नहीं किया।

हालांकि ब्रिटेन व भारत की भांति मलेशिया ने भी साधारण बहुमत की प्रणाली को अपनाया है, फिर भी यह इस मामले में ब्रिटेन से भिन्न है कि यहां 20 से भी अधिक राजनैतिक दल हैं। दूसरी तरफ, इस मामले में वह भारत की भांति नहीं है। इस बहुलता का मुख्य कारण (क) बिखरे हुए अनेक समूह तथा (ख) स्थानीय प्रतिबद्धताएं हैं।

पार्टीयों का साम्प्रदायिक/जातीय चरित्र

यह एक बहुल उल्लेखनीय लक्षण है, जोकि इस तथ्य के फलस्वरूप पैदा हुआ है कि मलेशिया एक बहु-जातीय समाज है। तीन महत्वपूर्ण जातीय समुदायों के अलावा माले, चीनी व भारतीय–देश के विभिन्न भागों में अनेक अन्य समुदाय भी बसे हुए हैं। मलेशिया की राजनैतिक पार्टियां सांप्रदायिक हैं, और वे जातीय भिन्नताओं पर आधारित हैं, न कि भारत की तरह धार्मिक भिन्नताओं पर।

एक पार्टी का वर्चस्व

मलेशिया में पार्टी-व्यवस्था, भारत की भांति ही, एक पार्टी के वर्चस्व से चरितार्थ होती है। एलांइन्स पार्टी, जोकि यू.एम.एन.ओ., एम.सी.ए. तथा एम.आई.सी. नामक तीन पार्टियों का गठबंधन है, 1955 से 1971 तक राष्ट्रीय राजनैतिक परिदृश्य पर वर्चस्व बनाये रही है। आगे चलकर, राष्ट्रीय मोर्चा अपने मुख्य घटक यू.एम.एन.ओ. के साथ सत्ता में आया। यहां यह भी कहा जा सकता है कि कोई भी एक पार्टी गठबंधन कारी नहीं रही है। एलाइंस पार्टी की सफलता को ध्यान में रखते हुए एक अन्य गठबंधननुमा मोर्चा सोशलिस्ट फ्रंट–1957 से 1965 तक कायम रहा था।

हित समूह

मलेशिया में हित समूह हाल ही में उभरे हैं तथा उनकी संख्या भी अधिक नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण हित समूह ट्रेड-यूनियनें हैं, जोकि सांप्रदायिकता के प्रभावों से मुक्त नहीं हैं। शहरी मजदूर–चीनी एवं भारतीय–ट्रेड यूनियनों में संगठित हैं। भारतीयों की ट्रेड यूनियनें व ट्रेड यूनियन नेता बड़ी संख्या में हैं। 1962 तक वहां 300 ट्रेड यूनियनें बन गई थीं, जिन्हें आगे चलकर मान्यता प्राप्त हो गई। सबसे बड़ी यूनियन नेशनल यूनियन ऑफ प्लाण्टेशन वर्कर्स है तथा यूनियनों का सबसे बड़ा समूह मलेशियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस है। विभिन्न चैम्बर ऑफ कॉमर्स महत्वपूर्ण दवाब-गुटों के रूप से काम कर रहे हैं।

बोध प्रश्न 10

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) पान-मलेशियन इस्लामिक पार्टी की विचारधारा की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) यदि राजनैतिक प्रकृति वाला कोई संगठन संघ के बाहर के संपर्कों के साथ स्थापित होता है, तो क्या होता है।

.....

.....

.....

15.12 मलेशिया अंतर्राष्ट्रीय मामलों में

मलेशिया की स्थापना तेजी से बढ़ते तनाव के वातावरण में हुई थी। लंदन समझौता जिसने संघ को अंतिम स्वरूप प्रदान किया था, उसका पड़ौसियों ने विरोध किया था। फिलीपीन्स द्वारा अभिव्यक्त किया गया विरोध मुख्यतः उत्तरी बोर्नियो के कुछ हिस्से पर आधिपत्य के उसके दावे से संबंधित अनसुलझे मुद्दे से ही पैदा हुआ था। दूसरी तरफ इंडोनेशिया की शत्रुता, विचारधारात्मक, आर्थिक एवं राजनैतिक कारकों की एक जटिल गुत्थी थी। फिलीपीन्स सरकार ने मलेशिया से अपने राजनयिक संबन्ध तोड़ लिये थे। आगामी वर्ष के दौरान मलेशिया एवं इंडोनेशिया के रिश्ते इस कदर तनावपूर्ण हो गये कि सभी व्यापार, यात्रा एवं संचार संबन्ध समाप्त कर दिये गये हैं।

15.12.1 भावी परिणाम

जनवरी 1966 में, मलेशिया के विरुद्ध इंडोनेशिया का टकराव कुछ सीमा तक कम हो गया क्योंकि इंडोनेशिया के नेता एक नई सरकार के निर्माण में संलग्न थे।

1 जून 1966 को, मलेशिया के उप प्रधानमंत्री टुन अब्दुल रजाक तथा इंडोनेशिया के विदेशमंत्री आदम मालिक के बीच बैंकाक में, इंडोनेशिया के मलेशिया के विरुद्ध तीन वर्ष पुराने टकराव को समाप्त करने की दृष्टि से, एक शान्ति-समझौते पर सहमति हुई।

इंडोनेशिया व मलेशिया के बीच शन्ति-समझौता हो जाने के उपरान्त, फिलीपीन्स ने भी मलेशिया को मान्यता प्रदान करने के लिये ठोस कदम उठाये, तथा 3 जून को, मलेशिया व फिलीपीन्स के बीच तीन वर्षों के अंतराल के बाद पूर्ण राजनयिक संबंध कायम हो गये।

11 अगस्त 1966 को, टुन अब्दुल रजाक तथा इंडोनेशिया के विदेश मंत्री आदम मालिक के बीच जकार्ता में एक शान्ति-समझौते पर हस्ताक्षर किये गये, और तीन वर्ष पुराने टकराव का अंत किये जाने का संकेत दिया गया। अगस्त 1967 तक, मलेशिया एवं इंडोनेशिया के बीच पूर्ण राजनयिक संबन्ध कायम हो गये।

15.12.2 विदेश संबन्ध

मलेशिया की विदेश नीति का मूल तत्व शान्ति है। दक्षिण-पूर्व एशिया में क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने व कायम रखने में, मलेशिया ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है : इस्लामी एक-जुटता को प्रोत्साहन, गुट-निरपेक्षता को मजबूत बनाने, अधिक से अधिक संभव देशों के साथ मैत्री पूर्ण संबन्ध की इच्छा, तथा उन देशों के साथ संपर्कों को सुदृढ़ बनाने की नीति, जिनके साथ मलेशिया के हित एक समान हैं।

क्षेत्रीयता को बढ़ावा देने के लिये, मलेशिया आसियान (एसोशीएशन ऑफ ईस्ट एशियन नेशन्स) में सक्रिय रूप से शामिल हैं, जिसके सदस्य देश हैं ब्रुनेई, इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड। यह दक्षिण-पूर्व एशिया में एक शान्ति, स्वतंत्रता एवं निरपेक्षता का क्षेत्र कायम करने की दिशा में काम कर रहा है जो कि क्षेत्र में शान्ति तथा स्थिरता का आधार प्रदान करेगा।

आसियान के एक सदस्य के रूप में, मलेशिया ने अपने कम्युनिस्ट पड़ौसियों के साथ मजबूत राजनैतिक संबन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। 1978 तथा 1989 के बीच मलेशिया ने करीब 230000 वियतनामी शरणार्थियों को राजनैतिक शरण प्रदान की थी, जब तक कि

पश्चिम में उनका पुनर्वास नहीं हो गया। मार्च 1989 में, शरणार्थियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो जाने तथा उनका पुनर्वास करने के प्रति पश्चिमी देशों की बढ़ती हठधर्मी के चलते आसियान ने घोषणा की कि इंडो-चीन के शरणार्थियों की जांच करके यह देखा जायेगा कि उनमें कितने "वास्तविक" शरणार्थी हैं और कितने आर्थिक प्रवासी हैं, और उन्हें अलग किया जायेगा। इस नीति को दक्षिण-पूर्व एशियाई शरणार्थियों से संबन्धित संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित एक सम्मेलन में दोहराया गया।

मलेशिया इस्लामिक देशों के बीच एकजुटता तथा एकता का प्रबल समर्थक है। मलेशिया न केवल धार्मिक बल्कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक व तकनीकी क्षेत्रों में भी, इन देशों के साथ सहयोग को बढ़ावा दे रहा है, खासतौर पर इस्लामी सम्मेलन (ओ.आई.सी.) का संगठन करने के माध्यम से।

गुट निरपेक्षता के आर्दशों को सुदृढ़ एवं मजबूत बनाने में सहायता करने के लिये, मलेशिया गुट-निरपेक्ष आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाता है तथा उसने सितम्बर 1973 के अल्जीयर्स सम्मेलन, अगस्त 1976 के कोलम्बो सम्मेलन, सितम्बर 1979 के हवाना सम्मेलन, 1983 के नई दिल्ली सम्मेलन व सितम्बर 1986 के हरारे सम्मेलन समेत, इसकी अनेक बैठकों में भाग लिया है।

न्याय एवं समानता पर आधारित एक नई विश्व आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिये, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग व तालमेल को बढ़ावा देने में मलेशिया के प्रयास भी, संयुक्त राष्ट्र संघ व इसकी तमाम एजेन्सियों तथा राष्ट्रमंडल तथा कोलम्बो योजना, तथा एशियन डवलपमैंट बैंक जैसे सहयोग के क्षेत्रीय संगठनों, आदि जैसे विश्व निकायों की गतिविधियों में इसके सीधे तौर पर शामिल रहने में स्पष्ट दिखाई देते हैं। मलेशिया के 53 देशों में 63 राजनयिक मिशन मौजूद हैं। 18 देशों में ऑनरेरी कन्सुलेट भी स्थापित किये गये हैं। मलेशिया में 82 देशों के राजनयिक मिशन तथा पड़ौसी देशों से मलेशिया में 24 प्रत्यायन मौजूद हैं।

बोध प्रश्न 11

टिप्पणी : i) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरें से कीजिये।

1) निम्नलिखित शब्दों के अर्थ क्या हैं।

i) आसियान (ए.एस.ई.ए.एन.) .....

ii) जोपफान (जैड.ओ.प.एफ.ए.एन.) .....

iii) नियो (एन.आई.ई.ओ.) .....

iv) नाम (एन.ए.एम.) .....

15.13 सारांश

मलेशिया ने भारत से 10 वर्ष बाद स्वतंत्रता प्राप्त की थी तथा यह सितम्बर 1963 में सबाह व सरवाक के उपनिवेषों को शामिल करते हुए मलेशियाई संघ बना था। अगस्त 1965 में सिंगापुर मलेशियाई संघ से अलग हो गया। मलेशिया की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं, खासतौर से भारतीय विद्यार्थियों के लिये, निम्न प्रकार से हैं: इसकी जनसंख्या भारत की तरह ही सम्मिलित एवं भिन्नतापूर्ण है। इस तरह इसका समाज बहुल है तथा इसकी राजनीति आमतौर पर जातीय टकरावों से चरितार्थ होती है। तीसरा यह कि मलेशिया का संविधान भी भारत की तरह ही संसदीय एवं संघीय, दोनों, है। दोनों ही मामलों में मूल लक्षण एक जैसे ही हैं फिर भी दोनों देशों के संवैधानिक प्रावधानों तथा प्रचलनों के बीच अनेक अन्तर भी मौजूद हैं।

15.14 शब्दावली

संघ : किसी एक लीग में एकबद्ध होने का समझौता जिसमें प्रत्येक घटक अपनी सत्ता को केंद्रीय सत्ता के अधीनस्थ रखता है।

संसदीय प्रणाली : यदि विधानमंडल तथा कार्यपालिका निकट सहयोग के साथ काम करते हैं और कार्यपालिका विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होती है, तो इस व्यवस्था को संसदीय प्रणाली कहा जाता है।

राजनैतिक संस्कृति : मुद्दों एवं मूल्यों का आम परिवेश जिसके तहत किसी देश की जनता राजनीति के बारे में सीखती है और जिसके तहत उनकी सरकार काम करती है।

प्राइमस इण्टर पायर्स : बराबर वालों में प्रथम

न्यायिक समीक्षा : संसद द्वारा बनाये गये कानूनों की समीक्षा करने की सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति तथा उन्हें संविधान के प्रावधानों के प्रतिकूल पाये जाने पर रद्द घोषित करने की शक्ति।

आसियान : ऐसोशिएशन ऑफ ईस्ट एशियन नेशन्स

जोपफान : जोन ऑफ पीस, फ्रेण्डशिप एण्ड न्यूट्रेलिटि।

गुट निरपेक्षता : शान्ति-युद्ध की प्रतिक्रिया में उभरी एक नीति, जिसे राष्ट्रों के एक समूह ने आगे बढ़ाया, जिसने अन्ततः गुट-निरपेक्ष आन्दोलन को जन्म दिया।

नीयो (एन.आई.ई.ओ.) : नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था।

संरक्षणकर्ता : किसी शक्तिशाली राज्य का किसी कमजोर राज्य से संबन्ध जोकि इसके नियंत्रण व संरक्षण में हो अथवा कोई राज्य अथवा क्षेत्र जिस पर इस तरह नियंत्रण व संरक्षण दिया जा रहा हो।

15.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

क्राउच हैराल्ड, ली काम हिंग, तथा औग माइकल (संपा) *मलेशियन पॉलिटिक्स एण्ड द 1978* इलैक्शनस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1980.

इस्मैन, मिल्टन जे., *एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड डवलपमेंट इन मलेशिया*, इथाका, न्यूयार्क, कोर्नोल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972.

झा, गंगानाथ, *साऊथ ईस्ट एशिया एण्ड इंडिया : ए पोलिटिकल परस्पैक्टिव*, नेशनल बुक ऑर्गेनाइजेशन, नई दिल्ली, 1986

मलेशिया ऑफीशीयल ईयर बुक, 1991.

मलेशियन ईयर बुक, 1991.

मीन्स, गोर्डन पी., *मलेशियन पॉलीटिक्स*, दूसरा संस्करण, लंदन, हॉडर एण्ड स्टाउटन, 1976.

मिल्ने, आर.एस. एण्ड के.जे. रत्नम, *मलेशिया–नयू स्टेटस इन ए न्यू नेशन*, लंदन : सेस, 1974

मिल्ने, आर.एस., मौजी डाइने के, *पॉलिटिक्स एण्ड गवर्नमैण्ट इन मलेशिया*, सिंगापुर : फैउरल पब्लिकेशनस, 1978

नागी, आर, *बि पॉवरर्स एण्ड साउथ ईस्ट एशियन सिक्योरिटी*, मैंसर्स बुक्स, नई दिल्ली, 1986.

सूफियन, टुन मोहम्मद, एच.पीलर, एण्ड एफ.ए. ट्रिन्डाडे, *द कांस्टीट्यूशन आफ मलेशहया : इटस डवलपमैण्ट 1957-77.*

ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978।.

15.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) धारा 15.2 देखें

बोध प्रश्न 2

1) धारा 15.3 देखें

2) धारा 15.3 देखें

बोध प्रश्न 3

1) उपधारा 15.4.1 देखें

बोध प्रश्न 4

1) धारा 15.5 देखें

बोध प्रश्न 5

1) उपधारा 15.6.1 देखें

बोध प्रश्न 6

1) मलेशिया का संविधान लिखित एवं जटिल दोनों ही है।

2) मलेशियाई संघ का सरकारी धर्म इस्लाम है, किन्तु अन्य धर्मों का पालन भी किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 7

1) उपधारा 15.8.2 देखें

2) इसके मायने हैं कि मंत्रिपरिषद तथा कैबीनेट के सभी सदस्य अपने द्वारा लिये जाने वाले सभी निर्णयों के लिये, संसद के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी हैं और यदि मंत्रिपरिषद अथवा कैबीनेट के किसी सदस्य द्वारा पेश किया गया कोई विधेयक सदन के पटल पर खारिज हो जाये, तो संपूर्ण मंत्रीमंडल धराशायी हो जाता है। इसीलिये यह कहा जाता है कि वे एक साथ ही तैरते व डूबते हैं।

3) उपधारा 15.8.6 देखें

बोध प्रश्न 8

1) 69, 40, यांग डी-परटुआंग आगौंग

2) उपधारा 15.9.6 देखें

बोध प्रश्न 9

1) न्यायिक समीक्षा मलेशिया में सर्वोच्च न्यायालय की संसद द्वारा बनाये गये कानूनों की समीक्षा करने तथा असंवैधानिक पाये जाने पर उन्हें खारिज घोषित कर देने की शक्ति है।

2) उपधारा 15.10.4 देखें

बोध प्रश्न 10

1) उपधारा 15.11.3 देखें

2) इस पर पाबंदी लगा दी जायेगी।

बोध प्रश्न 11

1) i) एसोशीएशन ऑफ ईस्ट एशियन नेशन्स

ii) जोन आफ पीस, फ्रैण्डशिप एण्ड न्यूट्रैलिटी

iii) न्यू इण्टरनेशनल एकोनोमिक आर्डर

iv) नॉन एलाइन मूवमैण्ट

इकाई 16 फिलीपीन्स

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 भूगोल और लोग
16.3 इतिहास
- 16.3.1 स्पेनी औपनिवेशिक शासन : 1565-1898
- 16.3.2 अमेरिकी आधिपत्य
- 16.3.3 आजादी के समय : 1 जुलाई 1946
- 16.3.4 लॉरेल-लांगले समझौता
- 16.3.5 फिलीपीन्स में अमेरिकी सैनिक अड्डे

16.4 फिलीपीनी विदेश नीति का विकास : 1946-72
16.5 फिलीपीन्स का संविधान : 1972-86
16.6 मार्कोस शासन : 1972-86
- 16.6.1 आर्थिक संकट
- 16.6.2 छात्र आंदोलन
- 16.6.3 सभा प्रस्ताव

16.7 कम्युनिस्ट आंदोलन
- 16.7.1 हुक आंदोलन
- 16.7.2 रेमन मैगसाय और हुक आंदोलन का निलंबन
- 16.7.3 कम्युनिस्ट पार्टी का गठन
- 16.7.4 मांडिआवा पुल की लड़ाई
- 16.7.5 कम्युनिस्ट आंदोलन और विदेश नीति

16.8 मुस्लिम समुदाय
- 16.8.1 मार्कोस और मुस्लिम समुदाय
- 16.8.2 फिलीपीन्स में इस्लाम का आगमन
- 16.8.3 स्वातंत्र्योत्तर संबंध
- 16.8.4 मोरो राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा
- 16.8.5 इस्लामी देशों के साथ संबंध सुधार

16.9 अमेरिकी सैनिक अड्डे
- 16.9.1 भूमिका
- 16.9.2 संबंधों के बदलते दौर
- 16.9.3 सैनिक अड्डों से संबंधित बातचीत
- 16.9.4 मार्कोस की वैधता का सवाल

16.10 मार्कोस शासन का अंत
16.11 कोराजोन अक्विनो का शासन काल : 1986-92
- 16.11.1 मार्कोस की विरासत की समस्याएं
- 16.11.2 नया संविधान

16.12 मौजूदा हालात
- 16.12.1 तात्कालिक समस्याएं
- 16.12.2 अमेरिका-फिलीपीन्स संबंधों का भविष्य

16.13 सारांश
16.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में फिलीपीनी लोग, उनकी कला और संस्कृति, इतिहास, शासन एवं राजनीति के बारे में बताया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- फिलीपीन्स के इतिहास, भूगोल और लोगों के बारे में बता सकते हैं।
- इसकी विदेश नीति की चर्चा कर सकते हैं।
- आजादी के बाद के घटनाक्रमों का विश्लेषण कर सकते हैं।

16.1 प्रस्तावना

22 सितंबर 1972 को तत्कालीन राष्ट्रपति मार्कोस द्वारा फिलीपीन्स में मार्शल ला शासन लागू करने के बाद से वहां कई उल्लेखनीय घटनाएं हुईं। 1986 में मार्कोस की पराजय के बाद कोराजोन अक्विनों राष्ट्रपति बनीं और संवैधानिक लोकतंत्र की पुनर्स्थापना की। अमेरिका-फिलीपीन्स संबंधों का गहराई से पुनः मूल्यांकन किया गया। फिलीपीनी विदेश नीति "पक्षधन" नीति का एक ऐसा उदाहरण है जिसका विकास फिलीपीनी-अमेरिकी रक्षा और व्यापार के संबंधों के माध्यम से हुआ। '40 और '60 के दशकों में शीत युद्ध के दौरान पक्षधरता की नीति काफी दृढ़ थी लेकिन समय के साथ उसमें लचीलापन आता गया। विदेश नीति की मौजूदा प्रवृत्तियां एशिया की "उदीयमान वास्तविकताओं" को परिलक्षित करती हैं। नए शक्ति संतुलन के तहत एक ही देश पर निर्भरता की नीति को छोड़कर फिलीपीन्स अब नए सहयोगियों की तलाश कर रहा है।

16.2 भूगोल और लोग

फिलीपीन्स के ज्यादातर लोग मलय मूल के हैं लेकिन उनकी संस्कृति चीनी, जापानी एवं अन्य एशियाई संस्कृतियों का सम्मिश्रण है। लगभग 330 साल के स्पेनी शासन के परिणामस्वरूप, फिलीपीन्स एशिया का अकेला देश है जिसकी अधिकांश जनसंख्या एशियाई (रोमन कैथलिक) है। फिलीपीनियों के तौर-तरीकों पर अमेरिकी प्रभाव भी स्पष्ट दिखता है। स्पेनियों को हराकर अमेरिका ने 50 साल तक फिलीपीन्स पर शासन किया था। इसके बावजूद फिलीपीन्स की एशियाई अस्मिता बरकरार है।

16.3 इतिहास

16.3.1 स्पेनी औपनिवेशिक शासन : 1565-1898

हाल की ऐतिहासिक खोजों से पता चलता है कि औपनिवेशिक शासन के शिकंजे में फंसने से पहले, फिलीपीन्स सांस्कृतिक रूप से काफी विकसित था। लेकिन पूरे द्वीप समूह को जोड़ने वाला कोई साझा सांस्कृतिक, धार्मिक या राजनैतिक सूत्र नहीं था। स्पेनी उपनिवेशवादियों ने, श्वेत-श्रेष्ठता स्थापित करने और पूरे द्वीप-समूह पर केंद्रीकृत शासन की सुविधा के लिए, एक "मिली-जुली" संस्कृति का विकास किया, जिस पर ईशाइयत का वैचारिक वर्चस्व था। आधुनिक फिलीपीन्स की पश्चिम परंपरा इसी "मिली-जुली" संस्कृति की विरासत है। स्पेनी शासन का सामंती चरित्र शोषण और भ्रष्टाचार पर आधारित था। स्पेनी उपनिवेशवाद, फिलीपीन्स के इतिहास के अपने अयोग्य शासन और लोगों की आर्थिक तंगहाली के लिए जाना जाता है। स्पेनी उपनिवेश के प्रति लोगों में व्याप्त असंतोष और शासन से मोहभंग की अंतिम परिणति, स्पेनी उपनिवेशवाद के अंत में हुई।

16.3.2 अमेरिकी आधिपत्य

स्पेनी उपनिवेश का अंत, अमेरिकी उपनिवेशवाद की शुरुआत में हुआ। इस प्रकार उपनिवेशवाद को, शासन और शोषण के उपयुक्त एक बना-बनाया पश्चिमोन्मुख

सांस्कृतिक माहौल मिला। फिलीपीनी जनता में विदेशी शासन के प्रति विश्वास पैदा करने और वैचारिक वर्चस्व सुदृढ़ करने के उद्देश्य से अमेरिकी महाप्रभुओं ने निःशुल्क राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की। स्पेनी शासन की भयावह यादों की साया के चलते अमेरिकी आधिपत्य के प्रति लोगों की कटुता उस स्तर तक नहीं थी जितनी कि उसके पूर्ववर्ती शासकों के प्रति राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की आंधी के असर फिलीपीन्स अछूता नहीं रह सका। 1946 में फिलीपीन्स राजनैतिक अर्थों में अमेरिकी आधिपत्य से आजाद तो हो गया लेकिन आज भी वैचारिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में अमेरिकी विचारधारा का वर्चस्व कायम है।

अपने शासन और शोषण की निरंतरता बनाए रखने के लिए, अमेरिकी शासकों ने, फिलीपीन्स में, व्यापारिक-पूंजीपतियों और सामंती-जमींदारों के गठबंधन पर आधारित, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्ग के नेतृत्व में एक ऐसे सामाजिक-राजनैतिक ढांचे की रचना की, जिसका वहां के इतिहास पर दूरगामी प्रभाव देखने को मिलता है। हूक आंदोलन का निशाना यही गठबंधन था।

16.3.3 आजादी के समय : 1 जुलाई, 1946

तीसरी दुनिया के अन्य देशों की ही तरह, आजादी के साथ, फिलीपीन्स को भी एक औपनिवेशिक अर्थतंत्र विरासत में मिला। यहां की प्रमुखतः खेतिहर अर्थव्यवस्था अमेरिका पर निर्भर थी। चूंकि चीनी, अबेका और नारियल अमेरिका को निर्यात होने वाली प्रमुख सामग्रियां हैं, इसलिए इन व्यापारिक फसलों के उत्पादन पर ज्यादा जोर दिया जाने लगा। इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय खपत की फसलों की उपेक्षा होने लगी। बंटाईदारी कृषि अर्थ-व्यवस्था की सबसे प्रचलित प्रणाली है।

फिलीपीनी बाजार में कर-मुक्त अमेरिकी सामग्रियों की उपलब्धता देसी उद्योग धंधों के विकास में बाधक बन गई। इसका प्रमुख कारण यह था कि उदीयमान देसी उद्योगों के लिए, कर-मुक्त अमेरिकी उत्पादों के साथ प्रतियोगिता करना संभव नहीं था।

अमेरिकी शासन ने, फिलीपीन्स में किसी सशक्त सैनिक प्रतिष्ठान का गठन नहीं किया था, जिसके परिणामस्वरूप, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापान ने आसानी से उस पर कब्जा कर लिया था। स्वतंत्रता के बाद भी, रक्षा के मामलों में, इसकी अमेरिका पर निर्भरता बनी हुई है।

स्वतंत्रता के बाद फीलीपीन्स के शासकों को लगा कि उनके पास केवल दो विकल्प थे: पहला विकल्प था, अमेरिकी महाप्रभुओं का दामन पकड़ कर राज करना और दूसरा विकल्प था, कम्युनिस्ट ताकतों के समक्ष समर्पण। (उल्लेखनीय है कि उस समय फिलीपीन्स में कम्युनिस्ट आंदोलन उफान पर था और अमेरिकापरस्त, फिलीपीनी शासक वर्ग, "कम्युनिज्म" के हौवा से आतंकित होकर तरह-तरह के कम्युनिस्ट विरोधी कुप्रचार में लिप्त थे।) "आजाद" फिलीपीन्स के शासकों ने किसी तीसरे विकल्प—जैसे कि "निर्गुट आंदोलन"—पर बिना कोई विचार किए पहला विकल्प ही चुना। उन्होंने अमेरिकी महाप्रभुओं के साथ कई समझौतों पर हस्ताक्षर किये। शासक वर्गों न, दुनिया भर में इन समझौतों से होने वाले फायदों का ढोल पीटा। लेकिन इतिहास पर एक दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन समझौतों का दूरगामी लक्ष्य, फिलीपीन्स के अर्थतंत्र पर साम्राज्यवादी पकड़ को मजबूत करना था। अमेरिकापरस्ती की नीति अपनाते समय, फिलीपीनी शासकों ने यह तर्क दिया था कि चूंकि फिलीपीनी अर्थव्यवस्था अमेरिका पर आश्रित थी इसलिए अमेरिका से पूर्ण संबंध-विच्छेद से देश में आर्थिक बदहाली फैल जाती।

16.3.4 लॉरेल-लांगले समझौता

प्रत्येक अमेरिकी शासन की समाप्ति के शुरुआती दौर में, अमेरिका-फिलीपीन्स संबंध, 1946 के **व्यापार-अधिनियम** द्वारा संचालित थे। बाद में, इसकी जगह 6 सितंबर, 1955

को हुए लॉरेल-लांगले समझौते ने ली ली। जुलाई 1974 में इस समझौते की अवधि बीत जाने पर, दोनों देशों के बीच विशिष्ट आर्थिक संबंधों के समझौते–जैसे अमेरिकी बाजार में फिलीपीनी माल को वरीयता की सुविधा और "पार्टी राइट" के तहत फिलीपीनी प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का अमेरिका अधिकार–भी समाप्त हो गए।

इस्तेमाता

16.3.5 फिलीपीन्स में अमेरिकी सैनिक अड्डे

14 मार्च 1947 को हुए समझौते के तहत अमेरिका को 11 वर्ष की अवधि के लिए फिलीपीन्स में अपने सैनिक अड्डे बरकरार रखने का अधिकार प्रदान किया गया। इन अड्डों के चलते बहुत से फिलीपीनियों को नौकरी मिली और अमेरिकी सैनिकों को चीजों की आपूर्ति से भी कुछ लोगों के आय का स्रोत बना। शीतयुद्ध के संदर्भ में, अमेरिका के लिए इन अड्डों का सामरिक महत्व काफी बढ़ गया। समय बीतने के साथ इस समझौते की तमाम शर्तों पर पुनर्विचार की मांग बढ़ने लगी। अमेरिकी सैनिक अड्डे थे–क्लर्क और संगली वायुसेना अड्डे एवं सुबिक नौसैनिक अड्डा। सितंबर, 1971 में सुबिक नौसैनिक अड्डे को अमेरिका ने फिलीपीन्स की मांग पर छोड़ दिया। युवा-वर्ग का एक बड़ा तबका अमेरिका-फिलीपीन्स संबंधों के शोषण के पहलू पर काफी व्याकुल होने लगा था। फिलीपीन्स में अमेरिकी अड्डों की मौजूदगी को उसकी संप्रभुता के लिए खतरनाक माना जाने लगा। अड्डों संबंधित समझौता 1991 में समाप्त हो गया और 1992 तक अमेरिका ने अपनी फौजें वापस बुला लीं।

16.4 फिलीपीनी विदेश नीति का विकास : 1946-72

इस दौर में फिलीपीन्स की विदेश नीति का निर्धारण, अमेरिकी विदेश नीति की आवश्यकताओं के अनुरूप होता रहा। यह कहना गलत नहीं होगा कि फिलीपीनी विदेश नीति, राष्ट्रीय शासक–अभिजात वर्गों और अमेरिकी हितों के संगम का प्रतिफल रही है। पड़ोस में कम्युनिस्ट चीन की मौजूदगी और देश में तेज होते कम्युनिस्ट आंदोलन के भय से दोनों के ही दिलो-दिमाग पर "कम्युनिस्ट खतरे" का भूत सवार था। पड़ोसी देशों–कोरिया और वियतनाम में जनवादी संघर्षों और युद्धों में आतंकित फिलीपीनी शासकों ने अमेरिकी दामन और भी कसकर पकड़ लिया और अमेरिका को भी क्षेत्र में एक विश्वस्त और वफादार सहयोगी की जरूरत ज्यादा महसूस होने लगी थी।

इसके अलावा फिलीपीनी शासक वर्गों का एक प्रभावशाली तबका, जापान से मुक्ति दिलाने और युद्ध के परिणामस्वरूप अस्त-व्यस्त अर्थव्यवस्था को "संवारने" में अमेरिकी मदद के लिए अमेरिका के प्रति कृतज्ञता का भी रखता था।

इस दौर में एशिया की गतिविधियों में फिलीपीन्स की हिस्सेदारी अमेरिका के साथ सामान्य पहचान स्थापित करने की आशा और साम्यवाद के विरुद्ध एक मजबूत गठबंधन खड़ा करने की उसकी इच्छा से प्रेरित होती थी। लेकिन समय के साथ, अंतर्राष्ट्रीय स्थिति बदलती गई और फिलीपीन्स की विदेश नीति में भी "परिवर्तन" आना शुरू हुआ–विशेष रूप से 1961 के बाद। युद्धोत्तर काल में एक व्यापारिक शक्ति के रूप में जापान के उदय से फिलीपीन्स की अमेरिका पर व्यापारिक निर्भरता घटी। इसके अलावा वियतनाम में अमेरिकी पराजय और शीत युद्ध के अंत का भी फिलीपीनी शासकों के मन पर प्रभाव पड़ा। चीन के साथ अमेरिका के सुधरते संबंधों ने भी फिलीपीनी नेताओं को पुनर्विचार के लिए बाध्य किया। चीनियों को खुश करने के लिए निक्सन की बीजिंग यात्रा, उन्हें अच्छी नहीं लगी थी। इसके बाद फिलीपीन शासन ने चीन एवं अन्य देशों के साथ स्वतंत्र राजनयिक संबंध स्थापित करने शुरू कर दिये।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : नीचे दी गई जगह में प्रश्न का उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से उसकी जांच कर लें।

1) 1946-72 के दौर में फिलीपीनी विदेश नीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

16.5 फिलीपीन्स का संविधान : 1972-86

1934 में निर्मित फिलीपीनी संविधान के तहत एक लोकतांत्रिक, निर्वाचित सरकार का प्रावधान था। फिलीपीन्स की राजनैतिक प्रणाली, 1972 में राष्ट्रपति फर्डिनन्ड मार्कोस द्वारा मार्शल ली की घोषणा तक, इसी संविधान के तहत चलता रहा। शक्ति का पृथकीकरण इस संविधान की एक प्रमुख विशिष्टता थी।

शासन के तीनों अंग—कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका एक दूसरे से स्वतंत्र और स्वायत्त थे। उनके पारस्परिक संबंधों का समन्वय प्रतिष्ठा की समानता के सिद्धांत पर आधारित था। विधायिका के अधिकार कांग्रेस (संसद) के पास थे, कार्यपालिका के अधिकारों का प्रयोग राष्ट्रपति करता था और सर्वोच्च न्यायालय, न्यायपालिका की सर्वोच्च संस्था थी।

संसद (कांग्रेस) में एक सेनेट (उच्च सदन) था और एक प्रतिनिधि सदन होता था।

सेनेट में 24 निर्वाचित सदस्य होते थे और प्रतिनिधि सदन में 124 सदस्य। प्रतिनिधि सदन में स्थानों का आबंटन प्रांतों की आबादी के आधार पर होता था। उच्च सदन में दो वर्ष के अंतराल पर आठ स्थानों के लिए चुनाव होता था तथा प्रतिनिधि सभा की अवधि 4 साल की होती थी।

अमेरिका की तरह अध्यक्षीय व्यवस्था के तहत कार्यपालिका के मुखिया के रूप में, प्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से राष्ट्रपति का निर्वाचन 4 साल की अवधि के लिए होता था और कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक चुनाव नहीं लड़ सकता था।

संविधान के अनुसार, "न्यायिक अधिकार का प्रयोग एक सर्वोच्च न्यायालय एवं कानून द्वारा स्थापित अन्य निचली अदालतों द्वारा किया जा सकेगा।"

1946 से 1972 के दौर में बारी-बारी सत्ता में आने वाली पार्टियां थीं—राष्ट्रवादी पार्टी और उदारवादी पार्टी। आज की स्थिति में कोई भी दल, इतना सशक्त नहीं है।

उपरोक्त सर्वेक्षण से फिलीपीनी राजनीति पर दो स्पष्ट प्रभाव दिखते हैं। एक तरफ, औपनिवेशिक विरासत और अमेरिका के साथ विशेष संबंधों के चलते आधुनिकीकरण (पाश्चात्यकरण) की प्रवृत्ति दिखती है तो दूसरी तरफ अपनी एशियाई अस्मिता को उजागर करने की उनकी आकांक्षा का असर दिखाई देता है।

16.6 मार्कोस शासन : 1972-86

23 सितंबर, 1972 को राष्ट्रपति फर्डिनन्ड मार्कोस ने फिलीपीन्स में मार्शल लॉ शासन की घोषणा कर दी। मार्शल लॉ लागू करने से पहले वह लगभग दो कार्यकाल की अवधि राष्ट्रपति पद पर बिता चुका था। उसका दूसरा कार्यकाल दिसंबर, 1973 में पूरा होने वाला था और पुराने संविधान के प्रावधानों के तहत, कोई भी व्यक्ति तीसरी बार चुनाव नहीं लड़ सकता था।

16.6.1 आर्थिक संकट

राष्ट्रपति मार्कोस के शासन का दूसरा कार्यकाल खत्म होते-होते, देश पर आर्थिक संकट के बादल मंडराने लगे थे। अमीरी-गरीबी के बीच की खाई काफी चौड़ी हो चुकी थी। जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है कि फिलीपीन्स एक कृषि-प्रधान देश है और इसकी 74% आबादी खेती पर निर्भर है। खाद्यान्न उत्पादन के लिए अब भी खेती के पारंपरिक, पुरातन औजारों का प्रयोग हो रहा था जबकि अमेरिका एवं अन्य पूंजीवाद देशों को निर्यात होने वाली कुछ व्यापारिक फसलों का उत्पादन "पूंजीवादी खेती" के तरीकों से होता था। इस प्रकार प्रमुखतः खेतिहर अर्थव्यवस्था, अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए पूरी तरह अमेरिकी बाजार पर निर्भर हो गई।

सीमित भूमि सुधारों से किसानों को सामंती बंधनों से मुक्ति नहीं मिल सकी। इसके प्रमुख कारण थेः सामंती व्यवस्था में कोई प्रभावी परिवर्तन लाने की नौकरशाहों की अनिच्छा, जमींदारों द्वारा खड़े किए गए अवरोध एवं समस्या की व्यापकता।

औद्योगीकरण और अंतर्देशीय व्यापार से चंद लोगों की ही समृद्धि बढ़ी। जनसंख्या काफी तेज रफ्तार से बढ़ी और सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गति धीमी थी। सरकारी व्यय, आय से बहुत अधिक था, परिणामस्वरूप राजकोष खाली होने लगा। फिलीपीनी अर्थतंत्र का आधार, विदेशी निवेश भी घटने लगा। आर्थिक बदहाली ने सामाजिक असंतोष और जनांदोलनों को जन्म दिया।

इन सबसे बेखबर शासक परिवार अपने महल में ऐशो-आराम से रह रहा था। जनांदोलनों में देश की बदहाली के लिए मार्कोस और उसकी बीवी को जिम्मेदार ठहराया जा रहा था। दरअसल उसके लंबे शासन के दौरान आम आदमी की हालत बद से बदतर होती गई। इससे निपटने के लिए मार्कोस ने मार्शल लॉ लागू करके लोगों पर तानाशाही लाद दी।

16.6.2 छात्र आंदोलन

समाज के सभी तबकों में मार्कोस शासन के विरुद्ध असंतोष एवं आक्रोश व्याप्त था। प्रबुद्ध तबका भ्रष्टाचार में लिप्त शासन को बदल डालने को बेचैन हो रहा था। मार्कोस-विरोधी अभियान का सबसे मुख्य तबका विद्यार्थियों का था। उन्होंने प्रदर्शनी, जुलूसों, सभाओं, पर्चों एवं पोस्टरों आदि माध्यमों से लोगों में जागृति पैदा की। दूर-दराज के गांवों में जा-जा कर जनमत तैयार किया। सबसे जुझारू युवा संगठन था, कबतांग मकबयान (के.एम.)। के.एम. ने सामंतवाद, तानाशाही और साम्राज्यवाद के खिलाफ नारा बुलंद किया। मार्कोस ने के.एम. पर कम्युनिस्ट आंदोलन के खुले मंच के रूप में काम करने का "आरोप" लगाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्शल लॉ लागू करने से पहले, सरकार-विरोधी धरनों, प्रदर्शनों, जुलूसों एवं सभाओं में दिन-ब-दिन तेजी आती गई और मार्कोस-विरोधी आंदोलन पूरे जोश से निर्णायक संघर्ष की तरफ बढ़ता दिखाई देने लगा था। मार्कोस ने 1970 में फिलीपीन्स के एक नए संविधान के निर्माण के लिए संविधान सम्मेलन (कॉन-कॉन) का चुनाव करवाकर स्थिति को और भी विस्फोटक बना दिया। लोगों को मार्कोस की नीयत पर संदेह होने लगा और इस बात पर बहस शुरू हो गई कि सरकार का स्वरूप बदलने से सामाजिक बुराइयां कैसे दूर हो सकती हैं? जनतांत्रिक और मानवाधिकार कार्यकर्त्ताओं ने इसे मार्कोस की चाल बताया, जिसके माध्यम से वह या तो संविधान में संशोधन करके

तीसरी बार राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार बनना चाहता था, या फिर अध्यक्षीय प्रणाली को संसदीय प्रणाली में बदल कर श्रीमती अक्विनों को राष्ट्रपति बनाकर खुद प्रधानमंत्री बनना चाहता था।

16.6.3 समा प्रस्ताव

मार्कोस की सत्ता में बने रहने की चाल का विरोध करने के लिए संविधान सम्मेलन में एक प्रस्ताव पेश किया गया, जिसे "समा प्रस्ताव" के नाम से जाना जाता है। प्रस्ताव में ऐसे प्रावधान बनाने की बात कही गई थी जिससे मार्कोस किसी भी रूप में फिर से शासनाध्यक्ष न बन सके। सम्मेलन में, यह प्रस्ताव बहुमत ने निरस्त कर दिया। इससे मार्कोस की नीयत पर लोगों का संदेह पक्का हो गया।

मार्कोस के आलोचनों में, भूतपूर्व सेनेटर और उदारवादी पार्टी के महासचिव, बेनिग्नो अक्विनों जूनियर (निनॉय नाम से लोकप्रिय) सबसे अधिक मुख्य थे।

मार्शल लॉ के पूर्वाभ्यास के तौर पर, 21 अगस्त, 1971 को मार्कोस ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के संवैधानिक पावधान को निलंबित कर दिया। अपनी इस कार्यवाही को उचित ठहराने के लिए कम्युनिस्ट आंदोलन से देश को खतरे का तर्क दिया। अपने तर्क की प्रमाणिकता साबित करने के लिए उसने प्लाजा मिरांडा में हुए बम विस्फोट का हवाला दिया। चूंकि मार्कोस पहले भी कई बारे कम्युनिस्ट खतरे का हौवा खड़ा कर चुका था, इसलिए इसे लोगों ने सत्ता में बने रहने की उसकी चाल बताया।

मार्कोस को सबसे तगड़ा झटका लगा नवंबर, 1971 के सेनेट के चुनावों में, उदारवादी दल के उम्मीदवारों द्वारा उसकी पार्टी के उम्मीदवारों की पराजय से। जैसा कि लोगों को डर था, 23 सितंबर, 1972 को मार्कोस ने मार्शल लॉ की घोषणा कर दी और अक्विनों समेत तमाम नेताओं को जेल में बंद कर दिया।

मार्शल लॉ लागू करने के बावजूद मार्कोस के कष्टों का अंत नहीं हुआ। उसे परेशान करने वाली समस्याएं प्रमुख रूप से कम्युनिस्टों, मुसलमानों और अमेरिकी सैनिक अड्डों के बारे में थीं।

16.7 कम्युनिस्ट आंदोलन

16.7.1 हूक आंदोलन

लंबे समय से फिलीपीन्स के कम्युनिस्ट हूक नाम से जाने जाते हैं। "हूक", 21 मार्च 1942 को जनता की जापान विरोधी सेना के रूप में गठित "हूक ब लाहाय" का संक्षिप्त रूप है। शुरू में हूक आंदोलन का प्रमुख लक्ष्य जापानी आक्रंताओं एवं उनके फिलीपीनी सहयोगियों का विरोध और भूमि सुधार तक ही सीमित था। युद्ध के दिनों में हूक आंदोलन के सारे नेता कम्युनिस्ट नहीं थे। बहुत से लोगों का विचार था कि आजादी के बाद यह संवैधानिक ढांचे का हिस्सा बन जाएगा। इस बात को लेकर हूक नेताओं और सरकार में कई बार वार्ताएं हुईं लेकिन कोई ठोस समझौता नहीं हो सका। इस दौरान आंदोलन का नेतृत्व पूरी तरह कम्युनिस्टों के हाथ में आ गया। बाद में उन पर स्वतंत्र गणतंत्र के शासन के तख्तापलट का आरोप लगाया जाने लगा।

सरकार को हूकों का वास्तविक खतरा 1950 में महसूस हुआ। तत्कालीन राष्ट्रपति एलपिडिओ क्विरिनों के शासन-काल में, महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर कई भ्रष्ट लोग बैठे हुए थे। देश में सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और अराजकता का बोलबाला था। भ्रष्टाचार और अकर्मण्यता के राष्ट्रीय रोग से सेना भी मुक्त नहीं थी। बढ़ते हुए देशव्यापी असंतोष के वातावरण ने हूकों को और भी शक्तिशाली बना दिया। 1949 में चीन में जनवादी गणतंत्र की स्थापना के बाद तो हूकों से खतरे के प्रति सरकार ज्यादा ही चिंतित हो गई।

16.7.2 रेमोन मैगसासे और हूक आंदोलन का निलंबन

हूक आंदोलन का सिलसिलेवार दमन शुरू हुआ 1950 में रेमोन मैगसासे की रक्षामंत्री के पद पर नियुक्ति के बाद। उसने विद्रोह कुचलने के कामयाब तरीके इस्तेमाल किये। हूकों का प्रभावक्षेत्र कम करने के उद्देश्य से वह ग्रामीण क्षेत्र में जाकर लोगों की शिकायतें सुनता था और उनका समाधान प्रस्तुत करता था। जब वह राष्ट्रपति बना तो उसने लोगों की समस्याओं को हल करने की दिशा में कई कदम उठाये एवं सरकार की साफ-सुथरी छवि स्थापित करने में सफल रहा। इससे लोगों में हूक आंदोलन का समर्थन आधार काफी घट गया।

रेमोन के शासन-काल में एक तरह से हूक आंदोलन समाप्त ही हो गया। इसके ज्यादातर नेताओं को या तो गिरफ्तार कर लिया गया या मार डाला गया। पोलिटब्यूरो के बचे हुए एकमात्र सदस्य जैसे लावा की गिरफ्तारी के बाद तो आंदोलन ठंडा ही पड़ गया। 20 जून 1957 को गणतंत्र अधिनियम संख्या 1700, जिसे राजद्रोह विरोधी अधिनियम के नाम से जाना जाता है, के लागू होने के साथ फिलीपीन्स की कम्युनिस्ट पार्टी पर कानूनी पाबंदी लगा दी गई।

सरकारी दमन गस्त हूक, 1962 से 1965 तक नरम पड़े रहे। 1966 के बाद से, सरकारी बयानों के अनुसार, "हूक पुनरुत्थान" का काल शुरू हुआ। माना जाता है कि सरकारी दमन के प्रतिरोध में हूक गतिविधियों में तेजी आई। दूसरी व्याख्या के अनुसार, हूक आंदोलन, दरअसल हमेशा नियंत्रण में ही रहा, लेकिन हर साल जब कांग्रेस में सैनिक बजट पर विचार होता था तो सैनिक अधिकारी नए सिरे से शुरू हो रहे हूक आंदोलन का हौवा खड़ा कर देते थे।

16.7.3 कम्युनिस्ट पार्टी का गठन

1968 में एक भूतपूर्व विश्वविद्यालय शिक्षक जोसे मा सिसोन, जो आमादो ग्वेरेरो नाम से लोकप्रिय हैं, के नेतृत्व में युवा कम्युनिस्टों का एक नया दल अस्तित्व में आया। सिसोन ने 1964 में *कबतांग मकबयान* नामक संगठन की स्थापना करके युवाओं में राष्ट्र की समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा करने का अभियान शुरू किया। तभी से युवा वर्ग अपने विचारों को मुखतरा प्रदान करने में कभी पीछे नहीं रहा। इस आंदोलन का वैचारिक रुझान अति-वामपंथ की तरफ था।

26 दिसंबर 1968 को माओ त्से-तुंग की विचारधारा को आधार बनाकर, सिसोन ने कम्युनिस्ट पार्टी की पुनर्स्थापना की। चीनी लाल सेना के ढर्रे पर एक क्रांतिकारी सशस्त्र सेना, नवजनवादी सेना (न्यू पीपुल्स आर्मी–एन.पी.ए.) का भी गठन किया गया। एन.पी.ए. की कमान कर्नल दांते के अधीन थी। दांते के प्रति फिलीपीनी युवाओं में अत्यधिक सम्मान एवं स्नेह की भावना थी। सिसोन द्वारा, 1971 में अमादो खेरेरो के छद्मनाम से लिखी गई पुस्तक वामपंथियों की बाइबिल बन गई। इस पुस्तक में मार्कोस शासन की आलोचनात्मक व्याख्या के साथ फिलीपीन्स के इतिहास की माओवादी व्याख्या है। इस पुस्तक में सिसोन ने मार्कोस को "अमेरिकी साम्राज्यवादी के मदांध कठपुतली" की उपमा दी है जिसने वियतनाम और हिन्द-चीन क्षेत्र के अन्य देशों पर अमेरिकी आक्रमण में भाग लेने के लिए भाड़े के फिलीपीनी सैनिक भेजने में, मैकापगाल को भी पीछे छोड़ दिया।

बार-बार कानून-व्यवस्था के नाम पर मार्शल लॉ घोषित करने की उसकी राजनीति पर तीखा प्रहार करते हुए, सिसोन ने इस पुस्तक में, देश के आर्थिक-राजनैतिक संकट के लिए मार्कोस के कुशासन को दोषी ठहराया। इस पुस्तक में मार्शल लॉ का विश्लेषण करते हुए कहा गया है, "क्रांतिकारी जनता के लगड़े विरोध से निपटने के लिए, उसने औपचारिक रूप से मार्शल लॉ घोषित कर दिया। मार्शाल लॉ के चलते पूरे देश में, खासकर ग्रामीण इलाकों में, फासीवादी आतंक व्याप्त हो गया। गांवों में वर्दीधारी सैनिक और उनके सहायक गुंडे किसानों को तरह-तरह की यातनाएं देने लगे।"

यद्यपि लोगों पर इस पुस्तक का काफी वैचारिक प्रभाव पड़ा, लेकिन मार्कोस-विरोधी भावना, लोगों में पहले से ही पनप रही थी। इस पुस्तक ने जनाक्रोश की आग में घी का काम किया।

16.7.4 मंडिओला पुल की लड़ाई

30 जनवरी, 1970 को लगभग 10,000 मजदूरों और छात्रों के जुलूस ने राष्ट्रपति भवन पर धावा बोल दिया। सुरक्षाबलों और प्रदर्शनकारियों में दिन भर संघर्ष चला। पुलिस और सेना की गोलीबारी में 4 छात्र मारे गए और सैकड़ों लोग घायल हो गए। यह घटना "मंडिओला पुल की लड़ाई" नाम से जानी जाती है। जब तक मार्कोस ने मार्शल लॉ घोषित नहीं कर दिया, छात्रों द्वारा विरोध-प्रदर्शन जारी रहे। सिसोन द्वारा प्रेरित छात्र-आंदोलन, फीलीपीनी राजनीति के लिए एक नई एवं अभूतपूर्व घटना थी। लेकिन मार्शल लॉ घोषित होने के बाद इसमें ठहराव आ गया। ज्यादातर छात्रनेताओं को जेल के सीकचों में कैद कर दिया गया और किसी प्रकार के विरोध को कुचलने के लिए, पुलिस और से की ताकत का निरंकुशतापूर्वक इस्तेमाल किया जाने लगा।

जोसेमा सिसोन और कमांडर दांते समेत कम्युनिस्ट आंदोलन के कई प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। वैसे सरकारी हलकों में इसे देशव्यापी बताया जा रहा था लेकिन कम्युनिस्ट आंदोलन खासकर लिजोन क्षेत्र में ही ज्यादा प्रभावी था।

16.7.5 कम्युनिस्ट आंदोलन और विदेश नीति

फिलीपीन्स के दृष्टिकोण में कम्युनिस्ट देशों के प्रति परिवर्तन लाने में कम्युनिस्ट आंदोलन ने भूमिका निभाई। क्विरिनो ने जनवादी गणतंत्र चीन को मान्यता देने की इच्छा व्यक्त की थी। लेकिन यह इच्छा कार्यरूप नहीं ले पाई। जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है कि 1950 में हूक आंदोलन अपने उफान पर था और उस पर पर्याप्त कम्युनिस्ट प्रभाव था। चीन इस आंदोलन को समर्थन प्रदान कर रहा था। पड़ोसी देश, चीन के इस समर्थन को देश की सुरक्षा के लिए खतरा बताया गया। फिलीपीन्स में रह रहे चीनियों को भी, उनके कम्युनिस्ट समर्थक होने के कारण, संदेह की नजर से देखा जाने लगा और मेगासेसे के राष्ट्रपति बनने के बाद तो चीन के साथ संबंध बनाने का सवाल ही नहीं था। उसके बाद के राष्ट्रध्यक्षों गार्सिया और मेकापगाल ने भी चीन से संबंध स्थापित करने में कोई रुचि नहीं ली। उनके शासनकालों में तो चीन पर फिलीपीनी कम्युनिस्ट विद्रोहियों को आर्थिक सहायता देने का आरोप लगाया गया।

1975 में मार्कोस के सत्ता में आने के बाद से कम्युनिस्ट देशों के प्रतिरूप में कुछ नरमी आई। यद्यपि वह घनघोर कम्युनिस्ट-विरोधी था, फिर भी चीन और सोवियत संघ के संबंधों के विकल्प को उसने खुला रखा। विदेश मंत्रालय की सहमति से फिलीपीनियों को चीन और सोवियत संघ एवं अन्य देशों की यात्रा की भी अनुमति मिलने लगी। इससे पहले इसके बारे में तो सोचा भी नहीं जा सकता था। 1962 में, मैकपगाल ने तो सोवियत संघ और युगोस्लाविया की टीमों को मनीला में हुए चौथे विश्व फुटबाल टूर्नामेंट में भाग लेने की अनुमति नहीं दी थी।

यद्यपि यह प्रचार किया जाता रहा कि हूक आंदोलन के पीछे चीनी घुसपैठियों एवं चीन की कम्युनिस्ट सरकार का हाथ था, धीरे-धीरे वहां की जनता में यह धारणा घर करने लगी कि फिलीपीनी सरकार का चीन-विरोध अमेरिका के प्रति अंधी स्वामिभक्ति का परिणाम है। एक फिलीपीनी लेखक के अनुसार, "हमने चीन के प्रति अमेरिका के बर्ताव का अंधभक्ति के साथ अनुसरण किया। अमेरिका ने चीन के लिए अपने दरवाजे बंद कर दिए और जवाब में चीन ने भी अमेरिका के साथ कोई संबंध कायम करने की पहल नहीं की। लेकिन हमारी क्या प्रतिक्रिया थी? चूंकि अमेरिका ने अपने यहां के पत्रकारों की चीन यात्रा पर रोक लगा दी, इसलिए हमने भी अपने पत्रकारों को वहां जाने से रोक दिया।"

राष्ट्रपति के रूप में अपना तीसरा कार्यकाल शुरू करने पर मार्कोस ने सोवियत संघ, चीन एवं अन्य समाजवादी देशों के साथ राजनयिक संबंध स्थापित कर लिया था। मार्कोस को ये

फैसले अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बदलते समीकरणों की जटिलताओं के चलते करने पड़े। इसके अलावा शीत युद्ध की समाप्ति और वियतनाम में अमेरिकी पराजय ने फिलीपीनी नेताओं के दृष्टीकोण को प्रभावित किया। उन्होंने देखा कि जब अमेरिका स्वयं कम्युनिस्ट देशों से संबंध स्थापित कर रहा है और विश्व-शक्ति के रूप में चीन के उदय के बाद उससे मित्रता को उतावले राष्ट्रपति निक्सन बीजिंग यात्रा पर चले गए, तो वे ही क्यों पीछे रहें?

समाजवादी देशों के साथ संबंध स्थापित करके, मार्कोस, अपने विरुद्ध "अमेरिकी साम्राज्यवाद की कठपुतली" बीजिंग यात्रा के दौरान उसका राजकीय स्वागत हुआ और उसने माओ त्से तुंग से भी मुलाकात की। उसने फिलीपीन्स में इस घटना के जिक्र से यह प्रचार किया कि चीन उससे मित्रता को उतावला था। एक वरिष्ठ चीनी नेता की मनीला यात्रा ने इस धारणा की और भी पुष्टि की कि राजनयिक संबंधों के लिए चीन ने एन.पी.ए. को मदद देना बंद कर दिया। इसके बावजूद फिलीपीन्स का कम्युनिस्ट आंदोलन इतना सशक्त हो चुका है कि जब तक लोगों में असंतोष रहेगा, उसका अस्तित्व बना रहेगा। बल-प्रयोग और विदेश संबंधों के जरिए जनाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले आंदोलन को समाप्त नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : नीचे दी गई जगह में प्रश्नों के उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उनकी जांच कर लें।

1) फिलीपीन्स में कम्युनिस्ट आंदोलन के उदय पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) फिलीपीन्स की विदेश नीति पर कम्युनिस्ट आंदोलन के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.8 मुस्लिम समुदाय

मार्कोस शासन के समक्ष एक बड़ी समस्या मुस्लिम समुदाय को लेकर थी। यद्यपि यह समस्या पहले से मौजूद थी लेकिन मार्शल लॉ की घोषणा के बाद यह समस्या और गहन हो गई। मार्कोस शासन ने लोगों को अपने-अपने हथियार लौटा देने का आदेश दिया और बदले में लोगों ने सेना पर हमला करना शुरू कर दिया।

16.8.1 मार्कोस और मुस्लिम समुदाय

शुरुआत में मार्कोस शासन मुस्लिम समुदाय के प्रति नरमी का व्यवहार अपनाए रहा, और आदेश संख्या 95 के तहत कुछ विद्रोहियों को क्षमादान दिया। भिंडानों की विकास परियोजना के अलावा मार्कोस ने मुसलमानों के लिए कई और सुविधाओं की भी घोषणा की।

मार्कोस ने मीनीला में कुछ वृद्ध मुस्लिम नेताओं के साथ एक बैठक की जिसके बाद उन नेताओं ने मार्शल लॉ का गुणगान शुरू कर दिया। मनीला में मार्कोस की घोषणाओं और इन नेताओं के गुणगान के विपरीत देश के दक्षिणी हिस्से में स्थिति विस्फोटक बनी हुई थी। युवा मुस्लिम विद्रोहियों का नेतृत्व नूर मिसुराय जैसे युवा मुसलमानों के हाथ में था। मिसुराय की फिलीपीन्स विश्वविद्यालय के दिनों में सिसोन के साथ काफी घनिष्ठता थी। विद्रोहियों ने वृद्ध नेताओं के साथ मार्कोस की बैठक की निंदा की। उनका विद्रोह मार्कोस की तानाशाही के खिलाफ तो था ही, अपने निजी हितों के लिए सामुदायिक हितों की बलि देने वाले नेताओं के भी खिलाफ था।

इस खुले विद्रोह के जवाब में मार्कोस के सैनिकों ने उनका कत्लेआम शुरू कर दिया। दक्षिणी फिलीपीन्स में "युद्ध" के गुरुत्व को देखते हुए 400 वर्ष पुरानी इस समस्या के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन उपयोगी होगा। लियोन मा गुरेरो ने कहा था, "ईशाई और मुसलमान फिलीपीनियों का संघर्ष, दरअसल दो समुदायों का संघर्ष है जिनकी परंपराएं, ऐतिहासिक विरासत और आर्थिक हित अलग-अलग हैं"।

16.8.2 फिलीपीन्स में इस्लाम का आगमन

1380 में इस्लाम सुलू द्वीप से शुरू हुआ और धीरे-धीरे अन्य द्वीपों में भी फैलने लगा। 1542 में स्पेनियों ने विसयास और लुजाने पर कब्जा कर लिया लेकिन मिनांडो द्वीप मुसलमानों के अधीन बना रहा। बाकी द्वीपों के निवासियों को स्पेनी विजेताओं के साथ आए धर्म प्रचारकों ने कैथोलिक ईसाई बना दिया।

इस प्रकार ईसाइयों और मुसलमानों का अलगाव स्पेनी शासन में ही शुरू हो गया था जो अमेरिकी शासन में और भी सुदृढ़ हो गया। अमेरिकियों ने "बांटो और राज करो" की नीति के तहत मिनांडो पर अलग शासन की स्थापना की। बहुत से फिलीपीनी विद्वानों का मानना है कि वर्तमान संकट अमेरिकी शासन की ही विरासत है।

16.8.3 स्वातंत्रयोत्तर संबंध

स्वतंत्रता के बाद ईसाई वर्चस्व वाले शासन की नीतियों से मुस्लिम समुदाय मुख्यधारा से जुड़ने की बजाय दूर होता चला गया। सरकार की पुनर्वास योजना से समस्या और भी गंभीर हो गई। इस योजना के तहत सघन आबादी वाले लुजोन और वसायस द्वीपों से ईसाइयों को कम आबादी वाले दक्षिणी हिस्सों में बसाना शुरू किया गया जिसके चलते कई प्रांतों में मुसलमानों की स्थिति अल्पसंख्यकों की हो गई। इससे जमीन के झगड़े तो शुरू ही हुए, साथ ही ईसाई व्यापारियों द्वारा मुसलमानों के शोषण की न समाप्त होने वाली प्रक्रिया भी शुरू हो गई।

इससे स्वाभाविक है कि मुसलमान उपेक्षित और अपनी स्थिति को लेकर भयभीत महसूस करते हुए उनमें फिलीपीन्स से अलग होने की भावना जोर पकड़ने लगी और 1968 में मिनांडो स्वतंत्रता अभियान शुरू किया गया। तब से ईसाइयों और मुसलमानों के बीच संघर्ष जारी है। मुस्लिम विद्रोहियों और सेना के बीच भी संघर्ष शुरू हो गया। मार्शल लॉ की घोषणा के समय तक फिलीपीनी अखबारों में, मुसलमानों के कत्लेआम की खबरें आम बातें थीं।

16.8.4 मोरो राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा

1972 में मुस्लिम विद्रोहियों द्वारा मोरो मुक्ति मोर्चा (एम.एन.एल.एफ.) का गठन किया गया। यह संगठन पी.एल.ओ. के ढर्रे पर बनाया गया। अलगाव की धमकी सही जान पड़ने लगी।

समस्या और भी गंभीर तब हो गई जब एम.एन.एल.एफ. को लीबिया से धन और शस्त्र मिलना शुरू हो गया। इस्लामी सम्मेलन ने फिलीपीन्स के विरुद्ध कड़ी कार्यवाई की खुली हिमायत की। लीबिया और मिस्र ने मुसलमानों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए ।

जुलाई 1972 को एक संयुक्त प्रतिनिधिमंडल फिलीपीन्स भेजा। प्रतिनिधिमंडल ने राय दी कि मार्कोस को मुसलमानों का नरसंहार तुरंत रोक देना चाहिए। यह समस्या इस्लामी देशों के साथ मार्कोस के संबंधों में बाधा पैदा कर रही थी। खासकर अरब देशों के साथ संबंधों में गिरावट का असर फिलीपीन्स में तेल के आयात पर पड़ सकता था। फिलीपीन्स के तेल की दो-तिहाई जरूरत की आपूर्ति सऊदी अरब, कुवैत और अबू दाबी से होती हैं। इसके अलावा मार्कोस को आसिअन के दो सदस्य पड़ोसी देशों, मलेशिया के साथ फिलीपीन्स के संबंध बिगड़ने लगे। कहा जाने लगा कि सबाह के तत्कालीन मुख्यमंत्री मुस्लिम विद्रोहियों के समर्थक थे और उन्हें मलेशिया में प्रशिक्षण दिया जाता था। मलेशियाई हस्तक्षेप को सबाह पर फिलीपीनी दावे को समाप्त करने के दबाव के रूप में देखा जाने लगा और लपुर में सबाह पर फिलीपीनी दावे छोड़ने के सरकारी फैसले की घोषणा की।

16.8.5 इस्लामी देशों के साथ संबंध-सुधार

मलेशिया और इंडोनेशिया के प्रयासों के फलस्वरूप ही इस्लामी सम्मेलन में मार्कोस शासन के विरुद्ध कड़ी निन्दा का प्रस्ताव नहीं पारित हुआ। क्षेत्र की स्थिरता के लिए इन दोनों देशों की सरकारों ने मार्कोस पर मुस्लिम समस्या को हल करने का दबाव डालना शुरू कर दिया। लेकिन उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि कोई भी समाधान फिलीपीन्स की राष्ट्रीय अखंडता और संप्रभुता के अंतर्गत ही हो।

इस दौरान मार्कोस लीबिया को प्रसन्न करने का प्रयास करता रहा। मार्शल लॉ की घोषणा के बाद से नूर मिसुराय ने लीबिया में शरण ली थी। मार्कोस की बीवी इमेल्डर कर्नल गद्दाफी से बातचीत करने लीबिया गई। उसने गद्दाफी को समझाया कि मार्कोस शासन मुसलमानों का कत्लेआम नहीं कर रहा था और जल्द-से-जल्द समस्या का समाधान करना चाहता था। इसके बाद गद्दाफी ने एम.एन.एल.एफ. और फिलीपीनी सरकार के बीच वार्ता आयोजित की। 24 दिसंबर 1976 को दोनों पक्षों ने युद्ध विराम समझौते पर हस्ताक्षर किया, जिसकी व्याख्या को लेकर जल्दी ही मतभेद उभरने लगे।

फरवरी, 1977 में मिपोली में दुबारा वार्ता आयोजित की गई। इस वार्ता में कोई समझौता नहीं हो सका क्योंकि एम.एन.एल.एफ. अलग राज्य की मांग पर अडग रहा। सरकारी पक्ष का कहना था कि यदि जनमत संग्रह के माध्यम से बहुमत की इच्छा हो तो दक्षिणी क्षेत्रों को मिलाकर एक स्वायत्तशासी प्रान्त बनाया जा सकता था।

17 अप्रैल 1977 को मार्कोस ने एक जनमत संग्रह कराया और जैसा कि अपेक्षित था, परिणाम सरकार के पक्ष में गए। ईसाई मतदाताओं ने स्वायत्तशासी क्षेत्र की स्थापना के विरुद्ध मतदान किया। एम.एन.एल.एफ. ने जनमत संग्रह का बहिष्कार किया था और इस्लामी सम्मेलन ने भी पर्यवेक्षक न भेजकर इससे अपनी असहमति जाहिर की थी। जनमत संग्रह के बावजूद मुस्लिम समस्या जैसे-की-तैसे बनी रही।

तभी से युद्ध विराम का उल्लंघन होने लगा और सशस्त्र संघर्ष फिर से शुरू हो गया। दावा किया गया कि 1972 के बाद से 50,000 नागरिक मौत के घाट उतार दिए गए।

मुस्लिम विद्रोह से मार्कोस को मार्शल लॉ की तानाशाही जारी रखने का एक बहाना मिल गया।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : नीचे दी गई जगह में प्रश्न का उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए उत्तर से उसकी जांच कर लें।

1) मुस्लिम समुदाय के प्रति मार्कोस की नीतियों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

16.9 अमेरिकी सैनिक अड्डे

16.9.1 भूमिका

फिलीपीनी विदेश नीति के निर्धारण में अमेरिकी सैनिक अड्डों की उपस्थिति एक महत्वपूर्ण कारक रही है। खासकर अमेरिका के संबंधों में इसकी भूमिका अहम रही है।

हाल के सालों में अन्य देशों के साथ फिलीपीन्स के संबंधों में अमेरिका के साथ "विशेष संबंधों" की निर्धारक भूमिका थी। फिलीपीन्स का रवैया अमेरिकी अंतर्राष्ट्रीय नीति से निर्धारित होता था।

सीटों के सदस्य और अमेरिका के सहयोगी के रूप में, इसने सख्त कम्युनिस्ट विरोधी नीति का अनुसरण किया और अपनी भूमिका पर कई अमेरिकी सैनिक अड्डों की स्थापना की अनुमति दी।

अमेरिका के साथ "विशेष संबंधों" के फलस्वरूप पड़ोसी देशों से इसकी घनिष्ठता नहीं हो सकी। अमेरिका के साथ विभिन्न समझौतों के चलते एशिया में इसकी छवि धूमिल हो गई। अमेरिकी दबाव में वियतनाम में सेना भेजने की इसकी कार्यवाही ने क्षेत्र के देशों के साथ इसकी इच्छा की बारंबार घोषणाओं की कलई खोल दी। इसी के चलते चीन के साथ इसके संबंध नहीं बन सके।

1946 से 1969 तक इसकी विदेश नीति अमेरिकी विदेश नीति की जरूरतों के हिसाब से निर्धारित होती रही। ऐसा इसलिए भी था कि दोनों ही देशों के शासक-अभिजातों के हित एक जैसे थे।

16.9.2 संबंधों के बदलते ढर्रे

अब फिलीपीन्स अमेरिका के साथ "विशेष संबंधों" में बदलाव की कोशिश कर रहा है। मार्कोस के जमाने में भी एशियाई मामलों में भागीदारी के जरिए इसकी एक एशियाई छवि स्थापित करने की कोशिश की जा रही थी। हिंद-चीन क्षेत्र में अमेरिकी पराजयों से अमेरिका के प्रति इसके विश्वास में कमी आई और अमेरिकी सैनिक अड्डों को देश की सुरक्षा के लिए खतरनाक माना जाने लगा। इसे एहसास होने लगा था कि सुरक्षा और आर्थिक प्रगति के लिए अमेरिका का पिछलग्गू बने रहना ज्ञानप्रद था। फिलीपीन्स ने आसिअन घोषणा की पुष्टि की थी जिसमें कहा गया है, "....सभी विदेशी अड्डे अस्थाई हैं और संबद्ध देश की सहमति से ही वहां बने रह सकते हैं एवं उनका उपयोग देश की विकास की गतिविधियों को बाधित करने के लिए नहीं किया जा सकता।" मार्शल की घोषणा के पहले से ही बहुत से फिलीपीनी युवक-युवतियां अमेरिका के साथ शोषण से युक्त संबंधों के विरोधी थे। अमेरिकी सैनिक अड्डों की उपस्थिति देश की संप्रभुता के उल्लंघन के रूप में देखी जाने लगी थी।

अमेरिका-विरोधी भावनाएं, 1978 में अपने चरम पर पहुंच गईं जब अमेरिका ने सबाह पर फिलीपीनी दावे का समर्थन नहीं किया। फरवरी 1978 को अपनी घोषणा में अमेरिकी सरकार ने स्पष्ट कर दिया था कि वह 1963 में सबाह को मलेशिया के हिस्से के रूप में स्वीकार करने की व्यवस्था का समर्थक है। इस घोषणा ने क्रोध और आश्चर्य की भावना पैदा की। अमेरिका के साथ रक्षा समझौते समाप्त करने की मांग की जाने लगी। देश में एशियाई राष्ट्रवाद की भावनाओं के विकास ने भी अमेरिका विरोधी माहौल पैदा करने में मदद की।

14 मार्च 1947 के सैनिक अड्डा समझौते के तहत फिलीपीन्स ने अमेरिकी सैनिक अड्डों को 11 साल की अनुमति दी थी। तत्कालीन फिलीपीनी शासन-अभिजातों को आर्थिक सहायता और सैनिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से ऐसा करना आवश्यक लगा था। बाद में ये अड्डे फिलीपीनियों की आमदनी और रोजगार के स्रोत बन गए।

16.9.3 सैनिक अड्डों से संबंधित वार्ताएं

अमेरिकी अड्डों से संबंधित वार्ताएं सभी राष्ट्रपतियों के कार्यकालों के दौरान चलीं। कई बार तो लगता था फिलीपीनी शासन अमेरिका से अधिक-से-अधिक सहायता प्राप्त करने के शस्त्र के रूप में सैनिक अड्डों के विषय में वार्ताएं चलाता था। एक प्रसिद्ध फिलीपीनी राजनयिक लियोन या गुरेटो के अनुसार, फिलीपीनियों को मालूम है कि उन्हें मिलने वाली "अमेरिका सहायता–सैनिक सहायता, अनुदान और कर्ज–अन्य ऐशियाई देशों, जो जापान की तरह अमेरिका के शत्रु रहे हैं या वे जो अमेरिकी नीतियों के प्रति उदासीन अथवा गैर प्रतिबद्ध हैं, को मिलने वाली अमेरिकी सहायता से कम हैं।"

उल्लेखनीय है कि मार्कोस एक तरफ इस तरह की वार्ताओं में कठोर रुख अपनाता था, दूसरी तरफ अमेरिकी सैनिक अड्डों की वांछनीयता पर भी जोर देता था। अमेरिकी आकाओं द्वारा अपने शासन की आलोचना से मार्कोस को काफी कष्ट होता था और अमेरिकी शासन पर एक कठपुतली तानाशाह को प्रत्यक्ष देने का आरोप लगाया था। बहुत से प्रमुख अमेरिकी मानवाधिकारों के उल्लंघन को लेकर मार्कोस शासन की आलोचना शुरू कर दी थी, खासकर मानवाधिकारों का ढोल पीटने वाले कार्टर प्रशासन के दौरान। मार्कोस ने अमेरिका पर राष्ट्रीय मामलों में हस्तक्षेप का आरोप लगाया।

16.9.4 मार्कोस की वैधता का सवाल

लेकिन फिलीपीनी जनमानस की इच्छा के विरुद्ध वियतनामी जनता पर अमेरिकी आक्रमण में सहायता के लिए फिलीपीनी सैनिक भेजने की उसकी हरकत से मार्कोस की विश्वसनीयता समाप्त हो चली थी। मार्कोस शासन और अमेरिका के बीच एक समझौते के तहत क्लार्थ वायु-सेना और सुबिक नौसेना अड्डों को फिलीपीनी कमांडरों के अधीन कर दिया गया। इसका मतलब यह था कि अड्डों के किराए का निर्धारण और अपराधी मामलों पर विचार का अधिकार इन कमांडरों को मिल गया। समझौते का दूसरा पहलू ज्यादा नाजुक था। ज्यादातर सैन्य अधिकारियों को विदेशी नागरिकों का दर्जा प्राप्त था और तमाम फिलीपीनियों के विरुद्ध वे तमाम तरह की अपराधिक गतिविधियां करते थे। फिलीपीनी सरकार उन पर कोई न्यायिक कार्यवाही नहीं कर पाती थी।

जैसा कि उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है, मार्कोस शासन के तीसरे कार्यकाल में भी ये समस्याएं बरकरार रहीं। पाबंदियों के बावजूद लोगों का असंतोष उभर रहा था। मार्कोसविरोधी प्रदर्शनों की खबरें अक्सर सुनने को मिलती थीं। इन प्रदर्शनों में पादरी और धर्मसंधिनियां भी शामिल होने लगीं।

निर्वाचन प्रक्रिया की खिल्ली उड़ाते हुए उसने 1977 में एक जनमत संग्रह कराया जिसमें मतदाताओं से यह पूछा गया था कि क्या वे चाहते थे कि अंतरिम संसद के तहत, मार्कोस राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों पदों पर बना रहे? जैसाकि पहले से ही सर्वविदित था, "जनमत" ने उसके दोनों पदों पर बने रहने का अनुमोदन किया। इसके बाद 7 जुलाई 1978 को उसने संसद का चुनाव कराया। अंतरिम राष्ट्रीय संसद में 200 सदस्य थे। इसके 35 सदस्य मार्कोस द्वारा मनोनीत थे। सभी शक्तियां राष्ट्रपति के पास केंद्रित थीं और संसद उसकी अनुमति के बिना कोई कानून नहीं बना सकती थी और मार्शल लॉ भी जारी रहा।

16.10 मार्कोस शासन का अंत

देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति के परिणामस्वरूप लोगों में असंतोष व्याप्त होने लगा। अगस्त, 1983 में भूतपूर्व सांसद बेनिग्नो अक्विनो की हत्या के बाद तो पूरे देश में आक्रोश की लहर फैल गई। देश भर में लोग उसकी पत्नी कोरी जाने (कोरी) अक्विनों के नेतृत्व में एकत्रित होने लगे। कार्डिनल सिन की कैथोलिक चर्च ने भी मार्कोस की तानाशाही एवं दमनकारी सरकार के विरुद्ध जन-उभार का समर्थन किया।

अमेरिकी दबाव में जब 7 फरवरी 1986 को चुनाव हुए तो अन्य तानाशाहों की तरह उसे भी उम्मीद थी कि अमेरिकी महाप्रभुओं की कृपा से वह चुनावों में सफलतापूर्वक हेरा-फेरी कर सकेगा। लेकिन इस बार अमेरिकी महाप्रभुओं ने भी अपना दामन झाड़ लिया और जनाक्रोश की आंधी में मार्कोस की सारी हेरा-फेरी धरी रह गई। जनता ने कोरी अक्विनों को राष्ट्रपति चुना। जनाक्रोश की आंधी से बचाने के लिए अमेरिकी आकाओं ने मार्कोस को महल से निकालकर फिलीपीनी जनता से दूर ले जाने के लिए वायुसेना का हेलीकाप्टर भेजा जो इस पराजित तानाशाह और उसके परिवार को उड़ाकर हवाई ले गया। वह अपने पीछे छोड़ गया एक ध्वस्त राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और राजमहल में अपनी बीवी की फिजूलखर्ची और ऐयाशी की निशानियां। अखबारों के छापा कि मार्कोस देश को इतना कंगाल और बेहाल करके गया है जितना कि दूसरे विश्वयुद्ध की विनाशकारी गतिविधियों के बाद भी नहीं हुआ था। फिलीपीनी जनता की सफलता इतिहास में तानाशाहों के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणादायी घटना बन गई।

16.11 कोराजोन अक्विनों का शासन काल : 1986-92

मार्कोस द्वारा ध्वस्त अर्थतंत्र को दुरुस्त करने और राष्ट्र में स्थायित्व लाने के लिए, नवनिर्वाचित कोराजोन अक्विनों ने प्रतिबद्धता से प्रयास करना प्रारंभ किया। इसके लिए उसे व्यापक जनसमर्थन भी मिला। राजनैतिक बंदियों की रिहाई का आदेश जारी किया गया, मार्कोस की राजाज्ञाओं को निरस्त किया गया और लोगों की स्वतंत्रता और अधिकारों को बहाल कर दिया गया। लेकिन अपने पूरे शासन काल में उसे विरोधियों द्वारा खड़ी की गई बाधाओं का सामना करना पड़ा जिससे राष्ट्र-निर्माण में दिक्कतें आईं। उसे 20 साल के मार्कोस शासन का भ्रष्ट प्रशासन और अर्थतंत्र विरासत में मिले थे। विरासत में मिले दक्षिणी फिलीपीन्स के विद्रोह को शांत करने के लिए भी उसे हर संभव प्रयास करना पड़ा।

16.11.1 मार्कोस की विरासत की समस्याएं

अक्विनों प्रशासन के लिए, मार्कोस की विरासत की सबसे चिंताजनक बात, नए राजनैतिक माहौल में सेना की भूमिका को लेकर थी। 1972 से पहले भी फिलीपीनी राजनीति में सेना की प्रमुख भूमिका थी लेकिन मार्शल लॉ की घोषणा के बाद तो वह वहां के राजनैतिक मामलों में खुलेआम हस्तक्षेप करने लगी। आज भी बहुत से ऐसे सैनिक हैं जो मार्कोस शासन काल की "मधुर" यादों से आत्मविभोर हो उठते हैं। फरवरी, 1986 में अक्विनों द्वारा सत्ता संभालने के बाद तख्तापलट के छः प्रयास हुए।

अक्विनों शासन को मार्कोस की विरासत के रूप में एक शक्तिशाली कम्युनिस्ट आंदोलन भी मिला। भूमि सुधार के कानून बनाकर मार्कोस ने कुलीन-तंत्र को समाप्त करने का शगूफा छोड़ा था। भूमि सुधार के कानून सरकारी फाइलों में पड़े रह गये। इतना ही नहीं मार्कोस के वफादार ज़मींदारों का एक नया वर्ग भी पैदा हो गया। लोगों का असंतोष और शोषण व्यापक होता गया और मार्कोस की तानाशाही और सामंती शोषण से त्रस्त जनता का एक बड़ा हिस्सा कम्युनिस्ट विद्रोहियों के पीछे एकत्रित हो गया।

16.11.2 नया संविधान

फरवरी, 1987 में एक जनमत संग्रह के व्यापक जनसमर्थन के माध्यम से, फिलीपीन्स में एक नया संविधान लागू किया गया। मार्कोस शासन की पीड़ा से मुक्ति के उल्लास में लोग परिवर्तन के लिए उतावले थे। वे जनतांत्रिक परंपराओं के नष्ट होने से भी आहत थे। नया संविधान दरअसल 1935 के ही संविधान का संशोधित रूप है। इस संविधान में मानवाधिकारों की गारंटी का प्रावधान है और राष्ट्रपति के अधिकारों को सीमित कर दिया गया है। जैसे कि अब कोई भी व्यक्ति छः वर्ष के एक कार्यकाल तक ही राष्ट्रपति पद पर रह सकता है।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : नीचे दी गई जगह में प्रश्न का उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से उसकी जांच कर लें।

1) अमेरिका-फिलीपीन्स संबंधों के निर्धारण में अमेरिकी सैनिक अड्डों की भूमिका का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

16.12 मौजूदा हालात

फिलीपीन्स के मौजूदा हालात वहां के लोगों की एशियाई अस्मिता की इच्छा और अमेरिकी महाप्रभुओं की छत्रछाया के मोह के अंतर्द्वंद्वों को परिलक्षित करते हैं। इस अंतर्द्वंद्व का इतिहास तो पुराना है लेकिन हाल के सालों में इस अंतर्विरोध के समाधान के प्रयास तेज हुए हैं और एशियाई पहचान पर जोर दिया जाने लगा है।

16.12.1 तात्कालिक समस्याएं

फिलीपीनी सरकार के समक्ष सबसे प्रमुख तात्कालिक समस्या लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने की है। यह दरअसल लगभग सभी एशियाई देशों की सामान्य समस्या है। इसलिए सभी अपने क्षेत्र को तनाव एवं आपसी टकरावों से मुक्त रखना चाहते हैं। साथ ही फिलीपीन्स को यह भी एहसास है कि क्षेत्रीय सहयोग की संभावनाएं अनन्त हैं। फिलीपीन्स शासन कम्युनिस्ट-विरोधी रुझान के संगठनों के माध्यम से क्षेत्रीय सहयोग में योगदान का पक्षधर है। आसियन (दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्र परिषद) जिसके अन्य सदस्य थाईलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया, सिंगापुर और ब्रुनेई हैं, का घोषित उद्देश्य, "क्षेत्र में शांति, स्वतंत्रता और निष्पक्षता" की स्थापना करना है। इसके सदस्य राष्ट्रों की सरकारों के बीच क्षेत्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श होता रहता है जिससे विशिष्ट समस्याओं को मदद तो मिलती ही है उनके बीच भाईचारा भी बढ़ता है। वैसे अधिकतर अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर यह संगठन अमेरिकी खेमे की पक्षधरता करता रहा है।

16.12.2 अमेरिका-फिलीपीन्स संबंधों का भविष्य

निकट भविष्य में अमेरिका-फिलीपीन्स संबंधों में किसी मूलभूत परिवर्तन की संभावना नहीं दिखती। सैनिक अड्डों के समझौते की समाप्ति के बावजूद शासक वर्ग के सदस्यों के आर्थिक हित अमेरिका के साथ जुड़े हुए हैं। इसलिए वे आसानी से अमेरिकी दबाव स्वीकार कर लेते हैं। फिलीपीनी अभिजात वर्ग के स्वार्थ, कम्युनिस्ट विरोध एवं अमेरिकी "कृपा" के प्रति उसकी "कृतज्ञता" दोनों देशों के बीच मैत्री पूर्ण संबंधों का प्रमुख आधार है।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : नीचे दी गई जगह में प्रश्न का उत्तर लिखें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से उसकी जांच कर लें।

1) फिलीपीनी सरकार और राजनीति की प्रवृत्तियों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

16.13 सारांश

इस इकाई में फिलीपीन्स के इतिहास, भूगोल एवं लोगों के बारे में बताया गया। आपने यहां के राजनैतिक घटनाओं के बारे में भी पढ़ा। इसके अध्ययन के बाद आप फिलीपीनी राजनीति एवं वहां के लोगों के बारे में काफी कुछ जान जाएंगे।

16.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अबुएवा, जोसे वेलोसो आदि (सं.) *फाउंडेशन्स एंड डाइनॉमिक्स ऑफ फिलीपीनी गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स*, मनीला, 1969.

अगोनसिल्लो, तेवडोरो ए. एवं अन्य, *हिस्ट्री ऑफ फिलीपीनों पिपुल*, क्वेजोन सिटी, 1970.

अगोनिसल्लो तेवडोरो ए., *दि फेटफुल ईयर्स : जैपानिज़ एडवेन्चर इन फिलीपीन्स क्वेजोन*, 1965.

ग्युरेरो, लिओन मा, *प्रिज़नर्स ऑफ हिस्ट्री*, नई दिल्ली, 1972.

कौल, मनमोहिनी, *दि फिलीपीन्स एंड साउथ ईस्ट एशिया*, नई दिल्ली, 1978

16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 16.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग16.7

2) देखें उपभाग 16.7.5

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 16.8

बोध प्रश्न 4

1) देखें भाग 16.9

बोध प्रश्न 5

1) देखें भाग 16.12

इकाई 17 इंडोनेशिया में शासन और राजनीति

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 एक उपयुक्त राजनीतिक व्यवस्था की खोज : संसदीय जनतंत्र का प्रयोग (1950-51)
17.2.1 इंडोनेशिया में संसदीय व्यवस्था
17.2.2 चुनाव
17.3 सुकार्नो की "निर्देशात्मक जनतंत्र" की अवधारणा
17.4 निर्देशात्मक जनतंत्र का काल : सुकार्नो, सेना और पी के आई त्रिकोण का उदय
17.5 सैन्य सत्ता : नयी व्यवस्था का उदय
17.5.1 नवीनीकरण की प्रक्रिया और इंडोनेशिया में सैनिक शासन
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इंडोनेशिया की स्वातंत्र्योत्तर काल की राजनीति में अनेक प्रकार की गतिविधियां देखने को मिलती हैं। इस दौरान दलों का विभाजन हुआ, गुटबंदी हुई, नेताओं के बीच आपसी वैमनस्य और तनाव पैदा हुआ, संसदीय जनतंत्र को थोड़ी सफलता मिली पर अंततः यह व्यवस्था विफल रही। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- इंडोनेशिया की राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक जनतंत्र के प्रयोग का वर्णन कर सकेंगे,
- नेतृत्व की भूमिका और जनतांत्रिक प्रक्रिया का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- इंडोनेशिया की राजनीति में वैधता की भूमिका का परीक्षण कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

इंडोनेशिया दक्षिण पूर्व एशिया का एक गणतंत्र है जिसमें मलय द्वीप समूह के द्वीप और न्यू ग्यूनिया (पश्चिमी इरिआन) का पश्चिमी भाग शामिल है। इसका क्षेत्रफल 1,904,000 वर्ग किलोमीटर है और 1971 में इस देश की जनसंख्या 1,24,000,000 थी। यहां की 66 प्रतिशत जनता जावा में रहती है। कनिमंतान, सुमात्रा, पश्चिमी इरिआन, जावा और मदुरा बड़े द्वीप हैं। इंडोनेशिया में 360 जाति समुदाय मौजूद हैं। इनमें से जावावासी (5 प्रतिशत), सूडानी (लगभग 14 प्रतिशत) और मदुरावासी (लगभग 7 प्रतिशत), बड़े समुदाय हैं। यहां चीनी मूल के लोग (लगभग 2 प्रतिशत) भी काफी संख्या में रहते हैं। एक अनुमान के अनुसार यहां 87 प्रतिशत मुसलमान और 4 प्रतिशत ईसाई हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध, हिंदू और जीववादी भी इंडोनेशिया की जनसंख्या में शामिल हैं। भाषा इंडोनेशिया यहां की सरकारी भाषा है। इस भाषा का संबंध मलय पोलिनेसियन भाषा समुदाय से है।

इंडोनेशिया में आज जो राजनीतिक व्यवस्था कायम है, उसे नयी व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। यह व्यवस्था सुकार्नो की "पुरानी व्यवस्था" की विरोधी है। इंडोनेशियाई राजनीति का मूल तथ्य यह है कि अभी भी एक उपयुक्त राजनीतिक व्यवस्था की खोज की जा रही है ताकि वहां के नेता अपने समाज को एक दिशा दे सकें, उसे आधुनिक बना सकें। स्वातंत्र्योत्तर काल की इंडोनेशियाई राजनीति के इतिहास को मुख्य रूप से तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है संसदीय जनतंत्र का काल (1950-57), निर्देशात्मक जनतंत्र (1957-65) और जनरल सुहार्तो के आधीन मौजूदा दौर।

अब जेनरल ने सेना से अवकाश ग्रहण कर लिया है और वह अपने को गैर सैनिक राष्ट्रपति कहलाना अधिक पसंद करता है और अपनी व्यवस्था को पंचशील जनतंत्र कहता है। पहले दो काल खंड के राजनीतिक प्रयास असफल रहे। सुहार्तो पिछले पच्चीस वर्षों से इस्ताना नेगरा (राष्ट्रपति भवन) पर अपना पैर जमाये हुए है। निश्चित रूप से इससे देश में राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक समृद्धि आयी है। पर अब यह सत्ता वैधता खो चुकी है। सरकारी शक्ति का उपयोग साम्यवादी और अन्य राजनीतिक दलों को दबाने के लिए किया जा रहा है और सत्ता का स्वरूप काफी निरंकुश होता जा

रहा है। सरकार पर भ्रष्टाचार के आरोप हैं, सुहार्तो के पारिवारिक सदस्यों पर विवादास्पद मसलों में शामिल होने का भी आरोप है। राजनीतिक दृष्टि से जागरूक जनता बार-बार इस तरह की आवाज उठा रही है।

17.2 एक उपयुक्त राजनीतिक व्यवस्था की खोज : संसदीय जनतंत्र का प्रयोग (1950-57)

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान स्वतंत्रता सेनानियों में राष्ट्रवाद की भावना कूट-कूट कर भरी थी और इसी भावना से लोग आपस में जुड़े हुए थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह भावना अचानक लुप्त हो गयी और विभिन्न दलों में संघर्ष होने लगा, राजनीतिक गुटबंदी बढ़ी, नेताओं के बीच मनमुटाव और द्वेष पैदा हुआ। 1950-56 के दौरान इंडोनेशिया में छह मंत्रिमंडलों की स्थापना हुई। कोई भी मंत्रिमंडल दो वर्ष से ज्यादा नहीं टिक सका। 1955 तक कोई चुनाव भी नहीं कराए गये थे, अतः सही मायनों में मंत्रिमंडल जनता की प्रतिनिधि नहीं थी। पहली चुनी हुई सरकार मार्च 1956 में ही गठित हो सकी। सुकार्नो और सेना ने मंत्रिमंडल के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दोनों गैर संसदीय ताकतें थीं। सुकार्नो ने मंत्रियों को चुनने में अपनी शक्ति का इस्तेमाल किया और सेना ने विभिन्न तरीकों से विभिन्न दलों पर दबाव डाला। इसका कारण यह था कि वैचारिक और सांगठनिक दृष्टि से राजनीतिक दल काफी दुर्बल थे। उनके पास कोई दृष्टि नहीं थी, कोई उद्देश्य नहीं था। अतः वे राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में सहयोग करने में भी अक्षम थे। दलों के भीतर आपसी मतभेद था, सत्ता पर अधिकार जमाने के लिए कई दल आपस में संघर्षरत थे, विचारों और कार्यक्रमों की अपेक्षा व्यक्तियों का महत्व अधिक था। यही कुछ कारण हैं, जिनके कारण इंडोनेशिया में दलीय व्यवस्था नहीं चल पाई और इसके साथ ही संसदीय जनतंत्र भी ढह गया।

17.2.1 इंडोनेशिया में संसदीय व्यवस्था

इंडोनेशिया में संसदीय जनतंत्र की विफलता का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी रहा है कि वहां सभी मंत्रिमंडलों में विभिन्न दलों के लोग शामिल थे, कहने का तात्पर्य यह कि ज्यादातर मिली-जुली सरकारें कायम हुईं। राजनीतिक दलों में एकता और सहमति नहीं थी, इस कारण से सरकार ज्यादा दिन चल नहीं पाती थी और मंत्रिमंडल ध्वस्त हो जाता था। बार-बार मंत्रिमंडल का बनना और टूटना इसका प्रमाण है। संसद में किसी भी दल का बहुमत नहीं होता था, अतः अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ये दल राष्ट्रपति और सेना जैसे गैर संसदीय ताकतों का इस्तेमाल करते थे। सुकार्नो के करिश्माई व्यक्तित्व को आम आदमी का समर्थन प्राप्त था। इस समय किसी भी प्रकार की कोई संवैधानिक सत्ता नहीं थी। सेना का राजनीतिकरण हो चुका था। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान डचों के विरुद्ध सेना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन सब कारणों से इंडोनेशिया में संसदीय प्रणाली का पनपना बड़ा मुश्किल था। वस्तुतः इंडोनेशिया में इतने लंबे समय तक संसदीय व्यवस्था टिक सकी, इसका कारण केवल यही था कि सुकार्नो या सेना ने इसे कोई गंभीर चुनौती नहीं दी थी। इसका मुख्य कारण यह था कि आरंभिक दिनों में आपसी हितों को लेकर सुकार्नो और सेना के बीच कुछ मनमुटाव था। इसी का लाभ कुछ दलों ने उठाया। पर 1956 तक आते-आते राष्ट्रपति और सेना के हित आपस में जुड़ने लगे और उन्होंने संयुक्त रूप से दलों को कमजोर करने का काम शुरू कर दिया। जब संसदीय जनतंत्र और दलीय व्यवस्था की प्रासंगिकता दांव पर लगी थी, तो भी ये दल आपसी एकजुटता न दिखा सके और गैर संसदीय ताकतों की ओर झुकते चले गये। अधिकांश मंत्रिमंडलों का पतन राष्ट्रपति या सेना की इच्छा से हुआ। संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति या सेना की इच्छा-अनिच्छा से मंत्रिमंडल का पतन नहीं हुआ करता है। इससे संसद की अक्षमता का पता चलता है और यह भी पता चलता है कि उसमें निर्णय लेने की शक्ति नहीं थी। किसी भी समय कोई भी राजनीतिक प्रक्रिया सही ढंग से संसद से होकर न गुजर सकी। वस्तुतः गैर संसदीय ताकतें ही इसका निर्धारण करती रहीं।

17.2.2 चुनाव

सोचा यह गया था कि चुनाव हो जाने पर स्थिरता और राजनीतिक मजबूती आ जाएगी पर ऐसा हुआ नहीं। इसके विपरीत मतभेद तथा वैमनस्य और भी बढ़ा। स्थायित्व नहीं आ पाया, लोगों की आशाएं धूमिल हो गयीं। दलों के बीच आपसी मतभेद और बढ़ा। वैचारिक, जातीय और अन्य मतभेद भी तीखे हो गये। पंचशील बनाम इस्लामी राज्य, जावा बनाम सुमात्रा, सांत्री बनाम एबनगान, साम्यवाद बनाम गैर-साम्यवाद जैसे मुद्दे सामने आये। चुनाव के बावजूद मूल रूप से सरकार निर्माण की व्यवस्था समझौते पर ही टिकी रही। इससे एक बृहद और सुपरिभाषित नीति को लेकर आगे बढ़ना मंत्रिमंडल के लिए मुश्किल हो गया। इस प्रकार चुनाव असफल सिद्ध हुए। चुनाव के पहले की सरकार भ्रष्ट, अक्षम और राजनीतिक गतिविधियों के संचालन के अयोग्य थी। यह आशा की गयी थी कि चुनाव के बाद ऐसी सरकार आ सकेगी जो पिछली सरकार की कमियों को दूर कर सकेगी। पर चुनाव के बाद ऐसी सरकार की स्थापना नहीं हो सकी, जो इंडोनेशिया की जटिल समस्याओं (जैसे औपनिवेशिक शासन से प्राप्त समस्याएं) को सुलझा सके और राष्ट्रनिर्माण के पथ पर अग्रसर हो सके। बहुत जल्द ही इस सरकार से लोगों का मोहभंग हो गया और अंततः असैनिक शासन का अंत हो गया। संसदीय सरकार की वैधता और प्रासंगिकता पर गंभीर प्रश्नचिन्ह लग गये। चुनाव के दौरान दलों की क्षेत्रीय प्रकृति उभर कर सामने आयी। 1956 में क्षेत्रीयता का यह स्तर स्पष्ट रूप से गूंजने लगा और सभी दल अपने क्षेत्रीय हितों की बात करने लगे। इससे सरकार में गंभीर मतभेद पैदा हुए। परिणामस्वरूप, 1956 के अंत में

जकार्ता स्थित केंद्र सरकार का तख्ता क्षेत्रीय सेनाध्यक्षों ने उलट दिया। सरकार जिस तरह उनकी समस्याओं और मांगों को निबटा रही थी, उससे ये नाखुश थे। जैसे-जैसे केन्द्रीय सरकार और बाहरी क्षेत्रों के बीच संघर्ष बढ़ता गया वैसे-वैसे राजनीतिक दलों का ध्रुवीकरण होता चला गया। पी एन आई और पी के आई (क्रमशः राष्ट्रवादी और साम्यवादी दल) जावा में स्थित होने के कारण केंद्र सरकार का पक्ष ले रहे थे जबकि मसजूमी जैसे दलों ने जिनका मुख्य समर्थन बाहरी द्वीपों में था, अपने को क्षेत्रीय हितों से जोड़ लिया। शुरू में जावा स्थित धार्मिक विद्वानों के एक अन्य महत्वपूर्ण दल नहदतुल उलेमा ने कुछ हद तक तटस्थता दिखाई पर बाद में अन्य राजनीतिक दलों के नक्शेकदम पर चलते हुए उन्होंने केन्द्रीय सरकार को समर्थन देना शुरू कर दिया। लगभग इसी समय सुकार्नो ने दलों को दफना दिए जाने की वकालत की। उसका मानना था कि ये दल केवल निजी हितों का ख्याल रखते हैं और राष्ट्र के हितों को ताक पर रख देते हैं और देश के भीतर की अस्थिरता के लिए वे ही जिम्मेवार हैं। सुकार्नो ने भी बाद में स्वीकार किया कि यह एक प्रकार की गीदड़ भभकी थी। स्वाभाविक रूप से दलों ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। खासकर मसजूमी ने सुकार्नो के दलों के दफन की जमकर आलोचना की।

वस्तुतः आरंभ में सुकार्नो दलों का खात्मा नहीं चाहता था। वह खासकर लोगों को यह विश्वास दिलाना चाहता था कि दल व्यवस्था से राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को बल नहीं मिलेगा, बल्कि इससे अवरोध ही उत्पन्न होगा। वह दल के प्रमुखों का आधार समाप्त कर दल का प्रभाव समाप्त करना चाहता था। पर उसे यह नहीं समझ में आ रहा था कि यह काम कैसे किया जाए। वह अपने विचार जनता के बीच छोड़ रहा था और उनकी प्रतिक्रिया जानने की कोशिश कर रहा था। इसके परिणामस्वरूप कई प्रतिक्रियाएं सामने आयीं। सबसे पहले उपराष्ट्रपति हट्टा ने इस्तीफा दिया और फिर मसजूमी ने मंत्रिमंडल से अपना समर्थन वापस ले लिया। हट्टा के इस्तीफा देने से अन्य क्षेत्रों और केंद्र सरकार के बीच की खाई और चौड़ी हो गयी क्योंकि हट्टा बाहरी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता था। बाहरी लोगों के बीच सरकार की वैधता समाप्त हो गयी। हट्टा का इस्तीफा गलत समय में सामने आया और यह गलत अनुमान का नतीजा था। इससे सुकार्नो और हट्टा के बीच की खाई चौड़ी हो गयी और प्रतीकात्मक द्वितंगल समाप्त हो गया। यह संघर्ष वस्तुतः केंद्र सरकार और अन्य क्षेत्रों के बीच हो रहा था।

मसजूमी सदस्यों के मंत्रिमंडल से समर्थन वापस लेने के कारण स्थिति और भी बिगड़ गयी। इससे अली सास्त्रोमिदोजो के नेतृत्व वाली प्रथम चुनी गयी सरकार को गहरा धक्का लगा। दलीय व्यवस्था और संसदीय जनतंत्र दोनों का अस्तित्व संकट में था। जनतंत्र विरोधी ताकतों ने दलों को विघटनकारी करार देने का अच्छा मौका पाया। मसजूमी द्वारा समर्थन वापस लेने से पी एन आई और एन यू दलों को मजबूरन साम्यवादियों का पक्ष लेना पड़ा। साम्यवादियों ने अन्य दलों को दरकिनार करते हुए अपनी स्थिति मजबूत कर ली। इससे भी केंद्र सरकार और बाहरी क्षेत्रों के बीच की खाई चौड़ी हुई और दोनों के बीच के संघर्ष में तेजी आई।

1956 के अंत और 1957 की शुरूआत में इंडोनेशियाई राजनीति में दो तरह की प्रतिक्रियाएं सामने आयीं। एक मत सुकार्नो का था, जिसने इंडोनेशिया में काम कर रही पश्चिमी संसदीय व्यवस्था की सरकार का जमकर विरोध किया और इंडोनेशिया के लिए एक अलग प्रकार के जनतंत्र की मांग की जिसे निर्देश और नेतृत्व प्राप्त हो। दूसरी तरफ क्षेत्रीयता के समर्थक सुकार्नो-हट्टा द्वितंगल पुनः स्थापित करना चाहते थे। वे चाहते थे कि हट्टा को प्रधानमंत्री बनाया जाए तथा ज्यादा क्षेत्रीय स्वायत्तता प्रदान की जाए, क्षेत्रीय सेनानायकों को अधिक ताकत मिले और जकार्ता में गैर साम्यवादी सरकार की स्थापना की जाए। दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएं संसदीय सरकार की असफलता का परिणाम थीं और उसे कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था।

समाज और सरकार के बदलते स्वरूप की इस पृष्ठभूमि में सुकार्नो के निर्देशात्मक जनतंत्र का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। संकट की इस स्थिति में, तीन दशकों के महत्वपूर्ण नेता सुकार्नो ने अपनी कानसेप्सी (अवधारणा) सामने रखी। इसकी यह कानसेप्सी उस संकट की घड़ी में सामने आयी जब पूरा संवैधानिक ढांचा चरमरा रहा था और किसी न किसी आधारभूत समाधान की आवश्यकता थी। सुकार्नो के विचार अन्य दलों के विचारों की अपेक्षा अधिक मान्य और सुदृढ़ प्रतीत होते थे। जब राजनीतक दलों, जातीय समूहों, क्षेत्रीयता समर्थकों और धर्म समर्थकों के बीच संघर्ष चल रहा था, देश में पूरी अव्यवस्था थी और देश टूटने के कगार पर था, उसी समय सुकार्नो अपने समाधानों और विचारों के साथ आगे आया और अपने देश को निर्देशात्मक जनतंत्र की ओर अग्रसर किया।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) उत्तर देने के लिए नीचे दिए गये स्थान का उपयोग कीजिए।
ii) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से कीजिए।

1) इंडोनेशिया में राजनीतिक अस्थिरता का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) इंडोनेशिया में संसदीय जनतंत्र की विफलता के प्रमुख कारक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) चुनावी राजनीति का महत्व बताते हुए इंडोनेशिया की जनतांत्रिक प्रक्रिया में इसके प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

17.3 सुकार्नो की निर्देशात्मक जनतंत्र की अवधारणा

फरवरी 1957 में सुकार्नो ने निर्देशात्मक जनतंत्र की अपनी अवधारणा को एक ठोस स्वरूप प्रदान किया। उसने एक उच्चस्तरीय राष्ट्रीय परिषद की स्थापना का प्रस्ताव रखा। इसमें मजदूर, किसान, व्यापारी, सेना के अधिकारी आदि विभिन्न कामगार समुदायों को शामिल करने की बात की गयी। सुकार्नो को इस परिषद का अध्यक्ष मनोनीत किया गया था। इसमें साम्यवादियों सहित सभी दलों के लोगों का सहयोग लेना था। मुख्य रूप से पी एन आई और साम्यवादियों ने राष्ट्रपति का समर्थन किया। मार्च 1957 में पहली चुनी हुई सरकार के इस्तीफे के बाद राष्ट्रपति सुकार्नो का प्रस्ताव कुछ संशोधन के साथ स्वीकार कर लिया गया। सुकार्नो ने खुद एक गैर संसदीय "व्यावसायिक मंत्रिमंडल" का गठन किया, जिसके अध्यक्ष जूआण्डा बने। इस नये मंत्रिमंडल में साम्यवादियों और मसजूमियों को जगह नहीं मिली। मसजूमियों ने सुकार्नो के निर्देशात्मक जनतंत्र की अवधारणा का जमकर विरोध किया था। मंत्रिमंडल द्वारा सत्ता संभालने के तुरंत बाद 45 सदस्यीय राष्ट्रीय परिषद बनी, जिसमें साम्यवादियों को भी स्थान मिला। इस संकट की स्थिति का एक परिणाम यह भी हुआ कि सेनाध्यक्ष मेजर जेनरल ए. एच. नासूटियन के नेतृत्व में सेना की स्थिति मजबूत हुई। खास तौर पर तब जब 14 मार्च को पूरे राष्ट्र में मार्शल लॉ लगा दिया गया और इस प्रकार नागरिक मामलों में सेना के हस्तक्षेप को वैधता प्रदान कर दी गयी।

नये प्रधानमंत्री जुआण्डा ने जकार्ता और क्षेत्रीय राज्यों के बीच की खाई पाटने का हर संभव प्रयास किया पर आधारभूत राजनीतिक असहमति बनी रही। 1957 के अंत तक दोनों पक्ष एक-दूसरे को शंका की नजर से देखने लगे। क्षेत्रीय शक्तियों को यह अंदेशा था कि जकार्ता उनके खिलाफ सैनिक कार्यवाई की तैयारी कर रहा है, जबकि जकार्ता यह मान बैठा था कि क्षेत्रीय शक्तियां पश्चिमी देशों के साथ मिलकर उससे सत्ता छीनने के फिराक में हैं। नवंबर के अंत तक समझौते की रही-सही आशा भी तब समाप्त हो गयी, जब कुछ मुसलमान युवाओं ने सुकार्नो की हत्या का प्रयास किया। इस घटना से एक संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसके साथ-साथ एक और घटना घटी।

संयुक्त राष्ट्र संघ में इंडोनेशिया का एक प्रस्ताव पराजित हो गया। इस प्रस्ताव के अनुसार इंडोनेशिया और नीदरलैंड को मिलकर पश्चिमी ईरान पर दावा करना था। सुकार्नो ने नीदरलैंड को चेतावनी दी थी कि संयुक्त राष्ट्र में अगर यह प्रस्ताव गिरा तो गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। संयुक्त राष्ट्र के वोट के कुछ ही दिनों के भीतर आक्रामक कार्रवाई शुरू हो गयी। मजदूरों ने इंडोनेशियाई गणतंत्र के नाम पर डचों के एक स्थान पर कब्जा जमा लिया। मजदूरों ने डच जहाजरानी कंपनियों और होटलों, खेतों और कारखानों, बैंकों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों और दुकानों पर देखते ही देखते कब्जा जमा लिया। इससे साबित होता है कि आंशिक रूप से ही सही इनको सरकार का समर्थन प्राप्त था। बृहद डच व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर व्यावहारिक रूप में इंडोनेशियाई लोगों का कब्जा हो गया। बाद में इनका राष्ट्रीयकरण किया गया। इस घटना के तीन महीने बाद 46,000 डच नागरिकों में से अधिकांश देश छोड़ कर चले गये।

इस विजय के तुरंत बाद क्षेत्रीय होड़ उभरने लगी। जनवरी में विभिन्न क्षेत्रीय परिषदों के नेता मध्य सुमात्रा में इकट्ठा हुए। मसजूमी दल और समाजवादी दल के कई शीर्षस्थ नेताओं ने उनसे हाथ मिलाया। भूतपूर्व प्रधानमंत्री नासिर जैसे लोग भी आये जिन्हें दिसंबर में अपमानित होकर जकार्ता छोड़ना पड़ा था। 10 फरवरी को इस समूह ने एक चेतावनी दी : जुआण्डा मंत्रिमंडल पांच दिनों के भीतर इस्तीफा दे और लोकप्रिय हट्टा और जोग जकार्ता के सुल्तान के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन हो वर्ना मध्य एशिया में जुटे हुए नेता एक समानांतर सरकार बनाएंगे। 15 फरवरी को इस चेतावनी

पर अमल किया गया। पलेंग (मध्य सुमात्रा) में इंडोनेशियाई गणतंत्र की क्रांतिकारी सरकार (पी आर आई) का गठन हुआ। मसजूमी नेता और केंद्रीय बैंक के भूतपूर्व गवर्नर सैफुद्दीन प्रॉविरांगेरा को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। यह बात तुरंत साफ हो गयी कि समानांतर सरकार को मध्य सुमात्रा और उत्तरी सुलावेसी के सैन्य परिषद का समर्थन प्राप्त है। पर सेनाध्यक्षों ने समय की प्रतीक्षा करना उचित समझा। आरंभ में अमेरिकी सरकार ने विद्रोहियों से सहानुभूति दिखाई। राज्य सचिव डलेस ने अपने वक्तव्य से समर्थन का इशारा किया। अमेरिका ने हथियारों से भी विद्रोहियों की सहायता की। पर वह भी खुलकर सामने नहीं आया और पी आर आर आई को औपचारिक मान्यता देने से इंकार कर दिया। इसके अतिरिक्त विद्रोही क्षेत्र में काम कर रही तेल कंपनियां भी केन्द्रीय सरकार को राजस्व देती रहीं। पर विद्रोही सरकार ज्यादा टिक नहीं पाई और उनके सैनिकों ने अप्रत्याशित रूप से बड़ी आसानी से आत्मसमर्पण कर दिया। अप्रैल के अंत तक विद्रोहियों को सेनाध्यक्षों और अमेरिका का अप्रत्यक्ष समर्थन भी समाप्त हो गया। पी आर आर आई सुमात्रा और बुलावेसी में गुरिल्ला युद्ध करती रही। पर अब उनके पास शक्ति नहीं रह गयी थी। जिस तेजी से उनका पतन हुआ, उसे देखकर आश्चर्य होता है।

17.4 निर्देशात्मक जनतंत्र का काल : सुकार्नो सेना और पी के आई त्रिकोण का उदय

सेना और उसके समर्थकों की शक्ति में वृद्धि, इस काल का, शायद सबसे बड़ा राजनीतिक बदलाव था। डचों के छीने गये कई उद्यमों में सेना ने अपने अधिकारियों को उच्च पदों पर आसीन करवाया। गृह युद्ध छिड़ने के साथ ही मार्शल लॉ लगा दिया गया। मेजर जनरल नासुटियन और उसके क्षेत्रीय सेनाध्यक्षों ने मार्शल लॉ का उपयोग नागरिक प्रशासन और राजनीतिक मामलों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए किया। पी आर आर आई पर विजय ने सेना की प्रतिष्ठा और भी बढ़ा दी। 1958 के उत्तरार्द्ध आते-आते स्थिति साफ हो गयी कि अब नागरिक मामलों पर सेना का अधिकार होगा। 1956 से पहले वाली नागरिक स्वतंत्रता धूमिल होती जा रही थी। इसके अलावा 1958 में फौजी तानाशाही की स्थापना की बात जोर-शोर से चली। संकट के इस काल में केवल सेना ही शक्तिशाली नहीं हुई बल्कि राष्ट्रपति सुकार्नो ने भी इस स्थिति का फायदा उठाया। डच परिसंपत्तियों पर कब्जा जमाने के उसके निर्णय ने उसे खूब राजनीतिक फायदा पहुंचाया। उसके कट्टर दुश्मन मसजूमी के नेतागण और इंडोनेशियन सोशलिस्ट दल (पी एस आई) या तो पराजित हो गये (जहां वे पी आर आर आई के हिस्से थे) या उन्हें संगठन से हटाकर अलग-थलग कर दिया गया। इस प्रकार उनका राजनीतिक प्रभाव लगभग समाप्त हो गया। 1958 के उत्तरार्द्ध में सुकार्नो ने निर्देशात्मक जनतंत्र के लिए लोगों से अपील की। उसके अनुसार इस प्रकार के जनतंत्र से राष्ट्रीय पहचान कायम होगी। इस अपील को सेना का भी समर्थन प्राप्त हुआ। लोगों ने इसे राजनीतिक नवीनीकरण के रूप में देखा और इसकी प्रशंसा की।

इसके विपरीत पिछले आठ साल से जो दल सत्ता में थे वे अब हतोत्साहित हो चुके थे और उनका प्रभाव समाप्त हो चुका था। राष्ट्रपति द्वारा 'उदारवादी जनतंत्र' को नकारे जाने से अधकचरा जनतंत्र कहे जाने से और "दल और दल, अनगिनत दलों की बीमारियों" आदि की चर्चा करके इसे नीचा दिखाने से इन दलों की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी थी। सुकार्नो द्वारा की गयी इस भर्त्सना का चारों तरफ जोरदार स्वागत हुआ। काफी कम नेतागण वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था के पक्ष में तर्क जुटाने में सफल रहे। 1958 का उत्तरार्द्ध आते-आते वे लोग भी भर्त्सना के कोरस में शामिल हो गये जिन्होंने संसदीय व्यवस्था से लाभ उठाया था। केवल मसजूमी नेतागण इससे बाहर रहे क्योंकि पी आर आर आई में शामिल होने के कारण उन्हें अलग-थलग कर दिया गया था। संवैधानिक जनतंत्र वैचारिक धरातल पर पराजित हो गया और इसके समर्थक दलों ने भी इसका साथ छोड़ दिया। 1955 के चुनाव में जो दल विजयी हुए थे, उनमें केवल साम्यवादी दल सक्रिय और सम्मानित रहा। पर इसकी अपनी समस्याएं थीं। मसजूमी और पी एस आई के साथ जुड़े रहने के कारण इन पर विशेष निगरानी रखी जाती थी। सेना के सत्ता में आ जाने से राजनीतिक स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगा। अशांत और अस्तव्यस्त राजनीति की समाप्ति हुई और निरंकुश शांति का दौर शुरू हुआ। राजनैतिक स्वतंत्रता समाप्त हो गयी और सरकार के भीतर विभिन्न ताकतों के बीच छिपा संघर्ष चलने लगा।

1959 के आरंभ में सुकार्नो और उसके मंत्रिमंडल ने सेना का यह प्रस्ताव मान लिया कि निर्देशात्मक जनतंत्र को एक ठोस स्वरूप प्रदान किया जाए। उन्होंने घोषणा की कि 1945 के संविधान (जिसे व्यावहारिक रूप से नवंबर 1945 में और औपचारिक रूप से 1949 में त्याग दिया गया था) को आधार बनाकर राजनीतिक ढांचे के पुनर्निर्माण का काम किया जाएगा। चुनी गयी संवैधानिक परिषद से बार-बार इसके अनुमोदन का अनुरोध किया गया पर इसमें सफलता नहीं मिली। इसके बाद राष्ट्रपति सुकार्नो ने 5 जुलाई 1958 को राष्ट्रपति के एक अध्यादेश द्वारा परिषद भंग कर दी और क्रांतिकारी संविधान की स्थापना की। 1945 के संविधान में पंचशील पर बल दिया गया था। इस्लाम का इसमें कोई स्थान नहीं था। इस प्रकार वैचारिक ढुलमुलपन भी समाप्त हुआ और इसे एक ठोस आधार प्राप्त हुआ। इसके साथ-साथ संसदीय व्यवस्था के स्थान पर राष्ट्रपति व्यवस्था कायम हुई। सुकार्नो पहला प्रधानमंत्री बना। जुआण्डा ने प्रधानमंत्री पद छोड़ दिया और उसे प्रथम मंत्री का पद प्राप्त हुआ। सेनाध्यक्ष जेनरल नासुटियन सुरक्षा और प्रतिरक्षा मामलों के मंत्री बने, उसके पास सेना का पद भी बरकरार रहा। सेना के दस और पदाधिकारियों को 37 सदस्यीय नये मंत्रिमंडल में स्थान मिला। इनमें से सात थल सेना से लिए गए थे। 1945 के संविधान द्वारा प्रत्याशित सर्वोच्च परामर्श

परिषद "राष्ट्रीय परिषद" की स्थापना उसी महीने हुई। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय नियोजन परिषद नामक उच्चस्तरीय निकाय की स्थापना हुई। इसे खासतौर पर 'इंडोनेशियाई समाजवाद' का खाका खींचने के लिए स्थापित किया गया था।

इसके बाद तेजी से क्षेत्रीय सरकारों का पुनर्गठन किया गया और उन्हें अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रीकृत करके उन पर केन्द्रीय सत्ता का नियंत्रण बढ़ा दिया गया। 5 जुलाई की घोषणा में यह बात स्पष्ट कर दी गयी कि यह "हमारी क्रांति की पुनः खोज" है और 1949 से जिस गलत रास्ते पर हम चल रहे थे उससे आज मुक्ति मिली है। स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर दिया गया राष्ट्रपति का भाषण ही राज्य का राजनीतिक मेनिफेस्टो बन गया। जून 1960 में गोतोंग रोजोंग (आपसी सहायता) संसद की स्थापना हुई और राष्ट्रपति सुकार्नो ने चुनी गयी सभा को भंग कर दिया। इस मेनिफेस्टो के समर्थक दलों, समुदायों और व्यक्तियों को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए और आपसी सहयोग के लिए एक राष्ट्रीय मोर्चे की स्थापना की गयी। नवंबर-दिसंबर 1960 में सर्वोच्च राज्य इकाई "पीपुल्स कन्सल्टेटिव असेंबली" (1945 के संविधान के तहत) की पहली बैठक संपन्न हुई। इस असेंबली ने राष्ट्रीय नियोजन परिषद द्वारा तैयार किए गए आठ वर्षीय विकास योजना को मंजूरी दे दी।

निर्देशात्मक जनतंत्र की शुरुआत के साथ राजनीतिक स्वतंत्रता पर अंकुश लगना शुरू हो गया। अगस्त 1960 में मसजूमी और पी एस आई पर रोक लगा दी गयी और जनवरी 1962 में उनके अनेक राजनीतिक नेता गिरफ्तार कर लिए गये। प्रेस सेंसर सख्त कर दिया गया और पत्रकारों, शिक्षकों, छात्रों और अधिकारियों से समर्थन की आशा की जाने लगी। इसके साथ-साथ सरकार राज्य की विचारधारा के प्रचार-प्रसार और उसे लोगों द्वारा अपनाए जाने पर ज्यादा से ज़्यादा समय खर्च करने लगी। आर्थिक क्षेत्र में सरकार को सफलता नहीं मिली और सभी तरफ आर्थिक अवनति के चिह्न दिखाई देने लगे। निर्यात उत्पादन में तेजी से गिरावट आई और खाद्यान्न की उपज में काफी धीमी गति से विकास हुआ। मुद्रास्फीति तेजी से बढ़ी और दाम बढ़ने से जनता में असंतोष की लहर फैलने लगी।

पर अन्य क्षेत्रों में सुकार्नो की सरकार को सफलता हासिल हुई। 1961 में पी आर आर आई विद्रोह का अंत हो गया और देश में एकता की स्थापना हुई। नासुटियन के नेतृत्व वाली सेना ने विद्रोहियों से अपील की कि अगर वे "गणतंत्र की परिधि में लौटें" ("आत्मसमर्पण" का उपयोग नहीं किया गया) तो उन्हें माफ कर दिया जाएगा। इसके फलस्वरूप एक लाख लोगों ने विद्रोह का रास्ता छोड़ दिया। इनमें दाउद ब्योरेह के आचीनी इस्लामी आंदोलन और दक्षिणी सुलवेसी में कहर मुजकर के इस्लामी विद्रोह के नेता और अन्य सदस्य भी शामिल थे। इन्होंने पहले पी आर आर आई के साथ समझौता किया था। 1961 के अंत तक जावा के बाहर के विद्रोहों से सेना मुक्त हो चुकी थी। इसके बाद 1962 के आरंभ में सेना ने पश्चिमी जावा में चल रहे तेरह वर्षीय पुराने दारूल इस्लाम विद्रोह को दबाने का काम शुरू किया। जून 1961 में सेना इसके विद्रोही नेता एस. एम. कार्तोस्वीरजो को पकड़ने में कामयाब रही और इसके बाद उसके अधिकांश अनुयायियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। अगस्त 1962 तक पूरे देश में आंतरिक सुरक्षा कायम हो गयी थी। अगस्त 1962 में सरकार ने पश्चिमी ईरान के संबंध में नीदरलैंड सरकार से समझौता किया, जिसके तहत वह इंडोनेशिया में वापस आ गया और देश के स्वतंत्रता की प्रक्रिया संपन्न हुई। यह सरकार की एक बड़ी उपलब्धि थी।

सुकार्नो का निर्देशात्मक जनतंत्र तीन राजनीतिक ताकतों—खुद राष्ट्रपति सुकार्नो, सेना और पी के आई— के त्रिकोण पर टिकी थी। निर्देशात्मक जनतंत्र का यह त्रिकोणात्मक समझौता आपसी हितों और स्वार्थों के नाजुक बंधन से जुड़ा हुआ था। इस त्रिकोण को संतुलित रखने के लिए सहयोग संघर्ष और जोड़-तोड़ भी हुआ करता था। इन तीनों में सुकार्नो सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण और शक्तिशाली था। विद्रोहों को दबाकर और डच संपत्तियों को अपने नियंत्रण में लेकर सेना ने अपनी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ाई थी। एक तरफ नासुटिअन और सेना ने सुकार्नो को निर्देशात्मक जनतंत्र लागू करने में भरपूर मदद की दूसरी तरफ सुकार्नो देश की राजनीतिक प्रक्रिया में सेना की जरुरत से ज्यादा दखलअंदाजी पसंद नहीं करता था। उसे बराबर यह खतरा बना रहता था कि सेना कहीं सत्ता हथिया न ले। अतः सेना की शक्ति को रोकने के लिए उसने अन्य ताकतों को बढ़ावा दिया। सुकार्नो का कोई राजनीतिक दल नहीं था (हालांकि पी के आई अपने को सुकार्नो से जोड़ता था पर उसने कभी भी अपने को इस दल से नहीं जोड़ा), अतः यह भूमिका पी के आई ने निभाई। हालांकि वह कभी भी साम्यवादी नहीं रहा पर वह पी के आई के उत्कृष्ट संगठन, अनुशासन और इसके सदस्यों की कर्त्तव्यनिष्ठता से प्रभावित था पर वह यह कभी नहीं चाहता था कि पी के आई इतना अधिक शक्तिशाली हो जाए कि उसकी सत्ता को चुनौती देने लगे। इस कारण सुकार्नो पी के आई और सेना को आपस में लड़ाता रहा और इस प्रकार उसे संतुलन बनाए रखने में सहायता मिली। सेना और पी के आई दोनों अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए सुकार्नो का समर्थन चाहते थे। सुकार्नो कभी सेना को तो कभी पी के आई को अपना समर्थन देकर बागडोर अपने हाथ में रखता था। कुछ वर्षों के भीतर निर्देशात्मक जनतंत्र विफल हो गया। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि इन तीनों ताकतों के उद्देश्यों में एकरूपता और समानता नहीं थी। संसदीय जनतंत्र के काल में शक्ति संसद में निहित नहीं थी। शक्ति या तो दल के रहनुमाओं के हाथ में थी या गैर संसदीय ताकतों के हाथ में। निर्देशात्मक जनतंत्र ने इस कमी को दूर करना चाहा पर राष्ट्रपति सेना और पी के आई के अलग-अलग विरोधी हितों के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाया। सेना ऐसे मौके की ताक में थी जब मुख्य प्रतिद्वंद्वी पर हमला किया जाए। यह मौका 1965 के अंत में आया जब तीनों ताकतों का आपसी संबंध विच्छेद हो गया। इसी समय राष्ट्रपति सुकार्नो की तबीयत खराब रहने लगी। इस प्रकार सेना को सत्ता पर अधिकार जमाने का मौका मिल गया।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गये स्थान का उपयोग कीजिए।

ii) अपना उत्तर इकाई के अंत में दिये गए उत्तर से मिलाइए।

1) सुकार्नो की निर्देशात्मक जनतंत्र की अवधारणा को संक्षेप में समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) निर्देशात्मक जनतंत्र की विफलता के प्रमुख तत्व क्या थे? उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.5 सैन्य सत्ता : नयी व्यवस्था का उदय

1965 के फौजी तख्ता पलट के बाद नाटकीय ढंग से घटनाएं घटीं और इंडोनेशियाई राजनीति में एक नये काल की शुरुआत हुई। सुहार्तो और उसकी सेना के नेतृत्व में घटी यह घटना मानव इतिहास की एक बहुत बड़ी त्रासदी थी। सेना ने सत्ता पर अधिकार जमाने और अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए बड़े पैमाने पर संगठित रूप से नरसंहार किया और "स्थायित्व और व्यवस्था" कायम की। पश्चिमी शक्तियों और विद्वानों ने इस घटना का स्वागत किया और इसे बढ़ावा दिया क्योंकि इससे तीसरी दुनिया के देशों के शोषण का मार्ग प्रशस्त हुआ। प्रसिद्ध मानवतावादी स्वर्गीय बर्ट्रेन्ड रसेल ने इस घटना पर बेहद अफसोस जाहिर किया और अपनी पीड़ा व्यक्त की। इस नरसंहार पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने टिप्पणी की "चार सालों में इंडोनेशिया में जितने आदमी मरे उनकी तादाद बारह सालों में वियतनाम में मरने वालों से पांच गुणा ज्यादा थी।" पर रसेल अपवाद थे, इंडोनेशिया की त्रासदी पश्चिमी देशों के लिए एक खुशी का अवसर था। टाइम पत्रिका ने इस नरसंहार को "पश्चिम के लिए एशिया संबंधी सर्वोत्तम समाचार" के रूप में परिभाषित किया।

1965 के सैनिक विद्रोह के तत्कालीन कारण के बारे में अभी भी रहस्य बना हुआ है और अभी भी यह तथ्य इतिहास की पर्त में दबा हुआ है कि इस घटना के लिए कौन जिम्मेदार था, जिसने सारे देश को हिला कर रख दिया। सेना की भूमिका को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए यह जानना आवश्यक है कि देश की राजनीति में इसकी स्थिति क्या थी। 30 सितंबर 1965 को पी के आई के समर्थक जावाई जूनियर सेना पदाधिकारियों का असंतोष प्रकट हुआ और लेफ्टिनेंट कर्नल उन्तुंग के नेतृत्व में सेना के एक हिस्से ने विद्रोह कर दिया। सेना प्रमुख यानी सहित सेना के छह जनरलों को मौत के घाट उतार दिया गया। नासुटिअन, जो अब प्रतिरक्षा मंत्री बन चुका था, पर भी हमला हुआ पर उसे हल्की-फुल्की चोट लगी और उसकी जान बच गयी। चीजें काफी गड्डमड्ड हो गयी, पर मेजर जेनरल सुहार्तो ने स्थिति संभाल ली और उसने इस विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया। नासुटिअन के बाद सुहार्तो सबसे वरिष्ठ सेनाध्यक्ष के रूप में जीवित रह सका था। सेनानायकों ने आरोप लगाया कि वह पी के आई विद्रोह का मुख्य संचालक था। सुकार्नो अपने राष्ट्रीयता, धर्म और साम्यवाद के सिद्धांत की सहायता से विद्रोह पूर्व स्थिति कायम न कर सका और दलों के बीच पहले की एकजुटता कायम नहीं हो सकी। इसके अलावा सुकार्नो ने अंतुग विद्रोह और छह सेनाध्यक्षों की हत्या के लिए पी के आई को जिम्मेदार मानने से इंकार कर दिया। सुहार्तो और उसकी सेना ने इसका उपयोग किया और इस्लामी समुदाय से

मिलकर धीरे-धीरे सुकार्नो की शक्ति पर अंकुश लगाना शुरू कर दिया। इस्लामी समुदाय को निर्देशात्मक जनतंत्र के आखिरी सालों में अहमियत नहीं दी गयी थी। इसके साथ-साथ सेना ने पी के आई के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया, इसके सदस्यों को हिरासत में ले लिया और इस्लामी समुदायों तथा स्थानीय गैर साम्यवादियों को बढ़ावा देना शुरू किया ताकि साम्यवादियों को समूल नष्ट किया जा सके। नयी व्यवस्था के तहत साम्यवादी दल के समर्थकों और उससे सहानुभूति रखने वाले हजारों लोगों की हत्या की गयी। इसमें निर्दोष लोग भी मारे गये।

छात्रों ने कभी खुद के बल पर और कभी सेना के बढ़ावे पर सुकार्नो के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सुकार्नो पर दबाव डाला गया कि वह यह बताए कि विद्रोहियों से उसका संबंध क्या है।

11 मार्च 1966 को स्थिति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गयी जब सुहार्तो ने सुकार्नो से सत्ता हथिया ली। उसका तर्क था कि उसने देश को राजनीतिक अस्थिरता से बचाने के लिए ऐसा किया। उसने इस तर्क का उपयोग सत्ता हथियाने के लिए किया और लेजिस्लेटिव एसेंबली के अंदर और बाहर ऐसा माहौल बनाया कि सुकार्नो को हटाना आसान हो गया। 12 मार्च 1967 को सुहार्तो कार्यवाहक राष्ट्रपति बना और एक साल के बाद 27 मार्च 1968 को देश का राष्ट्रपति बन बैठा। उस समय तक लगभग सभी प्रमुख संस्थानों से पी के आई समर्थकों और सुकार्नो से किसी भी प्रकार का संबंध रखने वालों को निकाल बाहर कर दिया गया।

सुकार्नो और सुहार्तो के शासन काल की कुछ समानताएं भी हैं। दोनों ने एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश की जो ऊपर से निर्मित, संचालित, निर्देशित और आरोपित थी। दोनों ने दलों की गतिविधियों पर अंकुश लगाया और सरकार में उठने वाले विरोधी स्वरों को दबाकर प्रेस की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया तथा अपने विरोधियों को कैद कर लिया। सुकार्नो ने मसजूमी पर प्रतिबंध लगाया और सुहार्तो ने साम्यवादियों पर अंकुश लगाया। दोनों की राजनीति की एक ही शैली थी, दोनों दो दलों को एक-दूसरे के खिलाफ भड़काते रहते थे। इसके साथ-साथ दोनों के बीच कुछ महत्वपूर्ण असमानताएं भी थीं। सुकार्नो की अपेक्षा सुहार्तो की सरकार अधिक अधिनायकवादी, कठोर और दमनात्मक थी। नयी व्यवस्था की स्थापना के क्रम में साम्यवादियों और तथाकथित साम्यवादियों को नियोजित ढंग से मारा गया और अन्य विरोधी समुदायों को दमनात्मक तरीकों से चुप कराया गया। बड़ी संख्या में लोगों को बंदी बनाया गया। लोगों को बंदी बनाना रोजमर्रा की घटना हो गयी। लोगों से पूछताछ की जाती थी, अत्याचार और दमन किया जाता था। इन सबसे सुहार्तो की नियत स्पष्ट थी। वह दमन और अत्याचार के बल पर और अपने विरोधियों को धमकाकर और चुप कराकर सत्ता हासिल करने में विश्वास रखता था।

नयी व्यवस्था की स्थापना के साथ-साथ समाज और राज्य तंत्र पर पूरी तरह सेना का नियंत्रण हो गया। संसदीय प्रजातंत्र की समाप्ति के बाद पांचवे दशक के अंत में जो गैर साम्यवादी दल इधर-उधर बिखरे पड़े थे उसे सुहार्तो ने धीरे-धीरे समाप्त करना शुरू कर दिया। सेनानायकों ने अधिकांश दलों को अपने पुराने पदाधिकारियों को हटाने पर मजबूर कर दिया और उन्हीं लोगों को शामिल करने की इजाजत दी जो शासन के प्रति वफादार हों। सुकार्नो के साथ निकट का संबंध होने के कारण पी एन आई पर यह कहर ज्यादा टूटा। 1966 में साम्यवादियों और सुकार्नो के अनुयायियों पर सेना का आक्रोश ज्यादा व्यक्त हुआ और 1970 और 1980 के दशक में सभी दलों को दबाया गया। 1970 के दशक में सभी दलों को दो दलों क्रमशः पी पी पी (इस्लामिक विकास दल) और पी डी आई (इंडोनेशिया प्रजातंत्र दल) में मिला दिया गया। इसके साथ-साथ सेना प्रशासन को नागरिक जामा पहनाने के लिए राज्य समर्थित गोलकर दल का निर्माण किया गया।

राज्य के सभी कर्मचारियों को इसका सदस्य बनना था। इस प्रकार चुनावों में अन्य दो दलों पर इसकी विजय निश्चित थी। ये चुनाव बड़ी सावधानी और योजनाबद्ध ढंग से कराये गये ताकि सुहार्तो की नयी व्यवस्था और सुहार्तो के शासन को वैधता प्राप्त हो सके।

1970 के बाद समग्र रूप से इंडोनेशियाई समाज पर और खासकर प्रशासन तंत्र पर सेना का नियंत्रण कड़ा होने लगा। इस प्रक्रिया को सही ठहराने के लिए तर्क दिया गया कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य को पूरा करने के लिए पूर्ण रूप से प्रशिक्षित लोग ही संसाधन जुटा सकते हैं। अगर इंडोनेशिया को विकास करना है तो नागरिक और सैनिक नौकरशाही और तकनीकी विशेषज्ञों के समूह को अधिक शक्ति दी जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, आधुनिकीकरण और विकास के नाम पर सुहार्तो सरकार ने कुछ लोगों के हाथ में सत्ता के केंद्रीकरण को उचित ठहराने की कोशिश की। जुलाई 1971 में इस प्रक्रिया को दूसरे राष्ट्रव्यापी चुनाव (सैनिक शासन का पहला चुनाव) द्वारा आगे बढ़ाया गया। आरंभ में सुहार्तो द्वारा चुनाव कराने के फैसले को राजनीतिक दल अपनी जीत मानने लगे थे, पर उनकी आशा शीघ्र ही धूमिल हो गयी। सैनिक प्रशासन ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे किसी भी स्थिति में सत्ता छोड़ने नहीं जा रहे हैं। 460 सदस्यों के सदन में सौ सदस्य सैनिक शासन द्वारा मनोनीत होने थे। इसके अलावा सेना ने चुनावों में अपनी विजय सुनिश्चित कर ली थी। सबसे पहले उन लोगों को मताधिकार से वंचित किया गया जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से 30 सितंबर 1965 की तख्ता पलट कार्यवाही में शामिल थे। पी के आई के भूतपूर्व सदस्यों, मसजूमी, पी आई तथा अन्य प्रतिबंधित संगठनों को मत देने और चुनाव में खड़े होने का भी अधिकार नहीं था। इसके अलावा सैनिक शासन ने गोलकर नाम का एक दल भी बना लिया था, जिसमें सभी प्रकार के लोग शामिल थे। इसमें कामकाजी लोग, हित समूह, मजदूर यूनियन, युवा, अनुभवी और महिलाओं का समूह भी शामिल था। इस चुनाव में मतदाताओं पर स्थानीय सैनिक कमांडरों और प्रशासनिक अधिकारियों का पूरा दबाव था। इस परिस्थिति में गोलकर 75 प्रतिशत सीटें जीतकर

विजयी हुआ। सेना में कई प्रकार का पुनर्गठन कर सुहार्तो ने सेना में अपनी स्थिति मजबूत की। पहले इंडोनेशिया सत्रह क्षेत्रीय कमांड में बंटा हुआ था और प्रत्येक क्षेत्रीय कमांडर के पास सेना को आगे-पीछे करने और अन्य सैन्य गतिविधियों की पूरी छूट थी। इस व्यवस्था के कारण पिछले दिनों में ये कमांडर काफी शक्तिशाली हो गये थे और युद्ध के समय अपने आप में एक राजा होते थे। नयी व्यवस्था में सेना को मुख्य रूप से क्षेत्रीय वर्गों में विभक्त किया गया और नये सेनाध्यक्षों को सीधे प्रतिरक्षा मंत्री के नियंत्रण में रहना था। प्रतिरक्षा मंत्री सुहार्तो का अपना आदमी होता था। उसका सेना और हथियारों पर पूर्ण अधिकार होता था। सुहार्तो को यह भी निश्चित करना था कि सैनिक जिस प्रकार सामाजिक राजनीतिक कर्तव्य निभा रहे हैं, उनपर भी उसका सीधा नियंत्रण हो। इससे सरकार और विभिन्न एजेंसियों पर राष्ट्रपति को नियंत्रण बनाए रखने में सुविधा रहती थी। निर्देशात्मक जनतंत्र में थल सेना, नौ सेना और वायु सेना के कमांडरों को मंत्रिमंडल में स्थान दिया जाता था। सुहार्तो ने यह व्यवस्था समाप्त कर सेनानायकों के पर कतर दिए। अब से सेनानायक प्रतिरक्षा मंत्रालय के तहत काम करने लगे। सेना का पुनर्गठन कर सुहार्तो ने विभिन्न सैन्य दलों के कार्य को केन्द्रीकृत कर दिया, अभी तक ये अलग-अलग कार्य कर रहे थे। केन्द्रीकृत करने के बाद उन पर नियंत्रण स्थापित करना आसान हो गया।

सुहार्तो सरकार ने सरकारी तंत्र के सैन्यकरण, प्रशासनिक परिवर्तन, प्रशासनिक सुधार आदि द्वारा समाज पर अपना नियंत्रण मजबूत किया। पहले की नौकरशाही विजातीय, टूटी-फूटी और दुराग्रही थी अब उसे नियंत्रण स्थापित करने का एक कारगर औजार बना दिया गया। जासूसी सेवा और जाल चारों तरफ फैला दिया गया, इससे भी सरकार अपने आलोचकों को डरा सकी और चुप करा सकी। डर से लोग राजनीतिक रूप से निष्क्रिय हो गये। राजनीतिक दलों की कमजोरियों के कारण सैनिक शासन ने सरकार के प्रमुख पदों (राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तरों पर) पर सैनिक अधिकारियों को पदासीन कर अपनी स्थिति मजबूत कर ली।

इंडोनेशिया समाज के हर पहलू पर अपना नियंत्रण मजबूत करने के लिए सुहार्तो सरकार ने राजनीतिक तकनीकों के अलावा आर्थिक उपलब्धियों को आधार बनाने पर जोर दिया। निर्णय प्रक्रिया में राजनीतिक रूप से शामिल होने से जनता को यह कहकर अलग कर दिया गया कि राजनीतिक प्रतियोगिता से अव्यवस्था और अस्थिरता आएगी और इससे सरकार के आर्थिक सुधार और आधुनिकीकरण के कार्यक्रम में बाधा पहुंचेगी। व्यावहारिक रूप में सब कुछ खुद करने की स्वतंत्रता से एक प्रकार की निरंकुशता सामने आयी।

सुहार्तो के करीबी लोग आर्थिक विकास के उद्देश्य और तरीके मनमाने ढंग से तय किया करते थे। सुहार्तो और उसके योजनाकार यह मानकर चले थे कि राष्ट्र के निर्माण में जनता की कोई भूमिका नहीं होती है। उनकी सहमति असहमति से कोई फर्क नहीं पड़ता है। वे यह भी मानते थे कि यदि राजनीतिक शक्तियों को बोलने का मौका दिया जाए तो वे "अनावश्यक" रूप से समाज में लाभ के वितरण और बंटवारे की बात करने लगेंगे। इस प्रक्रिया में योजनाकार यह भूल गये कि आर्थिक विकास राष्ट्रीय विकास का एक हिस्सा मात्र है। जनतंत्र, राष्ट्रीय निर्माण और सामाजिक न्याय आदि सामाजिक विकास के कुछ अन्य पहलू हैं। केवल आर्थिक पक्ष पर जोर देने से यह खतरा बराबर मंडरा रहा था कि निकट भविष्य में इंडोनेशिया में कुछ गंभीर राजनीतिक या सामाजिक संकट उठ खड़ा होगा।

इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता है कि सुहार्तो के शासनकाल में अभूतपूर्व आर्थिक प्रगति हुई। सुहार्तो द्वारा राज्य सत्ता संभालने के पहले आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। मुद्रास्फीति अपनी चरम सीमा पर थी, सड़कों, रेल मार्गों और जहाजरानी सुविधाओं की स्थिति चिंताजनक थी। विदेशी कर्ज के बोझ से देश दबा हुआ था। देश के अर्थशास्त्रियों, नियोजकों और तकनीकी विशेषज्ञों (जिनका पश्चिमी देशों में मान था) की सहायता से सुहार्तो सरकार ने कर्ज अदायगी को व्यवस्थित और समयबद्ध करने की कोशिश की और पश्चिम तथा जापान से लंबी अवधि के कर्ज और निवेश प्राप्त किए। परिणामस्वरूप कुछ वर्षों के भीतर सरकार मुद्रास्फीति रोकने, यातायात और संचार में सुधार लाने, उत्पादन बढ़ाने और तेल, खनिज तथा लकड़ी के निर्यात बढ़ाने में अभूतपूर्व सफलता हासिल की। पर एक बात ध्यान देने की है कि यह विदेशी अनुदान और निवेश 70 के दशक के तेल बाजार में उफान पर आधारित था। यह विकास आंतरिक संसाधन के विकास पर नहीं आधारित था और इसमें बढ़ते भ्रष्टाचार को भी रोकने की कोशिश नहीं की गयी। इसके परिणामस्वरूप सेनानायकों के एक धनी वर्ग का उदय हुआ। इन्होंने चीनी समुदाय के साथ मिलकर कई प्रकार के व्यापारिक प्रतिष्ठान खोले। चीनी सेनानायकों को व्यापार करने में सहायता प्रदान करते थे और सेनानायक स्थानीय इंडोनेशियाई लोगों से उनकी रक्षा करता था। हालांकि विकास का रस नीचे के तबके तक रिस कर पहुंचा पर अमीर और गरीब की व्यापक खाई पट नहीं सकी। सुहार्तो द्वारा स्थापित नयी व्यवस्था में अमीर और गरीब, सेना और नागरिक, शहरी और देहाती इलाकों और भूमिपतियों और सरकारी कर्मचारियों तथा कृषक समुदाय के बीच का अंतर बढ़ता चला गया। इसके कारण शहर और देहात में रहने वाले राजनीतिक रूप से जागरूक लोगों में असंतोष का भाव पैदा हुआ।

17.5.1. नवीनीकरण की प्रक्रिया और इंडोनेशिया में सैनिक शासन

अभी इंडोनेशिया एक नये राजनीतिक चरण से गुजर रहा है। सुहार्तो के शासन के 27 वर्ष पूरे हो गये हैं। इसके 1945 के अधिकांश समर्थक (क्रांतिकारी राष्ट्रवादी समूह जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए डचों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी) या तो अवकाश प्राप्त कर चुके थे या मर गये थे। उत्तराधिकार और व्यवस्थित ढंग से राजनीतिक बदलाव का मुद्दा महत्वपूर्ण होता जा रहा था। यह मुद्दा इतना महत्वपूर्ण हो गया था कि पिछले कुछ वर्षों से राष्ट्रपति सुहार्तो बार-बार 45 की पीढ़ी के अभिजातकाल में एक नये नेतृत्व के विकास की बात कर रहा था। पिछले दशक के दौरान इंडोनेशिया में यह

राजनीतिक मुद्दा और गतिविधि सर्वोपरि रहा कि नयी पीढ़ी को शक्ति कैसे हस्तांतरित की जाए कि शासक वर्ग को उससे फायदा हो। इंडोनेशिया सैन्य सोपानक्रम में नयी पीढ़ी के लोग शामिल कर लिए गये हैं, अभी सत्ता का हस्तांतरण धीमी गति से किया जा रहा है और सत्ता की बागडोर अभी भी सुहार्तो और 1945 की पीढ़ी के उसके सहयोगियों के हाथ में है।

अभी कोई ऐसा लक्षण नहीं दीख रहा है कि राष्ट्रपति सुहार्तो अपना पद छोड़ देंगे और इस बात के संकेत मिल रहे हैं कि 1993 में जब उनकी कार्य अवधि समाप्त होगी तो वे फिर चुनाव में खड़े होंगे। वर्तमान नेतृत्व जब पूरी तरह आश्वस्त हो जाएगा कि नये नैतृत्व में भी यथास्थिति बनी रहेगी तब तक वे गद्दी नहीं छोडेंगे। वस्तुतः देश में नियोजित और व्यवस्थित ढंग से परिवर्तन की तैयारी का पहला चरण अस्सी के दशक के मध्य में ही शुरू हो चुका था और सैन्य बल का पुनर्गठन किया गया और नये लोगों को जिम्मेदारियां सौंपी गयीं, यह प्रयास 80 के दशक के उत्तरार्द्ध और 90 के दशक के आरंभ तक चलता रहा। इस प्रक्रिया को तेज करने के लिए सरकार ने प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक दलों पर नियंत्रण कड़ा किया, इसके लिए कानून बनाया ताकि उत्तराधिकारी आसानी से सत्ता संभाल सके। यह कानून इस उद्देश्य से भी बनाया गया ताकि सरकार के मूल आदेशों का पालन हो। हाल के वर्षों में नयी व्यवस्था शासन ने उग्रवादी इस्लाम और साम्यवाद के दबाव से राजनीतिक यथास्थिति को बचाए रखने के लिए पंचशील के सिद्धांत को अपना लिया है। सुकार्नो ने ही मूलतः राज्य की विचारधारा के रूप में पांच सिद्धांतों को सामने रखा था। ये हैं : भगवान में विश्वास, राष्ट्रवाद, अंतर्राष्ट्रवाद, राजनीतिक और आर्थिक प्रजातंत्र। शासन को ऐसा प्रतीत हुआ है कि राजनीतिक इस्लाम उसके अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा है और उसने इस्लामी राजनीतिक दलों और संस्थाओं पर रोक लगानी शुरू कर दी। सभी जन संगठनों, राजनीतिक, व्यावसायिक या सांस्कृतिक दलों को एक मात्र विचारधारा के रूप में पंचशील को स्वीकार करने पर मजबूर किया गया। इस प्रकार सरकार धार्मिक संगठनों से लेकर मजदूर संगठनों तक सभी प्रकार के संगठनों और संस्थाओं पर कड़ा नियंत्रण रखने में सफल रही।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गये स्थान का उपयोग कीजिए।

ii) इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से अपना उत्तर मिलाइए।

1) इंडोनेशियाई राजनीति में सेना की भूमिका को संक्षेप में समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) नयी व्यवस्था और इंडोनेशिया की राजनीति में इसके प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

17.6 सारांश

पच्चीस वर्षों के अपने शासनकाल में सुहार्तो को कुछ छिटपुट चुनौतियों का सामना करना पड़ा, पर वह राजनीतिक स्थिरता स्थापित करने में सफल रहा और जनता को बहला-फुसलाकर इंडोनेशियाई समाज के निर्माण की अपनी योजना स्वीकार करवा ली। जिन लोगों ने इसे मानने के इंकार करने की कोशिश की उन्हें डराया-धमकाया गया। कहीं-कहीं असंतोष और असहमति के स्वर उठ रहे हैं। उन्हें आसानी से दबा दिया जा रहा है और वे दरकिनार कर दिए गए हैं। खासकर "50 की याचिका" समूह के कमजोर होने और इस्लामी संगठनों से पंचशील सिद्धांत मनवा लेने के बाद सुहार्तो की सरकार को निकट भविष्य में कोई खतरा नहीं है। (50 की याचिका समूह सुहार्तो के नेतृत्व को खुलेआम चुनौती देने वाला अकेला समूह है। इसके अधिकांश सदस्य सुहार्तो के भूतपूर्व मित्र थे, जिन्होंने नयी व्यवस्था की स्थापना में सहायता

प्रदान की थी। पर उनका विश्वास हो चला था कि जिस आदर्श के लिए नयी व्यवस्था की स्थापना की गयी थी, वह उन आदर्शों की अनदेखी कर रहा है। इसे "50 की याचिका" समूह नाम से इसलिए जाना जाता है क्योंकि 50 लोगों ने याचिका द्वारा सुहार्तो के नेतृत्व की वैधता को चुनौती दी थी।) सांस्थानिक ढांचे को इस प्रकार निर्मित किया गया कि वे यथास्थिति बनाए रखने में सहायक हो। भविष्य की अनिश्चितता से बचने के लिए स्थायित्व की जरूरत थी। हालांकि नयी व्यवस्था के तहत राजनीतिक संस्थानीकरण के लक्षण मिलते हैं, पर इस राजनीतिक व्यवस्था के टिकने के पीछे सुहार्तो की कूटनीतिक दक्षता का विशेष हाथ है। जहां व्यक्ति ही सब कुछ हो ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में बराबर अनिश्चितता बनी रहती है।

सुहार्तो शासन के विरोधियों के दो प्रमुख तत्व हैं। पहला लोकप्रियतावादी स्वर है जो मुस्लिम समुदायों और कुछ प्रगतिशील लोगों का स्वर है और दूसरा परिष्कृत स्वर जो उदारवादी पेशेवर लोगों की तरफ से उठता रहता है। ये काफी प्रतिष्ठित लोग हैं। इस्लामी विपक्ष अपने रूप और अंतर्वस्तु में तीव्र साम्राज्य-विरोधी है, और बहुराष्ट्रीय कंपनियों और पूंजीवादी विकास का मुखालिफ़ है। वह खासकर इस विचार का विरोधी है कि इंडोनेशिया को हर समय हर बात में पश्चिम की नकल करनी चाहिए। दूसरी तरफ उदारवादी आलोचक इंडोनेशियाई पूंजीवादी और आधुनीकरण के स्वरूप और गति से संतुष्ट थे, पर वे चाहते थे कि भ्रष्टाचार कम हो, एकाधिकार कम हो, भाई-भतीजावाद कम हो और सैन्य विशेषाधिकार कम हो। वे यह भी चाहते थे कि सरकार और अच्छी तरह कार्य करे।

विभिन्न इस्लामी दल और कुछ जुझारू बुद्धिजीवी अपने-अपने कारणों और नजरिए से जनवाद को हवा देने की कोशिश कर रहे थे, पर जनता में अभी सुहार्तो से टक्कर लेने की हिम्मत नहीं प्रतीत होती है। इसलिए अभी से सुहार्तो के खिलाफ जाने की स्थित में नहीं हैं। फलतः वे इन तत्वों से दूर रहने में ही अपनी कुशलता समझते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में ऐसा नहीं लगता कि निकट भविष्य में सुहार्तो की सरकार को किसी प्रकार के खतरे का सामना करना पड़ेगा। अगर कोई बदलाव आएगा तो अधिक से अधिक यही होगा कि सुहार्तो के स्थान पर कोई अन्य सैनिक अधिकारी नेतृत्व संभालेगा। नया आने वाला व्यक्ति जनता के प्रति और राजनीतिक बदलाव के लोकप्रिय मांग के प्रति सहानुभूति भी रख सकता है या सुहार्तो से भी कड़ा रुख अपना सकता है। यह सब कुछ परिवर्तन के तरीके पर निर्भर करेगा। अगर नेतृत्व परिवर्तन शांतिपूर्ण ढंग से हुआ तो सुधार और जनता की भागीदार की आशा बलवती होगी। पर अगर यह परिवर्तन हिंसात्मक हुआ, तो दोनों में से कोई आशापूर्ण नहीं होगी।

17.7 शब्दावली

क्रांति : उग्र विद्रोह : पुराने सामाजिक आर्थिक ढांचे के स्थान पर नये और प्रगतिशील ढांचे की स्थापना।

अधिनायकवाद : सभी प्रकार के अधिकारों का केंद्रीकरण।

कृषक समुदाय : कृषि में संलग्न सबसे पुरानी सामाजिक इकाई।

अंतर्राष्ट्रवाद : राष्ट्रीयता या प्रजाति के बंधन से ऊपर उठते हुए सभी लोगों की समानता की बात करना।

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

क्राउच, हेराल्ड, 1976, *आर्मी एंड पालिटिक्स इन इंडोनेशिया* (इथाका, कार्नेल युनिवर्सिटी प्रेस)

डैहम, बर्नहार्ड, 1968, *हिस्ट्री ऑफ इंडोनेशिया इन द टेंवन्टीथ सेंचुरी* (लंदन)

फैथ, हरवर्ट, 1968, *डिक्लाइन ऑफ कान्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेसी इन इंडोनेशिया* (इथाका)

घोषाल, बी., 1980, *रोल ऑफ मिलिट्री इन इंडोनेशिया* (मद्रास, सेंटर फार साउथ ईस्ट एशियन स्टडीज)

घोषाल, बालादास, *इंडोनेशियन पालिटिक्स,* 1955-59, *द एमरजेंस ऑफ गाइडेड डेमोक्रेसी* (कलकत्ता, के.पी. बागची एंड कं.)

जेनीकिन्स, डेविड, 1984, *सुहार्तो जेनरलस* (इथाका, कोरहेल युनिवर्सिटी प्रेस)

लेफर माइकल, 1983, *इंडोनेशियास फारेन पालिसी* (लंदन, ज्योर्ज एलेन और उनर्विन)

मूडी नवाज, 1987, *इंडोनेशिया अंडर सुहार्तो* (नयी दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्श)

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) वह राष्ट्रवाद, जिसके तहत लोगों ने एकजुट होकर विदेशियों को मार भगाया था।
   ii) स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान या बाद कोई ठोस राजनीतिक दल जन्म नहीं ले सका।
   iii) स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक दलों में आपसी मुठभेड़ बढ़ी।
   iv) चुनाव करने में आम तौर पर देर।
   v) कई राजनीतिक दल।
   vi) सत्ता के लिए दलों द्वारा संघर्ष।

2) i) मंत्रिमंडलों का गठजोड़ स्वरूप।
   ii) दलों के बीच में कोई एकता नहीं।
   iii) दलों ने गैर संसदीय शक्तियों में अपनी स्वार्थ दिखलाई, जनता में नहीं।
   iv) राजनीति में सेना का हस्तक्षेप।
   v) राजनीतिक दलों पर सुकर्नो का अविश्वास।

3) i) अभी तक चुनाव प्रजातंत्र के लिए आवश्यक था।
   ii) चुनाव दलों और समाज का शोधन करता है।
   iii) चुनाव से राजनीतिज्ञ ताकतों का ध्रुवीकरण होता है।
   iv) चुनाव राज्य की एकबद्धता को जाहिर करता है।
   v) चुनाव से सरकार को बैधता मिलती है।

बोध प्रश्न 2

1) निर्देशात्मक जनतंत्र वस्तुतः मजदूरों, किसानों, विद्वानों, राष्ट्रीय व्यापारियों, सैन्य बलों आदि पेशेवर समुदायों का एक समझौता था। यह समझौता राष्ट्रीय परिषद के रूप में सामने आया। सुकर्नो इस परिषद का अध्यक्ष था। मंत्रिमंडल आपसी सहायता मंत्रिमंडल के नाम से जाना जाता था जिसमें साम्यवादियों सहित सभी दल के लोग थे। निर्देशात्मक जनतंत्र ने राजनीतिक स्वतंत्रता, बोलने की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता और लोगों के कई अन्य मूलभूत अधिकारों पर प्रतिबंध लगा दिया।

2) i) निर्देशात्मक जनतंत्र ने राष्ट्रपति सेना और साम्यवादियों (पी के आई) को मजबूत किया।
   ii) इन संस्थाओं के उद्देश्यों में कोई समानता नहीं थी। ये सभी सत्ता प्राप्त करने में उत्सुक थे।

3) निर्देशात्मक जनतंत्र ने संसदीय जनतंत्र की खामियों को दूर करने का प्रयत्न किया, पर इसमें उसे असफलता हाथ लगी। इसके स्थान पर कई खामियां पैदा हो गयीं।

4) इंडोनेशियाई राजनीति में सेना प्रमुख शक्ति के रूप में उभरी।

5) पी के आई को सत्ता का स्वाद मिल गया था।

बोध प्रश्न 3

1) i) अधिनायकवादी शासन की स्थापना।
   ii) वामपंथी और जुझारू ताकतों का खात्मा।
   iii) सेना में राजनीतिज्ञों को उनकी भूमिका निभाने से रोका।
   iv) नागरिक राजनीतिक संस्थाओं का उदय मुश्किल हो गया।

2) i) राजनीतिक स्थिरता।
   ii) आर्थिक स्थिरता।
   iii) गरीब अमीर के बीच खाई बढ़ी।
   iv) विरोधी स्वर को रोकने का उपाय।

इकाई 18 थाईलैण्ड

संरचना

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 थाईलैण्ड : भूगोल और लोग
18.3 थाईलैण्ड औपनिवेश शासन से कैसे बचा
18.3.1 राजतंत्र
18.3.2 संवैधानिक राजतंत्र
18.4 सैन्य नेतृत्व
18.5 जनतांत्रिक प्रयोग
18.5.1 धर्म और राजनीति
18.6 आर्थिक नीति
18.7 थाई विदेश नीति
18.8 सारांश
18.9 प्रमुख शब्द
18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

थाईलैण्ड में जनतांत्रिक प्रक्रिया की स्थापना एक गंभीर समस्या रही है। यद्यपि जनता ने जनतांत्रिक व्यवस्था में अपना विश्वास व्यक्त किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझने में समर्थ होंगे —

- थाई जनतंत्र के इतिहास की खोज और उसके विभिन्न राजनैतिक विकास,
- इसके सैन्य नेतृत्व की विवेचना,
- इसके विभिन्न राजनैतिक प्रयोगों की समझ,
- थाईलैण्ड के आर्थिक विकास की समझ, तथा
- इसकी विदेश नीति का मूल्यांकन।

18.1 प्रस्तावना

थाईलैण्ड का साम्राज्य इन्डोचाइना (वियतनाम, कम्बोडिया और लाओस) प्रायद्वीप के मध्य स्थित है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्व की सीमा पर लाओस है। इसके पूर्व में कंबोडिया में पश्चिम और उत्तर पश्चिम में बर्मा और दक्षिण में मलेशिया है। 1939 तक इस देश को सियाम के नाम से जाना जाता था। थाईलैण्ड का क्षेत्र 51,430 वर्ग मीटर है। जो कि फ्रांस से थोड़ा-सा ज्यादा है। यह देश भौगोलिक दृष्टिकोण से चार भागों में विभक्त है :

उत्तर — उत्तर-पूर्व —केन्द्र वेसिंग तथा दक्षिणी प्रायद्वीप।

प्रत्येक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था उसके उपलब्ध स्रोतों के आधार पर विकसित हुई है। 1969 के प्राक्कलन के अनुसार थाईलैण्ड की जनसंख्या 340 लाख से भी अधिक थी। थाईलैण्ड एक विभिन्नतापूर्ण समाज वाला राष्ट्र है। जिसमें लगभग 30 उपराष्ट्रीयताएं सम्मिलित हैं। इसमें थाई (सियामीस) और लाओस लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या का योगदान करते हैं।

थाई भाषा की उत्पत्ति चीनी और तिब्बती भाषाओं के समूह से हुई है। यह थाईलैंड की राष्ट्रभाषा है। राष्ट्र के जीवन में बौद्ध धर्म ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसको संपूर्ण जनसंख्या का लगभग 90 प्रतिशत मानता है। यही सरकारी धर्म भी है। थाईलैण्ड ने कभी भी औपनिवेशिक शासन का अनुभव नहीं किया है। फलस्वरूप वह प्राचीन पद्धति पर आधारित नागरिक व सैन्य संबंधों की पद्धतियों का अनुसरण नहीं करता है। 1932 के सैन्य विद्रोह के बाद राजतंत्र का अंत हुआ और सेना ने थाई राजनीति में अपनी प्रमुखता स्थापित की। युक्ति संगत भागीदारी के आधार पर इसने अपने

प्रभाव को प्रमुख सरकारी संस्थाओं पर बढ़ाया इसे पारंपरिक नेतृत्व के द्वारा आपात स्थिति में प्रदान की गयी। प्रीदीफनो मियांग एकमात्र नागरिक नेता थे जिसको कि कुछ जनसमर्थन प्राप्त था और जिन्होंने सैन्य विद्रोह में (1932 के) एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी उनको कम्युनिस्ट माना गया और प्रबुद्ध सैनिक वर्ग ने थाई रणनीति में जड़ जमाने की अनुमति नहीं दी। दूसरे नागरिक नेताओं में उस तरह की करिश्माई शक्ति नहीं थी। इसलिए सेना को देश की राजनीति में प्रवेश करना पड़ा। लेकिन सैन्य नेतृत्व उन नियमों के प्रतिपादन में जो कि संस्थाओं को विकसित करने में परिवर्तन कर सके, असफल रहा। परिणामस्वरूप पिछले 60 सालों में सैनिक शासकों ने जो कि सैन्य विद्रोह तथा प्रति विद्रोह द्वारा सत्ता प्राप्त की थी, थाई राजनीतिक प्रणाली को अति अस्थिर बना दिया। इस बीच नागरिक सरकार स्थापित करने तथा जनतांत्रिक संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के प्रयास किए गए। किन्तु वे सैन्य विद्रोह और राजनीतिक दांव-पेंच के कारण राजा का सम्मान, राष्ट्र और धर्म की मर्यादा को सुरक्षित रखने में असमर्थ रहे। ये तीनों थाई राजनीति के भावनात्मक पहलू थे। बाद की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि समय समय पर सैन्य विद्रोह थाईलैण्ड की प्राचीन काल की राजनीति के हिस्से रहे हैं, किन्तु उनका आधुनिक समय में कोई स्थान नहीं है। बैंकाक में विकास करता हुआ मध्यमवर्ग विशेष रूप से इस बात पर बल देता है कि वे अपना भविष्य खुद बनायेंगे। "मोबाइल फोन माब" मध्यम-वर्गीय प्रदर्शनकारी "रैलबो कोबिशन" में विभिन्न स्तर पर सम्मिलित हुए और इस बात पर विशेष रूप से बल दिया कि उनकी राजनीति अंतिम रूप से सेना के अत्यधिक हस्तक्षेप से स्वतंत्र होनी चाहिए। जबकि चुआन लीकपाई की थाईलैण्ड के प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति के साथ राष्ट्रीय चुनाव का होना इस बात का प्रतीक है कि जनतांत्रिक ताकतों की विजय हुई। यह जीत मुश्किल से एक नये राजनैतिक काल का उदय समझी जा सकती है। यद्यपि जनतांत्रिक ताकतों के समर्थन जिनमें "चुआन की की डेमोक्रेटिक पार्टी", "न्यू एसपीरेशद पार्टी" (एन ए पी), "पलंग धर्मा पार्टी" और "सालिडेरिटी" सम्मिलित थी, ने चुनाव जीता किन्तु बहुत क्षीण अंतर 5 सीट से ही। जिनके परिणामस्वरूप यह कम बहुमत वाली कमजोर सरकार अपनी सरकार को स्थिरता प्रदान करने के लिए अनिच्छा से सेना समर्थक "सोशल एक्शन पार्टी" (एस ए पी) को शासन में भागीदारी दी। थाईलैण्ड राजनैतिक अस्थिरता का सामना करने के लिए बाध्य था। जिसका मुख्य कारण साझा सरकार में तालमेल का अभाव, कटुता और लाभ के संघर्ष थे। क्योंकि संयुक्त सरकार के भागीदार अपना जनाधार बढ़ाना चाहते थे। राजनैतिक भ्रष्टाचार एक दूसरी समस्या थी जिससे कि चुआन सरकार कमजोर बनी और इसने अल्पकालिक व्यक्तिगत और सामूहिक स्वार्थ को पनपाया। नयी सरकार के सेना से संबंध भी काफी मायने रखते हैं। 1991 में चटीचायी चुनहावेन प्रशासन का विप्लव द्वारा अंत हुआ। इसके पीछे प्रमुख कारण था सरकार व सेना के बीच आपसी विश्वास की कमी। इस बदले हुए वातावरण में सैनिक प्रतिक्रिया ने जनता में व्याप्त प्रजातांत्रिक जागरूकता को कमजोर किया। मई, 1992 में सेना ने जनतंत्र समर्थक प्रदर्शनों का दमन किया जिसने जनता में जागरूकता बढ़ाने का काम किया। बहुत से थाइयों ने, विशेषकर शहरी मध्यम वर्ग ने अब इस बात की मांग की कि जनता से संबंध रखने वाली सही मायने में जनप्रतिनिधि सरकार बननी चाहिए न कि सेना की एक छोटी-सी टुकड़ी की जिसे सेना का एक छोटा-सा अभिजात्य वर्ग नियंत्रित करता हो। हाल के वर्षों में आर्थिक स्थिति के नाटकीय परिवर्तनों ने गैर-नौकरशाही ताकतों को मजबूत बनाया जिसमें व्यापारिक वर्ग संचार माध्यम व अन्य व्यावसायिक समूह सम्मिलित हैं। ये प्रभावशाली समूह एक चुनी हुई, सक्षम और ईमानदार सरकार चाहते थे जिससे कि अर्थव्यवस्था को सही दिशा में आगे बढ़ाया जा सके। 1978-1991 के मध्य थाईलैण्ड ने कम्बोडियाई विद्रोहियों को सामरिक समर्थन दिया जिससे बाध्य होकर वियतनाम को कम्बोडिया से हटना पड़ा।

18.2 थाईलैण्ड : भूगोल और लोग

थाईलैण्ड जिसको पहले सिआम के नाम से जाना जाता था सामरिक दृष्टि से दक्षिण पूर्व एशिया के प्रमुख स्थल के मध्य में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 513,115 कि.मी. है। इसके सामरिक महत्व के कारण ही जापान ने सर्वप्रथम इस पर नियंत्रण किया फिर शेष दक्षिण-पूर्व एशिया की तरफ बढ़ा। वास्तव में (1942-45) के दौरान जापान ने थाईलैण्ड को एक कमानीदार पट्टी की भांति बर्मा, जावा, मलाया व सिंगापुर पर आक्रमण के लिए प्रयोग किया। फिर यह अपनी स्थिति के महत्व के कारण "दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन" का मुख्यालय बना। थाईलैण्ड के उडोन थानी, नाखोन फानोम, उबोन नाखोन रचसिना, ताखिल और उ. टपाओ का वायुसेना के आधार के रूप में तथा सत्ताहिप का जल सेना के आधार के रूप में अमेरिका ने इस क्षेत्र में साम्यवाद को रोकने के लिए प्रयुक्त किया। थाईलैण्ड ने एक बार पुनः अपनी सामरिक भूमिका का प्रयोग (1978-91) वियतनाम को कंबोडिया में ठहरने से रोकने में किया। थाईलैण्ड ने कम्बोडियाई विद्रोहियों को समर्थन दिया तथा वियतनाम को कम्बोडिया से हटाने में एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ।

18.3 थाईलैण्ड औपनिवेशिक शासन से कैसे बचा

थाईलैण्ड दक्षिण पूर्व एशिया में एक मात्र देश है जो औपनिवेशिक शासन से बचा है। थाईलैण्ड का प्रबुद्ध राजतंत्र देश की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए पूर्णतया जिम्मेदार है। राजा मोंगकुट (1851-68) तथा चुलालों गकोर्न (1868-1910) के राजनयिक व्यवहार और विदेशी संबंध अति यथार्थवादी थे। इस क्षेत्र की सुरक्षा वातावरण के बारे में थाई राजाओं की समझ बहुत ही स्पष्ट थी तथा वे थाईलैण्ड में फ्रांसीसी व अंग्रेजी औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं को आपस में भिड़ाने

में समर्थ थे। वे शालीन थे व समाधान के लिए आवश्यक अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार रखते थे। पश्चिमी दूतों से उनका व्यवहार नम्रतापूर्ण होता था और वे उनको काफी इज्जत भी देते थे और यथासंभव उनकी मांगों के सुविधाजनक ढंग से समन्वयन का प्रयास भी करते थे। ब्रितानी दूत सर जान बावरिंग थाई राजा मोंगकुट के व्यवहार तथा सत्कार से बहुत ही खुश थे। उन्होंने तो 1855 के अभियान के वर्णन में **द किंगडम एण्ड पीपुल आफ सिआम** पर तो एक प्रसिद्ध स्मृति ही लिख डाली। वह ब्रिटेन में थाईलैण्ड के हितों के महान वकील थे।

थाईलैण्ड ने विदेश नीति संचालन का एक प्रभावशाली तरीका अपनाया। इसने पश्चिमी शक्तियों के लिए सुविधाजनक नीतियों को बनाने के लिए पश्चिमी सलाहकारों को नियुक्त किया। इस प्रकार ब्रिटेन से संबंधित नीति के लिए एक ब्रितानी सलाहकार, फ्रांस के लिए फ्रांसीसी सलाहकार तथा हालैंड से वार्तालाप के लिए डच था। थाई राजा चुलालोंगकोर्न ने चतुराई से कुछ पश्चिमी राजाओं के साथ आत्मीय संबंध बनाए ताकि वे पश्चिमी शक्तियों की राजनीति व समाज को भलीभांति समझ सकें तथा उनके साथ सहयोग के क्षेत्रों की स्पष्ट पहचान कर सकें। उन्होंने अपने कुछ पुत्रों को उस समय के कुछ प्रसिद्ध यूरोप के राजाओं के संरक्षण में शिक्षा के लिए भेजा। इसने भी, राजा की एक स्वदेशी टीम, जो कि राजनयिक संबंधों को कुशलता व शालीनता से बना सकें, बनाने में सहायता की। वास्तव में राजा चुलालोंगकोर्न ने पूरा प्रयास किया कि उन्हें अंतर्राष्ट्रीय मान्यता या पहचान मिल सके।

थाई विदेशनीति के उचित आचरण से, फ्रांस व ब्रिटेन के बीच में एक ऐसी समझ विकसित हुई जिसके परिणामस्वरूप ब्रितानी बर्मा और फ्रांसीसी इंडो-चीन के बीच थाईलैण्ड एक तटस्थ राज्य के रूप में रखा गया। ऐतिहासिक तथ्य इस बात की सत्यता को प्रमाणित करते हैं कि 1979 में लन्दन में फ्रांसीसी राजदूत एम. वाडिंगटन ने तत्कालीन ब्रितानी प्रधानमंत्री से इस सुझाव के साथ मुलाकात की कि यह दोनों साम्राज्यों के लिए लाभदायक होगा कि थाईलैण्ड को मध्यवर्ती राज्य के रूप में सम्मानित किया जाए। इसके लिए ब्रितानी प्रधानमंत्री का दृष्टिकोण सकारात्मक था। जिसके परिणामस्वरूप दोनों ने अपनी रणनीति थाईलैण्ड को एक तटस्थ राज्य मानकर बनानी शुरू की।

इससे इस बात का आशय कदापि नहीं निकालना चाहिए कि दोनों देशों ने थाईलैण्ड की संप्रभुता के लिए कोई कठिनाई नहीं पैदा की। 1893 में फ्रांस ने जबर्दस्ती मेनाम चाओ फाया आकर लाओस के ऊपर अपना दावा प्रस्तुत किया। फ्रांस थाईलैण्ड और गणराज्य इण्डोचाइना के बीच एक प्राकृतिक सीमा रेखा चाहता था। इसके लिए उसने मेकांग नदी के बायें के क्षेत्र पर अपना दावा प्रस्तुत किया। थाई शासकों ने कुछ आरक्षण के साथ फ्रांसीसी दबाव मान लिया तथा उस क्षेत्र को उनके लिए खाली कर दिया जिसे आज हम लाओस के नाम से जानते हैं। तत्पश्चात् फ्रांस ने थाई-कम्बोडिया सीमा पर भी प्राकृतिक सीमा की बात की। इसके लिए उसने कार्डामोन पहाड़ी श्रृंखला का चयन किया। इस प्रकार फ्रांस थाईलैण्ड पर क्रमशः दबाव डालता रहा कि वह उसके दावे को बट्टाभबंग, सीमरिप और सिसोफेन क्षेत्र में मान ले। थाईलैण्ड फ्रांस से अपनी युद्ध नीति की कमजोरियों को जानता था इसलिए बिना किसी विवाद के उसने 1907 में इन क्षेत्रों को फ्रांस को दे दिया। इस तरह के घटनाक्रम से ब्रितानी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। उसने भी अपना उपनिवेश क्षेत्र मलाया की सीमा तक बढ़ाने की इच्छा दिखायी। 1909 में ब्रितानियों ने भी अपना दावा केदाह, पेर्लिस, केलांटन और लेंगानू पेश किया जिसको थाईलैण्ड ने मान भी लिया। पश्चिमी शक्तियों के उत्तेजनात्मक रुख के बाद भी थाईलैण्ड अपना संतुलन बनाए रखा।

18.3.1 राजतंत्र

जब थाइयों ने खमेर गवर्नर को सुखोथाई में पराजित किया और राजा इन्द्रदित्य (1253 ई.) के नेतृत्व में उन्होंने थाई साम्राज्य की नींव डाली। इन्द्रदित्य का उत्तराधिकारी रामखम्भेग महान (1270-1327) एक महान योद्धा और शासक था। उसने विभिन्न छोटी-छोटी रियासतों के एकत्र करने के लिए कई लड़ाइयां लड़ी। उसका अधिकार क्षेत्र विस्तृत हुआ उत्तरी मेंकंग नदी दक्षिणी मेलायन पनेंसुला तक। पश्चिम में बर्मा से पूर्व में कम्बोडिया तक। उसने चीन में हान सम्राट के साथ कर देने वाले संबंध स्थापित किये और उससे समर्थन प्राप्त किया। ऐसा खामेट और अनिर्मित शासकों को इस क्षेत्र में नीचा दिखाने के लिए किया। थाईलैण्ड रामखम्भेग के कुशल नेतृत्व में दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्र में सबसे सशक्त साम्राज्य के रूप में उभरा। इसके उत्तराधिकारी भी शक्तिशाली थे जिन्होंने विभिन्न लड़ाइयां वर्गीस, खमेर, वियतनामी शासकों से लड़ी।

19वीं शताब्दी में दक्षिण, पूर्वी एशिया क्षेत्र की सुरक्षा और जैविक, राजनीतिक वातावरण असंतुलित हुआ। उस समय यूरोपीय देशों में साम्राज्य विस्तार की होड़ लगी थी और विभिन्न पूर्वी एशियाई राज्य इन उपनिवेशवादी शासकों के आगे झुकने लगे थे। फ्रांसीसी साम्राज्य इण्डोचाइना में घुसपैठ कर चुका था। ग्रेट ब्रिटेन बर्मा में अपना आधिपत्य बनाकर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर रहा था। ये उपनिवेशवादी ताकतें अपना ध्यान थाईलैण्ड पर लगाये थीं। इस दशा में थाई शासकों ने एक अत्यधिक समझदारी दर्शायी और ऐसे अवसरों की तलाश करते रहे जिससे कि उपनिवेशवादी ताकतों से दूर रह सकें।

थाईलैण्ड के राजा ने पश्चिमी शक्तियों को अपने विरुद्ध गनवोट कूटनीति से रोकने में एक महत्वपूर्ण नेतृत्व प्रदान किया। राजा माउंगकुट ने सुधार गृह नीतियां प्रस्तावित की। पश्चिमी दुनिया के लिए एक उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया, उन्होंने चीन को उपहार देना बंद किया और ग्रेट ब्रिटेन को 1851 के बाद के कई वर्षों तक विशेष महत्व देना शुरू किया। 1855 में उन्होंने एक मैत्री संधि और व्यापार संधि पर हस्ताक्षर किया और कुछ व्यापारिक लाभ भी ग्रेट ब्रिटेन को सौंपा।

उन्होंने थाईलैण्ड में निवासी ब्रितानी लोगों को कुछ अतिरिक्त सीमावर्ती अधिकार उपहारस्वरूप दिया। ऐसी नीति ब्रितानियों को पसंद आयी क्योंकि उनकी प्रमुख रुचि व्यापार में ही थी। इस प्रकार से ब्रिटेन ने थाईलैण्ड के साथ मैत्री बनायी और कभी भी इसकी संप्रभुता को चुनौती नहीं दी। यद्यपि ब्रिटेन इस स्थिति में था कि वह थाईलैण्ड के लिए मुसीबतें पैदा कर सकता था। प्रथम यह कि उसका मलाया, बर्मा और भारतीय प्रायद्वीपों पर नियंत्रण था और द्वितीय इस क्षेत्र में इसकी जैविक राजनैतिक बाध्यता थी फ्रांसीसी विस्तार रोकने की। यद्यपि इसने अपने को ऐसा करने से दूर रखा। ब्रिटेन और थाईलैण्ड की मित्रता का अभ्युदय एक तरफ था। दूसरी तरफ फ्रांस का इण्डोचाइना राज्यों का नियंत्रण था। मंगकुट का उत्तराधिकारी दुलालांग कोर्न महान था। जो कि अपनी प्रजा में बहुत ही प्रिय था। अपने पूर्वजों की तुलना में वह बहुत ही उदार और चतुर था । उसने यूरोपीय राजाओं के साथ (प्रायद्वीपों के) व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने के अवसरों की तलाश इस दृष्टिकोण से की कि थाईलैण्ड का राष्ट्रीय हित बढ़ सके। छुलालांगकोर्न के उत्तराधिकारी घरेलू परिस्थितियों से निपटने में उतने सक्षम और दृढ़ नहीं थे। राजा बजीरालोंगकोर्न (1910-1925) राजा प्रजाधिपोक (1925-1935) ग्रेट ब्रिटेन में शिक्षित और दक्ष हुए थे। जिसके कारण सकदीना वर्ग का एक अभिजात्य वर्ग नाराज था। राजा प्रजाधिपोक के चरित्र के प्रति भी गलतफहमियां थी । ऐसी स्थिति में सेना और नागरिकों के एक समूह ने शीघ्रता से एक सैन्य विद्रोह किया जिसका नेतृत्व प्रीदीफनोमियोग और सेनाध्यक्ष फिबून सोनग्रोम ने किया और कहा गया कि पीपुल्स पार्टी ने संपूर्ण राजतंत्र को उखाड़ फेंका।

सैन्य विद्रोह के संचालकों ने 24 जून, 1932 को राजधानी को चारों ओर से घेर लिया और राजा प्रजाधिपोक को चेतावनी दी। सैन्य विद्रोह का नेतृत्व करने वालों ने यह मांग की कि राजा या तो संवैधानिक प्रमुख की स्थिति स्वीकार करे, त्यागपत्र दे या खूनखराबा देखे। इस प्रकार राजा को संगीन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उसने खूनखराबा टालना चाहा और संवैधानिक राजतंत्र पर सहमति व्यक्त की।

18.3.2 संवैधानिक राजतंत्र

थाईलैण्ड में 1932 से संवैधानिक राजतंत्र है। थाई नेताओं का प्रयास था कि वे ब्रितानी पद्धति पर अपना राजनैतिक ढांचा तैयार करें। लेकिन थाई राजनीति ब्रितानी पद्धति से एकदम भिन्न है। यद्यपि संवैधानिक राजतंत्र की व्यवस्था उसी प्रकार से है किन्तु थाईलैण्ड में संसद की संप्रभुता नहीं है।

कई संविधानों का 1932 के बाद से निर्माण किया गया इस मंशा से कि यह बदलते हुए राजनैतिक आवश्यकता की पूर्ति कर सके। किंतु क्रमशः एक के बाद दूसरे को निरस्त किया जाता रहा। किंतु एक बात सबसे सामान्य है कि संविधानों में राजतंत्र को एक आदरणीय संस्था माना है। राजा राज्य का एक औपचारिक प्रमुख है और सेनापति सैन्य बलों का। तकनीकी रूप से संप्रभुता जनता में निहित है। राजा अपनी शक्तियों का प्रयोग संविधान के नियमों के अनुरूप ही कर सकता है। राजा आदरणीय है और उसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता उन्हें दोषी या सजा नहीं दी जा सकती है। राजा देश का नेतृत्व औपचारिक अवसर पर ही करता है। वह थाई राष्ट्रवाद का प्रतीक है और थाई जनता अब भी उसकी भक्त है।

वर्तमान राजा भूमि बोल आदुल देन बहुत ही प्रभावी है। उन्होंने दलों के नेताओं की सहायता, उचित सलाह देकर संकट और तनाव दूर करके की है। राजा ने 1973 के अक्टूबर में छात्र क्रांति के समय फील्ड मार्शल थानोंम किट्टी कार्चोन को त्यागपत्र का सुझाव दिया जिससे तनाव दूर हुआ और जनतांत्रिक प्रयोगों का द्वार खुला। राजा ने एक बार पुनः 1992 में अपने महान राजनयिक क्षमता का परिचय दिया जब उन्होंने सेनानायक सुचिन्द्रा क्राप्रेचुन को यह सलाह दी कि वे सत्ता को अपने उत्तराधिकारी को सौंप दें। क्योंकि उनके नेतृत्व में जन आंदोलन उभर रहा था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।
ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1. थाई स्वतंत्रता को कायम रखने वाली शासक वर्ग की विशिष्ट राजनयिक चालों की विस्तार से व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2. थाईलैण्ड में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना की जिम्मेदार राजनीतिक परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

18.4 सैन्य नेतृत्व

सैन्य नेतृत्व की थाईलैण्ड की परंपरा रही है और थाई राजनीति में संप्रभु राजतंत्र की समाप्ति के बाद सेना ने अपना वर्चस्व स्थापित किया है। 1932 के सैन्य विद्रोह के बाद इसने बहुत से महत्वपूर्ण सरकारी संस्थाओं पर अपने प्रभाव का विस्तार किया है। अपनी उपस्थिति बनाए रखने में न्यायोचित ढंग से बल दिया है। नागरिक नेता प्रीदीफानोमियांग को एक कम्युनिस्ट के रूप में प्रस्तुत किया जिनको कुछ जनसमर्थन प्राप्त था। यद्यपि प्रीदी देश के प्रधानमंत्री हुए किंतु नागरिक प्रशासन की आधारशिला रखने में असफल रहे। जब उन्होंने एक आदर्शवादी प्रस्ताव देश की सामाजिक, आर्थिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन का सुझाव रखा। तो इसे बहुत से राजनैतिक प्रबुद्धों ने नापसंद किया और विरोध भी किया। उनका प्रस्ताव था संपूर्ण कृषियोग्य भूमि के राष्ट्रीयकरण का जिससे कि उत्पादन का बेहतर वितरण हो सके। जबकि राष्ट्रीयकरण के समय तुरंत क्षतिपूर्ति का कोई प्रस्ताव नहीं रखा। भूमि अधिग्रहण बांड के जरिए होना था न कि नकद के जरिए। उन्होंने एक जन वितरण प्रणाली की वकालत की, जो कि चावल और अन्य वस्तुओं के लिए थी इसका उद्देश्य व्यापार में दलाली को रोकने का था जिसके कारण दोस्तों की तुलना में शत्रु अधिक बने। उनको उस समय व्याप्त राजनैतिक व्यवस्था के शत्रु के रूप में प्रस्तुत किया गया। वास्तव में उनके राजनैतिक जीवन का पतन 1946 में हुआ, जब राजा आनन्द महिडोल की संदेहास्पद परिस्थितियों में हत्या की गयी। प्रीदी को इस घटना से जोड़ा गया। परिस्थितियां इतनी खराब हो गयी कि प्रीदी को देश छोड़ना पड़ा और फ्रांस में देश निष्कासित जीवन जीना पड़ा। इस प्रकार से 1932 सैन्य क्रांति का जननेता हटा दिया गया। अन्य जननेता आवश्यक करिश्मा नहीं रखते थे जिसके परिणामस्वरूप सेना ने थाई राजनीति में प्रवेश किया। पिछले 60 वर्षों से थाईलैण्ड में सैनिक शासकों की शृंखला लग गयी है। सेनानायक "फ्राया पाहोल" थाईलैण्ड पर 1933-38 तक, फील्ड मार्शल फीबोन ने 1938-44 तक, और पुनः 1947-57 तक फील्ड मार्शल सरित थानरट, 1957-63 तक, फील्ड मार्शल थानम किकिकाचोंन ने 1963 से 1973 तक, जल सेनाध्यक्ष एडमिरल संगद कोलोरियू 1976-77 तक, सेनाध्यक्ष क्रींगसा चोमनन 1977-80 तक, सेनाध्यक्ष प्रेमतिलसुआन-द 1980-88 तक, और सेनाध्यक्ष जनरल चाटचाई चुनहवान ने 1988-91 तक शासन किया। अंतिम दो सैन्य नेतृत्व जनतांत्रिक चुनाव माध्यम से शासन में आये लेकिन वर्तमान प्रधानमंत्री जनरल सुनथोर्न कोंगसोमपोंग ने 1991 में एक सैनिक विद्रोह के बाद सत्ता ग्रहण की।

यहां इस बात का उल्लेख अतिआवश्यक होगा कि फीबुन सोनगाम की भूमिका ने यह सुनिश्चित कर दिया कि युद्ध परक नीति को ध्यान में रखते हुए, थाईलैण्ड में विकास और स्थिरता लाने के लिए सैन्य नेतृत्व अतिआवश्यक है। फीबून सोनग्राम ने थाई राजनीति में 1932-57 तक एक अतिप्रभावी भूमिका निभाई और थाई राजनीतिक प्रणाली में सेना की प्रमुखता का एक दृढ़ आधार रखा। इसके अतिरिक्त प्रीदी 1932 के सैन्य विद्रोह का प्रमुख नेता था। शासन में आने से पहले वह अपने देश में जनतंत्र का समर्थक था किंतु जब वह प्रधानमंत्री बना तो उसने इसके कुछ अंश को ही समर्थन दिया। वहां पर एक सदन वाली कार्य पालिका थी और उसके पूर्ण शासनकाल में चुने हुए प्रतिनिधियों का प्रावधान था किंतु सरकार की सारी शक्तियां केन्द्र के हाथों में केन्द्रित थी, उसकी विदेश नीति लचीली थी। दूसरे विश्वयुद्ध के समय फीबून जापान का एक घनिष्ठ सहयोगी था किंतु जब वह पुनः 1947 में सत्ता में आया तो उसने अमेरिका के साथ सहयोग की नीति अपनायी और जापान से मित्रता का कारण 1907 में फ्रांस से तथा 1909 में ब्रिटेन से खोयी हुई सीमा वापसी का था। इन सब चीजों के कारण जनता बहुत ही प्रसन्न थी तथा उसको जनसमर्थन प्राप्त हुआ।

फीबून ने इस बात का प्रचार किया कि एशिया एशियाइयों के लिए है और वास्तव में उसने पश्चिमी उपनिवेशवादी ताकतों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। उसने स्वतंत्र आंदोलनों को समर्थन दिया तथा अन्य लोगों के अलावा सुभाषचन्द्र बोस की इंडियन नेशनल आर्मी को आधार दिया। किंतु 1947 के बाद उसकी प्राथमिकताएं बदलीं। उसे चीन से खतरे का और वियतनाम में कम्युनिस्ट मूवमेंट के अभ्युदय का आभास हुआ। इस प्रकार से इस विषय में कम्युनिस्टों के विरोध के दमन के लिए अमेरिका का सहयोगी बने फीबून ने गृह स्तर पर सामाजिक-आर्थिक सुधारों का प्रयास किया जिससे कि समुद्र पार के विदेशियों तथा चीन का थाई आर्थिक प्रणाली पर नियंत्रण कम हो सके। उसने सरकार के अंदर वस्त्र उद्योगों, पेपर, चीनी तम्बाकू, डिस्टलरी उद्योगों को चलाने का प्रयास किया जो कि सेना द्वारा चलाये जाते थे और इससे सेना की आर्थिक शक्ति सुदृढ़ हुई। उसने बड़ी बुद्धिमानी से व्यापार और उद्योगों में सेना की रुचि को प्रोत्साहन दिया। उसने हर आवश्यक सुविधाओं को बढ़ावा दिया तथा वहां सड़क निर्माण किया और संचार माध्यमों को विस्तृत किया। इस प्रकार सैन्य नेतृत्व के लिए जनता का समर्थन प्राप्त करने में समर्थ रहा। फीबून के उत्तराधिकारियों ने अपना आधार सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया, और वे प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक आर्थिक संरचना में अपनी उपस्थिति स्थापित करने में सक्षम रहे। जिसके परिणामस्वरूप सेना का अभ्युदय एक प्रमुख सामाजिक परिवर्तन के कारक और थाईलैण्ड की राजनीति

के संचालक का रहा। वे प्रमुख राजनैतिक दलों के नेता थे जिनको कि जनतांत्रिक प्रयोग में भी किनारे नहीं किया जा सकता था। थाई राजनीति का एक मूल्यांकन इस बात को सुझाता है कि थाईलैण्ड में कोई भी स्थिर सरकार सैन्य अभिजात्य वर्ग के समर्थन और भागीदारी के बिना संभव नहीं है। थाई सेना का एक सिपाही यह सोचता है कि यह उसका पवित्र कर्तव्य है कि वह रक्षा ही न करे बल्कि नेतृत्व भी करे। उनका सामान्य जनता में सम्मान है और योग्य लोग थाईलैण्ड की सेना के लिए आकर्षित होते हैं क्योंकि यह पद लाभदायक और प्रतिष्ठित है। इधर जब से देश की राजनीति में "चुनाव लीक पाई" को शासन में आने का मौका मिला थाईलैण्ड की सेना की भूमिका में कुछ पराभव हुआ है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1. कृपया अपने उत्तर के लिए नीचे के स्थान का प्रयोग करें।
2. अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए उत्तर से करें।

1. थाई राजनीतिक प्रणाली में फीबून सेनाग्राम के नेतृत्व की भूमिका की व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

18.5 जनतांत्रिक प्रयोग

1932 के बाद समय-समय पर नागरिक सरकार की स्थापना तथा जनतांत्रिक संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के प्रयास किये गये। जनप्रिय मशहूर नागरिक नेता जैसे "प्रीदी कनोमियांग" (1930) सेनी प्रमोज (1940) कुकृत प्रमोज (1970) ने सैन्य तत्वों को दूर रखने का और जनतंत्र की स्थापना का प्रयास किया लेकिन वे असफल रहे। या तो वे खुद उस सैन्य विद्रोह द्वारा हटा दिये गये या राजनैतिक दावपेंच द्वारा वे राजा की प्रतिष्ठा बनाये रखने तथा धर्म और राष्ट्र की प्रतिष्ठा को बचाये रखने में असमर्थ रहे हैं। क्योंकि ये तीनों थाई राजनीति के भावनात्मक पहलू रहे हैं। 1973 अक्टूबर की छात्र क्रांति ने सेना की तानाशाही हटाई तथा नागरिक शासन स्थापित किया। डॉ. सन्याथम्माक प्रधानमंत्री बने जो कि बहुत जनप्रिय थे। उनके कुशल नेतृत्व में एक नया संविधान स्वीकारा गया और चुनाव हुए किंतु सरकार जो कि उसके बाद बनी स्थिर नहीं थी। जिसके परिणामस्वरूप अक्टूबर 1976 में सैन्य विद्रोह हुआ। सेना एक बार फिर शक्तिशाली रूप में उभरी पुनः नया संविधान 1978 में लागू किया गया किंतु फरवरी 1991 में नये सेना विद्रोहियों ने जिन्होंने सत्ता संभाली इसे रद्द किया। इस प्रकार से कुछ महत्वपूर्ण उल्लेखनीय प्रगति हुई। थाई राजनीति 1991-92 के दौरान जिसने सेना शक्ति को थाई राजनीति में कमजोर किया। जनतंत्र की संभावना की उचित समझ के लिए आवश्यक है कि वर्तमान में चल रहे विकास की प्रक्रियाओं का एक व्यवस्थित मूल्यांकन किया जाय। एक सैन्य टुकड़ी का नेतृत्व सत्ता के लिए जनरल सुनर्थन और जनरल सुचिन्दा कार्यायून द्वारा 23 फरवरी, 1991 में जनता द्वारा चुनी जनरल चटीचाई यूनहवान की सरकार को हटाने में किया। जिससे थाईलैण्ड में सेना की तानाशाही का पुनः उदय हुआ। सेना ने सैन्य विद्रोह के लिए वैधानिकता चाही यह बताते हुए कि चटीचाई चूनहवान सरकार भ्रष्ट थी। और वे जनतंत्र को बहाल रखने की और एक स्वच्छ सरकार देने की पूरी मंशा रखते हैं। उन्होंने एक जननेता को प्रेषित किया। आनन्द फन्यारचून इस बीच प्रधानमंत्री हुए और उन्होंने यह आश्वासन दिया कि जितना जल्दी हो सकेगा चुनाव होंगे।

इस प्रकार प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष चटीचाई को सत्ताच्युत किया गया क्योंकि उनके संबंध सेना के नेतृत्व से तनावपूर्ण थे। चटीचाई ने भूतपूर्व सेनाध्यक्ष जनरल अर्थित कमलांएक को रक्षा मंत्रालय में शामिल करने का प्रयास किया था। इसका उद्देश्य सेना के प्रभाव को राजनीति में निष्प्रभावी करने का था। जिस दिन जनरल आर्थित को शपथ ग्रहण करनी थी उसी संध्या सेना ने प्रवेश किया इस प्रकार रक्त रहित सैन्य विद्रोह द्वारा सत्ता हथिया ली। तत्पश्चात सेना ने चटीचाई और उसके सहयोगियों का प्रभाव समाप्त करने का प्रयास किया। इसने ए वी सी का गठन किया ताकि चटीचाई और उसके कबीना के सहयोगियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार का आरोप सिद्ध किये जा सके। ए वी सी ने जांच शुरू की तथा चटीचाई मंत्रिमंडल के कुछ मंत्रियों को विशेष रूप से संपन्न घोषित किया। किंतु 1991 के अंत तक एक विचित्र स्थिति ने जन्म लिया जिसके परिणामस्वरूप चटीचाई और उनके थाई दल को सेना की पक्षधर सरकार में भागीदारी दी गई। जब 22 मार्च, 1991 को चुनाव हुए तो इस सेना समर्थक संयुक्त सरकार को बहुमत मिला। इस चुनाव में बहुत से चटीचाई के तथाकथित भ्रष्ट मंत्रियों को विजय मिली। सेना के सहयोगी मंच पर जनरल चुचि-दात्रापयून जो कि एक अचयनित प्रधानमंत्री के रूप में उभरे, उसने ऐसे मंत्रियों का चयन किया जिनको कि ए वी सी ने भ्रष्ट घोषित किया था। इस घटना को जनता ने नापसंद किया इसने इस बात को उजागर किया कि भ्रष्टाचार के जो मूल आरोप जनरल चटीचाई

पर थे वो निराधार थे। इस प्रकार से जनता द्वारा चयनित वैधता जिसको सेना ने उपलब्ध किया था 1991 के विद्रोह के दौरान वह अस्तित्वहीन हो गयी इससे असंतोष की भावना जाग गयी और एक जन-आंदोलन सरकार के विरुद्ध छिड़ गया।

दूसरा प्रमुख कारण इस आंदोलन के पीछे था अचयनित प्रधानमंत्री के चुनाव का सबसे बड़ा भागीदार सेना समर्थक संयुक्त सरकार में समाखीथाम दल था जिसका नेतृत्व कर रहे थे नारोंगवोंगवान उनका नाम जैसे ही प्रधानमंत्री के लिए प्रस्तावित किया गया वे तुरंत ही विवादस्पद हो गये। जनतंत्र समर्थक दलों ने यह तर्क दिया कि वे भ्रष्ट हैं। 25 मार्च 1992 को "न्यू एसपीरेशन पार्टी", "पलंगधर्मी", एक्कापर्ण और डेमोक्रट्स" ने एक संयुक्त प्रेस वक्तव्य दिया और नारोंग सरकार की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी कि अमेरिकन स्टेट डिपार्टमेंट के इस अभियोग पर उनको "वीसा" 1991 के मध्य नहीं दिया गया था क्योंकि उन पर नशीले पदार्थों की तस्करी का संदेह था। इसको लेकर सरकार की वैधता को चुनौती दी उन्हीं दिनों अमेरिकन स्टेट डिपार्टमेंट की प्रवक्ता कु. मानग्रेट टूट विलर ने यह स्पष्ट किया कि उन्होंने जुलाई 1991 में नारोंग को वीसा नहीं दिया था क्योंकि उसके ऊपर अफीम की तस्करी का संदेह था। इस तरह के तथ्यों के परिणाम गंभीर रहे। इस कारण से सेना ने नारोंग से समर्थन वापस ले लिया। दूसरे प्रमुख प्रतिद्वंद्वी थे वायु सेनाध्यक्ष "सोनहून राहून" उनकी भी छवि स्वच्छ नहीं थी और विवादास्पद करमुक्त व्यापार समझौते के दोषी थे। वह जनता के आरोपों से भयभीत थे। उन्होंने अपने नाम के विचार के लिए मना किया। इन परिस्थितियों में जनरल सुचिन्दा, जिन्होंने, इस आधार पर चुनाव में भाग नहीं लिया था कि उनकी प्रधानमंत्री बनने की इच्छा नहीं है, का नाम प्रस्तावित किया गया। सेना समर्थक संयुक्त दल ने उनके नाम को सहमति दी और राजा ने उनकी नियुक्ति को अनुमोदित किया। सुचिन्दा ने प्रधानमंत्री पद को स्वीकार करते हुए कहा कि "मैं शपथ लेता हूं कि मैं राजा का वफादार रहूंगा और उनके व उनके परिवार को पूरी सुरक्षा प्रदान करूंगा।" अपने जीवन के रहते अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह ईमानदारी से राष्ट्र और जनहित में बिना किसी लाभ के (चाहें वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक) करने का शपथ भी लिया था।

किंतु उसके बाद के घटनाक्रम सुचिन्दा के लिए घातक रहे। 20 अप्रैल, 1992 को सदन और सर्वोच्च सैन्य मुख्यालय के समक्ष जैसे ही उन्होंने पदभार संभाला वह प्रदर्शनकारियों का निशाना बन गये। प्रदर्शनकारियों की संख्या बढ़ती गयी और विरोध ने गति पकड़ ली। जब 23 अप्रैल को संसद बुलाई गयी तो विपक्ष के सदस्यों ने जनतंत्र के पतन पर काला पट्टा पहना। बाहर पलंग धर्मा दल के नेता भूख हड़ताल पर बैठ गये बाद में 40 और लोग सम्मिलित हुए। चमलांग श्री मुआंग ने प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व जोश तथा उत्साह के साथ किया। अप्रैल के अंत तक परिस्थिति खराब होनी शुरू हो गयी। मई 1992 के प्रारंभ में हजारों प्रदर्शनकारी मध्य बैंकांक में बैठ गये जिनको कि दंगा पुलिस ने घेर लिया। 9 मई को एक लाख पचास हजार से भी ऊपर लोग गलियों में कूद पड़े। इस मांग के साथ कि सुचिन्दा को जबरन त्यागपत्र के लिए बाध्य किया जाए। वे एक मैदान में एकत्र हुए और आसपास की गलियों में फैल गए। यह सुचिन्दा के विरोध में हुए आंदोलन की पराकाष्ठा थी। अक्टूबर 1973 के प्रदर्शनकारियों का जिस तरह से जोश और उत्साह देखा गया वह अब भी बना था जबकि थानोम परदास की चौकड़ी को इस्तीफा के लिए बाध्य होना पड़ा था, जनतांत्रिक प्रयोगों के लिए प्रदर्शनकारियों ने मांग की कि अनिर्वाचित प्रधानमंत्री त्यागपत्र दे और संविधान में आवश्यक संशोधन किये जायें जिससे कि अनिर्वाचित प्रधानमंत्री का पुनर्चयन थाईलैण्ड में बंद किया जाये। वे बिना मांग पूर्ण हुए हटने के लिए तैयार नहीं थे। यद्यपि जनतंत्र आंदोलन के नेताओं ने यह आश्वासन दिया कि आवश्यक संशोधन होंगे पर वे सफल नहीं हुए। प्रदर्शनकारियों ने अपना प्रदर्शन जारी रखा और सैनिक नेतृत्व ने धैर्य खो दिया। उन्होंने यह फैसला किया कि शक्ति से निपटेंगे। 17 मई को सेना द्वारा दमन शुरू हुआ आपात स्थिति घोषित की गयी करीब 50 लोगों की मृत्यु हुई व सैकड़ों घायल हुए। विद्रोह आंदोलन के नेता मेजर जनरल चुमलोंग सिरमुआंग को हथकड़ी पहना कर गिरफ्तार किया गया और गलियां खाली करायी गयी। इस पुलिस कार्रवाई के परिणाम भयानक रहे। प्रधानमंत्री सुचिन्दा और उनके सर्वोच्च सेनानायक इशारापोंग नूनपाकडी को इस खूनखराबे के लिए जिम्मेदार ठहराया गया। ऐसा सैन्य समर्थक साझा सरकार के समर्थकों द्वारा भी महसूस किया गया। यह अफवाह फैली कि एक नया सैन्य विद्रोह किसी समय भी हो सकता है ऐसे अवसर पर राजा भूमिवोल अदुलवेज ने संवैधानिक संकट को दूर करने के लिए हस्तक्षेप किया। उन्होंने जनरल सुचिन्दा को त्यागपत्र देने की सलाह दी। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर कि जनता का और सेना का बहुत बड़ा समूह दबाव डाल रहा है। इसलिए 24 मई 1992 को सुचिन्दा ने त्यागपत्र दिया। उनके उत्तराधिकारी प्रधानमंत्री आनन्द पानीयर्चुन हुए। इस समय आनन्द ने आवश्यक संवैधानिक सुधार लागू करने का बीड़ा उठाया जिससे कि प्रणाली को जनतांत्रिक बनाया जा सके और अग्रिम चुनाव कराया जा सके।

उन लोगों के लिए जो अपना जीवन खो चुके थे व घायल हुए थे मई के खून खराबे में आनन्द ने सत्ता संभालने में एक मरहम लगाने का काम किया। उसने सुचिन्दा के प्रति जो दुर्भावना थी उसे भी निष्प्रभावी किया। आनन्द की सरकार ने यह प्रयास किया कि लोग इस बात को समझ जाएं कि यह उनके प्रति न्याय करेगा व उन दोषियों को दंडित करेगा जो मई खूनखराबे के दोषी हैं। जनता के प्रतिनिधि सदन ने एक समिति बनायी जो मई के खूनखराबे की जिम्मेदारी को निश्चित करे। सुचिन्दा ने भी संविधान संशोधन को समर्थन दिया जो कि और भी जनतांत्रिक थे। सदन ने इसमें चार प्रमुख संशोधन की अनुमति दी। 10 जून 1992 के संशोधन संविधान में सम्मिलित किये गये। इनका थाई राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा ये संशोधन निम्नलिखित हैं :

1. प्रधानमंत्री सदन का एक चुना हुआ सदस्य अवश्य होना चाहिए।
2. परीक्षण और नियम को पास करने में सेनेट की शक्तियां सीमित होगीं।
3. दूसरे राष्ट्रीय संसद के सेशन में खुली बहस की इजाजत होगी।
4. सदन के स्पीकर को सदन का अध्यक्ष बनाया जाय।

इन संशोधनों के पश्चात दूसरी बार 13 सितंबर 1992 में थाईलैण्ड में आम चुनाव हुए। दो महत्वपूर्ण संयुक्त ताकतें शक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा में थीं। जनतांत्रिक संयुक्त दलों को एक देवता के रूप में प्रतिपादित किया गया। तथा सेना समर्थकों को एक राक्षसी ताकत के रूप में संचार माध्यमों द्वारा बताया गया ; जनतंत्र समर्थक दल विजयी रहे। चुवान लिवापाई के नेतृत्व में नयी सरकार की स्थापना हुई। सेना समर्थक दल निराश हुए जब कि नयी सरकार अपनी रुचि जनतांत्रिक संरचना को सुदृढ़ बनाने में दिखा रही है।

18.5.1 धर्म और राजनीति

थाई समाज में धर्म एक बहुत ही महत्वपूर्ण भावनात्मक मुद्दा है। बौद्ध धर्म थाईलैण्ड का राष्ट्रीय धर्म है। राजनैतिक रूप से प्रबुद्ध वर्ग और बौद्ध धर्म का बहुत सालों से चला आ रहा मेलजोल थाईलैण्ड की राजनैतिक प्रणाली को गहराई से प्रभावित करता रहा है। विभिन्न सामाजिक, जातीय समूह संघ का समर्थन प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। क्योंकि वे उसके बिना अपनी वैधानिकता का दावा नहीं सकते हैं। धार्मिक और राजनैतिक तत्वों का एक बड़ा तबका बौद्ध और आधुनिक राजनैतिक विचारधाराओं के मेलजोल का हिमायती है। राजनीति में धर्म का प्रयोग, चाहे जनतंत्र हो या तानाशाही, थाई राजनीति का अभिन्न हिस्सा है। धार्मिक सुधारों के प्रचार में कुछ महत्वाकांक्षी नेताओं के प्रयास और कम्युनिस्टों और अलगाववादी ताकतों से लड़ने में बौद्ध धर्म का प्रयोग, सरकार व राज्य में धर्म के महत्व को बताती हैं।

यह एक ऐतिहासिक वास्तविकता है कि थाई राजाओं, राजा रामखम्भेन ने 13वीं शताब्दी में, राजा मोंगकुट ने 19वीं शताब्दी में तथा उनके उत्तराधिकारियों ने 20वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म को एक महत्वपूर्ण साधन समझा। थाई राष्ट्रवाद के कारकों को विकसित करके अपने उद्देश्य की प्राप्ति की। राजा ने प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व बौद्ध प्रार्थनाओं को विभिन्न जन संस्थाओं में, सरकारी स्कूलों, पुलिस बल और सेना में प्रस्तावित किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय प्रधानमंत्री फील्ड मार्शल फीबून सोनग्राम ने धार्मिक तत्वों को इस दृष्टिकोण से विशेष महत्व प्रदान किया कि इससे राष्ट्रवादी ताकतों को बढ़ावा मिलेगा।

अपने प्रतिद्वंद्वी इस्लाम धर्म से बौद्ध संघों की कार्यकलाप की भूमिका भिन्न रही है। यह नयी खोजों में निरंतर लगे रहने में नैतिक गुणों के उत्थान में विश्वास करता है। इसने विभिन्न सामाजिक एवं जातीय समुदायों में समझौते का प्रयास किया है और यह राष्ट्रीय अखंडता और मेलजोल का मार्ग प्रशस्त करता है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1. अपने उत्तर के लिए नीचे के स्थान का प्रयोग करें।
2. अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1. थाईलैण्ड में जनतंत्र की सफलता और असफलता की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. थाई राजनीति और समाज में धर्म के महत्व की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

18.6 आर्थिक नीति

थाईलैण्ड ने एक उदार नीति का अनुसरण किया है। इसी कारण से वह इस क्षेत्र में "स्वतंत्र उद्यम" का अधिकायक

माना जाता है। यद्यपि फील्ड मार्शल फीबुन सोंग्राम ने कुछ उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में लिया क्योंकि यह मूलतः समयोचित था। किंतु उसके उत्तराधिकारियों ने हमेशा निजी क्षेत्र के विकास को ही प्राथमिकता दी, प्रधानमंत्री प्रेम तिल्सूलानन्द (1980-1988) के प्रबंधकाल में निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन और आवश्यक सुविधाएं प्रदान की गयीं। इससे कृषि और औद्योगिक उत्पादनों में काफी वृद्धि हुई और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन 1418 डालर हो गया।

जनरल प्रेम ने देश के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए नये क्षेत्र तलाश किए। मत्स्य उद्योग, हीरा उद्योग, कपड़ा उद्योग और पर्यटन में आधुनिक तकनीक का प्रयोग किया। ये प्रयास सफल भी रहे। पिछले कुछ वर्षों में इन क्षेत्रों के विकास ने थाईलैण्ड की आर्थिक स्थिति सुधारने व उन्नत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यदि वर्तमान विकास की गति इसी प्रकार रही तो थाईलैण्ड, एन आई सी उदाहरणार्थ सिंगापुर, कोरिया, ताइवान, हांगकांग के बराबर हो जाएगा।

यहां पर इस बात का उल्लेख प्रासंगिक है कि थाईलैण्ड अमेरिका का सहयोगी था। 1975 में वियतनाम युद्ध के अंत के साथ आर्थिक सहयोग की सहमति के हस्ताक्षर हुए। तब से अमेरिका थाईलैण्ड के अर्थप्रबंध को प्रभावित कर रहा है। एक बड़ी संख्या में थाईलैण्ड में अमेरिकी सलाहकारों की नियुक्तियां हुईं। युद्ध नीति को लक्ष्य मानकर अमेरिका ने थाईलैण्ड की वित्तीय अवस्थापना में बहुत बड़ी मात्रा में ऋण अनुदान तथा प्रत्यक्ष पूंजी निवेश किया। अमेरिका ने बहुत बड़ी मात्रा में थाईलैण्ड को वित्तीय व सैनिक सहायता प्रदान की इसका उद्देश्य था कि थाईलैण्ड इस क्षेत्र में साम्यवाद को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। इस तरह 1963 से 1978 तक बहुत (थाई मुद्रा) अमेरिकी डालर से जुड़ी रही।

अमेरिका के लिए थाईलैण्ड का युद्ध नीति संबंधी महत्व 1975 में वियतनाम युद्ध के अंत के साथ कम हुआ। 1973 से 1978 तक थाईलैण्ड एक दयनीय आर्थिक दशा तथा अस्थिर शासनों का सामना कर रहा था। राजनैतिक व्यवस्था कायम होने पर शासकों ने आर्थिक प्रबंध को विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने ऐसा महसूस किया कि साम्यवाद के विस्तार को केवल आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करके ही रोका जा सकता है। इसलिए वे आर्थिक नीति के विभिन्न पहलुओं व कार्य पद्धति की समीक्षा में लग गए। परिणामस्वरूप आर्थिक योजना के सर्वोच्च निकाय-राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद का गठन किया गया। राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद ने विकास की प्रक्रिया को तीव्रता देने के लिए नये विचारों को नियंत्रित किया। इस परिषद ने, जिसकी स्थापना 1959 में हुई थी, विकास को प्रोत्साहन देने तथा समन्वयन का कार्य किया। इसने आर्थिक सुधार तथा पंचवर्षीय योजनाओं के बनाने की जिम्मेदारी ली।

राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद ने छठी पंचवर्षीय योजना (1986-1991) के प्रस्तुतीकरण में नये विचार दिए। 1986 के पूर्व तक की प्राथमिकताएं ग्राम्य विकास और संचार योजनाओं के लिए थीं। इसने किसानों की उत्पादकता तथा आय बढ़ाने के लिए कदम उठाए थे। इस प्रकार सड़कों, बांधों सिंचाई के लिए नहरों तथा स्वास्थ्य योजनाओं आदि के निर्माण पर विशेष बल दिया गया। किंतु छठी योजना के कार्यकाल के दौरान निजी क्षेत्रों के विकास को प्राथमिकता दी गयी। निजी क्षेत्रों को एक ऐसा संयंत्र समझा गया जो कि विकास की गाड़ी को खींच सकता है। परिणामस्वरूप, सरकार, सार्वजनिक क्षेत्रों की भूमिका में जो संचालन व नियंत्रण का काम करती थी अब व्यक्तिगत व्यापार के समर्थन व बढाने का कार्य करने लगी। राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद ने उदारवादी नीतियां अपनायीं ताकि विदेशी उद्योग आकर्षित हों। इसके अतिरिक्त उनको थाईलैण्ड में पूंजी निवेश के लिए प्रोत्साहन भी दिया। इस प्रक्रिया में विदेशी उद्योगों को लाभ और पूंजी को अपने देश में भेजने की मनाही, विदेशी भूमि स्वामित्व, आयात-कर तथा उपकरणों के ऊपर लगे कर पर छूट दी गयी।

थाई सरकार ने इनके राष्ट्रीयकरण व सरकारी उद्योगों से प्रतिस्पर्धा न होने देने के प्रति अपनी वचनबद्धता व्यक्त की। जिसके परिणामस्वरूप 1987-90 के मध्य लगभग 1037 कंपनियों ने अपना कार्य प्रारंभ किया। सबसे अधिक पूंजीनिवेश करने वालों में जापान (21.4%), ताइवान (11.2%) और अमेरिका (10.9%) थे। निर्यात की प्राथमिकता के लिए उन्नति के कार्यक्रम उद्योगों जैसे कि जैवतकनीक, कंप्यूटर साफ्टवेयर, सौर्य बैटरी तथा सूक्ष्मतरंग पृथक्कारी आदि को विशेष महत्व दिया। सरकार की नीति में निजी क्षेत्रों के प्रति गुणात्मक परिवर्तन के कारण सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों की एक बड़ी संयुक्त सलाहकार समिति गठित की गयी। इसका प्रमुख उद्देश्य सार्वजनिक व निजी उद्योगों में समन्वय कराना था, ने एक ऐसे विचार स्रोत की भूमिका निभायी जिसने व्यापारिक रुचि को बढ़ावा दिया तथा 1986 तक निजी व्यापार के लिए गोष्ठियों का आयोजन किया।

इसको विशेष महत्व इसलिए भी मिला कि इसने निर्यात की पक्षधर नीति बनाने के नीति निर्धारकों के निर्णयों को प्रभावित किया। व्यापार के प्रतिनिधियों ने राष्ट्रीय सलाहकार समिति में उत्पादन तथा विभिन्न सामानों के बाजारीकरण में आने वाली बाधाओं को स्पष्ट किया। पर्यटन व हीरा उद्योगों को, जो कि विदेशी मुद्रा अर्जन के प्रमुख स्रोत थे हाल के वर्षों में काफी प्रोत्साहन मिला। इसका श्रेय इस समिति की लगन व निरंतर प्रयास को जाता है। इसके पूर्व जनता व सरकार दोनों की यह धारणा थी कि पर्यटन व हीरा उद्योग कुछ मुट्ठी भर संपन्न लोगों की सुविधा के लिए थे। किंतु अब इस धारणा में परिवर्तन आया है। पहले इन क्षेत्रों पर भारी कर लगता था। किंतु अब इनके निर्यात मूल्य को लोग समझने लगे हैं। सरकार ने इनके निर्यात कर को कम किया है। होटलों पर बिक्रीकर में कमी हुई है तथा कीमती हीरों के निर्यात के लिए सुविधाएं प्रदान की गयी है। जिसके परिणामस्वरूप सीमाशुल्क में कमी हुई। इसने थाईलैण्ड के हीरे के व्यापारियों को दक्षिणपूर्व एशिया के प्रमुख निर्यातक बनाने में सहायता की। दूसरी तरफ होटलों के प्रबंध बेहतर हुए, आवागमन के साधनों का विकास हुआ, जिससे विदेशी यात्री थाईलैण्ड की ओर आकर्षित हुए। वर्तमान में थाईलैण्ड आने वाले विदेशी यात्रियों की संख्या लगभग 240 लाख प्रति वर्ष है। इस प्रकार पर्यटन विदेशी मुद्रा अर्जन का प्रमुख स्रोत बन गया है।

थाईलैण्ड अमेरिका के बाद दुनिया का सबसे बड़ा चावल निर्यातक है। यहां प्रति वर्ष चावल की पैदावार लगभग 2060 लाख टन है। यहां लगभग 500 लाख टन मक्का, 1930 लाख टन कसावारूट्स और 2030 लाख टन मछली पैदा होती है। तहां पर लकड़ी, चीनी, रबर, टीक आदि भी पर्याप्त मात्रा में है। यह व्यापारिक स्तर पर सीमेण्ट (लगभग 7090 लाख टन) तैयार करता है जिसका आधा मलेशिया ही खरीदता है। यह आटोमोबाइल असेम्बली व अन्य इस प्रकार की चीजें निर्यात के लिए तैयार करता है।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।
ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1. थाईलैण्ड के आर्थिक विकास के कुछ प्रमुख लक्षणों की पहचान करें।

.....

.....

.....

.....

.....

18.7 थाई विदेश नीति

थाईलैण्ड की विदेश नीति के निर्माता बहुत से मुद्दों पर विशेष ध्यान रखते हुए, उपागम में बहुत ही लचीले रहे हैं ताकि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की बदलती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। थाईलैण्ड ने 13वीं शताब्दी में अपनी उत्पत्ति से लेकर 19वीं शताब्दी के "अफीम युद्ध" तक हान साम्राज्य से अपनी प्रगाढ़ मित्रता बनाए रखा। इसके बदले में चीनी शासकों ने भी थाई शासकों को अपने नियंत्रण में शक्ति सुदृढ़ बनाने तथा उत्तर-पूर्व एशिया के एक बड़े भाग पर नियंत्रण करने में सहायता की। जब ब्रितानी शक्ति दक्षिण-पूर्व एशिया में बढ़ गयी तो थाईलैण्ड ने अपनी प्राथमिकता भी बदल दी और ब्रिटेन से अपने संबंध प्रगाढ़ बनाना शुरू कर दिया। इसने ब्रिटेन को व्यापारिक सुविधाएं तथा अतिरिक्त सीमाधिकार दिया। इस प्रकार ब्रिटेन थाई अदालतों की सीमा से परे का विषय बना। इसके बदले में ब्रिटेन ने थाई संप्रभुता का सम्मान किया और फ्रांस को थाईलैण्ड में समस्या पैदा करने से रोकता रहा। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान थाईलैण्ड ने जापान का साथ दिया। इसके बदले में जापान ने थाईलैण्ड की उन सीमाओं को जो कि वह उपनिवेशकाल में खो चुका था पुनः प्राप्त करने में सहायता की। लेकिन युद्धोपरांत इस क्षेत्र में अमेरिका के सबसे प्रभावशाली देश के रूप में उभरने के साथ थाईलैण्ड अपनी पुरानी परंपरा के अनुरूप अमेरिका से घनिष्ठ संबंध बनाने के लिए अग्रसर हुआ। थाईलैण्ड अमेरिका से साम्यवाद को रोकने तथा चीन व वियतनाम विरोधी नीति से सहयोग करने के लिए सहमत हुआ। थाईलैण्ड 1954 में सीटो सैन्य संधि में सम्मिलित हुआ। इसने साम्यवाद विरोधी शक्तियों को साम्यवाद के विरुद्ध एक आधार देने का निमंत्रण दिया। थाईलैण्ड वास्तव में सीटो का मुख्यालय था। वियतनाम युद्ध के दौरान यह अमेरिकी सेनाओं के लिए एक आधार था। इसके बदले में इसे अमेरिका से खूब आर्थिक व सैनिक सहायता मिली। जिससे सड़क, बांध व पुलों का निर्माण किया गया। इसने पड़ोसियों के विरुद्ध थाईलैण्ड की सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया।

1975 में वियतनाम युद्ध के अंत के साथ दक्षिण पूर्व एशिया में, युद्धनीति संबंधी वातावरण में परिवर्तन आया। चीन आसिआन देशों के साथ अपने संबंध सुदृढ़ बनाने को उत्सुक था। थाईलैण्ड ने चीन से अपने घनिष्ठ संबंध बनाने की पहल की। इसके लिए प्रधानमंत्री कुकृत प्रमोज ने 1975 में चीन की यात्रा की। इस कार्य को शुरू करने में वे सफल भी रहे। थाईलैण्ड को चीन से मैत्री संबंधों के कारण तेल भी मिला। चीन ने थाई अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए चावल की ऊंची कीमत दी। इस प्रकार से थाईलैण्ड व चीन के संबंधों में तेजी से सुधार हुआ। यह 1978 दिसंबर में वियतनाम के कम्बोडिया में सैनिक हस्तक्षेप के साथ और प्रगाढ़ हुआ। थाईलैण्ड, चीनी हथियारों को कम्बोडिया के विद्रोहियों में वितरित करने का माध्यम बना। खामेर रूज को जिनको कि चीन का समर्थन प्राप्त था, थाईलैण्ड में शरण मिली। इसने खामेर रूज और फन्सिन्पेक गोरिल्ला बलों को आश्रय प्रदान किया। कम्बोडिया के विद्रोहियों ने अपनी शक्ति यहां बढ़ायी क्योंकि थाईलैण्ड के माध्यम से इन्हें चीन, अमेरिका व अन्य स्रोतों से अस्त्र-शस्त्र प्राप्त होते थे। चीन, थाईलैण्ड के इस सहयोग से जिससे कि वियतनाम अलग-थलग पड़ गया था, बहुत खुश था।

इस प्रकार से थाईलैण्ड का उपयोग इस क्षेत्र में वियतनाम के विस्तार से रोकने के लिए एक सीमावर्ती राज्य के रूप में किया गया। किंतु अक्टूबर 1991 में कम्बोडिया शांति समझौता जो पेरिस में हुआ तथा साम्यवादी गुट के विघटन के साथ परिस्थितियों में काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया।

थाई शासकों ने वर्तमान में ऐसी नीति अपनाई है जिससे कि युद्ध स्थल को बाजार क्षेत्र में परिवर्तित किया जा सके। थाईलैण्ड अन्य इण्डोचीन देशों में बड़ी मात्रा में पूंजी निवेश की योजना तैयार कर रहा है। यह एक तरफ मीकांग नदी विकास परियोजना में निवेश के लिए तथा दूसरी तरफ नाम पेन्ह होकर जाने वाली बैंकाक से हो चो मिन्ह तक की रेल सेवा को फिर से शुरू करने को उत्सुक है।

इस क्षेत्र में क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने का थाईलैण्ड एक प्रमुख प्रचारक है। इसने एसियान के बनाने में सक्रिय रुचि ली है जिनमें ब्रूनी, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलीपिन्स और थाईलैण्ड सम्मिलित हैं।

एसियान देशों में उद्योग, व्यापार, पर्यटन, वित्त, खाद्य सामग्री उत्पादन और वितरण, मछली, जहाजरानी, संचार, वायुयान सेवा, पर्यावरण, यातायात सेवा, दूर संचार, विज्ञान व तकनीक आदि क्षेत्रों में सहयोग है। एसियान के सदस्य देश एक दूसरे को सामरिक व राजनैतिक मामले में भी सहयोग देते हैं। वर्तमान में इनकी बातचीत के साथ सहयोगी हिस्सेदार हैं :— जापान, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण कोरिया और यूरोपीय आर्थिक समुदाय। थाईलैण्ड ने दक्षिण पूर्व एशिया के कुछ उलझे हुए मामलों को सुलझाने में सफल मध्यस्थता निभाई है। 1966 में मलेशिया व इण्डोनेशिया के विदेशमंत्रियों के बीच "क्रश मलेशिया प्लान" को समाप्त करने की वार्ता का स्थान थाईलैण्ड बना। थाईलैण्ड ने सलाह के लिए चले आ रहे विवाद के लिए फिलीपिन्स और मलेशिया का अधिवेशन बुलाया। थाईलैण्ड ने पुनः एसियान के माध्यम से कम्बोडिया में चले आ रहे वियतनामी हस्तक्षेप को रोका।

आज थाईलैण्ड कुछ ऐसे देशों में से एक है जो बर्मा की सैनिक सरकार से अच्छे संबंध बनाए हैं। इसने कभी भी बर्मा के शरणार्थियों को थाईलैण्ड आने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया। थाई व्यापारियों ने शान व करान क्षेत्रों में टीक की लकड़ी काटने के ठेके लिए हैं। इस प्रकार दोनों देशों के बीच घनिष्ठ व्यापारिक संबंध हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि थाई विदेश नीति अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल रही है। थाई विदेश नीति के चार दशकों के विकास को संक्षेप में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि पहले यह सामरिक नीति को ध्यान में रख कर बनाई गयी थी किंतु अब उसके साथ-साथ आर्थिक नीति भी प्राथमिकता पा रही है। थाई सरकार फैसले के हर स्तर पर व्यापारिक सहयोग को प्राथमिकता देती है। विदेश नीति निर्धारण में इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार से यह अपने व्यापारिक हितों को बढ़ाती है।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणी : i) उत्तर के लिए नीचे के रिक्त स्थान का प्रयोग करें।
ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1. थाई विदेश नीति की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें?

.....

.....

.....

.....

.....

18.8 सारांश

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्र, राजा, धर्म और सेना थाईलैण्ड की राजनैतिक प्रणाली चार प्रमुख स्तम्भ हैं। इनके उचित महत्व के बिना, नई राजनैतिक व्यवस्था के लिए कोई भी उपक्रम सफल नहीं हो सकता है। किसी भी नेता को अस्तित्व बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि वह इन स्तंभों के बीच संतुलन बनाए रखे।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में गतिशीलता व लचीलेपन का विशिष्ट स्थान है। थाईयों का कहना है कि "वे एक बांस की भांति हवा के साथ झुक जाते हैं"। यह उनके व्यवहार व प्रवृत्ति की जो उनकी विदेश नीति व राजनय को निर्धारित करती है कि स्पष्ट व्याख्या करती है।

18.9 प्रमुख शब्द

सकदिमा वर्ग : अभिजात तंत्र।

उपनिवेश : देश या सीमा जो स्वतंत्रता से वंचित हो तथा किसी विदेशी राज्य द्वारा शासित हो।

साम्यवाद : पूंजीवाद को हटा कर आयी हुई ऐसी सामाजिक व आर्थिक संरचना (सामाजिक प्रणाली) जिसका आधार — उत्पादन के साधनों पर जन स्वामित्व का है।

प्रजातंत्र : जनता द्वारा सरकार, एक राजनैतिक प्रणाली जिसमें प्रजातंत्र की विधि व स्वरूप नागरिक स्वतंत्रता व साम्य सुरक्षित हों तथा जिसका क्रियान्वयन कानून द्वारा गारण्टी दिया गया हो।

बहत : थाई-मुद्रा।

18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इलियट, डेविड : 1978 थाईलैण्ड : *ओरिजिन्स आफ मिलिटिरी रूल,* जेड प्रेस, 1978

गिरलिंग, जे एल एस, 1981 थाईलैण्ड : *सोसाइटी एण्ड पोलिटिक्स* इथाका, एन वाई, कार्नेल युनिवर्सिटी प्रेस, 1981

झा, गंगानाथ, 1979, *फारेन पोलिसी आफ़ थाईलैण्ड,* नई दिल्ली, रेडिएण्ड पब्लिशर्स, 1979

मोरेल, डी एण्ड समुदाविनिजा, सी, 1981 *पोलिटिकल कांफ्लिक्ट इन थाईलैण्ड,* कैम्ब्रिज, मास, 1981

नेहेर, सी डी, 1979, *माडर्न थाई मालिटिक्स : फ्राम विलेज टू नेशन कैम्ब्रिज,* मास, स्केन्कामान

व्याट, डी के, 1984, *थाईलैण्ड : एक शार्ट हिस्ट्री, न्यू हैवेन कान,* पेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984

इक्यूटो, सोम्सकदी, एड, 1987 *गवर्नमेण्ट एण्ड पालिटिक्स आफ थाईलैण्ड,* हांग कांग, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. i) पश्चिमी शक्तियों के समक्ष सुविधाजनक नीतियों के लिए पश्चिमी सलाहकारों की नियुक्तियां।
   ii) पश्चिमी समाज और राजनीति को समझने के लिए राजा ने सद्भावना पूर्ण इच्छा से पश्चिमी राजाओं से व्यक्तिगत संबंध स्थापित किया।
   iii) थाईलैण्ड, बर्मा में अंग्रेजी तथा इण्डोचाइना में फ्रांसीसी शक्तियों के बीच एक प्रतिरोधन बन गया।
   iv) थाईलैण्ड ने पश्चिमी शक्तियों की मांग को पूरा करके टकराव की स्थिति को बचाया।

2. i) 20वीं शताब्दी के उत्तराधिकार पाने वाले राजाओं ने जिनको कि पश्चिमी शिक्षा मिली थी उदारवादी विचारों के संस्थापक थे।
   ii) 1932 का सैन्य व नागरिक विप्लव।

3. i) संसद सर्वोच्च नहीं है।
   ii) राजतंत्र की हमेशा पदावनति की गयी।
   iii) सामान्यतया राजा संविधान का उल्लंघन नहीं करता है।
   iv) राजा थाई राष्ट्रवाद का प्रतीक है।
   v) राजा राजनीतिकों के लिए मित्र, दार्शनिक व पथप्रदर्शक की भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह करता है।

बोध प्रश्न 2

1. i) थाई राजनीति में सेना की प्रमुखता की आधारशिला रखी।
   ii) केन्द्र एक मजबूत केन्द्र में शक्तियों का केन्द्रीकरण किया।
   iii) शक्तिशाली राज्यों—जापान, अमेरिका आदि के पक्ष की नीति का अनुसरण किया।
   iv) साम्यवादियों के विरुद्ध।
   v) थाई अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण।

बोध प्रश्न 3

1. i) राजनैतिक दलों में कमजोरियों को।
   ii) राजनीति में सेना के दबदबे को।

2. i) बौद्ध धर्म ने लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने में एक माध्यम के रूप में काम आया।

ii) राजनीतिक पार्टियां धर्म का प्रयोग अपने समर्थन का आधार बढ़ाने के लिए करती हैं।
iii) धर्म का प्रयोग साम्यवाद से लड़ने के लिए किया गया है।
iv) धर्म ने विभिन्न सामाजिक और एकजातीय समूहों के समन्वयन में सहायता की।

बोध प्रश्न 4

1. i) स्वतंत्र उद्यम।
   ii) निजी क्षेत्रों की प्रबलता।
   iii) कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था।
   iv) ग्राम्य विकास पर बल दिया।
   v) प्रतिस्थापक विकास के ऊंचा आवंटन।
   vi) थाईलैण्ड में पूंजी निवेश के लिए विदेशी कंपनियों को बहुत से प्रोत्साहन दिए गए।

बोध प्रश्न 5

1. i) उपागम में लचीले।
   ii) सामान्य रूप से पश्चिमी गुट पर और विशेष रूप से अमेरिका पर विश्वास।
   iii) क्षेत्रीय सहयोग पर विशेष बल दिया।
   iv) पूर्व में सामरिक नीति से संबद्ध विचारों ने इसकी नीतियों का निर्देशन किया किंतु अब इसके साथ-साथ व्यापारिक रुचि को भी प्राथमिकता मिलने लगी।

इकाई 19 बर्मा

संरचना

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- 19.2.1 ब्रिटिश शासन की स्थापना
- 19.2.2 औपनिवेशिक शोषण तथा राष्ट्रवाद का उदय
- 19.2.3 जापान द्वारा कब्जा तथा बर्मा की स्वतंत्रता

19.3 संसदीय काल

- 19.3.1 आरंभिक दिनों की राजनैतिक अस्थिरता
- 19.3.2 विकासात्मक योजनाएं
- 19.3.3 जातीय अल्पसंख्यक तथा बर्मीकरण
- 19.3.4 ए.एफ.पी.एफ.एल. के भीतर आंतरिक कलह तथा तख्ता-पलट

19.4 फौजी शासन

- 19.4.1 नई राजनैतिक व्यवस्था
- 19.4.2 आर्थिक विकास की समस्याएं
- 19.4.3 प्रारंभिक प्रतिरोध

19.5 जनतंत्र के लिए आन्दोलन

- 19.5.1 बी.एस.पी.पी. शासन का अंत
- 19.5.2 जनतंत्र समर्थक आन्दोलन की कमजोरियां
- 19.5.3 1990 के चुनाव तथा उसके बाद

19.6 सारांश

19.7 शब्दावली

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

यह इकाई बर्मा में शासन तथा राजनीति से जुड़े पहलुओं पर विचार करती है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपको :

- बर्मा की स्वतंत्रता के समय तक की ऐतिहासिक पृष्ठभमि को खोज निकालने,
- संसदीय प्रणाली की व्यवस्था तथा उसके अस्तित्व का वर्णन करने,
- विकासशील राज्य में सेना तथा नौकरशाही की भूमिका की जांच करने, तथा
- जनवादी आन्दोलन के महत्व को पहचानने में, सक्षम होना चाहिए।

19.1 प्रस्तावना

बर्मा दक्षिण-पूर्व एशिया तथा दक्षिण एशिया से जुड़े अधिकांश पश्चिमी हिस्से में फैला हुआ है। इसकी सीमाएं भारत, चीन, बंगलादेश, लाओस तथा थाइलैण्ड से लगी हुई हैं। राज्य का कुल क्षेत्रफल 678000 वर्ग कि.मी. है तथा 1971 की जनगणना ने कुल जनसंख्या का आकलन लगभग 28,200,000 किया था। बर्मा में अनेक उप-राष्ट्रीयताएं एवं कबीले रहते हैं। बर्मी कुल आबादी का लगभग 70 प्रतिशत हैं। अन्य समूहों में, कारेन (18 प्रतिशत), शान (17 प्रतिशत), चिन (12 प्रतिशत) तथा काचिन (11.5 प्रतिशत) सबसे प्रमुख हैं। इन तमाम समूहों की अपनी निजी भाषा, साहित्य व संस्कृति है तथा ऐतिहासिक रूप से विकसित आर्थिक क्षेत्र भी मौजूद हैं। पूर्वी, उत्तरी तथा पश्चिमी पहाड़ी सीमाओं में विभिन्न कबीले रहते हैं—जो कि सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। बर्मा को विरासत में भारतीय मूल के लोगों की विशाल संख्या मिली है। बर्मा व्यापक एवं संपन्न आर्थिक संसाधनों से समृद्ध है, उनका उपयोग करके देश कृषि तथा औद्योगिक, दोनों ही तरह से खुशहाल हो सकता है।

स्वतंत्रता के बाद, बर्मा ने ब्रिटिश नमूने के संसदीय जनतंत्र का अनुसरण किया। हालांकि राजनैतिक प्रक्रिया पर ए.एफ.पी.एफ.एल. (एण्टी-फासिस्ट पीपुल्स फ्रीडम लीग) का वर्चस्व था, किन्तु उसके बावजूद चुनाव निष्पक्ष एवं स्वतंत्र

रहे। किन्तु प्रधानमंत्री उनू के नेतृत्व में सत्ता संभालने के समय से ही, ए.एफ.पी.एफ.एल. का शासन सहजता से कोसों दूर था। स्वयं पार्टी के सम्मुख भी आन्तरिक फूट तथा व्यक्तिगत कलह की वजह से खतरा उपस्थित हो गया था। नागरिक सरकार के सामने पहली चुनौती कम्युनिस्टों द्वारा पेश की गयी जिन्होंने स्वतंत्रता के आरंभिक वर्षों के दौरान ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी जिसमें रंगून सरकार का वास्तविक नियंत्रण राजधानी शहर की सीमाओं के बाहर प्रायः समाप्त ही हो गया। भ्रम की स्थिति का फायदा उठाते हुए जातीय अल्पसंख्यकों ने देश में राजनैतिक स्थिति को और अधिक अस्थिर बना दिया। सरकार असंतुष्ट गुटों को शान्त करने में इस कदर उलझी हुई थी कि 1950-52 से पहले तक विकास समस्याओं पर विचार करने के लिए उसके पास समय व ऊर्जा ही नहीं थी। "बर्मी नमूने का समाजवाद" नामक एक समन्वयवादी विचारधारा विकसित की गई जिसमें इजारेदार उद्योगों, विदेश-व्यापार, भूमि आदि का राष्ट्रीयकरण तथा मजदूरों, किसानों तथा गरीबों को पूँजीवादी शोषण से संरक्षण देने, जैसे सुझावों को शामिल किया गया। किन्तु उत्तरवर्ती वर्षों में इस दिशा में कोई अमल नहीं किया गया। उनू सरकार का आर्थिक प्रदर्शन असंतोषजनक था। इस अवस्था में, राजनैतिक स्वायत्तता के लिए जातीय अल्पसंख्यकों की मांग ने कहीं अधिक गंभीर राजनैतिक और सुरक्षा संबंधी समस्या खड़ी कर दी। यह जनरल ने विन के नेतृत्व में सैनिक जुण्टा द्वारा 1962 में सत्ता पर कब्जा कर लेने का तथा तब से लगातार सत्ता में बने रहने का एक बहाना बन गया।

सैनिक शासन से बर्मा में न तो राजनैतिक स्थिरता कायम हो सकी और न ही आर्थिक खुशहाली आ सकी। राजनैतिक प्रणाली अत्यधिक अधिनायकवादी थी जिसमें तमाम राजनैतिक संस्थाओं का सर्वोच्च नियंत्रण जनरल ने विन तथा उसकी चौकड़ी के हाथों में केन्द्रित था। सरकारी प्रवाहों के माध्यम से होने वाली राजनैतिक गतिविधियों के अलावा अन्य सभी राजनैतिक गतिविधियों पर पाबन्दी लगा दी गई थी। अनेक नागरिक नेताओं को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया गया था। निजी अखबारों तथा समाचार माध्यमों पर जबर्दस्त पाबंदी थी। सेना द्वारा समर्थित बर्मा सोशलिस्ट प्रोग्राम पार्टी (बी.एस.पी.पी.) द्वारा अपनाई गई "डंडा और गाजर नीति" 26 वर्षों तक सैनिक शासन के विरुद्ध किसी प्रमुख लोकप्रिय प्रतिरोध को रोक पाने में सफल रही हालांकि आमतौर पर राजनैतिक रूप से जागृत जनता तथा खासतौर से जातीय समूहों में, कारेन, शान, चिन, तथा काचिन आदि गैर बर्मीयों पर बर्मीयों के, अधिपत्य के सवाल पर, फुसफसाहट भरा असंतोष मौजूद था। किन्तु 80 के दशक के अंत में बिगड़ती आर्थिक स्थिति के चलते इस दिखावटी स्थिरता को एक धक्का लगा और जनरल ने विन को खुले रूप में अपनी आर्थिक नीतियों की विफलता को स्वीकार करने पर मजबूर होना पड़ा। इसने मध्य वर्ग को वाकई आन्दोलित कर दिया जबकि निम्नतर वर्गों में पहले से ही खाद्यान्न की ऊंची कीमतों के कारण असंतोष व्याप्त था। इसका स्वाभाविक नतीजा एक ऐसे जन-उभार के रूप में सामने आया जिसे महज ताकत के बल पर नियंत्रित नहीं किया जा सकता था। इसके फलस्वरूप जनता का विरोध जनतंत्र के एक आन्दोलन के रूप में विकसित हो गया जिसने अंततः बी.एस.पी.पी. शासन का अंत कर दिया। बर्मा में सैनिक शासन को गैर-बर्मी जातीय अल्पसंख्यों द्वारा कभी भी स्वीकार नहीं किया गया, जिन्होंने अपनी स्वायत्तता पर बल देते हुए लम्बे समय तक हथियारबन्द छापामार कार्यवाहियां जारी रखी, किन्तु अब तो बहुसंख्यक बर्मी आबादी के बीच भी निजाम ने अपनी वैधता खो दी थी। यद्यपि जनवादी आन्दोलन के दबाव में बी.एस.पी.पी. शासन समाप्त हो गया किन्तु इसकी जगह एक कहीं अधिक बर्बर सरकार ने ले ली जो कि स्वयं को द स्टेट लॉ एण्ड आर्डर रेस्टोरेशन काउंसिल (एस.एल.ओ.आर.सी.) कहती थी और जिसने न सिर्फ देश में आतंक का राज कायम किया बल्कि 1990 के चुनावों के बाद नेशनल लीग फार डेमोक्रेसी (एन.एल.डी.) नामक जनतांत्रिक ढंग से निर्वाचित गुट को सत्ता सौंपने से इंकार भी कर दिया। और न ही जनतंत्र की दिशा में एक शान्तिपूर्ण संक्रमण को सहज बनाने के लिए स्यूकी समेत बंदी नेताओं को रिहा ही किया गया। इस तरह से बर्मा अथवा म्यांमार अभी भी प्रभावी ढंग से सैनिक-शासन के अधीन बना हुआ है।

19.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

19.2.1 ब्रिटिश शासन की स्थापना

बर्मी, अथवा वह बहुसंख्यक जातीय समूह, जो कि उस देश में बसा हुआ है जिसे आज म्यांमार (बर्मा) कहा जाता है, महान चीनी-तिब्बती परिवार के तिब्बती-बर्मी जातीय-भाषाई समूह से संबंधित हैं। उन्होंने नवीं ईसवी क आसपास इस क्षेत्र में प्रवेश किया था तथा स्थानीय लोगों पर अधिपत्य कायम कर लिया था। स्थानीय लोगों को, जो कि शान, मोन, काचिन, कारेन, चिन तथा अराकानी आदि जैसे विभिन्न जातीय समूहों से संबन्धित थे, धीरे-धीरे सीमांत क्षेत्रों की तरफ धकेल दिया गया। उन्हें एक निरंकुश बर्मी बौद्ध राजशाही के जूए के अधीन ले आया गया, जिसकी राजधानी उत्तरी अथवा ऊपरी बर्मा में स्थित अल्वा-आमरापुरा में थी।

ब्रिटिशों के आगमन से पूर्व सौ वर्षों तक कोनबौंग सल्तनत समूचे बर्मा पर शासन करती रही। इसकी सत्ता का संगठन "सकेन्द्रित चक्रों" की उस व्यवस्था से मिलता-जुलता है, जो कि दक्षिण एशिया की अन्य अनेक बौद्ध राजतंत्रों में विद्यमान थी। इसके मायने यह हुए कि राजसी सत्ता केन्द्र के नजदीक अत्यधिक घनीभूत एवं निरंकुश थी। परिधि की तरफ इसने अधिकाधिक बिखराव वाला चरित्र अख्तियार कर लिया था। राजसी सत्ता का यह बिखराव दक्षिण अथवा निचले बर्मा में सबसे अधिक पिलपिला था, जहां हमें स्थानीय रूप से शक्तिशाली जिला गवर्नर अथवा मियोवन तथा शहरी सरदार अथवा मियोथुगयिस की मौजूदगी देखने को मिलती है। केन्द्रीय सत्ता की यह दुर्बलता सीमांत क्षेत्रों में भी देखी जा सकती थी, जहां विभिन्न जातीय अल्पसंख्यकों का वर्चस्व था।

1750 के बाद, विदेश-व्यापार पर राजसी इजारेदारी का ऐलान करके, कोन बाँग राजाओं ने बर्मा को एशियाई समुद्री व्यापार तंत्र से लगभग पूरी तरह अलग कर लिया। कुछ समय तक, बर्मा पश्चिमी साम्राज्यवादी घुसपैठ से बचा रहा। किन्तु 19वीं शताब्दी में, अंग्रेज जो भारत में मजबूती से अपने पांव जमा चुके थे तथा चीनी व्यापार में भाग लेने के लिए उत्सुक थे और बर्मा पर अपनी लालच भरी नजरें डालनी शुरू कर दी थीं। 1852 में, उन्होंने निचले बर्मा पर कब्जा कर लिया। शेष हिस्से, अर्थात् ऊपरी बर्मा को 1886 में मिला लिया गया तथा समूचे देश को ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का एक हिस्सा बना दिया गया।

19.2.2 औपनिवेशिक शोषण तथा राष्ट्रवाद का उदय

अंग्रेजों द्वारा कब्जा हो जाने के बाद बर्मा का दोहरा शोषण होने लगा। उसके पश्चिमी औपनिवेशिक स्वामियों के अतिरिक्त वहां भारतीय व्यापारी, निवेषकर्त्ता तथा शिक्षित मध्यम वर्गीय लोग भी मौजूद थे, जो वहां काम की तलाश में गये थे। समूची अवधि में उसकी अर्थ-व्यवस्था कृषि प्रधान ही बनी रही क्योंकि अधिकांश आबादी इसी क्षेत्र पर निर्भर थी। किन्तु इस क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण बदलाव आ रहे थे। चावल के निर्यात पर लगी पाबन्दी को हटाये जाने से तेजी से वाणिज्यीकरण का रास्ता खुला तथा इर्रापाडी डेल्टा में स्थित उपजाऊ भूमि पर लाभकारी चावल की फसल उगानी शुरू हुई। कुछ ही समय के भीतर बर्मा विश्व खाद्यान्न का भंडार बन गया। यूरोपीय बाजारों में बर्मा के चावल की भारी मांग थी और यह भारतीय उपमहाद्वीप की विशाल आबादी का भी पोषण करता था।

इस तरह चावल-धारक एकल-संस्कृति के रूप में उदित होने का बर्मा के ग्रामीण समाज पर गंभीर असर पड़ा। ब्रिटिश राजस्व प्रणाली तथा वाणिज्यीकरण ने किसानों के समुदाय को बड़े भूस्वामियों, निजी उत्पादकों, काश्तकारों तथा बढ़ते बटाईदारों के वर्ग में रूपान्तिरित कर दिया। भूमि का अलगाव खेतिहरों तथा खासतौर से भारतीय सूदखोरों के लिए एक भयानक समस्या बन गई। इस परिस्थिति ने विदेशी शासन तथा उसके एजेन्टों के खिलाफ रोष पैदा कर दिया। शुरू से ही बर्मा में किसानों द्वारा औपनिवेशिक शासन के खिलाफ प्रतिरोध किया जाता रहा। बढ़ता हुआ ग्रामीण असंतोष 1930-32 के विख्यात साया-सन विद्रोह के समय पूरी तरह से फूट पड़ा। इसके हमलों का मुख्य निशाना यूरोपीय तथा भारतीय सूदखोर थे। इस तरह से इसका उद्देश्य औपनिवेशिक शासन तथा इसके भारतीय व चीनी सहयोगियों द्वारा तैयार की गई शोषणकारी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना था।

1932 में साया-सन विद्रोह के कुचले जाने से बर्मा में असंतोष पर काबू नहीं पाया जा सका। बल्कि इस समय तक एक स्वदेशी शिक्षित मध्यम वर्ग द्वारा उसके स्वाधीनता संघर्ष को एक बिलकुल नई दिशा प्रदान की गई। यह राष्ट्रवाद एक ऐसी पृष्टभूमि में विकसित हुआ जबकि स्थानीय आबादी लगभग पूरे तौर पर शोषित जनता से संबद्ध थी तथा उसके उत्पीड़क साम्राज्यवादी एवं पूंजीवादी विदेशी थे। इस कारण से, बर्मी राष्ट्रवाद अपने समाजवादी लक्ष्य निश्चित करने में सफल हो सका। इसने स्थानीय जनता के किसी भी प्रमुख हित अथवा किसी महत्वपूर्ण तबके को अपने से अलग-थलग कर देने का जोखिम नहीं उठाया। एक ऐसी समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना करने के विचार, जो कि विदेशी शोषण तथा औपनिवेशिक नियंत्रण से मुक्त हो, शिक्षित युवा लोगों के एक समूह के आन्दोलन द्वारा सुस्पष्ट ढंग से अभिव्यक्त हुए, जो कि स्वयं को थाकिन अथवा अपने देश के स्वयं मालिक, कहते थे। धीरे-धीरे इस आन्दोलन से समाज के अन्य वर्ग प्रभावित हो गये जैसे, विद्यार्थी, मजदूर एवं किसान और इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक बृहत् आधार तैयार हो गया। परन्तु थाकिनों में शीघ्र ही अपने सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों को लेकर विभाजन हो गया। कुछ समाजवादी थे और उन्होने सन् 1939 में समाजवादी दल का गठन किया था जिसे जन क्रांतिकारी पार्टी कहा जाता था। एक अन्य वर्ग था जो पूर्ण रूप से कम्युनिस्टों का था और उन्होंने सन् 1944 में बर्मा कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया। इसके अलावा एक तीसरा वर्ग राष्ट्रवादियों का था जिनका समाजवादियों के प्रति बहुत झुकाव था।

19.2.3 जापान द्वारा कब्जा एवं बर्मा की स्वतंत्रता

यह करीब उस समय की बात है जब दूसरा विश्व युद्ध शुरू हुआ और सन् 1942 में बर्मा जापानियों के कब्जे में चला गया। युद्ध के पहले भी कुछ बर्मी नेताओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए, जापानी सहायता द्वारा एक फौज के गठन के बारे में विचार किया था। इस उद्देश्य से ओग सेन, नी विन जैसे अपने घनिष्ट देशवासियों के साथ मिलने टोकियो गया था और वहां उसने सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त किया था। एशिया के अन्य अनेक राजनीतिक नेताओं की भांति उसका भी विश्वास था कि सैनिक रूप से जापान उपनिवेषित एशियाई राष्ट्रों को स्वाधीनता हासिल करने में सहायता प्रदान करेगा। इस आशा के साथ, उसकी नई गठित बर्मा की स्वतंत्र फौज ने जापानियों के युद्ध के प्रयासों को सहायता प्रदान की। बर्मा पर जापानियों के कब्जे के पश्चात इसकी जगह बर्मा सुरक्षा फौज द्वारा ले ली गई जिस पर जापानियों का और भी ज्यादा, सीधा नियंत्रण था। परन्तु जापान ने अपनी मुक्तिदाता की छवि को बनाये रखा। इस विश्वास को दृढ़ करने हेतु अगस्त 1943 को बर्मा को एक औपचारिक स्वतंत्र दर्जा प्रदान किया गया। डाक्टर बा मऊ प्रधान मंत्री बने एवं आंग तान को सुरक्षा मंत्री और बर्मा राष्ट्रीय फौज का कमान्डर-इन-चीफ बनाया गया।

परन्तु शीघ्र ही जापानियों के साथ मोहभंग होना शुरू हो गया। उनके कब्जे के बाद प्रबल रूप से देश का आर्थिक शोषण शुरू हो गया। बर्मा में एक विजेता का शासन कायम कर दिया गया जिसके अन्तर्गत जापानियों एवं स्थानीय बाशिन्दों के बीच जातीय ध्रुवीकरण सम्पूर्ण रूप से था। इन परिस्थितियों में जनवरी 1948 में नू-एटली पैक्ट के द्वारा सत्ता स्थानान्तरण के पश्चात राष्ट्रवादी थानिक नू स्वतंत्र बर्मा के पहले प्रधान मंत्री बने।

इसके पूर्व सन 1947 के पोगलौंग समझौते द्वारा ओंग सेन ने जातीय अल्पसंख्यकों से बर्मा के संगठन में सम्मिलित होने के लिए सहमति प्राप्त कर ली थी।

हमारे लिये राष्ट्रीय आन्दोलन का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें भविष्य के बर्मा के लिये कुछ विशेष महत्व की विरासतें निहित थी। सबसे पहले तो यह कि बर्मी लोगों की राष्ट्रवादिता, यानि बहु संख्यक समुदाय का राष्ट्रवाद, बर्मा—की राजनीति का एक प्रमुख शक्तिशाली अंग बन चुका था। समाजवादियों की विचारधारा में भी एक स्वाभाविक रूप की वैधता आ गई थी क्योंकि इनसे केवल शोषण करने वाले तत्वों के प्रभावित होने की आशा की जाती थी। शेष में इस आन्दोलन के द्वारा एक राष्ट्रीय फौज का निर्माण हुआ और इसने राष्ट्र की स्वाधीनता के संघर्ष में भाग लेकर एक महत्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका निभाई। अगले चालीस वर्ष की स्वतंत्रता के काल में बर्मा की राजनीति पर इन सब घटकों का प्रभाव पड़ना था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) नीचे दी गई जगह का उपयोग अपने उत्तरों के लिए कीजिये।
ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अन्त में दिये उत्तर के साथ कीजिए।

1. बर्मा के प्रमुख जातीय समूहों का पता लगाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

2. बर्मा में राष्ट्रवादी जागृति के कारणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

19.3 संसदीय काल

19.3.1 आरंभिक दिनों की राजनीतिक अस्थिरता

स्वतंत्रता प्राप्त होने के समय से बर्मा में राजनीतिक प्रणाली को ब्रिटिश संसदीय लोकतंत्र के अनुरूप बनाया गया। चुनाव स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से होते थे परन्तु उन पर सदैव फासिस्ट-विरोधी पीपुल्स फ्रीडम लीग (ए.एफ.पी.एफ.एल.) का प्रभुत्व बना रहता था। इस काल में राष्ट्रवाद बर्मा के औसत लोगों को प्रबल रूप से अपने प्रति आकर्षित करता रहा। समाजवाद के सिद्धान्त भी मोटे तौर पर मान्य थे। इसी प्रकार बौद्ध धर्म की संकल्पना भी मान्य थी, जिसको सन् 1960 में राष्ट्रीय धर्म बनाया गया। परन्तु ए.एफ.पी.एफ.एल. सरकार में जब प्रधानमंत्री यू नू के द्वारा सत्ता ग्रहण की थी तब वहां शासन सुगम नहीं था।

स्वतंत्र बर्मा के लोकतांत्रिक रूप से चुने गये मंत्रिमंडल को शुरुआत में कम्युनिस्टों द्वारा चुनौती का सामना करना पड़ा। वे दो वर्गों में विभाजित थे, लाल झण्डे वाले (ट्रॉट्स्काईट) एवं सफेद झण्डे वाले (स्टेलिनिस्ट)। सफेद झण्डे वाले कम्युनिस्टों ने अपने सैद्धांतिक नेता, एम. एन. घोषाल के प्रतिभा सम्पन्न मार्ग दर्शन में ए.एफ.पी.एफ.एल. सरकार की आलोचना यह कह कर करनी शुरू कर दी थी कि वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के एजेंट हैं। उन्होंने एक सशस्त्र विद्रोह का आह्वान किया जो यथार्थ रूप में नये मंत्रिमंडल के सत्ता ग्रहण करने के चार माह पश्चात हुआ। जब बर्मा की सेना का एक वर्ग विद्रोह करके कम्युनिस्टों के साथ मिल गया तो परिस्थिति अत्यधिक संकटपूर्ण लगने लगी। एक समय पर तो रंगून सरकार का राजधानी की सीमाओं के पार नियंत्रण प्रायः समाप्त हो गया। सरकार ने प्रतिआक्रमण किया परन्तु विद्रोह को निर्णायक रूप से कुचलने में असफल रही। एक माह के दीर्घकालिक युद्ध के बाद ही धीरे-धीरे इसका संवेग कम होना शुरू हो गया।

घबराहट का लाभ उठा कर जातीय अल्पसंख्यकों ने देश की राजनीतिक स्थिति को और अस्थिर कर दिया। सबसे बड़ा खतरा करेनों से उत्पन्न हुआ जो एक अलग करेन राज्य चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने करेन नेशनल डिफेन्स आर्गनाइजेशन (के.एन.डी.ओ.) नामक सैन्य दल का गठन किया, जिसने सन् 1948 के अन्त में रंगून पर हमला कर दिया। मण्डाले शहर पर कब्जा कर लिया, इन्सीन को तहस-नहस कर दिया और रंगून पर भी कब्जा करने के अनेक असफल प्रयास किये और बर्मा की सेना को अनेक बार परास्त किया। सन् 1950 में जाकर ही कहीं के.एन.डी.ओ. के दलों को सलवीन नदी के पार की पहाड़ियों तक खदेड़ा जा सका। परन्तु फिर भी काफी बड़े क्षेत्र व्यवहार में उनके नियंत्रण में बने रहे।

इसी बीच कुछ अन्य प्रांतों से भी समस्या उत्पन्न हो गई थी।

पीपुल्स वौलन्टीयर आर्गनाइजेशन (पी.वी.ओ.) के सदस्यों ने, जो कि स्वतंत्रता के पूर्व के दिनों में ए.एफ.पी.एफ.एल. का एक सैन्य दल था, अपने स्वयं के विवर्धन हेतु परिस्थिति का लाभ उठाया। सन् 1949 के मध्य में साम्राज्य के पुलिस दल ने अराकान में विद्रोह कर दिया। अराकान के उत्तरी क्षेत्र में मुजाहिद रंगून सरकार के खिलाफ सर उठाये हुए थे। जब कि अराकान के भीतरी भाग में लाल झन्डे वाले कम्युनिस्ट सक्रिय थे। रंगून में फरवरी सन् 1949 में सरकारी कर्मचारियों ने वेतन में कटौती के खिलाफ हड़ताल कर दी। परिस्थिति सचमुच निराशापूर्ण दिखने लगी और इसने सरकार की ऊर्जा एवं वित्तीय साधनों को सोख लिया।

19.3.2 विकासात्मक योजनाएं

1950-52 जो कि यू नू सरकार के पुख्ताकरण का काल माना जाता है, से पहले सरकार के पास विकासात्मक समस्याओं के बारे में विचार करने के लिए समय और शक्ति का वास्तविक रूप में कमी थी। इस कार्य में समाजवाद मार्ग दर्शक सिद्धान्त के रूप में बना रहा। परन्तु पहले ओंग सान द्वारा और फिर बा स्वी द्वारा इस बात पर बार-बार जोर दिया गया कि इसको बर्मा की विशिष्ट परिस्थितियों और उसकी ऐतिहासिक संपदा के अनुकूल बनाना है। दूसरे शब्दों में समाजवाद के एक बर्मी तरीके की योजना बनानी थी। नये संविधान में सरकार की कल्याण नीति की घोषणा की गई थी और विदेशी आर्थिक प्रवेश पर रोक लगाने हेतु उचित तरीके बताये गये थे। मिसाल के तौर पर इसमें जमीन का स्वामित्व राज्य को सौंपने का प्रस्ताव किया गया था और तदनुसार सन 1948 में खेतिहर मजदूर को कम से कम मजदूरी के बिल के साथ जमीन के राष्ट्रीयकरण की धारा को पारित किया गया था। इसी वर्ष में तैयार की गई, बर्मा के आर्थिक विकास की दो वर्षीय योजना में समाजवादी अर्थव्यवस्था की प्रस्थापना पर विचार किया गया था। इसी वर्ष जून के माह में यू नू ने पन्द्रह सूत्री समाजवादी कार्यक्रम की घोषणा की। इसमें अनेक प्रस्तावों को सम्मिलित किया गया था जैसे, एकाधिकार सम्बन्धी उद्यमों का राष्ट्रीयकरण, विदेशी उद्योग, जमीन इत्यादि और पूंजीवाद के शोषण से मजदूरों, किसानों एवं गरीबों की प्रतिरक्षा की गई थी। परन्तु आगे आने वाले वर्षों में इस दिशा में वास्तविक रूप से कुछ नहीं किया गया। बाद में यू नू ने धीरे धीरे इस परम वामपंथी आधार को छोड़ कर एक सामान्य समाजवादी स्थिति को अपनाया।

स्वतंत्रता के शुरू के कुछ वर्षों में अर्थव्यवस्था के असंतोषजनक प्रदर्शन को देखते हुए बदलाव आवश्यक हो गया था। आर्थिक एवं सामाजिक सुधार का आठवें वर्ष का कार्यक्रम जो "पिडावथा" (कल्याणकारी राज्य) कार्यक्रम के नाम से विख्यात था और जिसको सन 1952 में शुरू किया गया था, उसने अपनी दिशा को समाजवादी बनाये रखा था। सन 1955 तक इसकी असफलता सुस्पष्ट रूप से प्रकट होने लगी एवं पूंजीवादी विरोधी नारों में कमी होने लगी। अब निजी पूंजीवादी उद्यमों को स्वीकारे जाने की अधिक सम्भावना प्रतीत होने लगी थी। सन 1957 में यू नू द्वारा घोषित अगली चार वर्षीय योजना में बदलाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगा था। हालांकि समाज सुधार के लक्ष्य को बनाये रखा गया था परन्तु स्वदेशी एवं विदेशी उद्यमों में निजी सम्पत्ति लगाने पर अधिक बल दिया गया था। इसके बाद बर्मी जीवन की वस्तुस्थितियों में समाजवाद की भूमिका का महत्व कम होना शुरू हो गया। फिर भी परिणामस्वरूप आर्थिक विकास में कोई गतिशीलता नहीं हुई बल्कि आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों प्रकार अव्यवस्थाओं का स्थायीकरण हो गया।

19.3.3 जातीय अल्पसंख्यक एवं बर्मीकरण

राजनीतिक अव्यवस्था का प्रमुख कारण डेल्टाई मुख्य भूमि के बाहरी क्षेत्रों में ए.एफ.पी.एफ.एल. सरकार की वैधता की कमी थी। जो प्रमुख राजनीतिक संस्कृति यहां प्रस्तुत की गई थी वह बर्मी राष्ट्रवादिता का एक सम्मिश्रण, बौद्ध मत के कुछ सिद्धान्तों और समाजवाद के कुछ अस्पष्ट नियमों के रूप में थी। और बर्मीकरण के नाम पर सरकार ने इसे अराकानियों, चिनों, काछिनों, करेनों, कायाहों, मौनों एवं शानों जैसी, एथनिक जातियों पर थोपने का प्रयत्न किया। बर्मी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में लागू कर के एवं बौद्ध धर्म को राज्य के धर्म से रूप में घोषित कर के बहुसंख्यक बर्मियों की संस्कृति का प्रभुत्व स्थापित किया गया। सन् 1948 के संविधान में भी कोई संधि सम्बन्धी व्यवस्था प्रस्तुत नहीं की गई थी। राज्य की सत्ता एवं साधन सब केन्द्रीय सरकार के हाथों में केन्द्रित थे। इसके फलस्वरूप अराकानियों, चिनों काछिनों, करेनों, कायाहों, मोनों, एवं शानों जैसे जातीय अल्पसंख्यकों में अपनी क्षेत्रीय पहचानों को ले कर क्रोधपूर्ण निराशा की अनुभूति जागृत हो गई। इनमें से अनेक ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया जिससे सन् 1950 के अन्त में साम्राज्य तितर-बितर होता प्रतीत होने लगा।

19.3.4 ए.एफ.पी.एफ.एल. के भीतर आन्तरिक कलह एवं तख्ता-पलट

अन्त में राज्य से स्थानीय कर्मचारियों को सत्ता का हस्तांतरण कर के एवं सेना व सरकार को वास्तविक जनता के संगठन के रूप में परिवर्तित कर के यू नू प्रायः राज्य व्यवस्था को और अधिक लोकतांत्रिक बनाने की बात किया करते थे। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। और उसके बाद ए.एफ.पी.एफ.एल. दल की एकता को आन्तरिक मतभेदों एवं व्यक्तिगत झगड़ों के कारण खतरा उत्पन्न हो गया था। कम्युनिस्टों के बाद ही समाजवादियों ने भी ए.एफ.पी.एफ.एल. से अलग हो जाने का निश्चय कर लिया था। सन् 1956 में आन्तरिक झगड़ों ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि दल की व्यवस्था करने हेतु यू नू को प्रधान मंत्री पद से एक वर्ष के लिए हटना पड़ा।

जून सन् 1958 में दल के औपचारिक रूप से विभाजन के बाद सत्ता का भार एक साफ-सुथरी ए.एफ.पी.एफ.एल. की सरकार ने सम्भाला जिसके प्रधान मंत्री भी यू नू ही बने। परन्तु परिस्थिति इतनी अस्थिर बनी रही कि सितम्बर 1958 में सत्ता का अस्थायी रूप से स्थानान्तरण जनरल नी विन की अध्यक्षता में एक प्रभारी सरकार को करना पड़ा। इससे स्वाधीनता के पूर्व की बर्मा की राष्ट्रीयग सेना के अनुभवी अफसर को राजनीतिक सत्ता का यथार्थ में स्वाद मिल गया। परन्तु इस बार उसने अपने वचन को निभाया और सन् 1960 में यू नू की अधीनस्त लोकतांत्रिक रूप से चुनी हुई सरकार को सत्ता सौंप दी। इस नये सुधार के बाद की पीडोन्गसू सरकार का काम भी सन्तोषप्रद नहीं था। इसके अलावा जातीय अल्पसंख्कों द्वारा की जाने वाली राजनीतिक स्वायत्तता की मांग ने बहुत अधिक गंभीर राजनीतिक स्थिति एवं सुरक्षा समस्या उत्पन्न कर दी थी। इस स्थिति में ओंग सान के पहले के निकट सहयोगी, समाजवादी जनरल नी विन ने 2 मार्च 1962 को अहिंसक तख्ता पलट के जरिए सत्ता पर कब्जा कर लिया। बर्मा में इस प्रकार जो सैनिक सरकार सत्ता में आयी वह अगले छब्बीस वर्ष तक निर्विघ्न रूप से शासन करती रही।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) नीचे दिये स्थान का उपयोग अपने उत्तर हेतु कीजिये।
ii) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर के साथ अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. स्वतंत्रता के बाद बर्मी राजनीति की अस्थिरता के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. बर्मा में समाजवाद के महत्वपूर्ण लक्षणों का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

19.4 फौजी शासन

19.4.1 नई राजनीतिक व्यवस्था

अपने राजनीतिक अनुभव से नी विन ने यह जान लिया कि सत्ता में बने रहने के लिए उनको जितना शीघ्र सम्भव हो सके सैनिक शासन को राजनीतिक स्वरूप दे देना होगा। इसलिए सन् 1962 में उन्होंने एक नये समाजवादी दल का सूत्रपात कर दिया जो बर्मा समाजवादी कार्यक्रम दल (बी.एस.पी.पी.) के नाम से जाना जाने लगा। इसने बर्मा के समाज एवं अर्थव्यवस्था को समाजवाद के बर्मी तरीके द्वारा पुनः व्यवस्थित करने का वायदा किया। यह घोषणा की गई कि इसे संसदीय लोकतंत्र द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

चूँकि इस पद्धति को आजमाया जा चुका था, इसको जांचा जा चुका था और यह एक परिपक्व जनमत न होने के कारण असफल हो चुकी थी। इसलिए अब एक समाजवादी बर्मा के पुनःनिर्माण का उत्तरदायित्व किसी ऐसे प्रभावशाली दल संगठन को सौंपा जाना चाहिए जिसको राजनीतिक सत्ता का पूर्ण एकाधिकार प्राप्त हो। इस दल का तंत्र सम्पूर्ण देश की जनता में फैला होना चाहिए—विशेष रूप से किसानों एवं मजदूरों में। फिर भी शुरुआत में इसे एक कार्यकर्त्ता-आधारित पार्टी के रूप में बना रहना था जिसके केन्द्र में कार्यकर्त्ताओं का एक न्यूक्लियस सम्मिलित हो। इसके सर्वोच्च प्राधिकार एक क्रान्तिकारी परिषद में निहित होने थे जिसमें केवल नी विन के निकट-सम्पर्क के कुछ उच्चकोटि के सैनिक अफसरों को सम्मिलित किया जाना था। इसको कुछ उच्च सत्ता प्राप्त कमेटियां नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त था, जैसे केन्द्रीय व्यवस्थापक या संगठन कमेटी, अनुशासन कमेटी, समाजवादी अर्थव्यवस्था नियोजन कमेटी। इसे निर्वाचन केन्द्रों एवं उत्पादन की शाखाओं और यदि आवश्यक हुआ तो बस्तियों एवं पहाड़ी इलाकों के आधार पर, प्रमुख दल इकाइयां नियुक्त करने के भी अधिकार थे। दल इकाइयां गांवों, वार्डों, सड़कों एवं गलियों, मिलों, कारखानों इत्यादि में दल समूहों को नियुक्त करेंगी। क्रान्तिकारी परिषद के अध्यक्ष नी विन स्वयं क्रान्तिकारी परिषद के अनुमोदन से मंत्रिमंडल को नियुक्त करेंगे।

इस प्रकार संगठन के ढांचे में सुधार किया गया जिसमें आन्तरिक रूप से आम जनता तक पहुंचने वाले प्रभावशाली दल तंत्र को प्रशासन सम्बन्धी संगठन से जोड़ दिया गया। सम्पूर्ण व्यवस्था का सर्वोच्च निर्यत्रण जनरल नी विन के शक्तिशाली नेतृत्व में क्रान्तकारी परिषद की सर्वोच्च शाखा को सौंपा गया। इसके बाद सन् 1964 में राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध लगा दिया गया और उनके नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। सन् 1966 में निजी समाचारपत्रों एवं जन-संचार माध्यमों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस प्रकार नी विन के शक्तिशाली शासन को संगठित किया गया। परन्तु सैनिक शासकों के लिए छठे दशक का आखिरी भाग ज्यादा सुगम नहीं था। अर्थव्यवस्था बिगड़ रही थी और देश के अनेक भागों में जनता का विरोध उबल रहा था। इस परिस्थिति ने शासक गुट को अपने शासन को वैधता प्रदान करने हेतु सार्वजनिक सहमति द्वारा कुछ करने पर बाध्य कर दिया। इस पृष्ठभूमि में बी.एस.पी.पी. का पहला सम्मेलन सन् 1971 में हुआ।

यहां यह निर्णय लिया गया कि साधारण, असैनिक जनता को शामिल कर के कैडर-आधारित पार्टी को आम जनता की पार्टी के रूप में परिणित कर दिया जायेगा। इस निर्णय के बाद व्यापक रूप से सदस्य बनाने का अभियान शुरू कर दिया गया जिसके फलस्वरूप बर्मा की एक-तिहाई वयस्क जनता पूर्णरूप से या उम्मीदवार सदस्यों के रूप में बी.एस.पी.पी. की सदस्य बन गई या फिर जनता की परिषदों जैसे सहायक दलों के द्वारा उससे सम्बद्ध हो गई। इनमें से अनेक को नीचे के स्तर का दल का नेता एवं कार्यकर्ता भी बनाया गया। इससे आशा की गई थी कि यह आम जनता में राजनैतिक व्यवस्था का अंग होने की भावना जागृत करेगी। इसके विपरीत दल में सेना के प्रभुत्व को सावधानीपूर्वक बनाये रखा गया था। सन् 1985 में दल के पांचवें सम्मेलन के समय सैनिक दलों एवं अर्धसैनिक इकाइयों में से 94% दल के सदस्य हो चुके थे। वे दल ही कुल सदस्यता का 60% भाग थे। उच्च श्रेणी के नेतृत्व का भार उन सैनिक अफसरों को सौंपा गया था जो जनरल नी विन के विश्वस्त व्यक्ति थे। अन्त में सन् 1974 में जारी किए गये संविधान ने इस एकदलीय शासन को सरकारी रूप से मान्यता प्रदान कर दी। इस दल का निर्माण जनता के दल के रूप में किया गया था परन्तु इस पर शक्तिशाली सैनिक तानाशाही का प्रभावपूर्ण नियंत्रण था।

19.4.2 आर्थिक विकास की समस्याएं

बर्मी नमूने के समाजवाद की उक्तियां जैसा कि हम देख चुके हैं, किसी भी तरह से कोई नई अवधारणा नहीं थी। नये निजाम द्वारा पेश की गई समाजवादी विचारधारा ने अपने पूर्ववर्तियों की भांति उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करने का प्रावधान किया, जिन पर राज्य अथवा सहकारी संस्थाओं अथवा संगठित यूनियनों का स्वामित्व रहना था, किन्तु निजी उद्यमों को पूरे तौर पर समाप्त नहीं किया जाना था, खासतौर से जिनमें बर्मी लोगों के हित जुड़े हुए थे। इसलिए, राष्ट्रीकरण अधिनियम ने, जो 1963 में आया, मुख्यतः प्रवासी सौदागर पूंजीपतियों, मध्यमवर्गीय कर्मचारियों तथा निवेश कर्ताओं को ही प्रभावित किया। यह नीति धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था तथा सेवाओं के पूर्ण वर्गीकरण की ओर अग्रसर हुई। इसके पश्चात 1956 में भूमि सुधार अधिनियम पारित किया गया। इसने काश्तकारी का उन्मूलन कर दिया तथा भूमिहीन मजदूरों के बीच कुछ अतिरिक्त भूमि का वितरण कर दिया। जहां तक राष्ट्रीय आय के वितरण का प्रश्न है, यह परिकल्पना की गई कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार काम करेगा और भौतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों में उसकी साझेदारी रहेगी जो कि उसके द्वारा किए गये श्रम की मात्रा तथा गुणवत्ता के अनुसार निश्चित होगी। हालांकि एक काल्पनिक लक्ष्य के तौर पर पूर्ण समानता को स्वीकार किया गया और समुचित सीमा तक आय की असमानताओं को कम करने के लिए उचित उपाय किए जाने का आश्वासन दिया गया। इस तरह से ठोस कल्याणकारी लक्ष्यों का निर्धारण किया गया। साथ ही, सैन्य नौकरशाही द्वारा दौलत एवं सत्ता पर इजारा कायम करने के उसके प्रयत्नों को वैध ठहराने के लिए पर्याप्त तौर पर चौर दरवाजे छोड़ दिये गये।

जहां तक आर्थिक प्रगति का संबन्ध है, नई सरकार ने कृषि-क्षेत्र पर बुनियादी जोर दिया जो कि 1960 में सकल घरेलू उत्पाद का 33% हिस्सा रहा था। कृषि-उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक उपाय किए गये जैसे कृषि ऋणों का प्रावधान, खेती के विकसित तरीकों की शुरुआत, खाद की सुविधा, बेहतरीन किस्म के बीजों का उपयोग, भूमि उद्धार तथा सिंचाई। किन्तु इन सबके बावजूद, 1960 तथा 1970 के बीच कृषि की वार्षिक वृद्धि दर महज 4.1% ही रही—और

न ही धान की पैदावार में जिसका बर्मा की कृषि पर वाकई प्रभुत्व था, सैनिक शासन के पहले दशक के दौरान कोई सराहनीय वृद्धि देखी गई। औद्योगिक क्षेत्र में भी स्थिति संतोषप्रद होने से कोसों दूर थी। उद्योग में सार्वजनिक निवेश की मात्रा इस अवधि (1960-61) में 36% से बढ़कर 1970-71 में 37% हो गई। किन्तु सार्वजनिक निवेश में इस वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन में वृद्धि न हो सकी जबकि ताजा निजी निवेश नाममात्र का ही बना रहा। विदेशी निवेशों से भी लोग कतराते रहे क्योंकि सरकार दृढ़ता के साथ निरंकुशता की नीति पर चलती रही। इसके परिणामस्वरूप 1960 तथा 1970 के बीच असौसत वार्षिक वृद्धि दरें, औद्योगिक क्षेत्र में 3.1% तथा उत्पादन क्षेत्र में 3.7% ही रही। 1960 के अंत तक बर्मा एक भयानक आर्थिक संकट की गिरफ्त में आ चुका था, जिसमें सकल घरेलू उत्पादन की औसत वृद्धि-दर निराशाजनक हद तक धीमी थी, 1960 तथा 1970 के बीच मात्र लगभग 2.6%।

इसलिए, 1971 में बी.एस.पी.पी. की पहली पार्टी कांग्रेस में, आर्थिक विकास के प्रश्न को गंभीरता से लिया गया। इसने "बीस वर्ष के लिए विकास कार्यक्रम" शुरू करने का निर्णय लिया जिसका उद्देश्य 1993-94 तक देश में एक समाजवादी अर्थव्यवस्था कायम करना रखा गया, जिसमें सभी संपन्नता से जी सकें। 20-वर्षीय योजना को चार पंचवर्षीय योजनाओं में विभाजित किया जाना था। चार योजनाओं के समाप्त होने पर (चौथी योजना का समापन 1985-86 में हुआ), तीसरी योजना सबसे अधिक सफल साबित हुई क्योंकि औसत वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर, इस योजना अवधि में 6.7% रही। किन्तु कुल मिलाकर आर्थिक प्रगति की दर काफी धीमी ही रही। 1965 तथा 1980 के बीच यह केवल 3.9% तथा 1980 व 1986 के बीच केवल 4.9% रही।

वृद्धि-दर में और अधिक बढ़ोत्तरी हासिल करने के लिए, बर्मा को एक तकनीकी उपलब्धि हासिल करने की जरूरत थी, जिसके लिए विदेशी सहायता की जरूरत पड़ी। किन्तु शुरू से ही नये निजाम ने शेष दुनिया के साथ आर्थिक संपर्क बनाकर नहीं रखा था, क्योंकि प्रायः इसी बहाने से विदेशी राजनैतिक हस्तक्षेप भी हुआ करता है। दूसरी तरफ, उसका विदेशी मुद्रा भंडार का खस्ता हाल था क्योंकि बर्मा की प्रमुख निर्यात वस्तु, चावल का उत्पादन आशातीत ढंग से नहीं बढ़ पाया था। इसके परिणामस्वरूप, आवश्यक औद्योगिक मशीनरी, कलपुर्जों तथा कृषि-निवेशों का आयात करने में देश को कठिनाई हुई। इसका नतीजा एक तरह की आर्थिक अवरुद्धता के रूप में सामने आया, जिससे बर्मा स्वयं ही बाहर नहीं निकल सकता था। अर्थव्यवस्था में पुनः गिरावट आयी जिसकी वजह या तो अव्यवस्था थी अथवा नौकरशाही के भीतर भारी भ्रष्टाचार था।

किन्तु इस धीमी आर्थिक प्रगति के साथ-साथ वितरणमूलक न्याय उच्चतर स्तर का था। 1963 से सभी आवश्यक वस्तुओं के वितरण पर खाद्य पदार्थों की "जनता-दुकानों" की एक [illegible] के जरिए सरकार का नियंत्रण कायम था तथा सभी उपभोक्ता वस्तुओं की काफी उचित दरों पर जनता को आपूर्ति की जा रही थी। यह सही है कि एक फलता-फूलता काला बाजार हमेशा वहां बना रहा था। किन्तु उसके बावजूद, चावल अथवा न्यूनतम आवश्यक कपड़ों की आपूर्ति में कोई खास कमी नहीं थी। 1978-79 से सरकार ने जनता को न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए जन स्वास्थ्य सेवा योजना शुरू की जिसके परिणामस्वरूप शिशु मृत्यु-दर में कमी आयी तथा औसत जीवन प्रत्याशा में सराहनीय वृद्धि हुई, खासतौर से अन्य दक्षिण एशियाई देशों की तुलना में। यदि हम तीन औसत सूचकों, अर्थात् जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु-दर तथा साक्षरता, द्वारा आंकलित जीवन की भौतिक गुणवत्ता के सूचकांक पर ध्यान दें तो यह तुलनात्मक स्थिति और भी स्पष्ट रूप से सामने आ जायेगी। 1984 में बर्मा के लिए सूचकांक 55 था। भारत के लिए 44, पाकिस्तान 40 तथा बंगलादेश के लिए 36 था। इस तरह तमाम जनतांत्रिक अधिकारों में कटौती तथा कल्याणकारी उपायों को शुरू करके बी.एस.पी.पी. ने अपने शासन को बनाये रखने की कोशिश की। ऐसी व्यवस्था तब तक जारी रह सकती थी जब तक कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली भली प्रकार से काम करती रहे किन्तु एक बार सस्ता चावल मिलना कठिन हो जाय तो इस उत्पीड़क निजाम को बर्दाश्त करने का लोगों को कोई और कारण नहीं मिल सकता। और 1987 से, ठीक यही होना शुरू हो गया।

19.4.3 प्रारंभिक प्रतिरोध

डंडे के बल पर शासन करने की बी.एस.पी.पी. की नीति 26 वर्ष तक इसके शासन के विरुद्ध किसी प्रमुख लोकप्रिय प्रतिरोध को रोके रखने में सफल रही। प्रतिरोध निश्चित रूप से वहां मौजूद था और उनमें से कुछ तो बहुत मामूली चरित्र वाले भी नहीं थे। बर्मा की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिरोध तथा जातीय अल्पसंख्यकों द्वारा चलाए गये सशस्त्र संघर्ष को छोड़ भी दिया जाय, तो भी रंगून शहर के भीतर ही जनतंत्र की बहाली के कई आन्दोलन चल रहे थे। जुलाई 1962 में तथा नवम्बर 1963 में पुनः रंगून विश्वविद्यालय परिसर में छात्रों के विद्रोह हुए। मई-जून 1974 की हड़तालें हुईं तथा उसके बाद छात्रों के आन्दोलन हुए तथा यह घटना अगले वर्ष दोबारा से घटी। फिर जुलाई 1976 में कुछ युवा सैनिक अधिकारियों द्वारा एक असफल विद्रोह किया गया, जिन्होंने नयी समाजवादी व्यवस्था की भर्त्सना की। किन्तु इन आन्दोलनों में मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि के लोगों के अलावा जनता के अन्य हिस्से शामिल नहीं हुए। 1974 का फसाद ही इसका एकमात्र अपवाद है जिसमें मजदूर वर्ग ने सक्रिय भूमिका अदा की थी। लोकप्रिय प्रतिरोध के अभाव की वजह यह थी कि आम आदमी के लिए अब भी भोजन तथा कपड़े की कोई खास तंगी नहीं थी। 1974 में ही ऐसा हुआ जबकि खाद्यान्न की असामान्य कमी हो गई जिसने रंगून के मजदूर वर्ग को विचलित कर दिया।

1986-87 में आर्थिक स्थिति ने पुनः खतरनाक स्तर तक खराब होकर संकट का रूप ले लिया। निम्न वृद्धि-दर जो कि

बर्मी अर्थव्यवस्था की स्थाई समस्या बन गई थी, उसकी सरकार के लिए पांव की बेड़ी साबित हुई। हालांकि राष्ट्रीय मुनाफे के स्रोतों के आकार में वृद्धि हुई (1986 में बर्मा में सकल घरेलू उत्पाद मात्र 8,180 मिलियन यू.एस. डॉलर था। किन्तु इसमें व्यक्ति के हिस्से में वृद्धि नहीं हुई क्योंकि जनसंख्या भी बढ़ गई। अतः वितरणमूलक न्याय का अर्थ एक तरह से उस गरीबी में साझा करना भर रह गया जो कि लगातार चिन्ताजनक ढंग से बढ़ रही थी। चौथी योजना अवधि (1982-83) से (1985-86) के दौरान अर्थव्यवस्था एक संकट की तरफ बढ़ रही थी, जबकि कुल मिलाकर सकल घरेलू उत्पादन की वृद्धि-दर घट कर 5.5% रह गई। योजना के अंतिम दो वर्षों के दौरान वास्तविक वृद्धि-दर में और अधिक गिरावट आयी और पांचवी योजना की शुरुआत एक संकट की स्थिति में हुई। इस योजना-अवधि के पहले वर्ष, अर्थात् 1986-87 के दौरान वृद्धि-दर महज 1% रही तथा दूसरे वर्ष में इसके लगभग 2.2% तक होने का अनुमान लगाया गया। इसके साथ-साथ उपभोक्ता मूल्य सूचकांक 1987 में बढ़कर 167 के अंक तक पहुंच गया, जिसमें 1980 को आधार वर्ष माना गया था। औसत वार्षिक मुद्रास्फीति दर 1986 में 26.7% तथा 1987 में 28% थी। इस तरह की परिस्थिति में बर्मा ने संयुक्त राष्ट्र के सम्मुख सबसे कम विकसित देश का दर्जा दिये जाने के लिए आवेदन किया जो कि 1987 में स्वीकृत कर लिया गया।

किन्तु इस दौरान सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लगभग ठप्प हो जाने से ही राजनैतिक संकट तीव्र हो गया। 1986-87 में, चावल की सरकारी खरीद में पिछले वर्ष की तुलना में लगभग 49% की गिरावट आयी। इसके कारण थे, ऊंची काला बाजार की कीमतों के साथ-साथ जारी रहते हुए कृत्रिम तौर पर निर्धारित नीची वसूली कीमतें तथा भारी मुनाफे वाले तस्करी के धंधे की बीमारी। इसके साथ ही स्थानीय नौकरशाही की अक्षमता एवं कभी-कभी मिली-भगत ऊपर से मौजूद थी। इस सबका नतीजा यही हुआ कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली लगभग पूरी तरह चौपट हो गई, जिससे आम आदमी खुले बाजार से अत्यंत ऊंचे दामों पर चावल खरीदने के लिए बाध्य हो गया।

इस निराशाजनक स्थिति ने जनरल नी विन को 10 अगस्त 1987 को पार्टी की एक विशेष बैठक में अपनी आर्थिक नीतियों के विफल हो जाने को खुले तौर पर स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया। उसने इन पर पुनः विचार करने का आश्वासन दिया और उसका नतीजा अगले महीने के प्रथम सप्ताह में नाटकीय ढंग से अनेक उपायों की एक शृंखला के रूप में सामने आया। सितम्बर को धान, मक्का जैसी आवश्यक फसलों तथा फलियों एवं दालों की सात किस्मों के व्यापार पर से नियंत्रण हटा लिया गया। इसके परिणामस्वरूप राशन-प्रणाली को जिन्दा रखने की कोशिश करते हुए यह आदेश जारी किया गया कि भू-राजस्व की वसूली अनाज के रूप में की जायेगी तथा थोक-व्यापारियों से 5% टर्नोवर-टैक्स वसूल किया जायेगा, और उसे भी खाद्यान्न के रूप में अदा करना होगा। किन्तु इसके बावजूद खाद्यान्नों की कीमतें तुरन्त ही बढ़ने लगीं। खाद्यान्न के व्यापार में मुनाफों पर अंकुश लगाने के एक अन्य उपाय के तौर पर, सरकार ने 6 सितम्बर को 25, 35 तथा 75 क्यात (बर्मी मुद्रा) के नोटों का चलन बन्द कर दिया। इस तरह एक गणना के अनुसार करीब 80% मुद्रा नोट, जो कि चलन में थे, अवैध हो गये। इस उपाय ने व्यापारियों व काला बाजारियों पर विपरीत प्रभाव डाला, इसमें कोई संदेह नहीं है किन्तु सबसे बुरा असर मध्यम वर्ग पर पड़ा। चूंकि विमुद्रीकरण की घोषणा 6 सितम्बर के दोपहर बाद की गई थी, जो कि शनिवार का दिन था, अर्थात् महीने का पहला सप्ताह-अंत, जबकि बर्मी जनता के नौकरीपेशा मध्यमवर्गीय हिस्से ने अपना मासिक वेतन लिया ही था। इस घोषणा से पहले कोई पूर्व चेतावनी नहीं दी गई और यहां तक कि उच्च पदों पर बैठे अधिकारियों को भी इसकी भनक नहीं लगी। अतः एक ही झटके में उन्हें एक महीने के वेतन से हाथ धोना पड़ा और इसका कोई मुआवजा भी नहीं मिला। इससे मध्यम वर्ग भड़क उठा, जबकि निम्नतर वर्ग पहले से ही बेतहाशा बढ़ती खाद्यान्न की कीमतों से परेशान थे। इसका स्वाभाविक परिणाम एक ऐसी ज्वाला के रूप में सामने आया जिसे किसी भी राहत के जरिए रोका नहीं जा सकता था।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।
ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अन्त में दिये उत्तरों से कीजिए।

1. बर्मा में एक दलीय शासन की स्थापना के मुख्य कारणों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. बर्मा द्वारा अपनाई गई विभिन्न विकास नीतियों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

.....

19.5 जनतंत्र के लिए आन्दोलन

विमुद्रीकरण के तुरंत बाद रंगून में खूनी दंगा फसाद हो गया जिसे निर्ममता पूर्वक कुचल दिया गया और रंगून विश्वविद्यालय बंद कर दिया गया। किंतु मार्च तथा जून 1988 में पुनः असंतोष फूट पड़ा। जहां एक तरफ दंगा पुलिस द्वारा प्रदर्शनकारी छात्रों को पीटा जा रहा था वहीं लून टीन 'ने विन अर्थव्यवस्था' में नई जान फूंकने के लिए कुछ नीतिगत सुधारों पर विचार कर रहा था। वह जिन उपायों पर चिंतन कर रहा था वे वही थे जिन्हें अपनाए जाने के लिए उसके संभावित विदेशी दाताओं द्वारा लम्बे समय से दबाव डाला जा रहा था, अर्थात् निजी उद्यमों को अधिक सुविधाएँ मुहैया कराना तथा विदेशी निजी पूंजी के लिए दरवाजे खोल देना। शायद उसकी पार्टी के भीतर, पिछले 26 वर्षों के दौरान अपनाई गई निरंकुश सत्ता की पिछली नीति में इस तरह के जबरदस्त बदलाव लाये जाने के खिलाफ, ख़ासा विरोध मौजूद था। यही वह पृष्ठभूमि थी जिसमें 23 जुलाई 1988 को पार्टी के एक विशेष अधिवेशन में ने विन ने त्यागपत्र देने की पेशकश की और इस आशय का फैसला करने के लिए जनमत संग्रह कराये जाने का सुझाव दिया कि क्या एक दलीय शासन को जारी रखा जाना चाहिए अथवा नहीं। किन्तु उसके सुझाव को सेन ल्विन द्वारा रद्द कर दिया गया, जो कि भयानक रूढ़िवादिता के लिए विख्यात था और शासक चौकड़ी में, जिसने अब सत्ता हथिया ली थी, एक शक्तिशाली व्यक्ति था। बर्मा का अध्ययन करने वाले अनेक लोगों का मानना है कि इस मौके पर कुछ उदार छूटें तथा आर्थिक सुधारों के जरिये मध्यम वर्ग को शान्त किया जा सकता था। किन्तु जब सेन ल्विन ने सत्ता संभाली तो इससे जनता के सब्र का बाँध टूट गया, क्योंकि यही वह व्यक्ति था जो कि बी.एस.पी.पी. के पिछले 26 वर्ष के शासन के दौरान हुए तमाम दमनकारी कृत्यों के लिए प्रमुख तौर पर दोषी था। घृणित लोन टीन के पीछे भी उसी का दिमाग था, जिसने पिछले समय में छात्र प्रदर्शनकारियों को निर्ममता के साथ यातनाएं दी थी और इससे उसे जल्लाद की हैसियत हासिल हुई थी। अतः उसके सत्ता में आने का तुरन्त भारी विरोध होने लगा तथा घटनाक्रम अपनी ही दिशा तय करने लगा। दवाबों के चलते सेन ल्विन ने भी यह घोषणा की कि वह निजी व्यापारियों को अधिक सुविधाएँ देने अथवा निजी विदेशी पूंजी निवेश की इजाजत देने जैसे कुछ उदार आर्थिक सुधार शुरू करेगा। किन्तु अब उसकी ईमानदारी पर जनता को भारी संदेह था क्योंकि असीमित दमन भी साथ ही साथ जारी रहा। बहुदलीय जनतंत्र की मांग में विरोध आंदोलन ने अब नया जोर पकड़ा और इसका नेतृत्व छात्रों तथा बौद्ध-भिक्षुओं के हाथों में था। इस परिस्थिति से निपटने के लिए शीघ्र ही समूचे देश में सैनिक शासन की घोषणा कर दी गई।

19.5.1 बी.एस.पी.पी. शासन का अंत

नई सरकार के दमनकारी उपाय जनता के विरोध को दबा नहीं सके जिसने जनतंत्र को बहाली तथा नये राष्ट्रपति के इस्तीफे की मांग की। खासतौर से 8 अगस्त 1988 को, रंगून में एक विशाल रैली हुई जो कि निश्चित रूप से पिछले 25 वर्षों के इतिहास में सबसे बड़ी रैली थी तथा जिसमें सैनिक शासन की परवाह न करते हुए करीब 100,000 लोगों ने भाग लिया। घबराये हुए अधिकारियों ने हिंसा शुरू की। किन्तु यह राज्य द्वारा बरपाई गई आतंक की मुहिम भी सरकार-विरोधी फसादों पर काबू नहीं पा सकी जिन्होंने अंततः 12 अगस्त को सेन ल्विन को इस्तीफा देने पर विवश कर दिया यानि उस शासन के मात्र 17 दिनों के पश्चात् ही, जिसे एक वास्तविक आतंक राज कहा जा सकता है।

एक सप्ताह बाद, भूतपूर्व एटोर्नी जनरल भौंग भौंग 1962 के तख्ता पलट के बाद संघ के पहले असैनिक राष्ट्रपति बने। उनके नेतृत्व में, बी.एस.पी.पी. ने तीन महीनों के भीतर एक बहुदलीय आम चुनाव कराये जाने की पेशकश की। किन्तु इस छूट से भी विपक्षी ताकतों को राजी नहीं किया जा सका, जिनमें मुख्यतः छात्र, बौद्ध-भिक्षु नागरिक सेवा के अधिकारी तथा मजदूर शामिल थे। उन्होंने अब एक अंतरिम सरकार की स्थापना किये जाने की मांग की। राजधानी रंगून तथा उसके बाहर विशाल जनतंत्र समर्थक रैलियों का आयोजन किया जाता रहा। और अब सेना तथा खासतौर से वायु-सेना से भी विद्रोह के स्वर सुनाई देने लगे। इसलिए, जनता को पुनः राहत के तौर पर भौंग भौंग ने सेना के अफसरों से पार्टी से इस्तीफा देने के लिए कहा। यह एक ऐसा कदम था जिसने उन तमाम राजनैतिक सुविधाओं से उन्हें वंचित करने का खतरा पैदा कर दिया जिनका उपभोग वे पिछले 26 वर्षों से करते आये थे। इन परिस्थितियों में, सेना के प्रमुख जनरल सौ भौंग ने 18 सितम्बर 1988 को असैनिक राष्ट्रपति से सत्ता छीन कर अपने हाथ में ली और एक 9 सदस्यीय कैबिनेट के गठन का ऐलान किया, जिसने स्वयं को स्टेट लॉ एण्ड आर्डर रेस्टोरेशन कॉउन्सिल (एस.एल.ओ.आर.सी.) कहा। इसमें केवल एक ही असैनिक सदस्य रखा गया और उसे भी गैर-महत्वपूर्ण पद सौंपा गया। सत्ता हथियाने के तुरंत बाद, सैनिक जुण्टा ने पूरे तौर पर आतंक की मुहिम छेड़ दी और दो दिन में ही करीब 1000 लोगों की हत्या कर दी। साथ ही यह भी जाहिर हुआ कि बी.एस.पी.पी. का भूतपूर्व अध्यक्ष और पुराना नेता ने विन परदे के पीछे रहकर काम कर

रहा था। विरोधी छात्रों ने शुरू में प्रतिरोध करने की कोशिश की, किन्तु फिर वे भूमिगत हो गये। कुछ ने सीमा पार करके थाईलैण्ड तथा भारत में जा कर शरण ली। कुछ अन्य जातीय विद्रोहियों के पास चले गये और हथियारों का प्रशिक्षण लेने लगे। भयानक सैनिक उत्पीड़न के चलते आंदोलन अब विभिन्न दिशाओं की ओर खिंचना शुरू हो गया। बर्मा की स्थिति अब उस समय से भी बदतर हो गयी जितनी कि आन्दोलन छेड़े जाने से पूर्व हुआ करती थी। सेना के आधिपत्य वाली एकमात्र पार्टी (बी.एस.पी.पी.) द्वारा शासित होने की बजाय, अब देश पर प्रत्यक्ष सैनिक शासन लागू हो गया।

19.5.2 जनतंत्र-समर्थक आन्दोलन की कमजोरियां

आरंभिक चरण में, जनतंत्र के लिए आन्दोलन स्वतःस्फूर्त असंगठित तथा नेतृत्वविहीन था। क्योंकि पिछले 26 वर्षों तक चले एक दलीय शासन के दौरान तमाम संगठित विरोध को कुचल दिया गया था। लगभग अराजकता की इस स्थिति में एकमात्र संगठित शक्ति छात्र ही थे, जिन्होंने अब औपचारिक रूप से, पुनः एकजुटता के प्रतीक के तौर पर ऑल बर्मा स्टूडेण्ट यूनियन की पुर्नस्थापना की घोषणा की। यह प्रतीकात्मक कार्यवाही रंगून विश्वविद्यालय परिसर में ठीक उसी स्थान पर की गई जहां 26 वर्ष पहले जुलाई 1962 में, से ल्विन की फौजों ने 148 छात्रों को गोलियों से भून डाला था और इस तरह नव-स्थापित सैनिक-शासन के विरुद्ध पहले संगठित प्रतिरोध को कुचल दिया था। छात्रों ने अब शांतिपूर्ण तरीकों से जनतंत्र की घोषणा की और जातीय हथियारबंद विद्रोहियों अथवा बर्मा की कम्युनिस्ट पार्टी से हथियारों की मदद लेने से इंकार कर दिया। इस शांतिपूर्ण संघर्ष में वे बौद्ध-भिक्षुओं, व्यावसायिक वर्गों तथा मजदूर वर्ग से ही सहायता लेते रहे जिससे आन्दोलन का शहरी मध्यम वर्गीय चरित्र उद्घोषित हुआ। यहां तक कि अपने चरमोत्कर्ष की अवधि के दौरान भी यह मौडाले से मौलमीन तक के मध्य बर्मा के शहरी क्षेत्रों तक ही सिमटा रहा और ग्रामीण क्षेत्र लगभग इससे अप्रभावित ही रहे। स्थानीय स्तर के शहरी आन्दोलनों को उच्चतर प्रहारक शक्ति के साथ कुचल देना हमेशा आसान रहता है। और बर्मा में 1988-89 में ठीक यही सब हुआ। छात्रों ने शुरू में नौसीखियों की तरह राज्य की हिंसा का प्रतिरोध करने की कोशिश की, और फिर जंगलों में चले गये, सीमापार जातीय विद्रोहियों से जा मिले अथवा पड़ोसी देशों में चले गये।

अन्य नेता जो कि आन्दोलन के दौरान उभरे, उनमें भी समुचित ढंग से इसका नेतृत्व करने के लिए अनुभव एवं दृष्टि का अभाव था। उनमें से सबसे प्रमुख औंग ग्यी था जिसने ने विन को कुछ खुले पत्र लिखे जिनमें उसकी समाजवादी आर्थिक नीतियों की आलोचना की गई थी। अन्य नेताओं जनरल टिको, जिसे 1983 में बी.एस.पी.पी. से निकाल दिया गया था, तथा 1976 के निष्फल सैन्य विद्रोह का नायक, कैप्टिन विन थीन थे। इस समय के दौरान एक और नाम उभर कर सामने आया था और वह था राष्ट्रवादी जननायक औंग सैन की बेटी डो औंग सान स्यू की का। इन नेताओं में से, शायद यू नू को छोड़कर, किसी को भी राष्ट्रव्यापी राजनैतिक आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए आवश्यक अनुभव प्राप्त नहीं था। और न ही उनमें से किसी के पास पहले से मौजूद कोई प्रभाव क्षेत्र था और इसीलिए उन्हें राजनैतिक समर्थन के लिए पूरे तौर पर छात्रों पर निर्भर रहना पड़ा। सबसे बुरी बात यह थी कि परस्पर विरोधी महत्वाकांक्षाओं ने सैन्य शासन के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाने से भी उन्हें वंचित रखा। नवम्बर 1988 तक, जबर्दस्त बिखराव का प्रदर्शन करते हुए, 230 राजनैतिक दलों ने अपने नामों का पंजीकरण करवाया। इसलिए भयानक दमन के सामने आंदोलन टिक नहीं सका, हालांकि सैनिक शासन के प्रति जनता की घृणा समाप्त नहीं हुई।

19.5.3 1990 के चुनाव तथा उसके बाद

अपने शासन को वैधता प्रदान करने के लिए, एस.एल.ओ.आर.सी. ने जनमत को गुमराह करने के लिए अनेक राजनैतिक उपाय किये। इसकी पहली रणनीति बर्मी राष्ट्रवाद को समाप्त करना तथा राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा के लिए उत्पन्न खतरों को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करना थी। प्रथम प्रतीकात्मक कदम के तौर पर, बी.एस.पी.पी. ने अपना नाम बदल कर नेशनल यूनिटी पार्टी कर लिया। फिर जून 1989 में, औपचारिक तौर पर देश का नाम बदल कर बर्मा से म्याँमार कर दिया गया। इसी तरह, कुछ शहरों के अंग्रेजी तर्ज पर रखे गये नामों को बदल कर उनकी जगह उनके मूल स्वदेशी नाम रखे गये, उदाहरण के लिए रंगून का नाम चून्गून हो गया। अगली 16 मई 1990 के दिन आम चुनाव कराये जाने की घोषणा की गई थी। किंतु घोषणा में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया था कि जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को सत्ता हस्तांतरित की जायेगी। चुनावों की निगरानी के लिए एक निर्वाचन आयोग गठित किया गया। किंतु अनेक राजनैतिक दलों ने इसकी निष्पक्षता पर संदेह व्यक्त किया।

शुरू में लोग चकमे में आ गए और उन्होंने स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों की संभावनाओं के प्रति उत्साह के साथ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। निर्वाचन आयोग में 230 राजनैतिक पार्टियों के पंजीकरण होने के साथ ही राष्ट्रीय एकता पार्टी (अथवा बी.एस.एस.पी.) के विभाजित होने की, आरंभिक संभावना भी शीघ्र समाप्त हो गई। उनमें से 41 ने मिलकर नेशनल लीग फार डेमोक्रेसी नामक एक चुनावी गठबंधन बना लिया। टिन डो उसका अध्यक्ष, तथा औंग सान स्यू की उसकी सचिव बनी। दूसरी तरफ औंग ग्यी, एक अन्य यूनियन नेशनल डेमोक्रेसी पार्टी नामक संगठन का मुखिया बना, जो कि कुछ हद तक एस.एल.ओ.आर.सी, के साथ मैत्रीपूर्ण बन गया। बाद में अनेक पार्टियों ने निर्वाचन आयोग से अपने नाम वापस ले लिये।

किन्तु जो पार्टियां चुनाव लड़ना चाहती थीं, उनमें से किसी का कोई राजनैतिक जन-आधार नहीं था। और न ही अब

उसे तैयार किया जाना संभव था। जब एन.एल.डी. ग्रामीण अंचल में अपना चुनाव प्रचार शुरू करने वाली थी, जो कि अब तक जनतंत्र समर्थक आंदोलन से लगभग अप्रभावित ही रहा था, तो 17 जुलाई 1989 के देश में सैनिक शासन लागू कर दिया गया। स्यू की को घर में नजरबंद कर दिया गया जबकि अन्य शीर्ष नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। करीब 5-6 हजार छात्रों तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार किया गया। जनसभाओं पर पाबन्दी लगा दी गयी, अर्थात् चुनाव-प्रचार को व्यवहारिक तौर पर समाप्त ही कर दिया गया। विदेशी प्रेस को लगभग देश से बाहर खदेड़ दिया गया ताकि बाहरी दुनिया तक खबरें न पहुंच सके।

किन्तु इस तरह की परिस्थितियों में हुए चुनाव के नतीजे काफी विस्मयकारी रहे, जो कि निश्चय ही एक खामोश क्रांति के द्योतक थे। एन.एल.ओ.आर.सी. फिर से विजयी हुई, जिनमें लगभग 70 प्रतिशत सीटों पर उसे स्पष्ट विजय प्राप्त हुई। (485 सीटों पर चुनाव लड़कर इसने 396 सीटें जीतीं)। एस.एल.ओ.आर.सी. ने आधिकारिक तौर पर चुनाव परिणामों को स्वीकार कर लिया, किन्तु जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को सत्ता हस्तांतरित करने से इंकार कर दिया।

यह ऐलान किया गया कि नव निर्वाचित निकाय केवल म्यांमार (बर्मा) के तीसरे संविधान की रचना करेगा। न ही जनतंत्र की ओर शांतिपूर्ण संक्रमण को सहज बनाने के लिए, स्यू की सहित गिरफ्तार नेताओं को रिहा ही किया गया। बर्मा अथवा म्यांमार अभी भी उस सैन्य शासन के प्रभावी नियंत्रण में थे, जिसे 30 वर्ष पहले मार्च 1962 में शुरू किया गया था।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणी : i) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिए उत्तर से कीजिए।

1. बर्मा में जनतंत्र-समर्थक आन्दोलन के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2. बर्मा में जनतंत्र-समर्थक आन्दोलन को कमजोर बनाने में सहायक कारकों पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

19.6 सारांश

बर्मा में गैर-बर्मी जातीय अल्पसंख्यकों द्वारा शासन को कभी भी स्वीकार नहीं किया गया, जिन्होंने अपने स्वायत्ता पर जोर देते हुए लम्बे समय तक हथियारबंद संघर्ष चलाया। धीरे-धीरे निजाम ने बहुसंख्यक बर्मी आबादी के बीच भी अपनी वैधता खो दी। काफी हद तक इसकी वजह से अर्थव्यवस्था में जान डालने के लिए द्विपक्षीय एवं बहु-पक्षीय विदेशी सहायता को स्वीकार करता आया है। 1976 में "एड बर्मा कन्सोर्टियम" की स्थापना की गई थी, जिसमें जापान, फैडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रेलिया तथा संयुक्त राज्य अमरीका को सदस्य देशों के रूप में शामिल किया गया था। जनतंत्र-समर्थक आंदोलन को देखते हुए इन सभी देशों ने अपनी सहायता देना बंद कर दिया। इससे सैनिक सरकार पर भारी दबाव पड़ा क्योंकि सितम्बर 1988 तक पहले ही देश पर विदेशी ऋण का बोझ उसके सकल घरेलू उत्पाद का 70 फीसदी तक हो गया था। ये सभी देश निजी उद्योगों के लिए और अधिक सुविधाओं तथा विदेशी निवेश पर बचे खुचे प्रतिबंधों को भी हटाये जाने की मांग कर रहे थे। बर्मा की सरकार ने 1977 में पहले दबाव के आगे घुटने टेक दिये, जब इसने निजी स्वामित्व के अधिकार का कानून पारित किया था। फिर नवम्बर 1988 में, एस.एल.ओ.आर.सी. ने पुनः निजी विदेशी निवेशों पर से प्रतिबन्ध हटा लिये। यह उम्मीद की जा रही थी कि इससे अधिक विदेशी पूँजी को

आकर्षित किया जा सकेगा और उसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था का पुनरोद्धार तथा सैनिक-शासन को मजबूत किया जा सकेगा।

1989 में, एस.एल.ओ.आर.सी. द्वारा इस दिशा में कुछ और कदम उठाए गए। स्वदेशी निजी निवेशों को प्रोत्साहन देने के लिए 4 संयुक्त क्षेत्र के निगमों की स्थापना की गई। यह उम्मीद की गई कि इससे निजी निवेश को आकर्षित किया जा सकेगा तथा सरकारी नियंत्रण भी सुनिश्चित हो पायेगा। इसके अलावा एक विदेशी निवेश आयोग भी गठित किया गया। मई 1989 में, इसने यह घोषणा की कि नौ विशेष क्षेत्रों में विदेशी निवेश पर कोई पाबंदी नहीं रहेगी। इन क्षेत्रों के लिए अनेक कर रियायतें भी दी गईं। केवल एक ही शर्त थी कि मुनाफों का हस्तांतरण म्यांमार विदेश व्यापार बैंक के जरिये होना चाहिए।

हालांकि यह सही है कि कुछ देशों में ऐसी रियायतों के बाद अनुकूल प्रतिक्रियाएं देखने को मिली हैं, किन्तु एस.एल.ओ.आर.सी. की उम्मीदों से विदेशी निवेश की मात्रा कहीं कम रही। इसका परिणाम निरंतर जारी आर्थिक संकट के रूप में सामने आया जो वर्तमान राजनैतिक पृष्ठभूमि में एक और लोकप्रिय जन-विस्फोट का कारण बन सकता था। सैनिक शासकों ने, इसीलिए थाई सीमांत के पास जातीय विद्रोहियों के खिलाफ बगावत विरोधी उपायों को पुनः शुरू करके जनता का ध्यान बँटाने की कोशिश की तथा बंगलादेश की सीमा के पास मुस्लिम रोहिंगियाओं पर नये सिरे से दमन शुरू किया। इन दोनों ही हरकतों के कारण एस.एल.ओ.आर.सी. को थाई तथा बंगलादेशी सरकार के साथ विवाद में उलझना पड़ा जिससे बर्मी राष्ट्रवाद को उभारने का उसे अवसर हाथ लगा। किंतु शायद यह रणनीति अंततः जनता के आक्रोश को शान्त करने में सफल होने वाली नहीं थी। बर्मा में जनतंत्र के संकट के सवाल पर विश्व-जनमत जागृत होता दिखाई दे रहा था। 1991 का नोबल शांति पुरस्कार ऑंग सेन स्यू की को दिया जाना, जो कि अभी तक घर में नजरबंद हैं, इसका संकेत देता है। इन परिस्थितियों में, विश्व भर में यह उम्मीद की जा रही है कि शीघ्र ही बर्मा के आततायी सैनिक हुक्मरानों को जनता की इच्छा के आगे सिर झुकाने पर बाध्य किया जा सकेगा।

19.7 शब्दावली

साम्राज्यवाद : मुख्यतः साम्राज्यवाद को किसी खास देश तथा विश्व बाजार में अर्थव्यवस्था तथा राजनीति में इजारेदारों व वित्तीय पूंजी की सत्ता से पहचाना जाता है।

राष्ट्रीयकरण : भूमि, औद्योगिक समूहों, बैंकों, परिवहन, आदि के निजी स्वामित्व का राज्य के स्वामित्व में संक्रमण।

राजनैतिक व्यवस्था : राज्य की संस्थाओं, राजनैतिक दलों, सार्वजनिक एसोसिएशनों तथा मानव व्यवहार के नियमों का एक समुच्चय, जिसके अनुसार राजसत्ता का प्रयोग किया जाता है तथा राजनैतिक जीवन को संगठित किया जाता है।

राजनैतिक क्रांति : किसी एक वर्ग की राजसत्ता को उखाड़ फेंका जाना तथा किसी अन्य वर्ग की राज्य सत्ता की स्थापना।

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बर्टिल लिंटर, 1989, *आउटरेज : बर्माज स्ट्रगल फॉर डेमोक्रेसी* हांगकांग

डेविट आई स्टीनबर्ग, 1981 *बर्माज रोड टूवर्ड्स डवलपमैण्ड*, ग्रोथ एण्ड

हग टिकर, 1957 द *यूनियन आफ बर्मा : ए स्टडी आफ द फर्स्ट आइडियोलोजी अण्डर मिलिटरी रूल*, वेस्टव्यू प्रेस, बाउल्डर कोलोबराडों

ईयर्स आफ इझिडयेन्डेन्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन

फैंक एन ट्रेगर, 1958 *बिल्डिंग एक वैलफेयर स्टेट इन बर्मा 1948-1956*, इंस्टीट्यूट ऑफ पैसिफिक रिलेशन्स, न्यूयार्क

जोजफ सिल्वस्टीन, 1977 *बर्मा मिलिटरी रूल एण्ड पॉलिटिक्स आफ स्टेगनेशन*, कॉर्नल यूनिवर्सिटी प्रेस इथाका एण्ड लंदन

लुईस जे. वॉलिन्सकी, 1962 *इकोनोमिक डवलपमेण्ट इन बर्मा 1951-1960*, द स्वैन्टीयथ सैन्चुरी फण्ड न्यूयार्क

रॉबर्ट एच. टेलर, 1987 द *स्टेट इन बर्मा*, सी. हर्टस एण्ड कम्पनी लंदन।

19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. i) बर्मी

ii) शान
iii) मान
iv) काचिन
v) कारेन
vi) चिन और असाकानी

2. i) औपनिवेशिक शोषण
ii) खेतिहर नीति
iii) ब्रिटिश नीतियों के खिलाफ विरोध
iv) उग्र एवं उदार विचारों के साथ देसी शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय
v) भारतीय प्रभाव

बोध प्रश्न 2

1. i) धर्म (बौद्ध धर्म) का राजनीति में मिलाया जाना
ii) वामपंथी दुस्साहस
iii) बर्मी राष्ट्रवाद की राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा में जातीय अल्पसंख्यकों को शामिल कर पाने की विफलता
iv) राष्ट्रीय नेताओं को हटाया जाना — 1947 में शीर्षस्थ नेताओं की हत्या
v) छोटे जातीय समूहों का वर्गीकरण करने की नीति
vi) बहु-जातीय राज्य में एकात्मक प्रणाली की सरकार
vii) ए.एफ.पी.एफ.एल. में दरार

2. i) जनता की भलाई
ii) विदेशी आर्थिक हितों के चिन्हांकन को रोकने के उपाय
iii) भूमि पर राजा का स्वामित्व
iv) इजारेदार उद्यमों, विदेश व्यापार आदि का राष्ट्रीकरण
v) श्रमजीवी जनता का अत्यधिक शोषण से संरक्षण

बोध प्रश्न 3

1. i) बहुदलीय प्रणाली से कोई लाभ नहीं हुआ
ii) सरकारी समर्थन प्राप्त बी.एस.एस.पी. की स्थापना के बाद अन्य सभी पार्टियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था
iii) भीषण राजनैतिक अस्थिरता
iv) बढ़ता आर्थिक संकट

2. i) एक दलीय प्रणाली की स्थापना जनता की राजनीति स्वतंत्रता में कटौती का रास्ता तैयार करती है
ii) राष्ट्रीयकरण सामाजीकरण की जगह वर्गीकरण की तरफ ले गया
iii) एक दलीय शासन के पहले दशक में कृषि नीति तथा औद्योगिक नीति दोनों ने कोई खास प्रगति दर्ज नहीं की
iv) अत्यधिक नियंत्रण ने एक फलते-फूलते कालाबाजार को जन्म दिया
v) हालांकि अनेक कमियों के बावजूद, समाजवादी व्यवस्था के तहत बर्मा में जीवन की गुणवत्ता में सुधार हुआ

बोध प्रश्न 5

1. i) आन्दोलन छात्रों द्वारा शुरू किया गया था जिनका प्रभुत्व आन्दोलन पर शुरू से अंत तक बना रहा
ii) बढ़ते आन्दोलन के साथ ही उस पर संरक्षित दमन-चक्र चला
iii) आन्दोलन जो कि शुरुआत में एक छात्र आन्दोलन था, शीघ्र ही एक जन-आन्दोलन में परिवर्तित हो गया
iv) आन्दोलन के निरंतर दबाव के चलते शासक पार्टी में दल-बदल को प्रोत्साहन मिला।
v) आन्दोलन ने बहु-दलीय जनतांत्रिक प्रणाली, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रणालियों के निजीकरण तथा उदारीकरण की मांग की

2. i) आन्दोलन शुरू में स्वतः स्फूर्त था, असंगठित एवं नेता-विहीन था
ii) आन्दोलन पर छात्रों तथा शहरी मध्यम वर्गों का वर्चस्व था
iii) आन्दोलन में भाग लेने वालों की परस्पर-विरोधी महत्वकांक्षाओं ने संयुक्त मोर्चा बनाने से उन्हें रोका
iv) यह तथ्य कि नेताओं तथा प्रयोजकों को भूमिगत रहने के लिए देश के भीतर ठिकाना नहीं मिला, स्वयं में यह दर्शाता है कि आमतौर पर जनता में आन्दोलन के प्रति सहानुभूति कम थी।

इकाई 20 वियतनाम

संरचना

20.1 उद्देश्य

20.2 प्रस्तावना

20.3 आरंभिक इतिहास

- 20.3.1 मध्यकालीन इतिहास
- 20.3.2 18वीं सदी के अन्तिम 25 वर्षों के दौरान हुए विद्रोह
- 20.3.3 फ्रान्स के साथ अन्योन्य-क्रिया की शुरुआत

20.4 औपनिवेशिक शासन

- 20.4.1 धर्म प्रचारकों का दमन और फ्रांसीसी हस्तक्षेप
- 20.4.2 टू डक की संधि

20.5 राष्ट्रीय आन्दोलन

- 20.5.1 वियतनाम का इतिहास तथा चीनी शासन का अंत
- 20.5.2 फ्रांसीसी शासन का विरोध

20.6 वियतमिन्ह एवं अमरीकी हस्तक्षेप

- 20.6.1 नया गणतन्त्र तथा उपस्थित समस्याएं
- 20.6.2 फ्रांसीसी महत्वाकांक्षाएं एवं मंसूबे
- 20.6.3 वियतनाम तथा शीत युद्ध की छाया
- 20.6.4 गो दिन्ह डिएम को अमरीकी समर्थन
- 20.6.5 1966 की टौंगकिंग घटना

20.7 अर्थव्यवस्था

- 20.7.1 आर्थिक नियोजन की उत्पत्ति
- 20.7.2 युद्धोत्तर काल में आर्थिक नियोजन एवं विकास
- 20.7.3 विशेष समस्याएं
- 20.7.4 जल्दबाज़ी में किये गये एकीकरण से पैदा समस्याएं
- 20.7.5 आन्तरिक समस्याएं
- 20.7.6 वियतनाम में पेरिस्त्रोइका

20.8 संविधान एवं सरकार

- 20.8.1 नया संविधान

20.9 विदेश-नीति

20.10 सारांश

20.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.1 उद्देश्य

इस इकाई में वियतनाम के बारे में अध्ययन किया गया है, जो कि दक्षिणपूर्व एशिया में स्थित एक साम्यवादी देश है। वियतनाम औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध इसके द्वारा लड़े गये संभवतः सबसे अधिक रक्तपात वाले स्वाधीनता संग्राम तथा आगे चलकर अमरीका द्वारा किये गये प्रत्यक्ष सैनिक हस्तक्षेप के खिलाफ चलाये गये अपने संघर्ष की वजह से प्रसिद्ध हुआ है। वियतनाम को समझने के लिये उसके इतिहास तथा कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में इसके द्वारा चलाये गये सशस्त्र संघर्ष को समझना मूलतः ज़रूरी है। जहां तक इस इकाई के उद्देश्यों का प्रश्न है, इसका अध्ययन करने के उपरान्त आपको निम्नलिखित मुद्दों में सक्षम होना चाहियेः

- स्वाधीनता संघर्ष समेत इस देश के इतिहास के बारे में चर्चा करने
- वियतनाम के एकीकरण की समस्याओं तथा आर्थिक विकास पर पड़े इनके प्रभावों पर चर्चा करने, और
- वियतनाम के संविधान तथा सरकार के बारे में चर्चा करने

20.2 प्रस्तावना

वियतनाम दक्षिण-पूर्वी एशिया में हिन्द-चीन के तीन देशों में से एक है। विदेशी ताकतों द्वारा लंबे समय तक इसे दास बनाये रखने के इसके प्रभावी इतिहास के अलावा इसे एक ऐसे राष्ट्रीय आन्दोलन का गौरव हासिल है, जिसका उदाहरण इतिहास में नहीं मिल सकता। वियतनाम की कम्युनिस्ट पार्टी तथा हो ची-मिन्ह के नेतृत्व में, दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान जापानी कब्जे के खिलाफ तथा बाद में फ्रांसिसियों (जिन्हें जापान ने खदेड़ कर बाहर कर दिया था) के खिलाफ, जोकि दोबारा से अपने पूर्व शासित देशों पर कब्जा करना चाहते थे, वियतनाम ने शानदार संघर्ष चलाया था। जनरल जियाप की गुरिल्ला सेनाओं के नेतृत्व में दिएन विएन फू में फ्रांसिसी फौजों को 1954 में शिकस्त देने के बाद, वियतनाम जिनेवा समझौते के तहत दो देशों में विभाजित कर दिया गया। जनता की राय लेने के लिये वायदे के मुताबिक चुनाव नहीं कराया गया और अमरीका ने वियतनामी कम्युनिस्टों के खिलाफ युद्ध के लिये भारी मात्रा में अपनी सेनाएँ भेज दी। यह सब साम्यवाद को समाप्त कर देने की विश्व-व्यापी रणनीती का ही एक हिस्सा था। किन्तु यह शायद अमरीकियों के लिए अब तक की सबसे बड़ी दुर्घटना सिद्ध हुई। यद्यपि, वियतनाम को विश्व की सबसे शक्तिशाली ताकत अमरीका द्वारा सर्वाधिक घिनौने ढंग के सैन्य आक्रमण का निशाना बनाया गया था किन्तु वियतनामी राष्ट्रीय भावना को दबाया नहीं जा सका। लगभग बीस वर्षों तक चले युद्ध के बाद वियतनाम के विरुद्ध युद्ध में लगभग 55000 अमरीकी सैनिक मारे गये और अंततः 1975 में उसे शर्मनाक ढंग से देश छोड़कर भागना पड़ा।

इस जबर्दस्त विजय के बाद, हालांकि वियतनाम को एकीकरण तथा युद्ध से तबाह हुए देश के पुनर्निर्माण से संबधित गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके अलावा वियतनाम के भूतपूर्व समर्थक सोवियत संघ तथा चीन के बीच विचारधारात्मक शत्रुता के फलस्वरूप भी वियतनाम को सोवियत संघ के पक्ष में खड़ा होना पड़ा जिसने उदारता के साथ आर्थिक मदद प्रदान की। साम्यवादी सोवियत संघ के ढह जाने तथा अर्थव्यवस्था के असंतोषजनक निष्पादन के कारण, हाल ही में वियतनाम को विकास के कुछ पूंजीवादी उपाय अपनाने पड़े। आज वियतनाम लगभग सभी क्षेत्रों में एक तीव्र रूपान्तरण के दौर से गुजर रहा है। अब वह कम्युनिस्ट-विरोधी आसियान (एसोशिएशन आफ साउथ-ईस्ट एशियन नेशन्स), अपने पूर्व शत्रु चीन तथा अमरीका, के साथ घनिष्ठ संबंध बना रहा है। अब उसने एक उदारीकृत, बाज़ार-उन्मुख अर्थ-नीति को अपनाना शुरू कर दिया है।

20.3 आरंभिक इतिहास

वियतनाम के आरंभिक इतिहास में चीनी शासन के अधीन स्वतंत्रता की मांग करते हुए छिटपुट हिंसक विद्रोहों के अलावा खास कुछ भी नहीं है। 207 ई.पू. में चीन में चिन वंश के पतन के बाद एक चीनी सेनानायक ट्रियू डा ने, जोकि क्वाटुंग एवं क्वांगसी प्रांतों की बागडोर संभाले हुए था, रेड खिर डेल्टा को भी अपने अधिपत्य में ले लिया और इस तरह नान-अह अथवा नाम-वियत नामक स्वतंत्र सल्तनत की स्थापना कर दी। ई.पू. में नाम सल्तनत के खात्मे के बाद नाम-वियत चीनी प्रान्त में बदल गया और अगले एक हजार वर्षों के लिये उसके अधिराजत्व में रख दिया गया। बड़ी संख्या में चीनी लोग रेड खिर डेल्टा में आकर बस गये और उन्होंने बौद्ध धर्म कन्फूशियस के मूल्यों तथा चीनी संस्कृति की वियतनाम में शुरुआत की

20.3.1 मध्यकालीन इतिहास

वियतनाम के मध्यकालीन इतिहास में दो परिवारों का बोलबाला बना रहा, ट्रिन्ह तथा ग्वेन, जोकि एक दूसरे के रिश्तेदार थे किन्तु राजनैतिक प्रतिद्वन्दी भी थे। 15वीं शताब्दी तक, डेको-वियत की रियासत टौंगकिंग डेल्टा तक ही लगभग सीमित थी। 1471 में चम्पा की जबर्दस्त पराजय के बाद वियतनामी राज्य अन्ना रेन्ज के थोड़ा दक्षिण तक विस्तार कर गया। वियतनाम का विभाजन पहली बार 1540 में हुआ। यह उस समय हुआ जबकि एक दरबारी मंत्री गुएन द्वारा समर्थित वियतनाम के शासक ली परिवार को एक सेनानायक भेक डैंक ढंग के हाथों गंभीर आघात झेलना पड़ा जिसने टौंगकिंग में सत्ता हथिया ली। चीन ने मध्यस्थता करते हुए वियतनाम के विभाजन का समर्थन किया। हालांकि 1592 तक एक अन्य दरबारी कुलीन ट्रिन्ह ने टौंगकिंग में मैक निजाम को उखाड़ फैंका

और ली वंश के नाम से सत्ता पर काबिज़ हो गया। ट्रिन्ह नाममात्र के भी शासक को चुपचाप हू से हनोई ले आने में सफल हो गया। अधिराजत्व सत्ता के रूप में चीन के पिछले विभाजन को निरस्त कर दिया और ली वंश को वियतनाम के एकमात्र वैध शासक की मान्यता प्रदान कर दी। किन्तु खेनों को मिटाया नहीं जा सका। अन्नम पहाड़ों से लेकर डौंग होई के पास के समुद्र तक खिंची हुई एक दीवार ट्रिन्ह तथा ग्बुने परिवारों के नियंत्रण वाले क्षेत्रों को पृथक करती है।

खेनों की शक्ति ट्रिन्ह खतरे को दूर कर देने के बाद तेज़ी के साथ बढ़ी। चम्पा रियासत के अवशेषों का अंतिम रूप से सफाया 1720 में हुआ जबकि इसका अंतिम राजा अपने अधिकांश आदमियों के साथ वर्तमान कम्बोडिया भाग कर आ गया। वियतनामियों ने अपने नियंत्रण का विस्तार कोचीन-चीन के मैकांग डेल्टा तक कर दिया जोकि उस समय तक कम्बोडिया की खेमर रियासत का हिस्सा था। अठारवी सदी के मध्य तक, वर्तमान दक्षिण वियतनाम के लगभग सभी खेमर क्षेत्र खेन रियासत का हिस्सा बन गये।

20.3.2 18वी सदी के अंतिम 25 वर्षों के दौरान हुए विद्रोह

18वीं सदी के अंतिम 25 वर्षों के दौरान वियतनाम में जबर्दस्त सामाजिक एवं राजनैतिक क्रांतियां हुई। उत्तर तथा दक्षिण दोनों ही में पुराने प्रतिष्ठित निजामों को उखाड़ फैंका गया। मध्य वियतनाम के ग्वेन वान ह, खेन वान लू तथा ग्वेन वान हू नामक तीन भाइयों ने (जिन्होंने दक्षिणी शासक परिवार ग्वेन का नाम अपना लिया था) क्रांति का झण्डा बुलंद किया; साथ ही ट्रिन्ह निजाम के खिलाफ जोकि भ्रष्ट और पक्षपातपूर्ण था, जनता में उपजे असंतोष ने भी योगदान किया। 1788 तक उन्होंने समूचे वियतनाम को अपने नियंत्रण में ले लिया। हक को अन्न का राजा घोषित किया गया जबकि हू तथा लू क्रमशः टौगकिंग एवं मैकोंण के शासक बने। यद्यपि इन तीनों भाइयों ने वियतनाम का एकीकरण कर दिया, किन्तु दक्षिण में उन्हें अधिक सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, जहां लोग उन्हें बेईमान मानते थे क्योंकि उन्होंने मूल खेन राजा के बिना कोई वयस्क वारिस छोड़े, मर जाने का फायदा उठाया था। अवयस्क राजकुमार खेन अन्ह के साथ लोगों को सहानुभूति थी और उन्होंने चुपचाप उसकी सहायता की।

20.3.3 फ्रांस के साथ अन्योन्य-क्रिया की शुरुआत

एक फ्रांसीसी धर्मप्रचारक, पिगनौ व बेहैन ने फ्रांस के साथ अन्योन्य-क्रिया का सूत्रपात किया। गवान अन्ह का एक समर्थक अन्ह के पुत्र को, गवान अन्ह को सत्ता में बहाल करने के लिये सैन्य सहायता मांगने के लिये फ्रांस के लुईस XVI के दरबार में ले गया। राजनैतिक हलचल के बावजूद जोकि 1789 को फ्रांसिसी क्रांति से ठीक पहले सम्राट को भुगतनी पड़ रही थी, फ्रांस-वियतनाम संधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसके तहत विदेशी व्यापार में इजारेदारी तथा पुओलो कोन्डोइ प्रायद्वीप तथा पोर्ट आफ डा नांग को अलग किए जाने के बदले में फ्रांसीसी सैन्य सहायता प्रदान किए जाने का प्रावधान किया गया था। फ्रांसीसी सरकार ने पाण्डेचेरी (मद्रास के निकट) के अपने औपनिवेशिक गवर्नर को सैन्य सहायता प्रदान करने के निर्देश जारी किये, किन्तु इस आदेश पर कोई अमल नहीं हो सका। डी बीहेनी ने, हालांकि पांडेचरी में 300 स्वयंसेवक तथा काफी सारा फण्ड जमा कर लिया जोकि हथियारों से भरे अनेक जहाज़ों को खरीदने के लिये पर्याप्त था। वह जून 1789 में, बैस्टली के पतन से ठीक एक माह पहले, जोकि फ्रांसीसी क्रांति की शुरुआत का प्रतीक है, वियतनाम पहुंचा था।

फ्रांसीसी सहायता के पहुंचने से पूर्व ही, गवान अन्ह ने साइगौन पर 1788 में ही कब्जा कर लिया था। जब तक 1801 में उसने ह्यू पर विजय हासिल की और एक साल बाद हनोई को जीता, तब तक उसकी सेना में केवल चार फ्रांसीसी ही मौजूद थे। हालांकि, फ्रांस ने वाउबन जैसे किले तैयार करने, बेहतर और बड़ी तोपों के निर्माण तथा एक जल सेना स्थापित करने में मदद की थी। गवेन अन्ह को 1892 में अन्नम का सम्राट घोषित किया गया और उसे जिया लौंज की उपाधि दी गई, जोकि टौगकिंग तथा मैकोंग डेल्टाओं के एकीकरण का प्रतीक थी। आगामी वर्षों में उसने चीनी दरबार को सौगात भेजी और पहली बार चीन ने ग्वेन वंश को मान्यता प्रदान की। इसका श्रेय जिया लौंग को दिया जाना चाहिये, जिसने युद्ध से तबाह हुए देश का सफलता पूर्वक नवनिर्माण किया, जिसमें सैंगोन, हु तथा हनोई को जोड़ने वाली 1300 मील लम्बी सड़क का निर्माण भी शामिल है। वह निस्संदेह वियतनाम को एक सूत्र में बांधने वाला ही नहीं बल्कि वह ही अब तक हुआ सबसे महान सम्राट था।

20.4 औपनिवेशिक शासन

यद्यपि वियतनाम के साथ फ्रांसीसी संपर्क सत्रहवीं शताब्दी के सुदूर अतीत तक में देखा जा सकता है, फिर भी बाकायदा औपनिवेशिक राज उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध तक स्थापित नहीं हुआ था। 18वीं सदी के अंत में निरंतर धर्मान्तरण में रुचि दिखाई पड़ी जबकि लगभग एक चौथाई मिलीयन वियतनामियों ने धर्मपरिवर्तन कर लिया, जोकि अधिकांशतः तटीय प्रांतों के रहने वाले थे। मिन मांग के अधीन 1920 में बड़े पैमाने पर धर्मान्तरित लोगों व धर्मप्रचारकों का दमन किया गया तथा वह थिऊ दी (1841-1847) तथा टू डक शासन (1847-1883) के आरंभिक चरण तक जारी रहा। कैथेलिकों के प्रति शत्रुता, धर्मप्रचारकों की लगातार दरबारी राजनीति में भागीदारी के फलस्वरूप और अधिक बढ़ती गई। कोचीन-चीन के अर्ध स्वतंत्र विद्रोही गवर्नर के साथ धर्मप्रचारकों के घनिष्ठ रिश्ते के फलस्वरूप भी सम्राट उनसे बुरी तरह नाराज़ था। इस गवर्नर ने 1820 में ज़िया लोंग की मृत्यु के बाद मिन्ह मांग को सत्ता में आने से रोकने की कोशिश की थी। मिन्ह मांग ने 1825 में नये धर्मप्रचारकों के प्रवेश पर रोक लगा दी। आठ साल बाद एक अत्यंत कठोर डिक्री ने चर्चों को ढहा दिये जाने का आदेश दिया और कैथेलिक विश्वास के पेशे को एक ऐसा दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया जिस पर मौत की सज़ा दी जा सकती थी। यह 1836 में हुआ और यही वह समय था जबकि जहाजों के आवागमन पर चीन ने सख्त पाबंदियां लगा दी थी। वियतनामी सम्राट ने अपने बंदरगाहों को यूरोपीय जहाजों के लिये बंद कर दिया।

20.4.1 धर्मप्रचारकों का दमन और फ्रांसीसी हस्तक्षेप

धर्मप्रचारकों का दमन फ्रांस के लिये वियतनाम में सीधा हस्तक्षेप करने का उत्कृष्ट बहाना बन गया। 1846 में फ्रांसीसी जहाजों ने दो सप्ताह तक डा नांग को घेरे रखा और फिर बंदरगाह पर गोलाबारी की, साथ ही डोमिनीक लैफेनर की रिहाई की मांग की, जिसे वियतनामी सरकार ने मौत की सज़ा सुना दी थी। नेपोलियन III की फ्रांस सरकार इस मौके का इस्तेमाल कोचीन-चीन में सफलता हासिल करके अपनी घरेलू गड़बड़ियों से उबरने के लिये भी करना चाहती थी। नया फ्रांसीसी साम्राज्यवाद उस समय चर्च, व्यापारियों तथा नये बाज़ारों की तलाश करते उद्यमियों के व्यापक हितों के गठजोड़ पर आधारित था तथा उसे राष्ट्रीय शक्ति एवं वैभव को बढ़ाने का सपना देखने वाले और उपनिवेश कायम करने में लगे एक अहंकारी सम्राट का समर्थन हासिल था। व्यापारिक हित वियतनाम में उन्हें प्राप्त विशिष्ट भौगोलिक फायदों से वाकिफ थे, खासतौर पर आंतरिक चीन के लाभकारी बाजारों में प्रवेश लेने के संदर्भों में। विदेशी बाज़ारों में रुचि रखने वाले फ्रांसीसी व्यापारी कोचीन-चीन की सरकार का समर्थन इस उम्मीद पर कर रहे थे कि दक्षिण-चीन व्यापार के प्रवाह के लिये प्रतिस्पर्धा कर रहे सिंगापुर तथा हौंगकौंग के खिलाफ सैंगोन में एक आधार की स्थापना की जा सके।

20.4.2 टू डक की संधि

आगामी दस वर्षों के लिये युद्ध संधि के बाद, फ्रांसिसियों ने 1862 में टू डक से एक और संधि की जिसके तहत वियतनामी सम्राट ने सैंगोन समेत कोचीन-चीन में तीन प्रांत फ्रांस के हवाले कर दिये और यह आश्वासन दिया कि उसकी रियासत का कोई भी हिस्सा फ्रांस के अलावा किसी अन्य शक्ति से गठजोड़ नहीं करेगा। वह दस वार्षिक किश्तों में चार मिलीयन पियास्त्रे का हर्जाना देने के लिये भी राज़ी हो गया और साथ ही फ्रांसीसी व्यापार के लिये अन्नम में तीन बंदरगाह खोलने के लिये भी राज़ी हो गया। भविष्य में ईसाई धर्म को बर्दाश्त किया जाना था तथा मैकौंग का धर्मान्तारित करने का अधिकार था। पांच साल बाद, फ्रांसिसियों ने कोचीन-चीन के बाकी प्रांतों को भी हासिल कर लिया ताकि मैकोंग डेल्टा पर उनका पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाय। 1873 की संधि ने फ्रांस को और अधिक रियायतों के लिये वियतनामी सम्राट पर दबाव डालने का बहाना प्रदान कर दिया, क्योंकि फ्रांस ने आरोप लगाया कि फ्रांस के संरक्षण में रहने के बावजूद चीन को सौगात भेज कर वियतनाम ने संधि का उल्लंघन किया है। अन्नम के सम्राट की भारी विवशता ने अन्नम को फ्रांस का औपचारिक तौर पर संरक्षित राज्य बनने, टौंगकिंग प्रांत की प्रशासनिक जिम्मेदारी फ्रांस के सुपुर्द कर देने तथा हनोई एवं हयू में फ्रांसीसी रेजीडेन्ट को स्वीकार करने पर विवश कर दिया। एक लम्बी लड़ाई और अन्ततः पराजय के बाद चीन की मध्य सल्तनत ने 1885 में एक संधि पर हस्ताक्षर कर दिये जिसमें अन्नम तथा टौंगकिंग पर फ्रांसिसी संरक्षण को मान्यता दे दी गई, फ्रांसीसी व्यापारियों को उत्तरी चीन में व्यापार की इजाजत मिल गई, चुन्नान में फ्रांस को अन्य सभी यूरोपीय

ताकतों पर वरीयता देना स्वीकार कर लिया गया और फ्रांस को हनोई से कुमिंग तक रैड रिवर घाटी के सामानान्तर रेल लाइन बिछाने की मंजूरी दे दी गई। इस संधि से वियतनाम एवं चीन के बीच अधीनस्थता के दो हजार साल पुराने सबन्धों का अंत हो गया और समूचे वियतनाम पर फ्रांस का अधिपत्य स्थापित हो गया।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणियाँ: i) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिये।

1) किन कारकों के फलस्वरूप वियतनाम में फ्रांस द्वारा हस्तक्षेप किये जाने का रास्ता तैयार हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वियतनाम में फ्रांसीसी औपनिवेशिक शासन के प्रमुख पहलू क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

20.5 राष्ट्रीय आन्दोलन

दक्षिण-पूर्वी एशिया इस मामले में अनोखा है क्योंकि शायद यह विश्व का एकमात्र ऐसा भाग है जिसमें लगभग सभी औपनिवेशिक ताकतें एक समय पर मौजूद रही हैं; हिन्द-चीन (वियतनाम, कम्बोडिया, लाओस) में फ्रांसीसी, मलाया, सिंगापुर, बूनी व बर्मा में ब्रिटिश, इण्डोनेशिया में डच, फिलीपीन्स में अमरीकी तथा पूर्वी तीमोर में पुर्तगाली। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान समूचा क्षेत्र जापानी शासन के अधीन रह चुका है। समूचे क्षेत्र में राष्ट्रीय आन्दोलनों का ज्वार भी उतना ही महत्वपूर्ण है जोकि वियतनाम के सबसे ज्यादा रक्तरंजित आन्दोलन से लेकर बूनी के सबसे ज्यादा शान्तिपूर्ण आन्दोलन तक की श्रृंखलाओं में रहे।

20.5.1 वियतनाम का इतिहास तथा चीनी शासन का अंत

वियतनाम का इतिहास विभिन्न समयों के दौरान चीनी शासन को उखाड़ फैंकने के लिये किये गए व्यापक स्तर के आन्दोलनों से भरा पड़ा है। वियतनाम में भी, शेष दक्षिण-पूर्व एशिया की तरह शिक्षा ने राष्ट्रवादी चेतना के विकास में अहम् भूमिका अदा की। कुलीनों में से अनेक लोग जिन्होंने पश्चिम में शिक्षा प्राप्त की थी, वे विभिन्न विचारधाराओं, खासकर मार्क्सवाद के प्रभाव में आये और उन्होंने स्वदेश वापस लौट कर राष्ट्रवादी आन्दोलनों का नेतृत्व किया, जोकि कई बार लड़ाकू तेवरों के साथ लड़े गये थे। अन्य घटनाएं जिन्होंने राष्ट्रवादी भावनाओं को उभारा, वे भी : 1899 में चीन में पाश्चात्य देशों की मौजूदगी तथा वर्चस्व के खिलाफ बॉक्सर विद्रोह; रूस पर जापान की जबर्दस्त सैन्य विजय जिसने पश्चिमी शक्ति की अपराजेयता के मिथक को चकनाचूर कर दिया था; चीन में वतनशील मान्यू वंश को सफलतापूर्वक सत्ता से उखाड़ा फैंका जाना और 1911 में चीनी गणतंत्र की उद्घघोषणा; 1917 में हुई रूसी क्रांति जिसने पहली बार सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में एक सर्वहारा राज्य की स्थापना की थी, तथा भारत में हुआ राष्ट्रीय

आन्दोलन। किन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण भी दक्षिण-पूर्व एशिया में मौजूद तमाम महानगरीय-शक्तियों पर जापान की विजय तथा समूचे क्षेत्र पर उसका कब्जा, जिसने न सिर्फ एक उत्प्रेरक का काम किया बल्कि राष्ट्रवादी आन्दोलनों को आवश्यक प्रेरणा भी प्रदान की।

20.5.2 फ्रांसीसी शासन का विरोध

यद्यपि फ्रांसिसियों द्वारा वियतनाम पर कब्जा किए जाने के तुरन्त बाद से ही फ्रांसीसी शासन का विरोध होना शुरू हो गया था, किन्तु आरंभिक 20वीं शताब्दी के दौरान ही स्वाधीनता संघर्ष नई बुलंदियों पर पहुंच गया था। खाते-पीते परिवारों के अनेक नौजवान जिन्हें फ्रांस में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला था और जो 1911 में चीनी क्रांति के बाद चीन पहुंच गये थे, उन्होंने अनेक छोटे विद्रोहों को उकसाया, खासकर टौंगकिंग तथा कोचीन-चीन में और 1916 में उन्होंने काफी गंभीर विद्रोह पैदा कर दिया, इन सभी को फ्रांसीसी शासकों द्वारा सख्ती से कुचल दिया गया। 1920 में अनेक भूमिगत गुप्त संगठन बनाए गए जिनमें मार्क्सवादी व गैर-मार्क्सवादी दोनों तरह के संगठन थे। किन्तु वियतनाम के हाल के इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना राष्ट्रीय आन्दोलन में महान मार्क्सवादी नेता हो.ची. मिन्ह का प्रवेश था। वह एक केबिन बौय के रूप में यूरोप गये थे और शीघ्र ही मार्क्सवादी एवं अन्य समाजवादी रचनाओं से उन्हें प्रेरणा मिली। कुछ समय मॉस्को में बिताने के बाद वे राष्ट्रीय आन्दोलन को कम्युनिस्ट आधारों पर संगठित करने के उद्देश्य से 1924 में चीन गए। 1925 में उन्होंने एसोसिएशन आफ वियतनामी रिवोल्यूशनरी यूथ की स्थापना की और सैंकड़ों लोगों को मार्क्सवाद का प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। 1930 में उन्होंने वियतनाम के तीन प्रभावशाली कम्युनिस्ट गुटों को एक करके एक पार्टी में शामिल कर लिया और उसे इण्डो-चाइना कम्युनिस्ट पार्टी का नाम दिया। यह इस दृष्टि से किया गया कि हिन्द-चीन के तीनों देशों में एक संयुक्त राष्ट्रवादी आन्दोलन का निर्माण किया जा सकता था।

वियतनामी नेशनलिस्ट पार्टी (1927 में स्थापित) नामक प्रमुख गैर-मार्क्सवादी संगठन के नेतृत्व में 1930 के आरंभ में किये गये एक अपरिपक्व एवं गलत ढंग से नियोजित विद्रोह को फ्रांस ने निर्ममता से कुचल दिया था। इण्डो-चाइना कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा हड़तालों व असहयोग आन्दोलनों के माध्यम से किसान जनता के असंतोष को संगठित करने के प्रयासों को भी कुचल दिया गया। हालांकि इण्डो-चाइना कम्युनिस्ट पार्टी ने स्वयं को शीघ्र ही पुनर्संगठित कर लिया क्योंकि इसके पास बेहतरीन संगठन और पार्टी अनुशासन मौजूद था। आई.सी.पी. ने फ्रांस के भीतर की उदार राजनैतिक परिस्थिति का फायदा, फाम वान डौंग तथा वो ग्वेन लियाप के नेतृत्व में एक व्यापक जनवादी राष्ट्रीय मोर्चा गठित करने में उठाया जिसका उद्देश्य सभी सामाजिक वर्गों तथा राजनैतिक समूहों को संगठित करना था। युद्ध भड़क उठने के साथ ही पौपुलर फ्रंट सरकार फ्रांस में गिरा दी गई और उसके फलस्वरूप इंडो-चाइना कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

20.6 वियतमिन्ह तथा अमरीकी हस्तक्षेप

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस तथा जापान की सेनाओं के बीच एक मामूली झड़प के बाद जापान तथा फ्रांस को विची सरकार के बीच एक समझौता हो गया जिसमें यह प्रावधान किया गया कि हिन्द-चीन में फ्रांस की प्रभुसत्ता एवं प्रशासन बरकरार रहेगा और इसके बदले में हिन्द-चीन की सैन्य-सुविधाएं तथा आर्थिक संसाधन जापान की इच्छा पर छोड़ दिये जायेंगे। हो ची मिन्ह च्यांग काई शेक के आदेश पर चीन की जेल से रिहा कर दिये गये ताकि वे जापानी प्रभुत्व वाली विची सरकार के खिलाफ वियतनाम में प्रतिरोध आन्दोलन का नेतृत्व कर सकें। उन्हें सैन्य तथा अन्य सामानों की आपूर्ति की गई। आई.सी.पी. की मई 1941 में चीन में हुई बैठक में एक खेतिहर आन्दोलन शुरू करने का फैसला किया गया। वियतमिन्ह अथवा वियतनाम इंडिपेण्डैन्स लोग नामक एक नया संगठन खड़ा किया गया जिसमें उम्र दौलत, लिंग, धर्म अथवा राजनैतिक दृष्टिकोण का भेद किये बिना सभी लोगों को शामिल किया जाना था और इसका एकमात्र उद्देश्य देश को स्वाधीन बनाना था। वो युएन जियाप के नेतृत्व में 5000 लोगों की एक सेना तैयार की गई। जापान द्वारा आत्मसमर्पण किये जाने से तीन माह पूर्व ही फ्रांस से वियतनाम का प्रशासन अपने हाथ में लेने के बाद, वियतमिन्ह ने छः प्रान्तों में गुरिल्ला अड्डे तथा प्रशासन कायम कर लिया था। जापान के रवाना होने से ठीक पहले वियतमिन्ह ने हनोई पर कब्जा कर लिया और हो ची मिन्ह ने डैमोक्रेटिक रिपब्लिक आफ वियतनाम (डी.आर.वी.) की स्वाधीनता का ऐलान कर दिया। दिलचस्प बात यह है कि उस अवसर पर अपनाया गया संपूर्ण कार्यक्रम राष्ट्रवादी था न कि कम्युनिस्ट। इस

कार्यक्रम में पूर्ण करों के उन्मूलन, स्वतंत्रता हासिल करने, एक सैन्यबल का विकास करने, जनतांत्रिक अधिकारों की घोषणा, सामुदायिक भूमि के पुनर्वितरण तथा मित्र देशों से मित्रता, आदि जैसे लक्षणों में देखा जा सकता है। दरअसल, जब हो ची मिन्ह ने 50 हजार की एक विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए वियतनामी जनतांत्रिक गणतन्त्र की स्थापना की घोषणा की थी तो वे 1776 के अमरीकी स्वतंत्रता घोषणापत्र से ही अधिकांश उदाहरण दे रहे थे।

20.6.1 नया गणतंत्र तथा उपस्थित समस्याएं

नये गणतंत्र को किसी भी देश ने मान्यता प्रदान नहीं की और पोस्टडेम में मित्र देशों की बैठक में वियतनाम के उत्तरी हिस्से को राष्ट्रवादी चीन के अधीन रखे जाने तथा दक्षिणी हिस्से को ब्रिटेन के अधीन रखे जाने का निर्णय लिया गया। ब्रिटिशों ने फ्रांसीसी बंदियों को रिहा कर देने के बाद, दक्षिण का प्रशासन फ्रांस के हवाले कर दिया। फ्रांसिसियों ने हिन्द-चीन में अपने औपनिवेशिक अधिकारों को पुनः प्राप्त करने की कोशिश की।

20.6.2 फ्रांसीसी महत्वाकांक्षाएं एवं मंसूबे

चीनी सेनाओं से पीछा छुड़ाने के लिये हो ची मिन्ह ने आई.सी.पी. के विघटन की घोषणा की और 1945 के अंत में अन्य स्वतंत्र संगठनों के साथ सत्ता में साझीदारी की पेशकश की, मुख्यतः फ्रांस से मान्यता प्राप्त करने के लिये। हालांकि फ्रांस भी इस बात का निर्धारण करने के लिये एक जनमत-संग्रह कराने पर सहमत हो गया कि क्या चीन-चीन को संघ में शामिल हो जाना चाहिये और समूचे वियतनाम से धीरे-धीरे अपनी सेनाएं वापस बुला लेनी चाहिये। किन्तु उसने सत्ता छोड़ने की कोई इच्छा नहीं दिखाई। इसके विपरीत, फ्रांस ने अपनी सैन्य एवं राजनैतिक स्थिति को दृढ़ करना शुरू कर दिया। जनमत संग्रह को टालते हुए उसने चीन-चीन को स्वायत्त गणतंत्र की स्थापना किये जाने की घोषणा की। अंततः 23 नवम्बर को फ्रांसीसी युद्धपोत सफरेन ने हाइफौंग के वियतनामी क्षेत्र पर बमबारी की और कुछ ही घंटों में 6 हजार से भी अधिक वियतनामियों को मौत के घाट उतार दिया। इसने फ्रांस और वियतनाम के बीच शत्रुता पैदा कर दी। उत्तरी व दक्षिणी वियतनामों में पहला हिन्द-चीन युद्ध भड़क उठा जो कि 1946 से 1954 तक चलता रहा। लोगों को जिस बात ने आकर्षित किया वह कम्युनिस्ट विचारधारा नहीं बल्कि वियतमिन्ह का लड़ाकू चरित्र ही था।

सारे वियतनाम में चले इस युद्ध ने दोनों पक्षों के अनगिनत लोगों की जानें लीं। फ्रांस में वियतनाम युद्ध के कारण अनेक मंत्रिमंडलों का पतन हुआ। फ्रांसीसी फौजों का मनोबल बुरी तरह टूट गया, खासतौर पर फ्रांस के भीतर घरेलू जनमत के चलते, जिसने व्यापक तौर पर इस ''घिनौने युद्ध'' को समाप्त करने के लिये दबाव डाला। लाभकारी रबड़ तथा चावल की आपूर्त्ति से हाथ धो बैठने के अलावा, फ्रांसीसी वियतनामी स्वतंत्रता के अन्य फ्रांसीसी उपनिवेशों पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर भी चिन्तित थे, खासतौर पर अफ्रीका में स्थित उपनिवेशों पर 7 मई, 1954 को डी एन बि एन फू में फ्रांस को अपमानजनक पराजय का मुंह देखना पड़ा। जनरल लियाप जो कि कभी एक प्राथमिक स्कूल शिक्षक थे और एक महानतम गुरिल्ला लड़ाकू बन गये थे, उनके नेतृत्व में वियतमिन्ह के हाथों फ्रांस की करारी हार हुई थी। फ्रांस के इस सफाये का परिणाम 1954 के जिनेवा समझौते के रूप में सामने आया जिसमें सत्रहवीं समानान्तर रेखा के द्वारा वियतनाम का उत्तर एवं दक्षिण वियतनाम में विभाजन कर दिया गया। पुनः एकीकरण के प्रश्न पर 1956 के देश व्यापी चुनाव द्वारा निर्णय किया जाना था।

20.6.3 वियतनाम तथा शीत युद्ध की छाया

वियतनामियों को जो अकथनीय दुख झेलने पड़े उनसे शायद बचा जा सकता था यदि शीत युद्ध को वियतनाम में न लाया गया होता और महाशक्तियों ने शक्ति का खेल न खेला होता। चुनावों का पर्यवेक्षण एक अंतर्राष्ट्रीय कन्ट्रोल कमीशन को करना था जिसकी अध्यक्षता भारत कर रहा था और कनाडा व पोलैण्ड इसके सदस्य थे। इस कमीशन को जिनेवा सम्मेलन के संयुक्त अध्यक्ष देश सोवियत संघ तथा ब्रिटेन को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी। अमेरिका जोकि साम्यवाद को दबाने की नीति के प्रति प्रतिबद्ध था, उसने सितम्बर में एक क्षेत्रीय संगठन साउथ-ईस्ट एशिया ट्रीटी आर्गनाइजेशन् (सीएटो) बना कर खड़ा कर दिया जिसमें अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, फिलिपीन्स, थाईलैण्ड तथा पाकिस्तान सदस्य देश थे। सिएटो की धारा IV ने हिन्द-चीन के देशों को ऐसे प्रोटेक्टेड देशों के रूप में शामिल कर लिया जिनकी सुरक्षा सिएटो सदस्यों द्वारा की

जानी थी, और इस तरह आगे आने वाले समय में अमरीकी हस्तक्षेप को वैधता प्रदान कर दी।

20.6.4 गो दिन्ह डिएम को अमरीकी समर्थन

अमरीका के सक्रिय समर्थन से गो दिन्ह डिएम ने, जिसे फ्रांसिसियों ने उस समय प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया था जबकि जिनेवा सम्मेलन चल रहा था, अक्टूबर 1955 में हुए जनमतसंग्रह में धांधली करने के बाद स्वयं को राज्य का प्रमुख घोषित कर दिया। शीघ्र ही उसने दक्षिण वियतनाम को एक गणतंत्र तथा स्वयं को उसका राष्ट्रपति घोषित कर दिया। डिएम ने मार्च 1956 में राष्ट्रीय असेम्बली के एकतरफा चुनाव की योजना का भी ऐलान किया जोकि जिनेवा समझौते के किसी भी दायित्व को निभाने का ढोंग भर था। इस गणतंत्र को अमरीका व उसके सहयोगियों ने मान्यता दे दी और हर तरह से इसे एक स्वतंत्र देश मान लिया। दरअसल डिएम को न तो जनता द्वारा चु गया था और न ही उसका जनता से कोई संपर्क ही था।

अमरीकी समर्थन के नशे में चूर, डिएम ने अपने नज़दीकी रिश्तेदारों को पदवियां बांटते हुए एक तानाशाह की तरह शासन किया। एक कैथोलिक होने के नाते उसने एक बौद्ध-बाहुल्य देश में, कैथोलिकों का नाजायज़ रूप से पक्षपात किया। उसने स्वयं को आम जनता से और भी अधिक काट लिया। उसने कम्युनिस्टों व गैर-कम्युनिस्टों का बेरहमी से दमन किया। यहां तक कि जब भी उन्होंने थोड़ा-सा भी विरोध किया, वह उन पर टूट पड़ा। अपनी गलत कृषि नीतियों के कारण, वह किसानों के बढ़ते असंतोष को नहीं रोक सका। दिसम्बर 1960 में कम्युनिस्टों ने देश को स्वाधीनता दिलाने और उसका एकीकरण करने के उद्देश्य से नेशनल लिबेशन फ्रंट (एन.एल.एफ.) की स्थापना दक्षिण वियतनाम में की। अमरीकियों ने सामाजिक व आर्थिक समस्याओं को अनदेखी करते हुए डिएम को पूरा समर्थन देना जारी रखा। जब तक उन्हें डिएम की अलोकप्रियता का अहसास हुआ, तब तक साठ के दशक की शुरुआत में एक बौद्ध प्रतिरोध ने उभर कर प्रमुख संकट का रूप ले लिया था। जब सेना के जनरलों ने राष्ट्रपति डिएम का तख्ता-पलट कर उसका कत्ल कर दिया, तब भी उन्होंने उन्हें निरुत्साहित नहीं किया। उन्होंने दक्षिण वियतनाम की मूल समस्याओं का समाधान नहीं किया। दूसरी तरफ, जनरलों के बीच सत्ता के लिये सेना के भीतर संघर्ष ने स्थिति को और अधिक गंभीर बना दिया, जोकि सहायता व समर्थन के लिये पूरी तरह से अमरीका पर निर्भर थे।

20.6.5 1966 की टौंगकिंग घटना

1966 की टौंगकिंग घटना, जबकि उत्तरी वियतनाम द्वारा इसके तट के समीप खुफियागिरी करते एक अमरीकी जहाज़ पर हमला कर दिया गया था, अमरीका के लिये असीमित युद्ध छेड़ देने का मुँहमांगा बहाना साबित हुआ। 1968 तक, अमरीका ने आधे मिलियन से भी अधिक सैनिक वहां भेज दिये थे। अमरीकियों ने, जिनका पाला वियतनाम में उभार पर आ गये राष्ट्रवाद से पड़ा था, इस देश में जिस स्तर की विनाशलीला की, उसकी मिसाल इतिहास में कहीं नहीं मिलती। अमरीका ने हिन्द-चीन पर 70 लाख टन से भी अधिक की बमबारी की जोकि दूसरे विश्व युद्ध तथा कोरियाई युद्ध दोनों को मिलाकर की गई कुल बमबारी के परिणाम से तीन गुना अधिक थी, इसके अलावा 1 लाख टन रासायनिक एवं अन्य ज़हरीले पदार्थों को उस भूमि पर छोड़ा था। लगभग 8000 अमरीकी हवाई जहाज एवं हैलीकोप्टर नष्ट हो गये। वियतनाम युद्ध में अमरीका का खर्च 150 मिलीयन अमरीकी डालर से भी अधिक का रहा। अमरीकियों ने हर तरह के प्रयोगात्मक हथियारों जैसे—रसायन, गैस, नापौंग, फॉस्फोरस के अवयवी अस्त्र तथा जीवाणु शस्त्रों का प्रयोग किया। विनाश के नये तरीकों के तौर पर ''एजेण्ट ओरैन्ज'', ''कारपेट बॉम्बिग'', ''लेजी डॉग'', तथा अन्य विभिन्न तरह के हथकण्डों की ईजाद की गई और वियतनाम में उनका भरपूर इस्तेमाल किया गया। खेतों, पुलों और नहरों पर बमबारी की गई और उन्हें नष्ट कर दिया गया ताकि लोग शहरी इलाकों की तरफ जंगलों पर जहरीली दवाएं छिड़क दी गईं ताकि गुरिल्ला लोगों को भोजन और आवास न मिल सके तथा गांव के गांव तबाह करके नष्ट कर देने के लिये ''कारपेट बॉम्बिग'' की गई।

जब तक अमरीकियों को इस बात का अहसास हुआ कि वियतनाम युद्ध को जीता नहीं जा सकता, तब तक उनके 58,000 सैनिक मारे ज़ा चुके थे। किन्तु साथ ही उन्होंने 40 लाख से भी अधिक अमरीकीयों की जानें ले ली थीं। पराजय के अपमान से भी अधिक अमरीका आज तक उस मनोवैज्ञानिक सदमें से नहीं उबर पाया है, जिसे ''वियतनाम संलक्षण'' कहा जाता है। वियतनाम से

सूचना दी गई थी कि 5 लाख की अमरीकी अभियान सेना ''एक नशेबाज, विद्रोही एवं टूटे मनोबल वाली भीड़'' बनकर रह गई है। 1973 में, पेरिस वार्ताएँ की गई और वियतनाम से अमरीका की वापसी का रास्ता निकालने का यत्न किया गया। 1975 के बसंत में, कम्युनिस्टों की न केवल उत्तरी वियतनाम में विजय हुई बल्कि साथ ही लाओस और कम्बोडिया में भी वे विजयी हुए। 2 जनवरी, 1976 को दक्षिण वियतनाम का औपचारिक तौर पर उत्तरी वियतनाम के साथ एकीकरण हो गया और वह पुनः एक देश बन गया।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणियाँ: i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।
ii) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों के साथ कीजिये।

1) वियतनाम में राष्ट्रीय आन्दोलन की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) स्वाधीनता संघर्ष में वियतमिन्ह की भूमिका का, खासतौर से अमरीका विरोधी संघर्ष में, मूल्यांकन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) वियतनाम में अमरीकी सेना की भूमिका की व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.7 अर्थव्यवस्था

वियतनाम का आर्थिक नियोजन एवं विकास अस्सी के दशक के अंत तक काफी हद तक विकासशील समाजवादी देशों से मिलता जुलता रहा है। इसका प्रमुख उद्देश्य एक खेतिहर पितृतंत्रात्क-सामंती व्यवस्था को धीरे-धीरे एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में रूपान्तरित कर देना रहा है।

20.7.1 आर्थिक नियोजन की उत्पत्ति

आर्थिक नियोजन की शुरुआत उत्तरी वियतनाम में 1955 के आखिर में एक राष्ट्रीय नियोजन बोर्ड तथा एक केन्द्रीय सांख्यिकीय कार्यालय की स्थापना के साथ हुई थी। अर्थव्यवस्था की बहाली तथा संस्कृति के विकास के लिये एक तीन वर्षीय योजना शुरू की गई जिसमें औद्योगिक क्षेत्र के लिये खासी राशि का आवंटन किया गया। दो-तीन वर्षीय योजनाओं के सफलतापूर्वक संपन्न हो जाने के बाद 1960 में पहली पंचवर्षीय योजना शुरू की गई। तीसरी योजना की अवधि (1965) के अंत तक यद्यपि अधिकांश निर्धारित लक्ष्यों को हासिल कर लिया गया था, किन्तु कृषि के सामूहिकीकरण से वांछित परिणाम देखने को नहीं मिले, जिसके फलस्वरूप खाद्यान्न की कमी पड़ गई। प्रत्यक्ष अमरीकी सैन्य हस्तक्षेप तथा समर्पित युद्ध के उत्तरी वियतनाम में भड़क उठने के साथ ही, 1965-73 की अवधि के लिये कोई योजना तैयार नहीं की जा सकी। समूची अर्थव्यवस्था को युद्ध प्रयासों में ही लगाया गया।

20.7.2 युद्धोत्तर काल में आर्थिक नियोजन एवं विकास

अमरीका पर विजय हासिल कर लेने के बाद ही वियतनाम अपने नियोजित आर्थिक विकास को पुनः शुरू कर सका। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1976-80) में कृषि, उद्योग, व्यापार, संस्कृति तथा जन-स्वास्थ्य, तथा जनता के आम जीवन-स्तर में सुधार किये जाने को प्राथमिकता के क्षेत्रों के रूप में सूचीबद्ध किया गया। यह योजना, मूलतः 1974 में तैयार की गई थी, और अब इसे 1975 में आशा से पहले अमरीका पर प्राप्त विजय तथा उत्तरी व दक्षिणी वियतनाम के एकीकरण के बाद की पृष्ठभूमि में समूचे वियतनाम में संशोधित करके लागू किया जाना था। हालांकि इन घटनाओं ने अनुमान से अधिक गंभीर समस्याएँ पैदा कर दी थी। आर्थिक विकास का समाजवादी पैटर्न आसानी से उत्तर से दक्षिण वियतनाम में विस्तारित नहीं किया जा सका। दक्षिण वियतनाम, अमरीकी संरक्षण में एक बाजार-उन्मुख मुक्त उद्यमशीलता की व्यवस्था के तौर पर उदित हो गया था, और मूलतः उसे अमरीकी युद्ध मशीन की सेवा करने के हिसाब से चलाया गया था। एक बार फिर, व्यापक स्तर के युद्ध के चलते, ग्रामीण क्षेत्रों में वियतमिन्ह को अपना प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत बनाने से रोकने के लिय मानवीय आवासों को बुरी तरह से नष्ट कर दिया गया था। लोगों को शहरी इलाकों, खासकर साइगौन की तरफ जाने के लिये प्रोत्साहित किया गया था और इस तरह वियतनाम की पारंपरिक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था नष्ट हो गई थी।

20.7.3 विशेष समस्याएं

इसके अलावा, कम्युनिस्ट नेतृत्व को उन अपराजेय सामाजिक समस्याओं का सामना करना था जोकि अमरीकी सैन्य उपस्थिति की अवशेष थीं। उन्हें तुरन्त दक्षिण वियतनामी निजाम के दस लाख सैनिकों के बारे में निर्णय करना था। इन सैनिकों को बिखराव की स्थिति में छोड़ दिया गया था और वे प्रायः विजेताओं के प्रति शत्रुता का भाव रखते थे। इसके अलावा करीब दस लाख नागरिकों की समस्याएं थीं जोकि विभिन्न हैसियतों पर पुराने निज़ाम की सेवा करते रहे थे। वहां लगभग बीस लाख बेरोज़गार किसान मौजूद थे जोकि युद्ध के दौरान बलपूर्वक शहरीकरण के कार्यक्रम के तहत शहरी केन्द्रों में धकेल दिये गये थे। जब तक अमरीकी देश छोड़ कर गये, तब तक वहां 30 लाख लोग ऐसे थे जोकि यौन रोगों से पीड़ित हो गये थे, दस लाख लोगों को क्षयरोग लग गया था और अन्य 50 लाख लोग वेश्यावृत्ति के धंधे को अपनाने के लिये विवश कर दिये गये थे। हालांकि ऊपर से 50 लाख लोग नशीली दवाओं का सेवन करने वाले, 40 लाख यतीम तथा 20 लाख भिखारी भी मौजूद थे। चूंकि समूची अर्थव्यवस्था पूरी तौर पर अमरीकी सहायता पर टिकी रही थी, अतः ज्यों ही अमरीकियों ने देश छोड़ा, यह धराशायी हो गई।

20.7.4 जल्दबाज़ी में किये गये एकीकरण से पैदा समस्याएं

दो भिन्न अंगों का जल्दबाज़ी में किया गया एकीकरण, जो कि दो भिन्न व विरोधी मॉडलों पर

प्रभावित किया। कम्युनिस्टों के अति उत्साह ने उद्यमशीलन मौदागर वर्ग को, खासतौर से जातीय चीनीयों को लगभग उखाड़ कर फेंक दिया, जो कि या तो ग्रामीण इलाकों में पुनर्वास के लिये मजबूर कर दिये गये अथवा नावों में सवार होकर देश से भाग निकले, जिन्हें ''बोट-पीपुल्स'' कहा जाता था। दक्षिण वियतनाम में सबसे बड़ी दुर्घटना सामूहिकीकरण पर केन्द्रित थी।

20.7.5 आन्तरिक समस्याएं

सत्तर के दशक के मध्य तक अमरीकी हस्तक्षेप खत्म हो गया। किन्तु वियतनाम की समस्याएं समाप्त नहीं हुई। 1977 तक कंबोडियों में शासन कर रहे बदनाम पोल-पोट तथा उसके गिरोह के साथ सीमाओं को लेकर झड़पें शुरू हो गई और उसके परिणामस्वरूप लगभग चार दशकों तक इसके शुरू रहे कम्युनिस्ट चीन के साथ गंभीर मतभेद पैदा हो गये। अनेक कारणों से, वियतनाम को विचारधारात्मक रूप से सोवियत संघ के नजदीक आना पड़ा। मॉस्को तथा पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देशों पर यह निर्भरता वियतनाम की अर्थव्यवस्था में खास सहायक सिद्ध नहीं हुई। दरअसल इसका उल्टा असर ही पड़ा।

20.7.6 वियतनाम में पेरिस्त्रोइका

गोर्बाचोव द्वारा भूतपूर्व सोवियत संघ में पेरिस्त्रोइका शुरू किए जाने के बाद, जिसके फलस्वरूप सहायता में कटौती हुई, तथा आंशिक तौर पर असंतोषजनक आर्थिक निष्पादन की वजह से, वियतनाम को अपनी आर्थिक रणनीति बदलनी पड़ी। सामूहिकीकरण के कारण, कृषि पैदावार में ठहराव आ गया और उद्योगों का निष्पादन निराशाजनक था। अति-केन्द्रीकृत तथा आदेशों पर चलने वाली अर्थव्यवस्था, ऊपर से 1978 के आखिर में कम्बोडिया में इसके सैन्य हस्तक्षेप के कारण सहायता पर पश्चिमी प्रतिबंध तथा व्यापार पर रोक, तथा सोवियत संघ के धराशाही हो जाने के फलस्वरूप वियतनाम के पास पेरिस्त्रोइका से स्वयं अपने तरीके पर पूरी ताकत से अमल करने के सिवा कोई विकल्प भी नहीं बचा था। 1987 से सुधारों के शुरू किये जाने से लेकर आज तक, विदेशी निवेश धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं जिससे उद्योगों को गति मिल रही है, जिसकी उन्हें काफी आवश्यकता है। कृषि में किये गये सुधारों के चलते वियतनाम नब्बे के दशक की शुरुआत के समय ही विश्व का सबसे बड़ा चावल निर्यात करने वाला देश बनकर उभरा है। अभी भी पूर्ण बहाली में सबसे बड़ा रोड़ा राहत व व्यापार पर अमरीकी प्रतिबंध ही है। हाल में हुए राजनैतिक घटनाविकास के फलस्वरूप वियतनाम तथा अमरीका के बीच राजनयिक संबंध बहाल होने की संभावनाएं हैं।

अपने पड़ोसी आसियान देशों की तुलना में वियतनाम आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है। किन्तु गरीबी के बावजूद शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में इसकी प्रगति प्रशंसनीय रही है। एक ऐसे राष्ट्रीय संघर्ष को छेड़ने के बाद जिसकी इतिहास में मिसाल नहीं मिल सकती, और अंततः विश्व की सबसे अधिक ताकतवर सत्ता को पराजित करने की पृष्ठभूमि में, युद्ध की तीव्रता और तबाही को नजरअंदाज करते हुए, मात्र वियतनाम को ''पिछड़ा'' कह देना अनुचित है। पुनः अतीत के कारण, किसी भी अन्य विकासशील देशों की तुलना में इसकी बहाली तथा प्रगति की रफ्तार धीमी होना आवश्यक है। हाल में किए गए उपाय शायद शीघ्र ही अर्थव्यवस्था में नई जान फूंक सकेंगे।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणियाँ: i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तर के साथ कीजिये।

1) वियतनाम की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अपनाए गए आर्थिक विकास की प्रमुख विशेषताएं क्या थी?

.....

.....

.....

.....

2) वियतनाम में हाल के वर्षों में आर्थिक विकास के लिये अपनाई गई नई रणनीति क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

20.8 संविधान एवं सरकार

अन्य कम्युनिस्ट व्यवस्थाओं की तरह ही वियतनाम का शासन भी मूलतः वियतनाम की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा किया जाता है, जोकि सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक एजेण्डा निर्धारित करती है और प्रमुख नीतिगत निर्णय लेती है। पोलिटब्यूरो नामक एक छोटा गुट सबसे अधिक शक्तिशाली निकाय है, जोकि पार्टी नेतृत्व के सबसे अधिक प्रभावशाली संस्था से मिलकर बनता है। पोलिटब्यूरो आम दिशा-निर्देश प्रदान करती रहती है। कम्युनिस्ट-पार्टी की कांग्रेस जोकि प्रायः तीन या चार वर्षों में एक बार आयोजित की जाती है, और जिसमें देश भर से पार्टी के प्रतिनिधि भाग लेते हैं, सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। पार्टी कांग्रेस में पोलिटब्यूरो और केन्द्रीय कमेटी समेत, पार्टी नेतृत्व में कोई भी परिवर्तन किया जा सकता है और साथ ही साथ पार्टी तथा सरकार के कामों की समीक्षा के माध्यम से पार्टी कांग्रेस ही अगली कांग्रेस आयोजित किये जाने तक के समय के लिये दिशा-निर्देश प्रदान करती है।

कांग्रेस केन्द्रीय कमेटी का भी चुनाव करती है और केन्द्रीय कमेटी पोलिटब्यूरो का तथा पोलिटब्यूरो कम्युनिस्ट पार्टी के लिये एक महासचिव का चुनाव करता है। यद्यपि पार्टी की शक्तियाँ तथा प्राधिकार अधिक प्रभुत्वशाली होते हैं फिर भी यह सरकार से भिन्न है।

20.8.1 नया संविधान

तीसरी बार एक नया संविधान, 1980 में अपनाया गया, जोकि अभी भी प्रयोग में लाया जा रहा है, किन्तु शीघ्र ही इसे ज़रूरी संशोधनों के साथ परिवर्तित किया जाना है। राष्ट्रीय असेम्बली एक निर्वाचित निकाय है किन्तु इसे विधायी शक्तियां प्राप्त नहीं हैं। राष्ट्रीय समिति की एक शक्तिशाली स्टियरिंग कमेटी मौजूद है, जिसे काउन्सिल ऑफ स्टेट कहा जाता है। कार्यपालिका शक्तियां मंत्रिपरिषद् में निहित है जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है। इसके अलावा हां राष्ट्रीय सुरक्षा काउन्सिल, द सुप्रीम-मिलिटरी ऑथरिटी तथा सुप्रीम पीपुल्स कोर्ट, जिसका मुख्य चीफ जस्टिस है, मौजूद ।

20.9 विदेश-नीति

चूंकि वियतनाम ने कम्युनिस्ट पा के नेतृत्व में स्वाधीनता प्राप्त की थी, अतः इसने आसियान देशों के साथ संबन्धों के मामले में अपनी विदेश नीति में उग्र तेवर अपनाये, क्योंकि आसियान के देश अमरीका अनुयायी और पूंजीवाद के समर्थक थे। राजनैतिक दिशा तथा आर्थिक सहायता के लिये वियतनाम बुरी तरह से सोवियत संघ और चीन पर निर्भर रहा है। हालांकि वियतनाम ने सोवियत संघ तथा चीन के साथ बराबर की दूरी बनाये रखने की कोशिश की, जोकि विचारधारा के प्रश्न पर एक-दूसरे को नीचा दिखानें में लगे थे, किन्तु इसमें किसी को सफलता नहीं मिल सकी थी। अनेक कारकों के चलते, खासतौर पर कम्बोडिया में पोल-पोट के नरसंहारी निजाम से जुड़े कारकों, जिसने चीन के पक्ष में खड़ा होना पसन्द किया था, वियतनाम सोवियत शिविर के नजदीक आ गया। 1978 के आखिर में कंबोडिया में इसके सैन्य-हस्तक्षेप के बाद, कम्युनिस्ट-विरोधी आसियान देशों को वियतनाम को अलग-थलग कर देने का एक अच्छा बहाना मिल गया। सोवियतों के साथ घनिष्ठ मैत्री के फलस्वरूप वियतनाम ने डानाँग तथा कैम रान्ह खाड़ियों में उन्हें सैनिक अड्डे भी उपलब्ध कराये। चूंकि वियतनाम कम्बोडिया में पोल-पोट के शासन का तख्ता-पलट करने का साधन बना था, अतः 1979 के शुरू में चीन ने इसे सबक सिखाने के लिये वियतनाम पर आक्रमण कर

अपनी विदेश-नीति में संशोधन करने के लिये विवश कर दिया। वियतनाम ने कम्बोडिया से अपनी सारी सेनाएं वापस बुला ली है और वह अपनी अर्थव्यवस्था को उदार बनाने की प्रक्रिया में है। निकट अतीत में आसियान देशों के साथ संबन्धों में काफी सुधार हुआ है और ऐसा ही चीन के साथ सबन्धों में भी हुआ है। इस बात की संभावना है कि शीघ्र ही अमरीका के साथ भी राजनयिक संबन्ध पुनः स्थापित हो जायेंगे। वियतनाम आज क्रांतिकारी लक्ष्यों को लेकर चलने की बजाय, अपने आर्थिक पिछड़ेपन को समाप्त करने में अधिक रुचि ले रहा है।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणियाँ: i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिये।

1) सरकार में वियतनामी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका पर संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वियतनाम के विदेश नीति संबन्धी उद्देश्यों का मूल्यांकन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.10 सारांश

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि न सिर्फ दक्षिण-पूर्व एशिया बल्कि विश्व के हाल के इतिहास में वियतनाम का एक विशिष्ट स्थान है। इसकी विशिष्टता इसके स्वाधीनता संघर्ष में निहित है: पहले चीनीयों के खिलाफ जिन्होंने देश पर एक हजार से भी अधिक वर्षों तक कब्जा किये रखा; फिर फ्रांसीसी उपनिवेशवाद के खिलाफ; तीसरी बार, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान के खिलाफ; चौथी बार पुनः फ्रांस के खिलाफ जब उसने देश पर दोबारा से कब्जा करने की कोशिश की; और अंततः अमरीका के खिलाफ जिसने कम्युनिस्टों के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को परास्त करने के लिये जबरदस्त सैन्य-हस्तक्षेप किया था।

वियतनामियों को इस बात का गौरव प्राप्त है कि उन्होंने उन सभी ताकतों को पराजित कर दिखाया जो उन्हें गुलाम बनाने की कोशिश कर रही थी। खासतौर पर उनके लिये गौरवपूर्ण था विश्व की सबसे शक्तिशाली ताकत अमरीका को परास्त करना जिसे वियतनाम ने गुरिल्ला युद्ध के जरिये हासिल किया। निश्चय ही, युद्ध के परिणाम भयावह रहे जिनसे उभर पाना आसान नहीं है। वियतनाम द्वारा कम्बोडिया में किये गये सैन्य-हस्तक्षेप ने इसे राजनयिक तौर पर अलग-थलग डाल दिया और इसका प्रमुख समर्थक, भूतपूर्व सोवियत संघ बिखर गया। वर्तमान में वियतनाम अपने भूतपूर्व दुश्मनों से मैत्रीपूर्ण संबन्ध बनाने की कोशिश कर रहा है और अर्थव्यवस्था को पूंजीवादी दिशाओं पर चला रहा है, हालांकि कम्युनिस्ट पार्टी की राजनैतिक भूमिका का उसने परित्याग नहीं किया।

20.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चैस्टर ए. बाइन, **वियतनाम : द रूटस ऑफ द कान्फ्लिक्ट** (न्यू जर्सी : प्रैन्टिस हॉल, 1966)

डी.जी.ई. हॉल, **ए हिस्ट्री ऑफ ईस्ट एशिया** (लंदन, मैकमिलन, 1981)

जॉर्ज मैक टी. काहिन, **गवर्नमैण्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन साऊथईस्ट एशिया** (न्यूयॉर्क : कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1967)

नोआम चोम्सकी, **ऐट वार विद एशिया : ऐसेज ऑन इण्डोचाइना** (न्यूयॉर्क : पैन्थौन बुक्स, 1970)

स्टैनली कार्नो, **वियतनाम : ए हिस्ट्री** (लंदन : सैन्यूरी पब्लिशिंग हाउस, 1983)

20.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) धारा 20.4 तथा उपधारा 20.4.1 देखें

2) उपरोक्त

बोध प्रश्न 2

1) धारा 20.5 (राष्ट्रीय आन्दोलन) देखें

2) धारा 20.6 (वियतमिन्ह तथा अमरीकी हस्तक्षेप) देखें

3) उपधारा 20.6.3 देखें

बोध प्रश्न 3

1) उपधारा 20.7.6 देखें

2) उपधारा 20.7.6 देखें

बोध प्रश्न 4

1) धारा 20.8 देखें

2) धारा 20.9 देखें

इकाई 21 कम्बोडिया

संरचना

21.0 उद्देश्य
21.1 भूमिका
21.2 प्रदेश तथा लोग
21.3 इतिहास
  21.3.1 प्राचीन इतिहास
  21.3.2 द्वितीय विश्वयुद्ध तथा आधुनिक इतिहास
21.4 स्वतंत्र कंपूचिया
  21.4.1 स्वतंत्रता तथा नया राजनीतिक समीकरण
  21.4.2 वियतनाम का गृह युद्ध तथा कंपूचिया
  21.4.3 जनरल लोन नोल का शासन
  21.4.4 कंपूचियन यूनाईटेड फ्रंट का उदय
  21.4.5 कंपूचिया का समाज तथा राजनीति
  21.4.6 हैंग सैमरीन के शासन का उदय
21.5 गृह युद्ध
21.6 आर्थिक विकास
21.7 पेरिस का शांति समझौता
21.8 चुनाव
21.9 भारत कंपूचिया संबंध
21.10 सारांश
21.11 मूल शब्द
21.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
21.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य कंपूचिया के राजनीतिक विकास का अध्ययन करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित विषयों का वर्णन कर सकते हैं:

- कंपूचिया की भौगोलिक तथा जनसांख्यिकी विशेषताएं
- कंपूचिया के राजनीतिक इतिहास की रूपरेखा
- स्वतंत्रता के पश्चात् कंपूचिया का राजनीतिक विकास
- कंपूचिया में गरीबी के कारण
- कंपूचिया में शांति तथा स्थिरता स्थापित करने में संयुक्त राष्ट्र संघ की पहल और
- भारत कंपूचिया संबंध

21.1 भूमिका

कंपूचिया दक्षिण-पूर्व एशिया के अति प्राचीन मुख्य देशों में से एक है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में फ्रांस की उपनिवेशवादी ताकतों द्वारा उसे एक अत्यन्त अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया गया। संधि की शर्तों के अनुसार यह फ्रांस का एक संरक्षित राज्य बन कर रह गया। इस देश को 1950 के दशक के आरंभिक वर्षों मे स्वतंत्रता मिली। कंपूचिया अपनी स्वतंत्रता को सुदृढ़ करने में जुट गया। परन्तु 1970 के अमेरिका समर्थित सत्ता परिवर्तन से एक लम्बे गृह युद्ध का आरंभ हुआ जिससे कंपूचिया को

21.2 प्रदेश और लोग

कंपूचिया दक्षिण-पूर्व एशिया के हिन्द-चीन प्रायद्वीप पर बसा एक छोटा सा देश है। उसका क्षेत्रफल 181,040 वर्ग किलोमीटर है। उसके पश्चिम में थाईलैन्ड, उत्तर में लाओस तथा थाइलैण्ड, पूर्व तथा दक्षिण पूर्व में वियतनाम तथा दक्षिण में स्याम की खाड़ी है। वियतनाम तथा थाईलैन्ड के साथ सीमा का अधिकांश भाग कार्डमम (इलायची) तथा उससे जुड़े पहाड़ों ने इस देश को छोटे दक्षिणी समुद्र तट से अलग कर रखा है। उत्तर में दांग्रेक के नाम से जाने वाले पहाड़ हैं। कंपूचिया मुख्यतः मैदानी भूमि है जिसकी सिंचाई 'टानले सैप' (महान झील) तथा मैकोंग और बासक नदियां करती हैं। मैकोंग कंपूचिया से बहती हुई वियतनाम होकर समुद्र में गिरती है। इस देश की जलवायु उष्ण कटिबंधीय मॉनसूनी है। इसमें जून से अक्टूबर तक वर्षा का तथा नवंबर से मई तक सूखे का मौसम रहता है।

1975 में कंपूचिया की अनुमानित जनसंख्या 71,00,000 थी। निरंतर चल रहे गृह युद्ध, आर्थिक कठिनाइयां तथा बड़े पैमाने पर लोगों के प्रव्रजन (immigration) के कारण इस देश की जनसंख्या 1981 में घटकर 6,682,000 रह गई। परन्तु इसके निवासियों की संख्या 1986 में बढ़कर 7,500,000 हो गई। नॉम पेन्ह जो यहां की राजधानी है की जनसंख्या 1978 में घटकर 20,000 हो गई थी। 1986 में यह संख्या बढ़कर 2,00,000 हो गई। इससे यह स्पष्ट होता है की कंपूचिया 1970 के दशक में बड़े पैमाने पर हुई बरबादी से धीरे-धीरे बाहर निकल रहा है। कंपूचिया एक विरल आबादी का देश है।

यद्यपि इस देश में आबादी का एक बहुत बड़ा भाग खमेर है, यहां अन्य महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली जातीय समूह भी है। 85 प्रतिशत जनसंख्या खमेरों की है। इसके अतिरिक्त खासी, स्टींग, फोंग तथा अन्य जन-जातियां हैं। इसके अलावा करीब चार लाख वियतनामी, साढे चार लाख से अधिक चीनी, कुछ मलय, चाम तथा लाओटियन भी हैं। कुछ हजार भारतीय भी कंपूचिया में हैं। चीनी मुख्यतः व्यापार और व्यवसाय में लगे हैं। चीनी तथा खमेर जन जाति के बीच मधुर संबंध हैं। इसका कारण यह है कि चीन ने कभी कंपूचिया पर आक्रमण नहीं किया। वियतनामी और खमेर लोगों के बीच के सम्बन्ध उतने मधुर नहीं हैं, जितने कि चीनी और खमेर लोगों के बीच। उसका एक कारण यह हो सकता है कि अतीत में कंपूचिया पर कई वियतनामी आक्रमण हुए। इस कारण से इन दो समूहों के बीच कुछ जातीय तनाव है। अन्यथा कंपूचिया इस प्रकार के अन्य तनावों से मुक्त है, जबकि दक्षिण एशिया के बाकी देश ऐसे तनावों के शिकार रहे हैं। सरकारी काम-काज की भाषा खमेर है, जिसे 95 प्रतिशत लोग बोलते हैं। यहां के अधिकांश चीनी तथा वियतनामी लोग द्विभाषी हैं। वे बाजारों, न्यायालयों तथा कार्यालयों में खमेर भाषा बोलते हैं, जबकि अपने-अपने समुदायों के बीच अपनी भाषा बोलते हैं। पढ़े-लिखे लोग अभी भी फ्रेंच बोलते हैं। इसके बावजूद यह देश किसी प्रकार के भाषायी तनाव से मुक्त है। सबसे महत्वपूर्ण धर्म येरावदा बुद्धिज्म है। अतीत में हालांकि इस देश में हिन्दु धर्म का स्पष्ट प्रभाव था। मध्य-युग में (12वीं सदी के पश्चात्) बौद्धधर्म प्रधान धर्म के रूप में उभरा। अब सम्पूर्ण जनसंख्या का 95 प्रतिशत बौद्धधर्म का अनुयायी है। इस्लाम का प्रवेश ईसा पूर्व 17वीं सदी में हुआ। हालांकि इस्लाम ज्यादा लोगों को आकर्षित नहीं कर सका। अब इस देश में करीब एक लाख मुस्लिम हैं। 17वीं सदी में ही कभी ईसाई धर्म ने प्रवेश किया। अभी तक यह धर्म भी हाशिये पर ही रहा है।

कंपूचिया कृषि संसाधनों, वनसंपदाओं जल विद्युत तथा खनिज संसाधनों में धनी है। यहां पर कृषि के लिए आवश्यक मिट्टी सिंचाई हेतु प्रचुर मीठा पानी तथा सामान्य वर्षा, सभी है। कृषि में विकास की प्रचुर संभावनाएं है। यदि उनका पूरा-पूरा उपयोग हो सके, तो कृषि उपज वर्तमान स्तर से काफी ऊपर जा सकता है। एक आंकलन के अनुसार यदि सिर्फ मैकोंग नदी के जल संसाधनों का पूरा उपभोग किया जाय तो, 375,000 हेक्टर और जमीनें खेती के लिए विकसित की जा सकती हैं तथा 3,600 मैगावाट बिजली भी पैदा की जा सकती है। घने वन, वन पर आधारित उद्योगों के लिए मजबूत आधार बन सकते हैं। इस देश के पास विशाल अन्तर्देशीय मत्स्य ग्रहण संसाधन भी हैं। इसके अतिरिक्त उद्यान उद्योग तथा खान और खनिज पर आधारित कारखानों के विकास की पर्याप्त गुंजाइश है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणियां: i) नीचे दिये गये स्थान को अपने उत्तर के लिए उपयोग करें।

ii) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से करें।

1) संक्षेप में कंपूचिया की जनसांख्यिकीय रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) संक्षेप में कंपूचिया के आर्थिक संसाधनों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

21.3 इतिहास

21.3.1 प्राचीन इतिहास

कंपूचिया दक्षिण पूर्व एशिया का एक प्राचीन देश है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि यहां के लोग ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दि कृषि कार्य में लगे हुए थे। धीरे-धीरे छोट-पुट लोग इकट्ठा हुए तथा ईसा के आरंभिक वर्षों में फूनान राज्य की स्थापना की। फूनान मैकोंग नदी के डैल्टा के दक्षिण पश्चिम में स्थित था। पांचवी सदी में चेनला नाम का दूसरा राज्य मैकोंग नदी के मध्य खण्ड में स्थापित हुआ।

नवीं सदी में खमेर लोगों ने अंकोर साम्राज्य की स्थापना की। यह साम्राज्य संपूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया के काफी उन्नत तथा शक्तिशाली राज्यों में से एक था। इस काल में खमेर ने मैकोंग की निचली घाटियों को विकसित करने के लिए भीषण प्रयास किया। टोनले सेप झील तट पर इन लोगों ने अंकोर भीम तथा अंकोर वट नाम के दो विशाल मंदिरों का शहर बनाया। ये इस क्षेत्र में वास्तुशिल्पीय शान है। इस राज्य को कंबोजों के खमेर राज्य के रूप में भी जानते थे।

इस राज्य की सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परंपराएँ भारतीय स्रोतों से ली गयी थीं। इस राज्य की स्थापना जयाबर्मन द्वितीय ने की थी। उसने 801 ई. से करीब पचास वर्ष तक शासन किया। जयाबर्मन द्वितीय द्वारा स्थापित वंश में इन्द्रबर्मन (877-89), सूर्यबर्मन द्वितीय ((12वीं सदी) और जयाबर्मन आदि महत्वपूर्ण राजा हुए। कंबोज शासकों ने सिंचाई की अच्छी व्यवस्था की तथा कृषि को बढ़ावा दिया।

1218 में जयाबर्मन की मृत्यु के पश्चात् कंबोजों का पतन आरंभ हो गया। 13वीं सदी के आरंभ से कंबोज राज्य पर स्यामियों (थाई) के लगातार आक्रमण हुए। इन लोगों ने कंपूचिया में भेरवद बुद्ध धर्म का आरंभ किया। स्यामियों ने कंपूचिया के राजा को स्वयं का मातहत बना दिया। 17वीं सदी के उतरार्द्ध में वियतनाम ने कंपूचिया पर आक्रमण किया तथा स्यामियों का अधिपात्य समाप्त हो गया। कंपूचिया के सीमावर्ती दोनों क्षेत्रों पर स्याम (थाईलैंड) तथा वियतनाम का अधिकार हो गया। इन दोनों पड़ोसियों ने इस क्षेत्र पर दोहरा स्वामित्व रखा जो बाद में फ्रांसिसियों के हाथ में चला गया।

19वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में फ्रांसिसी साम्राज्यवादियों ने कंपूचिया पर कब्जा कर लिया। 1863 में कंपूचिया ने फ्रांस से एक समझौता कर लिया। समझौते की शर्त के अनुसार कंपूचिया फ्रांस का संरक्षित राज्य बन गया तथा फ्रांस का आवासीय सेनापति कंपूचिया में नियुक्त हुआ। दुसरा समझौता 1884 में हुआ जिसके फलस्वरूप कंपूचिया पर फ्रांस का नियंत्रण बहुत कठोर हो गया। 1887 में फ्रांस ने अपने हिन्दी-चीन के उपनिवेशों का एक संघ बनाया। फ्रांस का शासन करीब 80 वर्षों तक रहा। इस अवधि में कंपूचिया का साम्राज्यवादी शोषण हुआ। कंपूचिया का आर्थिक पतन हुआ, उद्योग-धन्धे नहीं लगाये गये। कृषि तथा बगीचों से आये अतिरिक्त धन का पुनर्निवेश कंपूचिया में न होकर फ्रांस ले जाया गया। फ्रांस के एकाधिकारियों ने रबड़, चावल तथा अन्य कच्चे कृर्षि पदार्थों का निर्यात करके बहुत मुनाफा कमाया। फ्रांस के शासन के विरोध तथा बगावत को कठोरता से दबा दिया गया। 1916 के बाद कंपूचिया में उपनिवेशवाद के विरोध में आंदोलन का प्रसार होने लगा। कभी-कभी यह आंदोलन बगावत का रूप ले लेता था और हिंसक हो जाता था।

21.3.2 द्वितीय विश्व-युद्ध तथा आधुनिक इतिहास

1939 में द्वितीय विश्व-युद्ध का आरंभ हुआ। 1941 में जापान ने कंपूचिया को हथिया लिया। आरंभ में जापान ने कंपूचिया में फ्रांस के प्रशासन को काम करने दिया। 1945 में फ्रांस की सरकार को बर्खास्त कर दिया तथा कंपूचिया के सम्राट नरोदम सिंहान्डुक को कंपूचिया की स्वतंत्रता की घोषण करने के लिए प्रेरित किया। इस युद्ध में धूरी राष्ट्र (जर्मनी, इटली तथा जापान) की हार हुई तथा जापान ने अगस्त 1945 में आत्मसमर्पण कर दिया। फ्रांस ने कंपूचिया सहित अन्य हिन्द-चीनी उपनिवेशों को पुनः अपने अधीन कर लिया। परन्तु युद्ध ने स्थिति को काफी बदल दिया। फ्रांस को राजनीतिक दाव-पेंच के लिए बाध्य होना पड़ा। फ्रांस ने 1946 में एक समझौता किया जिससे कंपूचिया को सीमित आन्तरिक स्वायत्ता मिली। 1947 में एक संविधान लागू किया गया। एक संसद का निर्माण हुआ तथा सीमित राजनीतिक गतिविधियों की अनुमति दी गई। 1949 में दूसरी संधि पर हस्ताक्षर हुये। अब फ्रांस ने कंपूचिया को फ्रांस के संघ अन्तर्गत एक स्वतंत्र राज्य की मान्यता दे दी। यह मान्यता अर्थहीन थी क्योंकि व्यवहार में कंपूचिया फ्रांस का आश्रित राज्य बन गया। इस व्यवस्था को आन्तरिक स्वायत्तता के नाम पर औपनिवेशिक शासन की पुर्नस्थापना के प्रयत्न के रूप में देखा गया। इस बीच औपनिवेश विरोधी राष्ट्रवादी आन्दोलन का विकास हुआ। खमेर इसारक इस आन्दोलन का सशस्त्र अंग था। इसारक आन्दोलन का नेतृत्व उपनिवेश विरोधी मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवियों के हाथ था तथा इसे किसान मजदूर तथा अन्य गरीब लोगों का समर्थन प्राप्त था। बहुत जल्द ही इस आन्दोलन ने गुरिल्ला युद्ध का रूप धारण कर लिया। खमेर इसारकों ने कुछ वर्षों के अन्दर विस्तृत क्षेत्र को आजाद करा लिया। सम्राट नरोदम सिंहनुक तथा खमेर कुलीन वर्ग के लोगों ने भी पूर्ण स्वतंत्रता के लिये आन्दोलन का आरंभ किया। स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने के लिए ज़ोर-शोर से एक कूटनीतिक लड़ाई का भी आरंभ हुआ। सम्राट की लड़ाई को कंपूचिया की स्वतंत्रता के लिए शाही धर्म युद्ध का नाम दिया गया। इसारक तथा शाही दोनों आन्दोलनों ने फ्रांस द्वारा कंपूचिया को पूर्ण स्वतंत्रता देने के लिए बाध्य किया। अक्टूबर 1953 में फ्रांस तथा कंपूचिया के शासकों के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस समझौते के द्वारा इस देश में सर्वोच्च सत्ता का हस्तांतरण शाही शासक को हो गया। 9 नवंबर 1953 को अन्ततः फ्रांस का शासन खत्म हो गया तथा कंपूचिया ने अपनी आजादी मनायी। नवंबर 9 राष्ट्रीय स्वतंत्रता दिवस घोषित हुआ। हिन्द-चीन पर जुलाई 1954 की जैनेवा वार्ता द्वारा इस आजादी को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता मिल गई।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणियां: i) नीचे दिये गये स्थान का अपने उत्तर के लिये प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से करें।

1) संक्षेप में कंपूचिया के राजनीतिक इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

.....

21.4 स्वतंत्र कंपूचिया

औपनिवेशिक काल में कंपूचिया पर देशी राजाओं का शासन था। परन्तु इनके उपर फ्रांस का नियंत्रण था। फ्रांस के अधिकारियों ने राजा की नियुक्ति अपने राजनीतिक उद्देश्यों के दृष्टि से की। नसेदम सिहांनुक 18 वर्ष की उम्र में 1941 में राजा नियुक्त किये गये। परन्तु सिहांनुक औपनिवेशिक शासन का आज्ञाकारी अस्त्र न होकर एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उभरा। स्वतंत्र कंपूचिया का वह शासक तथा एक निर्विवाद नेता हो गया।

स्वतंत्रता की प्राप्ति तथा जैनेवा समझौते द्वारा उसकी पुष्टि ने कंपूचिया में शांति तथा स्थायित्व की स्थापना की। गुरिल्ला युद्ध का अन्त हो गया, विदेशी सैनिकों को वापस बुला लिया गया तथा साम्यवादियों के नेतृत्व वाली खमेर इसारक ने सशस्त्र संघर्ष का मार्ग छोड़ दिया। जनवरी 1955 में कंपूचिया विधिवत रूप से फ्रांसिसी संघ को छोड़, अन्य हिन्द-चीनी राज्यों से अपने बंधन समाप्त कर पूर्णतः स्वतंत्र हो गया। सिंहानुक अभी भी राजा था। 1947 के संविधान ने सरकार का ढांचा बदल दिया तथा राजशाही की भूमिका को सीमित कर दिया। जैनेवा समझौते की शर्तों के अनुसार कंपूचिया ने एक स्वतंत्र तथा खुली हुई राजनीतिक प्रक्रिया का वचन दिया था। इसका प्रदर्शन 1947 के संविधान के तहत चुनावों द्वारा होना था। स्वतंत्रता से शांति तथा स्थायित्व की पुनर्स्थापना तो हुई परन्तु इससे देश में राजनीतिक ताकतों के समीकरण में भी परिवर्तन आया।

21.4.1 स्वतंत्रता तथा नया राजनीतिक समीकरण

इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि सिहांनुक राजा होते हुए भी यदि राजनीतिक रूप से निष्क्रिय रहते, तो असंतुष्ट तथा स्वार्थी राजनीतिक तत्वों ने सरकार पर कब्जा कर लिया होता। इसलिए राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए सिहांनुक ने राज सिंहासन अपने पिता नरोदम सुरामरीत को सौंप दिया। उन्होंने संगकम रीष्टर नियम या संगकम (सोशिलिस्ट पीपल्स कम्यूनिटी ऑफ कंबोडिया) नामक अपने दल का निर्माण किया। यह एक विस्तृत राजनीतिक संगठन था। इसका दरवाज़ा उन सभी राष्ट्रीय ताकतों के लिए खुला हुआ था जो अन्याय, भ्रष्टचार, अभाव तथा दमन से लड़ रहे थे तथा जो खमेर लोग अपने देश के खिलाफ विश्वासघात के विरुद्ध लड़ने के लिए कृतसंकल्प थे। इस दल ने 1955, 1958 तथा 1962 राष्ट्रीय विधान सभा के लिए हुए चुनावों में अधिकांश सीटें जीतीं। सिहांनुक ने दूरगामी राजनीतिक तथा आर्थिक सुधारों को आरंभ किया। उन्होंने खमेर बुद्धवादी समाजवाद के वैचारिक तथा राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रचार किया। यह गैर सर्वहारा समाजवाद तथा बुद्ध धर्म के नैतिक मूल्यों के विचार का संयोजन था। खमेर समाजवादी मत का मुख्य राजनीतिक सारांश उपनिवेशवाद तथा सामन्तवाद का विरोधी था। आर्थिक पिछड़ेपन पर काबू पाने तथा स्वावलंबन की प्राप्ति के लिए नई आर्थिक नीतियां बनाई गई। इस नीति के अन्तर्गत जहां सरकारी क्षेत्र पर ज्यादा जोर दिया गया, वहीं विदेशी पूंजी निवेश तथा निजी क्षेत्र को हतोत्साहित नहीं किया गया। बहुत जल्दी कंपूचिया ने विस्तृत पैमाने पर मूल ढांचे का विस्तार किया, उद्योग धन्धे विकसित किये। लगभग 3,500 छोटे औद्योगिक इकाई तथा कारखाने 1955 से 1967 तक बनाये गये। 20 अपेक्षाकृत बड़ी फैक्टरियों की स्थापना की। धीरे-धीरे कंपूचिया में धातु कार्य, तेल शोधन, भवन निर्माण सामग्री तथा अन्य कई उद्योग विकसित हुए जो कि वहां पहले नहीं थे। सरकारी क्षेत्र काफी मजबूत हो गया। सिहांनुक ने असंलग्नता तथा निष्पक्षेता की विदेश नीति अपनाई। उसने इस नीति की घोषणा 1955 में की तथा दक्षिण पूर्व एशिया सैनिक संगठन (सीऐटो) में शामिल होने से इन्कार कर दिया। 1957 में इस देश ने एक कानून बनाकर असंलग्नता का अर्थ सैन्य सन्धि तथा वैचारिक खेमों से अलग रहना बताया। कंपूचिया की असम्बद्धता की नीति तथा साम्यवादी देशों के साथ निकटता का सम्बन्ध अमेरीका तथा उसके दक्षिण पूर्व एशिया के मित्र राष्ट्रों को पसंद नहीं थे।

21.4.2 वियतनाम का गृह युद्ध तथा कंपूचिया

1968 के दशक के मध्य से बढ़ते हुये वियतनाम के गृह युद्ध ने कंपूचिया सहित हिन्द-चीन के दूसरे राज्यों को काफी गहराई से प्रभावित किया। सिहांनुक विदेश नीति के प्रसंग में अत्यधिक प्रगतिशील था, परन्तु वह साम्यवाद विरोधी, अधिकारवादी तथा पूरातन पंथी था। 1960 के दशक तक उसके शासन का प्रतिरोध कमजोर था, परन्तु 1960 के दशक के मध्य तक उसके शासन को तीव्र आलोचना का सामना करना पड़ रहा था। उभरता हुआ शिक्षित मध्यम वर्ग उसके शासन के ढंग तथा विपक्ष के प्रति उसकी असहिष्णुता के खिलाफ थे। उसने वामपंथी गर्मविधियों को दबाने की कोशिश की। 1960 के दशक के अन्त तक कंपूचिया की संसद और सेना सहित सरकारी तंत्र में एक मजबूत विपक्ष उभरा जिसमें दक्षिण-पंथी तत्व भी शामिल थे।

ये तत्व अर्थव्यवस्था में सरकारी क्षेत्र को सीमित करना चाहते थे तथा तटस्थता की विदेश नीति के पुनरावलोकन की मांग कर रहे थे। सैनिक अफसर अमरीका उन्मुख नीति का समर्थन इस विचार से कर रहे थे कि इससे विदेशी सहायता का फायदा मिलेगा। इन आन्तरिक दक्षिण-पंथी ताकतों ने 1970 में सत्ता पलट सिंहानूक को सत्ता से पदच्यूत कर सरकार पर कब्जा कर लिया। सेना के जनरल लोन नोल एक तानाशाह की तरह उभरे। शायद इस सत्ता पलट में अमरीका का भी हाथ था क्योंकि लोन नोल की सरकार को अमरीका से हर संभव समर्थन तथा सहयोग मिला। लोन नोल के काल में कंपूचिया के कुल घरेलू उत्पाद के कुल आधे के बराबर सहायता मिलती थी।

21.4.3 जनरल लोन नोल का शासन

जनरल लोन नोल के नये शासन ने अमरीका को वियतनाम पर आक्रमण के लिए कंपूचिया की भूमि को आधार के रूप में प्रयोग करने की अनुमति दे दी। लोन नोल ने कंपूचिया को खमेर गणतंत्र बना दिया। उसकी अभिलाषा संसदीय प्रजातंत्र की स्थापना करनी थी, परन्तु वह बहुत ही दमनकारी हो गया।

कंपूचियाई साम्यवादी कम्यूनिस्ट पार्टी या खमेर राज स्वतंत्रता के समय से ही अव्यवस्थित लगे। 1962 के बाद यह पुनर्जीवित होने लगे। 1960 के दशक के अन्त तक खमेर राज्य को किसानों तथा ग्रामीण गरीबों के बीच बहुत समर्थन मिला तथा यह काफी मजबूत हो गया। अमरीका समर्थित सैनिक शासन की स्थापना के पश्चात् खमेर राज ने अप्रजातांत्रिक सरकार को गिराने के लिए सशस्त्र संघर्ष का आरंभ किया। अब नरोदम सिंहानुक ने खमेर राज के साथ संधि कर ली और मई 1970 में नेशनल यूनाइटेड फ्रंट नामक दल की स्थापना हुई। नरोदम सिंहानुक को इसका अध्यक्ष चुना गया। अपने राजनीतिक कार्यक्रम में इस मोर्चे ने इस बात पर ज़ोर दिया कि इसका मुख्य उद्देश्य सभी कंपूचियाई देशभक्तों को बिना किसी राजनीतिक दृष्टिकोण या धार्मिक विश्वासों के भेदभाव के कंपूचिया की वर्तमान सीमा के भीतर राष्ट्रीय स्वतंत्रता की संरक्षा, शांति, तटस्थता तथा क्षेत्रीय अखण्डता तथा देश में लोकप्रिय स्वतंत्र तथा प्रजातंत्रिक सत्ता की स्थापना के लिए साथ किया जाय। इस मोर्चे ने लोन नोल की शक्ति का लगातार प्रतिरोध किया तथा कई सफल लड़ाइयां लड़ी। 1973 के आरंभ तक इस मोर्चे का कंपूचिया के 60 प्रतिशत क्षेत्र तथा 25 प्रतिशत लोगों पर नियंत्रण था। लोन नोल अधिकांशतः अमरीकी समर्थन पर निर्भर था। 1973 में कई महीनों तक अमरीकी ताकतों ने मोर्चा नियंत्रित क्षेत्रों पर भारी बमबारी कर लोन नोल के शासन को संभालने का प्रयास किया। अमरीकी कांग्रेस ने 1973 में बमबारी रोकने का आदेश दिया। लोन नोल की सरकार का बचना कठिन हो गया। 1975 के आरंभ तक मोर्चा देहाती इलाकों पर नियंत्रण कर नोम पेन्ह की ओर बढ़ रहा था। अप्रैल 1975 में नोम पेन्ह से लोन नोल की सरकार अन्तिम रूप से बर्खास्त कर दी गई।

आरंभ में लोन नोल शासन को शहरी मध्यम वर्ग का विस्तृत समर्थन प्राप्त था। फैलती हुई सेना में बहुत लोग शामिल हुए परन्तु किसानों ने इस शासन का समर्थन नहीं किया। यह शासन आरंभ से ही अन्तर्निहित कमजोरियों से ग्रस्त था। शिखर का नेतृत्व हमेशा ही विभाजित रहा। आपसी मतभेद, सरकार समर्थक ताकतों को राष्ट्रीय लड़ाकू सेना में बदलने की समस्या तथा सेना और असैनिक प्रशासन में फैले अनियंत्रित भ्रष्टाचार ने आरंभिक काल में बहुत ही प्रखर उत्साही शहरी समर्थन को समाप्त कर दिया। इस शासन ने नया सरकारी तंत्र विकसित करने के उद्देश्य से 1972 में नये संविधान की घोषणा की। अपनी प्रजातांत्रिकता के प्रमाण के रूप में चुनाव कराये। परन्तु अपने दमनकारी स्वरूप तथा अमरीका पर अत्यधिक निर्भरता के कारण सामान्य जनता के बीच बने रहने के लिए जरूरी समर्थन का भी आधार नहीं बना पाई।

21.4.4 कंपूचियन यूनाइटेड फ्रंट का उदय

अप्रैल 1975 में कंपूचियन यूनाइटेड फ्रंट ने सत्ता हथिया ली। राजकुमार सिंहानुक को पुनः राज्याध्यक्ष बनाया गया। 1975 के अन्त में एक राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में गणतंत्रात्मक प्रणाली की सरकार स्थापित करने वाले एक संविधान को लागू किया। पुनः इस देश का नाम 'प्रजातांत्रिक कंपूचिया' (Democratic Kampuchea) पड़ा। मार्च 1976 में 250 सदस्यीय जन प्रतिनिधि सभा के लिए चुनाव हुए। इस नई संसद ने खीउ संफन को राज्याध्यक्ष चुना तथा पोल पोट के प्रधानमंत्रित्व में एक मंत्रिपरिषद नियुक्त की। पोल-पोट जो कि पहले सलोथ सार के रूप में जाना जाता था, फ्रेंच पढ़ा हुआ शिक्षक था। उसने 1962 में कंपूचिया की कम्युनिस्ट पार्टी की सेन्ट्रल कमिटी के सचिव का पद हथिया लिया था। नये संविधान ने कंपूचिया को तटस्थ तथा असंलग्न देश घोषित किया। परन्तु बहुत जल्द यह स्पष्ट हो गया कि कंपूचिया चीन के जनवादी गणतंत्र के साथ बहुत हद तक संलग्न था। वियतनाम के साथ भी इसके संबंद्ध शत्रुतापूर्ण थे जिसने सीमा पर कई भिड़ंतों का रूप लिया। इन भिड़न्तों ने 1977 में कंपूचिया तथा वियतनाम

21.4.5 कंपूचिया का समाज तथा राजनीति

अमरीका समर्थक लोन नोल की हार के पश्चात् कंपूचिया एक सामान्यतः शांतिपूर्ण नया समाज बना चुका होता। परन्तु यहां के लोगों के लिए घटनाक्रम ने अनर्थकारी मोड़ ले लिया। खमेर रुज के (पोल-पोट हेंग सेरी गुट) के नये नेता ने जितना जल्द संभव हो सकता था, उतना कंपूचिया की गतिहीन तथा अर्द्ध सामन्तवादी समाज को बहुत ही आधुनिक साम्यवादी समाज में बदलने के लिए कठोर कदम उठाये। नोम पेन्ह पर कब्जा करने के तुरन्त बाद वहां के निवासियों को इस अपव्ययी खर्चीले शहर को छोड़कर ग्रामीण क्षेत्रों की ओर लौटकर किसानों के साथ काम करने को कहा गया। निःसंदेह यह एक तर्कसंगत नीति थी, परन्तु इसका कार्यान्वयन बहुत ही असंगत तथा हिंसक था। इसका अंजाम बहुत ही अनर्थकारी हुआ। कंपूचिया के बहुत सारे लोगों की जानें गई। जनसंख्यिक प्रभाव इतना भयानक था कि राजधानी की जनसंख्या मात्र 20,000 रह गई। इस शासन की राजनीतिक नीति भी बहुत ही जोखिम भरी साबित हुयी। कंपूचिया के लोगों के निर्विवाद नेता राजकुमार नरोदम सिंहानुक को राज्याध्यक्ष का पद छोड़ना पड़ा तथा महीनों नजरबंद रहना पड़ा। बाद में वे बीजिंग प्रवास में चले गये। नये शासन ने इससे पहले वाले शासन के अवशेष को भी समाप्त करना आरंभ किया। इसने बड़े पैमाने पर किसानों, पुराने नेताओं तथा बुद्धिजीवियों की जाने लेना शुरू किया। यह शासन विरोध के प्रति पूर्णतया असहिष्णु था। कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर भी भीतरी प्रजातंत्र का दम घोंट दिया गया। जाने माने कम्यूनिस्ट नेताओं को दल से निकाल दिया गया तथा उनकी हत्या कर दी गई। इस शासन ने चीन के सांस्कृतिक क्रांति की नकल करने के प्रयास में देश के नागरिकों से बदला लिया। पोल पोट का शासन बुद्धिजीवियों, छात्रों, कार्यालय के कर्मचारियों तथा बौद्ध पूजारियों को सताने में बहुत निष्ठुर था। इनमें से बहुतों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस शासन ने कंपूचिया के नागरिकों के खिलाफ बहुत बड़े पैमाने पर जाति संहार की नीति को कार्यान्वित किया। करीब-करीब सब धार्मिक तथा जातीय समूहों को मिटाया जा रहा था। 1975-79 के बीच इस शासन काल में एक करोड़ कंपूचियन मार दिये गये। सिंहानुक के पांच बेटे तथा पंद्रह पोते मारे गये। पूरी जनसंख्या को समाज को बदलने में लगा दिया गया। निजी सम्पत्ति को समाप्त कर दिया गया। पैसे के उपयोग पर पाबंदी लगा दी गई। जनता को सामूदायिक जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया। पुनर्गठन की नीति के आर्थिक परिणाम भी बहुत अनर्थकारी हुए। राष्ट्रीय बैंक बरबादी की स्थिति में था। अनाज का औसत उत्पादन पहले के उत्पादन स्तर का 60-70 प्रतिशत मात्र रह गया। इस नीति ने कंपूचिया के सांस्कृतिक विकास को भी रोक दिया। राष्ट्रीय पुस्तकालय को गोदाम में बदल दिया गया।

बहुत से पुराने देशभक्त तथा कम्युनिस्ट जान बचाने के उद्देश्य से वियतनाम भाग गये। वियतनाम की सरकार के भरपूर समर्थन से इन लोगों ने 1978 के दिसंबर में राष्ट्रीय रक्षा के लिए कंपूचियन युनाइटेड फ्रंट बनाया। इस मोर्चे ने कंपूचिया के लोगों को पोल पोट की दमनकारी सरकार के खिलाफ संघर्ष करने की आवाज दी। इस मोर्चे ने वियतनाम की नियमित सेना के समर्थन से पोल पोट की सरकार के खिलाफ सशस्त्र लड़ाई शुरू की। बहुत जल्द इसे सफलता मिली तथा राजधानी नोम पेन्ह पर इसने जनवरी 7, 1979 को कब्जा कर लिया इस मोर्चे ने कंपूचिया को जनवरी 11 को 'पीपल्स रिपब्लिक ऑफ कंपूचिया' घोषित किया।

21.4.6 हैंग सैमरिन के शासन का उत्थान

हैंग सैमरिन गणतंत्र का अध्यक्ष बना तथा एक क्रांतिकारी परिषद बनायी गयी। नोम पेन्ह ने वियतनाम के साथ शांति मित्रता तथा सहयोग की संधि की तथा वियतनाम की सेना को उपस्थिति की अनुमति दी। इन सैनिकों ने क्रांतिकारी परिषद को खमेर राज की सेना के प्रतिरोध पर काबू पाने के लिए अपनी सेना तैयार करने में मदद की। नई सरकार निःसंदेह विदेश समर्पित थी। परन्तु कंपूचिया के लोगों ने इसका इसलिए स्वागत किया क्यों कि इस शासन ने पोल पोट के आतंक का अन्त किया। बुद्ध धर्म को पुनः जीवित किया गया तथा इसके प्रति सहनशीलता का रुख अपनाया गया। पूर्ववर्ती शासन के समाजवाद को पाने के तरीकों में उचित सुधार किया गया। राष्ट्र सभा की 117 सीटों के लिए मई 1981 में चुनाव हुए। कंपूचियन नेशनल यूनाइटेड फ्रंट फौर नैशनल सैल्वेशन (राष्ट्रीय उद्धार के लिए) ने चुनाव में अधिकांश सीटें जीत लीं। इस मोर्चे की राजनीतिक शाखा को कंपूचियन पीपल्स रिव्लयूश्नरी पार्टी में बदल दिया गया तथा इस मोर्चे का कंपूचियन साय्नाइटेड फ्रंट फॉर नेशनल कंसट्रक्शन एन्ड डीफेन्स के नाम से पुनर्गठन किया गया। हैंग सैमरिन तथा हन सेन सर्वोच्च नेता के रूप में उभरे। सौमरिन नोम पेन्ह सरकार के राष्ट्रपति बने तथा हून सेन को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। हैंग सेमरिन की सरकार 1979 से शासन में है। दो तिहाई से ज्यादा कंपूचिया पर इसका नियंत्रण है।

राष्ट्रीय सभा द्वारा विधिवृत मंजूर एक नये संविधान को जून 1981 में लागू किया गया। संविधान का लक्ष्य समाजवाद की स्थापना है। संविधान राष्ट्रीय सभा, राज्य परिषद, मंत्री परिषद, स्थानीय लोगों की समिति तथा पृथक न्यायपालिका का प्रावधान करता है। राष्ट्रीय सभा राष्ट्र शक्ति का उच्चतम अंग तथा देश की अकेली व्यवस्थायी संस्था है। इसके सदस्यों का चुनाव सार्वजनिक गुप्त मतदान के सिद्धान्त के अनुसार पांच वर्ष के लिए होता हैं। राज्य परिषद देश का प्रतिनिधि अंग तथा राष्ट्रीय सभा का स्थायी अंग है। इसके सदस्यों का चुनाव राष्ट्रीय सभा के सदस्य अपने बीच से करते हैं। मंत्री-परिषद् सरकार का सर्वोच्च अंग तथा समाज के प्रबंध का प्रत्यक्ष उपकरण जवाबदेह हैं। स्थानीय प्रान्तों, जिलों शहरों तथा गांवों में स्थानीय लोगों की समीतियों के द्वारा देश के प्रशासन को विकेन्द्रित किया गया हैं। ये समितियां स्थानीय प्रशासन, जन सुरक्षा तथा समाजिक व्यवस्था के लिए जबाबदेह हैं। संविधान में एक ऐसी न्यायपालिका का प्रावधान है, जिसमें जन न्यायालय तथा सैनिक अदालत दोनों शामिल हैं।

नई सरकार ने आत्मनिर्भरता के लिए अपनी नई आर्थिक नीति बनाई है। अब अर्थव्यवस्था सरकार के निर्देशन में है। इसके चार क्षेत्र हैं यथा-सरकारी क्षेत्र, सामूहिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र तथा परिवार द्वारा चलाए जा रहे कुटीर उद्योग। विदेश व्यापार पर सरकार का एकाधिकार है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणियां: i) नीचे दिये गये स्थान का अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से करें।

) 1953 में कंपूचिया की स्वतंत्रता के पश्चात् उसके राजनीतिक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

21.5 गृह युद्ध

प्रजातांत्रिक कंपूचिया की खमेर रूज सरकार को नोम पेन्ह से तो निकाल दिया गया परन्तु थाई सीमा के निकट कुछ क्षेत्रों पर उसका नियंत्रण बना रहा। पोल पोट की जगह पर खीय सेम्फन को सेना प्रधान नियुक्त किया गया। खमेर रूज ने अपनी मौलिक नीतियों को संशोधित किया। खमेर रूज नियंत्रित क्षेत्रों में बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित किया गया तथा निजी कृषि कार्य को प्रोत्साहित किया गया। इसने अपने राजनीतिक खंड का नया नाम पार्टी ऑफ डैमोक्रेटिक कंपूचिया रखा। पहले इस दल का नाम कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ कंपूचिया था। थाइलैंड की सीमा पर अपने आधारों से खमेर रूज ने वियतनाम समर्थित हेंग सैमरिन सरकार से अपना प्रतिरोध जारी रखा। इससे कंपूचिया में एक लम्बे चले गृह युद्ध का आंरभ हुआ। खमेर रूज और भी मजबूत हुआ। सिंहानुक तथा दूसरी नोम पेन्ह विरोधी गैर-साम्यवादी ताकतें हैंग सैमरिन सरकार को हटाने के लिए साथ हो गई। अमरीका समर्थित अंतर्राष्ट्रीय शक्तियां, चीन तथा दक्षिण पूर्व एशिया के राष्ट्रों के समूह ने वियतनाम तथा हैंग सैमरिन विरोधी तीन गुटों, खमेर रूज कंपूचियन पीपल्स लिब्रेशन फ्रंट (लोन नोल कम्युनिस्ट समर्थकों का एक विरोधी संगठन) तथा सिंहानुक के शाही समर्थक दल को साथ लाया तथा उनके बीच जून 1982 में एक समझौता कराया। इन शक्तियों ने हैंग सैमरिन विरोधी गठबंधन बनाया तथा प्रवास मे

सरकार बनायी जिसके अध्यक्ष राजकुमार सिंहानुक, उपाध्यक्ष खीयू फ्रंट के सोन सान प्रधानमंत्री बने। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे प्रवास में सरकार की मान्यता दी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने नोम पेन्ह की सरकार को मान्यता नहीं दी। नोम पेन्ह की सरकार को चुनाव से वैधता मिल चुकी थी, कंपूचिया के बड़े क्षेत्र पर इसका प्रभाव तथा फिर भी इसको अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से बहुत कम समर्थन तथा मान्यता मिली। कई वर्षों तक यह देश गृह युद्ध से ग्रस्त रहा। यहां सुरक्षा, जीवन तथा संपत्ति तीनों में से कुछ भी नहीं थे। बहुत से कंपूचियाई अपना घर छोड़ कर कंपूचिया थाइलैंड सीमा पर शरणार्थी की तरह रहने को बाध्य थे। देश की अर्थ व्यवस्था चरमरा गयी थी। कंपूचिया जो कभी जरूरत से अधिक चावल उत्पादन करने वाला देश था अब अकाल तथा भूखमरी से ग्रस्त हो गया।

राजकुमार सिंहानुक खमेर रूज से अपनी दोस्ती बहुत दिन तक बनाये नहीं रख सके। अब वे खमेर रूज के विरोधी है। राष्ट्रीय सामंजस्य के लिए अन्तरिम सरकार बनाने के हाल के प्रयासों में वे खमेर रूज को साथ करने के पक्ष में नहीं हैं। जून 1993 में एक बैठक में उन्होंने कहा ''हम उन पर (खमेर लोगों) शत प्रतिशत विश्वास नहीं कर सकते''।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणियां: i) नीचे दिये गये स्थान का अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से करें।

1) कंपूचिया के गृह युद्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

21.6 आर्थिक विकास

कंपूचिया एक कृषि प्रधान देश है। इसका औद्योगिक क्षेत्र बहुत ही छोटा है। चावल यहां की मुख्य फसल है। 1970 में करीब 2.4 करोड़ हैक्टेयर जमीन में चावल उपजाया जाता था। मैकौंग नदी तथा टानले सैप (महान झील) द्वारा लायी जाने वाली मौसमी बाढ़ के कारण देश की मिट्टी भीगे चावल की खेती के लिए उपयुक्त है। जल की मछलियाँ तथा ताजी सब्जियां उपलब्ध हैं। फलस्वरूप ग्रामीण लोगों को संतुलित मात्रा में ठोस आहार मिल जाता है। 1970 में कंपूचिया की प्रति व्यक्ति औसत आय 130 डालर प्रति वर्ष थी। औपनिवेशिक शासकों ने आर्थिक विकास पर अधिक ध्यान नहीं दिया। आजादी के समय कंपूचिया को विरासत में बहुत संकीर्ण औद्योगिक आधार मिला। कुछ उद्यान आधारित उद्योग थे तथा कुछ कृषि और जंगल उत्पादों को संसाधित करने के कारखाने थे। अपने घरेलु बाजार की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने, विदेशी मुद्रा बचाने तथा आयात कम करने के लिए आजादी के पश्चात् कई उद्योग लगाये गये। 1970 के दशक के आरंभ में कंपूचिया 150 किलो वॉट प्रति घंटे बिजली पैदा करता था। चीन के जनवादी गणतंत्र ने कंपूचिया को उद्योग विकसित करने में मदद की। चीन ने 22.4 करोड़ डालर कीमत का साज सामान की सहायता देना मंजूर किया। चीन ने कपड़ों के कारखाने बनाने में भी मदद की। बहुत सारे दूसरे भूतपूर्व समाजवादी देशों ने भी ट्रैक्टर के पुर्जे जोड़ने, टायर बनाने तथा चीनी परिष्करण के लिए संयत्रों को लगाने में सहायता दी। सिंहानुक के काल (1955 से 1970) में कंपूचिया को मूल ढांचे तथा सामाजिक उपकरण के विकास में बहुत सफलता मिली। कंपूचिया अतल समुद्र में अपने निकास के लिए वियतनाम पर आश्रित था। सरकार ने फ्रांस की सहायता से स्याम की खाड़ी में एक बंदरगाह विकसित की, जिसे व्यापार के लिए 1960 में खोल दिया गया। 1960 के दशक में नयी सड़कें बनायी गयी तथा रेलवे लाइनें भी। सिंहानुक की सरकार को कई देशों से काफी मात्रा में विदेशी सहायता मिली। आर्थिक विकास के खर्च को पूरा करने के लिए सरकार ने आन्तरिक साधन भी जुटाए।

1960 के दशक के मध्य में सरकार ने कई महत्वपूर्ण फैसले किये। 1963 के अन्त में कंपूचिया ने अमरीकी सहायता लेना छोड़ देने का फैसला किया। उसी वर्ष आयात निर्यात का राष्ट्रीयकरण किया गया। बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण किया। विदेशी सहायता की समाप्ति से आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ, जिससे शहरी मध्यम वर्ग जीवन स्तर प्रभावित हुआ। ये लोग सरकारी नीतियों के खिलाफ बहुत मुखर हुए तथा सिंहानुक के विरुद्ध आंदोलन का आधार बने। इस आंदोलन ने दक्षिण पक्ष के सैनिक अधिकारियों को सत्ता पलट में सहायता की, जिससे 1970 में सिंहानुक से शासन छीना गया। इस सत्ता पलट ने कंपूचिया को एक गृह युद्ध में झोंक दिया, जिससे देश की अर्थव्यवस्था विघटित हो गई। युद्ध से औद्योगिक तथा कृषि, दोनों क्षेत्रों में उत्पादन कम हो गया। कंपूचिया की अर्थव्यवस्था पूर्णतः छिन्न-भिन्न हो गई। सरकारी राजस्व प्रायः शून्य हो गया जबकि सैन्य खर्च बहुत बढ़ गया। देश पूर्णतः अमरीकी सहायता पर निर्भर हो गया।

खमेर रुज ने 1975 में सत्ता पर कब्जा जमा लिया। नये शासन की जोखिम भरी नीतियां अर्थव्यवस्था को 1970 से पहले की स्थिति में लाने में असफल रही। हैंग सैमरिन की सरकार द्वारा सत्ता सम्हालने के पश्चात् आर्थिक पुनः लाभ होने लगा। सरकार गम्भीर सीमाओं के अन्दर कार्य कर रही थी। उसे अधिक विदेशी सहायता नहीं मिल रही थी। इसे एक लम्बा खींचा गृह युद्ध लड़ना पर रहा था। इस सबके ऊपर प्रकृति भी निष्ठुर हो जाती थी कभी-कभी। तब भी आर्थिक क्षेत्र में कार्य पूर्व शासकों से बहुत अच्छा था।

चावल का उत्पादन 1982 के 1.7 मैट्रिक टन से बढ़कर 2.0 मैट्रिक टन हो गया। दूसरी फसल जैसे मकई, मीठा आलू तथा शकरकंद की उपज 1970 के पहले वाले स्तर पर पहुँच गई। चीनी तथा दूसरे बगीचे के उत्पादन जोकि प्रायः खत्म हो गये थे काफी बढ़े। मछली का उत्पादन 1980 से 85 तक तिगुना हो गया। वन उत्पाद भी बढ़े। 1970 के दशक में उद्योग धन्धे पूर्णतः विच्छिन्न हो गये थे। 1983 तक 60 कारखानों में उत्पादन पुनः आरंभ हो गया। देश का निर्यात, जिसमें कृषि उत्पादन तथा औद्योगिक उत्पादन, जैसे कि रबर शामिल हैं, बहुत बढ़ गया। 1970 के दशक में कई बार देश में अकाल पड़ा, परन्तु 1980 के दशक में अकाल का भय प्रायः खत्म हो गया।

हैंग सैमरिन की सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रतिमान का अनुसरण किया। सरकार ने सरकारी तथा निजी दोनों क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया तथा साथ-साथ मुक्त व्यापार की भी अनुमति दी। यद्यपि इस नीति ने एक धनी शहरी मध्यम वर्ग का सृजन किया, फिर भी सरकार ने उदारीकरण की नीति को प्रोत्साहित किया,क्योंकि इससे आर्थिक विकास हुआ है। अब तक प्राप्त सफलता से देश की अर्थव्यवस्था संकट से बाहर नहीं निकली है। देश की अर्थव्यवस्था का समग्र समुत्थान अभी भी 1970 के पहले के स्तर पर नहीं पहुँचा है। कंपूचिया अभी भी इस क्षेत्र का सबसे गरीब तथा विश्व के सबसे गरीब देशों में से एक है।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणियां: i) नीचे दिये स्थान का अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की तुलना इस इकाई के अन्त में दिये उत्तर से करें।

1) 1980 के दशक में कंपूचिया के आर्थिक पुनर्उत्थान पर टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

21.7 पैरिस का शांति समझौता

अक्टूबर 23, 1991 को एक शांति समझौते पर हस्ताक्षर हुए। यह समझौता 13 वर्ष पुराने गृह युद्ध को समाप्त करने के लिए हुआ। वर्षों के कठिन विदेशी प्रयासों के बाद चारों गुट शांति के सामान्य आधार पर सहमत किये गये। राजकुमार सिंहानुक, चीन तथा वियतनाम द्वारा किये गये प्रयासों से ही समझौते पर हस्ताक्षर हो पाना संभव हुआ। चीन तथा वियतनाम अपने संबंधों को सामान्य करने के लिए आपसी शत्रुता से अब बाहर निकल रहे हैं। नोम पेन्ह के प्रधानमंत्री हून सेन की सरकार का वियतनाम प्रधान समर्थक रहा है।

चीन ने प्रमुख विरोधी गुट खमेर रुज तथा इसके दो नाम मात्र के सहयोगी गुटों को सैनिक सामान दिया। चीन तथा वियतनाम दोनों ने रास्ता बदल कर अपने आश्रितों को शांति के लिए मनाया। कंपूचिया में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। वहां की कम्यूनिस्ट पार्टी ने पैरीस समझौते के अवसर पर अपना नाम बदलकर कंबोडियन पीपल्स पार्टी रखा तथा मार्क्सवादी विचारधारा को छोड़कर बहुदलीय प्रजातंत्र तथा मुक्त बाजार की वकालत शुरू कर दी। हुन सेन सिंहानुक के प्रति अपने समर्थन की घोषणा की। सिंहानुक ने 1991 की तटस्थत घोषणा से पहले तक देश के भावी राष्ट्रपति के रूप में प्रतिरोध का नेतृत्व भी किया था।

फ्रांस तथा इंडोनेशिया की सह-अध्यक्षता में कंपूचिया पर पैरीस अंतर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन के तत्वधान में पैरीस समझौते पर 19 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किये। हस्ताक्षर होने से पहले संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के पांच स्थायी सदस्यों ने अगस्त 1990 में एक मसौदा तैयार किया था तथा संघर्षरत गुटों को उसमें बिना कुछ जोड़े या परिवर्तन किये उस पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रेरित किया था। चारों गुटों के नेताओं ने भी पैरीस शांति समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद तथा महासभा से कंपूचिया में परा-राष्ट्रीय सत्ता की स्थापना की मांग की। कंपूचिया में संयुक्त राष्ट्र की परा-राष्ट्रीय सत्ता को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये:

1) सहमति के अनुसार हर गुट अपनी सेना का 70 प्रतिशत विघटन कर शेष को वापस छावनी भेजेगा।

2) शस्त्रों को वापस लेकर उन्हें छावनी में जमा करना।

3) युद्ध विराम लागू करना तथा यह निश्चित करना कि अब चीन, वियतनाम, दक्षिण पूर्व एशिया सैनिक संगठन के देशों या अन्य विदेशी स्रोतों से सैनिक सहायता नहीं आये।

4) 1993 के चुनाव तक देश पर शासन करना।

5) देश की प्रतिरक्षा, विदेश विभाग, जनसुरक्षा, वित्त तथा सूचना मंत्रालय अपने हाथ में ले लेना।

6) यह निश्चित करना कि मानव अधिकारों का उल्लंघन न हो।

शांति समझौते की शर्तों के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी शांति बरकरार रखने की कार्यवाही 1991 के अन्त तक आरंभ कर दी। 22,000 से ज्यादा लोगों ने शांति प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में भाग लिया। परन्तु पैरिस शांति समझौते के कई महत्वपूर्ण प्रावधान जिनके तहत शांति प्रक्रिया आरंभ हुई थी अपूर्ण ही रहे। इसमें संघर्षरत गुटों का निरसीकरण तथा विघटन शामिल हैं, इसके अतिरिक्त युद्ध से विध्वस्त देश में सयुक्त राष्ट्र संघ के शांति लाने के प्रयासों के बावजूद गुटों के बीच लड़ाई जारी रही है।

21.8 चुनाव

पैरिस शांति समझौते के प्रावधानों के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ की शांति स्थापित करने वाले शिष्ट मंडल ने 120 सदस्यों वाली संसद के लिए मई, 1993 में चुनाव कराये। खमेर रुज जिसने शांति समझौते पर हस्ताक्षर किये हुये थे चुनाव का बहिष्कार किया। उसने नोम पेन्ह की सरकार पर स्वतंत्र तथा निष्पक्ष चुनाव न होने देने का आरोप लगाया। तीन मुख्य दलों ने चुनाव में भाग लिया। ये दल हैं: 'रोमालिस्ट फनसीनपेक दल' जिसे 1.50 करोड़ अर्थात् 45.5 प्रतिशत मत मिले, कंबोडियन पीपल्स पार्टी को 1.25 करोड़ या 38.4 प्रतिशत तथा बौद्ध लिबरल पार्टी को 1,20,000 या 3.7 प्रतिशत मत मिले। फेकीनपेक को 56, सत्ताधारी दल को 49 तथा बुद्धिस्ट पार्टी को 9 सीटें मिली। सत्ताधारी दल ने चुनाव में अनियमितता का आरोप लगाया तथा देश के 21 में से 4 प्रान्तों में फिर से मतदान कराने की मांग की। इन चार प्रान्तों में फकीनफेक की जीत हुई। सत्ताधारी दल ने आरोप लगाया कि कुछ मत पेटियों के मुहर टूटे हुए थे तथा संयुक्त राष्ट्र संघ ने लोगों पर दबाब डाला था कि वे कैसे मतदान करें। सत्तारूढ़ दल ने चुनाव परिणाम का विरोध करने की धमकी दी। संयुक्त राष्ट्र संघ के स्थानीय अधिकारियों ने या जिन्होंने मतदान का सर्वेक्षण किया था, चुनाव को स्वतंत्र तथा निष्पक्ष प्रमाणित कर दिया। अन्त में सत्ताधारी दल ने भी परिणाम को स्वीकार कर लिया।

राजकुमार सिंहानुक ने नई व्यवस्थापिका की बैठक बुलाने तथा एक अन्तरिम सरकार बनाने के लिए जरूरी कदम उठाये। 120 सदस्यों की निर्वाचित सभा को तीन महीने के भीतर एक प्रजातांत्रिक संविधान लागू करना है और इसके बाद एक सरकार भी बनानी है।

इस नव निर्वाचित संविधान सभा की पहली बैठक नोम पेन्ह में 14 जून 1993 को हुई। इस बैठक ने सर्वसम्मति से राजकुमार नरोदम सिंहानुक को राज्याध्यक्ष चुना जिनके पास देश का नेतृत्व करने की सारी शक्तियां थीं। इसने अमरीका समर्थित 1970 के सत्तापलट, जिसने राजकुमार सिंहानुक को पदच्युत कर दिया था, को अवैध करार दिया। खमेर रूज अब तक सामान्य राजनीतिक दल के रूप में मुख्य धारा में लौटना चाहती है। परन्तु सिंहानुक ने कहा है कि खमेर रूज के सामान्य राजनीतिक दल के रूप में नोम पेन्ह लौटने के प्रस्ताव पर यकीन नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न 6

टिप्पणी: i) नीचे दिये गये स्थान को अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से तुलना करें।

1) संयुक्त राष्ट्र संघ के कंपूचिया में शांति प्रयासों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

2) कंपूचिया के 1993 के चुनाव पर एक छोटी टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

21.9 भारत कंपूचिया संबंध

भारत तथा कंपूचिया के बीच ऐतिहासिक सम्बन्ध तथा सांस्कृतिक घनिष्टता अति प्राचीन काल से है। कंपूचिया के सबसे पुराने राज्य फूनान, चेन ला आदि भारतीयकृत राज्य थे। भारत का सांस्कृतिक प्रभाव अंगकार काल में और भी गहरा हुआ। ईसा युग के आरंभ में कंपूचिया में हिन्दू धर्म का प्रसार हुआ। मध्य युग में बुद्ध धर्म ने हिन्दू धर्म की जगह ले ली थी। दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क बने हुए है। 1950 के दशक के मध्य से बहुआयामीय सम्बंध विकसित होने लगा। कंपूचिया के राष्ट्राध्यक्ष राजकुमार नरोदम सिंहानुक ने मार्च 1955 में भारत की प्रथम यात्रा की। सिंहानुक के सम्मान में दिये गये 18 मार्च को नई दिल्ली में एक प्रीति भोज में जवाहरलाल नेहरू ने कहा "आज कंबोज के देश को भारत ने जो महानतम उपहार दिये उनमें बुद्ध का शांति तथा मित्रता का संदेश है। शायद उस संदेश की जरूरत हमारे देशों में तथा दूसरे देशों में अभी से अधिक कभी भी नहीं थी।" भारत तथा कंपूचिया ने इस अवसर पर एशिया के नव स्वतंत्र देशों की विभिन्न समस्याओं पर विचार विमर्श किया। कंपूचिया के नेता की यात्रा का परिणाम बहुत सफल रहा। भारत तथा कंपूचिया शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के पांच सिद्धांतों का पालन करने के लिए सहमत हुए। भारतीय नेताओं के साथ अपनी बातचीत का निचोड़ बताते हुए सिंहानुक ने कहा कि मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि मैंने भारत के लोगों में कंपूचिया के साथ ठोस आधार पर संबंध स्थापित करने की मधुरतम इच्छा को महसूस किया है। हम बराबर मित्र राष्ट्र रहे हैं और आज अपने देशवासियों के लिए इसका प्रतिफल ले जाने में हमें प्रसन्नता है। प्रथम भारत हमें वह सारी सहायता देने के लिए तैयार है जिसकी हमें जरूरत है। द्वितीय, भारत ने हमारी आजादी तथा अखंडता को सुरक्षित रखने के लिए भी मदद का वचन दिया है। शिष्ट मंडल का आदान-प्रदान होगा। बाद में राजकुमार सिंहानुक ने कहा कि कंपूचिया पर भारत की विदेश नीति का प्रभाव स्पष्ट है। भारत ने कंपूचिया के स्वतंत्र अस्तित्व का बराबर समर्थन किया। 1970 में सिंहानुक के सत्ता से हटाये जाने पर भारत ने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। भारत के विदेश विभाग के मंत्री ने कहा कि "कंपूचिया की स्वतंत्रता तथा वहां शांति बनाये रखने के लिए भारत राजकुमार सिंहानुक की भूमिका को स्वीकार करता है।" भारत ने 1975 में कंपूचिया के लोगों की विजय का स्वागत किया। भारत ने खमेर रूज की दमनकारी

नीतियों का भी विरोध किया। भारत ने कंपूचिया में संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति स्थापित करने के प्रयासों का स्वागत किया।

बोध प्रश्न 7

टिप्पणियां: i) नीचे दिये गये स्थान का अपने उत्तर के लिए प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जांच इस इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से करें।

1) भारत कंपूचिया संबंध पर एक संक्षिप्त निबंध लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

21.10 सारांश

कंपूचिया दक्षिण पूर्व एशिया के प्राचीन मुख्य भूमि देशों में से एक है। इसका इतिहास इस युग से भी पुराना है। 801 ई. से पांच शताब्दी तक यह इस क्षेत्र के सबसे मजबूत तथा विकसित देशों में एक था। एशिया तथा अफ्रीका के अन्य बहुत से देशों की तरह यह देश भी यूरोप के साम्राज्यवादी ताकतों का एक उपनिवेश बना दिया गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् औपनिवेशिक देशों में राष्ट्रीयता की लहर के परिणाम स्वरूप कंपूचिया को स्वतंत्रता मिली।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कंपूचिया ने अपने आपको एक आत्म-नर्भर तथा तटस्थ राष्ट्र के रूप में विकसित करने के लिए नीतियां बनाई। परन्तु नव-उपनिवेशवादी ताकतों ने कंपूचिया को अपनी स्वतंत्रता को मजबूत करने नहीं दिया। 1970 में अमरीका समर्थित प्रतिक्रियावादी तत्वों के द्वारा किये गये सत्ता पलट ने देश को गृह युद्ध में झोंक दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति स्थापित करने के प्रयासों के बावजूद गृहयुद्ध अभी भी रुका नहीं है। भारत जो कि कंपूचिया का बहुत पुराना मित्र है, कंपूचिया को एक मजबूत तथा स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरने में हर प्रकार से सहायता करता रहा है।

21.11 मूल शब्द

अंगकोर का गौरव

अंगकोर काल के पुराने राजाओं ने महान झील (टोन्ले सेप) के उत्तरी किनारे पर दुनिया के भव्यतम वास्तुशिल्प वैभव का निर्माण किया। ये वैभव हैं हिन्दू भगवान शिव तथा विष्णु आदि के मंदिर। देखने में ये मन्दिर प्राचीन भारतीय मंदिर की तरह लगते हैं। ये प्राचीन भारत के गहरे सांस्कृतिक प्रभाव के प्रमाण हैं।

21.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) डेविड पी. चैण्डलर 1982, **कंपूचिया का इतिहास**, बाउलडर एंड वेस्टविय़ू प्रेस

2) पी.सी. प्रधान, 1985, **कंपूचिया की विदेशनीति**, नई बिल्ली

3) जी.पी. रामचंद्र, 1986, **अंतर्राष्ट्रीय संबंध में एक कृत्रिम समस्या**, कलकत्ता

4) निकोलस टास्किंग (सम्पादित) 1982, **दक्षिणपूर्व एशिया का कैब्रिज इतिहास भाग I तथा II**, कैंब्रिज इंगलैंड

21.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अ) छिटपुट आबादी

ब) 85 प्रतिशत खमेर, दूसरे जातीय समूह भी हैं।

स) लम्बे गृह युद्ध के कारण 1970 के दशक में जनसंख्या बहुत घट गई।

द) 1980 के दशक में जनसंख्या बढ़ने लगी।

2) अ) इस देश में महान कृषीय सम्भावनाएं हैं।

ब) जल विद्युत स्रोत

स) विशाल वन

द) खदान तथा खनिज स्रोत भी उपलब्ध हैं।

इ) देश के पास विशाल अन्तर्देशीय मत्स्य ग्रहण स्रोत हैं।

बोध प्रश्न 2

1) i) राजनीतिक इतिहास इस युग के आरंभ में शुरू होता है।
ii) खमेर अंगकोर वंश ने 500 वर्ष तक शासन किया — कंपूचिया का स्वर्ण युग।
iii) स्यामियों तथा वियतनामियों के हस्तक्षेप ने स्वतंत्रता को सीमित किया, परन्तु फ्रांसीसियों के शासन में यह पूर्णतः खो गई।
iv) 1953 में प्राप्त स्वतंत्रता के लिए भीषण संघर्ष हुआ था।

बोध प्रश्न 3

1) i) स्वतंत्रता को मजबूत बनाने के लिए सिंहानुक के प्रयास।

ii) 1970 के अमरीका समर्थित सत्ता पलट जिसने सिंहानुक को सत्ता से हटा दिया और गृह युद्ध को जन्म दिया।

iii) 1975 में नव उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन की जीत हुई, परंतु यह पोल-पोट के शासन के दमनकारी जाति संहार में विकृत हो गयी।

iv) वियतनाम समिर्थित हेंग सैमरिन शासन ने पोल-पोट को बर्खास्त कर दिया।

v) गृह युद्ध पुनः प्रारंभ हो गय जो अभी भी जारी है।

बोध प्रश्न 4

1) गृह युद्ध सबसे पहले अमरीका समर्थित लोन नोल के काल में हुआ तथा पोल-पोट के हटाये जाने के परिणामस्वरूप पुनः आरंभ हुआ।

बोध प्रश्न 5

1) 1950 तथा 1960 के दशक में कंपूचिया ने साम्राज्यवादियों द्वारा विध्वस्त अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण का प्रयास किया। परन्तु 1970 का सैनिक सत्ता-पलट तथा 1975-79 तक पोल-पोट के शासन ने अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया। वियतनाम समर्थित हेंग सैमरिन सरकार ने देश को विकसित करने के कदम उठाये। परन्तु देश को 1970 के पहले स्तर पर लौटाया नहीं जा सका। हैंग सैमरिन सरकार बहुत हद तक पुनरूत्थान कर सकी।

बोध प्रश्न 6

1) 1980 के दशक के आरंभ में गृह युद्ध की शुरुआत होने के समय से ही संयुक्त राष्ट्र संघ शांति तथा सथायित्व की पुनःस्थापना के लिए प्रयत्न करता रहा है। 1991 में संयुक्त राष्ट्र संघ के उपक्रम के अधीन एक शांति समझौते पर पैरिस में हस्ताक्षर हुये। शांति की स्थापना तो अभी भी नहीं हुई है, परन्तु शांति के आसार उज्जवल हो चुके हैं।

2) पैरिस समझौते के प्रावधानों के अनुसार कराये गये तथा मुख्य राजनीतिक गुट चुनाव परिणामों को मानने के लिए सहमत हो गये हैं।

बोध प्रश्न 7

1) भारत कंपूचिया संबंध अति प्राचीन काल से है। अतीत में भारत ने कंपूचिया को बुद्ध का संदेश दिया तथा वर्तमान में कंपूचिया की स्वतंत्रता को मजबूत करने में मदद कर रहा है।

इकाई 22 लाओस

संरचना

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 लाओसी समाज

22.2.1 पाश्चात्य प्रभाव

22.3 लाओस का भूगोल, इतिहास तथा अर्थव्यवस्था

22.3.1 प्राचीन काल

22.3.2 आधुनिक इतिहास

22.3.3 लाओस की अर्थव्यवस्था

22.4 राजनैतिक घटना विकास

22.4.1 सांझा मोर्चा सरकार का गठन और राजनैतिक पार्टियां

22.4.2 लाओसी सत्ता संघर्ष के प्रमुख लक्षण

22.4.3 अन्तर्राष्ट्रीय निहितार्थ

22.5 साम्यवाद की विजय

22.5.1 त्रियोका की विफलता

22.5.2 दक्षिणपंथी झुकाव

22.5.3 1973 के 'समझौते की विफलता

22.6 नयी सरकार

22.6.1 नेतृत्व

22.6.2 आंतरिक कलह

22.6.3 संविधान

22.6.4 विकासात्मक रणनीति

22.6.5 विदेश संबन्ध

22.7 सारांश

22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

यह इकाई लाओस के समाज एवं राजनीति से आपका परिचय कराती है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको निम्नलिखित में सक्षम होना चाहिये

- लाओस के समाज, भूगोल, इतिहास एवं अर्थव्यवस्था की मूल विशेषताओं की व्याख्या
- लाओस में गठबंधन की राजनीति की प्रक्रिया का वर्णन
- लाओस में साम्यवाद की विजय का विवरण और
- नई सरकार के कामकाज की चर्चा

22.1 प्रस्तावना

वियतनाम और कम्बोडिया के समाज और राजनीति के बारे में आप पहले ही पढ़ चुके हैं। इस इकाई में हम आपका परिचय हिन्द-चीन के एक तीसरे देश, यानि लाओस, से करा रहे हैं। लाओस के समाज एवं राजनीति की उत्पत्ति के बारे में जानना आवश्यक है, क्योंकि इन्हें मात्र वर्तमान कामकाज की दृष्टि से नही जाना जा सकता। लाओस में राजनैतिक घटना-विकास विभिन्न

22.2 लाओसी समाज

लगभग 40 लाख से थोड़ी अधिक जनसंख्या वाला बहुजातीय राष्ट्र लाओस चालीस विभिन्न जातीय समूहों से मिलकर बना है। जातीय तौर पर लाओस की जनसंख्या को चार प्रमुख समूहों में बांटा जा सकता है : लाओ लम (घाटी की लाओ), लाओ ताई (आदिवासी ताई), लाओ थियंग (पहाड़ी इलाके का लाओ) तथा लाओ सुंग (पहाड़ की चोटियों पर रहने वाले मिओ तथा याओ आदिवासियों जैसे लाओ)। यद्यपि इन जातीय समूहों में से किसी भी एक का बहुमत नहीं है, फिर भी घाटी के लाओ संख्या एवं सामाजिक स्थिति के तौर पर स्पष्ट रूप से प्रभुत्वशाली हैं। इस समूह के अन्तर्गत कुल जनसंख्या का लगभग चालीस प्रतिशत भाग आता है। सांस्कृतिक एवं भाषाई रूप से घाटी के लाओ थाईयों से संबद्ध हैं। उत्तर-पूर्वी थाईलैण्ड में इनकी संख्या लाओस से भी अधिक है। लाओस की राजसी सरकार रॉयल लाओ गवर्नमैण्ट का शासन घाटी के प्रतिष्ठित लाओ करते थे, जिन्हें अन्य जातीय समूहों द्वारा आबाद किये गये क्षेत्रों तक में जिला तथा प्रान्तीय प्रमुखों के रूप में नियुक्त किया गया था। दूसरी ओर वामपंथ की तरफ झुकाव रखने वाले पाथेट लाओ एक बहुजातीय समाज के ध्येय पर जोर दे रहे थे और साम्यवादी प्रतिरोध आन्दोलन के अनेक नेता जातीय अल्पसंख्यक समूहों से निकले थे। मैकौंग और लाल नदी (Red River) के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों में बसे आदिवासी ताई आबादी का लगभग 16 प्रतिशत भाग थे। लाओस के सबसे पुराने निवासी, लाओ थियंग आबादी का लगभग 34 प्रतिशत थे। मौन-खमेर नस्ल के ये पहाड़ी लोग भी सत्रहवीं सदी में पहाड़ों के निचले हिस्सों में चले आये। उन्हें ''श्वास'' पुकार कर बेइज्जत किया जाता है। टाओयी भाषा में इस का अर्थ है : ''गुलाम''। आदिवासी ताईयों तथा लाओ थियंगों की घाटी लाओ लोगों के खिलाफ लम्बे समय से शिकायतें रही हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य में लाओस में आये सुंग तीन हजार फीट ऊंची भूमियों पर बस गये और जनसंख्या का 9 प्रतिशत हिस्सा बनाते हैं। उपरोक्त के अलावा चीनी तथा बर्मी सीमाओं के नजदीक रहने वाले अख्खा और लोलों कबीलों जैसे अन्य जातीय अल्पसंख्यक भी मौजूद हैं। शहरी क्षेत्रों में वियतनामी, चीनी व दक्षिण एशियाई लोग हैं, जिनकी संख्या मामूली है। वे मौजूदा शताब्दी के दौरान ही लाओस में आकर बस गये हैं और वाणिज्यिक गतिविधियों में लगे हुए हैं।

22.2.1 पाश्चात्य प्रभाव

पश्चिम के साथ संपर्क के फलस्वरूप लाओस के पारंपरिक सामाजिक ढांचे में बदलाव आये हैं। पारंपरिक आत्मनिर्भर गांवों में रहने वाले लोग मैकोंग नदी के आसपास के क्षेत्रों में शहरीकरण के प्रभाव में आए हैं। अधिनायकवादी ढांचे ने किसानों को स्थानीय प्रभुत्व वर्ग की कृपादृष्टि पर छोड़ दिया, जोकि अमरीकी सहायता का दुरुपयोग करके अमीर बन गये थे। पाथेट लाओ लोगों ने इसका पूरा फायदा उठाया और अनेक लाओसवासी उनकी विचारधारा की तरफ आकर्षित हुए। कम्युनिस्टों की विजय के बाद, नये सत्ता ढांचे के नियमों के अनुरूप जीवन शैली में बदलाव आये। जनसंख्या का अधिकांश भाग बौद्ध धर्म का पालन करता है जोकि कम्बोडिया एवं थाईलैण्ड से लाओस में आया था। लोगों के जीवन में लोकगीत एवं नृत्य महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। बाँस के छोटे-छोटे टुकड़ों की सात खपच्चियों से मिलकर बनाया गया ''खेने'' नामक संगीत वाद्य बहुत लोकप्रिय है। लाओस की संस्कृति तथा समाज पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। पहली शताब्दी ईसवी से, भारत तथा लाओस के बीच सांस्कृतिक सम्बंधों में बढ़ोत्तरी हुई। भारत की सांस्कृतिक घुसपैठ शान्तिपूर्ण एवं गैर-राजनैतिक तरीकों से हुई। हिन्दू देवी-देवताओं के नामों से लाओस के लोग परिचित हैं और वे बुद्ध की प्रार्थना करते समय इंद्र, शिव, विष्णु इत्यादि का नाम पुकारते हैं। जन्म तथा विवाह जैसे अवसरों पर बौद्ध धर्म के साथ-साथ हिन्दू रीति-रिवाजों का भी पालन किया जाता है। लाओस के शास्त्रीय साहित्य पर संस्कृत एवं पाली भाषाओं का व्यापक प्रभाव पड़ा है। लाओस में राम और कृष्ण की कहानियां लोकप्रिय हैं। ''पंचतंत्र'' और ''जातकों'' से ली गई कहानियों ने लाओस की भाषा को समृद्ध बनाया है। लाओस के शास्त्रीय नृत्य में भारतीय नृत्यों की भंगिमाओ और भावों को दर्शाने वाला गहन प्रभाव देखा जा सकता है। कला और वास्तुकला के क्षेत्र में विभिन्न अवधारणायें भारतीय थीं, किन्तु नमूनों (patterns) के चयन तथा अन्य बारीकियों में स्वदेशी रूप दिया गया था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणियां : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से कीजिये।

1) लाओसी समाज की प्रमुख विशेषताएं क्या थीं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

22.3 लाओस का भूगोल, इतिहास तथा अर्थव्यवस्था

लाओस 2,31,000 वर्ग कि.मी. के क्षेत्रफल वाला एक जल अवरुद्ध देश है, जोकि हिन्द-चीन प्रायद्वीप के मध्य में स्थित है। यह पांच देशों से घिरा हुआ है: उत्तर में चीन, दक्षिण में कम्बोडिया, पूर्व में वियतनाम तथा पश्चिम में थाईलैण्ड और बर्मा। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण लाओस अपने पड़ोसियों के बीच एक बफर राज्य बना रहा है और परस्पर विरोधी हितों वाला क्षेत्र भी एशिया की चौथी सबसे बड़ी नदी मैकोंग लाओस में बहती है। इसका आधा भाग थाईलैण्ड के साथ लाओस की सीमा का निर्धारण करता है। मैकोंग नदी घाटी के अलावा, लाओस का अधिकांश क्षेत्र पथरीला और पर्वतीय है। देश के दो-तिहाई भाग में जंगल फैला हुआ है। हो चि मिन्ह का प्रसिद्ध खोजी रास्ता केयो निउआ तथा भुजिया पर्वतीय दर्रों के जरिये उत्तरी वियतनाम से पूर्वी लाओस को पार करता है। यह लाओस के पैनहैण्डल (Panhandle) के रास्ते दक्षिण की तरफ बढ़ता है और अंततः दक्षिण वियतनाम में जाकर प्रकट होता है। यह खोजी रास्ता एक ऐसा मुख्य आपूर्ति मार्ग (supply route) था जिसके माध्यम वियतकौंग के गुरिल्ला उत्तरी वियतनाम से सहायता प्राप्त करते थे। उत्तरी लाओस के जिऐंग खौंग प्रान्त में; रहस्यमयी अंतिम संस्कार के अस्थि कलश वाला ज़ार का मैदानी क्षेत्र है। मैदानी क्षेत्र एक सामरिक महत्व रखता है क्योंकि इस पर जिसका नियंत्रण रहता है, वही लाओस में भूतक संचार (land communication) पर प्रभुत्व की स्थिति में रहता है। लाओस की जलवायु ऊष्णकटिबंधी मानसून (tropical monsoon) जैसी है, जहां मई से अक्टूबर तक वर्षा ऋतु तथा नवम्बर से अप्रैल तक शुष्क मौसम रहता है। सैन्य गतिविधियों ने भी इस चक्र का ध्यान रखा है। शुष्क मौसम हल्के हथियारों वाले पाथेट लाओ लोगों की सहायता करता है, जबकि वर्षा के मौसम में बेहतर संसाधनों, हवाई-आपूर्ति तथा अमरीका समर्थित सरकारी सेनाओं को अधिक लाभ मिलता है।

22.3.1 प्राचीन काल

प्रचीन काल में, लाओस के दक्षिणी भाग में छोटी-छोटी स्वतंत्र रियासतें मौजूद थीं। स्थानीय सरदारों द्वारा वहां के निवासियों को सुरक्षा प्रदान किए जाने पर आधारित एक राजनैतिक प्रणाली विकसित हुई। दक्षिणी लाओस फुनान के अधीन राज्य कम्बोज का एक हिस्सा था। आगे चलकर मध्य एवं उच्चतर लाओस चेनला खमरों के अधीन हो गये। लाओस चौदहवीं सदी के मध्य में जाकर ही ए एकीकृत राज्य के रूप में उभरा, जब फा नागम ने लान जांग साम्राज्य की स्थापना की, जिसकी राजधानी लुआंग नाबांग थी। जब तक पड़ोसी राज्य कमजोर बने रहे, तभी तक यह साम्राज्य भी बना रहा। अट्ठारवीं शताब्दी की शुरुआत के समय, वंशगत झगड़ों ने, जिनके अन्तर्गत विरोधी दावेदारों ने वियतनाम और थाईलैण्ड से सहायता मांगकर समाधान ढूंढने की कोशिश की थी, लान जांग के टुकड़े करा दिये। लुआंग प्रबांग, वियेनटिये तथा चम्पासाक की पृथक रियासतें स्थापित की गई। थाईलैण्ड तथा वियतनाम के बीच इन तीनों रियासतों के अधिराजत्व को लेकर लम्बे समय तक तकरार चलती रही।

22.3.2 आधुनिक इतिहास

आधुनिक इतिहास में भी टकराव की झलक मिलती है। जिस तरह कोई भी वियतनामी राज्य ज़ार के मैदानी क्षेत्रों तथा आसपास के इलाकों की शत्रुता मोल नहीं ले सकता उसी प्रकार थाईलैंड

मैकौंग नदी के पश्चिमी तट पर किसी मैत्रीपूर्ण शासन प्रबन्ध की इच्छा रखता था। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम पच्चीस वर्ष में, लाओस को थाईलैण्ड के मध्यम पूर्व की दिशा में विस्तार करते ग्रेट ब्रिटेन तथा वियतनाम के मध्यम पश्चिम की तरफ से दबाव डाल रहे फ्रांस के बीच शत्रुता को झेलना पड़ा। 1843 में लाओस फ्रांस का संरक्षित राज्य बन गया और हिन्द-चीन संघ के प्रशासनिक ढांचे के अन्तर्गत आ गया। फ्रांसीसी औपनिवेशिक शासन के आधी शताब्दी तक चले शासन के बावजूद लाओस अत्यधिक अविकसित देश बना रहा। फ्रांसीसी औपनिवेशिक नीति का निर्धारण एवं निर्देशन हनोई से होता था। लाओस वियतनाम का एक उपनिवेश प्रतीत होता था और फ्रांसीसी नौकरशाहों द्वारा उसका प्रशासन किया जाता था। 1946 तक केवल 1 प्रतिशत जनसंख्या को ही प्राथमिक शिक्षा मिली थी। लाओस का व्यापार समूचे हिन्द-चीन के व्यापार का एक प्रतिशत ही था। फ्रांसिसीयों के दमन के कारण लाओ थियंग तथा लाओ सुंग द्वारा अनेक विद्रोह किये गये। दूसरे विश्व युद्ध तक, लाओस में वियतनाम की भांति राष्ट्रवाद ने एक ठोस स्वरूप नहीं प्राप्त किया था। लाओस के लोगों का बाहरी दुनिया से संपर्क नहीं हुआ था तथा उनके द्वारा विभिन्न देशों में चल रहे साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनों का प्रयास भी नहीं महसूस किया गया था। दक्षिण में चम्पासाक तथा उत्तर में लुआंग प्रबांग के सामंती घरानों के बीच चल रही पारंपरिक शत्रुता के चलते लाओस में राष्ट्रवाद की चेतना का अभाव बना रहा। राजा व उसके परिवार भूस्वामियों, बौद्ध पुजारियों तथा नागरिक सेवा के अधिकारियों से मिलकर बना मुट्ठी भर प्रतिष्ठितों का तबका फ्रांसीसी संरक्षण पर टिका हुआ था। वहां जो भी राष्ट्रीय पहचान थी, वह घाटी के लाओ लोगों की सांस्कृतिक परंपरा से निकली थी। यह लाओथियंग तथा लाओ सुंग लोगों के लिये अनुकूल नहीं थी। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान, वियतनामियों तथा थाई लोगों की सहायता से घाटी के लाओ राष्ट्रवादियों के नेतृत्व में स्वाधीनता संघर्ष चलाया गया। ''लाओ इस्सारा'' अथवा मुक्त लाओस आन्दोलन ने फ्रांसीसियों को जापानी आत्मसमर्पण के बाद पुनः सत्ता हथियाने से रोकने की कोशिश की और लुआंग प्रबांग तथा चम्पास्साक रियासतों के एकीकरण की घोषणा कर दी। अक्टूबर 1945 में लाओ इस्सारा सरकार बनी। फ्रांसीसी आक्रमण के बाद इसके नेता ने थाईलैण्ड में शरण ले ली। लाओस पहले हिन्द-चीन युद्ध के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ा रहा। फ्रांसीसियों ने लाओस को अनेक सहूलियतें प्रदान करना शुरू किया, क्योंकि जब वियतमिन्ह के साथ उनकी लड़ाई चल रही थी, तब वे पीछे वाले क्षेत्र में शान्ति बनाये रखना चाहते थे। अगस्त 1946 में लाओस को आन्तरिक स्वायत्ता प्रदान की गई। मई 1947 में एक निर्वाचित संविधान सभा द्वारा तैयार किए गए एक संविधान की राजा सिसावौंग वांग द्वारा घोषणा की गई। लाओस के एकीकृत राज्य को एक संवैधानिक राजतंत्र बनना था। 19 जुलाई 1949 के फ्रांस-लाओस समझौते के अंतर्गत लाओस की स्वतंत्रता को फ्रांस द्वारा मान्यता प्रदान की गई और लाओस ''फ्रांसीसी संघ का सहयोगी राज्य'' बना रहा। रक्षा एवं विदेश संबन्ध फ्रांस के हाथों में ही बने रहे।

22.3.3 लाओस की अर्थव्यवस्था

लाओस एक अविकसित देश है जिसकी प्रति व्यक्ति आय 170 प्रति वर्ष है। इसकी 40 लाख की जनसंख्या का लगभग 90 प्रतिशत भाग कामचलाऊ खेती में लगा हुआ है। चावल के उत्पादन में आत्मनिर्भर लाओस मक्का, मीठा आलू, कॉफी, तंबाकू तथा लक्वीनीन आदि की पैदावार भी करता है। मियो द्वारा अफीम की खेती आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है। जंगलों में लकड़ी के संसाधन मौजूद है। प्राकृतिक संसाधनों में टिन, कोयला, सोना, ताँबा तथा सीसा मौजूद हैं। टिन तथा कुछ हद तक पोटाश और लौह अयस्क को छोड़कर इन खदानों से खनन किया गया है। लाओस में लगभग 170 छोटे कारखाने हैं जिनमें प्लाईवुड, बिजली के तार, दवाएं, मोमबत्तियां, माचिस तथा सिगरेटों जैसी चीजों का उत्पादन होता है। लाओस में संचार का ढांचा पर्याप्त नहीं है। देशभर में 6,000 कि.मी. दूरी तक फैली सड़के हैं। लकड़ी तथा वन उत्पादों, नाम गम के जलविद्युत डैम से प्राप्त बिजली तथा कुछ कृषि उत्पादों से ही विदेशी मुद्रा की आय होती है। अफीम तथा मारीजुआना से होने वाल वास्तविक आय के बारे में जानकारी नहीं है। लाओस पैट्रोलियम पदार्थों, कपड़ों मशीनों, सीमेंण्ट, कागज तथा इस्पात का आयात करता है। कुछ अन्य संकेतक भी लाओस में विकास के निम्न स्तर की तरफ इंगित करते हैं। जन्म के समय जीवन की संभाव्यता क्षेत्र में एक देश को छोड़कर सबसे कम है। प्रति महिला जन्मों का औसत (लगभग 8) सबसे ऊंचा है। साक्षरता की दर पड़ौसी देशों से कम है। बच्चों का एक छोटा भाग ही माध्यमिक स्तर तक शिक्षा जारी रख पाता है। 35 से 40 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। युद्धों, खराब संचार, समुद्री बंदरगाहों तक प्रवेश करने की इच्छा तथा मुद्रा संबन्धी अस्थिरता से पैदा हुआ लाओस का आर्थिक असंतुलन देश

की अर्थव्यवस्था के पूरी तरह ध्वस्त हो जाने का कारण बन सकता था। हालांकि, विकसित देशों तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दी गई वित्तीय, तकनीकी तथा वस्तुओं की सहायता से कुछ हद तक इस असंतुलन को दूर करने में मदद की है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणियां : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये उत्तर से कीजिये।

1) लाओस के आधुनिक इतिहास की संक्षिप्त चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) लाओस की आर्थिक रूपरेखा पर संक्षिप्त चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

22.4 राजनैतिक घटना विकास

इस भाग में हम लाओस द्वारा फ्रांसीसी संघ के ढांचे के अन्तर्गत औपचारिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लिये जाने के बाद वहां हुए राजनैतिक विकास पर चर्चा करेंगे। विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा साँझा मोर्चा सरकारें बनाई गई। विदेशी शक्तियों की भागीदारी के फलस्वरूप चलते राजनैतिक प्रगति में बाधा उत्पन्न हुई और लाओस में गृह युद्ध भड़क उठा।

22.4.1 सांझा मोर्चा सरकार का गठन और राजनैतिक पार्टियां

जुलाई 1949 के फ्रांसीसी-लाओस समझौते के बाद लाओस के प्रतिष्ठितों का एक बड़ा वर्ग सरकार का गठन करने के लिये वापस लौटा। वामपंथी रुझान वाले पाथेट लाओ ने उस सरकार का विरोध किया जोकि फ्रांसीसियों से हाथ मिलाने को तैयार थी। अगस्त 1950 में इसने एक प्रतिरोध सरकार स्थापित की। वियतमिन्ह के साथ इसकी भी यही इच्छा थी कि समूचे हिन्द-चीन को फ्रांसिसी प्रभाव के जुए से मुक्त कर लिया जाये। गंभीर कठिनाइयों से घिरे फ्रांसीसियों ने आर.एल.जी. के प्रधानमंत्री सूवाना फूमार से वार्ता आरम्भ की। अक्टूबर 1953 की फ्रांसीसी-लाओसी संधि ने लाओस को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। पर हिन्द-चीन में फ्रांसीसियों के दिन खत्म हो रहे थे। वियतमिन्ह-पाथेट लाओ ताकतें अनेक मोर्चों पर आगे बढ़ रही थी। 7 मई 1954 को दिएन बिएन फू में हुई फ्रांसिसी पराजय ने हिन्द-चीन में फ्रांस के औपनिवेशिक शासन का अंत कर दिया। दिएन बिफून के पतन के एक दिन बाद जेनेवा सम्मेलन का हिन्द-चीनी सत्र शुरू हुआ। फ्रांस, अमरीका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, जनवादी चीन, कम्बोडिया, लाओस तथा दोनों वियतनाम जेनेवा सम्मेलन में भाग ले रहे थे। पाथेट लाओ की प्रतिरोध सरकार को मान्यता नहीं दी गई और वह सम्मेलन में भागीदार बनने में सफल नहीं हो सकी। पाथेट लाओ की लड़ाकू टुकड़ियों की औपचारिक हैसियत इसके फलस्वरूप कमजोर पड़ गई। सदस्य देशों ने लाओस की प्रभुसत्ता, स्वाधीनता और प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान करने की शपथ ली। पाथेट लाओ लोगों को राष्ट्रीय मुख्यधारा में शामिल किया जाना था।

उन्हें राजनैतिक प्रक्रिया में भागीदारी करनी थी। किन्तु राजनैतिक प्रक्रिया बहुत धीमी थी। एक सांझा मोर्चा सरकार की शर्तों पर हुए समझौते को टाल दिया गया। सरकार पाथेट लाओ के प्रभुत्व वाले इलाकों पर अपनी सत्ता स्थापित नहीं कर सकी। अगस्त 1955 के चुनाव पाथेट लाओ की भागीदारी के बगैर ही कराये गये। सुवाना फूमा जोकि मार्च 1956 में प्रधानमंत्री बने थे, उन्होंने राष्ट्रीय सुलह-सफाई को पहली प्राथमिकता दी। आर.एल.जी. तथा पाथेट लाओ के बीच एक शान्तिपूर्ण संबन्ध विकसित हुआ। पाथेट लाओ के राजनैतिक अंग ''निओ लाओ हक मत'' (एन.एल.एच.एस.) को कानूनी तौर पर वैध घोषित किया गया और देश की राजनैतिक प्रक्रिया में भाग लेने की इजाज़त दी गई। आर.एल.जी तथा पाथेट लाओ के बीच हुए वियनटियन समझौते में कहा गया कि एक सांझा मोर्चा सरकार गठित की जायेगी तथा पूरक चुनाव कराये जाने होंगे। फौंग सेली और सैम निउमा के पाथेट लाओ प्रान्तों का प्रशासन आर.एल.जी. को हस्तांतरित किया जाना था तथा पाथेट लाओ सेना की दो बटालियनें रॉयल लाओसी सेना में मिलाई जानी थी। विदेश नीति की दृष्टि से लाओस को उदासीन और गुट निरपेक्ष रहना था। नवम्बर 1957 में राष्ट्रीय संघ की सरकार का गठन हुआ। इसने उत्साह से शुरुआत की और राष्ट्रीय असैम्बली में 21 सीटों के लिए 4 मई 1958 को पूरक चुनावों की तैयारियां कर ली गई। चुनावों ने पाथेट लाओ की शक्ति को साबित कर दिखाया, जिसने अपने सहयोगियों के साथ 13 सीटें जीती थीं। इसमे प्रतिस्पर्धा कर रहे राजनैतिक समूहों में आतंक की स्थिति पैदा हो गई और राजनैतिक शक्तियों का एक नया समीकरण पैदा हुआ।

22.4.2 लाओसी सत्ता संघर्ष के प्रमुख लक्षण

लाओस की राजनीति में, सत्ता संघर्ष के अंतर्गत तीन मुख्य धाराएं थीं—दक्षिणपंथी, मध्यमार्गी तथा वामपंथी। एन.एल.एच.एस. को छोड़कर जोकि पाथेट लाओ का राजनैतिक अंग था, आमतौर पर राजनैतिक पार्टियां किसी खास विचारधारा पर दृढ़ता के साथ कायम नहीं थीं। दक्षिणपंथ और मध्यमार्ग के अनुयायी तेज़ी से अपनी राजनीतिक विचारधाराओं को बदलते रहे। मात्र स्वार्थपरता के कारण ही लोग एक से दूसरे दल में शामिल होते रहे। किसी विशेष परिस्थिति के जवाब में अथवा किसी घटना का विरोध करने के लिए पार्टियों की स्थापना भी की गई। राजनैतिक हत्याएं आम हो गई थीं। मध्यवर्ग की अनुपस्थिति, जारी परंपराओं और राजसी घरानों के बीच मतभेदों के कारण दलीय-व्यवस्था के विकास के मार्ग में बाधा पड़ी। दक्षिणपंथ की तरफ, झुकाव था स्वतंत्र और राष्ट्रीय प्रगतिशीलों का। फूई सैननिकोन के नेतृत्व में स्वतंत्र लोग जापानी कब्जे के बाद फ्रांसीसियों की वापसी को स्वीकार कर लेने के इच्छुक थे और राष्ट्रीय प्रगतिशीलों ने 1951 में स्वतंत्र लोगों से सत्ता छीन ली थी। ''लाओ इस्सारा'' के सूबाना फूमा तथा कोटे सैसोरिय जैसे भूतपूर्व नेताओं ने 1949 में राष्ट्रीय प्रगतिशील पार्टी को संगठित किया। नेशनल यूनियन और डैमोक्रेटिक पार्टियां पर्याप्त तौर पर इतनी ताकत नहीं जुटा सकी कि वे महत्वपूर्ण सिद्ध हो पातीं। इन दोनों ने स्वतंत्र पार्टी के साथ मिलकर लाओ यूनियन फार पब्लिक सेफ्टी का निर्माण किया। इसके बाद पुनः फेरबदल होता रहा। जून 1958 में सोउवाला फोउमा ने काटे एवं फोउई सनाईकोनी के साथ मिलकर लाओसी पीपुल्स रैनी (आर.पी.एल) बनाई जोकि नेशनल प्रोग्रेसिव एवं इण्डियेण्डेण्ट पार्टियों से बनी थी। उग्र दक्षिणपंथी संगठन, कमेटी फार डिफेन्स आफ नेशनल इण्टरेस्ट (सी.डी.एन.आई.) निर्माण साम्यवाद को रोकने के लिये अमरीकी मद से किया गया। इसके नेता फाउमी नोसावन ने पायेट लाओ को सत्ता से हटाये जाने की मांग की ओर एक पश्चिम समर्थक सरकार बनाये जाने की पेशकश की। मध्य में यनिरपेक्ष लोग थे। क्विनिय फोलसेना की ''सान्तिफल'' (थीस पार्टी) अंतर्राष्ट्रीय मामलों में उदासीनता में विश्वास रखती थी और आर.एल.जी. तथा पाथेट लाओ के बीच शक्ति बनाना चाहती थी। राजनैतिक नेताओं में से सोउवाना फोउना सबसे अधिक मान्य नेता थे और परिस्थिति के अनुसार दक्षिणपंथी एवं वामपंथी, दोनों ने ही उनका प्रयोग किया। मई 1961 में उन्होंने लाओ पेन कॉग (निरपेक्ष) पार्टी बनाई अति वामपंथ में विश्वास करने वाले पाथेट लाओ (लैण्ड आफ लाओस) थे। इसके नेता प्रिंस सोउफानोरोंग, लुआग प्रदवंग राजसी परिवार के प्रिंस सोउवान्ना फोउमा के आधे भाई थे। लाओ इस्सारा आन्दोलन में दोनों में गठबंधन किया था। लाओ इस्सारा गुरिल्ला सेना के लिये फरवरी 1949 में सोउफनोवोंग ने एक पृथक मोर्चे का गठन किया। वह अक्टूबर 1949 में वियतचिन्ह के मुख्यालय तुइंग-क्वांग में हो ची मिन्ह के साथ मिल गये। सोउफानोरोंग ने केसान, फोउ वोंगतिचिट, सोउक वोंगसाक तथा अन्य लोगों के साथ मिलकर पाथेट लाओ का निर्माण किया। 13 अगस्त 1950 को एक प्रतिरोध सरकार की घोषण की गई। एन.एल. एच.एस. इसका राजनैतिक अंग था। इसमें लाओ थिडंग तथा लाओ मुंग अल्पसंख्यकों की भर्ती की

और अन्य पार्टियों के विपरीत यह मैकोंग घाटी क्षेत्र से मिलने वाले समर्थन पर आधारित नहीं थी। पाथेट लाओ, उत्तरी वियतनाम के समर्थन से, लाओस को फ्रांस एवं अमरीकी प्रभाव से मुक्त करना चाहते थे। चूंकि लाओस विभिन्न पार्टियों की विचारधारा के आधार पर बुरी तरह विभाजित था, अतः साँझा मोर्चा सरकार को सहज रूप में चलाना असंभव हो गया। दिसम्बर 1958 आर.एल.जी. तथा पाथेट लाओ सेनाओं के बीच सीमा पर झड़पें हुई। सी.डी.एन.आई. पाथेट लाओ के प्रति एक सख्त नीति बनाने के लिये दबाव डाल रही थी। फाउमी नोसावन ने विद्रोह कराकर तख्ता पलट दिया और "पैम्सा सांगखोम" (सोशल डैमोक्रेट) नामक एक नई पार्टी की 1960 में स्थापना कर दी। इसके सदस्य सी.डी.एन.आई. कुछ आर.पी.एल. सदस्यों के चुने हुए प्रतिनिधियों से लिये गये थे। लाओस अति दक्षिणपंथ की तरफ बढ़ रहा था और राजधानी में एन.एल.एच.एस. का कोई भी प्रतिनिधि नहीं बचा था। राष्ट्रीय शान्ति वार्ता नहीं थी।

22.4.3 अंतर्राष्ट्रीय निहितार्थ

शीत युद्ध के तीव्र हो जाने के साथ ही लाओस की समस्या एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या बनती जा रही थी। कम्युनिस्ट शिविर ने पाथेट लाओ का समर्थन किया जबकि अमरीका एवं थाईलैण्ड दक्षिणपंथ के समर्थन में खड़े हो गये। विदेशी शक्तियों की भागीदारी के फलस्वरूप लाओस की समस्या के एक राजनैतिक समाधान का रास्ता अवरुद्ध हो गया। बाहरी हस्तक्षेप की वजह से देश दो भिन्न राजनैतिक प्रणालियों के साथ दो भागों में बंट गया। अमरीका ने लाओस की परिस्थिति को कम्युनिस्टों की विश्व प्रभुत्व की मुहिम के हिस्से के रूप में देखा। उत्तरी वियतनाम तथा चीन के विरुद्ध लाओस को पहली सुरक्षा पंक्ति के तौर पर उन्मूलन रणनीति के अंतर्गत शामिल किया गया। आर.एल.जी को भारी सैन्य एवं आर्थिक सहायता प्रदान करके मजबूत बनाया गया ताकि वह पाथेट लाओ की प्रगति को रोक सके। लाओस विश्व में अकेला ऐसा देश बन गया जहां अमरीका आर.एल.जी के सैन्य बजट को शतप्रतिशत सहायता दे रहा था। वियतनाम युद्ध के तीव्र होने के साथ ही लाओस में अमरीकां की गतिविधियां भी बढ़ गई। पाथेट लाओ आन्दोलन की प्रगति में उत्तरी वियतनाम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और "फाक पासोसन लाओ" (पीपुल्स पार्टी आफ लाओस) के माध्यम से जिसकी स्थापना मार्च 1955 में हुई थी, भारी असर डाला था। इसने हथियार, गोलाबारूद तथा सैन्य सलाहकार पाथेट लाओ को प्रदान किये थे। उत्तरी वियतनाम के लिये लाओस में कम्युनिस्टों को मिलने वाली हर सफलता दोनों वियतनामों के एकीकरण की दिशा में बढ़ा हुआ एक कदम ही था। लाओस को लेकर थाई-वियतनामी संघर्ष प्राचीन समय से जारी था।

थाईलैण्ड यह नहीं चाहता था कि मैकोंग क्षेत्र पर किसी शत्रु-ताकत का शासन रहे। अमरीका से गठजोड़ करके थाईलैण्ड ने आर.एल.जी. के साथ निकटतम सैन्य व आर्थिक संबन्ध बना लिये थे। अगस्त 1960 में कैप्टन कौंग ली के तख्तापलट द्वारा लाओस के टकराव को एक नया आयाम मिल गया। वह सरकार के अति दक्षिणपंथी झुकाव तथा आर.एल.जी. में व्याप्त भारी भ्रष्टाचार का विरोधी था। फोउमी नोसावन ने इस सरकार को अवैध घोषित कर दिया और सवन्ना खेत में एक समानान्तर सरकार गठित कर ली। अमरीका एवं थाईलैण्ड ने उसका समर्थन किया। आर.एल.जी. को दी जा रही अमरीकी सहायता रोक दी गई और थाईलैण्ड ने आर्थिक नाकेबंदी थोप दी। सोउवाना फोउमा पश्चिमी शिविर से अलग हो गया और उसने सोवियत संघ से राजनयिक सम्बन्ध कायम कर लिये। कौंग ली नेपाथेट लाओ से हाथ मिला लिया। सोवियत विमानों की मदद से पाथेट लाओ लगभग आधे लाओस पर नियंत्रण करने लगे। सोवियत संघ ने यह गणना कर ली थी कि लाओस की राजनैतिक-सैनिक स्थिति में उसके दखल का प्रयोग अमरीका से सौदेबाजी के लिये किया जा सकता है। वह चीन-सोवियत टकराव की पृष्ठभूमि में कम्युनिस्ट-मुक्ति आन्दोलनों को समर्थन भी देना चाहता था। 1961 के गृहयुद्ध ने दोनों महाशक्तियों को एक युद्ध के मोड़ पर ला खड़ा किया। हालांकि मई 1961 में जिनेवा में लाओस के टकराव का समाधान निकालने के लिये 14 राष्ट्रों का सम्मेलन शुरू हुआ। अमरीका एवं सोवियत संघ दोनों ही इस बात के लिये सहमत हो गए कि लाओस की स्वतंत्रता, शान्ति, तथा निरपेक्षता का एक फार्मूला तय हो जाय, जिसे जुलाई 1962 की जिनेवा घोषणा में शामिल कर लिया गया था। शान्ति की निगरानी करने के लिये भारत, कनाडा, तथा पोलैण्ड से मिलकर बना एक आन्तरिक नियंत्रण आयोग (आई.सी.सी.) गठित किया गया। आर.एल.जी ने शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के पांच सिद्धान्तों का पालन करने की शपथ ली। नया सांझा मोर्चा सरकार को दक्षिणपंथी वामपंथी तथा निरपेक्ष लोगों के बीच एक राजनैतिक संतुलन सुनिश्चित करना था। सोउवाना फोउमा रक्षा के चार्ज सहित प्रधानमंत्री बने। सोफानोवोंग तथा फोउमी सोवानवत दोनों को क्रमशः विदेश एवं वित्त के पद देते हुए उपप्रधानमंत्री बनाया गया। दक्षिणपंथियों

तथा एन.एल.एच.एस. में से प्रत्येक को केबिनेट में चार सीटें मिली। शेष ग्यारह सीटें सोउवाना फोउमा के निरपेक्षता के विचार के गिद विभिन्न स्तरों के लोगों में वितरित हुई। यह तय किया गया कि सरकार के तमाम निर्णय सर्वसम्मति के नियम के अनुसार लिये जायेंगे।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणियां : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये उत्तर से कीजिये।

1) लाओसी सत्ता संघर्ष के प्रमुख चरण क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) लाओस की घरेलू राजनीति के प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय निहितार्थों का संक्षेप में उल्लेख कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

22.5 साम्यवाद की विजय

हालांकि जिनेवा समझौते के प्रावधानों का संबद्ध पक्षों द्वारा उल्लंघन किया गया और एक बार फिर युद्ध छिड़ गया। लाओस धीरे-धीरे वियतनाम युद्ध की छाया बनता चला गया। अंततः देश साम्यवादी बन गया।

22.5.1 त्रियोका की विफलता

त्रियोका अथवा त्रि-स्तरीय प्रशासनिक ढांचा शुरू से ही ढीला-ढाला रहा। महत्वपूर्ण निर्णयों पर एक तीन-स्तरीय समझौता व्यवहारिक नहीं था। प्रत्येक गुट का स्वयं अपने सैन्य बलों पर नियंत्रण बना रहा, यद्यपि वे सभी राष्ट्रीय सेना में विलय कर चुके थे। पाथेट लाओ सेनाएं उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में तैनात थीं। फोउमी ने अपनी सेनाओं को दक्षिण तथा राजधानी वियेन्टेनी के इलाके में बनाये रखा। सोउवेला फोउमा से जुड़ी कौंग ली की सेना मध्य लाओस में तैनात की गई, जहां उनकी स्थिति को दक्षिणपंथी अथवा वामपंथी हलकों से खतरा पैदा हो सकता था। सैन्य तथा आर्थिक सहायता केन्द्रीय सरकार के सुपुर्द की जाती थी और प्रत्येक नेता इसमें से अधिकतम अपने गुट के लिये हासिल कर लेने के लिए संघर्ष करता था। तीनों पक्षों के बीच परस्पर अविश्वास की वजह से सरकार का सहज ढंग से संचालन अवरुद्ध हो गया। इसके अलावा निरपेक्षतावादी शिविर में भी कर्नल डिउमें सिपासिउथ के नेतृत्व वाली कौंग ली की सेनाओं के बहुत से लोगों पाथेट लाओ शिविर में शामिल हो जाने के कारण से, एक और विभाजन हो गया। लाओस की निरपेक्षता को अमरीका एवं उत्तरी वियतनाम ने भंग किया। ज़ार के इलाकों के मैदानी क्षेत्र में पुनः युद्ध छिड़

गया। आई.सी.सी. प्रभावी साबित नहीं हुई। सितम्बर 1964 में पेरिस में हुई सोउवान्ना फोउमा, सोफानोउवौंग तथा बोउन ओम की त्रिपक्षीय बैठक में भी कोई कारगर परिणाम नहीं निकल सका। इस प्रकार लाओस की समस्या के राजनैतिक हल के लिये किए गए एक त्रिपक्षीय इन्तजाम का अंत हो गया।

22.5.2 दक्षिणपंथी झुकाव

सोउवान्ना फोउमा धीरे-धीरे स्वयं पश्चिम का समर्थन प्राप्त दक्षिणपंथी गुट के साथ गठबंधन करता जा रहा था। ऐसा लगता था कि वह अब स्वतंत्र निर्णय लेने की स्थिति में नहीं रह गया था। उसके द्वारा अमरीका को पाथेट लाओ के जनाधार वाले क्षेत्रों पर बमबारी करने की इजाजत दी गई थी। लाओस की राजनीति में सेना का दखल बढ़ गया था। आर.एल.जी. ने अपने नियंत्रण वाले क्षेत्र को पांच सैन्य क्षेत्रों में विभाजित कर लिया था और इनमें से प्रत्येक का शासन पारंपरिक शासक परिवारों की मदद से एक दक्षिणपंथी जनरल करता था। सेना के दक्षिणपंथियों ने कौंग लाओ की सेनाओं को जनरल म्वाने राटी कौन के नेतृत्व के अधीन आ जाने के लिये विवश कर दिया। पाथेट लाओ की दृष्टि में, आर.एल.जी के दक्षिणपंथी झुकाव ने शान्ति के सारे द्वार बंद कर दिये थे। एन.एल.एच.एस. की भागीदारी के बिना ही चुनाव कराये गये। लाओस की राजनीति में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया 1965-66 में 1959-60 के समय जैसी ही थी। एन.एल.एच.एस. की भागीदारी के बिना चुनावों के कोई मायने ही नहीं थे क्योंकि इसका लाओस के दो-तिहाई हिस्से पर नियंत्रण था। वियतनाम की परिस्थिति ने लाओस के निरंतर जारी संकट को पीछे धकेलना शुरू कर दिया। लाओस में अमरीका की हवाई कार्यवाहियां पाथेट लाओ की प्रगति को रोकने और उत्तरी वियतनाम द्वारा वियतकाङ्ग को सुदृढ़ बनाने के लिये लाओस के सीमाक्षेत्र का इस्तेमाल करने पर पाबंदी लगाने के उद्देश्य से की गई। दक्षिण पूर्व लाओस में हो ची मिन्ह द्वारा खोजे गये मार्ग के आसपास जबर्दस्त बमबारी की गई क्योंकि यह दोनों वियतनामों के लिये आपूर्ति का मुख्य मार्ग था। उत्तरी वियतनाम ने इस मार्ग को खुला रखने तथा हथियार बंद लड़ाई में पाथेट लाओ की मदद के लिये लाओस में अपनी सेनाएं तैनात कर रखी थीं। दक्षिण वियतनाम में बिगड़ती स्थिति तथा 1970 में कम्बोडिया की घटनाओं के साथ ही उत्तरी वियतनाम तथा अमरीका की संबद्ध सहयोगियों से प्रतिबद्धताएं बढ़ गई।

22.5.3 1973 के समझौते की विफलता

लाओस में तब तक कोई समाधान होता नहीं दिखाई दे रहा था जब तक वियतनाम युद्ध का कोई हल न निकाला जाय। 1968 में पेरिस शान्ति वार्ताओं ने वियतनाम युद्ध का कोई समाधान खोजना शुरू किया। एक ओर अमरीका व सोवियत संघ के बीच तथा दूसरी ओर अमरीका व चीन के बीच तनाव कम करने की कोशिश के कारण परस्पर समझौते का माहौल बना। हिन्द-चीन में टकराव के स्तर में कमी आई। पेरिस में हुई प्रगति ने पाथेट लाओ तथा आर.एल.जी. के बीच वार्ताओं पर भी असर डाला। 27 जनवरी 1973 को वियतनाम पर हुए पेरिस समझौते ने लाओस में वार्ताओं को तेज कर दिया। समझौते की धारा 20 में कहा गया था कि संबद्ध पक्ष लाओस के बारे में 1962 के जिनेवा समझौते का सम्मान करेंगे। अमरीका एवं उत्तरी वियतनाम लाओस की समस्या का समाधान खोजने के लिये राज़ी हो गये और उन्होंने दक्षिणपंथियों व पाथेट लाओ से किसी समझौते पर पहुंचने के लिये कहा। 21 फरवरी 1973 को शान्ति की बहाली तथा लाओस में सुलह-सफाई के बारे में एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। एक प्रोवीजनल गवर्नमैण्ट आफ नेशनल यूनियन (पी.जी.एन.यू.) स्थापित की जानी थी। यह समझौता पाथेट लाओ का स्पष्ट विषय था। पहले वाले समझौते का त्रिपक्षीय ढांचा इसमें नहीं था। पाथेट लाओ की मांग पर पी.जी.एन.यू. पर नियंत्रण रखने वाली एक नेशनल पॉलीटिकल काउंसिल आफ कोलिशन (एन.पी.सी.सी.) का गठन किया जाना था। आर.एल.जी. द्वारा स्वीकार की गई एक अन्य बात थीः चुनावों से पूर्व प्रशासन के पृथक क्षेत्रों को बरकरार रखा जाना। विएन्टाइन तथा लुआंग प्रबांग को उदासीन बनाया जाना था ताकि पाथेट लाओ अपनी सेनाएं तैनात कर सके। अप्रैल 1974 में पी.जी.एन.एम. का निर्माण हुआ। पाथेट लाओ धीरे-धीरे अधिक शक्ति अर्जित करता जा रहा था और गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति का अहसास कराता जा रहा था। लाओस का 4/5वां क्षेत्र तथा आधी आबादी पर इसका नियंत्रण था। पाथेट लाओ की सफलता जितनी स्वयं उसकी अपनी नीतियों की वजह से थी उतनी ही आर.एल.जी. के निष्पादन के फलस्वरूप भी मिली थी। आर.एल.जी. नेताओं ने देश के विकास की अवहेलना की थी और उनका राजनैतिक आचरण अनेक निजी हितों को साधने का ही माध्यम

बनकर रह गया था। राजनैतिक पार्टियां व्यक्तियों के इर्द गिर्द ही घूमती रहती थीं। अपने अस्तित्व के लिये अमरीकी सहायता पर निर्भर रहने के कारण आर.एल.जी. अमरीका का पिछलग्गू बन गई। प्रतिष्ठित वर्ग जनता का समर्थन प्राप्त नहीं कर सका। आर.एल.जी. सेना के बुरी तरह विफल रहने की वजह से पाथेट लाओ के क्षेत्रों का निरंतर बढ़ता चला गया। 1973 में आर.एल.जी. विएन्टाइन लुआंग प्रबांग तथा मैकौंग घाटी के आसपास के क्षेत्रों पर नियंत्रण बनाये हुए थी। पाथेट लाओ एक सुगठित संगठन था। इसने लम्बे समय से चली आ रही जनता की समस्याओं का भरपूर फायदा उठाया और आर.एल.जी. की कमजोरियों का पर्दाफाश किया। पर्वतीय क्षेत्रों की विपरीत परिस्थितियों में काम करते हुए, पाथेट लाओ ने अपने उद्देश्य के लिये समर्पण एवं बलिदान की भावना का परिचय दिया। दक्षिण वियतनाम तथा कम्बोडिया का अप्रैल 1975 पतन हो जाने के बाद, पाथेट लाओ ने आसानी से लाओस पर प्रभावी नियंत्रण कायम कर लिया। नवम्बर में एन.एल.एच.एस. के मुख्यालय पर पी.जी.एन.यू. तथा एन.पी.सी.सी. के संयुक्त अधिवेशन में, लाओस की सांझा मोर्चा सरकार भंग कर दी गई। राजा ने ताज छोड़ दिया। अधिकांश दक्षिणपंथी नेता थाईलैण्ड व फ्रांस भाग खड़े हुए। 2 दिसम्बर 1975 को, लाओस पीपुल्स डैमोक्रेटिक रिपब्लिक (एल.पी.डी.आर.) की स्थापना हुई।

बोध प्रश्न 4

टिप्पणियां: i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये उत्तर से कीजिये।

1) आधुनिक लाओस में साम्यवाद के उदय का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

22.6 नयी सरकार

नया शासन प्रबन्ध अनेक समस्याओं से घिरा हुआ था। लाओस तीन दशकों तक चले आ रहे युद्ध से तबाह हो गया था। लाओस के निवासियों को जिस तरह की मुसीबतें, इतने लम्बे समय तक और इतनी छोटी सी वजह से उठानी पड़ी उसका उदाहरण मिलना कठिन है। पिछले शासन प्रबन्ध के अनेक सर्वोच्च नौकरशाह तथा तकनीकी कार्मिक देश छोड़कर भाग गये। अर्थव्यवस्था चौपट हो गई थी। हालांकि एल.पी.डी.आर. के नेतागणों को पिछले सांझा मोर्चे की सरकार के समय का प्रशासनिक अनुभव प्राप्त था, किन्तु उनका अधिकांश समय युद्ध-क्षेत्रों में ही बीता था। भारी विषमताओं का सामना करते हुए उन्होंने विश्व के एक सबसे गरीब तथा कम पिछड़े हुए देश पर प्रशासन करने का कार्य आरंभ किया।

22.6.1 नेतृत्व

नेतृत्व उसी समूह के हाथों में बना रहा जिसने पाथेट लाओ आन्दोलन को सफलता दिलाई थी। कैसौन फूभविहान तथा सूफौनोवोंग क्रमशः राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री बने। 1975 में "फाक पासेसन पाटीवल लाओ" (लाओ पीपुल्स रिवोल्यूशनरी पार्टी, एल.पी.आर.डी.) के पोलिटब्यूरो में 7 सदस्य थे। वे थे केसौन, फोमविहान, नोउहक, फोउमसावन, सूफौनोवोंग, फाउमी वैगवियिट, फोउन सिपरासिउथ, खामते सिफाब्डोन सीसुमफोम लोवान्से। एल.पी.आर.डी. की केन्द्रीय कमेटी की सदस्यता अप्रैल 1982 की तीसरी पार्टी कांग्रेस में 21 से बढ़कर 49 हो गई थी और जातीय अल्पसंख्यकों का प्रतिशत लगभग 21 था। केसौन एल.पी.आर.डी. के महासचिव थे और उनकी पत्नी यौगविहीन केन्द्रीय समिति की सदस्य बन गई थी। प्रधानमंत्री के पद का नाम बदलकर मंत्रिपरिषद् का चेयरमैन रख दिया गया। पार्टी नेतृत्व को परेशानी में डालने वाला एक कारक कुछ पोलिटब्यूरो सदस्यों की गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं थीं। फरिश्याई 'नेट सिंग' सामसेनौंग सिन्होंने सांख्यिकी कार्य के लिये

राजसी ठाट बाट को ठुकरा दिया था, उनका आम जनता में असर बरकरार रहा किन्तु एल.पी.आर.पी. के भीतर उनका प्रभाव धीरे-धीरे समाप्त होता चला गया। इस आरोप में कोई खास दम नहीं था कि केसौन के साथ उनके गंभीर मतभेद थे।

22.6.2 आंतरिक कलह

एल.पी.आर.पी. नेतृत्व शक्तिशाली शत्रुओं के प्रति सचेत था। एल.पी.आर.पी. की स्थापना के बाद, आर.एल.जी. सेना तथा नागरिक सेना के अधिकांश उच्च स्तर के अधिकारी जेलों में बंद थे। भौंगो जैसे आदिवासी समूह तथा अन्य असंतुष्ट तत्वों द्वारा नई सरकार के खिलाफ हथियारबंद प्रतिरोध किया जा रहा था, जिन्होंने वाहनों पर घात लगाकर हमले किये, पुलों को नष्ट कर दिया और सरकारी प्रतिष्ठानों पर हमले किये थे। विद्रोहियों को थाईलैण्ड के शरणार्थी शिविरों से सहायता मिल रही थी। लाओ पीपुल्स रिवोल्यूशनरी फ्रंट (एल.पी.आर.एफ.) ने सरकारी सेनाओं के साथ 1976 में झड़पें की और केसौन की हत्या करने का प्रयास किया। चीन ने थाईलैण्ड के लाओ शरणार्थियों के बीच से गुरिल्ला आन्दोलन के लिये सैनिकों की भर्ती करके तथा एक लाओ सोशलिस्ट पार्टी का गठन करके लाऔस में आन्तरिक कलह को प्रोत्साहित किया। 1980 में देश से बाहर राजनैतिक शरण लिये हुए दक्षिणपंथियों ने बैंकोक में लाओ जनता की राष्ट्रीय मुक्ति के लिये एक संयुक्त मोर्चे का गठन किया। फोउमी नौसारन ने दावा किया कि उसे मोर्चे का नेता स्वीकार कर लिया गया है और उसने रॉयल लाओ डैमोक्रेटिक सरकार गठित की। 1989 में पूर्वी योरोप तथा सोवियत संघ में हुई घटनाओं का लाऔस पर भी असर पड़ा और एल.पी.आर.पी. का विरोध पुनः प्रज्वलित हो गया। मोर्चे ने दावा किया कि इसने साया बौरी प्रान्त के भीतर एक समानान्तर सरकार बना ली है। एल.पी.आर.पी. के खिलाफ रेडियो प्रसारण भी किये गये। मौंगों आदिवासियों ने जिऐंग खुआंग प्रांत में सरकार के खिलाफ प्रदर्शन किया। सरकारी सेना द्वारा लगभग 40 लोग मारे गये। लाऔस के छात्रों ने पोलैण्ड में प्रदर्शन करके स्वतंत्र चुनाव कराये जाने तथा लाऔस से वियतनामी सेना को हटाये जाने की मांग उठाई। यद्यपि एल.पी.आर.पी. नेताओं के बीच एकजुटता के फलस्वरूप शासन प्रबन्ध की स्थिरता बढ़ी किन्तु कुछ असंतोष के उदाहरण भी दिखाई दिये। सरकारी दैनिक मुखपत्र ''सियांग पासोसौंगत्र'' के संपादक सीसानन सिंगनानोवौंग अगस्त 1979 में चीन भाग खड़े हुए। सावन्नाखिएता प्रांत के गवर्नर को 1982 में राज्य-विरोधी गतिविधियों के कारण गिरफ्तार किया गया। अक्टूबर 1990 में भूतपूर्व विज्ञान एवं तकनीक मंत्री थौंगसौक सेसागकी तथा वन उपमंत्री रासमी खामपौंई को गिरफ्तार कर लिया गया, ये लोग विएन्ताइन में वरिष्ठ अधिकारियों व बुद्धिजीवियों ने सोशल डैमोक्रेट ग्रुप नामक एक नई पार्टी बनाने की भी कोशिश की थी। एल.पी.आर.पी. के खिलाफ प्रतिरोध की गतिविधियां वैसे छिटपुट प्रकृति की ही थी और विभिन्न गुटों के बीच विधिवत तालमेल नहीं था। ये इतनी शक्तिशाली न थीं कि इनसे देश की स्थिरता को कोई बड़ा खतरा पैदा हो पाता।

22.6.3 संविधान

मई 1947 का संविधान कम्युनिस्टों की विजय तक लागू रहा। पिछला निज़ाम राष्ट्रीय असैम्बली के प्रति उत्तरदायी एक मंत्रिपरिषद द्वारा शासित संवैधानिक राजतंत्र था। उच्च सदन रॉयल हाउस कहलाता था और उसमें 12 सदस्य थे, जिनमें से आधे सदस्य राजा द्वारा मनोनीत किय जाते थे और आधे राष्ट्रीय असैम्बली द्वारा चुने जाते थे। नये शासकों ने कोई नया संविधान स्वीकार करने का गंभीर प्रयास नहीं किया। 1985 में यह काम सुप्रीम पीपुल्स कॉउन्सिल को सौंपा गया। 1986 में हुए एल.पी.आर.पी. को चौथी कांग्रेस में इस मुद्दे पर विचार किया गया। 1990 में केवल संविधान का मसविदा तैयार करने की प्रक्रिया तीव्र हो गई। 1977 में सोवियत संविधान को एक आम मॉडल के रूप में स्वीकार किया गया था, किन्तु संघीय-प्रणाली के विपरीत एक एकीकृत प्रणाली को अपनाया गया। 1980 के वियतनामी संविधान से भिन्न जिसमें समाजवाद तथा मजदूर वर्ग के नेतृत्व का उल्लेख किया गया था, एल.पी.आर.पी. के मसविदे में एल.पी.आर.पी. के नेतृत्व के तहत एक जनतांत्रिक राज्य का उल्लेख करते हुए एक भूमिका एवं 10 अध्याय लिखे गये थे। देश के उद्देश्य थे शान्ति, जनतंत्र एवं संपन्नता। शान्ति, स्वाधीनता, मैत्री व गुट निरपेक्षता विदेश नीति के उद्देश्य थे। यद्यपि भूमि पर स्वामित्व राज्य का विशेषाधिकार था, किन्तु उत्पादन पर निजी स्वामित्व की गारंटी की गई थी। घरेलू तथा साथ ही विदेशी स्वामित्व तथा पूंजी निवेष की सुरक्षा की भी संवैधानिक गारंटियां की गई थी। मसविदे के अध्याय 3 में, बोलने, प्रेस तथा सभा करने की स्वतंत्रता, तथा मनमानी गिरफ्तारियों से सुरक्षा की गारंटी की गई थी। हालांकि, बहुदलीय प्रणाली की

मांग तथा एल.पी.आर.पी. विरोधी एसोसिएशनों को बर्दाश्त नहीं किया जाना था। बौद्ध धर्म तथा अन्य धार्मिक आचरणों की सुरक्षा की जानी थी और साथ ही धर्म पर चलने के अधिकार भी सुनिश्चित किये गये थे।

22.6.4 विकासात्मक रणनीति

सरकारी प्रचार माध्यमों के अनुसार लाओस की समाजवादी क्रांति के तीन प्रमुख कार्यभार थे: उत्पादन के रिश्तों में क्रांतिकारी परिवर्तन, विज्ञान व तकनीकी क्रांति, तथा विचारधारात्मक एवं सांस्कृतिक क्रांति। क्रांतिकारी समर्थन के साथ, नये शासकों ने जनता को मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा से लैस करना तथा नये प्रशासन के नियमों के अनुरूप जनता के जीवन स्तर को बदलना शुरू किया। एक केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था अस्तित्व में आई। कृषि सम्बन्धी सहकारी संस्थायें बनाई गईं तथा वाणिज्यक गतिविधियों का राष्ट्रीयकरण किया गया। 59 राज्य वाणिज्यक उद्यम तथा 138 सहकारी संस्थाएं स्थापित की गईं। किन्तु आर्थिक स्थिति की दशा फिर भी गंभीर ही बनी रही। आवश्यक वस्तुओं की कीमतें काफी बढ़ गईं और स्थानीय मुद्रा ''किप'' का मूल्य नीचे आ गया। व्यापक तस्कारे एवं कालाबाजारी ने अर्थव्यवस्था पर बुरी तरह असर डाला। 1979 में एल.पी.आर.पी. ने अनेक आर्थिक सुधार करके अपनी गलतियों को दुरस्त करने की कोशिश की। कुछ हद तक सरकारी निगरानी में निजी व्यापार की स्वीकृति दी गई। वस्तुओं के खरीद मूल्य थाईलैण्ड में उनके मूल्यों के बराबर रखे गये। कृषि संबन्धी सहकारी संस्थाओं को लचीला बनाया गया। पहली पंच वर्षीय योजना (1981-86) में खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्म निर्भरता तथा उच्चतर निर्यात आय पर बल दिया गया। लाओस की अर्थव्यवस्था में कुछ सुधार हुआ किन्तु कुछ समय बाद मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि होने लगी।

1986 से ही एल.पी.आर.पी. के शासन (नई आर्थिक क्रियाविधि) नामक एक प्रमुख आर्थिक सुधार कार्यक्रम के लिये प्रयास कर रहे थे। विचारधारा सुधार कार्यक्रम के लिये प्रयास कर रहे थे। विचारधारात्मक रूढ़िवादिता का परित्याग कर दिया गया था। अविकसित अर्थव्यवस्था की सच्चाइयों का सामना होने पर, उन्होंने आर्थिक निर्णय प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण किया, व्यापार-प्रतिबन्धों को हटाया, नदी निवेष संहिता को लागू किया, राज्य के आर्थिक नियंत्रण को ढीला किया, एक निजी बाजार क्षेत्र की इजाजत दी, और विदेशी व्यापारियों को आमंत्रित किया। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1991-95) का उद्देश्य नई आर्थिक क्रियाविधि को तेज करना था। कृषि का खास महत्व दिया गया और यह अनुमान लगाया गया कि आगामी दस वर्षों में यह देश के विकासात्मक व्यय का 1/5वां हिस्सा वहन करने लगेगी। कृषि-वानिकी समेत उद्योग को व्यय का 30 प्रतिशित आवंटन किया गया तथा परिवहन एवं संचार के लिये 25 प्रतिशत राशि रखी गई। 1989-90 में चावल की पैदावार बढ़ी किन्तु वह आशा से कम मात्रा में थी। लाओस को कमी पूरी करने के लिये 40,000 टन चावल की आवश्यकता पड़ी। फिर भी सामूहिक कृषि उत्पादन में किए जाने से ग्रामीण उत्पादकता ने विकासोन्मुख रूझान दिखाई पड़ा। किसानों ने पुनः उन जमीनों पर खेती करना शुरू किया जो उनकी अपनी थी। प्रान्तों को निजी कम्पनियों तथा साथ ही पड़ोसी राज्यों के साथ व्यापार समझौते करने की स्वीकृति दी गई। थाई, चीनी व वियतनामी व्यापारियों ने एक के बाद एक पुनः वाणिज्यिक गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर दिया। एल.पी.आर.पी. द्वारा घरेलू एवं विदेशी निवेष को बढ़ावा देने के लिए कुछ आर्थिक कानून पारित किये गये।

लाओस के आर्थिक विकास के लिये विदेशों तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहायता प्राप्त करना जरूरी था। पचास के दशक के मध्य में आर.एल.जी. के बजट का 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग अमरीकी सहायता से पूरा किया जाता था। कम्युनिस्टों की विजय के बाद, अमरीकी सहायता तथा विदेशी-विनिमय गतिविधियों के फण्ड के समाप्त हो जाने पर देश की अर्थव्यवस्था ध्वस्त ही हो गई होती। नये शासन प्रबन्ध ने कम्युनिस्ट एवं गैर-कम्युनिस्ट, दोनों प्रकार के देशों से सहायता की मांग की। विदेशी सहायता तथा ऋण, राज्य के बजट के लिये मौजूदा राजस्व का आधे से भी अधिक बैठते थे। वियतनाम ने जल अवरुद्ध लाओस के व्यापार को वृद्धि करने में सहायता की और दोनों ने 1977 में वियतनामी बंदरगाह डानंग के माध्यम से मालों का आयात-निर्यात करने के एक तटकर संबन्धी समझौता किया। वाणिज्यक मालों के आवागमन के लिये लाओस की थाईलैण्ड पर निर्भरता को दूर करने के लिये इसके परिवहन के ताने बाने को वियतनाम के साथ जोड़ दिया गया। सोवियत सहायता के अंतर्गत, तेल पाइप लाइन का निर्माण, पानी-बिजली ऊर्जा क्षमता का विस्तार, टिन का खनन, तथा अंतर-स्पुतनिक सैटेलाइट लाइजन सेन्टर खोले जाना, शामिल थे।

स्वीडन ने वानिकी एवं संचार में मदद की। डच लोगों ने सिंचाई-परियोजनाओं में सहायता दी। लाओस ने कौमकोन की खोई हुई मदद के बदले में वैकल्पिक विदेशी सहायता के स्रोत तलाश किये। 1989-90 तक सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप लाओस के तकनीकी कार्मिकों को जापान में प्रशिक्षण, तथा हाइड्रो-पॉवर योजनाएं शामिल थी। नशीली दवाओं की तस्करी रोकने तथा उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र का विकास करने के लिए अमरीका ने जनवरी 1990 में 8.7 मिलियन डॉलर की विकास परियोजना की घोषणा की। लाओस ने 1990 में चीन के साथ व्यापार एवं तकनीकी सहयोग का एक समझौता किया जिसके अन्तर्गत चीन लुंग प्रबांग प्रांत में एक हवाई पट्टी का निर्माण करेगा, लाओस को यात्री विमानों की बिक्री करेगा, बिजलीघरों का निर्माण करेगा और उत्तरी प्रान्तों में सड़कों का निर्माण करायेगा। चावल की मिलों तथा कॉफी को प्रौसेस करने के कारखानों जैसी परियोजनाएं अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी (आई.डी.ए.) ने अपने हाथ में ली हैं। इसने लाओस की अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिये 40 मिलीयन डॉलर का ऋण भी दिया है। इस ऋण से सार्वजनिक उद्यमों में सुधारों, निजीकरण, राजस्व में वृद्धि, सार्वजनिक संसाधनों का प्रबंध तथा विदेशी निवेश को प्रोत्साहन, जैसे सरकार के प्रयासों को बल मिलेगा।

22.6.5 विदेश संबन्ध

एल.पी.आर.पी. की विदेश नीति के निर्धारित लक्ष्य शान्ति, मैत्री, स्वाधीनता तथा गुट-निरपेक्षता थे। किन्तु एक छोटा सा देश लाओस इन उद्देश्यों का पूरी तरह से पालन नहीं कर सका क्योंकि यह क्षेत्रीय एवं विश्व शक्तियों के टकरावपूर्ण हितों के बीच में फंसा रहा। 1990 में लाओस की विदेश नीति में प्रमुख बदलाव आते दिखाई दिये। सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप में कम्यूनिज्म के ढह जाने के साथ ही एल.पी.आर.पी. के शासकों ने चीन, अमरीका तथा थाईलैण्ड से सुलह करने की कोशिश की।

एल.पी.डी.आर. की स्थापना के बाद से चीन के साथ संबन्ध बहुत मधुर हो गये। चीन ने पुनर्निर्माण के लिये 25 मिलीयन डॉलर की आर्थिक सहायता प्रदान की और उत्तरी लाओस में सड़क निर्माण की गतिविधियों के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज की। लाओस ने अपनी पहले वाली उदासीनता का परित्याग कर दिया, जोकि 1978 के मध्य में वियतनाम एवं चीन के बीच तनाव बढ़ जाने के समय पर थी। फरवरी 1974 के वियतनाम पर चीनी आक्रमण के बाद, चीन-लाओस संबन्धों में गिरावट आ गई थी। सोउफानोलौंग ने चीन का एक विस्तारवादी शक्ति करार दिया था और उस पर आरोप लगाया था कि वह सीमा क्षेत्रों में सेनाओं का जमाव कर रहा है और लाओ विद्रोहियों को मदद दे रहा है। एल.पी.आर.पी. की तीसरी कांग्रेस में चीन को आमंत्रित नहीं किया गया था। इसने अपने तकनीकी कार्मिकों को अनेक परियोजनाओं से वापस बुला लिया था और लगभग एक हजार शरणार्थियों को यूनान में पुनर्वास कराकर उन्हें बगावत का प्रशिक्षण दिया था। 1980 के दशक के अंत से चीन-लाओस संबन्धों में सुधार आया। दोनों ने 1990 में व्यापार समझौतों पर हस्ताक्षर किये और चीन लाओस में सबसे बड़ा विदेशी निवेषकर्ता बन गया।

एल.पी.डी.आर. के विदेश संबन्ध सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप के साथ बहुत घनिष्ट थे। सोवियतों ने लाओस के आर्थिक पुनर्निर्माण में मदद की थी और दोनों देशों से उच्च-स्तरीय प्रतिनिधि मंडलों द्वारा एक-दूसरे के देश की यात्राएं की गई थीं। फरवरी 1982 में सोवियत चीफ आफ जनरल स्टाफ ने लाओस की यात्रा की थी और सैन्य सहायता के विषय में एल.पी.डी.आर. नेताओं के साथ वार्ता की थी। लाओस ने विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर सोवियत विचारधारा का समर्थन किया था। मई 1968 में, कम्बोडिया की राजधानी में लाओस, वियतनाम, कम्बोडिया तथा सोवियत संघ से विदेश उप-मंत्रियों का वार्ता सम्मेलन हुआ था। प्रतिनिधियों ने कम्बोडिया में शान्ति-वार्ताओं का समर्थन किया और यह सुझाव रखा कि देशों के बीच सीमा-विवादों का निपटारा शान्तिपूर्ण तरीकों से कर लिया जाना चाहिये। लाओस ने पूर्वी यूरोप के देशों से भी आर्थिक सहायता प्राप्त की। सितम्बर 1982 में लाओस तथा पूर्वी यूरोप के देशों के बीच 25 वर्ष की मैत्री एवं सहयोग की संधि हुई थी।

लाओस एवं वियतनाम के बीच "होठों व दांतों" जैसे संबन्ध वियतनाम युद्ध के बाद के काल में भी जारी रहे। यह निकटता का रिश्ता जुलाई 1977 में 25 वर्षों की एक मैत्री संधि होने पर और अधिक प्रगाढ़ बना जिसमें जीने-मरने तक एक दूसरे का साथ निभाने तथा समाजवादी निर्माण एवं रक्षा के क्षेत्र में सहयोग की प्रतिबद्धताओं को दोहराया गया। लाओस-वियतनाम सीमा के आस-पास वियतनामी बस्तियों को प्रोत्साहन दिया गया। दिसम्बर 1978 में वियतनाम ने कम्बोडिया पर तथा

फरवरी 1979 में चीन ने वियतनाम पर आक्रमण किया जिसके चलते लाओस के लिये कोई स्वतंत्र अपनाकर चलने की सारी संम्भावनाएं अवरुद्ध हो गईं और इसके हित लगभग वियतनाम की अधीनता में आ गए। मार्च 1979 में लाओस ने कम्बोडिया के साथ एक सहयोग के समझौते पर हस्ताक्षर किये। वियतनाम, लाओस व कम्बोडिया चीन को राज्यों पर वियनटाइन शिखर बैठक में, तीनों देशों ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आधार पर एक जुटता की शपथ ली थी। लाओस ने कम्बोडिया पर वियतनामी वार्ताओं के पक्ष को अपनाया। यह थाईलैण्ड, अमरीका व चीन से सुलह करने के बावजूद वियतनाम के साथ अपने विशेष रिश्तों को बनाए रखेगा।

लाओस एवं थाईलैण्ड के बीच संबन्धों में सीमाओं को बंद किये जाने, शत्रुता तथा परस्पर द्विष का पैटर्न रहा था। उत्तर-पूर्वी थाईलैण्ड में लाओ शरणार्थी आन्दोलन ने भी संबन्धों को बिगाड़ दिया। थाईलैण्ड में 1976 के दिसम्बर माह में हुए सैन्य तख्तापलट के बाद थाई छात्रों के संघर्ष के चलते परस्पर अविश्वास और अधिक बढ़ गया। उन्हें लाओस के शिविरों में प्रशिक्षण दिया जा रहा था। थाई विद्रोहियों को लाओस के माध्यम से वियतनाम द्वारा हथियार दिये जा रहे थे। दूसरी तरफ, थाईलैण्ड ने एल.पी.डी.आर. विरोधी गतिविधियों को जारी रखने की स्वीकृति दी। अक्तूबर 1981 में इसने लाओस से लगी अपनी सीमाओं को बंद कर दिया और अप्रैल 1982 में छिटपुट गोलाबारी भी हुई। फरवरी 1988 का सीमाविवाद, थाई वायुसेना तथा तोपों द्वारा सायाबोरी प्रांत पर धावा बोलने के साथ शुरू हुआ किन्तु वार्ताओं के बाद युद्ध-विराम की घोषणा कर दी गई। 1988-89 में नेताओं द्वारा एक-दूसरे के देश की यात्राओं से उन के संबन्धों में कुछ सुधार हुआ। 1990 में थाई राजकुमारी सिरिण्डोर्न ने लाओस की अभूतपूर्व यात्रा की। सीमा सुरक्षा चौकियां खोल दी गईं। थाई व्यापारियों को लाओस में आमंत्रित किया गया। थाईलैण्ड के पैट्रोलियम-प्राधिकारी ने लाओस के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। एक दूसरे की राजधानी में मिलिटरी अटैची की नियुक्ति पुनः बहाल हुई। फिलहाल सीमा विवाद को पृष्ठभूमि में डाल दिया गया।

लाओस ने अमरीका पर पेरिस समझौते की धारा 21 का पालन न करने का आरोप लगाया था जोकि युद्ध के घावों को भरने से सम्बन्धित थी। अमरीका ने वियन्टाइन में अत्यधिक सीमित दूतावास बनाकर रखा था। यह आमतौर पर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा लाओस की सहायता करने के विभिन्न प्रोजैक्टों में मतदान के समय अनुपस्थित संस्थाओं द्वारा लाओस ने ईरान द्वारा अमरीकी लोगों को बंधक बनाए जाने तथा अफगानिस्तान में सोवियत आक्रमण का समर्थन किया था। किन्तु लाओस तथा अमरीका के संबन्धों में सुधार के संकेत दिखाई दिये और शत्रुतापूर्ण तेवरों से बचने की कोशिश की गई। सितम्बर 1982 में, युद्ध में घायल हो गए अमरीकियों के परिवारों द्वारा 569 अमरीकी सैनिकों का पता लगाने के लिये लाओस की यात्रा की गई। मार्च 1985 में, अमरीकी दूतावास द्वारा एल.पी.डी.आर. को 5000 टन चावल दान में दिया गया। अक्टूबर 1990 में दोनों देशों के बीच सर्वोच्च स्तर का संपर्क बना जिसके अन्तर्गत सैक्रेटरी आफ स्टेट जेम्स बेकर तथा विदेश मंत्री फोउनी सियासउत के बीच भेंटवार्ता हुई। 8.7 मिलीयन डॉलर की छः वर्षीय विकास परियोजना अमरीका द्वारा 1975 के बाद से हिन्द-चीन के किसी देश को दी गई पहली द्विपक्षीय सहायता थी। हण्ट-ऑयल फर्म को पेम्स में पैट्रोलियम के निष्कर्षण का अधिकार मिल गया। अमरीका ने भी लाओस के साथ राजनयिक संबन्धों में रुकावट नहीं आने दी, जैसी कि वियतनाम और कम्बोडिया के मामले में आ रही थी।

बोध प्रश्न 5

टिप्पणियां : i) अपने उत्तर के लिये नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिये।

ii) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये उत्तर से कीजिये।

1) निम्नलिखित प्रश्नों को ध्यानपूर्वक पढ़िये और रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

क) दोनों वियतनामों को जोड़ने वाली मुख्य आपूर्ति लाइन .... थी।

ख) एल.पी.डी.आर. की स्थापना ..... को हुई।

ग) 1975 में एल.पी.डी.आर. के पोलिटब्यूरो में ..... सदस्य थे।

घ) 1990 में विएन्टाइन के वरिष्ठ अधिकारी तथा बुद्धिजीवी ..... की मांग कर रहे थे।

ङ) 8.7 मिलियन डॉलर का अमरीकी प्रोजैक्ट ..... तथा ..... के लिये था।

22.7 सारांश

इस इकाई में आपने लाओस के समाज एवं राजनीति के बारे में अध्ययन किया। लाओस का समाज बहुजातीय है। 1945 तक वहां शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलन मौजूद नहीं था। अक्टूबर 1953 में फ्रांस ने पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की। बाहरी ताकतों की भागीदारी तथा देश को लगभग टुकड़ों में विभाजित कर दिये जाने के चलते राजनैतिक प्रगति में बाधा पड़ी। लाओस वियतनाम युद्ध का भी परोक्ष भागीदार बन गया। 1975 में कम्युनिस्टों ने लाओस सत्ता पर कब्जा कर लिया। नई सरकार को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। नये शासन प्रबन्ध के खिलाफ बगावत भी हो रही थी। अर्थव्यवस्था की स्थिति दयनीय थी। नयी आर्थिक क्रियाविधि ने राज्य के आर्थिक नियंत्रण को ढीला किया और निजी उद्यमों की इजाजत दी। 1990 के संविधान के मसविदे ने सख्त मार्क्सवादी दिशा का अनुसरण नहीं किया। अपनी विदेशनीति में लाओस चीन, अमरीका तथा थाइलैण्ड के साथ बेहतर संबन्ध कायम करने का प्रयास कर रहा है।

22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इवाम. जी., **एग्रेरियन चेन्ज इन कम्युनिस्ट लाओस,** (सिंगापुर 1988)

काहिन, जी.एम.(संपा.) **गवर्नमैण्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन साउथईस्ट एशिया,** न्यूयॉर्क, 1964

मिश्रा, पी.पी., **लाओस : लैण्ड एण्ड इट्स पीपुल,** नई दिल्ली

पाण्डे, बी.एन., **साऊथ एण्ड साउथईस्ट एशिया 1947-1979 : प्रॉबलम्स एण्ड पॉलिसीज** (लंदन 1980)

सरदेसाई, डी.आर., **साऊथईस्ट एशिया : पास्ट एण्ड प्रैजेण्ट** (नई दिल्ली, 1981)

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर के लिये धारा 22.2 देखें

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर के लिये धारा 22.3.2 देखें
2) अपने उत्तर के लिए धारा 22.3.3 देखें

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर के लिये धारा 22.4.2 देखें
2) अपने उत्तर के लिये धारा 22.4.3 देखें

बोध प्रश्न 4

1) अपने उत्तर के लिये धारा 22.5 देखें

बोध प्रश्न 5

1) हो ची मिन्ह खोजी मार्ग
2) 2 दिसम्बर 1975
3) 7
4) बहुदलीय जनतंत्र
5) नशीली दवाओं की तस्करी रोकने तथा उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र का विकास

इकाई 23 दक्षिण पूर्व एशिया में आर्थिक विकास की पद्धति

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना
- 23.1.1 परिभाषित क्षेत्र

23.2 अर्थव्यवस्थाओं की संरचना और विशेषताएं
- 23.2.1 आर्थिक संसाधनों की अनेकरूपता
- 23.2.2 आर्थिक विचारधाराएँ
- 23.2.3 दोहरी संरचना

23.3 द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की आर्थिक गतिविधि का विश्लेषण
- 23.3.1 संक्रमणकालीन विकास के दो आयाम
- 23.3.2 विदेशी व्यापार
- 23.3.3 विदेशी निवेश

23.4 सत्तर दशक के मध्य के बाद के बृहद् आर्थिक नीतियों के मुद्दे
- 23.4.1 व्यापार और औद्योगिक नीतियाँ
- 23.4.2 वित्तीय और पूंजी बाजार संबंधी सुधार
- 23.4.3 सार्वजनिक क्षेत्र सुधार
- 23.4.4 बचत और निवेश
- 23.4.5 मुद्रास्फीति
- 24.4.6 एशिया-प्रशांत विकास के परिप्रेक्ष्य में व्यापार और विदेशी निवेश
- 23.4.7 एशिया-प्रशांत में निवेश और व्यापार की वृद्धि के प्रमुख कारक

23.5 सारांश

23.6 शब्दावली

23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

23.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

आर्थिक दृष्टि से एशिया प्रशांत क्षेत्र विश्व का सर्वाधिक सक्रिय क्षेत्र है। दक्षिण पूर्व एशिया इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- दक्षिण पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं की संरचना पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- आर्थिक विकास के प्रमुख मुद्दों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र होने के बाद से इस क्षेत्र में अपनाई गई पद्धति को रेखांकित कर सकेंगे,
- अतीत और वर्तमान की आर्थिक नीतियों की प्रवृत्तियों की ओर संकेत कर सकेंगे।

इन देशों में आर्थिक संसाधन संबंधी व्यापक अनेकरूपता है। आप यहाँ अध्ययन करेंगे कि आर्थिक विकास के लिए इन संसाधनों का कैसे उपयोग किया गया और कौन सी विभिन्न विचारधाराएँ अपनाई गईं। अंत में आप इस क्षेत्र की सक्रियता के प्रमुख कारकों की पहचान कर पाएँगे।

23.1 प्रस्तावना

23.1.1 परिभाषित क्षेत्र

दक्षिण पूर्व एशिया में नौ देश शामिल हैं, ये हैं—हिंदेशिया, मलेशिया, फिलिपिन्स, सिंगापुर, थाईलैंड, वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया और बर्मा। थाईलैंड को छोड़कर ये सभी देश पश्चिमी शक्तियों के उपनिवेश थे और इन्हें पचास के दशक में स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सिंगापुर को छोड़कर इन सभी

देशों की अर्थव्यवस्थाएँ मुख्य रूप से प्राथमिक उद्योगों, खासकर कुछ कृषीय और खनिज उत्पादों पर निर्भर हैं। ये देश इन उत्पादों का विकसित देशों में निर्यात करते हैं। हिंदेशिया को छोड़कर इन सभी की जनसंख्या कम है।

23.2 अर्थव्यवस्थाओं की संरचना और विशेषताएँ

23.2.1 आर्थिक संसाधनों की अनेकरूपता

दक्षिण पूर्व एशिया की अर्थव्यवस्थाओं में संसाधन संबंधी भारी अनेकरूपता है। एक तरफ कुछ देशों जैसे हिंदेशिया और फिलिपिन्स में श्रम संसाधन बहुतायत में उपलब्ध है, जनसंख्या ज्यादा है, जमीन कम है, इसलिए सीमित भूमि पर दबाव बढ़ा है। दूसरी तरफ कुछ देशों में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलबध हैं। कुछ देश ऐसे हैं जहाँ जनसंख्या भूमि अनुपात सकारात्मक है या अनेक प्रकार के प्राकृतिक संसाधन भरपूर मात्रा में उपलबध हैं (जेसे मलेशिया)। यहाँ से विकसित देशों को काफी मात्रा में कच्चे माल की आपूर्ति होती है। मलेशिया और हिंदेशिया से रबर, फिलिपिन्स से नारियल, सन और केला, थाईलैंड और बर्मा से चावल, मलेशिया और थाईलैंड से टिन। इन उत्पादों का उत्पादन देश विशेष के उत्पादन से काफी अधिक होता है और इनका निर्यात किया जाता है। इस प्रकार विश्व में इन वस्तुओं के निर्यात में दक्षिण पूर्व एशिया का योगदान काफी अधिक है। उदाहरण के लिए फिलिपिन्स अकेले नारियल के कुल विश्व निर्यात का 55 से 60 प्रतिशत निर्यात करता है।

लाओस में कृषि की प्रधानता हैं जहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या भूमि से जीवीकोपार्जन करती है। सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर घटती-बढ़ती रहती है लेकिन वर्तमान में यह दर 5 से 6 प्रतिशत के बीच है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि और वानिकी का योगदान 55 प्रतिशत और उद्योग का 16 प्रतिशत है। अब लाओस को अनुदान भी मिलने लगा है। 1981 के बाद से सरकार ने खनन, वानिकी दोहन, बिजली उत्पादन और लकड़ी शोधन में 70 प्रतिशत निवेश किया है। निर्यातोन्मुख विकास को ध्यान में रखते हुए सरकार इस आधार को और मजबूत कर रही है। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में निंवेश बढ़ता जा रहा है। विदेशी मुद्रा अर्जित करने की दृष्टि से यहाँ की अर्थव्यवस्था में खनन का योगदान चौथे स्थान पर है। यहाँ से खनन द्वारा 1.5 मीलियन अमरीकी डॉलर के खनिज का निर्यात होता है जो लाओस की अर्थव्यवस्था को मज़बूती प्रदान करता है।

पारम्परिक रूप से लाओस में केवल चार वस्तुओं का उत्पादन होता रहा है, सीमेंट उत्पादन के लिए जिप्सम, नीलम, जैसे बहुमूल्य पत्थर, टिन और पत्थर का कोयला।

यहाँ बॉक्साइट (अल्यूमूनियम), ऐन्टिमनी, कैडमियम, क्रोमियम, कोबाल्ट, तांबा, सोना, लोहा, लीड, मैगनीज, निकेल, रेट अर्थस, चांदी टंग्स्टन, जिंक, बेरियम, फास्फेट, पोटाश, प्राकृतिक गैस और तेल भी पाया गया है।

23.2.2 आर्थिक विचारधाराएँ

दक्षिण पूर्व एशिया के अधिकांश देशों में बाजारोन्मुख संगठन को वरीयता दी गई है, मसलन मलेशिया, हिंदेशिया, फिलिपिन्स, सिंगापुर और थाईलैंड। इन देशों में बाजार प्रधान अर्थव्यवस्था होने के बावजूद कमोबेश सरकार का हस्तक्षेप और नियंत्रण कायम है। इसके विपरीत बर्मा, कम्बोडिया, लाओस और वियतनाम जैसे देश हैं, जहाँ संगठनात्मक चुनाव में अभी भी दुविधा बनी हुई है। बाजार अर्थव्यवस्था और समाजवाद या साम्यवाद के बीच के चुनाव का संघर्ष जारी है।

23.2.3 दोहरी संरचना

दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की आर्थिक विशेषताएँ काफी अलग-अलग हैं, जिन्हें पहचानना जरूरी है। इस दृष्टि से सिंगापुर स्पष्ट रूप से अलग है। अन्य सभी दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था का ढाँचा दो स्तरों में विभक्त है और यह औपनिवेशिक काल से चला आ रहा है। इसे द्वैध संरचना भी कह सकते हैं। एक तरफ इसमें विशाल परम्परागत कृषि क्षेत्र है और दूसरी तरफ छोटे पैमाने पर यहाँ विदेशी व्यापार, वाणिज्यिक गतिविधियाँ और उत्पादन क्रियाएँ भी शामिल

हैं। सिंगापुर की अर्थव्यवस्था आकार में छोटी है पर दक्षिण पूर्व एशिया के व्यापार में इसकी केन्द्रीय भूमिका है। यहाँ दोहरी संरचना का अभाव है और इस दृष्टि से भी यह अन्य देशों से अलग है। सिंगापुर को औपनिवेशिक शासन से एक क्षेत्रीय वाणिज्यिक अर्थव्यवस्था विरासत के रूप में प्राप्त हुई, अतः उसे विशाल पिछड़े परम्परागत कृषीय क्षेत्र के आधुनिकीकरण की जटिल समस्या का सामना नहीं करना पड़ा है। अन्य दक्षिण पूर्व एशियाई देशों को अपने विकास के क्रम में इस मुद्दे से बार-बार टकराना पड़ा है।

23.3 द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की आर्थिक गतिविधि का विश्लेषण

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद (1945.70) कम विकसित देशों में विशेष रूप की आर्थिक गतिविधियाँ क्रियाशील हुई। दक्षिण पूर्व एशिया के देश औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था से आधुनिकता की ओर बढ़े हैं। इस काल में नाटकीय रूप से आर्थिक (और राजनैतिक) बदलाव आए और 1945 के बाद तेजी से उपनिवेश समाप्त हुए हैं। इसके साथ-साथ राष्ट्रवाद का एक दौर आया जिसमें औपनिवेशिक आर्थिक विरासत को समाप्त करने की माँग की गई और अन्य विकसित अर्थव्यस्था के बीच आधुनिकीकरण के लिए दबाव डाला गया।

23.3.1 संक्रमणकालीन विकास के दो आयाम

संक्रमणकालीन आर्थिक विकास के दो मुख्य आयाम थे : आर्थिक संसाधन आधार में बदलाव और इसके आर्थिक संगठन के स्वरूप में परिवर्तन।

संसाधन आधार में बदलाव लाया गया। औपनिवेशिक काल में भूमि से उत्पादित कच्चे माल के उत्पादन पर बल दिया जाता था, अब देशी उद्यम, पूँजी और श्रम निपुणता के विकास पर जोर दिया जाने लगा है। उत्पादन के इन गैर-भूमि साधनों के विकास के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संसाधन आधार का औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण जरूरी था और औपनिवेशिक काल के समान अब कुछ वस्तुओं के निर्यात तक ही अर्थव्यवस्था का विकास सीमित नहीं था।

संक्रमणकालीन विकास (1945-70) के प्रथम चरण में दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में भूमि आधारित अर्थव्यवस्था से पूँजी और श्रम आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया एक समान नहीं रही। मलेशिया और थाईलैंड जैसे प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न देश में परिवर्तन की गति धीमी रही और यहाँ औपनिवेशिक काल से चले आ रहे भूमि आधारित उत्पादन के निर्यात को सुविधाजनक पाया गया। यहाँ प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था और इस प्रकार परम्परागत प्राथमिक उत्पादन के निर्यात से प्रति व्यक्ति आय में संतोषजनक वृद्धि हुई है। बहुत देशों को यह विकल्प उपलब्ध नहीं था क्योंकि वहाँ भूमि पर जनसंख्या का दबाव ज्यादा था। श्रम आधारित अर्थव्यवस्था इनके अनुकूल थी। हिंदेशिया और फिलिपिन्स में इसी योजना को कार्यरूप दिया गया।

परम्परागत रूप से प्राप्त औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था को बदलने के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प तैयार किया गया। इस नीति का उद्देश्य भूमि आधारित प्राथमिक उत्पाद अर्थव्यवस्था के स्थान पर घरेलू उत्पादक उद्योगों की स्थापना करना था। इसके अन्तर्गत परम्परागत प्राथमिक उत्पाद के निर्यात (जैसे चीनी, नारियल, सन) से प्राप्त आय से तैयार उपभोक्ता वस्तुओं (जैसे कपड़ा) के आयात के स्थान पर उत्पादक वस्तुओं (जैसे कपड़ा बनाने की मशीन) के आयात पर जोर दिया गया। इन उत्पादक वस्तुओं के आयात से घरेलू उत्पादन प्रक्रिया की शुरुआत की गई और तैयार माल का उत्पादन शुरू हुआ है। इस प्रकार इनका आयात बंद हुआ।

इस प्रकार के अंतरों के साथ-साथ आर्थिक संगठन के स्वरूप में भी भिन्नता थी। यह संगठनात्मक अंतर मुख्य रूप से विदेशी व्यापार में परिलक्षित होता है। औपनिवेशिक शासन से परम्परागत रूप में विदेशी बाजार प्राप्त था। अतः विदेश व्यापार और पूँजी की गतिशीलता में सरकार के हस्तक्षेप संबंधी परिवर्तन संक्रमणकाल में आए। बहुत देशों (हिंदेशिया और फिलिपन्स) में सरकार का अर्थव्यवस्था में काफी हस्तक्षेप रहा और संरचनात्मक परिवर्तन किए गए। विदेश व्यापार पर सरकारी नियंत्रण लगाया गया, सीमा शुल्क प्रावधान को सख्त बनाया गया, आदान-प्रदान नियंत्रण कायम किया गया और पूंजी के बहिर्गमन पर प्रतिबंध लगाया गया।

इसके विपरीत, प्राकृतिक संसाधनों में सम्पन्न राष्ट्रों (थाईलैंड और मलेशिया) ने अपेक्षाकृत मुक्त बाजार व्यवस्था कायम की (मुद्रा विदेशी विनिमय, बाजार, कम सीमा शुल्क और पूंजी बहिर्गमन में

उदारता) विदेशोन्मुख निर्यातक अर्थव्यवस्था के निदान से मुक्त बाजार व्यवस्था उपयुक्त थी, जिसमें अभी भी प्राथमिक उत्पाद निर्यात पर बल देने की प्रकृति मौजूद है।

23.3.2 विदेशी व्यापार

आइए, अब विदेशी व्यापार की चर्चा की जाए। इस सन्दर्भ में युद्ध पूर्व और युद्ध के बाद की स्थिति की तुलना उपयोगी होगी। 1938 ई. में विश्व व्यापार में दक्षिण पूर्व एशिया का हिस्सा 3 प्रतिशत था, निर्यात में 3 प्रतिशत और आयात में 2.3 प्रतिशत हिस्सेदारी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के तुरन्त बाद विश्व व्यापार में दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया राष्ट्र संघ (ASEAN) का योगदान क्रमशः 4.5 प्रतिशत और 3.9 प्रतिशत था। 1969 तक दक्षिण पूर्व एशिया और *एसिअन* का विश्व व्यापार में योगदान घटता गया। 1979 में दक्षिण पूर्व एशिया और *एसिअन* का योगदान बढ़कर क्रमशः 2.5 और 2.4 प्रतिशत हुआ। युद्ध समाप्त होने के आरम्भिक वर्षों की तुलना में *एसिअन* व्यापार में गिरावट आई। पर 1938 में 1969.70 की तुलना करने पर पता चलता है कि दक्षिण पूर्व एशिया राष्ट्र संघ (एसिअन) पहले की ही तरह विश्व व्यापार में महत्वपूर्ण बना रहा।

एशिया के अन्य विकासशील देशों और जहाँ भी अर्थव्यवस्था की प्रकृति इनके समान हैं, के समान इस पूरे काल में दक्षिण पूर्व एशिया के इन देशों में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अर्थव्यवस्था स्थिर रही या काफी धीमी गति से आगे बढ़ी। इसका मुख्य कारण यह था कि उनकी अर्थव्यवस्था प्राथमिक उत्पादों के निर्यात पर टिकी हुई थी और यह बराबर सीमा शुल्क के नियमों और प्रतिकूल व्यापारिक शर्तों के कारण बाधित होती रही। इसके साथ-साथ आयात विकल्प और स्वायत्तत्ता जैसी नीतियों के कारण दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों और अन्य विकासशील देशों के साथ इनके व्यापार पर प्रतिकूल असर पड़ा।

दक्षिण पूर्व एशियाई व्यापार और अर्थव्यवस्था सहयोग की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि उत्पादन के मामले में संपूरकता के स्थान पर प्रतियोगिता पर विशेष बल दिया गया। स्वतंत्रता के समय पूरे दक्षिण पूर्व एशिया में आर्थिक राष्ट्रवाद की लहर दौड़ रही थी और इसने उनके अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों को विशेष रूप से प्रभावित किया। यहाँ दो प्रकार के आर्थिक संबंधों पर बल दिया गया— पहला, दक्षिण पूर्व एशिया के देशों का आपसी संबंध और शेष विश्व, खासकर, जापान के साथ संबंध। हालाँकि आर्थिक राष्ट्रवाद के अन्तर्गत दूसरे प्रकार के संबंध की अपेक्षा पहले प्रकार के संबंध को प्राथमिकता देने का प्रयत्न किया गया, पर ऐसा हो न सका। दोनों प्रकार के संबंध साथ-साथ और स्वतंत्र रूप से विकसित होते रहे। दूसरे शब्दों में अतिरिक्त प्रान्तीय व्यापार के साथ-साथ अन्तर प्रान्तीय व्यापार भी फलता-फूलता रहा।

दक्षिण पूर्व एशिया के विकास में जापान की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इस क्षेत्र पर जापान का कब्जा रहा। आज भी इस क्षेत्र में अमरीकी उत्पादों के बाहुल्य के बावजूद दक्षिण पूर्व एशिया के बाजारों पर जापान का प्रभुत्व बना हुआ है।

23.3.3 विदेशी निवेश

पहले भी, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को लेकर कई देशों में कुछ विवाद पैदा हुए थे। 1974 ई. में जापान के प्रधानमंत्री तनाका ने हिंदेशिया और थाईलैंड का दौरा किया था। उनके इस दौरे के दौरान जापान विरोधी दंगे हुए। इन दंगों के अनेक कारण थे पर इसका एक प्रमुख कारण इस क्षेत्र में जापान का बढ़ता प्रत्यक्ष निवेश था। उस समय पूरे विश्व में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में उनके निवेश को सन्देह की दृष्टि से देखा जा रहा था। यह विकासशील देश नीति निर्धारक राष्ट्रीय नियंत्रण कायम रखने पर जोर दे रहे थे और विदेशी निवेश को कड़ाई से नियंत्रित कर रहे थे। वे विदेशी निवेश से उत्पन्न बाजार केन्द्रीकरण, मुनाफा के अधिकांश हिस्से का बर्हिगमन, स्थानान्तरण, मूल्य निर्धारण, असंतुलित तकनीकी हस्तांतरण, विदेशी तकनीक का आयात, पूँजीगत माल और मध्यवर्ती आयात पर अत्यधिक निर्भरता जैसी विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रति भी सचेत थे।

1970 के दशक के अंतिम वर्षों से लेकर 1980 के दशक के मध्य तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रति नीति में आमूल परिवर्तन हो गया। 1980 के दशक के आरंभिक वर्षों में उत्पन्न ऋण संकट इस दृष्टिकोण परिवर्तन का मुख्य कारण था। 1970 के दशक के अंतिम वर्षों से लेकर पूरे द्वितीय तेल संकट के काल तक ऋण-राशि की उपलब्धता और ब्याज की वास्तविक निषेधात्मक दर के कारण विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए विदेशी ऋण काफी आकर्षक मामला रहा। पर तेजी से

बढ़ते इस ऋण भार को देखते हुए बैंकों को अपनी उदारता पर नियंत्रण लगाना पड़ा और कई मामलों में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को दी जा रही पूंजी में कटौती की गई। हालांकि एशिया के लिए यह सीमित समस्या थी पर फिलिपिन्स जैसे देशों पर अंतर्राष्ट्रीय बैंकिग समुदाय का दबाव काफी बढ़ गया। इस बढ़ते ऋण-बोझ के कारण हिंदेशिया, मलेशिया और फिलिपिन्स के नीति-निर्धारकों ने ऋण लेने में काफी सख्ती अपनाई। इसके परिणामस्वरूप विकासात्मक योजनाओं में कटौती करनी पड़ी, आयात पर प्रतिबंध लगाया गया और 1980 के दशक के मध्य में ऋण लेना काफी कम हुआ।

बोध प्रश्न 1

1) इस क्षेत्र के किन देशों ने आम तौर पर बाजारोन्मुख व्यवस्था अपनाई ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) संसाधन आधार में परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) इस क्षेत्र के श्रम बहुल देशों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) दक्षिण पूर्व एशिया के प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न देशों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) इस क्षेत्र के किस देश ने बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किया है ?

.....

.....

.....

.....

.....

23.4 सत्तर दशक के मध्य के बाद के बृहद् आर्थिक नीतियों के मुद्दे

23.4.1 व्यापार और औद्योगिक नीतियाँ

मुक्त और बाजारोन्मुखता सत्तर के दशक के मध्य की आर्थिक नीति की प्रमुख विशेषता रही है। इसी कारण से समान बाहरी वातावरण में इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाएं अन्य प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में अधिक सफल रही हैं। इन देशों का व्यापारिक माहौल अपेक्षाकृत अधिक निरपेक्ष रहा है। इस कारण यहाँ उत्पादक उद्योगों का विकास हुआ है, इन्होंने निर्यात द्वारा मुनाफा कमाया है। उन्होंने घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिए मालों का आयात किया है, उनकी प्रतियोगिता में घरेलू उद्योग कम खड़े किए हैं। लागत मूल्यों में ज्यादा तोड़ मरोड़ न किए जाने के कारण औद्यौगिक ढाँचे का विकास होता रहा और इन देशों को इससे तुलनात्मक रूप से लगातार फायदा हुआ। इस प्रकार उद्योगों का तेजी से विकास हुआ और इसमें श्रम और घरेलू कच्चे मालों का समुचित उपयोग हुआ। इस प्रकार की नीति के कारण तेजी से संरचनात्मक परिवर्तन हुए और रोजगार तथा आय में तेजी से वृद्धि हुई।

वियतनाम और लाओस जैसे केन्द्रीयकृत योजनाबद्ध अर्थव्यवस्थाओं वाले देश की स्थिति इससे भिन्न थी। इन देशों में अंतर्मुखी नीतियाँ अपनाई गईं। राज्य स्वामित्व उद्यम में ज्यादा निवेश होने के कारण औद्योगिक विकास की गति धीमी रही। विदेशी मुद्रा की कमी, खराब अंतः संरचना और कड़े कायदे कानून और लाइसेंसिंग नीति के कारण इसमें बाधा आई और उत्पादन कम रहा।

दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों की औद्योगिक नीतियों और व्यापार नीतियों में सामंजस्य स्थापित किया गया और एक अधिक प्रतियोगतामूलक और कम प्रतिबंधित नीति का पालन किया गया। 1980 के मध्य में वस्तुओं की कीमतें गिरने और फिलिपिन्स में आए राजनैतिक संकट के कारण भुगतान संकट उत्पन्न हुआ और श्रम का बोझ बढ़ा। इन कारणों से अंतर्मुखी व्यापार नीति पर कायम रहना कठिन हो गया। इसके अलावा मुक्त अर्थव्यवस्था की सफलता ने एक आकर्षक विकल्प सामनें रख दिया। परिणामस्वरूप हिंदेशिया, फिलिपिन्स और थाईलैंड में बहिर्मुखी व्यापार नीति अपनाने पर जोर दिया जाने लगा।

थाईलैंड ने धीरे-धीरे व्यापार प्रतिबंध हटाने शुरू कर दिये और 1970 के दशक के मध्य से लगातार निर्यात विकास नीतियों पर जोर देना शुरू कर दिया। इसी प्रकार हिंदेशिया ने भी अपने तेल और गैस के अलावा उद्योग को बढ़ाना शुरू किया। मुख्य रूप से प्राथमिक उत्पादक उद्योगों और हल्के उत्पादन उद्योग पर जोर दिया गया। फिलिपिन्स में निर्यात उद्योग को बढ़ाने का प्रयत्न राजनैतिक समस्याओं के कारण प्रभावित हुआ हालांकि 1980 के दशक के आरम्भ में व्यापार शुल्क में काफी कमी हुई। दुर्भाग्यवश शुल्क उदारीकरण के क्रम में गैरशुक्ल बाधाएँ काफी बढ़ गईं और हाल के वर्षों में उन्हें वापस ले लिया गया। दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन में मलेशिया ही एक ऐसा देश है जहाँ आयात विकल्प को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति बढ़ी है। बढ़ती हुई मजबूरी को ध्यान में रखते हुए मलेशिया में भारी औद्योगिक आधार विकसित करने का प्रयास किया गया। ऐसा ही प्रयास 1970 के दशक में कोरिया ने किया था। बढ़ते संरक्षण के कारण कुछ नव विकसित उद्योगों (जैसे गाड़ी निर्माण और उसने सम्बद्ध तेल) की स्थापना हुई। इसके बावजूद दक्षिण पूर्व एशिया राष्ट्र संगठन के देशों में मलेशिया मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित करने वाला एक प्रमुख देश है। इस प्रकार 1980 के दशक तक इस क्षेत्र की अधिकांश अर्थव्यवस्थाएं निर्यात विकास में सक्रिय हो गई।

हाल के वर्षों में और अधिक कुशल औद्योगिक ढाँचे को प्रोत्साहित करने के लिए मलेशिया में स्थानीय नियमों को उदार बनाया गया है और आयात एकाधिकार को कम करने की कोशिश की गई है। इसके साथ-साथ जहाज-रानी उद्योग जैसे उद्योगों में निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित किया गया है। पहले इस पर राज्य का अधिकार था। मलेशिया में औद्योगिक उत्पादकता और कार्यकुशलता बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कई राज्य स्वामित्व वाले उद्योगों का निजीकरण किया गया है। राज्य एकाधिकार की पूर्व नीति को बदल दिया गया है। यहाँ नई आर्थिक नीति के तहत स्वामित्व के पुनर्वितरण पर दिए जा रहे बल को भी उदार बना दिया गया और घरेलू और विदेशी निवेश को प्रोत्साहन दिया गया। निवेश बढ़ाने के लिए थाईलैंड में पूंजीगत मालों और औजारों के निर्यात पर लगे प्रतिबंध को कम कर दिया गया। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रोत्साहित किया गया। घरेल और विदेशी निवेश में तीव्र वृद्धि होने से

औद्योगिक क्षेत्र में तेजी से संरचनात्मक बदलाव आया और विभिन्न प्रकार के उद्योग विकसित हुए। इसी प्रकार फिलिपिन्स में श्रम आधारित उत्पादन आधार को मजबूत किया गया और स्थानीय वस्तुओं और निपुणताओं के उपयोग पर बल दिया गया। दूसरे चरण में भारी और तकनीकी रूप से परिष्कृत उद्योगों को भी बढ़ावा देने की योजना है ताकि इन बेड़ों में आयात का विकल्प तैयार किया जा सके।

कई प्रकार के नीति संबंधों सुधारों के बावजूद आयात नियंत्रण, उच्च और जटिल शुल्क संरचना और घरेलू मूलभूत वस्तुओं पर मूल्य नियंत्रण के कारण अनुपातिक मूल्यों पर प्रभाव पड़ा है और आर्थिक विकास में बाधाएँ आती रही हैं। उत्पादक क्षेत्र में तीव्र संरचनात्मक बदलावों के बावजूद थाईलैंड अपनी कुछ औद्योगिक नीतियों से पूरी तरह समझौता नहीं कर सका है। व्यापार और औद्योगिक नीति का उदारीकरण एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है क्योंकि असंयमित संरक्षण से निवेश पद्धति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। थाईलैंड के औद्योगिक ढाँचे में परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही है और यहाँ निर्यातोन्मुख तेलों और उपभोक्ता माल उद्योगों को समर्थन देने के लिए बिचौलिए और भारी उद्योगों का विस्तार किया जा रहा है। थाईलैंड, फिलिपिन्स और कुछ सीमा तक हिंदेशिया में अधिसंरचनात्मक कठिनाइयाँ बनी हुई हैं और इससे औद्योगिक क्षेत्र के विकास में बाधा आ रही है और लागत मूल्य अधिक हो रहा है। उदाहरण के लिए, फिलिपिन्स में बिजली की भारी कमी और यातायात संकट अभी भी विद्यमान है। इससे साफ पता चलता है कि अभी माँग के अनुपात में अधिसंरचनात्मक आधार निर्मित नहीं हो पाया है।

1988 में वियतमान में आर्थिक सुधार का कार्यक्रम बनाया गया और यहाँ की योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था को नियंत्रण मुक्त और उदार बनाने की योजना बनाई गई। घरेलू खेती टीका व्यवस्था के कार्यान्वयन में फैलाव लाया गया और किसानों को स्वायत्ता प्रदान की गई। इस प्रोत्साहन से कृषि उत्पादन में तेजी से विकास हुआ और वियतनाम में, खासकर 1989 में, मुद्रा स्फीति की दर में कमी आई। उत्पादकता बढ़ाने के लिए और कृषि क्षेत्रों को भी नियंत्रण मुक्त किया गया और आर्थिक क्रियाकलापों में निजी क्षेत्र की भूमिका को प्रोत्साहित किया गया। उन्हें वित्तीय रूप से मज़बूत बनाने और उनकी कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए राज्य के आर्थिक उद्यमों में लागत/मुनाफा लेखा व्यवस्था की नीति अपनाई गई। आमतौर पर सभी क्षेत्रों में बाजार मूल्य स्थापित किया गया और सरकारी सहायता समाप्त की गई। निर्यात के लिए किए जाने वाले उत्पादन को सर्वोच्चता प्रदान की गई। अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी विनिमय दर अपनाने से निर्यात में वृद्धि हुई और निर्यात प्रगति क्षेत्रों के निर्माण से भी इसे बल मिला। वियतनाम में, हालाँकि कई प्रकार के सुधार लाए गए पर वहाँ की नीति का मूल उद्देश्य कृषि उत्पादकता में वृद्धि, भौगोलिक विकेंद्रीकरण का प्रबंध और राज्य प्राधिकरणों की कार्यपद्धति में सुधार रहा है।

लाओस या लाओ जन प्रजातांत्रिक गणराज्य में विदेश व्यापार को उदार बना दिया गया है और राज्य अभिकरणों को काफी स्वायत्ता प्रदान की गई है। वियतनाम और लाओस दोनों देशों में निजीकरण को बढ़ावा देने और राज्य अभिकरणों को ज्यादा स्वायत्ता प्रदान करने के कारण अधिसंरचनात्मक कठिनाइयाँ भी दूर हुई हैं और कच्चे माल का समुचित उपयोग भी हुआ है।

लाओस एशिया की तीव्रता से बढ़ती एक अर्थव्यवस्था का पड़ोसी है। इसके पड़ोस में वियतनाम में भी तेजी से विकस होने की भरपूर संभावनाएं हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि लाओस के कच्चे माल को एक बढ़ा बाजार मिलेगा। यह वियतनाम और थाईलैंड को अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रवेश द्वार के रूप में प्रयुक्त कर सकता है। थाईलैंड और वियतनाम दोनों लाओस को संधि स्थल के रूप में देखते हैं। उनके लिए लाओस से मित्रतापूर्ण व्यवहार रखना भी होगा।

1975 में लाओस और वियतनाम के बीच मित्रतापूर्ण संबंध हैं। आरंभिक सीमावर्ती झगड़ों के बावजूद अब थाईलैंड और लाओस के संबंध में सुधार आ रहा है।

थाईलैंड और वियतनाम में धातुओं की माँग बढ़ती जा रही है और लाओस में लीड, जिंक, तांबा, बॉक्साइट, पोटाश, जिप्सम और कोयला संसाधनों के विकास की पूरी संभावनाएँ है। वियतनाम के होने वाले जिप्सम निर्यात में वृद्धि होनी चाहिए और भविष्य में थाईलैंड बड़ा आयातक बन सकता है। हालांकि वर्षों तक थाईलैंड ने जिप्सम का निर्यात किया है पर घरेलू माँग को देखते हुए इसके निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। थाईलैंड को पोटाश, उर्वरक और कोयले की भी जरूरत पड़ती है।

थाईलैंड को निर्यात की जाने वाली बिजली से लाओस को आधी विदेशी आय प्राप्त होती है। थाईलैंड विश्व दर की आधी कीमत पर बिजली खरीदता है। प्रधानमंत्री केसोने फोमिहाने 1990 में

चीन का दौरा कर गठबंधन मजबूत किया और लकड़ी उद्योग, कृषि और खनिज खनन के क्षेत्र में पाँच वर्षीय आर्थिक समझौता किया गया। चीन भी लाओस के खनिज के लिए एक बाजार बन सकता है।

23.4.2 वित्तीय और पूँजी बाजार संबंधी सुधार

दक्षिण पूर्व एशिया में वित्तीय नीति में सुधारों के तहत 1989 में उदारीकरण और अनियंत्रण पर बल दिया गया। हिंदेशिया ने वित्तीय उदारीकरण की दिशा में काफी प्रगति की है और इसके प्रथम चरण में 1983 में बैंकों पर से नियंत्रण हटा लिया गया। वहाँ 1990 में एक सुव्यवस्थित माहौल को मजबूत बनाने की जरूरत महसूस की गई। पिछले कुछ वर्षों में 40 से भी ज्यादा नये निजी और संयुक्त उद्यम के बैंक और 1,000 बैंक शाखाएँ खोली गईं। इस प्रकार के तीव्र विकास से बैंकिग क्षेत्र में प्रतियोगिता बढ़ी पर इसके साथ-साथ अनुभवी बैंकिग पेशेवर कर्मिकों और अपेक्षित व्यवस्थित माहौल के अभाव में किसी बड़े वित्तीय घोटाले की संभावना बढ़ गई। परिणामस्वरूप 1990 के सुधारों में वित्तीय नियमों को मजबूत बनाने पर सबसे ज्यादा जोर दिया गया।

थाईलैंड में घरेलू वित्तीय क्षेत्र में शामिल लाइसेंस्ड बैंक को कड़ाई के साथ नियंत्रित किया गया। हालांकि, अर्थव्यवस्था के तीव्र फैलाव और प्रतियोगिता की भावना के कारण नए बैंकों के आगमन के संदर्भ में अधिक खुली नीति अपनाई गई। इसके अलावा बचत को बढ़ावा देने के लिए लंबी अवधि की जमा राशियों पर लगाया जाने वाला कर समाप्त कर दिया गया। इन प्रयासों का उद्देश्य वित्तीय क्षेत्र में प्रतियोगिता बढ़ाना, औजारों के क्षेत्र में आविष्कार और अनेकरूपता को बढ़ाना और कुल मिलाकर वित्तीय प्रबंधन की व्यवस्था को आगे बढ़ाना था। बैंकिग और वित्तीय संस्थाओं को मजबूत बनाने और साथ ही साथ वर्तमान नियमों को ठीक करने के लिए मलेशिया ने एक नया बहुपक्षीय कानून पारित किया। यहाँ सरकार को जमा पूँजी और कारपोरेट बांड बाजार के लिए पूँजी बाजार विस्तृत और गहरा करने के लिए भी सुधार लागू किए गए। फिलिपिन्स में छोटी और कमज़ोर बैंकिंग संस्थाओं को बड़ी इकाईयों में मिला दिया गया, कुछ बैंकों में विदेशी हिस्सेदारी को भी प्रमुखता दी गई। बैंकिंग और वित्तीय सुधारों के क्षेत्र में, 1989 में, लाओस और वियतनाम दोनों देशों में महत्वपूर्ण विकास हुए। उदाहरण स्वरूप लाओस में बाजार निर्धारित ब्याज की दरों को अनुमति दी गई।

23.4.3 सार्वजनिक क्षेत्र सुधार

दक्षिण पूर्व एशिया के अधिकांश देशों ने पूर्ण या आंशिक रूप में कुछ चुने हुए सार्वजनिक उद्यमों का निजीकरण करने का प्रयास किया। जबकि मलेशिया ने राज्य स्वामित्व वाले उद्यमों के निजीकरण के क्षेत्र में कुछ प्रगति की है, थाईलैंड में सार्वजनिक उद्यमों में निजी निवेश को बढ़ावा दिया गया है ताकि इन उद्यमों का सरकारी बजट पर से भार कम हो जाए और वह बड़े अधिसंरचनात्मक परियोजनाओं में धन लगा सके। मजदूर आंदोलनों के सख्त विरोध के बावजूद बंदरगाहों, यातायात बेड़ों आदि का भार निजी क्षेत्र प्रबंधन को सौंप दिया गया। फिलिपिन्स में अभी तक निजीकरण व्यापक पैमाने पर गति नहीं पकड़ सका है। दक्षिण पूर्व एशिया में केन्द्रीकृत योजना वाले देशों में सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार करते समय राज्य स्वामित्व वाले उद्यमों के वित्तीय उत्तरदायित्व को बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। निजीकरण की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि उत्पादन इकाइयाँ बदली बाजार परिस्थितियों का किस प्रकार मुकाबला करती हैं और किस हद तक कच्चे माल की उपलब्धता और अधिसंरचना संबंधी कठिनाइयों को दूर कर सकती है।

23.4.4 बचत और निवेश

आमतौर पर यह माना जाता है कि विकासशील एशिया अधिक बचत और निवेश दरों की सहायता से ही आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक विकास कर सकता है। हालांकि 1980 के बाद अधिकांश क्षेत्रों में सकल घरेलू उत्पादन की तुलना में बचत और निवेश का अनुपात घटा है, पर दक्षिण पूर्व एशिया में यह अनुपात बढ़ा है। पिछले दो दशकों में इस क्षेत्र में निवेश की दर काफी ऊंची रही है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के कारण निवेश दर में वृद्धि हुई है। सिंगापुर, हिंदेशिया में निवेश दर बढ़ा और मलेशिया, फिलिपिन्स तथा थाईलैंड में घरेलू निवेश बढ़ा और अधिसंरचना में सार्वजनिक क्षेत्र निवेश भी तेजी से बढ़ा।

तीव्र विकास के लिए ऊंची निवेश दर आवश्यक तो है पर इससे सारी समस्याएँ हल नहीं हो जाती। इसके लिए इस निवेशित पूँजी का सदुपयोग होना भी आवश्यक है। पूँजी अनुपात में वृद्धि उपयोगी होती है पर इसके साथ-साथ निवेश कुशलता की भी जरूरत होती है। 1978-87 के बीच दक्षिण पूर्व एशिया के विकासशील देशों का पूँजी निवेश अनुपात 3 से 5 के बीच में रहा। सिंगापुर, मलेशिया और फिलिपिन्स का पूँजी निवेश अनुपात 5 के ऊपर था। यह इसके औद्योगीकरण के विकास को दर्शाता है। सिंगापुर और मलेशिया का ऊंचा पूँजी निवेश अनुपात मुख्य रूप से अधिसंरचना में सार्वजनिक निवेश की वृद्धि और 1980 के दशक के दौरान उनके बड़े औद्योगिक क्षेत्र में होनेवाले संरचनात्मक परिवर्तन का परिणाम था, जबकि 1980 के दशक में फिलिपिन्स में आमतौर पर पूँजी का सदुपयोग नहीं हो सका।

अधिकांश विकासशील देशों में बचत दर बढ़ी है। 1988 से ही विदेशी बचत पर निर्भरता बढ़ी है और इससे उनके चालू खाते का वित्तीय घाटा काफी बढ़ा है। सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में मलेशिया, फिलिपिन्स और थाईलैंड में यह घाटा तेजी से बढ़ा है। चालू खाते के घाटे के बावजूद मलेशिया और हिंदेशिया में घरेलू बचत में वृद्धि हुई है। दोनों मामलों में, विदेशी ऋण अदा करने या विदेशी अंशदान के मुनाफे की अदायगी के रूप में काफी धन बाहर चला जाता है। इस प्रकार दोनों देशों में राष्ट्रीय बचत की तुलना में घरेलू बचत काफी अधिक है। लाओस में 1988 के बाद संसाधन अंतराल, कुछ कम हुआ है। 1990 में यह अनुपात सकल घरेलू उत्पादन का 20 प्रतिशत था। हालांकि अभी तक पर्याप्त रियायती ऋण और विदेशी सहायता उपलब्ध है।

23.4.5 मुद्रास्फीति

दक्षिण पूर्व एशिया के अलग-अलग देशों में मुद्रास्फीति की दर अलग-अलग रही और इनके कारण भी अलग-अलग रहे। लाओस में 1988 में 33 प्रतिशत और 1989 में 60 प्रतिशत तक मुद्रास्फीति हो गई। 1988 में मुद्रा के अवमूल्यन, मूल्यों के अनियंत्रण, बहुत सी वस्तुओं पर सरकारी सहायता की समाप्ति, थोक विक्रय मूल्य का अनियमन और राज्य आर्थिक उद्यम द्वारा अपने उत्पादन के मूल्य निर्धारण के कारण मुद्रास्फीति हुई।

वियतनाम में भी 1980 के दशक के दौरान मूल्य अनियंत्रण, लगातार मुद्रा अवमूल्यन और घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण मुद्रास्फीति की दर काफी ऊंची रही। 1988 में मुद्रास्फीति 49.2 प्रतिशत थी पर 1989 में यह तेजी से काफी घटी और 40 प्रतिशत रह गई। कड़ी मौलिक और वित्तीय नीतियों और अपेक्षाकृत विनिमय दर के स्थायित्व के कारण मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने में सफलता मिली। धान की अच्छी फसल से भी इसमें सहायता मिली।

दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य चार देशों (हिंदेशिया, मलेशिया, फिलिपिन्स और थाईलैंड) में स्फीति दर संयमित रही। 1987 में स्फीति दर 5.2 प्रतिशत थी जो क्रमशः 1988 और 1989 में बढ़कर 6.1 और 6.6 प्रतिशत हो गई। तीव्र आर्थिक विकास से उत्पन्न अधिक घरेलू माँग हाल के स्फीति दबाव का कारण रही है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश की अपनी अलग-अलग समस्याओं के कारण भी मूल्य में वृद्धि हुई। थाईलैंड में स्फीति दर 5.8 प्रतिशत थी जो 1989 के बाद तेजी से बढ़ी। चार वर्षों की नियंत्रित स्फीति के बाद यह तेजी से बढ़ी। इसका मुख्य कारण घरेलू माँग में वृद्धि ऊंची मजदूरी और अधिसंरचनात्मक कठिनाइयों और श्रम आपूर्ति दबाव के कारण लागत दर में वृद्धि थी।

23.4.6 एशिया–प्रशांत विकास के परिप्रेक्ष्य में व्यापार और विदेशी निवेश

दक्षिण पूर्व एशिया की अर्थव्यवस्थाओं के विकास के पीछे निर्यातोन्मुखता की प्रमुख भूमिका रही है। 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में एक नई संबद्ध प्रवृत्ति का उदय हुआ है। घरेलू माँग में वृद्धि होने से आयात में तेजी से वृद्धि हुई। कुछ अर्थव्यवस्थाओं में यह आर्थिक विकास का प्रमुख स्रोत रहा।

दक्षिण पूर्व एशिया में 1988 में आयात 26.5 प्रतिशत से बढ़कर 33 प्रतिशत हो गया और निर्यात 19.4 प्रतिशत से बढ़कर मात्र 21 प्रतिशत हुआ। निर्यात में कम प्रतियोगिता का सामना करने और दक्षिण पूर्व एशिया में निर्यातोन्मुख विदेशी निवेश के आगमन से विनिर्मित निर्यात के लिए व्यापक आधार प्राप्त हुआ। खासकर मलेशिया और थाइलैंड के साथ ऐसा ही हुआ जहाँ 1988 में निर्यात में 20 प्रतिशत की और आयात में 35 प्रतिशत से ऊपर की वृद्धि हुई।

विदेशी ऋण बहुत कम बढ़ा। दक्षिण पूर्वी एशिया में हिंदेशिया और फिलिपिन्स पर सबसे ज्यादा ऋण है। इन्होंने भी अपने निर्यात को बढ़ाया और ऋण भार को कम करने का प्रयास किया।

एशिया प्रशांत क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में व्यापार पद्धति में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। ये बदलाव 1985 के प्लाजा समझौते से पैदा हुआ है। मुद्रा की पुनर्व्यवस्था की गई, तुलनात्मक लाभ की दिशा में इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था की पुनर्संरचना की गई और 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में अन्तः एशिया व्यापार और निवेश का व्यापक पैमाने पर विस्तार किया गया।

एशिया की पन्द्रह प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के कुल व्यापार (आयात और निर्यात) में 1988 में 31 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। इस वर्ष 234 बीलियन डॉलर का व्यापार हुआ। इसमें से आधा हिस्सा जापान के साथ होने वाले व्यापार का था। 1987 में 30 प्रतिशत के आसपास वृद्धि हुई। 1988 में एशिया में उत्तरी अमरीका को 193 बीलियन डॉलर का निर्यात किया है। इससे पता चलता है कि एशिया का आर्थिक विकास आत्मनिर्भर होने लगा है और अमरीका का आर्थिक प्रभाव कम हुआ है।

अनेक देशों द्वारा जापान को किए गए निर्यात से जापान की प्रमुख भूमिका का पता चलता है। जिन अर्थव्यवस्थाओं का तेजी से विकास हुआ। उनमें थाईलैंड (53 प्रतिशत) सिंगापुर और मलेशिया (30 प्रतिशत से भी अधिक) शामिल हैं। थाईलैंड में जापान से आयात भी बढ़ा। तब औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच व्यापार भी तेजी से फैला। औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं से हिंदेशिया, मलेशिया, फिलिपिन्स और थाईलैंड को होने वाले निर्यात में 50 प्रतिशत की और आयात में 29 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कोरिया और ताईवान से थाईलैंड के निर्यात में क्रमशः 97 प्रतिशत और 78 प्रतिशत वृद्धि हुई।

दक्षिण पूर्व एशिया राष्ट्र संगठन के बीच का आपसी व्यापार (बुनेई को छोड़कर) 1989 में 36 प्रतिशत बढ़कर 19 बिलियन डॉलर हो गया। पहले की भांति इसमें भी सिंगापुर का हिस्सा सबसे अधिक था। सिंगापुर को छोड़कर एसिअन के अन्य चार देशों में यह वृद्धि केवल 12 प्रतिशत से बढ़कर 2.3 बिलियन डॉलर ही रही। मलेशिया के साथ सिंगापुर के आपसी व्यापार का अन्तः एसिअन व्यापार में वर्चस्व बना रहा। इनका अंशदान कुल व्यापार का लगभग आधा था। सिंगापुर और मलेशिया का आपसी व्यापार 1988 में 28 प्रतिशत से बढ़कर 9.4 बिलियन डॉलर हो गया। 1988 में सिंगापुर से हिंदेशिया और थाईलैंड को होनेवाले निर्यात में क्रमशः 26.3 प्रतिशत और 76 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

पिछले कुछ वर्षों से अन्तः एसिअन व्यापार के तीव्र विकास के साथ अन्तः एशियाई प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का आयाम भी जुड़ गया है। जापान और नव-औद्योगिक राष्ट्रों से दक्षिण पूर्व एशिया में आने वाले निवेशों से अगले दशक में क्षेत्रीय उत्पादन की संरचना की पुनर्रचना होने की संभावना है और 1990 के दशक में एशिया के आर्थिक विकास को इससे काफी बल मिलेगा। इस प्रकार के निवेश से एशियाई अर्थव्यवस्थाओं की आपसी निर्भरता बढ़ेगी और विश्व अर्थव्यवस्था में इसका एक पूर्ण व्यक्तित्व उभर कर आ सकेगा।

परम्परागत रूप से एशियाई कम्पनियाँ मुख्य रूप से औद्योगिक देशों में रुचि रखती रही हैं और उन्होंने सम्पदा निर्माण, वित्तीय सम्पदा और बाजार पर कब्जा जमाने के लिए वितरण प्रणाली पर ही ध्यान केन्द्रित किया है। इस प्रकार के निवेश भी बड़ी मात्रा में आ रहे हैं पर अब विकासशील एशियाई अर्थव्यवस्थाएँ तुलनात्मक मुनाफे के आधार पर क्षेत्र के अंदर ही निवेश करने में रुचि ले रही हैं। इस प्रकार के निवेश परम्परागत रूप से हो रहे निवेश से कई मायनों में अलग हैं। सबसे पहला अंतर यह है कि इसमें उत्पादन पर अधिक बल दिया जा रहा है। दूसरा अंतर यह है कि यह निवेश विकासशील देशों में हो रहा है और दक्षिण पूर्व एशिया की वस्तु आधारित अर्थव्यवस्थाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। अन्ततः निवेशकर्ताओं के आकार में भी अंतर है। अब विकसित हो रहे छोटे और मध्यम आकार के उद्यम भी निवेश कर रहे हैं।

इस क्षेत्र में निवेश की प्रकृति में परिवर्तन कुछ हद तक एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में बदलते लागत ढाँचे का प्रतिफलन है। विनिमय दर का पुनर्निर्धारण किया गया है और कुछ देशों में मजदूरी और अन्य लागत तेजी से बढ़ी है। ये जापान और नव-औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में मूल्य आधारित और अधिक तकनीकी उन्मुख गतिविधियों की तरफ कुछ उद्योगों के विकास को भी द्योतित करता है।

1988 में जापान द्वारा किया गया प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 41 प्रतिशत बढ़ा। जापान सबसे ज्यादा एशिया में निवेश करता है। 1988 में यह 40 प्रतिशत था। अब एशिया का स्थान दूसरा है और इसे अब 17 प्रतिशत निवेश ही प्राप्त होता है। लेकिन अमरीका को 17 प्रतिशत और यूरोप को 16 प्रतिशत प्राप्त होता है। अगर आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को भी मिला जाए तो जापान के कुल निवेश में एशिया प्रशांत क्षेत्र का अंशदान 22 प्रतिशत हो जाता है।

एशिया में (चीन को छोड़कर क्योंकि 1987 में तेल खनन के लिए एक बड़ा निवेश) जापान का निवेश 1977 और 1978 में क्रमशः 73 प्रतिशत और 45 प्रतिशत बढ़ा। 1988 में फिलिपिन्स, मलेशिया, थाईलैंड, हौंगकौंग और सिंगापुर में ज्यादा निवेश हुआ। 1988 में विकास की निम्न दर के बावजूद हिंदेशिया में परम्परागत रूप से जापान ने निवेश किया और अगर कुल मिलाकर देखा जाए तो यह सबसे ज्यादा निवेश प्राप्त करने वाला एशियाई देश है।

हालांकि अन्तः एशियाई निवेश में जापान प्रमुख निर्णायक शक्ति रहा है पर 1988 में नव औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं का दक्षिण पूर्व एशिया के चार देशों में निवेश जापान से कुछ ही कम रहा है। इसी के साथ-साथ जबकि 1988 में इन चार देशों में जापानी निवेश 12.5 प्रतिशत बढ़ा, जब कि औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं की प्रतिबद्धता 34 प्रतिशत उछली। 1988 में इन चार देशों में हुए विदेशी निवेश में एशियाई निवेशकर्ताओं का अंशदान 64 प्रतिशत था। यह कुल मिलाकर 7.6 मिलियन डॉलर से ज्यादा की प्रतिबद्धता का प्रतिनिधित्व करता है जो 1987 में निवेशित 2.5 बिलियन डॉलर से तिगुना है।

जब औद्योगिक राष्ट्रों में निवेश करने की दृष्टि से हौंगकौंग सर्वथा महत्वपूर्ण है। 1970 के दशक में कम लागत की खोज में और विदेशी बाजारों के प्रतिबंधों से बचने के लिए कपड़ा उद्योग के क्षेत्र में नई जगहों पर निवेश किया गया।

हौंगकौंग, हिंदेशिया में निवेश करने वाला दूसरा प्रमुख देश है और फिलिपिन्स और थाईलैंड के पांच निवेशकर्ता देशों में से एक है। 1988 में हौंगकौंग के उत्पादनों ने चार दक्षिण पूर्व एशियाई देशों को 755 मिलियन डॉलर का वचन दिया जो 1987 की तुलना में 17.7 अधिक था। हालांकि यह भी याद रखना चाहिए कि इनमें से कुछ निवेश तीसरे देशों (जिसमें चीन भी शामिल है) से भी आया जो क्षेत्रीय निवेश के लिए हौंगकौंग को माध्यम बनाते थे।

अपने बड़े चालू खाता अधिशेष और मुद्रा की अधिकता के दबाव, अधिक मजदूरी मुनाफा और उच्च लागतों के कारण ताईवान इस क्षेत्र में विदेशी निवेश के एक प्रमुख स्रोत के रूप में उभरा। दक्षिण पूर्व एशिया के इन चार देशों में इसका औद्योगिक निवेश 1988 में 2 बिलियन डॉलर था जो 1987 की तुलना में 46.9 प्रतिशत ज्यादा था।

सरकारी नीतियों के कारण सिंगापुर और कोरिया का निवेश क्षेत्र में देर से प्रवेश हुआ। हालांकि घरेलू उद्योग को आगे बढ़ाने के लिए बढ़ते दबाव और अपनी अर्थव्यवस्था को विदेश में विस्तार देने की आवश्यकता को महसूस करते हुए सिंगापुर और कोरिया ने निवेश करना आरंभ कर दिया है पर अभी इसका अंशदान काफी कम है। पर यह तेजी से बढ़ रहा है। 1988 में सिंगापुर का उत्पादक निवेश इन चार देशों में 35.5 प्रतिशत उछला जबकि कोरिया का दस गुना बढ़कर 329 मिलियन डॉलर हो गया।

अतः एशियाई निवेश से प्राप्तकर्ता देशों का तेजी से औद्योगीकरण होने की संभावना है। इसका कारण यह है कि इन देशों को निवेश पूँजी प्रदान करने के अलावा निवेश हलके उद्योगों में किया जा रहा है जिसके कारण अपेक्षाकृत कम समय विकास दृष्टिगोचर होगा और इनमें से अधिकांश निर्यातोन्मुख उद्योग हैं। इन उद्योगों की मूल कम्पनियों की पकड़ विदेशी बाज़ार पर है। इन निवेशों से प्राप्तकर्ता देशों का निर्यात मजबूत होगा जो हिंदेशिया और फिलिपन्स जैसे ऋण के बोझ से दबे देशों के लिए काफी लाभदायक होगा। इसके अलावा ये निवेश श्रम मूलक और अपेक्षाकृत निम्न तकनीकी स्वरूप के हैं। इनसे रोजगार भी बढ़ेगा और इससे प्राप्तकर्ता देशों के लिए संभलना भी मुश्किल नहीं होगा। इसके अलावा इस निवेश से जापान, नव-औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं और दक्षिण पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के बीच आर्थिक संबंध स्थापित होगा, ऊर्ध्व और क्षैतिज औद्योगिक एकीकरण होगा और दोनों क्षेत्रों में मूल्य आधारित आर्थिक संरचनाओं के विकास में सहायता मिलेगी।

लाओस भी अब जनता के धन का उपयोग करने के बदले विदेशी निवेश को आमंत्रित करने की कोशिश कर रहा है। 1988 के विदेशी निवेश संबंधी कानून के द्वारा विदेशी निवेश को प्रोत्साहन दिया गया है। सरकारी स्रोतों के अनुसार लगभग 200 मिलियन अमेरिकी डॉलर के 100 विदेशी निवेश करारों पर हस्ताक्षर किए गए हैं। इनमें से अधिकांश थाई कम्पनियाँ हैं।

23.4.7 व्यापार और निवेश की वृद्धि के कारक

अन्तः एशियाई व्यापार और निवेश के हाल के वर्षों में हुई नाटकीय वृद्धि के अनेक कारण हैं जो 1990 के दशक के आरंभ तक जारी रहे हैं। इन्हीं कुछ महत्वपूर्ण कारकों की चर्चा यहाँ की गई है।

1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में अंतः एशिया व्यापार में हुई नाटकीय वृद्धि के पीछे विनिमय दर का मुख्य हाथ रहा है। 1985 के प्लाजा समझौते के बाद जापान और बाद में नव-औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं (हौंगकौंग को छोड़कर) की मुद्राएँ डॉलर के मुकाबले मजबूत हुई जबकि दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की गति उल्टी रही। जापान, कोरिया और ताईवान में 1985 के मुकाबले 1989 में वास्तविक प्रभावी विनिमय दर सूचकांक काफी ऊंचा रहा। इससे यह पता चलता है कि उनकी मुद्राएँ वास्तविक अर्थों में मजबूत हुई। दूसरी तरफ, दक्षिण पूर्व एशिया की अधिकांश मुद्राएँ कमजोर हुई, उनका वास्तविक प्रभावी विनिमय दर सूचकांक 1985 की तुलना में 1989 में काफी नीचे रहा। विनिमय दरों के परिवर्तन से दक्षिण पूर्व एशिया से जापान और नव-औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं को होने वाले निर्यातों में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई। आगे इनसे जुड़े मुद्दों की चर्चा की जा रही है।

इस काल में श्रमोन्मुख उत्पादक गतिविधियों को एशिया के अधिक विकसित अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं में स्थानान्तरित करने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। हालांकि 1980 के दशक के आरंभ से ही उत्पादक इकाइयों को नई जगहों पर स्थापित करने का काम शुरू हो गया था पर 1986 के बाद जब इस प्रक्रिया को विनिमय पुनर्निर्धारण से एक प्रकार का बल मिला तो इसमें तेजी आई। 1986-87 में जापानी येन के मूल्य में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई, कोरियाई योन और नया ताईवान डॉलर (1987-88) मजबूत हुआ, जमीन और श्रम की कीमत बढ़ी। इससे जापान कोरिया और ताईवान के कई परम्परागत निर्यातों की प्रतियोगिता काफी हद तक घट गई। अतः इस प्रकार की वस्तुओं के निर्माता लागत मूल्य में कमी करने का रास्ता ढूंढने लगे और कम महँगी जगहों की खोज करने लगे। दक्षिण पूर्व एशिया ने उन्हें स्वाभाविक रूप से आकर्षित किया। विकसित अधिसंरचना मौजूद थी, श्रम और अन्य साधन सस्ते थे।

इन अर्थव्यवस्थाओं में मजबूत घरेलू पूँजीगत माल उद्योगों का अभाव था। अतः जापान और उसके बाद नव-औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं से आई निवेश की बौछार से दक्षिण पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में पूँजीगत मालों का तेजी से आयात किया गया। नये संयंत्रों की स्थापना की गई और इस कारण इनके कलपुर्जों और अन्य सम्बद्ध वस्तुओं के आयात की भी आवश्यकता हुई। दक्षिण पूर्व एशिया की अर्थव्यवस्थाओं में जैसे-जैसे घरेलू उद्योगों का विकास होगा वैसे-वैसे पूँजी और संबद्ध वस्तुओं की पूर्ति स्थानीय स्रोतों से हो जाएगी पर निकट भविष्य में विदेशी निवेश तेजी से वढ़ने की उम्मीद है।

इसके साथ-साथ जापान और नव-औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं को दक्षिण पूर्व एशिया से किए गये निर्यातों से भी वृद्धि हुई है। आरंभ में जापान, कोरिया और ताइपेई और चीन की कम्पनियाँ छोटे पैमाने पर ही बाहर उत्पादक इकाइयाँ लगाने के पक्ष में थी। हर हाल में, बढ़ते लागत मूल्य और विनिमय दर पुनर्निर्धारण के कारण पूरा उद्योग गैर-लाभकारी हो गया। अतः कम लागत के उपभोक्ता उद्योगों जैसे जूता, चप्पल, प्लास्टिक वस्तुएँ, खिलौने और कुछ आधारभूत उपभोक्ता इलेक्ट्रानिक उत्पादों पर जोर देने की प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है। इससे दक्षिण पूर्व एशिया से जापान और नव औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं की तरफ उल्टा व्यापार प्रवाह शुरू हो गया। 1980 के दशक के दौरान एशिया के देशों में आर्थिक अनियंत्रण और उदारीकरण के काफी प्रयत्न किए गए। कुछ इन कारणों से और कुछ अन्य कारणों से चीन, भारत, कोरिया, ताईवान और दक्षिण पूर्व एशिया की अर्थव्यवस्थाओं ने तेजी से अपनी-अपनी अर्थव्यवस्थाओं को मुक्त और स्वतंत्र किया। विदेश व्यापार का उदारीकरण किया गया और सभी जगह खुली अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया गया। इससे इन देशों के व्यापार और निवेश में काफी वृद्धि हुई और जहाँ उदारीकरण की प्रक्रिया ज्यादा विकसित थी वहाँ विकास भी ज्यादा हुआ।

1992 के बाद एकीकृत अर्थव्यवस्था बाजार में बढ़ते संरक्षणवाद से उत्पन्न खतरे और अमरीकी प्रशासन की "अनौचित्यपूर्ण व्यापार प्रभावों के प्रति कड़े रुख के कारण अन्तः एशियाई व्यापार का तेजी से विकास हुआ। हाल के वर्षों में कई एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में व्यापार को अनेकरूपता प्रदान करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यह महसूस किया जा रहा है कि अमरीका में धीमे आर्थिक विकास और व्यापार असंतुलन के बने रहने के कारण भविष्य में व्यापार के तेजी से बढ़ने की संभावनाएं हैं।

बोध प्रश्न 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1) 1970 के दशक में थाईलैंड ने क्रमशः अपना. . . . . .कम कर दिया।

2) . . . . . एकमात्र एशियन देश है जहाँ आयात विकल्प को बढ़ावा दिया गया।

3) . . . . . लाओ से निर्यात के लिए सबसे छोटा रास्ता है।

4) . . . . . के पेशेवर कर्मचारियों को कभी इन देशों की वित्तीय व्यवस्था का हिस्सा था।

5) . . . . . और वियतनाम में काफी तेजी से मुद्रास्फीति हुई।

6) . . . . . और फिलिपिन्स ऋण के बोझ से दबे दो प्रमुख देश हैं।

7) 1985 के. . . . . से मुद्रा का पुनर्निर्धारण हुआ।

23.5 सारांश

अब हम दक्षिण पूर्व एशिया संबंधी यह अध्ययन समाप्त करते हैं। हमने इस क्षेत्र के विभिन्न आर्थिक स्रोतों का अध्ययन किया। सभी देशों ने अपने-अपने संसाधनों के अनुरूप भिन्न-भिन्न नीतियों का पालन किया। आर्थिक विकास के आरंभिक चरण में आयात विकल्प जैसी आत्मनिर्भर आर्थिक नीतियां बनाई गई। औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के तुरंत बाद ऐसा किया गया। बाद में नीति में परिवर्तन आया। आयात विकल्प तैयार करने के स्थान पर निर्यातोन्मुख औद्योगीकरण को वरीयता दी गई। यहाँ तक कि वियतनाम और लाओस जैसे समाजवादी देशों ने भी अपनी आरंभिक भूलें महसूस की। प्रत्यक्ष निवेश की प्रवृत्ति बढ़ी। एशिया प्रशांत के बढ़ते परिदृश्य में दक्षिण पूर्व एशिया के विकास की महत्वपूर्ण भूमिका है। अभी ये ही "एशियाई शेर" के रूप में उभर कर सामने आ रहे हैं।

23.6 शब्दावली

मुद्रास्फीति : थोड़ी वस्तुओं के लिए ज्यादा मूल्य देना : मूल्य वृद्धि

उपनिवेशवाद : विदेशी शासन

समाजवाद : एक ऐसी व्यवस्था जहाँ उत्पादन पर राज्य का अधिकार होता है। सबको समान अवसर प्रदान किया जाता है।

आयात विकल्प : एक नीति जिसके अन्तर्गत एक देश अपने आयात के भुगतान के लिए निर्यात करता है।

शुल्क : घरेलू उद्योग के संरक्षण देने के लिए लगाया गया शुल्क।

प्राथमिक उत्पाद : प्राकृतिक संसाधन जैसे प्राकृतिक रबर, टिन, कोकोआ आदि।

भुगतान संतुलन : इसमें देश के आयात-निर्यात के साथ-साथ पूँजी की गतिशीलता भी शामिल होती है।

23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

दास, परिमल कुमार : 1987, *द ट्रब्ल्ड रिजन : इस्यूज ऑफ पीस एंड डेवलपमेंट इन साउथईस्ट* एशिया, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

एशियन डेवलपमैंट बैंक, 1971, *साउथईस्ट एशियाज एकोनॉमी इन द 1970* (लंदन : लांगमैन)

डी. जी. ई. हॉल. हिस्ट्री ऑफ साउथ ईस्ट एशिया लारेंस ओल्सोन, 1970, *जापान इन पोस्ट वार एशिया* (लंदन : पाल माल)

ली सू. (सं0) 1973, *न्यू डायरेक्शन इन द इन्टरनेशनल रिलेशन्स ऑफ साउथ ईस्ट एशिया* (एकोनॉमिक रिलेशन्स) (सिंगापुर)

ज्यार्ज एल. हिक्स एंड जिओफ्रे मैकनिकोल, 1971, *ट्रेड एंड ग्रोथ इन द फिलिपिन्स : ऐन ओपन डूअल एकोनॉमी* (इथका : फारनैल यूनिवर्सिटी प्रेस)

23.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) मलेशिया, हिंदेशिया, फिलिपिन्स, सिंगापुर और थाईलैंड

2) औपनिवेशिक काल में हो रहे प्राथमिक उत्पादों के निर्यात से हटकर उद्यम, पूँजी और श्रम निपुणता के क्षेत्र में कदम बढ़ाया गया जो प्रमुख विकासकारी शक्तियाँ थी।

3) हिंदेशिया और फिलिपिन्स

4) थाईलैंड और मलेशिया

5) जापान

बोध प्रश्न 2

1) व्यापार प्रतिबंध

2) मलेशिया

3) वियतनाम

4) बैंक

5) लाओस

6) हिंदेशिया

7) प्लाजा समझौता

इकाई 24 पूर्व और दक्षिण एशिया में राजनैतिक विकास की पद्धति

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 प्रजातंत्र और उदारवाद

24.3 समाजवाद और क्रांतिकारी राजनीति

24.4 निरंकुश और सैनिक शासन

24.5 सारांश

24.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

24.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई में पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया की राजनैतिक गतिविधियों पर विचार विमर्श किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- इन क्षेत्रों में मौजूद विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं की कार्यपद्धति की जानकारी दे सकेंगे, और
- विभिन्न देशों की राजनैतिक व्यवस्था का उल्लेख कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद साम्राज्यों का अंत हुआ और विश्व पटल पर कई "नए राज्य" और साथ ही साथ नई व्यवस्थाएँ उभरीं। प्रजातंत्र, समाजवाद, निरंकुशतावाद की अवधारणाएँ नये आयामों के साथ सामने आईं। इन नई उभरती व्यवस्थाओं में राजनैतिक गतिविधियों की प्रक्रिया मुश्किलों से भरी जरूर थी पर साथ ही साथ इसमें एक प्रकार की नवीनता भी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के इस विस्तृत भू-भाग में कई महत्वपूर्ण बदलाव आए। इन देशों पर तकनीकी क्रांति का गहरा प्रभाव पड़ा। हालांकि इन सब पर विचार करते समय हमारे दिमाग में इन देशों के इतिहास, सामाजिक व्यवस्थाओं और संस्कृति की अनेकरूपता भी सन्निहित होनी चाहिए। दुनिया के इस भू-भाग में घटित हो रहे राजनैतिक परिवर्तन इसी अनेकरूपता को प्रतिबिंबित करते हैं। इसके बावजूद हम आय और विस्तृत शीषकों के अंतर्गत इनका अध्ययन करेंगे और इन देशों को कुछ आम कोटियों में वर्गीकृत करेंगे।

अगर हम शुद्ध आर्थिक विकास को आधार बनाएँ तो इन्हें आर्थिक रूप से विकसित राष्ट्रों और आर्थिक दृष्टि से कम विकसित राष्ट्रों के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, पहली कोटि में जापान, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर जैसे देश और दूसरी कोटि में चीन, वियतनाम, उत्तरी कोरिया, बर्मा कम्बोडिया, लाओस जैसे देश शामिल हैं। यहाँ कुछ ऐसे देश भी हैं जो इन दोनों कोटियों के बीच में पड़ते हैं जैसे मलेशिया, हिंदेशिया और थाईलैंड।

जहाँ तक इस क्षेत्र की राजनैतिक गतिविधियों का संबंध है इन सभी देशों ने विभिन्न रूपों में राष्ट्र-निर्माण की दिशा में प्रयास किए गए हैं। प्रत्येक देश को इन प्रयासों में कम और अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इस इकाई के आगे आने वाले भागों में हम पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में हुई राजनैतिक गतिविधियों का तीन प्रमुख शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे। ये हैं : प्रजातंत्र और उदारवाद, समाजवाद और क्रांतिकारी राजनीति और निरंकुशतावाद और सैनिक शासन। ऐसा नहीं है कि इन राजनैतिक गतिविधियों का अध्ययन किसी अन्य विधि से नहीं किया जा सकता है पर चूंकि यह क्षेत्र काफी विस्तृत और अनेकरूपता लिए हुए है अतः इन शीर्षकों के अधीन

24.2 प्रजातंत्र और उदारवाद

1989 में एक तरफ पूर्वी यूरोप के देशों में राजनैतिक उदारवादी आन्दोलन चल रहे थे तो दूसरी तरफ पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में प्रजातंत्र की ओर झुकाव बढ़ रहा था। 1986-88 के दौरान फिलिपिन्स और कोरिया में यह परिवर्तन काफी नाटकीय रहा जबकि 1980 के दशक में पूरे क्षेत्र में प्रजातांत्रिक शक्तियों का प्रभाव महसूस किया जाने लगा। इन आन्दोलनों के विकास में मध्य वर्ग के बढ़ते धन की महत्वपूर्ण भूमिका रही और कुछ मामलों में, पहले से चली आ रही प्रजातांत्रिक लहर और भी मजबूती से सामने आई।

इन देशों में राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता आन्दोलन के बढ़ते दबाव के कारण द्वितीय विश्व युद्ध के पहले और बाद में भी यह विवाद सामने आया कि इन देशों में किस प्रकार की सरकार की स्थापना होनी चाहिए। अक्सर राजनैतिक पकड़ के लिए होने वाले संघर्ष इन मद्दों पर हावी हो गए। स्वतंत्रता आंदोलन के सफल होते ही आंतरिक कलह और अस्थिरता का वातावरण कायम हो गया और इससे स्वतंत्र न्यायिक संरचना और प्रतिनिधि सरकार की स्थापना के मार्ग में जटिलताएँ आती चली गईं। कामचलाऊ और स्थाई प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना के चक्कर में कई प्रकार के समझौते किए गए तथा संशोधन किए गए। पश्चिमी विवेचकों की दृष्टि में यह प्रजातांत्रिक व्यवस्था की दिशा में "असफलता" का परिचायक था। हालांकि चीन और जापान का मूल्यांकन दूसरे ढ़ंग से किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध से व्याप्त अव्यवस्था के बावजूद जबकि जापान संवैधानिक राजतंत्र सहसंसदीय प्रजातंत्र बना रहा, चीन साम्यवादी देश के रूप में उभरा। दोनों देशों में काफी हद तक राजनैतिक स्थिरता रही। मार्क्सवादी विद्वानों ने चीन और जापान को दो अलग-अलग ध्रुव माना और उन्हें क्रमशः समाजवादी और पूँजीवादी देश की संज्ञा दी, जबकि गैर-मार्क्सवादी विवेचकों ने इन्हें क्रमशः निरंकुशतावादी और प्रजातांत्रिक शासन के रूप में विवेचित किया।

वस्तुतः इस प्रदेश के अधिकांश विकसित देशों के लिए प्रजातंत्र की स्थापना प्रमुख वरीयता नहीं थी।

इन देशों का मूल उद्देश्य आर्थिक और राजनैतिक स्थिरता प्राप्त करना और एक दृढ़ सरकार की स्थापना करना था। परिणामस्वरूम विधान-सभाओं जैसे प्रजातंत्र के निकाय अनिवार्य तौर पर वास्तविक प्रतिनिधिक सरकार को नही दर्शाते थे। नेताओं का मुख्य उद्देश्य सामाजिक स्थिरता कायम करना और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें इस बात की चिंता नहीं थी कि उनकी सरकार को मानवीय अधिकारों के प्रति समर्पित "प्रजातंत्र का नाम दिया जाए या न दिया जाए। हालांकि 1980 के दशक के अंतिम वर्षों में प्रजातांत्रिक माहौल जोर पकड़ने लगा और यह दलील दी जाने लगी कि केवल आर्थिक विकास और स्थायित्व के नाम पर तथाकथित निरंकुश नियंत्रण को सही नहीं ठहराया जा सकता है। ऐसे बहुत से लोग थे जो अंतर्राष्ट्रीय समाचारों, विचारों और सूचनाओं की जानकारी रखने में, इस प्रकार के निरंकुश शासन के प्रति असहिष्णु थे। लगभग इन सभी देशों में किसी न किसी प्रकार से नेतृत्व परिवर्तन होने लगा। आनेवाली शताब्दी में राजनैतिक, आर्थिक, भौगौलिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होंगे।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है जापान में हुई, राजनैतिक गतिविधियों से यह स्पष्ट हो गया है कि पश्चिमी उदारवादी प्रारूप से इस देश को काफी फायदा हुआ था। युद्ध के बाद के आरंभिक वर्षों तक जापान अमरीका के प्रभाव में रहा, पर बाद में जापान ने पश्चिमी पद्धति पर आधारित सरकार की स्थापना में सफलता प्राप्त कर ली, जिसका प्रयत्न वहाँ 1868 की मेजी पुनर्स्थापना से ही हो रहा था। जापान में समयावधि चुनाव होते हैं, वहाँ एक प्रतिनिधिक विधान सभा (डाइट) है, काफी हद तक स्वतंत्र न्याय-प्रणाली है, स्वतत्र प्रेस है और राज्य अपने नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का सम्मान करता है। जापान की बहुदलीय व्यवस्था में जापान के एक दल के वर्चस्व की यह कहकर आलोचना की जाती है कि यह व्यवस्था अगर गैर-प्रजातांत्रिक नहीं है तो कम से कम अप्रजातांत्रिक तो अवश्य है । हालांकि जापानी उदारवादी प्रजातांत्रिक दल का अगर ध्यान से अध्ययन किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी कार्यप्रणाली में विभिन्न राजनैतिक समुदायों की संगठित हिस्सेदारी शामिल है। स्थानीय प्रजातांत्रिक दल (LDP) चुनाव के दौरान एकबद्ध हो जाते हैं और दल पर जापान की राजनैतिक स्थिरता और आर्थिक सफलता का दायित्व होता है। हालांकि 1993 ई. में स्थानीय प्रजातांत्रिक दल (LDP) का एकाधिकार टूटा और एक मिली-जुली सरकार का गठन हुआ। जापान में पूर्णतः राजनैतिक स्थिरता कायम है और निकट भविष्य में इस

स्थिति में परिवर्तन की कोई संभावना नहीं है। जापान विश्व में एक आर्थिक सर्वोच्च शक्ति के रूप में उदित हुआ है और यहाँ के लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा है। यह देश के राजनैतिक और आर्थिक विकास के बीच तादात्म्य और सामंजस्य का परिणाम है।

पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के आर्थिक रूप से सम्पन्न अन्य राष्ट्रों के बारे में हम ऐसा नहीं कह सकते। कोरिया और सिंगापुर, दोनों देशों में निरंकुश शासन है। हालाँकि मलेशिया भी एक ऐसा देश है जहाँ प्रजातांत्रिक प्रयोग काफी हद तक सफल माना जाता है।

मलेशियन समाज में जातीय विभाजन काफी गहरा है। पूरी जनसंख्या में मलयों की संख्या 45 प्रतिशत है। वहाँ 35 प्रतिशत चीनी और 10 प्रतिशत भारतीय और अन्य समुदाय रहते हैं। चीनी जाति के लोगों का देश के वाणिज्यिक और कार्मिक क्षेत्र पर प्रभुत्व है। तीन प्रमुख समुदायों की अपनी-अपनी धार्मिक परम्पराएँ हैं। मलेशिया में पेशा, प्रजाति और धर्म का गहरा आपसी रिश्ता है। समुदाय के रूप में चीनी मलयों से अधिक सम्पन्न हैं। यह अलगाव और मलय जनसंख्या पर पड़ने वाले दवाब का मलेशियन राजनीति में केन्द्रीय महत्व है। इन विभिन्नताओं का सामंजस्य और आत्मसातीकरण मलेशियन राजनीति को आंदोलित करता रहता है। मलयों (जो मुसलमान भी हैं) का मानना है कि उन्हें बहुमत का लाभ नहीं मिलता है और राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए कई स्थानों पर समझौता करना पड़ता है। "मलयवादिता" के साथ इस्लाम के जुड़ाव और इस्लाम को एक जीवन शैली के रूप में ग्रहण करने के कारण वे आधुनिके धर्मनिरपेक्ष संसार या अन्य जातीय समुदायों की भावनाओं को आत्मसात करने में कठिनाई महसूस करते हैं। मलय परम्परा पर इस इस्लाम धर्म के हावी होने के कारण स्थिति और भी जटिल हो गई है।

इस क्षेत्र के अन्य देशों के समान द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान के आधिपत्य का मलेशिया की अर्थव्यवस्था और राजनीति पर गहरा प्रभाव है। सबसे पहले चीनी समुदाय ने जापानी आक्रमणकारियों का विरोध किया जबकि मलयों ने उनका अपेक्षाकृत कम विरोध किया। 1945 में अंग्रेज़ों के वापस आने के बाद भी इन समुदायों के बीच तनाव मौजूद रहा।

अंग्रेज़ों ने मलाया के सुल्तानों के अलग राज्य के अधिकारों को समाप्त कर मलाया को एकीकृत राज्य के रूप में संगठित करने का प्रयास किया। इसके विरोध में उन्होंने एक दल बनाया। यह देश के प्रमुख दल के रूप में उभरा। यह दल था : एकीकृत मलाया राष्ट्रीय संगठन। आगे आनेवाले वर्षों में दो और महत्वपूर्ण दलों का गठन हुआ, मलय चीनी संगठन और मलय भारतीय कांग्रेस, दोनों जातीय दल थे। 1952 ई. में तीनों दलों ने मिलकर एक मिलाजुला दल बनाया और अंग्रेज़ों के साथ बातचीत की और अन्ततः 31 अगस्त 1957 को मलेशिया स्वतंत्र हुआ। काफी हद तक संतुलित इस बहु-जातीय गठबंधन का नेतृत्व तुंकू अब्दुल रहमान ने किया। इस गठबंधन में मलयों का बहुमत था, पर 1968 के चुनाव में इसे गहरा धक्का लगा। इसमें गैर-मलय समुदायों को अच्छे मत मिले जिससे मलयों में डर पैदा हो गया और चार दिनों तक साम्प्रदायिक दंगे होते हरे जिसमें दो सौ लोगों की मौत हुई। इसने पूरे देश को हिला कर रख दिया, आपात-काल की घोषणा की गई और मलयों द्वारा नियंत्रित एक राष्ट्रीय कार्यवाही परिषद बनी जिसने अस्थाई तौर पर संसद का स्थान ले लिया। 1971 में संसदीय प्रजातंत्र की पुनःस्थापना हुई। मलयों और गैर मलयों के बीच समझौता हुआ कि विध्वंसकारी मुद्दों, खासकर मलयों के वर्चस्व पर न तो प्रश्नचिन्ह लगाया जाएगा न आने वाले समय में इसपर कोई बहस होगी। मलेशिया में प्रजातंत्र की स्थापना हुई और यह तय किया गया कि मलेशिया का प्रजातंत्र अपने ढ़ंग का होगा और यहाँ कड़े राजनैतिक नियमों का पालन किया जाएगा। इसके तहत कई प्रकार के समझौते किये गए। इन समझौतों के पीछे वियतनाम द्वारा अधिक्रमण का भय छिपा हुआ था। 1970 के दशक में दक्षिण पूर्व एशिया में वियतनाम के सैनिक प्रभुत्व के भय ने इन्हें एकीकृत किया । 1981 में डा. महाविर मोहम्मद प्रधानमंत्री बने। उनके प्रधानमंत्री बनते ही यह स्पष्ट हो गया कि निरंकुशतावादी राजनीति मलेशिया की नियति है। उन्होंने अपने आलोचकों को गिरफ्तार कराया और उनकी नीतियों के आलोचक समाचार पत्रों को बंद करवा दिया।

1969 ई. से मलेशिया का प्रजातंत्र कायम है, पर यहाँ राजनैतिक स्वतंत्रता को दबाया गया है, खासकर समाचार पत्रों को बिल्कुल आज़ादी नहीं है। इन कमजोरियों को यह कहकर संगत ठहराया जाता है कि बहुजातीय समाज में जरूरत से ज्यादा राजनैतिक छूट देने से राजनैतिक हिंसा फैलने की आशंका रहती है। पर इसके साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं कि 1969 के बाद मलेशिया के राजनैतिक संकट में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई है। पूर्ण प्रजातांत्रिक माहौल न होने के बावजूद राजनैतिक हिस्सेदारी में कोई कमी नहीं आई है। समय-समय पर आम चुनाव होते हैं। संविधान के प्रावधानों के तहत नेतृत्व भी बदलता है और विपक्ष को भी अपना कार्य करने दिया जाता है।

एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि यह एक प्रकार की लचीली राजनैतिक व्यवस्था है जिसमें यदा-कदा बदलाव होते रहते हैं, संकट उत्पन्न होते रहते हैं पर इसमें विभाजित तनावग्रस्त, बहु-जातीय समाज संभला हुआ है।

फिलिपिन्स की राजनैतिक व्यवस्था निरंकुश सत्ता से प्रजातंत्र की ओर उन्मुख होती हुई व्यवस्था का उदाहरण है । 1965 ई. में फर्डिनेंड मार्कोस के सत्ता में आने के बाद निरंकुश शासन परम्परा का आरंभ हुआ। मार्कोस की दृष्टि में प्रजातंत्र गैर-जरूरी और व्यभिचारी व्यवस्था है जहाँ न केवल भ्रष्टाचार पैदा होता है बल्कि सही ढ़ंग से काम भी नहीं होता है। उसने "संवैधानिक निरंकुशतावाद" का समर्थन किया था। 1972 में राजनैतिक गड़बड़ी पैदा होने पर उसने मार्शल लॉ लगा दिया। उसने तेजी से सभी प्रकार के विरोधों और असंतोषों को दबाया। काफी दिनों तक उसने एकछत्र शासन किया। पर जैसे ही उसने अपने प्रबल राजनैतिक विरोधी दल के नेता सिनेटर एक्विनी को मारने की योजना बनाई वैसे ही उसकी सरकार उल्ट गई। उस्विनो अभी तुरंत दो साल के निष्कासन के बाद अमरीका से मनीला हवाई अड्डे पर उतरा था। इस धारणा ने मार्कोस को काफी अलोकप्रिय बना दिया। एक्विनो की विधवा कोराजन के इर्द-गिर्द विरोधी दल एकत्र होने लगा। फरवरी 1986 में चुनाव हुए जिसमें श्रीमती एक्विनो भारी बहुमत से विजयी हुई। तब से फिलिपिन्स में प्रजातंत्र मजबूती से अपना पैर टिकाए हुए है। 1991 के चुनाव में श्रीमति एक्विनो चुनाव में खड़ी नहीं हुई पर राष्ट्रपति पद के लिए उन्होंने अपने रेल मंत्री फिदेल रामोस का समर्थन किया। फिलिपिन्स में दूसरे नेता के हाथों में सत्ता का हस्तांतरण काफी सहज रहा। हालाँकि यह देश बहुत प्रकार की आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहा है और नेतृत्व को प्रजातांत्रिक समस्याओं को बनाए रखने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ेगा।

पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में प्रजातांत्रिक समस्याओं को अपनाए जाने पर विचार करते समय यहाँ प्रत्येक समाज के खास धार्मिक, जातीय और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना जरूरी है। इन सब के बावजूद अधिकांश देशों में किसी न किसी प्रकार का राजनैतिक बदलाव होता रहा है। 1991 तक सिंगापुर के राष्ट्राध्यक्ष ली कुआन यू ने अपने संरक्षण में ही सही पर सत्ता का हस्तांतरण नई पीढ़ी के हाथों में दे दिया। मलेशिया में एक स्वरूप, संगठित विपक्ष उभरा संसदीय चुनाव के लिए हो रही तैयारी के दौरान हिंदेशिया में मजबूत विपक्ष की इजाजत नहीं दी गई पर सरकार ने मुखर, युवा पीढ़ी को सांसदों के रूप में उभरने का अवसर दिया है। फिलिपिन्स की जनता जनसंख्या और आर्थिक समस्याओं से जूझ रही है। कई बार सरकार की कार्यक्षमता पर प्रश्न भी उठाया जाता है पर किसी भी तरह से ये प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के प्रति कम समर्पित नहीं हैं। हालाँकि थाईलैंड में कई बार सत्ता का तख्ता पलटा जा चुका है पर यहाँ भी नागरिक संसदीय सरकार को बार-बार लाना पड़ा है।

बोध प्रश्न 1

1) रिक्त स्थान भरिए

   क) मार्क्सवादी विद्वानों ने आमतौर पर चीन और जापान को क्रमश. . . . . और. . . . . व्यवस्थाओं के रूप में देखा है।

   ख) जापान के प्रमुख दल . . . . . 1993 में गठबंधन से चुनाव हार गया।

   ग) मलेशिया के बहुजातीय गठबंधन . . . . . का नेतृत्व तुंकेन अब्दुल रहमान ने किया।

24.3 समाजवाद और क्रांतिकारी राजनीति

चीन गणतंत्र, उत्तरी कोरिया और वियतनाम इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इन समाजों में एक बात समान है कि आधिकारिक तौर पर ये मार्क्सवादी लेनिनवादी नीति का अनुसरण करते हैं और वहाँ साम्यवादी दलों का शासन है। 1989 में पूर्व यूरोपीय साम्यवाद के रहने के बावजूद ये कमोबेश अप्रभावित रहे हैं। इन राज्यों में एक और समानता यह है कि इनमें से प्रत्येक देश में विश्व युद्ध के बाद के आरंभिक वर्षों में एक प्रभावशाली चमत्कारिक व्यक्तित्व का राजनैतिक वर्चस्व कायम रहा है। चीन में माओ-त्से-तुंग, वियतनाम में हो-चहन-मिहन और कोरिया में किस सग-2। 1950 के दशक के शीत युद्ध में ये सभी भूतपूर्व सोवियत संघ के पक्ष में थे।

उत्तरी कोरिया काफी समय तक पूरे विश्व से कटा रहा। अब उत्तरी कोरियावासियों ने महसूस किया है कि विश्व से पूरी तरह कटने के बावजूद वे आर्थिक और राजनैतिक बदलावों से अप्रभावित नहीं रह सकते हैं। कोरियन युद्ध के बाद किम-सुग-2 ने अपने प्रमुख राजनैतिक विरोधियों को समाप्त कर दिया और अर्थव्यवस्था को पुनर्गठित किया। उसने सामूहिक खेती और केन्द्रीकृत आर्थिक प्रबंधन के स्टालिनवादी प्रारूप को अपनाया। इसके बावजूद आर्थिक समस्याएँ समाप्त नहीं हुई और इन्हें दूर करने के लिए उत्तरी कोरिया को अपने उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए पश्चिमी देशों और जापान से भारी मात्रा में संयंत्र और मशीनें खरीदनी पड़ीं। अंततः यह इस कर्ज का भुगतान नहीं कर सका और आज भी विदेशी देशों का तीन मिलियन डॉलर कर्ज़ इसके ऊपर है। पर इससे शासन प्रभावित नहीं हुआ। उत्तरी कोरिया के साम्यवादी दल का अनुशासन, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा, दमनात्मक राज्य और किम-चुंग-2 के करिश्माई व्यक्तित्व ने कोरिया को बड़े राजनैतिक संकट से बचाए रखा।

समाजवादी देश का एक दूसरा उदाहरण है वियतनाम जहाँ 1975 के युद्ध के बाद से स्थिर शासन व्यवस्था कायम है। जैसा की विदित है वियतनाम पहले दो हिस्सों में विभक्त हो गया था। उत्तर में दो चिन्ह भिन्ह के नेतृत्व में साम्यवादी शासन का और दक्षिण में अमरीका के दलालों का शासन था। शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति पर वियतनाम की जनता की विजय विश्व इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसके बाद वियतनाम का एकीकरण हुआ और 1975 के बाद से यहाँ साम्यवादी दल का शासन है। दक्षिण में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था कायम करने का आरंभिक वचन जल्द ही भुला दिया गया। दक्षिण में व्यापार पर वर्चस्व रखनेवाले चीनी जाति के समुदायों ने नियंत्रण के दबाव और पार्टी पालिटब्यूरो का हनोई में विरोध किया जिसे दक्षिण में कड़ा राजनैतिक नियंत्रण स्थापित कर दबा दिया गया।

एकीकरण के बाद भी इस देश को कई बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा। पूंजीवादी दक्षिण को अपने साथ लेकर चलने में युद्ध से टूटे वियतनाम के प्रशासनिक ढाँचे पर काफी दबाव पड़ा। दिसम्बर 1976 में आयोजित साम्यवादी दल के चौथे सम्मेलन में दक्षिण की अर्थव्यवस्था के औद्योगिकरण और समाजीकरण की बृहद महत्वाकांक्षी योजना बनाई गई। दक्षिण में रहनेवाली जनता अपने को अलग-अलग महसूस करने लगी और 1978 तक दस हजार लोग नौका द्वारा दूसरे देशों में चले गये। जल्द ही कम्बोडिया के सवाल को लेकर चीन से वियतनाम के संबंध में तनाव पैदा हुआ और यह सोवियत संघ के करीब चला गया। हालाँकि अभी भी वियतनाम आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा है पर फिलहाल इसकी सरकार को बाहरी या आंतरिक रूप से कोई खतरा प्रतीत नहीं होता है।

1949 में चीन ने अपने को साम्राज्यवाद और सामंतवाद से मुक्त कर लिया पर इस देश की राजनैतिक घटनाओं से पर्यवेक्षक उद्वेलित होते रहे हैं। मोटे तौर पर 1949 के बाद के चीन के राजनैतिक इतिहास को दो कालों में विभक्त किया जा सकता है, माओ शासनकाल (1949 से 1976-77 तक) और डेंग शासनकाल (1978 से आज तक)। यह विभाजन मात्र दो शासकों माओ जे डांग और डेंग जिओपिंग के शासन पर ही आधारित नहीं है, बल्कि यह दो अलग-अलग तरह की व्यवस्थाओं—क्रांतिकारी राजनीति और सुधारवादी राजनीति का भी प्रतिनिधित्व करता है। हालाँकि यह कहना सही नहीं है कि माओ के पूरे शासनकाल के दौरान हमेशा क्रांतिकारी उफान आता रहा बल्कि माओ के विरोधियों को भी अपनी नीतियों के कार्यान्वयन में सफलता मिलती रही, पर कुछ वर्षों के अंतराल पर माओ ने डांग के नेतृत्व में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक अभियान चलाए जाते रहे। माओ एक क्रांतिकारी और खास विचारधारा को मानने वाला व्यक्ति था। उसे हमेशा यह भय रहता था कि अगर क्रांतिकारी राजनीति की अवहेलना की गई और आर्थिक विकास पर बल दिया जाता रहा तो मुक्ति के बाद का चीन पुनः गैर-क्रांतिकारी समाज में परिवर्तित हो जाएगा। मुक्ति के तुरन्त बाद श्रम के माध्यम से विचार सुधार की नीति अपनाई गई। जिन लोगों ने साम्यवादी दल की आधिकारिक विचारधारा का सक्रिय रूप से विरोध किया उन्हें विचार सुधार के जरिए अनुकूलित किया गया।

1956-57 के काल में "हजारों फूलों को खिलने दो" "हजारों विचारों को पनपने दो" के नारों के अन्तर्गत उदारवादी नीतियों का प्रतिपादन किया गया। बुद्धिजीवियों और साम्यवादी दल के गैर-सदस्यों को अपना असंतोष व्यक्त करने का मौका दिया गया और उन्होंने ऐसा किया भी। जब शासन को यह लगा कि स्थिति हाथ से निकलने लगी है और उन्होंने साम्यवाद की आलोचना शुरू कर दी है तब इन पर कड़ा नियंत्रण लगाया गया। इसे भी आन्दोलन का रूप दिया गया। इसे दक्षिण पंथी विरोधी आन्दोलन कहा गया। इसके तहत इस काल के आलोचक बुद्धिजीवियों को दंड दिया गया। एक वर्ष बाद माओ ने अगो की ओर एक बड़ी छलांग लायक नीति का प्रतिपादन

किया। यह मुख्य रूप से राजनीति से लदी अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में एक प्रयोग था। आपने इसके बारे में चीन पर आधारित खंड में अध्ययन किया है। आगे की ओर एक बड़ी छलांग आर्थिक लाभ की दृष्टि से असफल रही और इससे माओ जेडांग की स्थिति कुछ कमजोर हुई और कुछ वर्षों तक उसके विरोधियों लिड शाकोइ और डैंग जिआओपिंग ने अपने ढंग से काम किया। माओ ने अंततः अपने विरोधियों को 1966-76 की सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से कुचला। आरम्भ में इस काल में काफी राजनैतिक अस्थिरता और हिंसा का माहौल बना रहा। माओवादियों और रेड गाडर्स ने सभी स्तरों-मंत्रियों, कारखानों, विश्वविद्यालयों, कला, संस्कृति आदि के समूचे दलीय ढांचे को बदल डाला। आधिकारिक तौर पर यह चीन को तथाकथित बुर्जुआई प्रभाव से बचाने का एक प्रयत्न था। इस जन आन्दोलन ने चीन को पूरी तरह से बदल डाला। बुद्धिजीवी और माओ के पक्ष में न रहने वाले पदाधिकारी इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हुए। हत्या, प्रताड़ना, कैद के लिए किसी वैधानिक अनुमति की जरूरत नहीं महसूस की गई और सब कुछ मनमर्जी से चलता रहा। प्रताड़ना और अपमान से हारकर कई लोगों ने फाँसी लगा ली, कई लोग पागल हो गए। सबसे ज्यादा हानि शिक्षा के क्षेत्र में हुई। लगभग दस वर्षों तक विद्यालय और विश्वविद्यालय सहज ढंग से नहीं चल सके।

माओ की मृत्यु के बाद यह आंदोलन थम गया। 1976 में उभरे नेतृत्व में उदारवादियों का बाहुल्य था और इनमें से कइयों को माओ के शासनकाल में सजा हुई थी। डैंग जिआओपिंग इनमें से एक था पर शारीरिक रूप से यह अपंग नहीं हुआ था। 1978 में वह पूरी शक्ति और नियंत्रण के साथ सत्ता में लौटा। दिसम्बर 1978 में साम्यवादी दल की ग्यारहवीं केन्द्रीय समिति की तीसरी बैठक में नई नीतियाँ बनाई गईं, जिसके दूरगामी परिणाम हुए। इस बैठक ने कारखाने मजदूरों के लिए भौतिक प्रोत्साहन के स्थान पर नैतिक प्रोत्साहन, ग्रामीण इलाकों में कम्यून व्यवस्था, धन का पूर्ण समाजीकरण जैसे माओ के आर्थिक सिद्धांतों को एक झटके से समाप्त कर दिया। नये नेतृत्व ने निजीकरण का समर्थन किया, हालांकि इस शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। ग्रामीण क्षेत्र में इसे उत्पादन जिम्मेदारी व्यवस्था के नाम से जाना गया। इसका अर्थ यह हुआ कि परिवार गण निजी तौर पर भूमि रख सकते थे और अधिशेष उत्पादन खुले बाजार में बिना किसी सरकारी नियंत्रण के बेच सकते थे। राज्य को कर और राजस्व अदा करना था और भूमि पर राज्य की मिल्कियत रहनी भी जो किसानों को पट्टे पर प्राप्त होनी थी। इसी प्रकार कारखाने पर प्रबंधकों और मजदूरों का नियंत्रण स्थापित किया गया। कारखाने के घाटे नुकसान का उत्तरदायित्व कारखाने पर रहा और सरकार की इसमें कोई भूमिका नहीं रही। कर्मचारियों के बीच मुनाफे का बँटवारा होना था और राज्य को अपना कर प्राप्त करना था। दूसरे शब्दों में, काम करने वालों को भौतिक प्रोत्साहन दिया गया। लघु व्यक्तिगत उद्यम की भी अनुमति दी गई। आधिकारिक तौर पर लोगों को अमीर बनने के लिए प्रोत्साहित किया गया। पश्चिमी और जापानी व्यापारिक घरानों के साथ सहयोग और विदेशी निवेश प्राप्त किया गया। विशेष आर्थिक क्षेत्र के नाम से छोटे "पूंजीवादी" क्षेत्र कायम किए गए। ये विशेष क्षेत्र छोटे हांगकांग के समान थे। इस आमूल आर्थिक सुधार का असर जल्द ही देश की राजनीति पर पड़ा। पश्चिमी प्रभावों के आगमन से चीनवासियों की जीवन शैली में स्पष्ट परिवर्तन आया। नव अर्जित धन ने इसे और आगे बढ़ाया।

चीन के शहरी लोगों पर हो रहे पश्चिमी प्रभाव से सचेत और चिंतित डोकर 1982-83 में सरकार ने आध्यात्मिक प्रदूषण के खिलाफ आंदोलन चलाया हालाँकि इससे साम्यवादी दल पर कोई प्रमुख प्रभाव नहीं पड़ा पर 1980 के दशक के मध्य में इसका प्रभाव व्यापक रूप से महसूस किया गया।

चीन गणतंत्र में माओ के शासनकाल के बाद की प्रमुख राजनैतिक घटनाओं में 1979 का प्रजातंत्र दीवार आंदोलन और 1986.87 का छात्र प्रदर्शन और 1989 का बृहद छात्र असंतोष शामिल है जिसका अंत तिआनमित चौक त्रासदी में हुआ। प्रजातंत्र दीवार आंदोलन अनिवार्य तौर पर सांस्कृतिक क्रांति की दस वर्षीय प्रताड़ना के खिलाफ बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रिया था। पोस्टर और साहित्य के माध्यम से इस आन्दोलन के समर्थक न्याय और स्वतंत्रता की माँग कर रहे थे। जब तक इस आंदोलन ने डेंग जिआओपिंग और साम्यवादी दल की आलोचना नहीं की, तब तक इसे नहीं छेड़ा गया। पर जैसे ही इस आंदोलन ने इनकी आलोचना शुरू की, वैसे ही शासन ने तेजी से इस आंदोलन को दबाना शुरू कर दिया।

1986-87 का छात्र आंदोलन शंघाई में एक संस्थान के छात्रावास अधिकारियों के खिलाफ असंतोष जैसे मामूली मुद्दे से शुरू हुआ। उनका यह असंतोष नगर निगम अधिकारियों और फिर साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति की और उन्मुख हुआ। परिणामस्वरूप शंघाई और अन्य स्थानों पर जन प्रदर्शन हुए जिसे कुछ समय बाद कुचल दिया गया। साम्यवादी दल के अध्यक्ष हू-याओबांग का छात्रों की माँगों के प्रति रवैया सहानुभूति का था। वह दल के निर्देशों के साथ नहीं चला, इस

कारण उसे अपना पद छोड़ना पड़ा। उसका स्थान झाओ जियांग ने लिया जो पहले सर्वोच्च शासक था। हालांकि 1986-87 का आंदोलन दबा दिया गया पर इसकी आग बुझी नहीं। 1989 में हू याओबांग की मृत्यु के बाद यह पुनः भड़क उठा। छात्रों की माँगों का समर्थन करते हुए हू ने अपना पद छोड़ा था। उसे सम्मान देने के लिए कई शैक्षिक संस्थानों में प्रदर्शन हुए और स्वतंत्रता और प्रजातंत्र की माँग की गई। अंततः बीजिंग के बीचोंबीच तिआनमिन चौक पर प्रदर्शनकारी इकट्ठा हुए और माँग न माने जाने तक वहाँ से हटने से इंकार कर दिया। झाओ जिआंग को छोड़कर कोई बड़ा उच्चरूप साम्यवादी नेतृत्व उनसे बात करने नहीं आया। झाओ अंततः छात्रों की मांगों का समर्थक बन गया और उसे भी हू-लि-पेंग की नियति का सामना करना पड़ा। उसे मुख्य प्रशासक का पद छोड़ना पड़ा। तिंआनमिन को खाली कराने के लिए प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने का आदेश दिया गया। सेना द्वारा गोली चलाए जाने से 4 जून 1989 को कई लोग मरे जिनकी संख्या के बारे में मतभेद है। पर एक बात साफ है कि इस आंदोलन को हिंसात्मक तरीके से दबाया गया। छात्रों को तिआनमिन चौक छोड़ने के लिए मजबूर किया गया।

हालाँकि सरकार ने कभी भी छात्रों से बात करने में रुचि नहीं दिखाई पर आरंभ में उनकी माँगे आक्रमक नहीं थी। वे सभी स्तरों पर चुनाव और सभी संगठनों का जनतंत्रीकरण चाहते थे। बाद में सरकार के उदासीन रवैये के कारण उन्होंने आक्रामक माँगे रखीं। उन्होंने बहु-दलीय व्यवस्था, स्वतंत्र प्रेस और स्वतंत्र न्यायपालिका की माँग की। ये माँगे कभी भी औपचारिक रूप से सामने न रखी जा सकीं।

तिआनमिन दमन के बाद अधिकारियों ने इसके विरुद्ध अभियान शुरू कर दिया और इसे चीन को अस्थिर करने और इसे प्रदूषित पूंजीवादी समाज बनाने की अमरीका की साजिश के रूप में पेश किया गया। सरकार और साम्यवादी दल ने घोषणा की कि बुर्जुआ उदारीकरण चीन के अनुकूल नहीं है। पर इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता है कि यह छात्र आंदोलन इस सरकार की सुधारवादी नीति का सहज प्रतिफल था। राजनैतिक उदारीकरण के बगैर आर्थिक उदारीकरण करने से असंतुलन अवश्यंभावी था। बेहतर आर्थिक स्थिति और बाहरी प्रभाव ने लोगों को राजनैतिक अधिकार के प्रति जागरूक बनाया और स्वाभाविक तौर पर उन्होंने इसकी माँग की। पर चीन की परिणति पूर्व यूरोप के देशों जैसी नहीं हुई क्योंकि अभी भी आर्थिक विकास से उत्पन्न मध्य वर्ग की संख्या चीन में काफी कम थी और वे निरंकुशतावादी शासन को समाप्त नहीं कर सकते थे। केवल छात्र-गण सामाजिक बदलाव नहीं ला सकते हैं। चीनी सरकार का मानना है कि किसी भी कीमत पर समाजवाद को बनाए रखना जरूरी है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान में उत्तर लिखिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

सही उत्तर के सामने सही का चिन्ह लगाइए।

1) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद चीन और कोरिया के साथ-साथ और किस देश ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद की नीति अपनाई।

   क) जापान [ ]

   ख) वियतनाम [ ]

   ग) सिंगापुर [ ]

2) चीन में माओ जे डांग के समान उत्तरी कोरिया में किस नेता के पास करिश्माई व्यक्तित्व था।

   क) किम सूंग-2 [ ]

   ख) पार्क चुंग की [ ]

   ग) डेंग जिआपांग [ ]

3) चीनी साम्यवादी दल के ग्यारहवें सम्मेलन की तीसरी बैठक कब सम्पन्न हुई।

   क) सितंबर 1976 [ ]

ख) सितंबर 1978 [ ]

ग) जून 1989 [ ]

24.4 निरंकुश और सैनिक शासन

हिंदेशिया, थाईलैंड, बर्मा, कंबोडिया और लाओस में विभिन्न समयों में और विभिन्न स्तरों पर निरंकुश शासन कायम रहा है और सेना को सर्वोच्चता मिलती रही। सत्ता पर अधिकार करने के लिए हिंदेशियाई सेना 4 अन्य जगह की सेनाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि इसके पहले कभी भी सेना को राजनैतिक संगठन नहीं माना गया था। 1945 में डचों के खिलाफ छापामार युद्ध करने से लेकर इसके राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने तक हिंदेशियाई सेनाधिकारी हमेशा राजनैतिक मुद्दों में रुचि लेते रहे और अधिकांश समय राजनीति में सक्रिय और प्रमुख भूमिका निभाते रहे। उच्च शासन के खिलाफ राष्ट्रवादी संघर्ष में हिस्सा लेने के कारण अधिकांश पदाधिकारियों का मानना था कि स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक मामलों में उनकी बात सुनी जाए। 1957 के मार्शल लॉ के बाद मंत्रि-परिषिद, संसद और प्रशासन में उन्हें नियुक्त कर उनकी हिस्सेदारी के अधिकार को औपचारिक रूप से मान्यता प्रदान कर दी गई। निर्देशित प्रजातंत्र काल के दौरान सेना दो में से एक प्रमुख संगठित शक्ति बनी रही और राष्ट्रपति सुकानों नों के साथ मिलकर वे इस काल की राजनीति पर हावी रहे। अन्ततः सेना ने पी. के. आई. (हिंदेशियाई साम्यवादी) के खिलाफ 1965 में कार्यवाई की और वे राष्ट्रपति सुकानों को हटाने में सफल रहे और इस प्रकार हिंदेशियाई राजनीति पर उनका वर्चस्व कायम हो गया। हिंदेशिया में सैनिक शक्ति इस हद तक संस्थागत हो गयी जिसकी मिसाल दूसरे किसी विकासशील देश में नहीं मिलती। देश की सुरक्षा प्रणाली कें तहत गुप्तचर विभाग हमेशा सक्रिय रहता है ताकि सरकार के खिलाफ कोई महत्वपूर्ण क्रांतिकारी विरोध न उत्पन्न हो सके। निस्संदेह देश की अच्छी आर्थिक स्थिति के कारणं कोई बड़ी सामाजिक और राजनैतिक अस्थिरता नहीं पैदा हुई है।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में थाईलैंड में प्रबुद्ध राजतंत्र की स्थापना हुई जो आधुनिक राज्य की स्थापना पर बल देता था पर राजतंत्र का रवैया हमेशा प्रतिकूल रहा, 1912 के बाद सैनिक तख्ता पलट थाईलैंड की राजनैतिक व्यवस्था की नियति बन गई। द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में जापान के आत्मसमर्पण के साथ राजनीति में सेना की भूमिका को कम करने के लिए नागरिक गठबंधन सरकार की स्थापना का प्रयत्न किया गया पर इसका परिणाम काफी असंतोषजनक रहा। राजनैतिक उठापटक और आर्थिक कठिनाइयों के कारण दो वर्षों में आठ मंत्रिमंडल और पाँच प्रधानमंत्री बदले गए। इस अस्थिरता के कारण 1948 में सैनिक तख्ता पलट गया, संविधान स्थगित कर दिया गया और एक सेनानायक राष्ट्रध्यक्ष बना। इसका अंतिम परिणाम "अर्द्धप्रजातांत्रिक" सरकार के रूप में सामने आया जिसमें कई तख्ते पलटे गए, ये अधिकांशतः रक्त रहित रहे क्योंकि सैनिकों के बीच ही विभिन्न समूहों का उत्थान पतन होता रहा।

ऊपर से देखने पर यह प्रतीत होता है कि थाईलैंड में युद्ध के बाद राजनैतिक व्यवस्था में अस्थिरता रही। वस्तुतः इस प्रक्रिया के माध्यम से राजनैतिक ताकतें एक सक्रिय संतुलन में रहीं। एक चुनी गई संसद क़ार्य करती रही, पर मूल सत्ता कार्यकारी के पास रही जिस पर संभ्रांत सैनिक और अधिकारीतंत्रीय समूहों का नियंत्रण बना रहा। स्थिरता प्रदान करने वाला एक और कारक यह था कि थाईलैंड में राजा इन सबसे अप्रभावित रहा। 1990 के दशक के आरम्भ में राजा भूमिवाले ने कई प्रधानमंत्री देखे और उसके सामने तीस मंत्रिमंडल आए और गए पर वह किसी बड़े राष्ट्रीय संकट के अलावा राजनीति से विरोध बना रहा। 1991 तक शासन में परिवर्तन किया जाता रहा और थाईलैंड में सेना की महत्वपूर्ण स्थिति बनी रही। भविष्य में आनेवाली नागरिक सरकारें भी उन्हीं की मर्जी पर टिकी रही। इसके बावजूद 1992 के चुनाव के बाद नागरिक शासन की स्थापना से आशा की किरण दिखाई पड़ी है।

बर्मा में लौह पुरुष ने 1962 के सैनिक विद्रोह द्वारा राजनैतिक सत्ता प्राप्त की और 1988 के जन विरोध के जन्म लेने से पहले एक समर्पित सेना और ग्रुप राजनीति की मदद से देश को एकीकृत रखने में सफल रहा। अधिकारिक तौर पर *ने-विन* 1989 में सेवानिवृत्त हुआ पर पृष्ठभूमि में उसकी सक्रियता बनी रही। 1988 के प्रदर्शनों के दौरान रंगून में निहत्थे सरकार विरोधी प्रदर्शनकारियों का सैनिक सरकार ने कत्लेआम किया। एक वर्ष तक नागरिकों और सेना के बीच संघर्ष चलता रहा जिसमें हजारों लोग मारे गए। प्रतिरोधस्वरूप सैनिक शासकों ने रंगून के आसपास के इलाके को सुनसान बना दिया और लोगों को मार भगाया क्योंकि उन्होंने प्रजातंत्र आन्दोलन का समर्थन किया

था। वहाँ रहनेवाले लोग छोटे शहरों की ओर आये जहाँ उन्हें कई प्रकार की बीमारियाँ हुई। यह सोचकर कि विरोध को कुचल दिया गया है, 1990 में दिखावे के लिए चुनाव सम्पन किया गया। उन्हें यह देखकर धक्का लगा कि प्रतिनिधि राष्ट्रीय सभा में पर्याप्त संख्या में बृहद गठबंधन का विरोधी दल जीत कर आ गया। हालाँकि इस सभा को जन्म नहीं लेने दिया गया, 1991 तक सभी प्रमुख नेताओं को कारावास में डाल दिया गया। इसमें 1991 के नोबल शांति पुरस्कार विजेता डाउंग सन की जैसे लोग भी शामिल थे। एशिया में बर्मा एक ऐसा देश है जहाँ विरोधियों को सख्ती और निर्ममता से दबाया जाता है। आज इस देश में ग्रामीण इलाकों से नियुक्त देशी सेना का शासन पर कब्जा है।

कम्बोडिया में अभी राजनैतिक अस्थिरता कायम है। हालाँकि, इस देश में भी काफी कत्लेआम हुआ है। वियतनाम युद्ध के अंत में 1975 में खेमर रुज़ विजयी हुआ। उसने नागरिक विरोध को कुचला और क्रूर रूप से जन-हत्याएं कीं। ऐसी आशा की जाती है कि शान्ति वार्ता और समझौतों के माध्यम से कम्बोडिया में प्रजातंत्रीय व्यवस्था भले ही न जन्मे पर वह अधिक मानवीय तो बनेगा ही।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान का उपयोग कीजिए।

2) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से कीजिए।

1) हिंदेशिया किस प्रकार के प्रजातंत्र का दावा करता है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) थाई के उस राज्य का नाम क्या है जो हमेशा राजनीति से ऊपर रहा और जिसके कारण सहज संक्रमण से सहायता मिली।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) बर्मा में प्रजातंत्र का मुख्य अधिकारी और 1991 नोबल शान्ति पुरस्कार प्राप्त करने वाला व्यक्ति कौन था।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) कम्बोडिया की सेना के प्रधान का नाम बताइए जो अपने को साम्यवादी मानते हुए भी कत्लेआम में विश्वास रखता था।

.....

24.5 सारांश

पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से काफी अनेकरूपता है अतः इस पूरे क्षेत्र के बारे में कोई आम राय नहीं बनाई जा सकती है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के विश्व की अपेक्षा शीत युद्धोत्तर विश्व ज्यादा जटिल है। इस युग में एक तरफ जापान ऐसा देश है जहाँ संवैधानिक प्रजातंत्र है तो दूसरी तरफ बर्मा जैसा दमनात्मक शासन है। इन देशों के राजनैतिक विकास में आर्थिक मुद्दे की अहम भूमिका रही है पर केवल यही मुख्य कारक नहीं था। इन देशों में राजनैतिक गतिविधियों के निर्धारण में उपनिवेशवादी अनुभव, आतंरिक परम्पराओं, राजनीति में संभ्रांतों की भागीदारों की भी भूमिका रही है। अगली शताब्दी में नई समस्याएँ और नई परिस्थितियों का जन्म होगा और इन प्रत्येक देशों को इसे अपने-अपने ढंग से सुलझाना होगा। जापान की सर्वोच्च शक्ति को तैवान, सिंगापुर, हौंगकोग और दक्षिण कोरिया की तथाकथित चार शक्तियों की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। अगर सुधारों के कारण चीन में और राजनैतिक अस्थिरता नहीं पैदा हुई तो यह सैनिक और आर्थिक रूप से एशिया की सर्वोच्च शक्ति के रूप में उभर सकता है। शक्ति समूहों के नये गठबंधन और पुनर्गठबंधन से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है। आर्थिक जरूरतों और पर्यावरणीय मुद्दों के कारण एक अधिक संगठित और एकीकृत विश्व की आवश्यकता महसूस की जा रही है। दूसरी तरफ राष्ट्रवाद और उपराष्ट्रवाद भी तेजी से पनप रहा है। छिपे रूप में साम्राज्यवाद भी अपना अस्तित्व कायम रखे हुए है और उसी प्रतिबद्धता से उसका विरोध भी किया जा रहा है। इस बदलते विश्वपरिदृश्य में पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की निर्णायक भूमिका होगी। अतः इस क्षेत्र की राजनैतिक गतिविधियों का अध्ययन, विश्लेषण और इन्हें समझना भी जरूरी होगा।

24.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रिचर्ड बुटवेल, *साऊथ ईस्ट एशिया : ए पॉलिटिकल इंट्रोडक्शन,* न्यू यार्क : प्रेजर, 1975

मार्क बोर्टविक, *पेसिफिक कंट्री, बोल्डर* : बेस्टव्यू प्रेस 1992

24.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) साम्यवादी, पूंजीवादी

ख) उदारवादी प्रजातंत्र दल

ग) गठबंधन

बोध प्रश्न 2

1) ख

2) क

3) ख

बोध प्रश्न 3

1) निदेशित प्रजातंत्र

2) राजा भूमिवाले

3) आउंग सान की

इकाई 25 जातीयता और राष्ट्र-निर्माण

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 मातृभूमि का मनोविज्ञान

25.3 अन्तर-साम्प्रदायिक संबंधों की राजनीति
25.3.1 साम्प्रदायिक संघर्ष के पाँच रूप

25.4 दक्षिण पूर्व एशिया में जातीयता का भविष्य
25.4.1 वर्ग और साम्प्रदायिक तत्व

25.5 बहु-जातीय समस्या का निदान

25.6 सारांश

25.7 शब्दावली

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप दक्षिण पूर्व एशिया के कई देशों की जातीय राजनीति के बारे में अध्ययन करेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप :

- इन देशों में विभिन्न समुदायों के जातीय समीकरण को समझ सकेंगे,
- इन देशों में जातीयता द्वारा निर्धारित राजनीति को पहचान सकेंगे,
- इन देशों की राजनैतिक गतिविधियों में विभिन्न जातीय समूहों को शामिल करने के लिए उठाए जाने वाले कदमों का उल्लेख कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

दक्षिण पूर्व एशिया में जातीय समुदायों की अवस्थिति एक महत्वपूर्ण सामरिक तथ्य है। समय और खास स्थिति के अनुरूप अन्य तथ्य भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं पर इनका सामना भी जातीय मुद्दों से होता ही है। अतः हमें इस क्षेत्र के भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक और यातायात के बारे में जानना जरूरी है। इसके बावजूद विभिन्न भाषाभाषी और विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों के बसने की पद्धति को ठीक से समझना अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक है। दक्षिण पूर्व एशिया जातीय मानचित्र बहुत जटिल और एक जैसी प्रकृति का नहीं है। इसकी चार प्रमुख विशेषताएँ हैं।

1) प्रत्येक राज्य में कई जातीय समूह हैं।

2) जातीय समीकरण पर उपलब्ध आंकड़ों का उपयोग केवल जातीय नक्शों के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिए। क्योंकि दी गई संख्या के मुकाबले जातीय अल्पसंख्यकों की परम्परागत मातृभूमि का महत्व सामाजिक दृष्टि से कहीं अधिक है।

3) एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि राज्यों के सीमांत प्रदेशों में बहुसंख्यक नहीं बल्कि अल्पसंख्यक जातियाँ ही बसी हुई हैं, अतः सामाजिक रूप से उनका महत्व बढ़ जाता है।

4) कुछ अपवादों को छोड़कर इस क्षेत्र की भौगोलिक सीमाएँ जातीय मातृभूमियों को भी बाँटती हैं।

25.2 मातृभूमि का मनोविज्ञान

तुलनात्मक विश्लेषण से यह पता चलता है कि अपनी मातृभूमि में रहने वाले जातीय समूह का व्यवहार मातृभूमि से बाहर रहने वाले जातीय समूह के व्यवहार से भिन्न होता है। अपनी भूमि पर रहने वाले जातीय समूह में जातीयता की भावना उग्र होती है, जो दूसरी संस्कृतियों का विरोध भी करती है। अपने समुदाय से बाहर शादी न करना या दूसरी, राज्य की भाषा को न सीखना और उनके प्रति वैमनस्य का भाव भी रखती है। पर इस मातृभूमि भावना का एक सीधा परिणाम यह होता है कि यहाँ रहने वाले लोग इस भूमि पर केवल अपना ही अधिकार मानते हैं। मातृभूमि मनोविज्ञान को गौर से देखें तो पाएँगे कि इसमें भावनात्मक पहलु प्रबल है। कोई इसे मातृभूमि कहता है तो कोई जन्मभूमि/कोई इसे पितृभूमि कहता है तो कोई जन्मभूमि/कोई इसे पितृभूमि कहकर संबोधित करता है तो कोई इसे बाप-दादा की धरोहर मानकर चूमता है, कोई इसे अपने रक्त में प्रवाहित होता हुआ देखता है। मलय मलेशिया का बखान करते हुए भावुकता पूर्ण शब्दों में कहते हैं तन्य तुम्पेह न्या दरह कू (इस भूमि में मेरा रक्त बहता है)।

भावुकता का यह प्रवाह भूमि से जुड़ा है, जहाँ एक जाति के लोग परम्परा से रहते चले आ रहे हैं। ऐतिहासिक तथ्यों से यह हमेशा प्रमाणित भी नहीं होता। इतिहास की उन्हें परवाह नहीं होती। इतिहास उनके मूल के बारे में कुछ भी कहे वह अपने क्षेत्र को ही अपना देश मानते हैं। इतिहास की इस दलील से उनका कुछ लेना-देना नहीं कि वे कहीं दूसरी जगह से स्थानान्तरित होकर आए थे। मातृभूमि मनोविज्ञान महसूस करने की चीज है। यथार्थ से इसका कोई ज्यादा सम्बन्ध नहीं है।

मातृभूमि की इसी संकल्पना के कारण जातीय समूह अपनी भूमि पर केवल अपना अधिकार मानते हैं और समकालीन होने पर भी अपनी मातृभूमि में दूसरे जातीय समूह को विदेशी के रूप में देखते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि वे पीढ़ीदर पीढ़ियों से वहाँ रहते आ रहे हों। पर वे उनकी दृष्टि में बाहरी या बाहर से आकर बसे हुए लोग हैं और उनका यहाँ की भूमि पर कोई अधिकार नहीं है। ये "घुसपैठिए" आमतौर पर पास के देश से स्थानांतरित होते हैं, उदाहरणतया कई दशकों से बंगाली पड़ोसी राज्य असम में जाकर बसते रहे हैं। पर दक्षिण पूर्व एशिया में ऐसे लोग भी बसे हुए हैं जिनके पूर्वजों की भूमि वहाँ से काफी दूर है। मलेशिया और सिंगापुर के तमिल और हिंदेशिया, मलेशिया, फिलिपिन्स और सिंगापुर के चीनी इस प्रकार के कुछ उदाहरण हैं। सिंगापुर में चीनी समुदाय के लोगों की स्थिति बड़ी अजीब है। वे संख्या में सबसे ज्यादा हैं और राजनैतिक रूप से भी उनका वर्चस्व है। दूसरी ओर, राज्य के संविधान में मलय अल्पसंख्यकों को भूमिपुत्र माना गया है। अधिनियम 152 के अनुच्छेद 2 के अनुसार सरकार "मलयों की विशेष स्थिति को स्वीकार करती है, जो सिंगापुर के मूल निवासी हैं।" इधर हाल के वर्षों में इतिहसकारों ने इस बात पर जोर दिया है कि यूरोपीय खोज के दौरान लगभग पूरा द्वीप खाली था। इस तथ्य को सामने रखने का उद्देश्य अधिनियम 152 की वैधता और प्रासंगिकता को चुनौती देना है। इसके द्वारा भविष्य में अपने घर में या पड़ोसी राज्यों में मातृभूमि संबंधी अधिकारों के दावे के प्रश्न को समाप्त करने की कोशिश की जा रही है।

कुछ भी हो, यह एक स्थापित तथ्य है कि दक्षिण पूर्व एशिया में मातृभूमि का मनोविज्ञान मौजूद है। लोन नोल सरकार के अन्तर्गत कम्बोडिया से वियतनामियों का खूनी निष्कासन, पोल पॉट के अंतर्गत कम्बोडिया की चाम जाति का निष्कासन, 1970 के दशक के अंत में वियतनाम से चीनी समुदाय के लोगों का निष्कासन, 1950 के दशक और 1983 में बंगालियों के खिलाफ असमियों द्वारा किए जाने वाले दंगे इस प्रकार के कई उदाहरण हैं। अक्सर जातीय अल्पसंख्यक के किसी व्यक्ति, परिवार या समूह के साथ दुर्व्यवहार की घटना अक्सर होती रहती है। *भूमिपुत्र* या *प्रीबूमी* की संकल्पना से जुड़ी नीतियाँ इसे वैधता भी प्रदान करती हैं। "माटी के लाल" की संकल्पना पर जोर दिया जाता है और "बाहरी व्यक्तियों," को भूमिपुत्र का अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए खाली स्थान पर उत्तर लिखें।

2) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाए।

1) मातृभूमि का मनोविज्ञान क्या है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

25.3 अंतर-साम्प्रदायिक संबंधों की राजनीति

यहाँ हम दक्षिण पूर्व एशिया के इतिहास के समकालीन औपनिवेशोत्तर चरण में अन्तर-साम्प्रदायिक संबंधों की कुछ राजनैतिक पद्धतियों की विशेषताओं को पहचानने का प्रयास करेंगे। इसके साथ-साथ इन बहुजातीय समाजों की कुछ समस्याओं का भी विश्लेषण करेंगे। यहाँ के संभ्रांत लोगों ने यहाँ की राजनैतिक व्यवस्थाओं का आधुनिकीकरण करने और इसे कार्य रूप देने का प्रयास किया है। दो या दो से अधिक साम्प्रदायिक समूहों के बीच का संबंध, संघर्ष और सहयोग निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है।

1) प्रत्येक समूह के अधीन *आनुपातिक संसाधन*, ये संसाधन हैं : जनसंख्या संबंधी अर्थात् आनुपातिक संख्या, संगठनात्मक–संगठन की क्षमता और इनका राजनैतिक उपयोग, आर्थिक–वित्त उत्पादन के साधन या व्यापार माध्यमों पर नियंत्रण, तकनीकी–आधुनिक निपुणता की प्राप्ति, अवस्थिति-राज्य के तंत्र पर नियंत्रण या प्रभाव और वैचारिक सामूहिक उद्देश्य के लिए मानक आधार। इन उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्तर-साम्प्रदायिक संबंधों की गुणवत्ता और शोध निर्धारिक तत्व निम्नलिखित हैं।

2) राज्य तंत्र पर नियंत्रण रखने वालों और संघटित समूहों के नेताओं के बीच लक्ष्य को लेकर समता या असमता अगर लक्ष्य एक ही है, जैसे, आत्मसात्करण, तब आनुपातिक संसाधन कुछ भी हो, समझौता होने की गुंजाइश रहती है। अगर लक्ष्य अलग-अलग हों, एक आत्मसात्करण चाहता हो, दूसरा स्वायत्ता, तब तनाव और संघर्ष पैदा होता है और यहाँ दलों को प्राप्त आनुपातिक संसाधनों से परिणाम निर्धारित होता है। कभी-कभी विभिन्न समूह कुछ मुद्दों (जैसे नागरिकता का मुद्दा) पर तो सहमत हो सकते हैं पर अन्य (राष्ट्रीय भाषा) पर असहमत। अतः लेन-देन द्वारा बात तय होती है।

3) इसके साथ एक तीसरा निर्धारक तत्व सामने आता है, मान्यताएँ, नियम, कानून और संरचना, *द्वंद्व प्रबंधन के लिए संस्थाएँ*। इस प्रकार की समस्याओं के अभाव में अन्तर-समूह संबंधों को नियत नहीं किया जा सकता और समूह माँग को न तो ठीक से सामने रखा जा सकता है न परिणामों को नियमित किया जा सकता है।

25.3.1 साम्प्रदायिक संघर्ष के पाँच रूप

सबसे पहला और अभी तक सबसे ज्यादा प्रचलित और महत्वपूर्ण प्रकार है *केन्द्रोन्मुख* पद्धतियाँ। इस प्रकार के मामले में एक साम्प्रदायिक समूह या साम्प्रदायिक गठबंधन केन्द्र की राजनैतिक व्यवस्था, संसाधनों और राज्य सत्ता के तंत्र पर प्रभुत्व होता है और दूसरे साम्प्रदायिक समूह का व्यवस्था की सीमा पर प्रभुत्व होता है। यह जरूरी नहीं है कि राजनैतिक केन्द्र राज्य व्यवस्था के भौगोलिक केन्द्र में अवस्थित हो। दक्षिण पूर्व एशिया में दो सम्प्रदाय आपस में टकराते रहते हैं परिधीय समूह राजनैतिक केन्द्र से कुछ भौगोलिक दूरी पर अवस्मित होता है अतः उनकी आनुपातिक स्वयत्ता को केन्द्र सैनिक शान्ति और प्रशासनिक सेवा के माध्यम से नियंत्रित करने की कोशिश करता है। केन्द्र को शासित करने वाला सम्प्रदाय राज्यव्यवस्था की बहुसंख्यक स्थिति में हो यह जरूरी नहीं है पर आमतौर पर यह सबसे बड़ा संघटित समुदाय होता है

बर्मा में केन्द्र पर बर्मियों का नियंत्रण है। इस देश में 1948 की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्थिरता नहीं रही। इसका मुख्य कारण केन्द्र में बैठे राजनैतिक और सांस्कृतिक रूप से सभ्रांत बर्मी लोगों की अक्षमता और शन, केरेन, काचिन, अरकानी, और मोन जैले पिरधीय लोगों द्वारा आत्मसात्करण के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करना है। हालाँकि संविधान में अल्पसंख्यकों की स्थिति के संरक्षण के लिए संघीय संस्थाओं का प्रावधान है पर केन्द्र एक "राष्ट्रीय एकता" की बात कर रहा है तो परिधीय समूह व्यापक स्वायत्ता की माँग कर रहे है। पड़ौसी देश थाईलैंड में बर्मा की अपेक्षा

परिधीय समूहों का जनसंख्या में अनुपात ज्यादा है। पर वे प्रभावी रूप से संगठित नहीं हैं। थाईलैंड के चार दक्षिण राज्य मलेशिया; मेओ और मेओ से जुडें है। यहाँ मलय मुस्लिम रहते हैं। उत्तरपूर्व इलाके में थाई-लाओ रहते हैं, और लाओस की सीमा पर वियतनामी मूल के निवासी रहते हैं। अभी तक इन लोगों से राज्य की सुरक्षा को कोई खतरा नहीं था। अतः इन्हें आत्मसात करने की बजाय इनकी उपेक्षा की जा रही थी। हिंदचीन मुद्दे और इस क्षेत्र की अन्य अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के कारण अब थाई सरकार इन परिधीय लोगों के प्रति सचेत हुई है और अल्पसंख्यकों के असंतोष को कम करने के प्रयास कर रही है जो राजनैतिक व्यवस्था में शामिल होने की स्थिति में नहीं हैं न ही इन्हें प्रोत्साहित किया जा रहा है।

1954 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद हिंदचीन राज्य में अपनी जातीय समस्याओं को न सुलझा पाने के कारण अशांति फैली हुई है। परिधीय जनता हिंदचीन की पहाड़ियों पर रहती है जो कुल इलाके का दो तिहाई हिस्सा है। ये खुले घूमते हैं : राज्य की औपचारिक सीमाओं का ये अक्सर निरादर करते हैं और गृह युद्ध में इनका बड़ा हाथ होता है। सोवियत अल्पसंख्यक सिद्धांत और प्रथा से प्रभावित होकर वियतनाम के हनोई शासन ने कबीलाई जनता के सम्मान को बनाए रखने, उनकी भाषा और संस्कृति के विकास और इस प्रकार उनका समर्थन प्राप्त करने और मुख्य धारा में शामिल होने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने का सराहनीय कार्य किया है।

हिंदेशिया में जावा मूल के निवासियों का भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से वर्चस्व है। स्वतंत्र होने के बाद हिंदेशिया में गर्र जावाई अल्पसंख्यकों के संघर्ष वहाँ की राजनीति का एक महत्वपूर्ण आयाम है। खासकर जावा में सूडानी, सुमात्रा में चीनी, बटाख, मीनांगकाबाऊ और तटीय मलय, सुलवेसी में मकसरी और बुगीनी और कालीमंटन में तटीय मलय जावानी प्रभुत्व का विरोध और अपनी स्वायत्ता स्थापित करने के लिए संघर्ष करते हैं। बाहरी द्वीप में भरपूर प्राकृतिक संसाधन हैं, आर्थिक रूप से वहाँ उत्पादकता ज्यादा है और वहाँ भाषाई और सांस्कृतिक विविधता है और जावा की अपेक्षा इस्लामी मूल्यों और प्रथाओं की ओर ज्यादा झुकाव है। दूसरी ओर जावाई लोग प्रशासनिक व्यवस्थाओं और सेना में छाए हुए हैं। हिन्देशिया एकात्मक और संघीय संविधानों के बीच डोल रहा है और जावाइयों के कथित राजनैतिक वर्चस्व और आर्थिक शोषण के खिलाफ बाहरी द्वीप में रहनेवाले लोगों ने कई विद्रोह किए हैं। सुकानों की "प्रवास नीति" के अन्तर्गत जावा की जनसंख्या कम करने के लिए जावा जाति के लोगों को बाहरी द्वीपों में ले जाकर बसाया गया। इसका जम कर विरोध हुआ और इसे जावाई उपनिवेशवाद कहकर प्रतिरोध किया गया।

जावाइयों ने अपने समकालीनों पर अपनी भाषा या रीति-रिवाजों को थोपने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने मलय और मिनंगकाबड़ अल्पसंख्यकों की भाषा को थोड़े बदले हुए रूप में हिन्देशिया की राजभाषा और राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर लिया। हिन्देशिया के सभी जातीय समूहों ने इस भाषा को राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर लिया है। इसके अलावा राष्ट्रवाद की विचारधारा और हिन्देशियाई राष्ट्रीय सेना इस बहुजातीय देश को एक साथ रखने में काफी हद तक सफल रही है। हिन्देशिया सेना के सेनाध्यक्ष जनरल सुहातों ने जावाई प्रभुत्व को बरकरार रखने के लिए और जावाई लोगों को जकार्ता सरकार में कुछ सैनिक, राजनैतिक और प्रशासनिक पद दिए और उन्हें एक हद तक आर्थिक और प्रशासनिक स्वायत्ता भी प्रदान की।

सभी राजनैतिक व्यवस्थाओं में केन्द्र में रह रहे संभ्रांत लोग यह आशा करते हैं कि परिधीय समूह धीरे-धीरे व्यापक संस्कृति को स्वीकार कर लेगा और बड़े समाज में घुल-मिल जाएगा। इस प्रकार बहुजातिवाद की समस्या जितनी जल्द हो सके समाप्त हो जाएगी। परिधि पर रहने वाले अधिकांश लोग बृहद संस्कृति में शामिल होने के इच्छुक नहीं होते हैं और उनमें घुलमिलकर अपना अस्तित्व कत्तई नहीं मिटाना चाहते हैं। चूँकि परिधि पर रहने वाले लोगों के कब्जे में बड़े और अक्सर सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्र होते है अतः केन्द्रीय सरकार लाचार और मजबूर होकर इनकी माँगे मानती हैं और इन्हें साथ लेकर चलने का प्रयत्न करती है। परिधीय समूहों के संगठन की मजबूती पर माँग की पद्धति निर्भर करती है। क्षेत्रीय और सांस्कृतिक स्वायत्ता और वर्चस्व समूह द्वारा उनकी भूमि के औपनिवेशीकरण से स्वतंत्रता उनकी प्रारम्भिक माँग होती है, और भी संगठित होने पर वे अपनी आर्थिक और सामाजिक आकांक्षाओं के अनुरूप केन्द्र सरकार, सार्वजनिक सेवा और सार्वजनिक निवेश में अपना हिस्सा माँगते हैं और यहाँ तक कि विदेश विनिमय पर भी नियंत्रण चाहते हैं। परिधीय समूह अगर मजबूत होता है तो वह अपनी माँग मनवाने के लिए केन्द्र पर दबाव डालता है और केन्द्र न चाहकर भी स्वायत्ता की माँग को मानता है और राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था में उन्हें स्थान देता है।

परिआह उद्यमी अल्पसंख्यकों की भूमिका में अन्तर-जातीय राजनीति का दूसरा पहलू शामिल है।

कंबोडिया में वियतनामी अल्पसंख्यक और बर्मा में क्षय हो रहे भारतीय समुदाय को छोड़कर इससे चीनी अल्पसंख्यकों का बोध होता है। दक्षिण पूर्व एशिया के सभी देशों में चीनी अल्पसंख्यक अच्छी खासी संख्या में मौजूद हैं जिनका थोक और खुदरा वितरण, वित्त, छोटे उद्योगों, यातायात और निपुणता मूलक व्यापारों पर वर्चस्व है। दक्षिण पूर्व एशिया में आई स्वतंत्रता की लहर से राजनैतिक और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। इसका विकास आर्थिक राष्ट्रवाद के रूप में भी हुआ और चीनी मूल के लोग इसका स्पष्ट निशाना बने। मलेशिया और सिंगापुर को छोड़कर, जहाँ यह पद्धति लागू नहीं होती है, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दक्षिण पूर्व एशिया में चीनी मूल के लोगों को असुरक्षा और परेशानी के माहौल में जीना पड़ रहा है। उन पर निष्ठावान न होने, विदेशी (कुओमिनतांग और साम्यवाद) विस्तार और विध्वंस का एजेंट होने का आरोप लगाया गया, कुछ देशों में उन्हें नागरिकता देने से मना कर दिया गया, कुछ जगह तो इसे स्वीकृति ही नहीं मिली और कहीं दूसरे दर्जे की नागरिकता प्रदान की गई। उनके विद्यालयों और सांस्कृतिक संस्थाओं को तंग किया गया और कई बार बंद कर दिया गया, उन्हें कुछ खास रोजगारों से बाहर कर दिया गया (कम से कम कानूनी तौर पर) और यहाँ तक कि कुछ भौगोलिक क्षेत्रों से भी निकाल बाहर किया गया, कुछ तइवान और कुछ अपनी मूल भूमि चीन लौट गए। सरकारी विरोधी रवैये और दंड प्राप्ति के बावजूद चीनियों ने अदभुत संयम, संसाधन क्षमता और दृढ़ जिजीविषा का परिचय दिया। इसका मुख्य कारण यह रहा कि वहाँ के देशी व्यापारी निपुण व्यापारी नहीं हैं। वे दलाल की महत्वपूर्ण आर्थिक भूमिका नहीं निभा सके। वे चीनियों की तरह छोटे पैमाने के उत्पादन में भी निपुण नहीं हैं जबकि चीनी व्यापारी इसे प्रभावी ढंग से सम्पन्न करने और मुनाफा कमाने में सफल रहे हैं। दक्षिण पूर्व एशिया की सभी सरकारों ने चीनी निवासियों के लिए अपने-अपने ढंग का नियम बनाया है। इस जटिल यथार्थ को सरलीकृत करने के लिए उन्होंने इस समस्या का इस प्रकार से निदान ढूँढा है।

चीनियों को स्थानीय नागरिकरण कबूल करने, स्थानीय भाषा का उपयोग करने, स्थानीय धर्म अपनाने, अंतर्जातीय विवाह करने, अपनी अस्मिता को पूर्ण रूप से वर्चस्व समूह में समाहित करने की छूट है। पीढ़ियों से इस क्षेत्र के चीनियों ने स्वेच्छा से यह रास्ता अपना लिया है, अतः इनमें से कई आज पूर्ण रूप से समाहित कंबोडियन, फिलिपिन्स, थाई या जावाई हैं। आत्मसात्करण की इस नीति को थाई सरकार और हिन्देशिया काफी प्रोत्साहन दे रही है। इसके अनुसार चीनियों को अपनी मूल पहचान भूलनी होगी। इसके बदले में उन्हें व्यक्तिगत सुरक्षा प्रदान की जाएगी और समाज में उनकी आर्थिक निपुणता का सदुपयोग किया जाएगा। बहुजातीयता को समाप्त कर एक पृथक समूह के रूप में चीनियों के अस्तित्व को समाप्त कर दिया जाएगा। *परिआह स्थिति* के तहत चीनियों को राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं है, कुछ खास पेशे तक ही उन्हें सीमित रहने की इजाजत है और पुलिस, सेना तथा अन्य नागरिक सेवाओं के लिए उन्हें भुगतान करना पड़ता है और स्थानीय राजनीतिज्ञ और सैनिक अधिकारी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता है। उनके विद्यालयों और सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थिति ढुलमुल और असुरक्षित होती है। उन्हें नागरिकता प्रदान नहीं की जाती और अक्सर इसे प्राप्त करने का अवसर भी नहीं दिया जाता। अधिक से अधिक दूसरे दर्जे की नागरिकता प्रदान की जाती है और यह नागरिकता भी काफी असुरक्षित रहती है। इस अपमान और प्रताड़ना के बावजूद चीनी लोग आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो रहे हैं, देश के अन्य लोगों की अपेक्षा उनके रहन-सहन का स्तर काफी ऊंचा है और काफी लोग चीन जाना चाहते हैं। उच्च जीवन स्तर के लिए उन्होंने अपनी परिआह स्थिति स्वीकार कर ली है। उन्हें ऐसा जीवन स्तर कहीं नहीं मिलेगा। उनके मन में यह भी आशा है कि एक बार राष्ट्रवाद का आरम्भिक चरण समाप्त होने पर उनकी स्थिति में कुछ सुधार होगा। *प्रति व्यक्ति शुल्क* शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों और साधन सम्पन्न व्यक्तियों के बीच सहजीविता। दक्षिण पूर्व एशिया के शासकीय संभ्रांतों में से कई लोग, जिसमें थाईलैंड और हिन्देशिया के सेनानायक भी शामिल हैं, सम्पन्न और वाणिज्यिक रूप में निपुण चीनियों के साथ मिलकर व्यापार कर मुनाफा कमाना चाहते हैं। सुमात्राई रबड़ को बेचने से लेकर बैकांक में होटल निर्माण तक में शामिल हैं। इस प्रकार उद्यमी चीनी इस स्थिति का लाभ उठाकर खुद भी सम्पन्न होते हैं और उनके परिवारों और दोस्तों को नौकरियाँ दिया करते हैं और इसके बदले में वे चीनी हितों की रक्षा करते हैं।

दक्षिण पूर्व एशिया के बुद्धिजीवी और राजनीतिज्ञ चीनियों के प्रति विद्वेष और ईर्ष्या का भाव रखते हैं और उन पर आक्रमण भी किए जाते हैं। पर चीनी मूल के निवासी भी दक्षिण पूर्व एशिया में अपनी स्थिति को लेकर दुविधा में हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण पूर्व एशिया में जन्म लेने के कारण वे चीन लौटने को इच्छुक नहीं हैं जिसे उन्होंने कभी देखा ही नहीं है। कुओमितांग शासन के अलावा, जिसने विदेश में रह रहे सभी चीनियों को चीन की जनता में शामिल किया था, बीजिंग सरकार ने उन्हें अपने को दक्षिण पूर्व एशिया से जुड़ने की सलाह दी है और अपने

अपने देश की संस्कृति में मिल जाने को कहा है। परन्तु किन शर्तों पर। ऐसा लगता है कि जानयांग (विदेशी) चीनी बहुजातीय समाज के पक्ष में हैं, वे पूर्ण नागरिक विशेषाधिकार और अप्रतिबंधित आर्थिक अवसर प्राप्त करना चाहते हैं। वे यह भी चाहते हैं कि सांस्कृतिक अस्मिता और अलग समुदाय के रूप में उनकी स्वायत्ता बनी रहे। दक्षिण पूर्व एशियाई सरकारें खासकर इसी के खिलाफ हैं और समझौता करने को तैयार नहीं है।

अधिक से अधिक, जैसा कि थाईलैंड में है, वे चीनी लोगों के पूर्ण आत्मसात्करण के पक्ष में हैं। उनकी अलग अस्मिता उन्हें स्वीकार नहीं है। अगर ऐसा न हो तो वे देश छोड़कर चले जाएं या एक विदेशी समुदाय के रूप में उन पर निगरानी रखी जाए। अतः परिणाम इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वहाँ के मूल निवासी क्या देना चाहते हैं बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि दक्षिण पूर्व एशिया के चीनी लोग क्या स्वीकार करना चाहते हैं। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि मूल निवासी आर्थिक क्षेत्र और उद्यम में चीनी लोगों को किस हद तक स्थानापन्न कर सकते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया की अर्थव्यवस्थाओं में चीनी लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका है और उनका महत्व आर्थिक महत्व के साथ जुड़ा रहेगा।

दक्षिण पूर्व एशिया में साम्प्रदायिक राजनीति का तीसरा रूप संतुलित बहुजातीयता के नाम से जाना जाता है। इसके तहत शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के तहत साम्प्रदायिक सद्भाव और सामाजिक संरचना और राजनैतिक गतिविधि में सभी लोगों की हिस्सेदारी पर बल दिया जाता है। मलेशिया इसका आदर्श उदाहरण है। वहाँ विभिन्न साम्प्रदायिक समूहों की उपस्थिति से राजनैतिक संघर्ष परिभाषित होता है और उसी से वर्चस्व समूह का निर्धारण भी होता है। वहाँ मलय और चीनी दो बड़े जातीय समूह हैं और अपनी संख्या के कारण वे अपने को दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों में मौजूद *पारिवार स्थित* से मुक्त रखने में सफल हैं। 1957 ई. में स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले बहुजातीय संभ्रांत गठबंधन (गठबंधनदल) का वहाँ पर शासन रहा है। यहाँ पर उदारवादी अंग्रेजी शिक्षित मलय अभिजात्य वर्ग और चीनी पूंजीपतियों का शासन रहा है। इसमें भारतीय अल्प संख्यकों का भी प्रतिनिधित्व रहता है। मलेशिया के निर्माण के क्रम में 1963 में साररक और सबह के बोर्नियो राज्यों को सम्मिलित किए जाने के बावजूद वहाँ के राजनैतिक ढाँचे में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं आया है। राजनैतिक रूप से मलयों का राष्ट्रीय संसद, मंत्रिपरिषद, नागरिक सेवा, राज्य सरकारों और राज्यत्व वस्माओ की विभिन्न संस्थाओं पर कब्जा है। पर गैर-मलयों को नागरिकता, रोजगार और राजनैतिक भागीदारी का अधिकार प्राप्त है, पर राजनीति पर उनका नियंत्रण नहीं है। दूसरी तरफ वित्त, उद्योग, व्यापार और विभिन्न पेशों पर यूरोपीय लोगों के स्थान पर चीन मूल के निवासियों का कब्जा है। हालांकि बहुत से चीनी गरीब भी हैं पर बहुत से मलयों से उनकी स्थिति अच्छी है।

वे यह समझते हैं कि सिंगापुर को छोड़कर दक्षिण पूर्व एशिया के अपने अन्य बंधुओं की अपेक्षा उनकी स्थिति बेहतर है। इसके बावजूद मलयी चीनी अपनी दूसरे दर्जे की नागरिकता, मलय भाषा को एक मात्र राजभाषा बनाए जाने और शैक्षिक उपायों का प्रतिरोध करते हैं। उनका यह मानना है कि आर्थिक दृष्टि से यह सब भेदभावपूर्ण है और चीनी संस्कृति के अस्तित्व के लिए खतरा है। इन भावनाओं के कारण निश्चित रूप से गठबंधन दल के भीतर तनाव की स्थिति पैदा होती है। इन तनावों से 1969 में चुनाव के बाद साम्प्रदायिक दंगे हुए। पर इसके बावजूद गठबंधन ढ़ाँचा बरकरार है क्योंकि लोग यह समझते हैं कि एक वैध सरकार के लिए साथ काम करना जरूरी है, अन्यथा सब कुछ बिखर जाएगा और दमनकारी एक प्रजातीय शासन की शुरुआत हो जाएगी। बहुजातीयता मलेशिया की मूलभूत सच्चाई है जो इसके धार्मिक, सांस्कृतिक, रिहाइशी, पेशे संबंधी और राजनैतिक ढाँचों से प्रतिबिंबित होता है। जाति, धर्म और जीवन शैली में इतने अलग दो लोगों का एक ही स्थान पर सहअस्तित्व बहुत कम स्थानों में देखने को मिलता है। ये तत्व आपस में इतने घुल-मिल गए हैं कि प्रांतीय स्वायत्ता की यहाँ कोई गुंजाइश नहीं है। बीहड़ तनाव, कभी-कभी होने वाले संघर्ष, मलयों और चीनियों के अपने-अपने असंतोष और पूर्वी मलेशिया में देशीय समूहों को न शामिल किए जाने के बावजूद यह गठबंधन सरकार इस बहुजातीय समाज को एक स्थाई सरकार देने में सक्षम रही है। इस व्याख्या में दोनों दल मजबूत हैं और एक दूसरे को हानि पहुँचा सकते हैं। पर उनके बीच एक संतुलन, एक गठबंधन और आपस में मिलकर काम करने की स्थिति बनी हुई है। इसी शक्ति संतुलन के कारण यह व्यवस्था शांतिपूर्ण तरीके से चल रही है।

फिलिपिन्स में दूसरे प्रकार की संतुलित बहुजातीयता देखने को मिलती है। ईसाई धर्म को मानने वाले फिलिपिन्स आठ प्रमुख जातीय-भाषाई समूहों में बटें हुए हैं। इनमें सबसे बड़ा समूह पूरी जनसंख्या के एक चौथाई से भी कम है। क्षेत्रीयता आधारित ये समूह अपने सामुदायिक हितों को

अच्छी तरह सामने रखते हैं। तागालोग को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार न किए जाने के पीछे एक बड़ा कारण यह था कि अन्य गैर-तागलोग समूहों ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार 1950 के दशक में हूक गण मध्य लूजोन स्थिति पेपेंगो भाषाभाषी इलाके में बाहर अपना विद्रोह फैलाने में असफल रहे। इसकी असफलता के पीछे मैगसेसे के प्रभावी विद्रोह विरोधी प्रयास का जितना हाथ था पर इसके साथ-साथ गैर पेपेंगो भाषा भाषियों के इस विद्रोह में शामिल न होने की इच्छा का भी महत्वपूर्ण योगदान था। हालांकि ईसाई धर्मावलंबी फिलिपिन्स निवासियों के बीच जातीय अंतर बहुत संगीन नहीं है और दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों के समान यहाँ की राज्य व्यवस्था पर जातीय बंधन का उतना दबाव नहीं है। राष्ट्रीय पहचान की भावना प्रबल है और मनीला में रहने वाले तागालोग गण भी दूसरे समूहों पर अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर पाते हैं। आठों समूहों में शीघ्र संतुलन बना रहता है। फिलिपिन्स ईसाई धर्मावलंबियों की संख्या कुल जनसंख्या का 92 प्रतिशत है। वे अपने बीच की जातीय प्रतिद्वंद्विता में सामंजस्य स्थापित करना जानते हैं। हालांकि इस संतुलित बहुजातीयता में भौगोलिक रूप में संकेन्द्रित मुसलमान अल्पसंख्यकों को शामिल नहीं किया गया है।

दक्षिण पूर्व एशिया में एक चौथा रूप भी मौजूद है। बहुत व्यापक न होने के बावजूद यह महत्वपूर्ण है। यह है फिलिपिन्स मुसलमान धर्मावलंबी द्वारा चलाया गया पुनः संयोजनवादी संघर्ष। ये मलेशिया के मुसलमान बहुल सबह राज्य और हिंदेशियाई बोर्नियो से सटे पश्चिमी मिन्डाको और सूल द्वीप-समूह में रहते हैं। उनके संभ्रांत सदस्यों को राजनैतिक संरक्षण देने की कोशिश की गई है और उन्हें सार्वजनिक सेवाओं में शामिल किया गया है। पूरी जनसंख्या में उनकी सख्या 4 प्रतिशत है पर फिलिपिन्स राज्य व्यवस्था में उन्हें सफलतापूर्वक आत्मसात नहीं किया जा सका है। इसके अलावा सरकार द्वारा पश्चिमी भिडांको में हजारों ईसाई धर्मावलंबियों को बसाने का प्रयत्न करने से मुसलमान अल्पसंख्यकों का अलगाव और बढ़ गया है। ईसाई धर्मावलंबियों ने उनकी जमीनें दखल करनी शुरू कर दी हैं जिसे मुसलमान परम्परागत रूप में अपना मानते हैं, हालांकि उन्हें कभी भी इस भूमि की मिल्कियत प्राप्त नहीं हुई। फिलहाल मुसलमान बहुत भिन्डांको में सुसंगठित अलगाववादी आंदोलन चल रहा है जो मनीला की सरकार के लिए सिरदर्द बना हुआ है। इसके अलावा दक्षिण पूर्व एशिया में लोगों की जटिल अवस्थिति में भी अन्य पुनः संयोजनवादी स्थितियाँ शामिल हैं। मलाया की सीमा से सटे थाईलैंड के चार दक्षिण प्रांतों में मलय मुसलमानों की अवस्थिति, थाईलैंड और खासकर वियतनाम में कंबोड़ियाई अल्पसंख्यक और बर्मा में थाई भाषी शान लोगों की मौजूदगी इसके कुछ उदाहरण हैं।

सिंगापुर में एक पाँचवीं स्थिति मौजूद है और यह अपने आप में एक अलग मामला है। इसकी 2.75 मिलियन जनसंख्या में 75 प्रतिशत चीनी मूल के लोग, 15 प्रतिशत मलय और बाकी भारतीय, यूरासियाई और यूरोपीय मूल के लोग हैं। मलय मूल के लोगों को वर्चस्व के कारण चीनी इस क्षेत्र में अपने को बहुत सुरक्षित नहीं महसूस करते। मलय लोग विदेशी अतिक्रमण से आशंकित रहते हैं और चीनी लोगों की आर्थिक निपुणता और सम्पन्नता से ईर्ष्या करते हैं। अतः सिंगापुर सरकार चीनी मामले को दबाए रखना चाहती है। क्षेत्र के प्रति प्रतीकात्मक सम्मान रखने के लिए मलय को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। सरकारी कामकाज और माध्यमिक स्तर तक शिक्षा मे चार भाषाएँ—मंदारिन, तमिल, मलय और अंग्रेजी, प्रयुक्त होती हैं। पर वस्तुस्थिति यह है कि अंग्रेजी यहाँ की प्रमुख भाषा है। इस "विषम समाज" के निर्माताओं ने सिंगापुर को दक्षिण पूर्व एशिया का एक प्रमुख विश्ववादी और तकनीकी रूप से वित्त, व्यापार और उद्योग के एक परिष्कृत केन्द्र के रूप में विकसित करने का विचार रखा था। उनके विचार में इसके लिए सिंगापुर की शिक्षा, अर्थव्यवस्था, पेशे और सरकारी संस्थाओं में वित्त और उच्च तकनीक की अंतर्राष्ट्रीय भाषा का उपयोग होना चाहिए। हालाँकि प्रतीकात्मक और सांस्कृतिक स्तरों पर एशियाई भाषाओं को बढ़ावा दिया जाता है। पर लोग अंग्रेजी की ओर अंधाधुंध दौड़ रहे हैं। हालाँकि चीनी वर्चस्व वाले और अंग्रेजी भाषी समाज में मलय कुंठित हैं, पर आर्थिक रूप से कमजोर होने और कम संख्या में होने के कारण वे बहुत कुछ कर नहीं सकते हैं। अधिक से अधिक मलेशियाई और हिंदेशियाई सरकारें उनका पक्ष ले लेती हैं। एक महत्वपूर्ण और दूर तक खिंचने वाला मुद्दा यह है कि कब तक समृद्धि और आत्मबल से परिपूर्ण चीनी समुदाय के लोग चुपचाप बैठे रहेंगे और सरकार की टालने की नीति स्वीकार करते रहेंगे। कब तक उन्हें शक की निगाह से देखा जाता रहेगा और कब तक वे यह सब कुछ सहन करते रहेंगे। अभी से ही सिंगापुर सरकार ने भाषाई मुद्दे को लेकर एक नीति का कार्यान्वयन किया है जिसके अन्तर्गत चीनी मूल के लोगों के लिए मंदारिन भाषा के विषय पर जोर दिया गया है और देश में चीनी अस्मिता को बनाए रखने का प्रयत्न किया गया है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : सही उत्तर पर सही (✓) का चिह्न लगाइए।

1) शाम, कोरियाई और काचिन जातीय समुदाय किस देश में बसते हैं।

   क) कम्बोडिया [ ]

   ख) थाईलैंड [ ]

   ग) बर्मा [ ]

2) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दक्षिण पूर्व एशिया में सभी जगह चीनी मूल के लोगों को परेशानी का सामना करना पड़ा। केवल एक जगह ऐसा नहीं हुआ। वह है :

   क) लाओस और कम्बोडिया [ ]

   ख) थाईलैंड और हिन्देशिया [ ]

   ग) मलेशिया और सिंगापुर [ ]

25.4 दक्षिण पूर्व एशिया में जातीयता का भविष्य

दक्षिण पूर्व एशिया के वर्तमान क्षेत्रीय राज्यों की भौगोलिक सीमाओं में परिवर्तन की कोई संभावना नहीं है। सोवियत संघ के बिखरने और उत्तर यूरोप में युगोस्लाविया के विभाजन के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था का संस्थागत दबाव क्षेत्रीय वस्तुस्थिति बनाए रखने की ओर है। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष का अवसर कम रह गया है। सभी जगह क्षेत्रीय राज्यों की वर्तमान सीमाओं को बरकरार रखने के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता है। केवल दक्षिण फिलिपिन्स में मुसलमान असंतुष्टों का दबाव बढ़ा हुआ है इस स्थिरता के संभ्रांतों को "राष्ट्रीय" क्षेत्रों और लोगों पर अपना नियंत्रण मजबूत करने का अवसर प्राप्त होगा। परिधि पर केन्द्र की पकड़ और भी मजबूत होने की उम्मीद है। यह आर्थिक और प्रशासनिक गतिविधियों का सीधा परिणाम है। अलग-अलग देश की सरकारें एक दूसरे को केन्द्र के माध्यम से ही आर्थिक तकनीकी और सैनिक सहायता प्रदान करती हैं और केन्द्रीय सरकार के अभिकरणों के माध्यम से ही विदेशी निवेशकों और व्यापारियों से बातचीत की जाती है। दक्षिण पूर्व एशिया की केन्द्र सरकारें अपने परिधीय क्षेत्रों में नियंत्रण क्षेत्रों और सार्वजनिक सेवा के जरिए प्रविष्ट होना चाहती हैं और यह भी प्रयास किया जा रहा है कि इन देशों की घरेलू अर्थव्यवस्थाएं तेजी से एकीकृत हो जाएँ। आपसी विद्वेष और केन्द्र की बढ़ती शक्ति के कारण परिधीय लोगों का केन्द्र के सामने टिक पाना मुश्किल है।

कहीं-कहीं स्थिति इसके विपरीत भी है। आधुनिकीकरण के साथ कुछ परिधीय समूह अपने को प्रभावी तरीके से गोलबंद करेंगे और आर्थिक संसाधन प्राप्त कर अपनी सौदेबाजी को शीघ्र मजबूत करेंगे। केन्द्र परिधि राज्यों के कुछ जातीय अल्पसंख्यकों ने वर्चस्व समूह में आत्मसात होने की इच्छा प्रकट की है। यहाँ मुद्दा यह है कि उन्हें राज्य व्यवस्था और अर्थव्यवस्था में किन शर्तों पर सम्मिलित किया जाए। ये शर्तें विभिन्न समूहों को प्राप्त तुलनात्मक संसाधनों और उनकी अपनी आंकाक्षाओं पर आधारित होंगी। अतः एक ही देश के विभिन्न साम्प्रदायिक समूहों की स्थिति उस देश में भिन्न-भिन्न होगी। हिन्देशिया में अच्छे या सुमात्रा में रहने वाले परिधीय लोगों के पास पर्याप्त संसाधन हैं और उसके बल पर वे प्रशासनिक और आर्थिक स्वायत्ता की माँग करते हैं और जावानी केन्द्र सरकार से अभी भी नौकरियों में प्रतिनिधित्व और सार्वजनिक सेवाओं में स्थान की माँग करते हैं। दूसरी ओर पश्चिम इरिआन और पूर्व निमोरिज में कमजोर और विभाजित जनता है जिन पर हिन्देशिया ने जबरदस्ती शासन जमा रखा है। उन्हें अपंग बना दिया गया है और भौगोलिक रूप से दूरदराज के इलाके में रहने के कारण उन्हें कोई संरक्षण भी नहीं प्राप्त है। थाईलैंड में, उत्तरी पहाड़ी कबीलों के पास केन्द्र के मुकाबले इतना कम संसाधन हैं और केन्द्र सरकार की उनमें इतनी कम दिलचस्पी है कि हिन्देशिया मुद्दे की समाप्ति और उनकी तरफ से बाहरी हस्तक्षेप की संभावना लगभग समाप्त होने और एकपक्षीय समझौता होने के बाद उनकी स्थिति और भी नगण्य हो गई। दूसरी तरफ उत्तरपूर्व में रहनेवाला समूह निश्चित रूप से अपनी माँग सामने रखेगा और वस्तुतः बैंकांक सरकार से उन्हें पहले से ही सुविधाएँ मिल रही हैं लेकिन अभी यह स्पष्ट नहीं है कि वे व्यापक क्षेत्रीय स्वायत्ता का दावा करेंगे या थाई राजनैतिक और प्रशासनिक व्यवस्था में अपने को धीरे-धीरे घुला लेंगे। निश्चित रूप से थाई सरकार इसे पसंद

करेगी, बर्मा के परिधीय अल्पसंख्यक रंगून केन्द्र सरकार के खिलाफ विद्रोह जारी रखे हुए हैं। यहाँ अभी काफी दमनात्मक और निरंकुशतावादी सैनिक शासन है और इस शासन ने अपनी जनता को प्रजातांत्रिक अधिकारों से अलग कर अंतर्राष्ट्रीय मापदंडों का उल्लंघन किया है और अभी तक चुनाव द्वारा एक प्रतिनिधिक सरकार की स्थापना से इनकार करता रहता है। जैसे ही प्रजातंत्रीय आंदोलन इस निरंकुश सैनिक शासन को उखाड़ फेंकने में सफल होगा और प्रजातंत्र को स्थापित करने में सफल होगा वैसे ही परिधीय लोगों के प्रति केंद्र का रवैया सकारात्मक होगा।

केन्द्र-परिधि संघर्षों का समाधान युद्ध से भी हो सकता है और इसे ऊपर से थोपा भी जा सकता है। अगर इन दोनों तरीकों से बचना है तो माँगों को सही रूप में प्रस्तुत करने और उन्हें अपने पक्ष में करने के लिए एक संस्थागत ढाँचे की आवश्यकता होती है। आम प्रशासनिक माध्यमों से अन्तर-साम्प्रदायिक संबंधों को सुलझाने की प्रथा से परिधीय लोगों के हितों की अनदेखी होती है। वे परिधीय लोगों की विशेष स्थिति और खास समस्याओं को सही ढंग से पहचान नहीं पाते हैं। इसलिए अपने समझौते की ताकत को बढ़ाने के लिए परिधीय लोग विद्रोह का सहारा लेते हैं। केन्द्र में सत्ता की कुर्सी पर बैठे लोग राष्ट्रीय एकता के नाम पर अपनी सभी जनता को एक व्यक्ति के रूप में देखते हैं और उन पर भी वर्चस्व समूह पर लागू की जानेवाली प्रथाओं और मानदंडों को लागू करते हैं। यह समाधान परिधीय लोगों के लिए हमेशा ग्राह्य नहीं होता है। अतः साम्प्रदायिक संबंधों को सुलझाने और बहुजातीयता को वैध करार देने के लिए औपचारिक या अनौपचारिक संस्थाओं का होना जरूरी है। ये संस्थाएँ कम साम्प्रदायिक हितों को सही ढंग से प्रस्तुत करने में सक्षम होती हैं। सीधे तौर पर इसमें साम्प्रदायिक दलों, राजनैतिक दलों, सभ्रांत लोगों का संगठन, केन्द्र सरकार के मंत्रालयों, संघीय प्रबंधों या क्षेत्रीय इकाइयों खासकर साम्प्रदायिक मतभेदों से सम्बद्ध प्रबंधन को शामिल किया जाना चाहिए। दक्षिण पूर्व एशिया की सरकारें अब बहुजातीयता के यथार्थ को स्वीकार कर चुकी हैं और इस आलोक में केन्द्र सरकार द्वारा ऐसी संरचनाओं के निर्माण की उम्मीद की जा सकती है।

यह आशा की जाती है कि आने वाले वर्षों में दक्षिण पूर्व एशिया में जन्म लेने और बड़ी होने वाली चीन मूल की पीढ़ी अपसांस्कृतिकरण और अंतरजातीय विवाह के जरिए अपने को विभिन्न समाजों में समाहित कर लेगी। उनके अभिभावकों के लिए यह प्रक्रिया दुखदाई हो सकती है पर काफी लोग यह रास्ता अपनाएंगे क्योंकि इससे दक्षिण पूर्व एशिया में चीनी मूल के लोगों का जीवन सुधरेगा और उन्हें वहाँ सहज रूप में स्वीकार किया जा सकेगा। इसके अलावा चीनी मूल के निवासियों के पास कोई चारा नहीं है और इससे अधिक आकर्षक व्यक्तिगत विकल्प मौजूद भी नहीं है। कालान्तर से उनकी सांस्कृतिक यादें और प्रथाएँ मौजूद रहेंगी और उनका स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय संबंध भी कायम रहेगा पर एक समुदाय के रूप में चीनी मूल के होने की प्रासंगिकता नहीं रहेगी। थाईलैंड और कंबोडिया में इस नीति की सफलता से अन्य देशों—हिन्देशियन और फिलिपिन्स को भी प्रेरणा मिलेगी और इस तरह वहाँ चीनी समस्या के समाधान का रास्ता मिल जाएगा। व्यक्तिगत विकास या सामुदायिक रूप से सम्मान पूर्वक जीने के लिए चीनी मूल के लोगों को इससे बढ़िया अवसर प्राप्त नहीं होगा। पर सबसे अधिक समस्या हिन्देशिया के मुस्लिम बहुल इलाके में आएगी जहाँ चीनी लोगों को सबसे ज्यादा विरोध का सामना करना पड़ता है। चीनी लोग सुअर का माँस खाते हैं और उनके लिए इस्लाम को अपनाना दुःसाध्य कर्म होगा।

बहुजातीयता को वैध करार देने वाली दो व्यवस्थाओं में अलग-अलग दिशा में विकास हो सकता है। फिलिपिन्स में बहुजातीयता की समस्या बहुत जटिल नहीं है। वहां आठ ईसाई धर्मावलंबी जातीय समूहों में शक्ति संतुलन स्थापित है और इनमें से कोई भी जातीय समूह दूसरे जातीय समूह पर आधिपत्य नहीं जमा सकता। तागालोग भाषा को लादने का आरम्भिक प्रयास बाद में त्याग दिया गया। इस व्यवस्था में विभिन्न सामूहिक समुदाय अपने हितों के प्रति पूर्ण सचेत हैं और इसके साथ ही साथ वे राष्ट्रीय भावना की डोर से भी बंधे हुए हैं। फिलिपिन्स व्यवस्था में यह भी संभव है कि जातीयता के स्थान पर वर्ग संघर्ष हावी हो जाए। इसके विपरीत मलेशिया में मलयों और चीनियों के बीच दो ध्रुवीय तनाव में कोई कमी नहीं आ रही है। आधुनिक पीढ़ी के राजनीतिज्ञ, खासकर मलय, अपनी साम्प्रदायिक माँगों को लेकर समझौता करने को तत्पर नहीं हैं। मलय हमेशा केन्द्र सरकार पर अपना कब्जा जमाए रहते हैं और मलय भाषा नीति को लागू करने और शिक्षा तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में मलयों के वर्चस्व को स्थापित करने का प्रयत्न करते रहते हैं। दूसरी तरफ वे गैर-मलयों को सरकार में शामिल नहीं होने देते क्योंकि उन्हें भय है कि इससे "मलेशिया वासियों के लिए मलेशिया" प्रश्न पर विवाद छिड़ जाएगा। परेशान और तिब्बत चीनी मूल के निवासी इस समस्या के समाधान के लिए दो तरह का रास्ता अपनाना चाहते हैं। कुछ लोग सैनिक शक्ति के प्रयोग के पक्षधर हैं और कुछ लोग क्रांतिकारी कार्यों में विश्वास रखते

हैं। चीनी मूल के लोगों को अपने शैक्षिक और आर्थिक लक्ष्य के लिए प्रतिरक्षात्मक उपाय करने होंगे। राजनैतिक दल की आशा करना या राजनैतिक गतिविधियों में शामिल होने की आकांक्षा रखना अभी उनकी परिधि से बाहर है। एक आधुनिक विचार यह है कि संरचनात्मक बहुजातीयता के लिए स्तरीकरण अपरिहार्य है जिसमें एक साम्प्रदायिक समूह का वर्चस्व होता है। मलेशिया इस विचार का सबसे आदर्श परीक्षण स्थल है। इससे यह भी पता चल सकता है कि इस विचार पर आधारित राज्य व्यवस्था में संतुलित बहुजातीयता कायम रह सकती है या नहीं।

25.4.1 वर्ग और साम्प्रदायिक तत्व

आधुनिकता की ओर बढ़ते दक्षिण पूर्व एशिया में वर्ग और साम्प्रदायिक बंधुत्व के बीच कैसा और क्या संबंध है। इस क्षेत्र में वर्ग संघर्ष मौजूद है। वियतनामी, चीनी, थाई, मलय, ईसाई फिलिपिन्स निवासी शहर में रहने के साथ-साथ गाँव में भी रहते हैं और वे मालिक-दास के संबंधों को इनकार कर रहे हैं, कभी ये संबंध इन समाजों को जोड़ने में सक्षम रहे थे। ऐसा लगता है कि इन समाजों में एक अंतिम संघर्ष होकर रहेगा। सिंगापुर जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर यूरोपीय और उत्तरी अमरीकी शैली, जनकल्याण राज्य पद्धति से संघर्षों को शान्त करना अपर्याप्त सिद्ध हो सकता हैं। हालाँकि अभी इन राज्य व्यवस्थाओं में इस बात का कोई संकेत नहीं रहा है कि वर्ग बंधुत्व साम्प्रदायिक विद्वेष को पार करके नया आधार निर्मित कर रहा है। हाँ यह सही है कि अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए लोग सम्प्रदाय का अतिक्रमण करते हैं। इस प्रकार का लेनदेन काफी समझकर किया जाता है। पर यह कोई प्रभावी और संयोजित कार्य नहीं होता है और इससे किसी भी मायने में साम्प्रदायिक निष्ठा में कमी नहीं आती है। यह दिखाना बहुत आसान है कि अमुक वर्ग संघर्ष को साम्प्रदायिक संघर्ष का रूप दे दिया गया पर यह दिखाना मुश्किल है कि कोई जातीय संघर्ष वर्ग संघर्ष में बदल गया हो। जहाँ वर्ग और सम्प्रदाय के स्वार्थ आपस में मेल खाते हैं वहीं ऐसा अपवादस्वरूप हो जाता है। पर इस स्थिति में भी (उदाहरणस्वरूप सिंगापुर में मलय) वर्ग संघर्ष की नहीं बल्कि साम्प्रदायिक संघर्ष की भाषा का इस्तेमाल किया जाता है क्योंकि यह लोगों को अंदर तक प्रभावित करता है। आश्चर्य की बात है कि नगरीकरण का भी इस पर उलटा प्रभाव पड़ा। ऐसा माना जाता है कि नगरीकरण और आधुनिकीकरण से परम्परा, संकीर्णता, साम्प्रदायिक निष्ठाएँ समाप्त हो जाती हैं। पर तेजी से हुए नगरीकरण में ये प्रवृत्तियाँ और तेज हो गईं और ये नौकरी, घर, शैक्षिक उपलब्धता और राजनैतिक प्रभाव के साथ जुड़ गई।

25.5 बहु-जातीय समस्या का निदान

आने वाले कई वर्षों तक दक्षिण पूर्व एशिया में वर्ग और साम्प्रदायिक संघर्ष होते रहेंगे। साम्प्रदायिक झंडे के तहत अधिक आधुनिक और बँटे समूहों के बीच वर्ग संघर्ष होगा, पर वे अपनी साम्प्रदायिक सीमा का अतिक्रमण नहीं करेंगे। हालाँकि कई छोटे-छोटे जातीय समुदाय बड़े साम्प्रदायिक समूहों में समाहित हो सकते हैं, पर ये अपनी सीमाओं के बाहर नहीं जाएंगे। दक्षिण पूर्व एशिया में बहुजातीयता कायम रहेगी और राजनैतिक संभ्रांतों की नियोजित इच्छाओं के विपरीत ये अपनी समस्याएँ उठाती रहेंगी। इसके साथ ही साथ दक्षिण पूर्व एशिया की विभिन्न सरकारें इन परिधीय सम्प्रदायों को मुख्य धारा में शामिल करने के लिए कुछ कदम उठा सकती हैं। ये सात निदान राज्यों के वास्तविक अनुभव से गृहित हैं। जो सरकारें अपने विभिन्न जातीय समुदायों को एक साथ लेकर चलना चाहती हैं, उन्हें यह नुस्खा अपनाना पड़ेगा।

1) जातीय भावनाओं को प्रभावित करनेवाले मुद्दों, जैसे शिक्षा, भाषा, धर्म के सन्दर्भ में विकेन्द्रित निर्णय का प्रावधान। 1947 के बर्मा संविधान के तहत दी गई राष्ट्रीय स्वायत्ता से काम नहीं चलेगा। बेल्जियम और कनाडा के इतिहास से यह प्रमाणित है कि केन्द्र द्वारा सांस्कृतिक बहुजातीयता की नीति कार्यान्वित करने से समस्या का समाधान नहीं होगा और इससे विद्रोही भावनाओं को शांत नहीं किया जा सकेगा।

2) आम तौर पर केन्द्र के प्रतिनिधियों को जहाँ तक हो सके समझौते की नीति अपनानी चाहिए।

3) स्थानीय स्तर पर कानून को कार्यान्वित करने वाले प्राधिकरणों (खासकर "जनता के स्तर पर") में स्थानीय लोगों को ही शामिल किया जाना चाहिए। ऐसा न होने पर पुलिस का दमन बरकरार रहेगा और इससे जातीय-राष्ट्रीय विरोध का स्तर मुखर रहेगा।

4) ऐसी प्रशासनिक इकाइयों के निर्माण से भरसक बचना चाहिए जिससे जातीय मातृभूमि की भावना को बढ़ावा मिले या जो मातृभूमि से बड़ी हो पर उसमें कोई खास जातीय-राष्ट्रीय समूह का स्पष्ट वर्चस्व हो (जैसा कि नाइजेरिया के भूतपूर्व प्रांत बाइफ्रा के साथ हुआ था।) इनमें से किसी भी स्थिति में इस बात की प्रबल संभावना होती है कि यह प्रशासनिक इकाई अलगाववादी भावना के लिए भावनात्मक केन्द्र बन जाए।

5) जातीय राष्ट्रीय लोगों के वर्चस्व वाले स्थान को विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त करके रखना चाहिए। इस विभाजन से आने वाले समय में प्रशासनिक संभ्रांतों के कई दल बन जाएंगे, जिनकी स्थिति पर किसी भी प्रकार के आंदोलन का असर पड़ेगा। इन प्रशासनिक इकाइयों के साथ संभ्रांतों के हित पर्याप्त शक्ति से जुड़े रहें। स्वीटजरलैंड में इस तरह का प्रयोग हुआ है।

6) इस तरह की नीतियों को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए जिससे परम्परागत जातीय मातृभूमियों में बाहरी लोगों को बसने के लिए प्रोत्साहन मिले। जैसा कि हम सब जानते हैं, यहाँ रहने वाले लोगों के लिए इसका महत्व एक क्षेत्र से कहीं बढ़कर होता है। यहाँ रहने वाले लोगों का मानना होता है कि अपनी मातृभूमि पर केवल उनका ही अधिकार होता है और वहाँ गैर-बाशिदों की संख्या बढ़ने से द्वेष का माहौल पैदा होता है। हिन्देशिया सरकार की स्थानान्तरण और बाहरी लोगों को बसाने की नीति से द्वेष का माहौल बना है और लोगों के बीच कटुता और निकटता बढ़ी है।

7) सभी जातीय-राष्ट्रीय समूहों को एक समान स्वायत्ता की छूट दी जानी चाहिए। जातीय राष्ट्रीय समूह समान व्यवहार के मामले में काफी संवदेनशील होते हैं और किसी एक समूह को छूट देने से दूसरे समूह में भी आकांक्षाएँ पनपने लगती हैं।

यहाँ जातीय असंतोष को मिटाने के लिए किए जाने वाले दो प्रचलित उपायों की चर्चा जानबूझकर नहीं की गई है। ये दो उपाय हैं :

क) जातीय नेताओं की केन्द्र सरकार के बड़े और सम्मानजनक पद पर नियुक्ति

ख) जातीय समूहों के क्षेत्र में आर्थिक विकास के जरिए उन्हें खरीदने की कोशिश।

इन दोनों उपायों की कार्यकुशलता का बढ़ चढ़ कर बखान किया गया है पर कई मामलों में ये उपाय असफल सिद्ध हुए हैं। अक्सर सरकारें जातीय नेताओं को बड़े पदों पर नियुक्त कर जातीय समूहों को भुलावे में डालना चाहती हैं। पर जब तक उस जातीय समूह की भलाई के लिए यथार्थ में कोई कार्य नहीं किया जाता है तब तक इस उपाय से कोई फायदा नहीं होता है। यह सही है कि सरकारी पदों पर अल्पसंख्यकों को बिल्कुल न नियुक्त करने से असंतोष पनपता है पर एक या दो व्यक्तियों को नियुक्त कर देने से यह असंतोष और भड़क उठता है। वे यह समझते हैं कि सरकार मूल मुद्दे पर ध्यान न देकर उन्हें बरगला रही है। उदाहरण के लिएं इंदिरा गाँधी द्वारा जैल सिंह को राष्ट्रपति बनाए जाने के बाद तोड़फोड़ की गतिविधियाँ और बढ़ीं और स्वतंत्र खालिस्तान के नाम पर आतंकवाद में तेजी आई। इस प्रकार के उपाय से लोगों के मन में यह भाव भी जन्म लेता है कि अमुक जातीय नेताओं को खरीद लिया गया और इससे उग्रवादी नेतृत्व को और अधिक बढ़ावा मिलता है।

जातीय असंतोष के लिए आर्थिक असमानता के सिद्धांत पर बल देने की प्रवृत्ति व्यापक है। इसे आमतौर पर "आनुपातिक आर्थिक वंचित के सिद्धांत" के रूप में जाना जाता है। हालांकि जातीय-राष्ट्रीय नेता अलगाववादी भावना को भड़काने के लिए आर्थिक असमानता का हवाला देते हैं पर विशेष आर्थिक विशेषधिकार प्रदान करने पर भी उनकी राजनैतिक आकांक्षाएँ समाप्त नहीं होतीं। इसके अलावा सरकार को यह समझना चाहिए कि समस्या का समाधान केवल आर्थिक निदान में ही सन्निहित नहीं होता है। भारत के सिक्ख इसके आदर्श उदाहरण हैं। हालांकि सरकार को विभिन्न समूहों को आर्थिक असमानताएँ दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए पर उन्हें यह नहीं समझना चाहिए कि इसी से समस्या का पूर्ण समाधान निकल जाएगा। जातिय असंतोष आर्थिक रूप से वंचित होने की भावना से ज्यादा राजनैतिक रूप से वंचित होने की भावना से जुड़ा होता है।

स्वायतत्ता प्रदान करने से भी स्थायित्व आ ही जाए यह कोई जरूरी नहीं है। स्वायतत्ता एक वृहद क्षेत्र है जिसमें स्वशासन से लेकर स्वतंत्रता तक की भावना निहित होती है। अतः स्वायतत्ता पर समझौता होने के बावजूद अविश्वास और संदेह पनपने की पूरी संभावना बनी रहती है। इसके अलावा स्वतंत्रता के समर्थक मात्र स्वायतत्ता से संतुष्ट नहीं होते। यहाँ हम यही कह सकते हैं कि

क) अधिकांश मामलों में जातीय, राजनैतिक रूप से पिछड़े वर्ग के ज्यादा लोग कुछ हद तक स्वायतत्ता के पक्षधर होते हैं। और

ख) अर्थपूर्ण स्वायतत्ता प्रदान करने से उग्रवादी अलगाववादी लोगों का जन समर्थन कम हो जाता है।

इसके अलावा यह भी समझना जरूरी है कि स्वायतत्ता प्रदान करने से सरकार और गैर वर्चस्व वाले जातीय लोगों के बीच अंतमि समाधान प्राप्त नहीं होता है। सत्ता संतुलन एक प्रगतिशील प्रक्रिया है और इसमें नई समस्याओं और माँगों के अनुसार लगातार परिवर्तन होता रहता है (स्वीटजरलैंड इसका सुंदर उदाहरण है जहाँ जातीय प्रतियोगिता को सफलतापूर्वक निपटाया गया है)। पर एक बात का यहाँ ध्यान रखना होगा कि विद्वेष रखने वाले और सहयोग न करने वाले लोगों को सद्भाव और प्रेम से ही जीता जा सकता है। शासन करने वाले संभ्रांत वर्ग को अपने हितों का ख्याल करते हुए नीतियों को सुसंगत रूप में लागू करना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान में अपने उत्तर लिखिएं।

2) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलाईए।

1) विभिन्न जातीय समूहों को राजनैतिक धारा में शामिल करने के तीन निदानों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

25.6 सारांश

दक्षिण पूर्व एशिया के प्रत्येक राज्य में कई जातीय समूह रहते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि जातीय अल्पसंख्यक अधिकांशतः सीमावर्ती इलाके में रहते हैं, अतः सामरिक दृष्टि से उनका महत्व बढ़ जाता है। दक्षिण पूर्व एशिया में मातृभूमि की संकल्पना बहुत प्रबल है और राजनीति पर भी इसका प्रभाव देखा जाता है। इन देशों की जातीय राजनीति वहाँ की परम्परा, इतिहास, आर्थिक शक्ति और शासक वर्ग पर निर्भर करती है। जातीय संघर्ष का आरंभ जीने के लिए संघर्ष के रूप में होता है। प्रत्येक देश अपनी जातीय समस्याओं को अपने ढंग से सुलझाता है। जहाँ अल्पसंख्यक जातीय समुदायों के पास संसाधन और शक्ति ज्यादा होती है वहाँ उनकी बात ज्यादा सुनी जाती है। कमजोर और साधनहीन अल्पसंख्यकों की केन्द्र सरकार अकसर अवहेलना करती है। मजबूत समुदाय को राजनीति की मुख्य धारा में शामिल करने का भी प्रयास किया जाता है। हालाँकि संसाधन और आर्थिक लाभ पर ज्यादा से ज्यादा अधिकार जमाना ही इन संघर्षों की जड़ है पर केवल आर्थिक सुधारों और तीव्र विकास से समस्या का समाधान नहीं हो पाता। इसी प्रकार स्वायतत्ता भी अंतिम समाधान नहीं है। इन सभी उपायों को एक साथ लेकर चलने, एक व्यापक सर्वसम्मति अपनाने, सभी जातीय समुदायों में एक जैसा व्यवहार करने से ही इन्हें एक सूत्र में बांध कर रखा जा सकता है। यह सभी देशों के स्वामित्व और स्थिरता के लिए जरूरी है। संतुलित विकास के लिए दक्षिण पूर्व एशिया के देशों को भी इसकी जरूरत है।

25.7 शब्दावली

प्राथमिक : प्रधान : सर्वाधिक महत्व का

सर्वांगसमता : मेल जोल का भाग

सम्पर्क भाषा : आपसी बातचीत की भाषा

परिआह : बाहरी (यह शब्द हिन्दी भाषा से गृहीत है)

सहयोजन : किसी समूह का सदस्य बनाना

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

नादेर ग्लेजर एंड डैनिअल पी. मोयनिहार, 1974, *एथिनसिटी* (कैम्ब्रिज, मार्स, हार्ड युनिवर्सिटी प्रेस)

डोनाल्ड एल. होरोविल्ज, *एथनिक ग्रुप्स इन कमफिलक्ट* (बेर्केले, युनि. ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस)

मार्क बोर्थविक, *पेसिफिक सेंचुरी* (बोल्डर : वेस्ट व्यू प्रेस)

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) मातृभूमि मनोविज्ञान जन्म भूमि के प्रति एक भावनात्मक लगाव है, इसमें तर्क की कोई गुंजाइश नहीं होती। इससे जातीय आधारित मानसिकता बनती है जिसके अनुरूप व्यक्ति अपने जातीय समूह के लोगों के करीब जाता है और दूसरों के खिलाफ द्वेष का भाव रखता है। मातृभूमि मनोविज्ञान के तहत यह भी स्वीकार किया जाता है कि एक खास भूमि पर एक खास जातीय समूह के लोगों का ही अधिकार होगा।

बोध प्रश्न 2

1) ग

2) ग

बोध प्रश्न 3

1) शिक्षा, भाषा, संस्कृति और धर्म के क्षेत्र में निर्णय प्रक्रिया में विकेन्द्रीकरण

2) स्थानीय रूप से कानून को लागू करने वाली संस्थाओं में स्थानीय जातीय लोगों को ही शामिल किया जाना चाहिए।

3) सभी समुदायों के साथ एक जैसा व्यवहार और उन्हें एक ऐसी छूट दी जानी चाहिए।

इकाई 26 पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में राज्य और नागरिक समाज का समीकरण

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 कानून और मानवाधिकार के रक्षक
- 26.2.1 कानून और व्यवस्था और मानव आधिकार : चीन का उदाहरण
- 26.2.2 मानवाधिकार संबंधी चीनी दृष्टिकोण
- 26.2.3 जापान में कानून और व्यवस्था और मानवाधिकार
- 26.2.4 राष्ट्रीय पुलिस अभिकरण
- 26.2.5 पूर्व और दक्षिण पूर्व ऐशिया के अन्य देशों में मानवाधिकार संबंधी परिदृश्य
- 26.2.6 फिलिपिन्स और मानवाधिकार
- 26.2.7 हिंदेशिया और थाईलैंड में मानवाधिकार
- 26.2.8 राष्ट्रपति सुहार्तो का शासन
- 26.2.9 कंबोडिया में मानवाधिकार
- 26.2.10 बर्मा में मानवाधिकार
- 26.2.11 दक्षिण कोरिया, तइवान, सिंगापुर, वियतनाम, और मलेशिया में मानवाधिकार

26.3 सामाजिक संघर्षों का समाधानकर्ता
- 26.3.1 चीन और जापान की स्थिति
- 26.3.2 चीन में अल्पसंख्यक और जातीय सवाल
- 26.3.3 जातीयता की समस्या और मलेशिया

26.4 लोगों के हितैषी
- 26.4.1 पूर्व एशिया में समग्र स्थिति
- 26.4.2 जापान का उदाहरण
- 26.4.3 दक्षिण कोरिया में स्थिति
- 26.4.4 उत्तरी कोरिया में स्थिति
- 26.4.5 चीन में स्थिति
- 26.4.6 दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देश और आर्थिक विकास

26.5 सारांश

26.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में राज्य और नागरिक समाज की भूमिका को रेखांकित कर सकेंगे।
- इस क्षेत्र में राज्य द्वारा कानून के संरक्षण पर प्रकाश डाल सकेंगे और राज्यों द्वारा जातीयता और अन्य सामाजिक संघर्षों को बढ़ावा देने या सुलझाने की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में लोगों की खुशहाली और सम्पन्नता में राज्य की भूमिका का योगदान बता सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

पश्चिम के विद्वान पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया को मिलाकर "प्रशांत एशिया" का नाम देते हैं यह क्षेत्र निश्चित रूप से भौगोलिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक विभिन्नताओं का क्षेत्र है, पर इसका दूसरा पहलू यह है कि इस क्षेत्र में आदान-प्रदान भी होता है और ये एक दूसरे को प्रभावित भी बहुत करते हैं। इस प्रकार यह एक प्रकार का क्षेत्रीय स्वरूप भी प्रदान करते हैं। इस इलाके का एक आम विशेषता यह है कि यह क्षेत्र किसी न किसी तरह चीनी सभ्यता और संस्कृति से

प्रभावित है। निश्चित रूप से उनका इतिहास अलग और भिन्न है। इन देशों में जापान और थाईलैंड कभी भी उपनिवेश नहीं बने जबकि कुछ देश पूरी तरह उपनिवेश या चीन के समान अर्द्ध उपनिवेश थे। इनका औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा इस हद तक आर्थिक शोषण किया गया कि उनकी राजनैतिक संप्रभुता मजाक बनकर रह गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इन देशों में उपनिवेश समाप्त होने की प्रक्रिया शुरू हुई और इनमें अपने-अपने ढंग से विकास हुआ और राजनैतिक ढाँचे खड़े किए गए। आधी शताब्दी के बाद इन देशों की विकासात्मक योजनाओं में कुछ परिवर्तन आए। आगे आने वाले वर्षों में प्रजातंत्र और मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था इन दो मुद्दों ने सभी देशों को प्रभावित किया।

कुछ विद्वानों के अनुसार ये दोनों आपस में संबद्ध हैं और एक के आगमन के साथ दूसरे को आना तय होता है। हम इस विचार की तर्कसंगतता पर विचार नहीं करेंगे पर हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पूर्व और दक्षिण पूर्व ऐशिया में राज्य-नागरिक समाज संबंध के निर्धारण में इन दोनों कारकों—प्रजातंत्र और मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की प्रमुख भूमिका रही है। राज्य और नागरिक समाज के संबंध का दायरा काफी व्यापक है क्योंकि उदारवादी राज्य अपने समाज से विभिन्न तरीकों से व्यवहार स्थापित करते हैं।

पूर्व और दक्षिण पूर्व ऐशिया में राज्य-नागरिक संबंध के समीकरण पर बात करते हुए निम्नलिखित मुद्दों पर विचार करेंगे। ये मुद्दे राज्य की भूमिका से संबंध है।

1) कानून और मानव अधिकारों के संरक्षक

2) सामाजिक संघर्षों के समाधानकर्त्ता

3) लोगों के हितैषी

26.2 कानून और मानवाधिकार के रक्षक

अपने नागरिकों के जीवन की रक्षा करना राज्य का प्रथम और अनिवार्य कर्तव्य है। इसके लिए राज्य कानून बनाता और उन्हें कार्यान्वित करता है। इसी के साथ-साथ राज्य को मानवाधिकारों का संरक्षण और रखवाली भी करनी होती है। हालांकि अक्सर राज्यों को ही मानवाधिकारों के उल्लंघन करते हुए पाया जाता है। राज्यों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लघन को रोकने के लिए 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र ने मानवाधिकार संबंधी सार्वदेशिक उद्घोषणा की थी और संयुक्त राष्ट्र के सभी राष्ट्र सदस्यों ने इसपर हस्ताक्षर किए थे। इसके बावजूद सदस्य राष्ट्रों में अक्सर मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है।

26.2.1 कानून और व्यवस्था और मानवाधिकार : चीन का उदाहरण

पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में कानून और व्यवस्था तथा मानवाधिकार प्रमुख मुद्दे हैं। पहले हम चीन का ही उदाहरण लें। 1949 ई. में साम्यवादी शासन कायम होने के बाद कानून रहित, अव्यवस्थित और अशांत चीनी समाज में व्यवस्था की झलक दिखाई पड़ी। धीरे-धीरे आंतरिक पुलिस व्यवस्था का विस्तार हुआ और इसे मजबूत बनाया गया। राज्य में कानून व्यवस्था लागू करने और विरोधियों को अनुशासित करने के लिए राज्य ने सार्वजनिक सुरक्षा ब्यूरो का निर्माण किया। जहाँ तक हत्या, चोरी, बलात्कार, दंगा और आक्रमण को रोकने का सवाल है, चीन की स्थिति संतोषजनक है। स्वतंत्रता पूर्व के दिनों और अन्य देशों (विकसित और अल्पविकसित) से तुलना करने पर चीन की स्थिति और अच्छी लगती है।

एक बात दावे के साथ कही जा सकती है कि चीनी राज्य ने अपने नागरिकों को शांति और सुरक्षा प्रदान की है। सरकार या दल की नीतियों में विश्वास रखने वाले राजनैतिक कार्यकर्ताओं के प्रति सरकार का रवैया बिल्कुल अलग होता है। उन पर सार्वजनिक सुरक्षा ब्यूरो द्वारा कड़ी निगरानी रखी जाती है और छोटे से मामले पर भी उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है या कारावास में डाल दिया जाता है। इसी प्रकार के कार्यों के आधार पर चीनी सरकार पर मानवाधिकारों के उल्लंघन का आरोप लगाया जाता है।

"एमनेस्टी इंटरनेशलन" और "एशिया वाच" जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों ने चीन में मानवाधिकारों के स्पष्ट उल्लंघन के प्रमाण पाये हैं। उनकी रिपोर्टों से ऐसा जाहिर होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर इससे चीन का व्यक्तित्व धूमिल होता है और इससे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बाधा पड़ती है और इस प्रकार आर्थिक रूप से भी उसे नुकसान उठाना पड़ता है। ऐसा माना जाता है कि चीन के मानवाधिकार संबंधी उल्लंघन को देखते हुए ही अन्तर्राष्ट्रीय ओलम्पिक संघ ने सन् 2000 में चीन में ओलम्पिक खेलों के आयोजन को स्वीकृति नहीं दी।

26.2.2 मानवाधिकार संबंधी चीनी दृष्टिकोण

हालांकि चीनी राज्य मानवाधिकार के प्रश्न को बिल्कुल दूसरे कोण से देखता है। तियानमिन चौक त्रासदी (1989) मानवाधिकार का सबसे बड़ा उल्लंघन था। पर इसके बाद "चीन में मानवाधिकार" शीर्षक से चीनी सरकार ने एक श्वेत पत्र जारी किया। इस दस्तावेज को पढ़कर साफ मालूम होता है कि मानवाधिकार के संबंध में चीन का अपना एक अलग दृष्टिकोण है।

उसने इस अवधारणा को मानने से इनकार कर दिया है कि सब जगह मानवाधिकार का एक ही मानदंड होता है। इस दस्तावेज में कहा गया है कि मानवाधिकार "विभिन्न देशों के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रेरित होता है" और "किसी देश के मानवाधिकारों और उससे जुड़ी स्थितियों का मूल्यांकन वहां के इतिहास को अनदेखा करके नहीं किया जा सकता है और इसे दूसरे देश के मानदंड पर नहीं आंका जा सकता है।"

हालांकि चीनी यह मानते हैं कि मानवाधिकारों की रक्षा करने और उनका विकास करने में चीन को बहुत सफलता नहीं मिली है और इसमें काफी सुधार की गुंजाइश है। अतः हम यह कह सकते हैं कि चीनी राज्य ने अपने नागरिक समाज के साथ संबंध स्थापित करते हुए एक व्यवस्था देने में तो सफलता प्राप्त की है पर अभी तक मानवाधिकार के प्रश्न पर वह अपना वचन नहीं निभा सकी है।

26.2.3 जापान में कानून और व्यवस्था और मानवाधिकार

अब हम जापान का अध्ययन करें। जापान एक उदारवादी प्रजातांत्रिक राज्य है और उत्तरी अमरीका तथा पश्चिमी यूरोप की तुलना में यहां अपराध की दर काफी नीचे है। जापान का समाज विश्व के सबसे व्यवस्थित समाजों में से एक है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान एक अनुशासित, स्थायी और व्यवस्थित समाज के रूप में उभरा है और इससे जापान को आर्थिक रूप से समृद्ध होने में काफी सहायता मिली है। जापान की पुलिस व्यवस्था उच्च कोटि की है। यह इसी बात से सिद्ध है कि पुलिस और जनता का संबंध सौहार्दपूर्ण है और सहयोग का है। राज्य में कानून और व्यवस्था बनाये रखने में पुलिस की भूमिका को देखते हुए लोगों के मन में उनके प्रति सम्मान का भाव है। लोग बिना किसी डर के थाने में अपनी शिकायत दर्ज करवाते हैं और काफी हद तक पुलिस द्वारा की गयी कार्यवाही से संतुष्ट होते हैं। यह स्थिति अधिकांश भूतपूर्व औपनिवेशिक एशियाई देशों की स्थिति के विपरीत है। औपनिवेशिक समाज समाप्त होने के बावजूद पुलिस मानसिक रूप से उसी संसार में जी रही है। अभी भी वह उतनी ही भ्रष्ट है और निरपराधों को सताने की मानसिकता बरकरार है।

26.2.4 राष्ट्रीय पुलिस अभिकरण

राष्ट्रीय पुलिस अभिकरण पुलिसकर्मी के आचरण, वेतन, संख्या और संगठनात्मक ढाँचे के लिए मानदंड स्थापित करती है। यह पुलिस प्रशिक्षण का भी पर्यवेक्षण करती है जापान में बड़े प्रदर्शनों और अन्य जन आन्दोलनों को संभालने के लिए अलग से पुलिस कर्मियों की व्यवस्था की गई है। इसे दंगा विरोधी पुलिस कहते हैं जिनके पास ढाल, हेलमेट, नकाब और कई इलेक्ट्रोनिक औजार होते हैं, जो दंगाइयों के आक्रमण से बचने और तितर-बितर करने में सहायक होते हैं। दंगा विरोधी पुलिस को विशेषीकृत प्रशिक्षण दिया जाता है और इनकी आधी से ज्यादा संख्या टोक्यो में स्थापित है। सरकार का मुख्यालय होने के कारण अधिकांश प्रदर्शन और आंदोलन यहीं होते हैं। अपने विशेष अधिकार के बावजूद दंगा विरोधी पुलिस के काम करने का ढंग सराहनीय है।

विश्व युद्ध के बाद जापान में मानवाधिकार की स्थिति संतोषजनक रही है। जापान के न्याय मंत्रालय के तहत एक मानवाधिकार ब्यूरो है जिसमें कोई भी बिना किसी भय के पुलिस अत्याचार के खिलाफ शिकायत दर्ज कर सकता है।

26.2.5 पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों में मानवाधिकार संबंधी परिदृश्य

पूर्व और दक्षिण पूर्व ऐशिया के अन्य देशों में जहां मानवाधिकार एक मुद्दा रहा है, वहां हम प्रजातांत्रिक बदलाव से उत्पन्न खलबली महसूस कर सकते हैं। वस्तुतः इन विकासशील एशिया-प्रशांत राष्ट्रों के लिए युद्ध के तुरत बाद के वर्षों में प्रजातंत्र का कार्यसूची में सर्वोच्च स्थान नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य मजबूत शक्ति और सत्ता के साथ आर्थिक और राजनैतिक स्थायित्व प्राप्त करना था। विधाई निकायों की अपेक्षा नेताओं की महत्ता थी और ये निकाय सही रूप में प्रतिनिधि सरकार थी भी नहीं। सामाजिक स्थायित्व और आर्थिक विकास के लिए ये शासन करते थे, चाहे उनकी सरकार को जनतांत्रिक न कहा जाए या उन पर मानवाधिकरों के उल्लंघन का आरोप लगाया जाए। 1980 के दशक तक प्रजातांत्रिक भावनाएं जगने लगीं और मानवाधिकार की सुरक्षा के लिए व्यापक पैमाने पर मांग की जाने लगी। इससे साफ जाहिर होता है कि केवल आर्थिक विकास और स्थायित्व के नाम पर निरंकुश शासन ज्यादा समय तक कायम नहीं किया जा सकता है।

23.2.6 फिलिपिन्स और मानवाधिकार

मार्कोस के शासनकाल का फिलिपिन्स एक ऐसे, राज्य का अच्छा उदाहरण है जहां काफी कम समय में जनतंत्र और मानवाधिकार का मुद्दा महत्वपूर्ण बन गया। मार्कोस दबाव के माहौल में सत्ता में आया और अपने को "जनता के रक्षक" के रूप में प्रस्तुत किया। हालांकि वह संवैधानिक निरंकुशतावाद में विश्वास रखता था। गणतंत्र और जनतंत्र की सुरक्षा के नाम पर उसने सितम्बर 1972 में मार्शल लॉ लगा दिया। उसने तेजी से सभी असंतोषों और विरोधों का दमन किया। हजारों लोगों को कैद किया गया, मूल अधिकारों को समाप्त किया गया और संचार के साधनों पर प्रतिबंध लगाया गया, अदालतें कमज़ोर हुईं और सेना मजबूत हुई। दूसरे शब्दों में, कानून और व्यवस्था को नहीं छेड़ा गया पर मानवाधिकारों का दमन हुआ। मार्कोस को सत्ता से हटाने और मानवाधिकार स्थापित करने के लिए प्रजातांत्रिक सरकार लाने में काफी समय लग गया।

26.2.7 हिंदेशिया और थाईलैंड में मानवाधिकार

हिंदेशिया और थाईलैंड दोनों देशों में जब-जब शासन की सत्ता को चुनौती दी गई है तब-तब मानवाधिकारों को स्थगित किया गया है। हिंदेशिया के भूतपूर्व सर्वोच्च नेता सुकार्नो ने "निर्देशित प्रजातंत्र" लागू किया जिसके तहत अधिकांश जातीय अल्पसंख्यकों और बुद्धिजीवी समुदाय को मताधिकार से वंचित कर दिया गया। वह अपने को एक महान न्यायपालक और जनतंत्र का समर्थक मानता था, पर उसने पश्चिमी शैली के उदारवादी प्रजातंत्र को नकार दिया। कुछ समय तक सेना, राष्ट्रपति सुकार्नो और हिंदेशियाई साम्यवादियों (पी. के. आई.) के निष्ठापूर्ण सहयोग से राजनैतिक गतिविधि क्रियाशील रही। असमतल जमीन पर खड़ी यह तिकड़ी 1965 तक कायम रही। इसके बाद पी. के. आई. और सेना के बीच संघर्ष हुआ जिसमें सुकार्नो के सहयोगी होने का दावा करनेवाले मध्यवर्ती पदों के पदाधिकारियों ने छह वरिष्ठ सेनानायकों की हत्या कर दी। सेना हमेशा के लिए पी.के.आई. का सफाया करने के लिए कटिबद्ध हो गई।

1965 के अक्टूबर महीने के अंत में मध्य जावा, पूर्व जावा, बाली और उत्तरी सुमात्रा में हत्याओं का सिलसिला चला। पश्चिमी बोर्नियो में जातीय चीनियों को मौत के घाट उतारा गया। सेना समर्पित युवाओं द्वारा किए गए इस नरसंहार के बाद 11 मार्च 1966 को सुकार्नो ने जनरल सुहार्तो में सत्ता हस्तांतरित कर दी जिसके हाथ में आज तक शासन की बागडोर है। नरसंहार में शामिल लोगों को दंडिय करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

26.2.8 राष्ट्रपति सुहार्तो का शासन

राष्ट्रपति सुहार्तो के शासनकाल में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और संगठन का अक्सर उल्लंघन किया गया। उदाहरण के लिए अगले वर्ष चुनाव कराए जाने की संभावना को देखते हुए 1991 में नए समूह जनतांत्रिक प्रक्रिया को समर्थन देने के लिए संगठित होने लगे। इनमें से एक प्रमुख संगठन "डेमोक्रेसी फोरम" ने सुहार्तो सरकार को विचलित किया। फोरम के सदस्यों को देश छोड़ने की मनाही हो गई, उनके समाचारपत्र को बंद कर दिया गया और जन सर्वेक्षण के परिणामों को प्रकाशित करने के लिए इसके संपादक को गिरफ्तार कर कारावास में डाल दिया गया। इन कार्यवाइयों को देखकर लगता है कि हिंदेशियाई सरकार की मानवाधिकारों में कोई रुचि नहीं है।

इसके बावजूद समय-समय पर हिंदेशियाई संसद में नई और स्वतंत्र आवाज उठ खड़ी होती है। थाईलैंड में भी सेना जनतांत्रिक आंदोलनों में बाधक रही है और यहां भी हमेशा मानवाधिकारों की रक्षा नहीं की गई है। इसके अलावा कंबोडिया और बर्मा (म्यनमार) में भी काफी हद तक मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है।

26.2.9 कंबोडिया में मानवाधिकार

कंबोडिया में 1975 में ख्मेर रूज सत्ता में आया और पोल पॉट प्रधानमंत्री बना। ख्मेर रूज अप्रैल 1975 से जनवरी 1979 तक सत्ता में रहा। उसके शासनकाल में सभी प्रकार के मानवाधिकारों मानवीयता और मानवीय भावनाओं का अतिक्रमण और दमन किया गया। आधुनिक विश्व में इतना दमन और अत्याचार नहीं देखा गया था। आरम्भ से ही ख्मेर रूज ने अपने दुश्मनों के खिलाफ आंतक का इस्तेमाल किया। भूतपूर्व लोन नोल शासन के कार्मिको, मुराने बुर्जुआजी के सदस्यों और पश्चिमी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों को हजारों की संख्या में मारा गया। उनकी पत्नियों और बच्चों को भी नहीं छोड़ा गया ताकि विरोध करनेवाला कोई भी न बचे। बुद्धिजीवियों की नियोजित ढंग से हत्याएं की गई। सभी प्रकार की धार्मिक गतिविधि को क्रूरता से दबा दिया गया और चीनी, वियतनामी और चाम (मुसलमान जाति) लोगों की जन हत्याएं की गईं। आम कंबोडिया मूल के लोगों को छोटी से छोटी गलती के लिए भी नहीं बख्शा गया। ख्मेर सरकार ने 60 लाख की जनसंख्या में से कम से कम 10 लाख लोगों की हत्याएं कीं। वियतनाम के आक्रमण के बाद ख्मेर रूज को पदच्युत किया गया और हैंग सामरिन के नेतृत्व में 7 जनवरी 1979 को नई सरकार का गठन हुआ।

26.2.10 बर्मा में मानवाधिकार

बर्मा में 1988 के जन विद्रोह के बाद जनरल ने-विन अधिकारिक तौर पर सेवा निवृत्त हो गया पर पृष्ठभूमि में रहकर वही शासन करता रहा। 1988 के प्रदर्शनों के दौरान कई निहत्थे, सरकार विरोधी प्रदर्शनकारियों की सामूहिक हत्याएं की गईं। एक वर्ष तक नागरिकों और सेना के बीच संघर्ष चलता रहा जिसमें कई लोग मारे गए। प्रतिक्रिया स्वरूप कंबोडिया में ख्मेर रूज की नीति अपनाई गई। उन्होंने रंगून के आसपास के इलाकों को ध्वस्त कर दिया और वहां के लोगों को मार भगाया। उन्हें प्रजातंत्र का समर्थक माना जाता था। 1990 में सरकार ने चुनाव के आदेश दिए पर यह एक दिखावा मात्र था। पर उन्हें यह देखकर धक्का पहुँचा कि विरोधियों का व्यापक गठबंधन जीत गया है और सरकार बनाने की स्थिति में है पर शासकों ने संसद को मिलने का अवसर ही नहीं दिया। अधिकांशतः सभी विरोधी नेताओं को कारावास में डाल दिया गया। इसमें आउंग-सान-सू की भी शामिल थे। आज की तारीख में बर्मा राज्य मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाला सबसे प्रमुख देश है।

26.2.11 दक्षिण कोरिया, तइवान, सिंगापुर, वियतनाम और मलेशिया में मानवाधिकार

दक्षिण कोरिया, तइवान और सिंगापुर में भी मानवाधिकारों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है, पर उनके आर्थिक बल और सामाजिक व्यवस्था के कारण कोई बड़ी उथल-पुथल नहीं हुई है। दूसरी तरफ वियतनाम सभी दृष्टियों से खुलेपन को प्रोत्साहित कर रहा है, हालांकि यहां भी एक दलीय साम्यवादी शासन है। अर्थव्यवस्था में सुधार लाया जा रहा है, कला, संचार और धर्म के क्षेत्र में व्यापक सहिष्णुता और बहुलता लाई जा रही है। मलेशिया में बहुजातीय तनाव बना रहता है। वहां दंगे भी होते हैं और 1987 में कानून और व्यवस्था के नाम पर तीन स्थानीय दैनिक समाचार पत्रों को बंद भी किया गया था पर मलेशिया सरकार ने मानवाधिकारों का कोई बड़ा उल्लंघन नही किया है।

इन सभी राज्यों में हम देखते हैं कि कानून और व्यवस्था तथा शांति और स्थायित्व के नाम पर मानवाधिकारों को स्थगित किया जाता है। और कभी-कभी उनका उल्लंघन भी होता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए

1) चीन में मानवाधिकारों की स्थिति पर संक्षेप में विचार कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जापान में मानवाधिकार की क्या स्थिति है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

26.3 सामाजिक संघर्षों के समाधानकर्ता

दक्षिण पूर्व एशिया के अधिकांश देशों में बहुत सी जातियां और प्रजातियां एक साथ रहती हैं और इनमें आपसी लड़ाई झगड़े और जातीय दंगे हुआ करते हैं। राज्य हमेशा निरपेक्षता की भूमिका नहीं अदा कर पाता है और किसी एक जातीय समुदाय का पक्ष ले लेता है। एक मजबूत और जनतांत्रिक राज्य से यह आशा की जाती है कि वह अन्तर-जातीय संघर्षों में मध्यस्थता की भूमिका अदा करेगा। इससे स्वस्थ राज्य-नागरिक समाज का संबंध कायम होता है।

26.3.1 चीन और जापान की स्थिति

पूर्व एशिया में चीन और जापान की अलग-अलग समस्याएं हैं। जापान में इनोस नाम की अल्पसंख्यक जाति है जिसकी संख्या काफी कम है। जबकि चीन में अल्पसंख्यकों की संख्या 72 मीलियन (कुल जनसंख्या का 6 प्रतिशत) है और ये लोग सीमांत प्रदेशों में और 60 प्रतिशत क्षेत्र में फैले हुए हैं। जापान में इनोस लोगों ने अपनी जातीय समस्याओं को राजनीति के स्तर पर उठाने का प्रयत्न किया है पर अभी तक दोनों समुदायों के बीच कोई संघर्ष नहीं हुआ है।

26.3.2 चीन में अल्पसंख्यक और जातीय सवाल

चीन तिब्बत सरकार के लिए सबसे बड़ी समस्या बना हुआ है। अन्य जातीय समुदायों जैसे सिनकियांग में तुर्क, निंघसिया में मुसलमान आदि ने जब-जब अपने को दबा हुआ महसूस किया है तब-तब उन्होंने प्रतिरोध किया है। अंदरूनी मंगोलिया में रहने वाले मंगोलियावासी सबसे ज्यादा संतुष्ट हैं और दूसरों की तुलना में चीनी समाज में लगभग घुलमिल गये हैं। चीनी राज्य दावा करता है कि यह हान अधिनायकत्व (चीन की 94 प्रतिशत जनसंख्या "हान" है) को प्रक्षय नहीं देता है और सभी के साथ समान व्यवहार करता है। यह राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करता है। व्यवहार में चीनी राज्य जातीय अल्पसंख्यकों की बहुत परवाह नहीं करता है। उसकी नीतियों से उनकी अस्मिता खतरे में प्रतीत होती है। चीनी सरकार की नीति अल्पसंख्यकों को एकीकृत करने की नहीं बल्कि उन्हें अपने में समाहित करने की रही है। राजनैतिक रूप से अल्पसंख्यक जातियां स्वायत क्षेत्रों में रहती हैं और इन समुदायों के समान लोगों को प्रशासन में शामिल किया जाता है पर यहां भी सभ्रांतों का मनोनयन ही होता है। और विरोधियों को सजा दी जाती है। निसन्देह अल्पसंख्यकों को कुछ रियायतें दी गई हैं और इसका सभी लोगों द्वारा स्वागत किया गया है।

उदाहरण के लिए हालांकि उच्च स्तर की शिक्षा के लिए सभी को चीनी भाषा सीखनी जरूरी है

बच्चा परिवार नियम" से भी छूट मिली हुई है। इन रियायतों से तनाव कम नहीं हुआ है और हान और गैर-हानों के बीच अकसर दंगे उभर जाते हैं और उन्हें कड़ाई से दबाया जाता है। जन मुक्ति सेना (पी.एल.ए.) न केवल हिंसा को दबाती है बल्कि किसी भी प्रकार के खुले विरोध का शमन करती है। कानून और व्यवस्था के नाम पर चीनी सत्ता ने जातीय समुदायों की स्वतंत्रता का दमन किया है और इस प्रकार समस्या का समाधान करने की जगह उसे और भड़काया है। जातीयता के प्रश्न पर चीनी सरकार ने हान चीनियों का पक्ष लिया है और अपने को निरपेक्ष नहीं बना सकी है। इस प्रकार अल्पसंख्यक चीनी राज्य को हानों के राज्य के रूप में देखती है। साम्यवादी विचार धारा भी निकट भविष्य में इस समस्या का कोई समाधान नहीं ढूँढ पायेगी। वस्तुतः राज्य जातीय समस्याओं के समाधानकर्त्ता के रूप में सामने नहीं आ सकी है।

26.3.3 मलेशिया और जातीयता की समस्या

दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में मलेशिया में जातीय समस्या इतनी विकट है कि इस देश में "साम्प्रदायिक राजनीति" को एक नया अर्थ दे दिया गया है। मलयों की संख्या कुल जनसंख्या के आधे से भी जरा सा कम है जबकि दूसरा बड़ा समूह 35 प्रतिशत चीनियों का है जिनका देश के वाणिज्य और पेशे से संबंधित क्षेत्र पर कब्जा है। मलय सुन्नी मुसलमान हैं जबकि चीनी और भारतीय अपनी धार्मिक परम्पराओं को मानते हैं। मलेशिया में पेशा प्रजाति और धर्म एक दूसरे से गहरे रूप में जुड़े हुए हैं।

एक समुदाय के रूप में चीनी मलयों से ज्यादा सम्पन्न हैं। इससे मलय जनसंख्या पर दबाव पड़ता है। और इस तथ्य का मलेशिया की राजनीति पर प्रभाव पड़ता है। 1957 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद मलेशिया में एक संगीन रूप से संतुलित बहु-जातीय गठबंधन की सरकार रही हैं। इसका नेतृत्व टंकू अब्दुल रहमान ने किया था जिन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष में हिस्सा लिया था। वह न केवल एक महान राष्ट्रीय नेता था बल्कि अधिनायक वाद से भी ऊपर उठा हुआ था।

1969 तक गठबन्धन सरकार सुचारु रूप से चलती रही पर 1969 के चुनाव में उन्हें पूर्ण बहुमत न मिल सका। गठबंधन में प्रमुख भूमिका निभा रहे मलय संभ्रांतों ने इसे अपने अस्तित्व के लिए खतरा माना। एक तरफ विरोधी समूह विजय की खुशियाँ मना रहा था तो दूसरी तरफ पूर्व शासक दल प्रदर्शन कर रहा था। परिणाम स्वरूप हिंसक रूप से दंगे भड़क उठे और चार दिन तक नरसंहार चलता रहा जिससे 200 लोग मारे गये। इस घटना से पूरा राष्ट्र भयभीत रह गया और आपात-स्थिति की घोषणा की गई। अस्थायी तौर पर राष्ट्रीय कार्यवाहक परिषद ने सत्ता सम्भाल ली। 1971 तक परिस्थिति सामान्य हुई और मलयों तथा गैर-मलयों के बीच यह समझौता हुआ कि वे किसी भी विध्वंसक मुद्दे पर सार्वजनिक बहस नहीं करेंगे। 1968 के दंगों के बाद राजनैतिक दलों का नया, बहुजातीय "व्यापक गठबंधन", कायम हुआ, जिसमें मलय नेताओं को दृढ़ आधार प्राप्त हुआ।

विभिन्न जातीय समुदायों के बीच समझौता कायम रहने से मलेशिया में स्थायित्व कायम है। राजनीति विज्ञान की शब्दावली में "सहचर प्रजातंत्र" के नाम से ज्ञात यह व्यवस्था मलेशिया के स्वस्थ आर्थिक विकास में सहायक हुई है। इससे मलेशिया में शान्ति का माहौल भी कायम हुआ है। यह सही है कि सहचर प्रजातंत्र पश्चिमी उदारवादी प्रजातंत्र की कसौटी पर खरा नहीं उतरा है पर जहाँ तक मलेशिया का प्रश्न है यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है। कि इस व्यवस्था ने मलेशिया को शक्ति और समृद्धि प्रदान की है। मलेशियाई राज्य और नागरिक समाज के बीच सौहार्द बना हुआ है। सामाजिक सघर्ष काफी हद तक नियंत्रण में है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) चीन में अल्पसंख्यकों के मुद्दे पर विचार कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मलेशिया के संदर्भ में जातीयता के मुद्दे पर विचार कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

26.4 जनता के हितैषी

आधुनिक दुनिया में सभी जगह अपनी जनता को सुख सुविधा और समृद्धि प्रदान करना राज्य का कर्त्तव्य माना जाता है। राज्य जनता के कल्याण और उनके आर्थिक विकास के लिए खुद भी प्रयत्नशील होता है और इसका जिम्मा निजी क्षेत्र को भी सौंप सकता है।

26.4.1 पूर्व एशिया में समग्र स्थिति

पूर्व एशिया में एक ओर जापान और दक्षिण कोरिया जैसे पूंजीवादी देश हैं ओर दूसरी ओर चीन और उत्तरी कोरिया जैसे साम्यवादी देश हैं। इन सभी मामलों में राज्य की आधिकारिक विचारधारा प्रेरक तत्व हैं। इन सभी देशों में राज्य अपने-अपने ढंग से जनता का हितैषी है। इस संदर्भ में सबसे पहले हम जापान का अध्ययन करेंगे। आर्थिक विकास और नागरिकों की जीवन शैली को समृद्ध बनाने में जापान पूरी तरह सफल रहा है।

26.4.2 जापान का उदाहरण

जापान की बढ़ती अर्थव्यवस्था में निजी व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद जापानी सरकार लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा और घर के मुद्दे को नजरअंदाज नही करती है। साक्षरता की दृष्टि से जापान का स्थान सर्वोच्च है। जापानी समाज भारतीय या चीनी समाज की ही तरह परम्पराओं से बंधा हुआ है पर साक्षरता के फैलते क्षेत्र से जापान को कई क्षेत्रों में सफलता मिली है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जापान की सर्वोच्च शक्ति का प्रतिबिंब वहाँ के लोगों के रहन-सहन के ऊंचे स्तर को देखकर होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हरेक दशक जापान के लोगों के लिए समृद्धि का दशक रहा है। इसी कारण से इतने विवादों से घिरे होने के बावजूद वहां की जनता ने हर बार उदारवादी जनतांत्रिक दल (एल. डी. पी) को ही विजयी बनाया। आम जापानी नागरिक एशिया के अन्य देशों की अपेक्षा काफी बेहतर जीवन व्यतीत करता है। हालांकि और भी अन्य कारकों की इसमें भूमिका रही है पर इसके लिए जापानी सरकार भी बधाई की पात्र है।

26.4.3 दक्षिण कोरिया में स्थिति

पिछले दशक में दक्षिण कोरिया, एशिया की एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा। इससे यहां के लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि हुई। 1963 में इसका प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद 100 अमरीकी डॉलर था जो 1990 में उछलकर 5000 अमरीकी डॉलर हो गया। काफी मात्रा में विदेशी सहायता (मुख्य रूप से अमरीका से) जैसे अंतर्राष्ट्रीय कारकों से भी कोरिया को महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ पहुँचा। दक्षिण कोरिया सरकार द्वारा एक वर्ग के रूप में भूमिपतियों की समाप्ति के साहस भरे कदम से काफी लाभ हुआ और दक्षिण कोरियाई अर्थव्यवस्था में पूर्ण रूप से औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त हो गया।

औद्योगीकरण होने से दक्षिण कोरिया के आम नागरिकों का जीवन में सुधार हुआ और उनके जीवन में सुख और समृद्धि आई। पार्क चुंग की सैनिक सरकार ने अपने आर्थिक कार्यक्रमों को

काफी हद तक अपनी मर्जी से और बिना किसी बाधा के आगे बढ़ाया। उसके पूर्व शासकों को आर्थिक बदलाव लाने में परेशानी महसूस हो रही थी। पार्क चुंग ने सख्ती बरती और नागरिक समाज का हस्तक्षेप नही होने दिया। इस प्रकार मुक्त होकर पार्क चुंग ने 1962 में पंचवर्षीय योजना लागू की और देश को आर्थिक विकास के पथ पर आगे बढ़ाया।

यहां राज्य ने "अर्थव्यवस्था के महाप्रबंधक" की भूमिका निभाई। हालांकि दक्षिण कोरिया में आर्थिक विकास को गतिशील करने के लिए अधिकांश निर्णय सख्ती से लेने पड़े। उदाहरण के लिए मजदूरों ने जब बेहतर काम करने का माहौल और अधिक स्वतंत्रता मांगी तो कठोरता से उनका दमन किया गया। इसी प्रकार व्यापारियों को राज्य के सरकारी विकास कार्यक्रमों तहत काम करने को मजबूर किया गया। आर्थिक नियंत्रण सरकार के हाथ में था। सरकार द्वारा व्यापारिक लाइसेंसों का वितरण, बैंक आदि वित्तीय संस्थाओं पर सरकार का आधिपत्य और एक कर विभाग द्वारा राज्य आर्थिक क्रियाकलापों पर नियंत्रण रखना था और अपनी कर संरचना के माध्यम से अधिक से अधिक धन अपने कोष में डालना चाहता था।

26.4.4 उत्तरी कोरिया में स्थिति

उत्तरी कोरिया के नेता कीम-3 सूंग सामूहिक खेती और केंद्रीय आर्थिक प्रबंधन (स्टालिनवादी प्रारूप) के आधार पर अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाना चाहता था। उत्तरी कोरिया में दक्षिण कोरिया के समान समृद्धि नही थी पर उत्तरी कोरिया की राज्य नीति आर्थिक असमानता को तयाज्य मानती थी। यह नीति मार्क्सवाद-लेनिनवाद पर आधारित थी। यह राज्य की सरकारी विचारधारा थी। आइए अब चीन पर विचार करें जो अपने को मार्क्सवादी-लेनिनवादी राज्य मानता है।

26.4.5 चीन में स्थिति

चीनी राज्य ने अपने नागरिकों के हितों का ध्यान रखते हुए अभी तक अर्थव्यवस्था संबंधी दो प्रयोग किए है। इसके बारे में एक इकाई में पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी हैं अतः हम यहां केवल इसी पक्ष का अध्ययन करेंगे कि इन आर्थिक नीतियों से लोग कैसे लाभान्वित हुए। माओ के शासनकाल में चीनी सरकार ने नियंत्रित अर्थव्यवस्था लागू की जिसमें तीव्र विकास को नामंजूर कर दिया गया। हालांकि, इस समय जन कल्याण संबंधी गतिविधियों पर खूब बल दिया गया। चीन के अधिकांश लोगों को रोटी, कपड़ा, स्वास्थ्य और शिक्षा की आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई गई। स्वतंत्रता के पहले की तुलना में आम चीनी के जीवन स्तर में काफी सुधार आया।

1961 में पड़े महाअकाल की अवधि अपवाद रूप में गहरे आर्थिक संकट का काल थी वर्ना चीनी सरकार ने आम नागरिकों के हितचिंतक की भूमिका बखूबी पूरी की। पर माओं की नीतियों का समर्थन न करनेवाला चीनी केवल जनकल्याण नीतियों से संतुष्ट नहीं हुआ। यहां तक कि समतावाद के मूल्य पर भी वे तीव्र आर्थिक विकास चाहते थे। उनका मानना था कि लंबी अवधि में न केवल चीनियों की स्थिति सुधरेगी बल्कि वे जापानियों और दक्षिण कोरियाइयों की तरह समृद्धि का जीवन व्यतीत कर सकेंगे । चीनी राज्य को अपने नागरिकों को केवल जीने की सुविधा प्रदान कर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए बल्कि उनके जीवन में समृद्धि लाने का भी प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसी ध्येय को सामने रखते हुए डेंग जिआओपिंग शासन काल में 1978 के बाद बड़े पैमाने पर आर्थिक सुधार हुए।

इन सुधारों के परिणाम से स्पष्ट है कि चीन के कई शहर फल फूल रहे हैं, ग्रामीण इलाकों में समृद्धि फैल रही है। सरकार की सक्रिय नीतियों के कारण अल्प अवधि में काफी धन पैदा हुआ है। डेंग अधिकांश चीनियों के बीच काफी लोकप्रिय है। कई लोगों का मानना है। कि माओ शासन के बाद के काल में चीनी राज्य अपने लोगों के वास्तविक हितचिंतक के रूप में सामने आया। यह कहने का मतलब यही नहीं है कि चीन में बहुमुखी विकास हो रहा है और चीन का प्रत्येक नागरिक समृद्ध हो रहा है। अभी भी काफी लोग आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। अभी भी कई दूरस्थ इलाकों में आर्थिक विकास की किरण नहीं पहुँच सकी है। समृद्धि आने से लोगों के रहन-सहन के स्तर में अंतर आ गया है। अब देखना यह है कि जिन लोगों को आर्थिक विकास का लाभ नहीं मिला है वे अगर राजनैतिक स्तर पर अपनी आकांक्षाओं को प्रकट करने लगे तो राज्य उनसे कैसे निपटेगा। यहां चीन के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि राज्य ने प्रभावी और सचेत नीति के तहत अपने आम नागरिकों का जीवन परिवर्तित कर दिया।

26.4.6 आर्थिक विकास और अन्य दक्षिण पूर्व एशियाई देश

दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न राष्ट्रों ने अपने देश के आर्थिक विकास के लिए नियोजित ढंग से नीतियाँ बनाई थी। जैसा कि हमने पहले भी बताया है। सिंगापुर में तेजी से आर्थिक विकास हुआ। इसके छोटे आकार और निरकुंश शासन के कारण तेजी से आर्थिक बदलाव आया। सिंगापुर के निवासियों के रहन-सहन का स्तर दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों से कही ऊंचा है। अभी तक फिलिपिन्स, थाईलैंड़, हिंदेशिया और कुछ हद तक मलेशिया में भी इतनी समृद्धि नहीं आई है। मनीला, क्वालामपुर, बैंकाक और जकार्ता में एक तिहाई से अधिक लोग गंदी बस्तियों में रहते हैं। उन्हें स्वच्छ जल, मल निकास व्यवस्था, स्वास्थ्य या शिक्षा जैसी सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं।

अतीत में, कुछ नेता इन समस्याओं को सुलझाने के बजाए इसे उलझने में अधिक रुचि रखते थे। अपने उत्कर्ष काल में मार्कोस ने मनीला की गंदी बस्तियों के चारों और ऊंची दीवार बनाने का आदेश दिया ताकि कोई प्रमुख आगुंतक उन्हें देख न सके, पर प्रदूषण और खराब स्थिति को बहुत दिनों तक अनदेखा नहीं किया जा सका। एशिया की अन्य जगहों के समान इन देशों में भी जब आन्दोलन शहर और गाँव सब जगह फैल गया था सरकार शहरी इलाकों में जरूरी सुविधाएं प्रदान करने के लिए संघर्ष कर रही थी। इसके लिए गाँव के स्रोतों और सुविधाओं को शहरों में स्थानांतरित कर दिया गया जबकि अधिकांश जनता गाँवों में रहती थी। दक्षिण पूर्व एशिया के इन सभी राज्यों ने पूंजीवादी ढाँचे की सरकार का समर्थन किया था और इसके चलते धन की असमानता भी सामने आई। एक तरफ कुछ लोगों के पास काफी धन था, दूसरी तरफ लोग निर्धन थे। वियतनाम और चीन दोनों ने साम्यवादी अर्थव्यवस्था अपनाई पर बाद में इन्होंने अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार लाते हुए निजी पूंजी और उद्यम को बढ़ावा दिया। अभी यह बताना संभव नहीं है कि वियतनामियों को इस परिवर्तन से कितना फायदा हुआ।

सिंगापुर को छोड़कर दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य सभी देशों को अभी अपने लोगों का आर्थिक स्तर सुधारने में काफी समय लगेगा। लोगों का जीवन स्तर सुधारने या बिगाड़ने में राज्य की प्रमुख भूमिका रही है। राज्य किसी भी विचारधारा का समर्थक हो, यह एक विदित तथ्य है कि अगर राज्य चाहे तो वह अपने लोगों का हितैषी सिद्ध हो सकता हैं

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान में उत्तर लिखिए।

2) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपना उत्तर मिलाइए।

1) दक्षिण कोरिया के आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) अपनी अर्थव्यवस्था को सुधारने में चीनी सरकार की क्या भूमिका रही है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

26.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ते समय हमने महसूस किया कि पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के देश राजनैतिक स्तर पर अलग-अलग हैं। किन्ही भी दो राष्ट्रों की सरकारी विचारधारा एक जैसी नहीं है। यहां तक कि तथाकथित मार्क्सवादी-लेनिनवादी कहे जाने वाले राष्ट्रों, जैसे चीन, उत्तरी कोरिया और वियतनाम की सरकारी विचारधारा भी एक जैसी नहीं है। अतः राज्य नागरिक समाज संबंधों का समीकरण भी यहां अलग-अलग है। इसी प्रकार ऐतिहासिक और आर्थिक कारकों का भी समान महत्व है। एक बात तय है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इन सभी देशों ने अपने यहां कानून-व्यवस्था बनाए रखने में सफलता हासिल की है। मानवाधिकार के मामले में जापान को छोड़कर किसी का दामन पाक नहीं है। राज्यों ने अपनी जातीय समस्याओं को अपने-अपने ढंग से सुलझाया है। एक तरफ चीन ने आत्मसात्करण की नीति अपनाई है तो दूसरी तरफ मलेशिया में सहचर प्रजातंत्र का अस्तित्व है। जहाँ तक लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने में राज्यों की भूमिका का सवाल है। इसमें जापान दक्षिण कोरिया और सिंगापुर को अन्य देशों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है।

26.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मार्क बोर्थविक, 1992, *पेसिफिक सेंचुरी* (बोल्डर, वेस्टव्यू प्रेस)

एजरा एफ. वोगेल, 1979, *जापान ऐज अम्बर वन* (कैम्ब्रिज, मास हारवार्ड युनिवर्सिटी प्रेस)

रणवीर वोहरा, 1991, *चाइनाज स्ट्रगल फॉर डेमोक्रेसी एंड सोशिएलिज्म* (पेग्विन)

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) मानवाधिकार के सन्दर्भ में चीन की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। विरोधियों का दमन किया जाता है। उन्हें बिना किसी न्याय के कारावास में डाल दिया जाता है। यह कई मानवाधिकार संगठनों का मानना है।। 1989 में तिआनमिन चौक पर जनतंत्र के समर्थक निहत्थे छात्रों की निर्मम हत्या की चारों ओर निन्दा हुई और उसे मानवाधिकार संबंधी श्वेत पत्र जारी करना पड़ा।

2) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जापान में मानवाधिकार की स्थिति काफी अच्छी है। जापान की पुलिस व्यवस्था काफी हद तक कार्यकुशल और ईमानदार है। लोग बिना किसी भय के थाने में शिकायत दर्ज करवाने जाते हैं। पुलिस और जनता में सौहार्द और सहयोग का संबंध है। जापान के न्याय मंत्रालय में भी मानवाधिकार ब्यूरो है जहाँ लोग बिना किसी भय के पुलिस अतिचार के खिलाफ शिकायत कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) चीन में अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं की संख्या कुल जनसंख्या की 6 प्रतिशत से कुछ ज्यादा है। वहां हान बहुसंख्यक (94) समुदाय हैं। अल्पसंख्यक अधिकांश सीमांत प्रदेशों में रहते हैं। चीनी राज्य अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने का दावा करता है पर असल में उसने आत्मसात्करण की नीति अपनाई है जिससे उनकी पहचान समाप्त होने का खतरा है। उन्हें कुछ रियायतें दी जाती हैं और उनके सभ्रांत जनों को तंत्र में शामिल भी किया जाता है। वहां भी विरोध करने वालों को कड़ा दंड दिया जाता है।

2) मलेशिया में मलय पूरी जनसंख्या के आधे से कुछ ज्यादा है। चीनी दूसरे बड़े समुदाय है। जिनकी संख्या 35 प्रतिशत है। एक समुदाय के रूप में चीनियों की आर्थिक स्थिति मलयों से बेहतर है। मलेशिया सरकार में बहुजातीय गठबंधन की सरकार है जो बड़े संगीन तौर पर

संतुलित है। इस संतुलन के जरा से गड़बड़ाने से हिंसक दंगे उभर जाते हैं। कुल मिलाकर विभिन्न जातीय समूहों के बीच समझौता और मेल-मिलाप कायम कर एक स्थायित्व वाली व्यवस्था बनाई गई है। इसे सहचर प्रजातंत्र का नाम दिया गया है।

बोध प्रश्न 3

1) भूमिपति वर्ग को हटाकर और औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दक्षिण कोरिया सरकार ने अर्थव्यवस्था को तेजी से आगे बढ़ाया। यहां तक कि सैनिक सरकार ने भी व्यक्तिगत और आर्थिक संबंधों से अपने को मुक्त रखा। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के साथ-साथ राज्य ने पंचवर्षीय योजना भी बनाई। हालांकि दक्षिण कोरिया में निरंकुश तरीके से विकास का कार्यक्रम लागू किया गया।

2) मौजूदा चीनी सरकार ने पहले की वह व्यवस्था समाप्त कर दी जिस में तीव्र आर्थिक विकास की अनुमति नही थी। दिसम्बर 1978 में अर्थव्यवस्था में सुधार कार्यक्रम शुरू किया गया और इसे गाँवों और शहरों में लागू किया गया है। इन सुधारों से काफी कम समय में काफी धन जमा हो गया और लोगों के बीच असमानताएं भी बढ़ी हैं।

इकाई 27 दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (एशियन) के विशेष संदर्भ में क्षेत्रीय सहयोग

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 क्षेत्रीय सहयोग का सार

27.3 दक्षिण पूर्व एशिया और क्षेत्रीय सहयोग

27.4 दक्षिण पूर्व एशिया का संगठन

27.5 मलेशिया, फिलिपिन्स और हिंदेशिया का संगठन (मैफिलिंडो)

27.6 दक्षिण् पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन

27.7 शांति, स्वतंत्रता और तटस्थता (जोपफान) की अवधारणा

27.8 दक्षिण पूर्व एशियाई आण्विक अस्त्र मुक्त क्षेत्र (सीएनफज)

27.9 बड़ी शक्तियों की इस क्षेत्र में भूमिका

27.10 सारांश

27.11 शब्दावली

27.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

27.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

इस इकाई में साधारण तौर पर क्षेत्रीय सहयोग और खास तौर पर दक्षिण पूर्व एशियाई सहयोग की चर्चा की गई है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- क्षेत्रीय सहयोग की अवधारणा के सार की व्याख्या कर सकेंगे और इस प्रकार के संगठनों के निर्माण में सहायक स्थितियों को पहचान सकेंगे।
- दक्षिण पूर्व एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना के प्रयत्नों और इसके विकास तथा दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (एशियन) के उदय का उल्लेख कर सकेंगे।
- एशियन के विभिन्न उद्देश्यों, इन उद्देश्यों की प्राप्ति में इस संगठन के सामने आने वाली कठिनाइयों, बाहरी शक्तियों की भूमिका और इसकी उपलब्धियों और समस्याओं का जिक्र कर सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

अभी तक आप दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र के संगठन, इस क्षेत्र में आने वाले देशों के नाम, दक्षिण पूर्व एशिया की सरकार और राजनीति, आर्थिक और राजनैतिक विकास की पद्धतियों, जातीयता और राष्ट्र-निर्माण तथा राज्य-नागरिक समाज संबंधों के बारे में बहुत कुछ जान चुके हैं। इस इकाई में हम उन परिस्थितियों की चर्चा करने जा रहे हैं, जिसके तहत इन देशों द्वारा क्षेत्रीय सहयोग के निर्माण का प्रयत्न किया गया है। हम इसके उद्देश्य, समस्याओं, विदेशी शक्तियों की भूमिका आदि के बारे में विचार करेंगे।

27.2 क्षेत्रीय सहयोग का सार

युद्धोत्तर काल में इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के स्तर पर स्पष्ट विकास हुआ और क्षेत्रीय सहयोग के लिए संगठनों का निर्माण हुआ। सुविधा की दृष्टि से क्षेत्र शब्द का इस्तेमाल एक

भागोलिक क्षेत्र के लिए किया जा रहा है जिस पर किसी एक प्रभुसत्तात्मक सरकार का नियंत्रण हो जो अपने किसी भी हित के लिए बहुद्देशीय सहयोग स्थापित करने में सक्षम हो। क्षेत्रीय सहयोग शब्द से तात्पर्य यह है कि अपने एक से हित की पूर्ति के लिए विभिन्न राज्य आपस में सहयोग के साथ काम कर सकें।

1960 के दशक के आरंभ में क्षेत्रीय सहयोग की शुरुआत लैटिन अमरीका में हुई और बाद में अन्य विकासशील दुनिया में इसका विस्तार हुआ। 1970 के दशक में पहली बार तेल के फेरबदल होने पर सर्वव्यापी आर्थिक संकट की शुरुआत हुई, जिससे कई विकासशील देश बुरी तरह प्रभावित हुए। उस काल की अशांत विश्व आर्थिक व्यवस्था के कारण तीसरी दुनिया के क्षेत्रीय सहयोग को काफी बल मिला। इस संकट से यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ एक दूसरे पर काफी निर्भरशील हैं। अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के बिगड़ने का छोटे और मझोले आकार के आर्थिक रूप से कमजोर विकासशील देशों पर काफी बुरा असर पड़ा। वे अपने यहाँ स्वायत्ता या काफी हद तक आत्म-निर्भर विकास की पद्धति चाहते थे। जब राष्ट्रीय स्तर पर आत्म-निर्भरता की नीति फलीभूत नहीं हुई तब क्षेत्रीय स्तर पर आत्मनिर्भरता का विकल्प सामने आया। नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में इस विचार को स्थान प्रदान किया गया।

प्राथमिक वस्तुओं, निवेश, तकनीक का स्थानांतरण, संरक्षणवाद, आर्थिक मदद आदि जैसे अनेक विश्वस्तरीय मुद्दों से कई विकासशील देश अलग-अलग ढंग से प्रभावित हुए। खासकर पश्चिम के आर्थिक वर्चस्व और विकसित देशों की संरक्षणवादी प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में विकासशील देशों ने व्यापार और विदेशी विनिमय और भुगतान संतुलन जैसी आर्थिक समस्याओं, तीव्र विकास का दबाव और औद्योगीकरण आदि के समाधान के लिए आपस में सहयोग स्थापित करना जरूरी समझा। क्षेत्रीयता के विकास से अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों और क्षेत्र की सुरक्षा के लिए एकीकृत राजनैतिक स्तर मुखर हुआ। सर्वोच्च शक्तियों की गतिविधियों का मुकाबला करने के लिए क्षेत्रीयता का उदय हुआ। विकासशील देशों की सुरक्षा और सर्वोच्च शक्तियों के हस्तक्षेप से अपनी रक्षा करने के लिए क्षेत्रीय संगठनों का निर्माण किया गया।

इस प्रकार उन्होंने एक साथ संगठित होने की जरूरत समझी। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों पर विकासशील देशों और अन्य हित समुदाय से टक्कर लेने के लिए उन्हें एक मंच की आवश्यकता महसूस हुई।

अलग-अलग क्षेत्रों और अलग-अलग मामलों के आधार पर क्षेत्रीय सहयोग के अनेक आधार और तर्क निर्मित हुए। अतः प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध आर्थिक समस्याओं और संस्थागत परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए ही विभिन्न योजनाओं की सफलताओं और असफलताओं को आंका जाना चाहिए। इसके अलावा, आर्थिक सहयोग के विकास को शुद्ध आर्थिक कसौटी पर नहीं कसा जाना चाहिए बल्कि राजनैतिक वास्तविकता और ऐतिहासिक परिस्थितियों के समग्र परिपक्ष्य में उनका मूल्यांकन होना चाहिए।

अब तीसरी दुनिया में सामूहिक विकास के लिए क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग को आवश्यक माना जाने लगा है। तीसरी दुनिया में हाल के वर्षों में "एसीअन" के तहत किया गया क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग काफी हद तक सफल प्रयोग रहा है। यह क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ाने में सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

27.3 दक्षिण पूर्व एशिया और क्षेत्रीय सहयोग

दक्षिण पूर्व एशिया में क्षेत्रीय सहयोग संबंधी अनेक प्रयोग हुए हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दक्षिण पूर्व एशिया में जब पहली बार क्षेत्रीय अस्मिता का विचार सामने आया तो उसमें संघर्ष और अनिश्चय का ज्यादा हाथ था। विश्वास और उद्देश्य की कमी थी। इसका कारण यह था कि इन निकायों का जन्म बिल्कुल अलग-अलग उद्देश्यों से हुआ था। उदाहरण के लिए शीतयुद्ध से प्रेरित और चीन के प्रभाव को कम करने के लिए अमरीका का हस्तक्षेप हुआ। इस उद्देश्य से दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन (सीएटो) और एशिया प्रशांत काउंसिल ("एस्केप," पहले "एकेफे") की स्थापना हुई। अंततः दक्षिण पूर्व एशिया संगठन (आसा) मैफिलिंडो (मलेशिया, फिलिपिन्स और हिंदेशिया का संगठन), और बाद में दक्षिण पूर्व एशिया राष्ट्र संगठन जैसी स्थानीय संस्थाएँ कायम हुई। स्थानीय संस्थाओं में आज की तारीख में "एशियन" सबसे महत्वपूर्ण और सफल क्षेत्रीय संगठन है। "ऐशियन" को छोड़कर तीसरी दुनिया के अधिकांश संगठन राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से अप्रभावी रहे।

27.4 दक्षिण पूर्व एशिया का संगठन ("आसा")

दक्षिण पूर्व एशिया संगठन इस क्षेत्र का सही अर्थों में क्षेत्रीय सहयोग का पहला प्रयोग था जिसका कोई राजनैतिक-सैनिक उद्देश्य नहीं था। 31 जुलाई 1961 को बैंकाक अधिघोषणा के बाद दक्षिण पूर्व एशिया संगठन की स्थापना हुई। इसके पीछे मलाया के प्रधानमंत्री तुंक अब्दुल रहमान का प्रमुख हाथ था जो 1958 से ही यह सपना संजोए हुए थे। इसमें थाईलैंड, मलेशिया और फिलिपिन्स शामिल थे। इसका उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और प्रशासनिक मामलों में सहयोग को बढ़ावा देना था। यह संगठन शुद्ध रूप में एशियाई देशों द्वारा निर्मित किया गया था और पहले के क्षेत्रीय संगठनों के समान इसमें किसी बाहरी शक्ति का हाथ नहीं था। इसके लिखित उद्देश्य में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और प्रशासनिक सहयोग शामिल था और अलिखित उद्देश्य में राजनैतिक क्षेत्र में शान्त रहने की मुद्रा अपनाने की नीति शामिल थी। यह अवधारणा व्यावहारिक होने के साथ-साथ विनम्र भी थी। एसिअन से थोड़ी भिन्न होने के बावजूद यह उसकी पूर्वपीठिका थी।

सिंगापुर, सारवाक और उत्तरी बार्नियो (बाद में इसका नाम साबाह रखा गया) को शामिल किए जाने के साथ मलेशिया का संघ बनने को ही था कि फिलिपिन्स ने यह कहकर इसका विरोध किया कि साबाह इसके क्षेत्र का अंग है। पर संयुक्त राष्ट्र के अभिवाद से मलेशिया का संघ बना जिसने न केवल फिलिपिन्स को बल्कि हिंदेशिया के राष्ट्रपति सुकार्णो को भी नाराज किया जिसने मलेशिया के साथ "संघर्ष" करने की नीति अपनाई। हिन्देशिया के मलेशिया के प्रति विरोध भाव और बोर्नियों के संबंध में फिलिपिन्स और मलेशिया के बीच मनमुटाव के कारण यह संगठन अप्रभावी हो गया। सुकार्णो के विरोध और थाईलैंड तथा फिलिपिन्स के अमरीकी संबंधों के कारण यह संस्था जीवित न रह सकी।

27.5 मलेशिया, फिलिपिन्स और हिन्देशिया का संगठन (मैफिलिंडो)

दक्षिण पूर्व एशिया में क्षेत्रीय सहयोग की दिशा में एक ओर प्रयोग किया गया। इसमें मलेशिया, फिलिपिन्स और हिन्देशिया शामिल थे। इसे *मैफिलिंडो* के नाम से जाना गया। इसका उद्देश्य दक्षिण पूर्व एशिया के मलय बहुसंख्यक वाले राष्ट्रों को एकबद्ध करना था। कुछ हद तक इसके उद्देश्य राजनैतिक थे पर सैनिक उद्देश्य इसमें शामिल नहीं था न ही आर्थिक सहयोग पर बहुत बल दिया गया था। इसका गठन 1963 ई. में हुआ था। इसके द्वारा 1963 में मलेशिया के निर्माण से उत्पन्न तनाव को दूर करने का एक और प्रयत्न किया गया। मनीला में मलय, हिन्देशिया और फिलिपिन्स के विदेश मंत्रियों की बैठक हुई, इसके पीछे मलय राष्ट्र का संगठन बनाना था। इस प्रकार एक व्यापक मलय संघ का जन्म हुआ। पर अपनी दो कमजोरियों के कारण *मैफिलिंडो* अल्पजीवी रहा। पहली बात यह कि इसमें केवल मलय बहुल देशों को साथ लेकर चलने की बात थी जिससे दक्षिण पूर्व एशिया के गैर मलय देश जैसे थाईलैंड, सिंगापुर और हिन्दचीन राज्य का कोई लेना-देना नहीं था। दूसरे, अभी भी इसमें साबाह मुद्दे पर विवाद बना हुआ था। अतः 16 सितम्बर 1963 को यह मलय संगठन समाप्त हो गया।

मैफिलिंडो संगठन के बाद के वर्षों में सदस्य राष्ट्रों के बीच अविश्वास और आपसी संदेह का माहौल कायम हो गया। इस पृष्ठभूमि में दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (एसिअन) का जन्म हुआ।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

2) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलाइए।

1) दक्षिण पूर्व एशिया के दो आरम्भिक क्षेत्रीय संगठनों का नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) इन संगठनों के कौन-कौन से देश सदस्य थे ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में से कौन-सा सही है ?

क) क्षेत्रीय संगठनों के उदय का क्या कारण था।

क) सामाजिक कारण

ख) राजनैतिक कारण

ग) आर्थिक कारण

ख) क्षेत्रीय संगठनों की शुरुआत कब हुई ?

क) 1960 के दशक में

ख) 1970 के दशक में

ग) 1980 के दशक में

ग) क्षेत्रीय संगठन सबसे पहले कहाँ बने ?

क) अफ्रीका में

ख) लैटिन अमरीका में

ग) एशिया में

27.6 दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (एशियन)

जिस समय दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन के निर्माण की बात सोची जा रही थी उस समय तक यह क्षेत्र दो उप-क्षेत्रों में विभाजित हो चुका था। पहला उप-क्षेत्र हिन्दी चीनी राज्यों (लाओस, कम्बोडिया और दोनों वियतनाम) का था और दूसरा थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर और फिलिपिन्स जैसे राष्ट्रों का था जो साम्यवादी विरोधी थे और इनमें राजनैतिक स्तर पर विभिन्नताएँ थी। पहला उप-क्षेत्र छोटा था पर राजनैतिक रूप से सक्रिय था। बाद में दूसरे उप-क्षेत्र के देशों को मिलाकर दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन का निर्माण हुआ।

दक्षिण पूर्व एशिया का यह क्षेत्रीय विभाजन वस्तुतः विश्व स्तर पर साम्यवादी और साम्यवादी विरोधी दलों के विभाजन का ही प्रतिफल था। 1960 के दशक में अमरीकी सेना ने तथाकथित साम्यवादी प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए हिंद चीन के राज्यों में घसुपैठ की। यह जाहिर था कि अमरीका हारी हुई लड़ाई लड़ रहा था। जिन पाँच देशों ने पश्चिमी रुख अख्तियार किया था और साम्यवादी विरोधी रवैया अपनाया था उनकी स्थिति काफी नाजुक थी। उनके मनोवैज्ञानिक भय और अमरीकी रणनीति के फलस्वरूप अमरीकोन्मुख राष्ट्रों को एक साथ लाने की आवश्यकता महसूस की गई। अतः इन पाँच देशों द्वारा एसियन के संगठन के लिए हुई कार्यवाई स्वतंत्र और स्वभाविक नहीं थी यह अतिरिक्त क्षेत्रीय कारकों से उत्पन्न तनाव और अव्यवस्था की उपज थी।

1967 में "आसा" के स्थान पर "एशियन" का गठन हुआ। इनमें आधारभूत अंतर यह था कि इसमें हिन्देशिया और सिंगापुर भी शामिल थे। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद 1984 में बूनेई इसका

नया सदस्य बना। अभी "एशियन" देशों की कुल जनसंख्या अनुमानतः 316.651 मीलियन और कुल प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद 984 अमरीकी डॉलर है। इसका सचिवालय जकार्ता में है। "एशियन" संगठन किसी सैनिक समझौते या राजनैतिक शक्ति के रूप में निर्मित नहीं हुआ था।

1967 की बैंकाक उद्घोषणा के अनुसार "एशियन" का मुख्य उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में सदस्य देशों के बीच सहयोग स्थापित करना था। इसका उद्देश्य इस क्षेत्र में आर्थिक विकास और सामाजिक-सांस्कृतिक विकास करना था। पर शनैः शनैः "एशियन" संगठन का दायरा और उद्देश्य व्यापक होता चला गया। अब केवल सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक गतिविधियों में ही नहीं बल्कि राजनैतिक सुरक्षा और सामरिक क्षेत्रों में भी विभिन्न सदस्य देशों के बीच समझौता होता है।

थाईलैंड के अलावा सभी "एशियन" देश ब्रिटेन डच, फ्रांसीसी और अमरीकी उपनिवेश रह चुके हैं। इस विभिन्न सामाजिक आर्थिक पृष्ठिभूमि से इनकी अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई है। साठ के दशक के मध्य तक "एशियन" क्षेत्र में राजनैतिक अस्थिरता का माहौल बना हुआ था। 1960 के दशक के आरम्भ तक अमरीका गहरे रूप में वियतनाम मुद्दे में फँसा हुआ था और पूरे दक्षिण पूर्व एशिया में जन आन्दोलन चल रहे थे। इस क्षेत्र के सबसे बड़े देश ने "निर्देशित प्रजातंत्र" को अपनाया था और उसने उपनिवेश विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी रवैया अपना रखा था। हिंदेशिया और मलेशिया के बीच मतभेद, मलेशिया में जातीय समस्याएँ और साबाह को लेकर फिलिपिन्स से मतभेद और वियतनाम युद्ध में उनके शामिल होने, पश्चिम के खिलाफ जकार्ता और बीजिंग की राजनैतिक संधि, इन सब स्थितियों के कारण दक्षिण पूर्व एशिया की स्थिति काफी अस्तव्यस्त और विस्फोटक हो गई थी। अमरीका ने दक्षिण पूर्व एशिया देशों को अति संवदेनशील समझा 1960 के दशक के मध्य में उसकी नीति में परिवर्तन आया और उसने शुद्ध प्रतिकता मानदंड को छोड़कर दक्षिण पूर्व एशिया के सामाजिक आर्थिक एकबद्धता की ओर ध्यान दिया।

1967 में हिन्देशिया से इस बात का संकेत मिलने लगा कि वह दक्षिण पूर्व एशिया संगठन (आसा) को विस्तार देना चाहता है और उसमें हिन्देशिया सहित अन्य देशों को भी शामिल करना चाहता था। पहले किए गए प्रयासों से सीख लेते हुए इस बार निरपेक्ष और उभयवृत्ती दो स्थितियाँ धीरे-धीरे स्पष्ट हुई। पश्चिमी सहायता और उपस्थिति को वैध आधार प्रदान किया गया। अपने सीमित स्रोतों को देखते हुए पश्चिम से मजबूत व्यापारिक संबंध स्थापित करने का प्रावधान रखा गया। क्षेत्रीय आर्थिक विकास के लिए पश्चिम के मॉडल पर आधुनिकीकरण किया गया और निजी उद्यम को अग्रणी भूमिका प्रदान की गई। अंततः यह आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था का पक्षधर होने के बदले पश्चिम से आर्थिक गठजोड़ करने का पक्षधर हो गया। एक तरफ साम्यवादी देशों ने "एशियन" के गठन की तीव्र आलोचना की वहीं अमरीका और जापान ने इसे समर्थन दिया।

"एशियन" के नेता अपनी अधिकारिक घोषणाओं में हर बार यह कहते रहे कि "एशियन" का गठन सैनिक कारणों से नहीं, आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग के लिए हुआ है।

27.7 तटस्थीकरण योजना

1971 में मलेशिया द्वारा तैयार किए गए प्रस्ताव (क्वाल्लंपुर उद्घोषणा) को "एशियन" ने मंजूर कर लिया जिसके अनुसार दक्षिण पूर्व एशिया "को शान्ति, स्वतंत्रता और तटस्थता का क्षेत्र माना गया जो किसी भी बाहरी देश के हस्तक्षेप से मुक्त होगा।"

27.8 दक्षिण पूर्व एशियाई आण्विक अस्त्र मुक्त क्षेत्र

1987 में सम्पन्न मनीला सम्मेलन में एसीअन के सदस्यों ने दक्षिण पूर्व एशियाई आण्विक अस्त्र मुक्त क्षेत्र की स्थापना की पेशकश की। हिन्देशिया ने इसे तटस्थीकरण योजना का ही अगला कदम बताया। "एशियन" के सदस्य राष्ट्रों का मानना था तटस्थीकरण योजना तभी प्रभावी होगी जब यह गैर-एशियन राष्ट्रों जैसे वियतनाम, लाओस और कंबोडिया पर भी लागू हो।

"एशियन" ने यह महसूस किया कि दक्षिण पूर्व एशिया की सुरक्षा और स्थायित्व की जिम्मेवारी इस क्षेत्र के सभी देशों की है। अतः सदस्य राष्ट्रों को आपस में मिल बैठकर शातिपूर्ण तरीके से

अपना मतभेद दूर करना चाहिए। हालांकि सिद्धांत रूप में सभी इससे सहमत हैं पर बड़ी शक्तियों से जुड़े रहने के कारण इसे लागू करने के तरीके में उनके बीच मतभेद हैं।

आरम्भ में हिन्द चीन के देश जैसे वियतनाम, लाओस और कम्बोडिया इस संगठन को पश्चिमोन्मुख और साम्यवादी विरोधी संगठन मानते थे। क्योंकि इसका निर्माण साम्यवादी विरोधी देशों ने किया था और इसे अमरीका का समर्थन प्राप्त था। अतः हाल तक दक्षिण पूर्व एशिया के दोनों खंड अर्थात एशियन और हिंद चीन राष्ट्र एक दूसरे के तीव्र आलोचक थे और क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दों पर उनके विचार बिल्कुल अलग हैं।

15 फरवरी 1973 को हुई विदेश मंत्रियों की बैठक में दक्षिणपूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (एशियन) के देशों ने एक एशियाई मंच के निर्माण की अवधारणा प्रस्तुत की जिससे कि दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देश जैसे तीन हिंद चीन राष्ट्र और बर्मा इसके सदस्य बन सके।

पर पोल पॉट सरकार के गिराए जाने और कम्बोडिया में वियतनाम के हस्तक्षेप की "एशियन" देशों ने आलोचना की। उन्होंने कम्बोडिया में वियतनाम के हस्तक्षेप और सोवियत संघ द्वारा समर्थन की भी भर्त्सना की। इस घटना से साम्यवादी दुनिया में भी गहरा मतभेद उत्पन्न हो गया।

उन्होंने कंबोडिया में स्वतंत्रता बहाल किए जाने, स्वतंत्र सरकार स्थापित किए जाने और किसी भी प्रकार के सैनिक हस्तक्षेप को समाप्त करने तथा इस क्षेत्र के सभी देशों के साथ मित्रता और शान्ति का संबंध स्थापित करने की माँग की।

27.9 बड़ी शक्तियों की इस क्षेत्र में भूमिका

दक्षिण पूर्व एशिया बड़ी शक्तियों का अखाड़ा रहा है। वे दक्षिण पूर्व एशियन के स्थानीय संघर्षों में हिस्सा लेते रहे हैं। दक्षिण पूर्व एशिया में शान्ति और स्थायित्व के प्रश्न पर उनकी भूमिका पर आलोचनात्मक ढंग से विचार करना चाहिए और इस क्षेत्र के प्रति उनके दृष्टिकोण और उनके प्रति क्षेत्र विशेष के दृष्टिकोण को भी समझना चाहिए।

अभी हाल तक इस क्षेत्र में स्थायित्व और शान्ति लाने के मास्को के प्रयत्नों का स्वागत करते हुए "एसीअन" ने कम्पूचिया समस्या का समाधान करने और वियतनाम द्वारा इसे समर्थन देने का आग्रह किया था। उन्हें उन देशों में चीन के हस्तक्षेप का खतरा दिखाई दे रहा था। फिर भी इस बात पर सहमति थी कि चीन चाहे दोस्त हो या दुश्मन इस क्षेत्र के राजनैतिक और आर्थिक विकास में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। आर्थिक रूप से मजबूत चीन का इस क्षेत्र पर सकारात्मक प्रभाव भी है और नकारात्मक प्रभाव भी।

द्वितीय विश्व युद्ध को याद करने पर यह लगता है कि सैन्य रूप से जापान के प्रबल होने की पूरी संभावनाएँ हैं। जापान दक्षिण पूर्व एशिया की आर्थिक प्रेरक शक्ति है। अतः "एशियन" का मानना है कि इस क्षेत्र के विकास और आपसी सहयोग में जापान को लगातार अपनी भूमिका निभाते रहना चाहिए।

इस क्षेत्र में अमरीकी सेना की उपस्थिति स्वयं उसकी और दक्षिण पूर्व एशिया की सुरक्षा के लिए जरूरी है। उसकी इस क्षमता में कमी आने से सुरक्षा का सवाल खड़ा हो जाएगा। एशियन देशों का अमरीका के साथ व्यापार और उनके व्यापार संबंधी मतभेद भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

अपने आर्थिक विकास को बढ़ाने के उद्देश्य से बड़ी शक्तियाँ दक्षिण पूर्व एशिया की ओर आकृष्ट हो रही हैं। इन सभी बड़ी शक्तियों की नजर में दक्षिण पूर्व एशिया का सामरिक महत्व है क्योंकि यहाँ फारस की खाड़ी और उत्तर पूर्व एशिया के बीच जाने वाले तेल वाहक जहाजों और नौ सेना के जहाजों के आवागमन को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अलावा अपने आर्थिक समीकरण और सामूहिक राजनैतिक शक्ति के कारण "एशियन" को इस क्षेत्र में स्थायित्व प्रदान करने वाली ताकत के रूप में देखा जाता है। सभी बड़ी शक्तियाँ अच्छा रखना चाहती हैं। 1980 के आरम्भ में कंबोडिया समस्या को सुलझाने के लिए समझौते की शुरुआत और पूर्वी यूरोप तथा सोवियत संघ में उथल-पुथल होने से "एशियन" और हिन्द चीन राज्यों के एक दूसरे के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आया।

जुलाई 1991 में सम्पन्न एशियन सम्मेलन में पहली बार सोवियत संघ और चीन के प्रतिनिधियों को शामिल होने का निमंत्रण भेजा गया था।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

2) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलाइए।

1) "एशियन" के उदय के समय दक्षिण पूर्व एशिया किन दो उप-क्षेत्रों में बँटा था।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) "एशियन"के सदस्य राष्ट्र कौन-कौन हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) "एशियन" के मूल उद्देश्य क्या थे ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) इस क्षेत्र के बाहर के कौन-कौन से देश "एशियन" को समर्थन दे रहे थे ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) "जोपफान" और "सीएन-फज" से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

6) निम्नलिखित प्रश्नों को ध्यान से पढ़िए और सही उत्तर के सामने सही (✓) का निशान लगाइए।

क) दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (एशियन) की स्थापना किस वर्ष हुई ?

क) 1967 [ ]

ख) 1977 [ ]

ग) 1987 [ ]

ख) "एसिअन" ने किस वर्ष अपने मंत्रीय सम्मेलन में पहली बार चीन और सोवियत संघ के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया ?

क) 1971 [ ]

ख) 1981 [ ]

ग) 1991 [ ]

ग) भारत किस वर्ष क्षेत्रीय सहयोगी बना ?

क) 1973 [ ]

ख) 1983 [ ]

ग) 1993 [ ]

27.10 सारांश

शीत युद्ध के समाप्त होने के बाद दक्षिण पूर्व एशिया और इसके संगठन "एशियन" के सामने नई चुनौतियाँ खड़ी हुई। क्षेत्रीय सहयोग की प्रवृत्ति के विकास से विश्व स्तर पर दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन और हिन्द चीन के देशों को भी फायदा हुआ और उन्हें क्षेत्रीय सहयोग के लिए एक आम आधार प्राप्त हुआ। "एशियन" लगातार अपने सहयोगियों अमरीकन, जापान, यूरोपीय आर्थिक समुदाय, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के साथ सक्रिय रूप से वार्ता करता रहा। इसी प्रकार "एशियन" ने एशिया के अन्य देशों के साथ भी दोस्ती का व्यवहार बनाए रखा। जनवरी 1993 में उसने भारत को अपना क्षेत्रीय सहयोगी बनाया।

25 वर्षों से अनवरत सक्रिय रहते हुए इसने न केवल विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त की बल्कि क्षेत्रीय संघर्ष की संभावनाओं को भी काफी हद तक कम किया है। इसमें "एशियन" की सर्वसम्मति नीति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसके बावजूद "एशियन" एक नई संस्था है और यूरोपीय आर्थिक समुदाय की सफलता से अभी इसकी तुलना नहीं की जा सकती है। अतः अभी ठोस रूप में इसकी प्रगति का मूल्यांकन और दूसरे संगठनों से इसकी तुलना करना मुश्किल है।

"एशियन" की सफलता के कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार हैं : सर्वसम्मति कार्यपद्धति, समान अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि, इसके सदस्यों के बीच आपसी भाव और एशियन के सदस्य देशों के राजनीतिज्ञों, व्यापारियों और विद्वानों के बीच बढ़ता आपसी व्यक्तिगत सम्पर्क।

"एशियन" आज काफी आगे बढ़ चुका है और अपने सदस्यों के राजनैतिक और सुरक्षात्मक मुद्दों की भी चिंता कर रहा है। हालाँकि इसके स्थापकों ने केवल आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग के लिए इसकी स्थापना की थी।

27.11 शब्दावली

क्षेत्रीय : एक क्षेत्र या एक इलाके से जुड़ने की भावना

संरक्षणवाद : शुल्क लगाकर व्यापार के संरक्षण का पक्ष लेना

तटस्थता : किसी समुदाय का पक्ष न लेकर तटस्था की भूमिका अदा करना

बहुपक्षीय : विभिन्न देशों, दलों और भागीदारों से सम्पर्क स्थापित करना।

27.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डाहल, गोम्फिन टी 1982, *रिजनल आर्गेनाइजेशन एंड आर्डर इन साउथ इस्ट एशिया :* (मैकमिलन नई दिल्ली)

लेइफर, माइकल, 1980, *कान्मिलक्ट एंड रिजनल आर्डर इन साउथ ईस्ट एशिया* (इंटरनेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ स्ट्रेटजिक स्टडीज, लंदन)

पीटर पोलोम्का, 1975 *एसिअन एंड द लॉ ऑफ द सी : ए प्रेलिमिनेरी लुक ऐट द प्रौरुथकृस ऑफ रिजनल कोओपरेशन* (ओकजनल पेपर नं. 36, इंसटिच्यूट ऑफ साउथ ईस्ट एशियन स्टडीज, सिंगापुर)

सेनगुप्ता, भवानी, एडी, *साइर्फ एसीअन प्रोस्पेक्ट्स एंड प्रौब्लेम्स ऑफ इन्टर रिजनल कोओपरेशन* (साउथ एशियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1988)

युनाइटेड नेशन्स, *रिजनल इंड्रस्टियल कोओपरेशन : एलस्पिरिएन्स एंड पर्सपेक्टिव ऑफ एशियन एंड एंडयू पैक्ट* (इंड्रस्टियल डेवलॉपमेंट आर्गेनाइजेशन, विचेना, 1986)

27.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) दक्षिण पूर्व एशिया संगठन, मलेशिया, फिलिपिन्स और हिन्देशिया का संगठन।

2) दक्षिण पूर्व एशिया संगठन (आसा), थाईलैंड, मलेशिया और फिलिपिन्स, (मैफिलिंडो) मलेशिया, फिलिपिन्स और हिन्देशिया।

3) क) ग) 1960 के दशक में

ख) क) लैटिन अमेरिका

ग) ख) आर्थिक

बोध प्रश्न 2

1) पहला साम्यवादी हिन्द चीन समूह जिसमें लाओस, कंबोडिया और दो वियतनाम शामिल थे। दूसरा, दक्षिण पूर्व एशिया के गैर-साम्यवादी देश थाईलैंड, मलेशिया, हिंदेशियन, फिलिपिन्स और सिंगापुर।

2) थाईलैंड, मलेशियन, हिंदेशियन, सिंगापुर, फिलिपिन्स, बुनेई।

3) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक

4) अमेरिका और जापान

5) जोपफान शान्ति, स्वतंत्रता और तटस्थता का क्षेत्र और दक्षिण पूर्व एशियाई आण्विक अक्ष मुध्र क्षेत्र।

6) क) क)

ख) ग)

ग) ग)